...प्रांत, मध्य प्रांत, बिहार, बम्बई, उड़ीसा व कोटा राज्य शिक्षा विभाग द्वारा पाठशालाओं व पुस्तकालयों के लिए स्वीकृत।
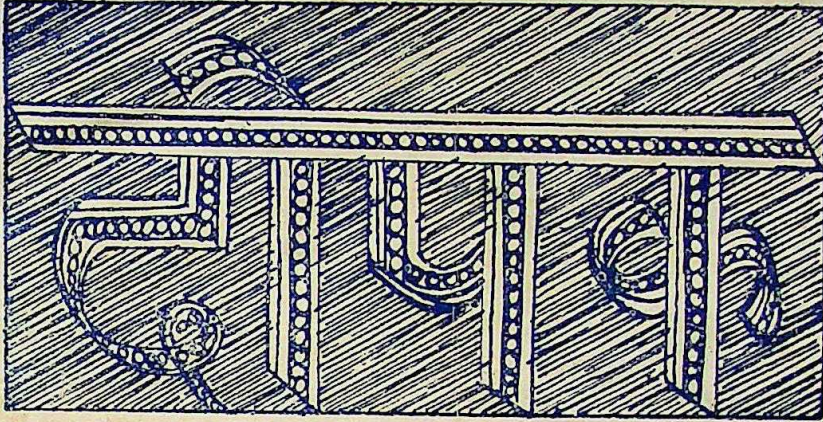
पौष १९९५ जनवरी १९३९

सम्पादक
तेगराम

इस अङ्क के विशेष लेख

एक वर्ष का २॥)
एक अङ्क का ।)

'दीपक' के विशेषांक पर सम्मतियां

श्री भगवानदास केला, वृन्दावन—'दीपक' का विशेषांक मिला। सामग्री, आपके महान् उद्देश्य, और सिद्धान्तों के अनुसार है। विज्ञापन का त्याग करना तथा उपयोगी सात्विक सामग्री देना और पत्र चलाना कितना कठिन है, यह मैं भली भांति अनुभव करता हूं। आप पञ्जाब में इन कठिनाइयों को सहन करके ऊँचा आदर्श रख रहे हैं।"

श्री भिक्षु नागार्जुन, बिहार—"आपके इस साल का यह विशेषांक इतना बढ़िया निकला है कि "देखि-देखि नाचत मन मोरा।" 'दीपक' ने और एक मात्र 'दीपक' ने प्रमाणित कर दिया है कि पञ्जाब से भी हिंदी का कोई मासिक स्थायी रूप से निकल सकता है। 'दीपक' सिर्फ २॥) में सालभर अपने पाठकों को जो मसाला दिया करता है वह हिन्दी संसार के और पत्र-पत्रिकाओं के लिए अनुकरणीय है। आपका यह प्रयास दिन-दिन पुष्ट हो।"

वैद्यभूषण श्री पं० मोहन शर्मा विशारद, भूतपूर्व सम्पादक 'मोहिनी' इटारसी—"दीपक का दलदार प्रवेशांक सम्मत्यर्थ मिला उसके लेखकों की जमायत में हिन्दी के कर्मश्रेष्ठ शिल्पियों और कलाकारों के नाम देखकर आपकी सुन्दर कार्यशैली का विशेष ज्ञान हुआ। अपने तीनवर्ष के नन्हें जीवन में पत्र ने जो आशातीत उन्नति साधन की है उसका यह प्रवेशांक जीवित उदाहरण है। इतने सस्ते मूल्य में इस प्रकार सुरुचिपूर्ण लेख सामग्री का वितरण करना आपही के साहस का काम है। प्रस्तुत अंक में चित्रों की बानगी नहीं है पर प्रबन्धों का चयन इतना सुन्दर और आकर्षक हुआ है कि उसके कारण किसी भी श्रेष्ठ हिंदी मासिक से इसकी टक्कर हो सकती है।"

श्री नरदेव शास्त्री वेदतीर्थ—'दीपक' का दिवाली अंक पाठ्य विषयों से परिपूर्ण है। इस का बाह्य तथा अन्तरंग रूप सुन्दर है।

श्री रामकृष्ण 'भारती' शास्त्री विद्यावाचस्पति—"अंक का सम्पादन, संकलन प्रत्येक दृष्टि से सुरुचिवर्द्धक तथा ठोस सामग्री से युक्त है। आपका परिश्रम सराहनीय है।"

{ दीपक—वर्ष ४, संख्या ३, जनवरी १९३९ ई० }

'दीपक' मेरठ में 'प्रकाश-एजन्सी' पर मिलता है ।

'दीपक' के नियम

१—'दीपक' हर अंग्रेज़ी महीने के पहले सप्ताह में प्रकाशित होता है।

२—'दीपक' का वार्षिक मूल्य डाक व्यय व विशेषांक सहित केवल २।) है। एक प्रति ४ आने, विदेश से ४)।

३—'दीपक' में प्रकाशनार्थ लिखे जाने वाले लेख अधूरे न हों, पृष्ठ के एक ओर ही संशोधन के लिये इधर उधर जगह छोड़ कर सफाई से लिखे हों, विस्तार में चार पृष्ठ से अधिक न हों। भाषा उनकी सरल व शैली रोचक हो जिससे साधारण योग्यता वाले व्यक्ति भी जिनके हितार्थ 'दीपक' प्रकाशित हुआ है, उन्हें पढ़ व समझ सकें।

४—'दीपक' का मुख्य उद्देश **ग्राम-सुधार, समाज-उत्थान, शिक्षा व राष्ट्र-भाषा-प्रचार** द्वारा जनता-जनार्दनमें जीवन-जागृति पैदा करना है। अतः धार्मिक ईर्ष्या, साम्प्रदायिक विद्वेष पूर्ण उपरोक्त उद्देश्य के विपरीत कोई लेख न छप सकेगा।

५—लेख घटाने-बढाने, संशोधन करने तथा प्रकाशित करने या न करने का अधिकार संपादक को होगा।

६—'दीपक' के ग्राहकों को पत्र-व्यवहार करते समय अपना पूरा पता और ग्राहक नम्बर साफ अक्षरों में लिखना चाहिये, अन्यथा जवाब देर से मिलेगा। १ मास से कम समयके लिये पता बदलवाने के लिये डाकखानेसे प्रबंध करें।

७—अस्वीकृत लेख डाक खर्च भेजने पर ही लौटाये जा सकेंगे अन्यथा नहीं।

८—जिन सज्जनों को किसी मास का 'दीपक' न मिले उन्हें पहले अपने डाकघर से पूछ ताछ करके बाद में हमारे पास लिखना चाहिये।

९—लेख, कविता, समालोचना के लिये पुस्तकें और बदले के पत्र, सम्पादक, 'दीपक' साहित्य सदन, अबोहर के पते से और मूल्य तथा प्रबन्ध विषयक पत्र मैनेजर, 'दीपक' के पते से भेजने चाहिएं।

स्तंभ—सूची

१ ज्ञान-चर्चा
२ पुस्तकालय
३ शिक्षा-दीक्षा
४ राष्ट्र-भाषा
५ हमारे गाँव
६ देहाती-साहित्य
७ खेती-बाड़ी
८ उद्योग-धंधे
९ पशु-पालन
१० स्वास्थ्य-साधना
११ हमारा आहार
१२ महिला-मंडल
१३ बाल-मंदिर
१४ प्रकृति और विज्ञान
१५ सामयिक चर्चा
१६ फुलवाड़ी
१७ सम्पादकीय नोट
१८ संसार-चक्र

कृपालु लेखक-लेखिकाओं से नम्र निवेदन है कि वे 'दीपक' के लिये कुछ लिखने से पहिले एक बार हमारे स्तंभों की सूची देख लें। इन स्तंभों के अतिरिक्त भाव-पूर्ण किन्तु सात्विक कविता और कहानियों के लिये भी 'दीपक' के कुछ पृष्ठ 'रिज़र्व' हैं। सरल भाषा में लिखे गये व्यवहारिक लेख 'दीपक' के श्रद्धापात्र होंगे।

—सम्पादक

Approved for use in Schools in U.P., C.P., Bihar, Bombay, Orissa and Kotah State

सत्यम् :: शिवम् :: सुन्दरम्

सम्पादक—तेगराम

पौष १९९५ | वर्ष ४, संख्या ३ — पूर्ण संख्या ३९ | जनवरी १९३९

दुःखी क्यों ?

भूतकाल के दुःखों को बारम्बार स्मरण करके अथवा भविष्यकाल की चिन्ता करके, व्यर्थ में दुःखी होकर तुम अपने आपको क्यों क्षय कर रहे हो ? क्या तुम निर्धन हो इसलिए खेद करते हो ! खेद करने से क्या तुम्हारी दरिद्रता दूर हो जायगी ? तुम अविद्वान हो इसलिए रंज कर रहे हो ? क्या क्लेश करने से तुम विद्वान् बन जाओगे ? तुम रोगी हो इसलिए उद्विग्न हो रहे हो ? क्या उद्विग्न होने से तुम आरोग्य हो जाओगे ? कल तुम से कोई पाप या बुरा कर्म हो गया है; क्या शोकातुर होकर बार बार पश्चात्ताप करने से तुम्हारा पाप दूर हो जायगा ? कल तुम्हारे प्रियजन का वियोग हो गया है; क्या रात-दिन शोक में डूबे रहने से तुम्हारा शोक शमन हो जायगा ? इन सब निर्हेतुक क्रियाओं से मस्तिष्क में क्षोभ और प्रकम्प होता है, और मस्तिष्क का बल व्यर्थ क्षीण होता है। स्मरण शक्ति मन्द हो जाती है और नाना प्रकार के मानसिक और शारीरिक रोग उत्पन्न होते हैं। मन निर्बल, निश्चय-रहित, अदृढ़ हो जाता है। फिर वह उपयोगी वस्तु को ग्रहण नहीं कर सकता और न उस लक्ष्य को ही ग्रहण-धारण कर सकता है। इस प्रकार मन की विह्वलता तथा क्षुब्ध-दशा से निश्चय-बल की न्यूनता होती है।

(कल्पवृक्ष)

सन्त चरित्र क्या है ?

[ले०—श्री रामावतार विद्याभास्कर रतनगढ़, बिजनौर 'यू० पी०']

सन्तों की मनोदशा ही सन्तों का चरित्र है । जीवन की जिन घटनाओं से निर्विकार मानसिक स्थिति प्रकट होती हो केवल उन्हीं घटनाओं को सन्त चरित्र में घुमने का अधिकार है; साधारण घटनाओं को नहीं।

सन्तों का चरित्र किसी जादूगर की प्रदर्शिनी के रूप में समाज के सम्मुख कदापि नहीं रखा जाना चाहिए । क्योंकि सन्त अपने जीवन को इस प्रकार का कभी नहीं बनाता । सन्त के जीवन में तमाशा देखने वालों की रुचि के अनुकूल अस्वभाविक तथा अलौकिक घटनाओं को कभी स्थान नहीं मिल सकता । कोई भी सन्त अपने शरीर को समाज के सामने अपनी ओर से नग्न आदि अस्वाभाविक स्थितियों में उपस्थित करना स्वीकार नहीं कर सकता । सन्त सदा अपने भोजन-वस्त्र वा स्थान तथा शरीर की दूसरी आवश्यकताओं के विषय में मनुष्योचित बर्ताव करता है।

इन सब दृष्टियों से किसी भी सन्त का जड़, उन्मत्त या पिशाच के समान होना असम्भव कल्पना है । इस प्रकार की घटनाओं को सन्त-जीवनी के रूप में समाज के सामने लाने वाले बड़ी भारी भूल करते हैं । ये घटनाएँ सन्त जीवनी के रूप में कदापि नहीं लाई जानी चाहिएँ । उन्मत्त की उन्मत्तता, जड़ की जड़ता और पिशाचों की पिशाचता समाज से सदा बहिष्कृत रहनी चाहिए । समाज में सन्तों के नाम पर पागलपन का प्रचार करना अज्ञान की बात है। सन्त के जीवन को इस प्रकार की घटनाओं से कदापि नहीं लपेटा जाना चाहिए । सन्तों की जीवनी का निर्माण सन्त की आँखों और सन्त की ही लेखनी से होना चाहिए।

सन्त की जीवनी के निर्माण में जीवनी लेखक को अपने पास इस प्रकार की स्वतन्त्रता रखनी चाहिए कि जिससे जीवनी लेखन के काम से सन्तों के जीवन के आदर्श को चोट न लग जाय। उदाहरण के रूप में सन्तों की जीवनी में उनके पाँच भौतिक देह के जीवनकाल की साधारण घटनाओं को कदापि महत्व नहीं दिया जाना चाहिए। जीवनी लेखक को सन्त के जीवन की निर्विकार मानसिक स्थिति को प्रकट करने के लिए सन्त-जीवन में केवल उन्हीं घटनाओं का उल्लेख होना चाहिए जिन घटनाओं के आश्रय से सन्त जीवन बनना सम्भव हो । सन्त जीवन का निर्माण करने वाली घटनाओं को निर्मल रूप में समाज के सम्मुख रखना ही संत का जीवनी लेखन कहा जा सकता है।

यदि कोई जीवनी लेखक अपने पास इस अभ्रांत दृष्टि को रखकर जीवनी लेखन का कार्य करेगा तो उसे जीवनी लेखन में से संत का अस्तित्व काल, उसकी बालक्रीड़ा तथा उसके जीवन की विवाह-संतान आदि महत्व-हीन घटनाओं से अपने पाठकों को परिचित कराना छोड़ देना पड़ेगा। ऐतिहासिकता आदि नामों वाले जितने वृथा विवाद हैं उन किसी में भी न पड़ कर संत जीवनो को इस प्रकार लिखना चाहिए कि वह संत जीवन मनुष्य समाज का सर्वतोभाव से सर्वकालिक तथा सार्वजनिक या आध्यात्मिक भोजन बन सके।

सँसार ही सन्त का जन्म स्थान है। प्रकृति ही सन्त की माता है। परमात्मा ही सन्त का पिता है। सद्विचार सम्पूर्ण विश्व सन्त का कुटुम्ब है। विश्व समाज के सदस्य ऐसे सन्त को किसी चारदिवारी या दो चार मनुष्यों के भौतिक सम्बन्ध में

अनुरक्त दिखाकर सफलता से सन्त जीवन लिखना असम्भव है।

सन्त के जीवन की आद्योपान्त सब घटनाओं को जीवन में संग्रह करके उसे वृथा पुष्ट कर डालना समाज का बड़ा भारी अकल्याण करना है। सन्त ने अपने जीवन में सन्त होने से प्रथम जो भूल की हैं, वे भूलें यदि सन्त जीवनी में लिखी जायंगी तो सन्त जीवनी में आते ही उन सब भूलों को भी सन्तपने का प्रमाणपत्र मिल जायगा। फिर जीवनी-पाठक उन भूलों को भी सन्त चरित्र का आवश्यक अँग मानकर उनका अँधा अनुकरण करने की भूल करेंगे। सन्त की जीवनी के लेखकों को यह जान लेना चाहिए कि सन्त जीवन की सब घटनायें सन्तपना नहीं होतीं। उदाहरण के रूप में यदि कोई सन्त अपने बचपन में पिता की गृहव्यवस्था से असन्तुष्ट होकर अव्यवस्थत चित्त को लेकर घर से भाग जाता है तो उसका 'घर से भागना' सन्तपना नहीं है। ईश्वरीय प्रबँध का दिया हुआ वासस्थान ही 'घर' कहाता है। घर से भागना 'ईश्वरीय प्रबँध से विद्रोह करना है।' ऐसा विद्रोह सन्तपना कैसे हो सकता है? परन्तु बहुत से विचारहीन जीवनी-लेखक इस प्रकार की लड़कपन की घटनाओं को सुन्दर शब्दों से चित्रित करके भागने जैसे वृथा उद्योगों को भी सन्तपने का रूप दे देते हैं। वे सँत को महत्व देने के विचार के पीछे इतने हतबुद्ध हो जाते हैं कि संत के पिता आदि अभिभावकों पर मूर्खता क्रूरता आदि तक का दूषण लगा देते हैं; घर से भागने को महत्व देते हैं तथा जीवनी पाठक विचारहीन बालकों को घर से भागने में प्रोत्साहन देने वाले बन जाते हैं। ऐसी जीवनयों को पढ़ने वाले बालक पाठक भागने को भी सन्तपन का चिन्ह मानने के लिए उत्तेजित हो जाते हैं।

सन्त के पिता के सम्मान पर चोट करना जीवनी लिखने वाले का अधिकार नहीं है। यह बड़ी विचारशीलता की बात है कि बहुधा जीवनी लेखक सन्त के अभिभावकों पर मनुष्यत्वहीनता या बुद्धिहीनता के भीषण आरोप लगाते पाये जाते हैं। वस्तुतः सन्त बनने से पहले जीवन की घटनाओं में महत्व नहीं होता। वे साधारण प्राणियों की सी साधारण घटना होती हैं। वे निश्चयपूर्वक सन्तपना नहीं होती हैं। जैसे कि भागना सँतपना नहीं है।

क्योंकि सन्त के आचरणों का अनुकरण करके कोई भी सन्त नहीं बन सकता, इस कारण संत के आचरणों की सूची को जीवनी में महत्व नहीं देना चाहिए। कहा जा चुका है कि संतों की मनोदशा ही सन्तों का चरित्र है। इसलिए सन्तों की मानसिक स्थिति को अपने सामने रखकर, मनुष्यतानायक स्वाभाविक अधिकार को लेकर आये हुए बालकों की समुचित मानसिक सेवा के भाव से ही जीवनी लेखन का काम करना चाहिए। जीवनी लेखक को यह ध्यान रखना चाहिए कि उसकी लिखी हुई जीवनी से समाज के उत्तराधिकारी बालसन्तान के मन पर अनुचित आक्रमण न हो जाय।

यदि सन्त जीवनी का लेखक उपन्यास लेखक की सी वृथा पुष्ट साहित्य लिखने वाली मनोवृत्ति को लेकर ग्रन्थ का आकार बढ़ाना चाहेगा तो वह अपने को जीवनी लेखन के अयोग्य सिद्ध कर देगा।

कुछ लोग अपने आपको सन्त मानकर अपनी जीवनी स्वयं लिखते हैं। ऐसे लोग बहुधा यह भूल करते पाये जाते हैं कि उन्होंने अपने जीवन में जो जो किया है वे उस सबको जीवनी में रोक देना चाहते हैं। वे समझते हैं कि जो कुछ करनी सब खुल्लम खुल्ला कह देनी 'सचाई' है। परन्तु जो करना वह कह देना या लिख देना सचाई नहीं है। किन्तु न करने योग्य काम कभी न करना ही सचाई है। अकर्तव्य करके उसे मुँह पर लाना और इसे सत्यवादिता समझना यह समझ की भूल है। यह मिथ्या व्यवहार है। यह दूसरों की श्रवण शक्ति का अपमान करना है। संसार में पतित तथा धोखेबाज़ बनने के साधनों की कमी नहीं है। अपना पातित्य या

धोखा जीवनी में लिखने के लिए आत्मकथा या जीवनी लिखना अनावश्यक है। इससे जीवनी-पाठक बालसन्तान की पवित्रता पर आक्रमण होता है।

इस सम्बन्ध में जितना अधिक विचारा जाता है। उससे इस सिद्धांत को पुष्टि मिलती है कि सन्त जीवन में सन्तों का भौतिक परिचय या चेष्टायें अवश्य उपेक्षित रहनी चाहियें। सच्चे सन्त देश काल की तुच्छ सीमा में सीमित होने वाले प्राणी नहीं होते।

यद्यपि सन्त लोग संसार में सदा से हो रहे हैं और सदा होते रहेंगे। परन्तु जो लोग सन्तों के विचारों को लिपिबद्ध करते है वे यदि सन्त न हो तो सन्तों के विचार अपने यथार्थ रूप में समाज तक नहीं पहुँचते। वे विकृत रूप में समाज को मिलते हैं। सद् ग्रन्थों के दुर्लभ होने का यही कारण होता है।

सन्त के नाम पर विख्यात सब बातों को ज्यों का त्यों पचा लेना किसी भी विचारशील के लिए असम्भव है। संत ने संत होने से प्रथम जो बातें कहीं हैं वे कदापि मान्य नहीं हैं। सन्त ने कौनसी बात सन्त होने से प्रथम कही है और कौनसी बात सन्त होने के पश्चात कही है इस बात को वही पहचान सकता है जिसके पास स्वयं सन्त का मन हो।

सन्तों का ईश्वर सन्तों को दर्शन देने या न देने में स्वतंत्र नहीं होता। सन्त लोग ऐसे यथेच्छाचारी ईश्वर से अपना सम्बन्ध नहीं रखते जोकि उन्हें जीवनभर दर्शन देने की आशा में रुलाता हो और कभी दर्शन देता हो तथा कभी न देता हो। सन्त अपने आप अपनी शक्ति से ईश्वर को आठों पहर अपने ज्ञान के सामने खड़ा रखने में समर्थ होता है ईश्वर ही सन्त के वश में रहता है। सन्त ईश्वर के वश में नहीं रहता।

सन्त की अद्वैतनिष्ठा ही सर्वशक्तिमती बनकर ईश्वर से सन्तवांछा पूरी करवाने की लीला खेलती रहती है। सन्तों के कतिपय से ही ईश्वर लीला होती है ईश्वर केवल सन्तों के लिए है। असन्तों के लिए ईश्वर नाम की कोई वस्तु नहीं है।

परलोक की अफ़ीम—एक बार ग़रीबों को परलोक और स्वर्ग-नर्क का विश्वास करा दो तो फिर तुम उनके साथ जैसा चाहो बरताव करो, उन्हें लूट लो, उन पर तरह-तरह की सख्तियां व अत्याचार करो—यहां तक कि उनकी खाल तक खींच लो, परलोक की आशा में वे सब कुछ सहन कर लेंगे।

मनुष्य की करतूत—शेर और चीते जब किसी जानवर पर हमला करते हैं तो उसका खून बहाने और जान से मार डालने की नीयत से नहीं, बल्कि उसके मांस से अपनी भूख और खून से प्यास बुझाने की खातिर। लेकिन मनुष्य कितना निकृष्ट है कि मांस और खून की ज़रूरत के बिना ही अपने भाइयों को मारकर ढेर के ढेर लगा देता है।

महापाप—सोचना और दिमाग़ से काम लेना ही सबसे बड़ा खतरा और महापाप है। अगर मेरी फौज के सिपाही सोचने और समझने के योग्य हो जावें तो इनमें से एक भी छावनी में न रहे।

—फ्रेडरिक महान

सज़ा

लेखक
आचार्य श्री हरभाई त्रिवेदी,
दक्षिणामूर्ति, भावनगर

शालाओं में प्रचलित इनाम, प्रतिस्पर्धा, परीक्षा आदि बुराइयों में से सजा भी एक बुराई है। साधारणतया हम सब मानते हैं कि सजा नहीं देनी चाहिए। हम यह भी मानते हैं कि इनाम देने से विद्यार्थी को हानि पहुँचती है और हम यह भी स्वीकार करते हैं कि प्रतिस्पर्धा (Competition) अनिष्टकर है। इस प्रकार इन हानिकारक साधनों के विषय में हमारे अन्दर कोई मतभेद नहीं है। लेकिन फिर भी हम स्थूल या सूक्ष्म रूप से सजा का प्रयोग करते हैं। इसका कारण है हमारा अज्ञान। हम यह जानते ही नहीं कि अगर सजा न दी जाय तो फिर और क्या उपाय करना चाहिए कि जिससे सजा देने की ज़रूरत ही न पड़े।

विद्यार्थी जब कोई शरारत या नैतिक अपराध करता है, तब हम उसे ऐसा करने से रोकने के लिए सजा देते हैं। बार बार समझाने पर भी जब विद्यार्थी सबक याद करके नहीं लाता, तब हम उसे सजा देते हैं। पर मैं सबसे यह पूछना चाहता हूँ कि क्या इस प्रकार सजा देकर हम अपना मनचाहा काम करवा सकते हैं? क्या सजा देकर बिना मूँछ वाले विद्यार्थी के मूँछ उगा सकते हैं? क्या सजा देकर एक बौने को लम्बा बना सकते हैं? हम भलीभांति जानते हैं कि हम ऐसा नहीं कर सकते? लेकिन फिर भी हम ऐसे ही हास्यास्पद कारणों पर सजा देते हैं। कितनी ही बार तो सजा न देने का दृढ़ निश्चय कर लेने के बाद भी हम सजा दे बैठते हैं। इसका कारण हमारी वही अज्ञानता है जिसका जिक्र ऊपर किया जा चुका है।

सजा देने के बहुत से कारण हैं। इसका एक कारण तो हमारी भ्रमात्मक धारणा है कि हमारे मत के विरुद्ध किसी को कुछ नहीं करना चाहिए। इसलिए जब हम किसी को अपनी धारणा के विरुद्ध काम करता हुआ देखते हैं तो अधीर होकर सजा देते हैं। सजा का दूसरा कारण है हमारा अज्ञान। हम यह जानते ही नहीं कि विद्यार्थी अच्छा या बुरा जो कुछ करता है, उसका कारण क्या है? अतः जब विद्यार्थी कोई ऐसा काम करता है जो हमें अच्छा नहीं लगता, तब हम सजा देने के लिए प्रेरित हो जाते हैं। हम इस बात को जानते ही नहीं कि किन मानसिक विचारों के वशीभूत होकर विद्यार्थी वह काम करता है। सजा का तीसरा कारण है मनोवैज्ञानिक। वह कारण यह है कि हम अपने ही अपराधों के लिए विद्यार्थी को सजा देते हैं। यह बात आपको अजीब सी लगेगी। लेकिन यह है ठीक। हमारा अपराधी मन ही हमें सजा की ओर घसीटता है। यह कैसे? हम चोरी या इसी तरह का कोई नैतिक अपराध करने वाले को ओर उदारता दिखा ही नहीं सकते। हम अपने अन्दर व्याप्त चोरी के उस तत्व को, जिसे हम स्पष्ट तौर पर नहीं जानते और न किसी और प्रकार से सजा दे सकते हैं, किसी दूसरे की चोरी या नैतिक पतन का प्रसंग आने पर सजा देते हैं। अर्थात् अपनेको सजा न देकर हम दूसरों को सजा देते हैं। परम्परा भी सजा का एक कारण है। हमारी पुरानी कहावतें और युक्तियां—जैसे 'डंडा सभी को सीधा करता है' 'डंडा

मारने से विद्या खूब आती है'—भी हमें मारने के लिए प्रेरित करती हैं। पर-पीड़न (Sadism) वृत्ति भी सजा का एक कारण है। यह वृत्ति हम सब में मौजूद है। इससे भी हमें मारने की प्रेरणा मिलती है। सज़ा पर-पीड़न वृत्ति का स्थूल आविष्कार है।

अब इन सब कारणों पर जरा विस्तार से दृष्टि डालते हैं। एक विद्यार्थी जब बिना कारण दूसरे विद्यार्थी को मारता है, या कक्षा में ऊँघता है, या पूछे हुए सवालों का उल्टा सीधा जवाब देता है, तब हम में से बहुत से तो एक या कई बार उसको ऐसा न करने के लिए समझाते हैं। लेकिन जब उसके व्यवहार में कोई परिवर्तन दिखाई नहीं देता तब हम परेशान होकर किसी न किसी प्रकार की सजा देते हैं। अपने विद्यार्थी जीवन का एक उदाहरण देकर इसे स्पष्ट करता हूं। अँग्रेजी की चौथी कक्षा में एक दिन शनिवार को सुबह के वक्त हमारी संस्कृत की कक्षा में एक विद्यार्थी बेंच पर बैठा हुआ ऊँघ रहा था। यह देखते ही शिक्षक का मिज़ाज बिगड़ गया, वह एकदम परेशान हो गया। उसने विद्यार्थी के गाल पर एक चपत जड़ दिया। चपत लगते ही विद्यार्थी अचानक खड्ग: के बजाय 'पादेन खड्गः' बोलता हुआ झट से जागा। इस पर सारी की सारी कक्षा हँस पड़ी, और शिक्षक ने तड़ाक से एक और चपत जड़ दिया। मुझे उस विद्यार्थी की बाबत इतना पता था कि वह रात को नाटक देखने गया था। मैंने शिक्षक से कहा—'मास्टर साहेब, यह रात को नाटक देखने गया था, इसलिये नींद का झोंका आ गया होगा।' बस फिर क्या था। शिक्षक साहेब कहने लगे—'बेटा जी, नाटक देखने जाता है और कक्षा में ऊँघता है!" इस पर शिक्षक ने पहले तमाचा लगाकर स्थूल रूप से और फिर ताना मारकर सूक्ष्म रूप से सज़ा दी।

एक विद्यार्थी कक्षा में पढ़ाई के समय ध्यान नहीं देता और खेलता है। कक्षा में जो कुछ पढ़ाया जा रहा है उसे वह एक बार पढ़ चुका है और समझता है। इसलिए उसे उस पढ़ाई में कोई रस नहीं आता और वह खेलता है। लेकिन खेलने का कारण मालूम किये बिना ही हम उसे इसलिये पीट देते हैं कि वह खेल रहा है। इसी प्रकार अगर कोई विद्यार्थी कक्षा में बातें करता है या अध्यापक की किसी गलती पर हँस पड़ता है तो उसे योंही सज़ा दे दी जाती है। ऐसे मौकों पर हमारा अज्ञान ही हमें मारने की प्रेरणा करता है। कितनी ही बार मिज़ाज बिगड़ जाने के कारण हम विद्यार्थी को पीट देते हैं। जब हमसे कोई बड़ा व्यक्ति हमारा अपमान करता है, तब हमारा मिज़ाज नहीं बिगड़ता। हमारा मिज़ाज उसी वक्त बिगड़ता है जब कोई ऐसा व्यक्ति हमारे अहंकार को चकनाचूर करता है जिसे हम अपने से छोटा समझते हैं और जिस पर हम अपनी धाक जमाना चाहते हैं। कक्षा में से विद्यार्थी का बिना आज्ञा के बाहर चला जाना, कही हुई बात पर अमल न करना, सामने बोलना आदि ऐसी बात हैं जिनसे कि शिक्षक के अहं पर आघात पहुँचता है, जिसके फलस्वरूप वह सज़ा देता है। कई बार ऐसा भी होता है कि अहँ को आघात तो पहुँचता है एक जगह, लेकिन उसका बदला लिया जाता है कहीं दूसरी जगह। घर में स्त्री या लड़के से सताया हुआ शिक्षक कितनी ही बार तुच्छ कारणों पर विद्यार्थी पर बरस पड़ता है और उसको सज़ा दे देता है। मुझे लगता है कि ऐसे प्रसँगों पर मारने से पहले अगर हम थोड़ी देर ठहर कर, शांतिपूर्वक, अपराध के असली कारणों की खोजबीन कर लिया करें तो सज़ा देने से रुक सकते हैं, और अन्त में सजा देना कम तो जरूर कर सकते हैं।

सजा का एक बड़ा कारण हमारा अपराधी मन है। यह बात हमारे गले उतरना कठिन है। नैतिक गलती होने पर तो वे लोग भी पीटने लगते हैं जो सजा में विश्वास नहीं रखते। एक लड़का

झूठ बोलता है। झूठ बोलना हम सब नैतिक अपराध मानते हैं। इसलिये अपनी प्रामाणिक धारणा के कारण हम उस लड़के को मारने के लिये विवश हो जाते हैं। असल बात तो यह है कि हम अपने को तो मारने की शक्ति रखते नहीं; इसलिए बेचारे लड़के को मारते हैं। मानसशास्त्रियों की नयी खोज ने इस बात को प्रयोगों द्वारा सिद्ध कर दिया है कि हमें कोई अ. ब, क, नहीं मारता, बल्कि अ, ब, क. में रहने वाला झूठा मनुष्य मारता है। इसलिये नैतिक पतन के प्रसंगों के उपस्थित होने पर हमें अपने दिल से पूछना चाहिए कि हमने भी कभी कोई ऐसा अपराध किया है? इसका उत्तर हमें यही मिलेगा कि 'हाँ, हमने भी ऐसे कितने ही अपराध किये हैं।' जब यही बात है तब हमें दूसरों को ऐसे अपराधों के लिए सज़ा देना कहाँ तक उचित है। जिन मनुष्यों ने ऐसे अपराध नहीं किये हैं वे उदारतापूर्वक ऐसे अपराधों को माफ़ कर देते हैं। इस बात को अच्छी तरह समझने के लिए अपने एक वकील मित्र द्वारा बतलाई हुई घटनाओं को आपके सामने रखता हूँ।

एक बार एक पागल ने २५-५० आदमियों की हाजरी में दिन दहाड़े एक हथियार से दो तीन आदमियों का खून कर दिया। हत्यारा पकड़ा गया और अदालत में मुकदमा चला। सब का यह ख्याल था कि अदालत उसको फांसी की सजा देगी। वकील साहेब अपराधी की वकालत के लिए पेश हुए। उन्होंने बहुत सी दलीलों में से एक दलील यह भी दी कि दिन दहाड़े २५-५० आदमियों के होते हुए एक आदमी किसी का खून कैसे कर सकता है? यह दलील ऐसी नहीं थी जो किसी के गले उतर सके। लेकिन न्यायाधीश एक सचमुच भला और निरपराध मन वाला व्यक्ति था। वह इस दलील से बहुत ही प्रभावित हुआ। उसने यह बात मानली कि अपराधी ने खून नहीं किया और उसे निरपराधी ठहराकर छोड़ दिया। निरपराधी मनका यह एक उत्तम उदाहरण है। उस न्यायाधीश का मन एक घटित अपराध को भी अपराध नहीं मान सका, वह अपराध की कल्पना ही नहीं कर सका।

सज़ा की अनेकों परम्पराएँ हैं। साधारणतया सज़ा का अर्थ है स्थूल शरीर को दुःख पहुँचाने के लिए किसी चीज़ से मारना। यह तो शारीरिक और स्थूल सज़ा की बात हुई। इसके अलावा अनेकों सूक्ष्म सजाएँ भी हैं। जैसे कड़वी वाणी या ताना मारना आदि। इन सज़ाओं का अभिप्राय है सबके सामने शरमिंदा करके अपराधी को सुधारने का प्रयत्न करना। यह बात कभी नहीं भूलनी चाहिए कि सूक्ष्म सज़ा स्थूल सज़ा को निस्बत अधिक भयङ्कर है और इसका परिणाम बहुत बुरा होता है!

अब सवाल तो यह है कि इन सज़ाओं को हटाया कैसे जाय? इनको हटाने का एक ही 'राज-मार्ग' है और वह यह कि जब सजा देने या दिलाने का मन हो तब अपराध के कारणों पर गहराई से विचार कर लिया जाए। मुझे लगता है कि ठीक २ और प्रामाणिक प्रयत्न करने से हम सज़ा को छोड़ सकते हैं।

सज़ा एक हानिकारक प्रथा है, लेकिन फिर भी सज़ा देने वाले अभी बहुत हैं। वे कहते हैं कि सज़ा के पीछे वैरभाव नहीं बल्कि सामने वाले व्यक्ति को सुधारने का प्रामाणिक प्रयत्न है। यह बात बिल्कुल गलत है। सख्ती से अपराध कम नहीं होते बल्कि बढ़ते हैं। पुलिस, अदालत, जेल बढ़ते जारहे हैं। लेकिन अपराधों में कमी नहीं होती। सज़ा को हम अपराधों के कम करने का सबल साधन समझते हैं, उससे तो उलटा अपराध दुगने-तिगने और इस से भी ज्यादा बढ़ते जाते हैं। हाँ, यह सही है कि सज़ा से तात्कालिक शांति व सुव्यवस्था अवश्य स्थापित हो जाती है। शरारती लड़के को सज़ा देकर कक्षा में अनुशासन की धाक भी जम जाती है। लेकिन बाहर जाकर वही लड़का कितनी शरारत करता है, इसकी चिंता हम नहीं करते। यह मतलब

है कि सजा से ऊपरी शांति व सुव्यवस्था स्थापित की जा सकती है, लेकिन अपराधों को नाबूद नहीं किया जा सकता। मजा यह है कि इतना होने पर भी सजा का बोल बाला है।

जो हो, शिक्षकों को तो इस समस्या पर विचार करना ही चाहिए। अपराधों के कारणों की खोज करनी चाहिए। लेकिन अफसोस तो यह है कि हमें अपने अज्ञान पर पर्दा डालने और अपनी कमजोरियों को न मानने की आदत पड़ गई है। अगर हम विचारपूर्वक अपराधों के कारणों पर विचार करें तो हमें यह जानकर आश्चर्य होगा कि जिन अपराधों के लिए हम सजा देते हैं उनमें से कितने ही तो हलकी धमकी के पात्र नहीं होते। कितने ही अपराध ऐसे होते हैं कि सचमुच अपराध होने पर भी वे अपराध नहीं होते। मानलो कि एक लड़का दूसरे लड़के की पैंसिल चुराता है। कारण खोजने पर मालूम होता है कि वह चोरी इसलिए करता है कि उसके पास पैंसिल नहीं है। कोई लड़का चुराकर किसी की चीज खा जाता है। कारण मालूम करने पर पता चलता है कि भय के मारे या गरीबी के कारण उसे भर पेट भोजन नहीं मिला, इसलिए उसने दूसरे का हिस्सा चुराकर खालिया। ऐसी हालतों में बालक का क्या कसूर है, उसे क्यों सजा दी जाए?

शाला में सज़ा के कारण शिक्षक और शिष्यों में वैर भाव पैदा हो जाता है जिसके फलस्वरूप शिष्यों द्वारा शिक्षकों पर किये गये छोटे मोटे आक्रमणों की चर्चा कभी २ सुनने में आया करती है। इस प्रकार शाला में इस वैर-भाव वृत्ति का पैदा होना और उग्र रूप धारण करना अति भयंकर है। बाल्यावस्था में मिली हुई सज़ा करने की यह वृत्ति बड़े हो जाने पर अधिक भयङ्कर रूप धारण कर लेती है जिसके फलस्वरूप यह जहर पीढ़ी दर पीढ़ी फैलना जाता है।

अतः अब हमें निश्चय कर लेना चाहिए कि हम हरगिज किसी को नहीं मारेंगे। अपराध हो जाने पर उसका कारण शोधने का प्रयत्न करेंगे। ऐसा करने से सज़ा देने की मनोवृत्ति खुद ब-खुद कम हो जायगी और हम उन कारणों को दूर करेंगे जो बालक को अपराध की ओर ले जाते हैं।

—*:*—

सहशिक्षा

[ले०—श्री विश्वप्रेमी राजा महेन्द्रप्रताप, टोकियो (जापान)]

लड़के-लड़कियों के एक साथ पढ़ने के विषय पर मेरे विचार तो इसी से स्पष्ट हैं कि १९०९-१० में जब मैंने प्रेम महाविद्यालय, वृन्दाबन का प्रबन्ध कुछ अपने विचारों पर चलाया तो उस समय ही लड़के-लड़कियों को साथ पढ़ाया! इससे भी पहिले सन् १९०८ में मैं इस विषय पर बड़ा ज़ोर देता, बहस करता तथा शास्त्रार्थ किया करता था! पाठकगण! याद रहे कि यह पूरे तीस वर्ष पहली बात है। उस समय हिन्दुस्तान में आज कल की सी जागृति नहीं हुई थी।

मेरा कहना था और अब भी है कि मनुष्य जाति पुरुष-स्त्री के मिलने से ही बनी हुई है। बच्चा जैसे पैदा होता है, माँ की गोद में रहता है। फिर भाई-बहन सँग खेलते हैं। फिर पति-पत्नी साथ रहते हैं इस प्रकार नर-

मादा, लड़के-लड़कियाँ, पुरुष-स्त्री का स्वाभाविक साथ है। तो फिर विद्यालयों में ही उनको क्यों दूर किया जाय ? मैं बुद्ध-भगवान की तरह यह मानता हूं कि हमारे ऐसे स्वभाव हैं कि कुछ पुरुष और स्त्री अलग अलग रहकर अपना और जगत् का अधिक कल्याण कर सकते हैं परन्तु इस विषय में भी स्वयं उन पुरुष-स्त्रियों को ही निर्णय करना होगा। कोई और व्यक्ति उनके लिये कुछ निश्चय नहीं कर सकता।

वास्तव में, होना यह चाहिए कि लड़के-लड़कियाँ साथ साथ पढ़ें, और उनको प्रेम वा मैथुन और बच्चा उत्पन्न होने का पूरा पूरा ज्ञान, शिक्षा के साथ कराना चाहिए। उनको वह पागल करने वाली कविता नहीं पढ़ानी चाहिए जो किसी पागल प्रेमी के उद्गार हों और न ही सबको बैरागी बनाने की चेष्टा करनी चाहिए। उनको स्पष्ट बताना चाहिए कि उनके स्वभाव एक से नहीं ! हो सकता है कि किसी लड़के का स्वाभाविक प्रेम लड़की की ओर न खिचे। किन्तु सब ही लड़के-लड़कियों को आरोग्य हुए समाज के लिए उपयोगी बनाना है। इसी में प्रत्येक व्यक्ति का भला है और इसी में समस्त सन्सार का।

मैं तो यहाँ तक कहने को तैयार हूँ कि हमारी समस्त आपत्तियों और दुर्दशा का एक मात्र कारण त्रुटिपूर्ण शिक्षा है। यदि मनुष्य को शिक्षा ठीक दी जाय तो उसे कोई दुःख ही न रहे! शिक्षा सम्बन्धी व अन्य त्रुटियों में लड़के-लड़कियों का साथ न पढ़ना एक भारी त्रुटि है। युवा अवस्था में साथ न रहने से उनके भाव भ्रष्ट हो जाते हैं। इन भ्रष्ट भावों का कुप्रभाव कुटुम्बों पर पड़ता है। भाव-भ्रष्ट कुटुम्ब जातियों, राज्यों और समस्त मनुष्य मात्र को भ्रष्ट करते हैं। संसार में यह जो आज का संग्राम है, यह इसी का परिणाम है।

मैं फिर उस बात को दोहरा देता हूं कि बनाइए ऐसे विद्यालय जहां लड़के-लड़कियां सब साथ पढ़ें। सब साथ जूते, कपड़े, मेज़ कुर्सी बनायें। सभी वस्तु बनायें जो उन्हें प्रतिदिन चाहिएँ और जो वह बना सकें। सब साथ खेती भी करें। दाल, जौ गेहूँ, चावल और तरह २ की तरकारी पैदा करें। फल भी लगायें मीठे-मीठे; और सब मिल खायें जो वह उत्पन्न करें। जब बड़े हो जायें तो इन्हीं विद्यालयों में बस जायें। आज के विद्यालय कल के साझे के ग्राम बन जायें। यदि इस प्रकार समस्त ससार की काया पलट दी गई तो बन जायेगा दुनिया में राम-राज—बुद्ध, मुस्लिम, ईसाई समाज—फिर होगा सब को सुख ही सुख !

——*:*——

विषम समस्या

* कहानी *

लेखक—स्व० मुन्शी प्रेमचन्द

मेरे दफ़्तर में चार चपरासी थे, उनमें से एक का नाम गरीब था। वह बहुत ही सीधा, बड़ा आज्ञाकारी अपने काम में चौकस रहने वाला, घुड़कियां खाकर चुप रह जाने वाला, 'यथा नाम तथा गुणः' मनुष्य था। मुझे इस दफ़्तर में आये साल भर हो गया था। मगर मैंने उसे एक दिन के लिए भी गैरहाजिर नहीं पाया था। मैं उसे ९ बजे दफ़्तर में अपनी फटी दरी पर बैठे हुए देखने का ऐसा आदी हो गया था मानो वह भी उसी इमारत का कोई अङ्ग है। इतना सरल था कि किसी की बात टालना ही न जानता था। एक चपरासी मुसलमान था। उससे सारा दफ़्तर डरता था, मालूम नहीं क्यों? मुझे तो इसका कारण सिवाय उसकी बड़ी बड़ी बातों के और कुछ नहीं मालूम होता था। उसके कथनानुसार उसके चचेरे भाई रामपुर रियासत में काजी थे, फूफा टोंक की रियासत में कोतवाल थे। उसे सर्वसम्मति ने काजी की उपाधि दे रखी थी, शेष दो महाशय जाति के ब्राह्मण थे। उनके आशीर्वाद का मूल्य उनके काम से कहीं अधिक था। ये तीनों कामचोर, गुस्ताख और आलसी थे। कोई छोटा सा भी काम करने को कहिए तो बिना नाक भौं सिकोड़े न करते थे। क्लर्कों को तो कुछ समझते ही न थे। केवल बड़े बाबू से कुछ दबते थे; यद्यपि कभी २ उनसे भी बेअदबी कर बैठते थे। मगर इन सब दुर्गुणों के होते हुए भी उनमें से किसी की मिट्टी इतनी खराब नहीं थी जितनी बेचारे गरीब की। तरक्की का अवसर आता तो ये तीनों नम्बर मार ले जाते। गरीब को कोई पूछता भी न था। और सब दस दस रुपये पाते थे, पर बेचारा गरीब सात ही पर पड़ा हुआ था। सुबह से शाम तक उसके पैर एक क्षण के लिए भी न टिकते थे। यहाँ तक कि तीनों चपरासी भी उस पर रोब जमाते और ऊपर की आमदनी में उसे कोई भाग न देते थे। तिस पर भी दफ़्तर के सब कर्मचारी, दफ़्तरी से लेकर बड़े बाबू तक, उससे चिढ़ा करते थे। उसकी कितनी ही बार शिकायतें हो चुकी थीं. कितनी ही बार जुर्माना हो चुका था और डाँट फटकार तो नित्य का व्यवहार था। इसका रहस्य मेरी समझ में कुछ नहीं आता था। मुझे उस पर दया आती थी और अपने बर्ताव से मैं यह दिखाना चाहता था कि उसका आदर मेरी दृष्टि में अन्य तीनों चपरासियों से कम नहीं है। यहाँ तक कि कई बार मैं उसके पीछे कर्मचारियों से लड़ भी चुका था।

२

एक दिन बड़े बाबू ने गरीब से अपनी मेज साफ करने को कहा। वह तुरन्त मेज साफ करने लगा। दैवयोग से झाड़न का झटका लगा तो दावात उलट गयी और रोशनाई मेज पर फैल गयी। बड़े बाबू यह देखते ही जामे से बाहर हो गये। उसके दोनों कान पकड़कर खूब ऐंठे और भारतवर्ष की सभी प्रचलित भाषाओं से दुर्वचन चुन चुनकर उसे सुनाने लगे। बेचारा गरीब आंखों में आंसू भरे चुपचाप मूर्तिवत् सुनता था; मानो उसने कोई हत्या कर डाली हो। मुझे बड़े बाबू का जरा सी बात पर इतना भयङ्कर रौद्ररूप धारण करना बुरा मालूम हुआ। यदि किसी दूसरे चपरासी ने इससे भी बड़ा अपराध किया होता तो भी उस पर इतना कठोर वज्र-प्रहार न

होता। मैंने अँगरेजी में कहा—"बाबू साहब, आप यह अन्याय कर रहे हैं; उसने जान बूझकर तो रोशनाई गिराई नहीं। इसका इतना कड़ा दण्ड देना अनौचित्य की पराकाष्ठा है।"

बाबू जी ने नम्रता से कहा—"आप इसे जानते नहीं, यह बड़ा दुष्ट है।"

"मैं तो इसकी कोई दुष्टता नहीं देखता।"

"आप अभी इसे जानते नहीं। यह बड़ा पाजी है। इसके घर दो हलों की खेती होती है, हजारों का लेन-देन करता है, कई भैंसे लगती हैं, इन्हीं बातों का इसे घमण्ड है।"

"घर की ऐसी दशा होती तो आपके यहाँ चपरासी-गिरी क्यों करता?"

बड़े बाबू ने गम्भीर भावसे कहा—"विश्वास मानिये, बड़ा पौढ़ा आदमी है, और बला का मक्खीचूस है।"

"यदि ऐसा ही हो तो कोई अपराध नहीं है।"

"अभी आप यहाँ कुछ दिन और रहिये तो आपको मालूम हो जायगा कि यह कितना कमीना आदमी है।"

एक दूसरे महाशय बोल उठे—"भाई साहब इसके घर मनों दूध होता है। मनों जुआर, चना, मटर होता है, लेकिन इसकी कभी इतनी हिम्मत नहीं होती कि थोड़ा सा दफ़्तर वालों को भी दे दे। यहाँ इन चीज़ों के लिए तरस तरसकर रह जाते हैं। तो फिर क्यों न जी जले और यह सब कुछ इसी नौकरी की बदौलत हुआ है नहीं तो पहले इसके घर में भूनी भाँग तक न थी।"

बड़े बाबू सकुचाकर बोले—"यह कोई बात नहीं; उसकी चीज है चाहे किसी को दे या न दे।"

मैं इसका मर्म कुछ २ समझ गया बोला—"यदि ऐसे तुच्छ हृदय का आदमी है तो वास्तव में पशु ही है। मैं यह न जानता था।"

अब बड़े बाबू भी खुले, सँकोच दूर हुआ। बोले—"इन बातों से उबार तो होता नहीं, केवल देने वाले की सहृदयता प्रकट होती है और आशा भी उससे की जाती है जो इस योग्य है। जिसमें कुछ सामर्थ्य ही नहीं उससे कोई आशा भी नहीं करता। नँगे से कोई क्या लेगा?"

रहस्य खुल गया। बड़े बाबू ने सरलभाव से सारी अवस्था दर्शा दी। समृद्धि के शत्रु सब होते हैं; छोटे ही नहीं, बड़े भी। हमारी सुसराल या ननिहाल दरिद्र हो तो हम उससे कुछ आशा नहीं रखते। कदाचित् हम उसे भूल जाते हैं; किन्तु वे समर्थवान होकर हमें न पूछें, हमारे यहाँ तीज और चौथ न भेजें, तो हमारे कलेजे पर सांप लोटने लगता है।

हम अपने किसी निर्धन मित्र के पास जायें तो उसके एक बीड़े पान ही पर सन्तुष्ट हो जाते हैं पर ऐसा कौन मनुष्य है जो किसी धनी मित्र के घर से बिना जलपान किये हुए लौटे और सदा के लिए उसका तिरस्कार न करने लगे। सुदामा कृष्ण के घर से यदि निराश लौटते तो कदाचित वे उनके शिशुपाल और जरासिन्धु से भी बड़े शत्रु होते।

२

कई दिन पीछे मैंने ग़रीब से पूछा—"क्यों जी तुम्हारे घर कुछ खेती बारी होती है?"

ग़रीब ने दीन भाव से कहा—"हां सरकार, होती है, आपके दो गुलाम हैं वही करते हैं।"

मैंने पूछा—"गायें भैंसे भी लगती हैं?"

"हां हजूर दो भैंसें लगती हैं। गायें अभी गाभिन हैं। आप लोगों की दया से पेट की रोटियां चली जाती हैं।"

"दफ़्तर के बाबू लोगों की भी कभी कुछ खातिर करते हो?"

ग़रीब ने दीनतापूर्ण आश्चर्य से कहा—"हुजूर मैं सरकार लोगों की क्या खातिर कर सकता हूँ। खेती में जव, मकाा, जुवार घासपात के सिवाय और क्या होता है! आप लोग राजा हैं, यह मोटी-झोटी चीजें किस मुँह से आपको भेंट करूँ। जी डरता है कि कहीं कोई डाँट न बैठे, कि टके आदमी की इतनी मजाल! इसी मारे बाबू जी कभी हियाव नहीं पड़ता। नहीं तो दूध दही की कौन बिसात थी। मुँह के लायक बीड़ा तो होना चाहिए।"

"भला एक दिन कुछ लाके दो तो; देखो लोग

कहते हैं शहर में ये चीजें कहाँ मुयस्सर होती हैं ! इन लोगों का जी भी तो कभी-कभी मोटी-झोटी चीजों पर चला करता है ।"

"जो सरकार कोई कुछ कहे तो ? कहीं साहब से शिकायत कर दे तो मैं कहीं का न रहूँगा।"

"इसका मेरा जिम्मा है, तुम्हें कोई कुछ न कहेगा, कोई कुछ कहेगा भी, मैं उसे समझा दूँगा।"

"तो हुजूर आजकल तो मटर की फसल है और कोल्हू भी खड़े हो गये हैं। ईख के सिवाय तो और कुछ भी नहीं है ।"

'बस तो यही चीजें लाओ।"

"कुछ उलटी-सीधी पड़ी तो आप ही को सम्भालना पड़ेगा।"

"हां जी, कह तो दिया मैं देख लूँगा।"

दूसरे दिन गरीब आया तो उसके साथ तीन हृष्ट-पुष्ट युवक भी थे। दो के सिरों पर दो टोकरियाँ थीं। उनमें मटर की फलियाँ भरी हुई थीं। एक के सर पर मटका था जिसमें ऊख का रस था। तीनों युवक ऊख का एक-एक गट्ठा काख में दबाये हुए थे। गरीब आकर चुपके से बरामदे के सामने पेड़ के नीचे खड़ा हो गया। दफ़्तर में उसे आने का साहस नहीं होता था मानों कोई अपराधी है। वृक्ष के नीचे खड़ा ही था कि इतने में दफ़्तर के चपरासियों और अन्य कर्मचारियों ने उसे घेर लिया। कोई ऊख लेकर चूसने लगा, कई आदमी टोकरों पर टूट पड़े। इतने में बड़े बाबू भी दफ़्तर में आ पहुँचे। यह कौतुक देखकर उच्च स्वर से बोले, 'यह क्या भीड़ लगा रखी है! चलो अपना अपना काम देखो।" मैंने जाकर उनके कान में कहा—"गरीब अपने घर से यह सौगात लाया है। कुछ आप लीजिए, कुछ हम लोगों को बाँट दीजिए।" बड़े बाबू ने कृत्रिम क्रोध धारण करके कहा—क्यों गरीब, तुम यह चीजें यहाँ क्यों लाये ? अभी लौटा ले जाओ नहीं तो मैं अभी साहब से कह दूँगा। क्या हम लोगों को कोई मरभूका समझ लिया है।"

गरीब का रँग उड़ गया। थर थर काँपने लगा। मुँह से एक शब्द भी नहीं निकला। मेरी ओर अपराधी नेत्रों से ताकने लगा।

मैंने उसकी ओर से क्षमा प्रार्थना की। बहुत कहने सुनने पर बाबू साहब राजी हुए। सब चीजों में से आधी अपने घर भिजवायी. आधी में अन्य लोगों के हिस्से लगाये गये। इस प्रकार यह अभिनय समाप्त हुआ।

४

अब दफ़्तर में गरीब का मान होने लगा। उसे नित्य घुड़कियां न मिलतीं। दिन भर दौड़ना न पड़ता। कर्मचारियों के व्यँग और अपने सहवर्गियों के कटुवाक्य न सुनने पड़ते। चपरासी लोग स्वयँ उसका काम कर देते। उसके नाम में थोड़ा सा परिवर्तन हुआ। यह गरीब से गरीबदास बना। स्वभाव में भी कुछ तबदीली पैदा हुई। दीनता की जगह आत्म-गौरव का उद्भव हुआ। तत्परता की जगह आलस्यने ली। वह अब कभी कभी देर में दफ़्तर आता। कभी कभी बीमारी का बहाना करके घर बैठ रहता। उसके सभी अपराध अब क्षम्य थे। उसे अपनी प्रतिष्ठा का गुर हाथ लग गया। वह अब दसवें पांचवें दिन दूध दही आदि लाकर बड़े बाबू को भेंट किया करता। वह देवता को सन्तुष्ट करना सीख गया। सरलता के बदले अब उसमें काइयाँपन आ गया। एक रोज बड़े बाबू ने उसे सरकारी फार्मों का पारसल छुड़ाने के लिए स्टेशन भेजा। कई बड़े २ पुलिन्दे थे, ठेले पर आये। गरीब ने ठेले वालों से बारह आना मजदूरी तय की थी। जब कागज दफ़्तर में पहुंच गये तो उसने बड़े बाबू से ।।।) पैसे ठेले वालों को देने के लिए वसूल किये। लेकिन दफ़्तर से कुछ दूर जाकर उसकी नीयत बदली; अपनी दस्तूरी माँगने लगा। ठेले वाले राजी न हुए। इस पर गरीब ने बिगड़कर सब पैसे जेब में रख लिए और धमका कर बोला—"अब एक फूटी कौड़ी भी न दूँगा, जाओ जहाँ चाहो फरियाद करो। देखें हमारा क्या बना लेते हो।' ठेले वालों ने जब देखा कि भेंट न देने से जमा ही गायब हुई जाती है तो रो-धोकर चार आने पैसे देने को

राजी हुए। गरीब ने अठन्नी उनके हवाले की और बारह आने की रसीद लिखवाकर उनके अँगूठों के निशान लगवाये और रसीद दफ़्तर में दाखिल हो गयी।

यह कौतूहल देखकर मैं दँग रह गया! यह वही गरीब है जो कई महीने पहले सभ्यता और दीनता की मूर्ति था। जिसे कभी अन्य चपरासियों से भी अपने हिस्से की रकम माँगने का साहस न होता था! जो दूसरों को खिलाना भी न जानता था, खाने का जिक्र ही क्या। मुझे यह स्वभावान्तर देखकर अत्यन्त खेद हुआ। इसका उत्तरदायित्व किसके सिर ?—मेरे सिर। उसे धूर्तता का पहला पाठ पढ़ाया था। मेरे चित्त में प्रश्न उठा, इस काइयाँपन से, जो दूसरों का गला दबाता है वह भोलापन क्या बुरा था; जो दूसरों का अन्याय सह लेता था। वह अशुभ मुहूर्त था जब उसे मैंने प्रतिष्ठा-प्राप्ति का मार्ग दिखाया, क्योंकि वास्तव में वह उसके पतन का भयङ्कर मार्ग था। मैंने बाह्य प्रतिष्ठा पर उसकी आत्म-प्रतिष्ठा का बलिदान कर दिया।

—*:*—

कामना

(रचयित—रामकुमार "स्नातक" हिन्दी प्रभाकर)

मात्र है यही कामना नाथ !

[१]

प्यास मिटादूँ मैं तृषितों की,
आह मिटादूँ मैं दुखितों की,
प्रेमभाव से गले लगालूँ,
मिले जु दीन अनाथ।
मात्र है यही कामना नाथ॥

[२]

धन, वैभव की चाह नहीं है,
इज़्ज़त की पर्वाह नहीं है,
कुष्ट रोगियों के व्रण धोकर,
पावन करलूँ हाथ।
मात्र है यही कामना नाथ॥

[३]

दुर्गम पथ हो सँकटमय हो,
महाभयँकर कण्टकमय हो,
चलाचलूँ चाहे तज देवें,
मित्र सखा सब साथ।
मात्र है यही कामना नाथ॥

[४]

जीवन में ही जीवन लय हो,
जन्मोत्सव सम मृत्यु समय हो,
रखा हुआ हो अन्तिम क्षण भी,
बलिवेदी पर माथ।
मात्र है यही कामना नाथ॥

छः आने पूँजी से अरबपति

(ले०—श्री बी० एन० गौड़)

अङ्गरेज़ों और भारतीयों में एक प्रधान भेद यह भी है कि अंगरेज़ तो अपने भाग्य का निर्माण करते हैं और भारतीय समझते हैं कि भाग्य से मनुष्य का उद्धार होता है।

भारतवासियों को तामसिक 'सन्यास' के अन्धकार में भटकता देख स्वामी विवेकानन्द का हृदय फूट २ कर रो पड़ा। अपनी सारी आत्मशक्ति का आह्वान कर उन्होंने एक समय हुँकार कर कहा—

"तुम्हारे ईश्वर और राम-कृष्ण का क्या करूँ ?.........मैं सौ बार भी नरक यातना सहने को तैयार हूं, ब-शर्तेकि मेरा देश अपनी नींद त्याग कर उठ बैठे।"

दिन-ब-दिन हिंदुस्तान ग़रीब होता जा रहा है। बेकारों की हज़ारों आहें 'हाय रोटी' 'हाय भूख' का चीत्कार कर रही हैं। वे अपनी प्यास बुझाने के लिए आज नौकरी की मृग-मरीचिका की ओर भटक रहे हैं। भारत की ग़रीबी का मुख्य कारण तो सभी को ज्ञात है कि केवल अपनी अकर्मण्यता से हमने अपनी बेकारी को और बढ़ाया है।

विदेशों की शिक्षा अपने लड़के-लड़कियों को सभ्य, सुसंस्कृत तथा स्वावलम्बी बनानी है। भारत में शिक्षा का ध्येय "नौकरी" है। १९३४-३५ में ब्रिटेन में १४ तथा १८ वर्ष के बीच की आयु वाले ११५,००० बेकार थे। इनमें ६०,००० लड़के थे। परन्तु वहां की सरकार ने ऐसी योजना बनाई कि अल्प व्यय में ही इन लड़के-लड़कियों को औद्योगिक शिक्षा देकर इनको घरों से दूर भेज दिया। इस तरह १७-१८ वर्ष की आयु में अँगरेज़ लड़कियों और लड़कों को अपने भाग्य का निर्माण आरम्भ कर देना पड़ता है।

यद्यपि मैं नहीं चाहता कि आप अपनी मिलों द्वारा मज़दूरों का रक्त-शोषण कर स्वयँ विलासमय जीवन बितावें; किंतु यदि आप अपने गाढ़े परिश्रम से लाखों रुपया पैदा करलें तो यह गौरव की ही बात होगी। आपको यह सुनकर आश्चर्य होना चाहिए कि कोई व्यक्ति केवल छः आने से ही करोड़पति बन सकता है। शायद आप समझ बैठें कि यह सट्टेबाज़ी या जुए की ही करामात होगी। सो बिलकुल ग़लत है। अपनी प्रखर बुद्धि, कठोर परिश्रम तथा दृढ़ अध्यवसाय से ही सर मेकफ़रसन राबर्टसन अरबपति बन गया। यही वह व्यक्ति है

जिसने मेलाबोर्न-शताब्दी-उत्सव के अवसर पर वायुयानों की दौड़ में १,००,००० पौंड का पुरस्कार दिया था।

मेकफरसन राबर्टसन का बाल्यकाल कष्टों तथा कठोर परिश्रम की करुण कहानी है। जब वह ९ वर्ष का था तो उसे घर के कामों में मां का हाथ बटाना पड़ता था और साथ ही अपनी और अपने चार भाई-बहनों की जीविका का प्रबन्ध भी करना पड़ता था। वह अपनी डायरी के एक पृष्ठ में लिखता है—

"तीन बजे प्रातःकाल उठा। दूध और दलिया पिया। इडिनबरा तक ३।। मील पैदल चला, क्योंकि दो पैसा किराया मैं नहीं दे सकता था। जाते समय मैंने अखबार इकट्ठे किए और आते समय उनको बाँटा।

मेरे मालिक की नाई की दुकान भी है। इसलिए ७—३० से ८-३० तक ग्राहकों के मुँह पर साबुन लगाया।

९ से ४ बजे शाम स्कूल रहा।

६ से ९ बजे तक नाई की दुकान में काम करता रहा, बाकी सारा दिन मेरा।"

१० वर्ष की उम्र तक बालक राबर्टसन ने कठोर परिश्रम करके अपने परिवार का पेट पाला। इतने कड़े परिश्रम का वेतन उसे केवल दो शिलिंग प्रति सप्ताह मिलता है।

अपने माता-पिता के साथ राबर्टसन मेलबोर्न लौट गया। सब की इच्छा थी कि वह स्कूल में शिक्षा ग्रहण करे। राबर्टसन शिक्षा ग्रहण करना चाहता था, पर उसकी तीव्र इच्छा थी कि वह परमुखापेक्षी न रहे।

"होनहार बिरवान के होत चीकने पात" राबर्टसन एक हलवाई (कान्फेकशनर) के यहां काम करने लगा। वह इस कार्य को दत्तचित हो कर करने लगा। उसको यही धुन सवार थी कि किसी तरह वह अपने काम में विशेषज्ञ बन जावे। आखिर वह एक 'कानफेकशनर' बन गया।

सन १८८० के जून मास में राबर्टसन ने अपना कारबार स्वयँ खोल दिया। ८ फीट लम्बे तथा ६ फीट चौड़े अपनी मां के स्नानागार को उसने अपनी 'फैक्टरी' बनाया। उसकी फैक्टरी में २-४ आवश्यक बर्तन, एक छोटी सी मेज़, २० 'प्लास्टर आफ पैरिस' के ढांचे और शक्कर तथा २-१ चीज़ें और थीं। बस, सोमवार से बृहस्पतिवार तक वह शक्कर के छोटे २ खिलौने बनाता था। शुक्रवार और शनीवार तक उन्हें बेच डालता था। राबर्टसन को काम से शरम तो थी नहीं। उसको तो कठोर परिश्रम में मज़ा आता था। ७२ पौंड भारी एक बर्तन में खिलौने सजाकर वह उसे सिर पर रखकर घर २ फेरी लगाता था। उसकी माँ भी अपने लड़के को उत्साहित करने के लिए रात २ भर जागकर खिलौनों को सजाती थी।

पहले दिन जब वह फेरी लगा कर लौटा तो उसे अपनी असफलता पर घोर

निराशा हुई, क्योंकि उसदिन उसकी एक पैसे की भी बिक्री नहीं हुई थी। किंतु उसका हृदय साधारण मनुष्यों जैसा न था। उसने अपने हृदय से निराशा को निकाल दिया। आशावाद के साथ जो व्यक्ति काम करता है, उसे अवश्य ही सफलता मिलती है—यह प्रकृति का भी नियम सा है। उसने आशा नहीं छोड़ी और दो शिलिंग प्रतिदिन से बढ़ते २ उसकी आमदनी २०,००,००० पौंड सालाना तक बढ़ गई। जहाँ उसकी फैक्टरी में केवल दो मज़दूर—वह और उसकी माँ थे; वहाँ अब उसकी फैक्टरी में २५००० से अधिक आदमी प्रतिदिन काम करते हैं और उसकी वह फैक्टरी—स्नानागार आज कारखानों के नगर के रूपमें परिणित होगई है।

अपने जीवन की घटनाओं पर प्रकाश डालते हुए राबर्टसन ने सफलता के रहस्य की इस प्रकार व्याख्या की है—

"उन लोगों से मेरा गहरा मतभेद है जो बचपन की इच्छाओं को सुनहला स्वप्न कह कर उनकी उपेक्षा करते हैं; बालक की उपेक्षा न कर उसको प्रोत्साहन देना चाहिए। मेलबोर्न के कारखाने में उबलती हुई शक्कर को देखकर एक दिन मैं भी सोचने लगा था—'काश! मेरी भी फैक्टरियां होतीं।' लेकिन वह सुनहला स्वप्न आज एक यथार्थ घटना है। मैं प्रत्येक पुरुष को यही सलाह देता हूँ कि बालकों को उनके बचपन में ही उनकी रुचि के अनुसार किसी भी धन्धे को सीख लेने दिया जाय। और भी, केवल सीखने से ही काम नहीं चलता। उसे कार्यरूप में परिणित कर देना चाहिए। कठोर परिश्रम ही सफलता की कुञ्जी है। ऐश व आराम का तो नाम भी नहीं लेना चाहिए। आज भी मैं अपनी फैक्टरी में एक मज़दूर की जगह बैठकर दिन भर काम करता हूँ। मालिक के लिए यह ज़रूरी है कि वह सौ फी सदी मजदूर हो, बस यही सफलता की कुञ्जी है।"

स्वतन्त्र देशों के बालक शुरू से ही अपने पैरों पर खड़ा होना सीख जाते हैं। वहाँ के युवक परिश्रम करने में अपना गौरव समझते हैं—उनमें, उनके हृदय में एक महत्वाकाँक्षा निहित रहती है। उनको तो हिटलर, मुसोलिनी और स्टालिन बनने की इच्छा रहती है। उन के लिए ७०—८० रुपये की नौकरियाँ तो बेड़ियों के समान हैं। पर भारत के गुलाम बेकार 'एम० ए०', 'बी० ए०' तो ५०—६० रुपये की नौकरी में ही अपना भाग्योदय समझते हैं और उतने को ही देखकर सन्तोष की सांस लेते हैं।

भारतीय नवयुवकों को तो नौकरी प्रिय है। स्वावलम्बन का पाठ तो उन्होंने पढ़ा ही नहीं। आज कितने भारतीय बेकार ग्रेजुएट राबर्टसन की तरह "ले लो भाई, दो पैसे में" पुकार कर फेरी लगाकर स्वावलम्बी जीवन बिताने को तैयार हैं?

———

गद्य-काव्य

संसार बदला लेगा !

[ले०—श्री विश्वप्रकाश दीक्षित 'बटुक']

रोटी का एक टुकड़ा पड़ा था, सड़क के दूसरे किनारे पर, ठीक नाली से सटा हुआ।

कितने ही आदमी आए और उसे पैरों से ठुकरा कर चले गए। न जाने किस २ के और कितने पैर उस पर पड़े। एक कुत्ता आया और सूँघ कर चला गया। सूखा टुकड़ा छूता भी कौन ? सड़क पर पड़ी हुई रूखी-सूखी वस्तु का इस सँसार में इससे अधिक महत्व ही क्या हो सकता है ?

"इस क़दर घृणा ! कुत्ता आया और सूँघ कर चला गया।"

—क्रूर विधाता ने बड़ी तीखी दृष्टि से देखा—"मेरी बनाई हुई चीज़ का इतना अपमान ! और वह भी मनुष्य द्वारा !"

आकाशवाणी हुई—"बदला लूँगा !"

× × × ×

मुरली की माँ स्वर्ग सिधार गई, विधवा थी। ब्राह्मणी, यजमानों के यहाँ रोटी किया करती थी। उसी के बल पर मुरली रोटी खाता था ; आज मुरली की वर्षगाँठ थी। २० वर्ष का युवक था वह। निठल्ला, ठाली पड़ा चपातियां खाने का आदी, पेट से बचने पर ग़रीब ब्राह्मणी की लाई रोटियां नाली के रास्ते से सड़क पर आजातीं।

एक मेहरी बगल में घड़ा दबाए निकली—'भाग फूटा है' भंगिन ने सिर पर टोकरा रखते हुए कहा—'बदनसीब है।'

पूरे साल भर का होते ही अपने बाप को खा गया था'—पास से ताऊ जी कहलाने वाले लाला जी हाथ में सोंटा लिए घर से निकले—'पिशाच है ! आज वर्ष गांठ थी। मां को खा गया।'

मुरली दहाड़ें मारकर रो पड़ा, घर गूँज उठा—'तू मनुष्य है। संसार जटिल है ! मनुष्य संसार को नहीं समझता। संसार बदला लेगा ! बदला !!'

× × × ×

मुरली सड़क पर फिसल पड़ा, जीभ थूक, बलगम आदि से सड़ी हुई थी, मुँह के दोनों किनारे जीभ निकालकर चाटे, और एक बार होंठ चाटकर लम्बी सांस ली। आंखों में कीच भरी थी, शायद हृदय के पके फोड़े की मवाद थी। आँसू निकले, मुरली गिर पड़ा।

कुछ आहट पाकर एक हाथ टेकते हुए मुरली ने बड़ी मुश्किल से करवट ली।

चील ने पंख फड़फड़ाते हुए नाली के पास जमीन का स्पर्श किया, चील को सफलता न मिली, मुरली ने आंखें फाड़ीं, ग़ौर से देखा, आगे सरका, नाली की ओर हाथ बढ़ाया, चील झपटी, सफलता हँसी, मुरली रोया, निराशा ने आशा का सिर ज़मीन में दे मारा।

सफेद धोती की चुन्नटें हाथ में लिए हुए—कहलाने वाले—बाबू जी निकले। देखा—आदमी रो रहा है ! बाबू जी ने रुककर ग़ौर से सुना—"रोटी का टुकड़ा था (दीर्घ निश्वास) चील ले गई। आठ दिन से भूखा मर...... ईश्वर बदला ले रहा है।"

बाबू जी 'पागल है' कहकर हँसे और आगे चलते हुए बोले—"क्या अजीब आदमी है ?"

मानवता रोई, ईश्वर ने दांत भींचे—

"मनुष्य ! नहीं सम्भलता तू ! संसार समस्या है, आँख खोलकर देख, पहिचान इसे ! संसार बदला लेगा !"

बाबू जी को कम्पायमान करने वाली भीषण झंझावत ने इसका समर्थन किया।

मानव जीवन में पुस्तकालय का महत्व

(ले०— एक 'पुस्तकाध्यक्ष')
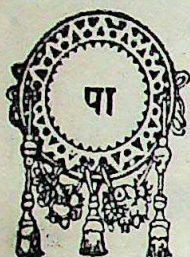
ठशाला की पढ़ाई भुलाई न जा सके—ताज़ी बनी रहे तथा ज्ञान में प्रतिदिन वृद्धि होती रहे—इसी स्तुत्य उद्देश्य से पुस्तकालय खोले जाते हैं। खुशी की बात है कि हमारे देशवासियों ने पिछले कुछ वर्षों में पुस्तकालय का महत्व समझकर इसका अधिकाधिक प्रचार करने की ओर ध्यान दिया है। देश के कर्णधारों ने अब महसूस कर लिया है कि अशिक्षित जनता में साक्षरता फैलाने और उसे कायम रखने का पुस्तकालय ही एक अमोघ साधन है। जब से प्रांतों में कांग्रेसी सरकारें स्थापित हुई हैं तब से तो इस आन्दोलन में नई जान आ गई है। अकेली यू० पी० की कांग्रेस सरकार ने २६ सौ नये वाचनालय तथा ७६८ नए पुस्तकालय गाँवों में खोले हैं।

पुस्तकालय, विद्याभ्यास पूर्ण करने के बाद अनेक शिक्षितों के विचार, आदर्श तथा जीवन की जांच करने तथा उसमें से ज्ञान-विकास साधन करने का उपाय है, तथा मनुष्य द्वारा बनाये गये आदर्श व ध्येय को पूर्ण करने में मार्ग दर्शक का काम देता है। मनुष्य को शारीरिक विकास के लिए जितनी खान-पान, वस्त्रादि की ज़रूरत है, उतनी ही ज़रूरत ज्ञान-मनोविकास के लिए उत्तम पुस्तकालय की है। पुस्तकालय की शरण लिए बिना मुक्ति नहीं। इसलिए 'पुस्तकालय जनता की विद्या पीठ' कहा गया है। पुस्तकालय में प्राचीन काल के महापुरुषों की उत्तम रचनायें पढ़ने को मिलती हैं। वे स्वयं जीवित नहीं हैं किन्तु उनके कार्य जीवित हैं; पुस्तकालय में उनका ज्ञान भरा पड़ा है। हरेक मनुष्य को उस ज्ञानरस का पान करने के लिए तैयार रहना चाहिए।

पुस्तकालय में सर्वोत्तम पुस्तकों का चुनाव करना चाहिए क्योंकि उत्तम पुस्तकें उत्तम सलाहकार का काम देती हैं। उनकी उपस्थिति वफादार मित्र की कमी को पूरा करती है। उत्तम पुस्तकों का वाचन अमृतपान तुल्य है। 'अमृतपान करते हुए कोई अघाता नहीं' इस उक्ति के अनुसार वाचनरूपी ज्ञानामृत पीता हुआ भी कोई नहीं अघाता। और न वह पीने से कभी समाप्त ही होता है। पुस्तकें ज्ञान का महासागर हैं, परन्तु निकृष्ट पुस्तकों का पढ़ना हलाहल ज़हर पीने के समान है। वे ज़हरीले जन्तुओं की भांति घातक हैं। आप अमृत पीना पसन्द

करोगे या ज़हर पीना ? अमृत सँग्रह करना पसन्द करोगे या ज़हर ?

मनुष्य की ज्ञान-वृद्धि के लिए, जीवन बनाने के लिये, आदर्श तथा ध्येय को पहुँचने के लिए सद्गुरु—उत्तम ग्रन्थ की आवश्यकता है। उसके दर्शन तो एक मात्र पुस्तकालय में ही हो सकते हैं। उत्तम पुस्तकालय मनुष्य जीवन में महत्वपूर्ण पार्ट अदा करता है। उत्तमोत्तम ग्रन्थों का अध्ययन करने से अनेकों स्त्री-पुरुषों को प्रेरणा मिली है, वे निराश होने से बचे हैं तथा उन्होंने सन्सार में बड़े-बड़े पदों को प्राप्त किया है।

पुस्तक-रहित घर जलहीन तालाब के समान है। प्रत्येक शिक्षित व्यक्ति के पास उत्तम पुस्तकें होनी चाहियें। ज्यों-ज्यों जमाना पलटता जा रहा है, त्यों-त्यों प्रत्येक मनुष्य को भी पलटते जाना चाहिए। यदि वह ऐसा न करेगा तो समाज में पिछड़ जायगा, तथा अप-टू-डेट सुधारों व हलचलों का उसे पूरा ज्ञान न हो सकेगा। इस प्रकार जमाने के सँस्कार तथा उसमें होने वाले परिवर्तन के ज्ञान से वाक़िफ़ होने के लिए ही पुस्तकालय है। अतः प्रत्येक व्यक्ति को पुस्तकालय से लाभ उठाना चाहिये। सँसार में आजकल क्यों उथल-पुथल हो रही है ? सँसार की महत्वपूर्ण समस्यायें कौन-कौन सी हैं ! विज्ञान कितना आगे बढ़ चुका है ? इत्यादि बातों की जानकारी के लिए पुस्तकालय उत्तम साधन है, यह जीवन का उपयोगी अँग है।

जापान, अमेरिका अथवा यूरोप के प्रगतिशील देशों पर दृष्टि डालने से पता लगेगा कि वहाँ पुस्तकों, पत्रों तथा विद्या की कितनी कीमत है, वहाँ की जनता को कितनी ज्ञान-भूख लगी है ? प्रत्येक व्यक्ति—चाहे वह किसान, व्यापारी, वकील, सिपाही अथवा मजदूर हो, तो भी वह हमेशा अपना निजी अखबार लेकर पढ़ता है। वह पुस्तकालय का भी स्वतन्त्रता से उपयोग करता है। प्रत्येक व्यक्ति घर में अपना छोटा सा पुस्तकालय रखता है, वर्ष भर की कमाई में से निश्चित रकम उत्तम पुस्तकों के खरीदने में खर्च करता है; तथा वैसी ही सँस्थाओं में दान देता है। दूसरी ओर भारतवर्ष में पुस्तकालय को सहायता देना तो दरकिनार, उल्टा मुफ़्त में पढ़ने की सुविधा मिलने पर भी कोई पुस्तकालय में पढ़ने नहीं जाता। पाश्चात्य देशों जैसी स्थिति जब तक भारतवर्ष में न होगी तब तक इस देश में परिवर्त्तन न होगा, गुलामी दूर न होगी।

इस प्रकार की ज्ञान भूख उत्पन्न करने के लिए पाठशाला में ही शुरूआत हो सकती है। बालक के कक्षा में पढ़ने के समय में ही उसे वाचन की ओर लगाया जावे तो पुस्तकों की ओर उसकी रुचि हो सकती है। पढ़ने का शौक हरेक व्यक्ति में पैदा करने के लिये

वातावरण बनाना चाहिए। ग्राम्य-पुस्तकालय का प्रबन्ध शिक्षक के हाथ में होता है। उसे विकसित व समृद्ध करना और उसके ग्रन्थों का अधिकाधिक उपयोग कराना आदि बातें पुस्तकाध्यक्ष पर निर्भर हैं। सब पुस्तकों से पुस्तकाध्यक्ष को परिचित होना चाहिये। उसे स्मरण रखना चाहिए कि पुस्तकालय की बहुमूल्य पुस्तकें उसकी अलमारियों में बन्द करके दिखाने के लिए रखने की चीज नहीं, परन्तु उनका स्वतन्त्रता से वाचन-अध्ययन होना चाहिये। प्रथम वह स्वयं वहां से ज्ञान प्राप्त करे और फिर दूसरों को वैसा ही करने की प्रेरणा करे। खुद ज्ञान प्राप्त कर दूसरों को देना भी उतना ही सार्थक है, क्योंकि ज्ञान देने से बढ़ता है।

कलापी कहता है कि--"जीवन बन सकता है तो एक मात्र पुस्तकों से।" अतः उत्तम पुस्तक पढ़ो, उसकी खोज करो, उसका मनन करके जीवन में उतारो। जीवन को आदर्शमय बनाओ। आदर्श-रहित जीवन जीवन नहीं। वह मृत्यु से किसी तरह भी बढ़कर नहीं। आदर्शों में अचल श्रद्धा रखने से जीवन में नवचेतनता तथा रस का संचार होता है। उसे पुष्ट करने का साधन उत्तम पुस्तकालय है। इस प्रकार—'पुस्तकालय प्रजा में प्राण फूँकने वाला प्रगति मन्दिर; समस्त सँसार के विद्वानों की रससामग्री का संगृह-स्थान" कहलाता है। जो उससे लाभ उठाने से वँचित रहता है, वह जीवन की अमूल्य घड़ी को खोता है। —:*:—

क्रान्ति ?

क्राँति क्या है ? क्रान्ति क्या है ? क्रान्ति नये जन्म के प्रसव की भयंकर पीड़ा है। वह नवीन जीवन प्राप्त करने की कठोरतम तपश्चर्या है। एक ही झटके में पट-परिवर्तन कर देने वाली भयँकर विस्फोटक शक्ति है। प्रत्येक व्यक्ति को कुछ वाँछनीय वस्तु मिल जाने पर सन्तोष हो जाता है, पर क्रांति के पुजारी को वर्तमान व्यवस्था में किसी सुधार या सुविधा से संतोष नहीं हो सकता! वह तो इस व्यवस्था को आमूल बदल कर ही चैन ले सकता है। कारण, क्रांति अथवा पुनर्जन्म का अर्थ ही है एक सर्वथा नये जीवन में प्रविष्ट होना। निःसंदेह आज भी सँसार प्राणमय और सजीव दिखाई देता है। पर बारीकी से देखा जाए तो वह जीवन-मृत है। उसका बहुमत मनुष्य शरीर में पशु है। ऐसी दशा में यदि आमूल क्रांति न हो, वर्तमान समूह पद्धति नष्ट होकर एक समुदाय हीन समाज की रचना न हो तो प्रत्येक मनुष्य को मनुष्य बनाने का अवसर मिल ही नहीं सकता।

—रैवेरैण्ड ब्राउन

साइँस के करिश्मे

लकड़ी से खांड बनाना—रूशिया में डाक्टर राथ एण्ड को० अपने साथियों की सहायता से ऐसे परीक्षणों में लगे हुए हैं जिनमें लकड़ी से खाँड तैयार की जायगी। इस काम के लिए एक अप-टू-डेट प्रयोगशाला स्थापित कर दी गई है।

बम वर्षा से तेल निकालना—कैलेफौरनिया में ट्रीबोनपार्श के स्थान पर ज़मीन के अन्दर गोलाबारी करके तेल के चश्मे निकाले गये हैं। ऐसी कलें तैयार की गई हैं जो कि दो मील तक ज़मीन के नीचे गोला बारी कर सकती हैं। मैक्सीको की खाड़ी में ये परीक्षण सफलतापूर्वक किये जा चुके हैं।

एक विचित्र बाजा—आकलैंड के पाल डबलू० टामस ने एक नये ढँग का विचित्र बाजा बनाया है। इस बाजे में अलग-अलग ३०० तरह की आवाज़ें निकलती हैं। इसमें सात तार हैं।

थैले बनाने का कागज—एक जापानी ने थैले बनाने के लिए जूट के स्थान पर एक तरह का मोटा कागज ईजाद किया है। यह पानी और धूल से बचाव करने में सन और चमड़े की अपेक्षा कहीं ज्यादा अच्छा है। जापानी सेना जूट के स्थान पर इसी का प्रयोग करेगी।

सीधे केले और चौकोर अँडे—अमेरिका के वैज्ञानिक ऐसे प्रयोग कर रहे हैं जिससे केले सीधे हों और अँडे गोल न होकर चौकोर हों। कारण यह है कि पार्सल में भेजने में टेढ़े केलों से दिक्कत होती है और गोल अण्डे जल्द फूट जाते हैं।

एक विचित्र मशीन—एक ऐसी मशीन बनाई गई है जो असली चिट्ठी की कितनी ही प्रतियां तैयार कर सकती है। यह मशीन ग्रामोफोन रेकार्ड की सी है। इसमें फाउन्टेन पेन लगाकर चिट्ठी लिखने से उसका सांचा रेकार्डिंग मशीन पर उतर आवेगा। तब उससे जितनी कापियां चाहें, ली जा सकती हैं।

गायों के लिए नकली दांत—रूस के एक ज़िले में दांत के डाक्टर ने गायों के भी नकली दांत बनाये हैं, जिनसे पहले जो गायें चारा नहीं खाती थीं वे अब खाने लगी हैं।

'चटके नहीं छूटे'

[कुरीतियों से तबाही का एक जीता-जागता उदाहरण]

भारतवर्ष की अशिक्षित जनता में बहुत सी ऐसी पतनकारी कुरीतियां व अन्ध-विश्वास फैल रहे हैं जिनके कारण वह दिन पर दिन ग़रीब व खस्ताहाल होती जा रही है। अबोहर के आसपास की ग्रामीण जनता में फैली हुई इन नाशकारी कुरीतियों को दूर करने के लिए 'साहित्य सदन, अबोहर' के कार्यकर्त्ताओं के प्रयत्न से इस इलाके के देहातियों की एक ग्रामसुधार पञ्चायत ३ वर्ष पहले क़ायम हुई थी। पञ्चायत के सामने सबसे बड़ी समस्या है देहातियों में प्रचलित सबसे भयङ्कर प्रथा मृत्युभोज—औसर को बन्द कराना। यद्यपि कई समझदार व साहसी ग्रामीणों ने पञ्चायत के फैसलों को मानकर, औसर करना बन्द भी कर दिया है; किंतु फिरभी उनकी सँख्या आटे में नमक जितनी है। अभी तक अधिकाँश जनता उस पुरानी चाल को ही पकड़े हुए है और औसर बन्द करने को तैयार नहीं है। पञ्चायत के वार्षिक उत्सवों में, इलाके के सभी प्रतिष्ठित व प्रभावशाली व्यक्ति इकट्ठे होकर, औसर न करने के प्रस्ताव सर्व सम्मति से मँज़ूर करते हैं तथा इस कुप्रथा को बन्द करने का प्रतिज्ञा-पत्र भी भर देते हैं। किंतु फिर भी लोग, अपने वायदों को भूल जाते हैं, प्रतिज्ञा को तोड़ बैठते हैं और पञ्चायत के सामने झूठे साबित होते हैं।

ग्रामीण लोग किस तरह अपनी प्रतिज्ञाएं भुलाकर इन कुरीतियों द्वारा तबाह व बर्बाद होते हैं, इसका एक ताज़ा उदाहरण यहां दिया जाता है—

अबोहर के नज़दीक के एक गाँव के एक प्रतिष्ठित व्यक्ति की माता का स्वर्गवास हो गया। उस सज्जन ने कुछ मास पहले ही पञ्चायत के प्रतिज्ञा-पत्र पर हस्ताक्षर करके आगे से कभी कोई औसर न करने का प्रण किया था। किंतु इस कसौटी के समय वह खरा न उतरा—अपनी प्रतिज्ञा को भुला बैठा और माता के मरने पर औसर करने की तैयारी करने लगा। गाँव के कई समझदार लोगों ने उससे कहा कि पञ्चायत ने औसर बन्द करने का फैसला किया है और आपने खुद औसर न करने की प्रतिज्ञा की है फिर आप ऐसा क्यों कर रहे हैं? किंतु इन लोगों का उस पर कोई असर न हुआ। पञ्चायत के कार्यालय—साहित्य सदन, अबोहर में इसकी सूचना पहुँची तो पञ्चायत के संस्थापक श्री स्वामी केशवानन्द जी तथा मन्त्री श्री तेगराम

जी उस गाँव में गए कि उस व्यक्ति को अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहने की प्रेरणा करें। इन लोगों ने पहले गाँव के कई व्यक्तियों से बातचीत की तो पता लगा कि वे औसर न करने के पक्ष में हैं। फिर औसर करने वाले सज्जन के पास जाकर श्री स्वामी जी ने उससे इस प्रकार बातचीत की—

"आपने पञ्चायत के फैसले के अनुसार औसर न करने की प्रतिज्ञा की है अतः प्रतिज्ञा भँग करके आपको औसर न करना चाहिए। फिर आज इस ज़माने में जबकि इलाके में भयङ्कर अकाल पड़ रहा है, लोगों के पशु चारे व पानी के बिना तड़प २ कर मर रहे हैं, आपका औसर में सैंकड़ों रुपये खर्च करना कहाँ की बुद्धिमानी है? यदि आपको अपनी मृत माता के नाम पर पुण्य-दान ही करना है तो अपने पड़ौस में हिसार या बीकानेर के उस इलाके के लोगों की सहायता कीजिए कि जहाँ लोग अकाल के मारे घर-बार छोड़, पशुओं को साथ ले प्रतिदिन सैंकड़ों की सँख्या में नहरी इलाकों में शरण लेने के लिए आ रहे हैं। आप ऐसे भूखे-नँगे लोगों तथा पशुओं को चारा, दाना, वस्त्रादि दे उन की जान बचाइए। इस प्रकार जीवन-दान से बढ़कर कौनसा पुण्य होगा? यदि यह नहीं कर सकते तो बागड़ में—जहाँ पानी के बिना मनुष्य त्राहि-त्राहि कर रहे हैं—अपनी स्वर्गीय माता के नाम पर प्रतिवर्ष एक पक्का कुण्ड बनवा दिया करें जिसका वर्षों शीतल जल पी-पीकर मरुभूमि के लोग आप तथा आपकी माता जी को आशीर्वाद दिया करें। यदि ऐसा भी नहीं करना चाहते तो जातीय सेवा के कार्य में सहायता दीजिये। इस इलाके में आपकी जाति की प्यारी संस्था जाट स्कूल, संगरिया को, जिसने इलाके की ग्रामीण-जनता में विद्याप्रचार का प्रशंसनीय कार्य किया है—इस अकाल के समय पानी का भयँकर कष्ट हो रहा है। स्कूल के पक्के कुण्डों में पीने का पानी न रहने के कारण विद्यार्थियों के लिए पानी का प्रबन्ध करने की भारी कठिनाई हो रही है। अपनी माता के नाम पर वहाँ पर ५-७ महीने के लिए पानी के खर्च का प्रबन्ध करके जल-दान द्वारा अनन्त पुण्य के भागी बनिये। इसके अलावा दीन-दुखियों की सेवा करने के और भी अनेकों साधन हैं जिनमें दान-पुण्य के निमित्त पैसा लगाने से औसर करने की अपेक्षा भूखे-प्यासे का अधिक व सच्चा हित हो सकता है।"

उस सज्जन को ये बातें न जँचीं। श्री स्वामी जी ने फिर कहा—"जिन अपने गाँव वालों को सिर्फ एक समय हलुवा खिलाने के लिये आप सैंकड़ों रुपया खर्च कर रहे हैं, वे सब तो आपके समान सम्पन्न हैं अतः आपका एक समय हलुवा खाने से तो उनकी कोई लाभ-हानि न होवेगी किन्तु आपके ५ सौ रुपये का स्वाह हो जावेगा। यदि गाँव वालों

के लाभार्थ ही आप इतना रुपया खर्च कर रहे हैं तो किसी ऐसे काम में यह रुपया खर्च करें कि जिससे गाँव वालों का सच्चा और स्थायी हित हो। इतने रुपये लगाकर गांव में धर्मशाला बनवादें, जिसमें कोई मुसाफिर गर्मी-सर्दी में ठहर सके। अथवा अपनी माता के नाम पर गाँव में एक पाठशाला खुलवादें जिसमें गरीब और अमीर सभी के लड़के मुफ़ पढ़ें। रही भूखों को खिलाने की बात। सो उस अवसर पर जो सैंकड़ों लोग हलुवा खावेंगे, उनमें से अन्न के बिना भूखे मरने वाले तो शायद ५ ७ ही निकलें। हाँ, यों मुफ़ का हलुवा खाने को किसका जी नहीं करता है। १०-१० मील के फासले के ग्रामों के छोटी जाति के लोग, औसर का नाम सुनकर इस अकाल के समय में हलुवा खाने भारी संख्या में चले आवेंगे। उन सबको खिलाने में आप पूरे न आ सकेंगे अतः उनमें से अधिकाँश को भूखा लौटना पड़ेगा जिससे आपका अपयश होगा, कोई इज़्ज़त न बढ़ेगी। कई गांवों में हुई ऐसी ताज़ी घटनाएँ आपके सामने हैं कि औसर का नाम सुनकर हज़ारों लोग सीरा खाने चले आये लेकिन सबको पूरा भोजन देने का प्रबन्ध न हो सकने के कारण अधिकांश गाली देते हुए भूखे ही लौटे। आपको उन घटनाओं से ही शिक्षा लेनी चाहिए और यों सैंकड़ों रुपये धूल में न फैंकने चाहियें।" इन सब बातों का भी उस पर कोई असर न हुआ और उसने अन्त में कहा"—स्वामी जी महाराज! बातें तो सब आपकी ठीक ही हैं। लेकिन यह रिवाज तो छूटता-छूटता ही छूटेगा, "चटकै (जल्दी) नहीं छूटेगा।" उसके मुँह से ये शब्द सुनकर श्री स्वामी जी ने फिर कहा—"क्या अभी तक भी तुम्हारा 'चटकै' बाकी है? इस रिवाज के कारण लोग तो तबाह हो गये और आप अभी तक 'चटकै नहीं छूटे' की ही रट लगा रहे हैं। लोगों को इस कुप्रथा द्वारा तबाह होते सदियां गुज़र गईं, बड़े-बड़े घर खाक में मिल गये, ज़मीन-जायदाद के मालिक कँगाल हो गये। क्या आप नहीं देखते हैं कि आज अकाल पड़ने पर बागड़ के जो लोग भूख मरते घर-बार छोड़ पूर (फटे पुराने कपड़े) चके—उठाये दर-दर की भीख मांग रहे हैं? औसर की कृपा से ही तो उनकी ऐसी हालत हुई है। जब अच्छा सम्वत हुआ, खूब फसल हुई तो उन्होंने खाने-पीने पहनने में भी कमी करके पैसा जमा किया कि आगे माइत-माता पिता का औसर करना पड़ेगा। इस प्रकार दस-पाँच वर्ष में उन्होंने ज्यों-त्यों करके जो कुछ पैसा जमा किया वह एक ही औसर में स्वाह कर कोरे के कोरे रह गए। यदि अच्छे सम्वत् के दिनों में पैदा की हुई पूञ्जी इनके पास जमा होती तो आज ये लोग यों घरबार छोड़ बाल बच्चों को साथ लिए न फिरते। कैसा ही

कैसा ही भयङ्कर अकाल पड़ने पर भी वे अपनी कमाई के सहारे अकाल में भी निर्वाह कर सकते, और आज घरबार छोड़ने की नौबत न आती। यदि आप लोग भी अपनी पसीने की कमाई को अकाल, बीमारी आदि सङ्कट काल के लिये सुरक्षित न रखकर, औसर आदि फिजूलखर्चों में लगाते रहोगे तो चाहे नहरी इलाके का आपको कितना ही घमण्ड हो, फिर भी इन कुरीतियों में इसी प्रकार अन्धा-धुन्ध खर्च करते रहने से एकदिन वह आवेगा कि आपको भी सङ्कट पड़ने पर घरबार छोड़ कर दर-दर भटकना पड़ेगा। आपके पड़ौसी सिखों की मिसाल आपके सामने है। इस इलाके में पहले बागड़ी लोग आबाद हुए और सारी ज़मीन-जायदाद के मालिक बने। लेकिन अपनी नाशकारी कुप्रथाओं के कारण वे लोग तो अपनी ज़मीन-जायदाद बेच-बेच कर कँगाल हो रहे हैं—ऐसी अनेकों मिसालें मौजूद हैं। इसके विपरीत आपके पड़ौसी सिख भाई, जो इस इलाके में बाद में आबाद हुए और जिनके पास आरम्भ में १०-१० बीघा ज़मीन थी, भद्दी कुरीतियां छोड़ खेती में परिश्रम से काम कर जो बचत हुई उसे फिजूलखर्ची में न लगा जायदाद बनाने में लगाया। फलतः कुरीतियों में फँसे बागड़ियों की जायदादें खरीद, वे भारी धन-सम्पत्ति के मालिक बन, आज आनन्द से जीवन बिता रहे हैं।" इस प्रकार की सभी बातें कहने-सुनने के बाद भी जब वह सज्जन औसर करने के अपने इरादे को छोड़ने को तैयार न हुआ तो दोनों व्यक्ति वहां से उठकर चले आये। कई वर्ष से इलाके में समय पर तथा पूरी वर्षा न होने के कारण अच्छी फसलें नहीं हुई हैं जिससे जमीदारों की आमदनी दिन पर दिन घट रही है। ऐसी हालतमें औसर करने वाले सज्जन की भी आर्थिक अवस्था ऐसी नहीं है कि वह औसर के खर्च का सैंकड़ों रुपये का बोझ उठा सके। किन्तु फिर भी उसने औसर किया और ५००) की बजाय ७००) खर्च किये। अक्सर सरकारी रिपोर्टों, पुस्तकों तथा समाचार पत्रों में भारत के किसानों पर अरबों रुपये कर्ज़ होने के आंकड़े निकलते हैं। उन पर यह सब कर्ज़ अधिकांश इन कुरीतियों व नासमझी के कारण होता है। पहले तो झूठी शान और मान बड़ाई के लिए, सामर्थ से अधिक अन्धा-धुन्ध खर्च करते हैं, और फिर सारा जीवन घोर कंगाली और कष्टों में बिताते हैं। क्या इलाके के समझदार व्यक्ति अब भी न चेतेंगे? क्या वे इन कुरीतियों को जड़ से उखाड़ फैंकने के लिए कमर न कसेंगे?

चुटकियाँ-गुदगुदियाँ

एक अँग्रेज पादरी ने एक हिन्दुस्तानी से पूछा कि "क्या तुम मरने के बाद स्वर्ग में जाना चाहते हो ?" हिन्दुस्तानी ने इन्कार कर दिया। पादरी साहब के पूछने पर उसने कहा कि 'स्वर्ग मेरे ख्याल में कोई अच्छी चीज नहीं है वरना अँग्रेज कभी के इस पर अपना कब्ज़ा कर लेते।'

❀ ❀ ❀

जब सुकरात के शिष्यों ने अश्रुपात होकर उससे कहा कि "ए सच्चे गुरु! हमें तो केवल इस बात की चिन्ता है कि आप निर्दोष मर रहे हैं।" सुकरात ने हँसकर कहा—"क्या तुम चाहते हो कि मैं गुनहगार होकर मरूँ।"

❀ ❀ ❀

समाजवादी—सेठ जी! आप समाजवाद का इतना विरोध क्यों कर रहे हैं ?

सेठ जी—मैं आपके इस नये वाद का इसलिए विरोध करता हूं कि जब कोई गरीब ही न रहेगा तो मैं दान किसको दिया करूँगा।

समाजवादी—जब कोई ग़रीब न रहेगा तो फिर आपको दान देने की चिन्ता किस लिए होगी ?

सेठ जी—यह तो ठीक। लेकिन सवाल तो यह है कि जब दान-पुण्य ही न किया गया तो मैं सदा नर्क में ही पड़ा सड़ूंगा।

❀ ❀ ❀

श्रीमान जी! आप बिना सोचे विचारे क्यों सुधारों का लट्ठ लिये फिरते हैं ? क्या एक अभियुक्त की बदौलत सैंकड़ों प्यादे, वकील, मजिस्ट्रेट, दारोगा जेल और पुलिस वग़ैरह की रोटी नहीं चल रही। अपराधों को बन्द करके आप इस क़दर बेकारी क्यों फैलाना चाहते हैं।

❀ ❀ ❀

एक अनपढ़—महाशय जी, ज़रा बताना, इस टिकट पर कितना किराया लिखा है ?

महाशय जी—(टिकट देखकर) दो रुपये चौदह आने।

अनपढ़—(क्रोध में आकर) बेईमान रेलवे बाबू ने मुझे लूट लिया। उसने तो मुझ से साढ़े तीन रुपये लिए हैं।

महाशय जी—भाई, आप इतना क्रोध क्यों करते हैं। दो रुपये चौदह आना तो रेल का किराया है ही। दस आने अधिक जो तुम से लिये गये हैं, वे तुम्हारे अनपढ़ होने का टैक्स है।

❀ ❀ ❀

रूसी इन्सपैक्टर—लड़को! अगर एक आदमी सेब का एक टोकरा दस रूबल (रूसी सिक्का) में खरीदे और १५ रूबल में बेच दे तो बताओ उसे क्या मिलेगा ?

एक लड़का—जनाब, ३ साल की सख्त सज़ा।

—०—

जापान की कर्मशील महिलाएँ

[ले०—श्री० बंसीधर]

पिछले पचास-साठ वर्षों में जापान ने जो उन्नति की है, वह सचमुच आश्चर्यजनक है। आज सँसार के शक्तिशाली देश जापान का लोहा मानते हैं। जापान की अभूतपूर्व उन्नति का कारण उसकी दिनोंदिन बढ़ती हुई तिजारत है। यद्यपि जापान एक छोटा सा देश है, फिर भी वह सँसार के बाजारों पर आधिपत्य जमाये हुए है। किसी भी देश में चले जाइये, आपको वहां के बाजार जापानी माल से खचाखच भरे दिखाई देंगे। जापान की इस व्यवसायिक उन्नति का दारोमदार जापान की परिश्रमशील महिलाओं पर है। अगर महिलायें अपने घरों की चारदीवारी में ही बन्द रहतीं तो जापान का इतनी तेज़ी से उन्नति करना असम्भव ही था।

जापान में कपड़े के कारखानों में लगभग ८४ फी सदी महिलाएँ काम करती हैं। कातने और बुनने के कारखानों में १० लाख मज़दूर काम करते हैं जिनमें से ७॥ लाख स्त्रियां हैं। लकड़ी, मशीनरी धातु और रासायनिक पदार्थों के कारखानों में भी औरतों की भरमार है। अकेले टोकियो शहर में १७ हज़ार औरतें काम करती हैं। जापान की २ करोड़ ५० लाख औरतों में से लगभग १ करोड़ मज़दूरी करके अपना पेट पालती हैं। जापानी महिलायें केवल अपना ही निर्वाह नहीं करतीं, बल्कि अपने परिवार के लिए भी कमाती हैं। इतना ही नहीं, अमीर घराने की औरतें भी निठल्ली नहीं रहतीं। वे भी कुछ न कुछ काम करती हैं, और कमाती हैं। हां, इतना ज़रूर है कि वे कारखानों में मज़दूरी नहीं करतीं, अपने घरों में ही काम करती हैं। लेकिन अपने काम की मज़दूरी लेने में ज़रा सँकोच या शर्म नहीं करतीं। जापानी महिलाएँ इतना कठोर परिश्रम करती हैं कि देखने वाला दँग रह जाता है। वास्तव में वे विद्युतगति

से काम करती हैं, हरदम काम में लगी रहती हैं मानो वे मशीन का पुर्ज़ा बन गई हों। जापान में उनके काम की कोई निगरानी नहीं करता। वे स्वयँ ही अपना कर्त्तव्य समझ कर अपना काम करती रहती हैं। जब ये काम में लगती हैं तो सब कुछ भूल जाती हैं। उन्हें कुछ पता नहीं चलता कि उनके आस-पास क्या हो रहा है। वे इतनी कर्त्तव्य-परायणा होती हैं कि आंख उठाकर भी नहीं देखतीं। जब हम अपने देश की ओर दृष्टि डालते हैं तो हमारा सिर लज्जा से झुक जाता है। हमारी बहनें तो आज अपने और देश के लिए भार रूप बनी हुई हैं। अगर हमारे देश की बहनें भी काम में जुटजायें तो बहुत कुछ कर सकती हैं, अपने देश को मालामाल बना सकती हैं। उनमें शक्ति है, धैर्य है, लेकिन अफ़सोस तो यह है कि उन्हें अपनी शक्ति का भान ही नहीं हुआ है।

जापानी लड़कियां १६ साल तक पढ़ती हैं, चार-पांच साल तक कारखानों में रहकर रुपया कमाती हैं और २१—२२ साल की उम्र में शादी करती हैं। चूँकि जापान में काफी तादाद में स्त्रियां मज़दूरी करती हैं, इसलिए वहां मज़दूरी बहुत सस्ती पड़ती है और यही वजह है कि जापानी चीज़ों का भाव इतना सस्ता होता है। जहां मज़दूरी कम और काम ज्यादा हो, वहां पर कीमत का कम होना अनिवार्य है।

जापानी महिलायें सब जगह इज्ज़त की निगाह से देखी जाती हैं। कारखानों में उनके लिये अस्पताल, खेल-तमाशे, भोजन आदि का सुप्रबन्ध रहता है। कारखानों के मालिक मज़दूर स्त्रियों को वही भोजन देते हैं जो वे खुद खाते हैं। काम करने के बाद जब जापानी लड़कियाँ बाज़ार में निकलती हैं तो ऐसा मालूम होता है कि वे शाहज़ादियाँ हैं, बड़े घरों की लड़कियां हैं। कोई नहीं कह सकता कि वे मज़दूरी करती होंगी। जापानी औरतें बड़ी साफ-सुथरी रहती हैं। वे सफ़ाई के लिए दुनियाँ भर में प्रसिद्ध हैं। उनके घर छोटे हैं लेकिन होते हैं बड़े साफ़ और स्वच्छ। घर में चारपाई नहीं होती। प्रायः सब चटाइयों पर सोते हैं।

जापानी स्त्रियाँ अपने और दूसरों के स्वास्थ्य का बड़ा खयाल रखती हैं। बचपन से लेकर बुढ़ापे तक नियमित रूप से व्यायाम करती हैं, या कोई खेल खेलती हैं। अस्वस्थ रहना वे पाप समझती हैं। जब जुकाम हो जाता है तो नाक के सामने कपड़ा रखती हैं ताकि बीमारी के कीटाणु स्वस्थ मनुष्यों पर अपना बुरा असर न डाल सकें। जापानी स्त्रियाँ बीमार की बड़ी सेवा करती हैं। सेवा करना तो जापानी स्त्रियों का धर्म ही बन गया है। जापानी स्त्रियों का शरीर हृष्ट-पुष्ट, सुगठित, चुस्त, फुर्तीला और सतेज होता है।

जापानी स्त्रियां अपना खाना खुद बनाती हैं, घर का और काम भी खुद करती हैं, अपने बच्चों की सार-सम्भाल करती हैं। पति के कपड़ों की देख भाल करती हैं। किंडर गार्डन स्कूलों में जाकर अपने बच्चों के लिए खुद खाना तैयार करती हैं। माध्यमिक स्कूलों में लड़कियां अपना भोजन खुद बनाती हैं।

जापानी औरतों की पोशाक सादा होती है। हाँ, इतनी सादा तो नहीं जितनी कि आज से दस वर्ष पहले होती थी। यूरोप और अमेरिका के फैशन का उन पर भी असर पड़ा है। उन्होंने अपना पुराना भारी लिबास उतार फैंका है। लेकिन राष्ट्रीय पोशाक की वे बड़ी कद्र करती हैं। इसे पहनकर वे गौरव महसूस करती हैं। वे जेवर आदि नहीं पहनतीं। हिन्दुस्तानी औरतों की तरह नाक या कान नहीं बिन्धवातीं। कुछ अमीर स्त्रियां आजकल अँगूठी पहनने लगी हैं। दफ्तरों में काम करने वाली लड़कियां बाल भी कटवाने लगी हैं क्योंकि कार्याधिकता के कारण लम्बे बालों को रोज़ाना धोकर साफ नहीं रखा जा सकता। वे कलाई पर घड़ी बाँधने लगी है और हाथ में हेंडबेग रखती हैं।

जापानी महिलाएँ आज सब काम कर सकती हैं। वे डाक्टर हैं, अध्यापिका हैं, टाइपिस्ट हैं। होटलों, सिनेमा-थियेटरों, मोटर बसों और हवाई जहाजों में काम करती हैं। कारखानों और फैक्टरियों का तो कहना ही क्या? वहाँ तो उनका एकाधिकार-सा है। वे बन्दूक चलाती हैं, बम फेंकती हैं, परेड करती हैं, फौज में भरती हो सकती हैं। अभी अभी जापान की १० लाख स्त्रियां स्वयँ-सेविकाएँ बनी हैं। जापानी स्त्रियों के एक सैनिक सङ्घ में ६७८००० और दूसरे में ३००००० स्त्री सदस्याएँ हैं। कुछ औरतें सैनिकों में जीवनसञ्चार करने—उनका उत्साह बढ़ाने के लिए चीन भी गई हैं। इस प्रकार वे देश सेवा में भी पूरा पूरा हाथ बटा रही हैं।

जापानी स्त्रियां न तो शर्मीली होती हैं और न उद्दंड। उनका स्वभाव बड़ा सरल होता है। उसमें न किसी तरह की बनावट होती है और न शोखी। उनका व्यवहार अनुकरणीय है। कर्त्तव्य-परायणता और कर्मशीलता में वे मिसाल हैं। दूसरे देशों की औरतें उनका गुणों में मुकाबला नहीं कर सकतीं। दुःख और आपत्ति के समय भी प्रसन्नचित्त रहती हैं, घबराती नहीं। मुस्कराहट तो उनकी विशेषता है। शिष्टाचार उनमें कूट-कूटकर भरा पड़ा है। अपनी भलमनसाहत, सूझ और मिठास से वे सबको मोहित कर लेती हैं।

चालीस साल पहले जापानी महिलाओं की हालत ऐसी ही करुणाजनक और दयनीय थी जैसी हमारे देश की महिलाओं की आज

है। जापान में उन्हें मूर्ख और अक्ल से खारिज समझा जाता था। वे हर प्रकार से पँगू व गुलाम थीं। ज़रा-ज़रा सी बात पर उन्हें घर से बाहर निकाल दिया जाता था। सास या श्वशुर का कहना न मानने, अधिक बोलने और बच्चा पैदा न करने के अपराध में तलाक़ दे दिया जाता था। वे हाथ-पांव नँगे नहीं रख सकती थीं। हाथों को कुर्तों में छिपाकर रखना पड़ता था, अतः बाहर निकलकर कोई काम न कर सकती थीं, घर की चार दीवारी ही उनकी दुनिया थी।

सन १८९४ में जापान में स्त्री-शिक्षा का प्रचार हुआ और तभी से वहां की महिलाओं का कायाकल्प शुरू हुआ। थोड़े ही सालों में सैंकड़ों स्त्रियोपयोगी अखबार निकलने लगे जो लाखों की तादाद में छपते थे। इससे पहले १८७१ में यह घोषणा निकल चुकी थी कि अमीर और सौदागर जब विदेशों में जायें तो अपनी औरतों, लड़कियों और बहनों को साथ लेकर जायें ताकि वे वहां की शिक्षा-पद्धति का अध्ययन कर सकें। १८९४ में युवक सम्राट भीजी ने यह कानून पास किया कि "कोई आदमी एक से अधिक शादियाँ नहीं कर सकता। २५ साल की स्त्री स्वतन्त्रता से अपना पति चुन सकती है, माता-पिता अपनी लड़कियों को शादी के लिए मजबूर नहीं कर सकते, स्त्रियां स्वतन्त्र काम कर सकती हैं और जायदाद बना सकती हैं।" १९०८ में महिला परिषद्‌ की स्थापना हुई। एक ही साल में ३० लाख औरतें इसकी सदस्याएँ बन गईं। १९२४ में स्त्री अधिकारों की माँग पेश करने वाली लीग की बुनियाद डाली गई।

नये कानूनों और महिला परिषदों ने जापानी महिलाओं में जबर्दस्त क्रान्ति पैदा करदी, उन्हें पशु से मनुष्य बनादिया। किसी ने ठीक ही कहा है कि यूरोप की महिलाओं ने जो उन्नति ५०० साल में की वह जापानी औरतों ने २५—३० साल में करके दिखादी।

इतना होते हुए भी हम यह नहीं कह सकते कि जापान में औरतों के लिए स्वर्ग उतर आया है। अभी उन्होंने बहुत कुछ करना है। अभी बहुत से ऐसे बन्धन हैं जिन को तोड़ने के लिए उन्हें अभी बहुत कुछ करना बाकी है। निम्न श्रेणी की औरतों की हालत तो अबतक दयनीय है। लड़कियां पारिवारिक जीवन से ऊब कर बाहर निकल जाती हैं। बेचारी २॥–३ पौण्ड मासिक में ही अपना जीवन निर्वाह करती हैं। इससे अधिक मज़दूरी कारखानों में मिलती ही नहीं। गरीब माता-पिता तो अपनी लड़कियों को बेच देते हैं और वे वेश्याएँ बनकर अपना पेट पालती हैं। एक साल में केवल अकेले टोकियो से २० हज़ार

लड़कियों को बेचा गया था। जापान की औरतों में जागृति की बलवती लहर दौड़ चुकी है; अब वे अपने सब कष्टों और अपमानों का अन्त करके ही दम लेंगी।

जापान की कर्मशील महिलाओं ने साबित कर दिया है कि अगर औरतों को अपने विकास का मौका दिया जाय तथा अर्थहीन पाबन्दियों से मुक्त किया जाय तो वे कमाल करके दिखा सकती हैं। क्या हमारे देश की बहनें अपनी जापानी बहनों से कुछ सबक लेंगी? क्या वे अपने पांवों पर खड़ा होने के लिए कुछ जद्दो-जहद करेंगी?

—*!*!*—
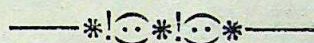
माता और शिशु

अन्य देशों की अपेक्षा भारतवर्ष में बच्चों की मृत्यु सबसे अधिक—प्रतिवर्ष २० लाख के लगभग, होती है और जो जीते भी हैं उनमें से अधिकांश रोगी, निर्बल, और कम-आयु वाले होते हैं और बड़ा होने पर भी उनका शारीरिक, मानसिक तथा नैतिक विकास भली-भांति नहीं हो पाता है। हमारे देश की ९९ प्रतिशत अशिक्षित माताओं को शिशु-पालन के सुधरे हुए वैज्ञानिक ढंगों का ज्ञान न होने से ही यहाँ पर इतनी भीषण बाल-मृत्यु होती है। बम्बई प्रान्त के स्वास्थ्य निरीक्षक का कहना है कि इस देश में ५० प्रतिशत बालकों की मृत्यु ऐसे कारणों से होती है जिनको दूर किया जा सकता है। इन कारणों में मातृ-शिक्षा का अभाव, बालक के सम्बन्ध में माता की असावधानी और अस्वच्छता आदि हैं। यदि मातायें अपने बच्चों के पालन-पोषण में नीचे लिखी बातों का ध्यान रखें तो उनके बच्चे स्वस्थ, पुष्ट और प्रखर-बुद्धि बन सकते हैं:—

१—बालक को आरम्भ से ही नियमित रूप से, निश्चित समय पर दूध पिलाने की आदत डालना।

२—रात को ९ बजे से ४ बजे तक बालक को न दूध पिलाना और न कोई दूसरी चीज़ खिलाना। अधिक ज़रूरत पड़ने पर थोड़ा सा पानी पिला देना।

३—एक वर्ष का हो जाने पर बच्चे को स्तन-दूध पिलाना बन्द कर देना।

४—बच्चे को किसी प्रकार की दवाई आदि खिलाने-पिलाने की आदत न डालना।

५—बच्चे को नियत समय पर सुलाना, नियत समय पर खिलाना-पिलाना तथा नियत समय पर मल-मूत्र त्याग कराने की आदत

डालकर उसकी दिनचर्या को व्यवस्थित करना।

६—बच्चे को बचपन से ही अलग चारपाई पर सुलाने की आदत डालनी चाहिए।

७—बच्चे को स्वस्थ रखने के लिए माता को भी अपना स्वास्थ्य ठीक रखना चाहिए।

८—बच्चे के स्वास्थ्य की अवस्था का ठीक-ठीक पता लगाने के लिए समय-समय इस विषय के किसी अनुभवी व्यक्ति से परामर्श लेते रहना चाहिए।

९—बच्चे को धमकाना, मारना, अधिक लाड-प्यार करना, उसकी ज़रूरत से ज्यादा मदद करना, या उसकी बिल्कुल ही उपेक्षा करना, आदि बातें उसके विकास में बाधक हैं अतः माता को बच्चे के प्रति इस प्रकार का व्यवहार न करना चाहिए।

—०० —

हम महिलाएँ

लेखिका श्री० सत्यवती शुक्ल

हम प्रबल क्रांति के उग्र भाव,
भूतल में भरने वाली हैं।
हम मिट्टी को छूकर स्वर्ण,
क्षण भर में करने वाली हैं॥
हमने ही वीर प्रसूता बन,
उन्नत स्वदेश का भाल किया।
हमने उत्पन्न सुभद्रा बन,
अभिमन्यु सरीखा लाल किया॥
हममें से ही तो झाँसी की,
वह लक्ष्मीबाई रानी थी।
जिसकी स्वतन्त्रता-प्रियता की,
घर-घर में विदित कहानी थी॥

हमने धर रूप कालिका का,
जब-जब भीषण हुँकार किया।
तब-तब दुष्टों का दमन तथा,
दानव विहीन सँसार किया॥
हमने ही च्त्राणी बनकर,
शुभ जौहर व्रत दिखलाया है।
हमने निज पति पुत्रों तक को,
लड़कर मरना सिखलाया है॥
हम अत्याचारों पर जलती,
चिनगारी धरने वाली हैं।

हम प्रबल क्रांति के उग्र भाव,
भूतल में भरने वाली हैं।
आओ मिलकर एक बार,
हम सब मिल देशोद्धार करें।
निज क्रोधानल में भारत के,
सब क्लेश जलाकर छार करें॥
हम को अबला कहने वाले,
आश्चर्य चकित हो कर देखें।
हँसकर जो आज देखते हैं,
कल वही भ्राँति खो कर देखें।
अब तक पीछे चलने वाली,
अब चलें स्वयँ जग के आगे।

भय से भीत न हों हम किंचित,
भय स्वयँ देख हम को भागे॥
राणा प्रताप श्री शिवा सदृश्य,
अनुपम अमूल्य सुत दान करें।
तब हम अपना अस्तित्व समझ,
अपने पन पर अभिमान करें॥
संसृति को सुख दे कर उसके,
कष्टों को हरने वाली हैं॥
हम प्रबल क्रान्ति के उग्र भाव,
भूतल में भरने वाली हैं।

बाल-मन्दिर

स्विटज़लैंड के बालक

लेखक
प्रो० कृपानाथ मिश्र एम० ए०

इस सुन्दर देश के बालक खूब प्रसन्न रहते हैं। मैंने एक भी ऐसे बालक को नहीं देखा, जिसके मुख पर हँसी की रेखा न हो। वे हँसते हैं खिलखिलाकर; बोलते हैं जोरों से, चलते हैं दौड़कर और पढ़ते हैं खेलते-खेलते। इन बालकों की बुद्धि बड़ी तीव्र होती है, और यद्यपि सभी बालकों की तरह ये भी पढ़ने से खेलना अधिक पसन्द करते हैं, तथापि इन्हें साधारण बातों का ज्ञान बहुत अच्छा रहता है। एक आठ वर्ष के बालक से मैंने लन्दन के सम्बन्ध में बहुत सी बातें पूछीं, जवाब सही-सही मिले।

एक बात ज़रूर देखने में आई। फ्राँस या इँगलैंड के बालकों की तरह स्विट्ज़रलैंड के बालकों का मन उच्च नहीं होता। मैंने कितने ही बालकों से पूछा—जीवन में तुम क्या चाहते हो? किसी से भी स्पष्ट और निश्चित उत्तर न मिला। बहुतों ने तो उत्तर दिया ही नहीं। इँगलैंड के हर बालक का मन शुरू से ही किसी बड़े आदर्श के ऊपर आँख लगाये रहता है। फ्रांस के बालकों का लक्ष्य भी बचपन से ही निश्चित होने लगता है। अँग्रेज बालक का मन नेलसन-जैसे वीर की ओर झुका रहता है, तो फ्रांसीसी बालक भी शुरू में ही नेपोलियन की बातें सोचता है। स्विट्ज़रलैंड में नेपोलियन या नेलसन-जैसे वीर नहीं हुए हैं। हो सकता है कि इस भाव के अभाव ने ही स्विस बालकों को मेरे सामने मौन बना डाला हो।

फ्रांस और इंगलैंड के बालकों से स्विट्ज़रलैंड के बालक एक बात में बढ़े हुए हैं, और वह है हास्यरस। यह कोई साधारण गुण नहीं। जो जितना हँसता है, वह उतना ही अपने को नीरोग बना सकता है। यह कोई कल्पना नहीं, डाक्टरों का मत है। एक तो सुन्दर पहाड़ी देश, दूसरे हँसने की अपूर्व शक्ति। सचमुच स्विस-बालक खूब स्वस्थ होते हैं। उनके गालों पर स्वास्थ्य की लाली झलकती रहती है। उनके बदन पुष्ट होते हैं। फिर भी वे देखने में फ्राँसीसी बालकों की तरह सुन्दर या कद में अँगरेज बालकों की तरह लम्बे नहीं होते। यह आश्चर्य की बात नहीं है। हर एक देश में पहाड़ी बालक हट्टे-कट्टे तो होते हैं, पर उनकी सुन्दरता में कुछ कसर रह जाती है। भारतवर्ष में दार्जिलिङ्ग के

जङ्गली बालक इसके उदाहरण हैं।

हास्य-प्रेम के कारण स्विस-बालक, स्वयं हँसते हुए, दूसरों को भी हँसाते हैं। एक दिन सन्ध्या समय मैं पहाड़ के ऊपर चढ़ रहा था। हठात् राह में एक छोटे बालक को देखकर मुझे बहुत आश्चर्य हुआ। वह न तो हिलता था न डोलता। मैंने देखा कि उसके पैर में 'स्की' (लोहे अथवा काठ के उस यन्त्र का नाम है, जिसकी सहायता से बर्फ पर चलने-फिरने और दौड़ने में मज़ा आता और तेज़ी बढ़ती है) बन्धी है; पाजामे इतने बड़े थे मानो उसके पिता के हो हों, टोपी खूब लम्बी थी। सबसे अजीब उसका मुख था। उसकी आँखें इतनी तिरछी थीं कि वह खड़ा था मेरे सामने और देख रहा था एकदम दूसरी ओर! मैंने समझा, वह कोई मूर्त्ति है।

स्विट्जरलैंड में बर्फ की मूर्ति बनाकर जगह २ रख छोड़ने की एक विचित्र प्रथा है। मैं आगे बढ़ने ही को था कि वह बालक हठात् चिल्ला उठा—'ऊः ऊः'। मैं चौंक पड़ा, वह और हँसने लगा। बात यह थी कि आगन्तुकों से पैसे माँगने के लिए उसने यह स्वाँग रचा था। उसने मुँह पर एक मुखड़ा डाल लिया था, इस से उसकी आंखें तिरछी दीख रही थीं।

इस प्रकार तरह-तरह के खेल दिखाकर स्वांग रचने में स्विट्जरलैंड के कुछ बालक पैसे वसूलने में बड़े चतुर होते हैं। इन पैसों से ये और कुछ नहीं करते; मिलजुलकर बर्फ के ऊपर मशाल जलाते और उत्सव मनाते हैं।

एक दिन मैं प्रातःकाल टिकट लेने के लिए पोस्ट-आफिस गया। जगह का नाम 'मोंत्रिड' था। छोटे से पहाड़ी स्टेशन के पास ही पोस्ट-आफिस था। टिकट खरीदकर लौटने के समय मैंने रेलगाड़ी की सीटी सुनी। कौतूहलवश मैं ठहर गया; ऊपर चढ़ते समय उस रेलगाड़ी की गति साधारण मनुष्य की गति से भी कम होती है। उसकी लाइनें छोटी होती हैं और डब्बे भी बहुत ऊँचे नहीं होते। रेलगाड़ी में कुल तीन ही डब्बे रहते हैं गार्ड साहिब अन्य मुसाफिरों के साथ ही एक कोने में बैठे रहते हैं। जब गाड़ी खुली, तो मैंने क्या देखा कि रेलगाड़ी के पीछे उसके पेंदे में कटहल की तरह—एक के ऊपर दूसरा—बहुत से बालक लटक रहे थे। पूछने पर मालूम हुआ कि वे प्रति-दिन इसी तरह पहाड़ के ऊपर बिना कष्ट और बिना पैसे के पहुँच जाते हैं, और फिर चोटी पर से एक ही दम में 'स्की' की सहायता से बिजली की तरह दौड़ते-कूदते-लुढ़कते नीचे पहुँच जाते हैं, न गार्ड कुछ कहता है, न मुसाफिर कुछ कहते हैं। बालकों का स्वराज्य है; उनका आदर है।

बालकों के साथ दूसरे लोग भी बालक हो जाते हैं—बालकों की हँसी देखकर। स्विट्जरलैंड हँसता है—प्रकृति की छटा से

उसके बालक हँसते हैं—प्रसन्नता से। आगन्तुक हंसते हैं—इनको देखकर।

मनुष्य के जीवन में अनेक अवसर ऐसे आते हैं, जब बालक बनना ही श्रेष्ठ होता है। इन अवसरों में स्विट्ज़रलैंड ने मेरी जितनी सहायता की थी वह वहाँ के बालकों ने। मैं दोनों का कृतज्ञ हूँ।

—§§—

लीला की याद में

[श्री पी० डी० पारस, लाहौर]

स्वर्गलोक की फुलवाड़ी से,
सुन्दर मैना उड़कर आई।
लेकिन वायु झूठे जग की,
मैना के दिल को न भाई।
दो दिन कलियों के सँग खेली
दो दिन बालक रास रचाई।
चुप से अपने देश को उड़ गई,
न कोई मन की बात बताई।
अब रोने से क्या होता है,
थी तो आखिर चीज पराई।
जीवन-मरन की अद्भुत लीला,
भगवन ने क्या खूब बनाई।
ढूँढते हैं इसे ढूँढने वाले,
लेकिन देती नहीं दिखाई।
मैना की सुन्दर लीला को,
रोते हैं माँ-बाप और भाई।
सुख और प्रेम से रखना ईश्वर
लीला तेरी शरण में आई।

कर्मवीर मुसोलिनी

[ले०—आचार्य श्री काका कालेलकर]

मुसोलिनी इटली का सर्वेसर्वा है। यूरोप में आज जितनी निन्दा, स्तुति उसकी होती है उतनी और किसी की नहीं। कितने ही उसको स्वतन्त्रता का दुश्मन मानते हैं और कितने ही उसको इटली का त्राता। शारीरिक और मानसिक काम करने में वह राक्षस जैसा है। इटली के मन्त्री मण्डल में युद्ध-विभाग, जल विभाग, हवाई विभाग, परराष्ट्र-विभाग आदि कितने ही विभागों की वही देख-रेख करता है। पार्लियामेंट में लड़ना, नियम बनाना और सर्वेसर्वा के तौर पर सब राज-काज करना भी उसी के सिर पर है।

इतनी अधिक ताकत उसमें कहां से आई? ये सब काम बिना थके वह किस तरह करता होगा? एक आदमी ने उससे पूछा—"आप इतना काम कैसे करते हैं?" "नियमित कसरत और सादा रहन-सहन से, और कोई बात नहीं।" उसने जवाब दिया। "लगभग बाल्यावस्था से ही मुझे पढ़ने का शौक है। छोटी उम्र में ही मैं पढ़ना सीख गया था। किताब लेकर कौने में बैठकर पढ़ने में मस्त हो जाता था। घण्टों पढ़ता, इतना पढ़ता कि सिर दुखने लगता। बाद में मेरी मां ने कहा कि तुम रात दिन किताब के कीड़े बने रहते हो इसलिए तुम्हारा सिर दुखता है। पढ़ने के बाद खुली हवा में दूर दूर तक घूमना चाहिए। कुदरत को देखना चाहिए। दौड़ने, कूदने-फांदने और सुबह खेलने से सिर दुखना बन्द हो जाएगा और शरीर मज़बूत हो जायेगा। किताब में जो कुछ पढ़ते हो उसे बाहर की दुनियाँ में देखने से दोनों का मिलान कर सकोगे और पढने में मज़ा भी आयेगा। ऐसा करने पर मैंने देखा कि बाहर का ज्ञान भी किताब के ज्ञान से कुछ कम नहीं होता। जब आँधी छोटे-छोटे वृक्षों को उखाड़ फैंकती थी तब एक आध विशाल मेपल या ओक वृक्ष को स्थिर और अचल खड़ा देखकर मेरे हृदय में उसके प्रति आदर भाव पैदा होता था। खेतों और जंगलों में पशुओं के मजबूत जिस्म और उनकी चपलता को देखकर मुझे बड़ा आश्चर्य होता था। उस समय मैंने निश्चय किया कि मैं भी ऐसा अच्छा शरीर बनाऊँ जो कभी न थके।"

बचपन में मुसोलिनी साथियों के साथ फलों की चोरी करने गया। फल चुराना तो बच्चों का बहुत प्रिय खेल होता ही है। मुसोलिनी का एक मित्र पेड़ पर चढ़कर फल तोड़ रहा था। इतने में बगीचे का मालिक हाथ में चाबुक लिए वृक्ष के नी

आ पहुँचा। सबके सब बालक दौड़ गये। पेड़ पर चढ़ा हुआ लड़का कूद पड़ा, परन्तु पड़ते समय उसकी टांग टूट गई। बालक मुसोलिनी ने उसे दूर से देखा। गिरने वाला लड़का उससे उमर में बहुत बड़ा था। परन्तु उसने इस बात की पर्वाह न की और वह दौड़ता हुआ आया। अपनी सारी शक्ति लगा-कर मित्र को अपनी पीठ पर रख वहां से दौड़ पड़ा। मित्र को बचाकर वह डाक्टर को बुला लाया और उसकी सार-सम्भाल की। सब मित्र जब उसकी बहादुरी का राग अलापने लगे तब मुसोलिनी ने कहा कि इसमें बहादुरी की कोई बात नहीं थी। यह तो उस समय की सूझ मात्र थी। सच्चा आनन्द तो इस बात में है कि हमारे अन्दर इतनी शक्ति भरी पड़ी है।

मुसोलिनी आज भी नियमित रूप से कसरत करता है। चलना, दौड़ना, घोड़े पर बैठकर घोड़े को थकाना और चांदनी में समुद्र में तैरना और कुछ नहीं तो टहलना तो है ही। एक बार उसने कहा कि यह जमाना ऐसा है कि बैठे २ काम नहीं चलेगा। सबको चलना चाहिए, तभी अपना राज्य चलेगा। जो बैठा रहता है वह सड़ जाता है।

मुसोलिनी सवेरे उठकर ही काम में लग जाता है। नाश्ता का कोई काम नहीं। दोपहर को १ बजे दूध और भात खाता है और शाम को साढ़ सात बजे भोजन करता है। वह शराब नहीं पीता। गर्मी हो, सर्दी हो या बरसात घर में कसरत किये बिना वह रह नहीं सकता। मुसोलिनी का यह विश्वास है कि अधिनायक के लिये प्रत्येक विभाग उत्तम रीति से चलाना जितना जरूरी है उतना ही जरूरी अपनी सेहत की देख-भाल करना है। अधिनायक की सेहत भी तो एक विभाग है न।

अपनी सेहत की रक्षा के लिये उसने एक पहलवान का रख छोड़ा है, डाक्टर को नहीं।

(गुजराती किशोर)

फुलवाड़ी

मैं हर तरह की गुलामी के खिलाफ़ हूँ !

मेरे नजदीक किसी एक देश की आजादी का कोई महत्व नहीं। अगर दूसरे देश गुलाम हों और एक आजाद हो, तो उसकी आजादी का क्या अर्थ। तमाम देश एक दूसरे से राजनैतिक, आर्थिक और मानवीय दृष्टि से सम्बद्ध हैं। मैं इस बात को जरूर मानता हूं कि किसी देश को दूसरे पर कब्जा नहीं करना चाहिए। मैं तो लोगों को यही कहता हूँ कि वे आंतरिक स्वतन्त्रता प्राप्त करें। बाहर की स्वतन्त्रता खुद-ब-खुद आजावेगी। आंतरिक स्वतन्त्रता के बिना बाह्य स्वतन्त्रता की कोई हस्ती नहीं। मैं केवल राजनैतिक स्वतन्त्रता का समर्थक नहीं। मैं तो हर प्रकार की गुलामी के खिलाफ हूँ। मैं यह नहीं चाहता कि एक नौकरशाही का स्थान दूसरी ले ले। एक मनुष्य की गर्दन से एक बोझ को उतार कर दूसरे पर रख देना कहां की बुद्धिमानी है। मैं तो नौकरशाही के खिलाफ हूं; चाहे वह ब्रिटिश नौकरशाही हो अथवा हिंदू या मुसलिम नौकरशाही। जरूरत इस बात की है कि हम अपने अन्दर परिवर्तन पैदा करें। यह प्रारम्भिक इन्कलाब ही वास्तविक इन्कलाब है। मैं चाहता हूं कि लोग इस तबदीली को महसूस करें। मैं उस डाक्टर की तरह नहीं जो रोग का क्षणिक—अस्थाई इलाज करता है; मैं तो उसकी जड़ को पकड़ना हूं।

(जे० कृष्ण मूर्ति)

गुलाम का जीवन

गुलाम का जीवन क्या है ?

बर्फ के नीचे दबी हुई उस खेती की भांति है जो यद्यपि कायम रहती है तथापि गिरी पड़ी हालत में—जिसे बढ़ने, फैलने-फलने का कोई मौका नहीं मिला। गुलाम का जीवन उस पंछी की तरह है जो पिंजरे में पैदा होकर, पिंजरे में ही मर जावेगा। उसके परों पर रँग है, लेकिन उनमें फड़फड़ाहट की हिम्मत नहीं। उसे पिंजरे से बाहर निकलने का शौक हरगिज नहीं सताता। उसकी आंखों को बाहर का प्रकाश और स्वच्छ वायुमण्डल अच्छा नहीं लगता; उलटा घबराहट पैदा करता है। अगर उसे बाहर निकाला जावे तो वह पिंजरे के भीतर ही भागता है। गुलाम का जीवन उन दृष्टिहीन आंखों की भांति है, जो देखने में तो चमकीली मालूम देती हैं किंतु देख नहीं सकतीं। गुलाम और आजाद व्यक्ति में यही अन्तर है कि गुलाम मरने के लिए जीता है और आजाद जीने के लिए मरता है। गुलाम की जिंदगी मौत के बराबर है और आजाद की मृत्यु भी जीवन है। (प्रीतलड़ी उर्दू)

महल की सजावट पर ३० हज़ार पौण्ड

एक हिंदुस्तानी नवाब का अङ्गरेजी महल जिस पर उसने बेहद रुपया खर्च किया, अब बिकने वाला है। इसका कारण यह है कि इसकी बेगम को, जिसने इस महल में केवल एक रात बिताई है, गर्मी के दिनों में भी सर्दी महसूस होती है। इस महल का नाम 'स्नोडम हम हॉल' है। यह महल नवाब साहेब रामपुर की मिलकियत है। ... नवाब साहेब ने इस महल को गर्म रखने के लिए सैंकड़ों पौण्ड खर्च किए हैं। ३० हजार पौण्ड महल की सजावट पर खर्च किया गया है। मगर अब नवाब साहेब इसको असल कीमत से आधी कीमत पर बेचने को तैयार हैं। नवाब साहेब इस महल को इसकी मौजूदा हालत में अर्थात् फर्नीचर सहित ही बेचना चाहते हैं। इस महल की सजावट को देख कर मनुष्य आश्चर्य चकित हो जाता है। नवाब साहेब के ड्रेसिंग रूम में एक आदमी जितने बड़े

शीशे के सामने उनकी वह कुर्सी रखी है जिसपर बैठकर वह हजामत बनवाते हैं। बेगम साहिबा के कमरे में रेशमी कोच हैं। ऊपर वाली मञ्जिल में बालकों के खेलने के कमरे हैं। परन्तु नवाब साहेब के तीन बच्चों में से किसी के लिए इनमें से कोई कमरा अभी तक इस्तैमाल में नहीं आया। नवाब साहेब ने हुक्म दे दिया है कि जो भी इस महल के खरीदने को आये उसका खूब आदर सत्कार किया जाए। अतः जब कोई सज्जन खरीदार बनकर जाता है तो उसे जिस कमरे में, वह चाहे जहाँ बिठाकर चाय पिलाई जाती है। यद्यपि यह महल चार साल से नवाब साहेब ने बनवाया हुआ है, तथापि वह इतने दिनों में केवल २८ दिन वहाँ रह पाये हैं। ......नवाब साहेब ने इसका नकशा बनवाने में पूरा एक महीना खर्च किया। उन्होंने एक मील लम्बे घास के टुकड़े को गुलाब के फूलों की क्यारियां बनाने के लिए ५० हजार पौण्ड खर्च किए ताकि बेगम साहिबा और शाहजादे सैर करें।

(सण्डे एक्सप्रेस)

सच्चा ग्रामसुधार

१ ग्रामवासियों के पीने के पानी के तालाबों का ऐसा प्रबन्ध करना कि जिससे उनमें पशु न घुस सकें, उनके किनारों पर लगाये वृक्षों के पत्ते पानी में पड़कर न सड़ें तथा उनमें नहाने व कपड़े धोने की रुकावट हो।

२—खाद, कूड़े-करकट का ढेर आदि वायु दूषित करने वाली दुर्गन्धयुक्त चीजों को गाँव से थोड़ी दूर डाला जावे, तथा मल-मूत्र त्यागने के लिए तो गाँव से काफी दूरी पर एक स्थान नियत करना चाहिए। गांव के बाड़े आदि में कदापि मल मूत्र आदि न त्यागना चाहिए।

३- सड़ी-गली वनस्पति तथा फलादि को गांव में बेचने की मनाही होनी चाहिए।

४—ग्रामीण लोगों के कपड़े धोने का स्थान भी दूर होना चाहिए। पीने के पानी के पास तो यह क्रिया कभी न होने देनी चाहिए।

५ - गांव में यदि कोई बीमारी फैली हो तो जेवनार, मेला आदि न किया जाय।

६—गाय, भैंस तथा अन्य दुधारू पशुओं के लिए, जिनके दूध पर मनुष्य जीवन का आधार है, चारे-दाने की सार-सम्भाल रखनी चाहिए, ताकि उसमें कोई जहरीला पदार्थ न मिल जावे।

७—शराब, ताड़ी, गाँजा, भांग, अफीम आदि नशीली चीजों का उपयोग जहां तक हो सके कम कराना चाहिए। २० साल तक के युवकों को बीड़ी-सिगरेट आदि न पीने देने का पक्का बन्दोबस्त करना चाहिए, क्योंकि आजकल कुसङ्गति में पड़कर देखा देखी छोटे बालक भी दुर्व्यसनों में पड़ जाते हैं और अन्त में क्षय आदि रोगों के शिकार बनते हैं जिसके अनेक उदाहरण हमारे सामने हैं। अतः इस ओर पूरी सावधानी रखने की खास जरूरत है।

(खेत-वाड़ी गुजराती)

जापानी मनोवृत्ति

लखनऊ के शिल्प सम्मेलन के सभापति पद से भाषण देते हुए डाक्टर गडगोल ने कहा है कि कुछ वर्ष पहले जब वह जापान गए थे तो अपने मित्रों के लिए बतौर तोहफे के कुछ आम लेते गए थे, परन्तु जापानी शुल्क विभाग के कर्मचारी ने उन्हें आम ले कर नहीं उतरने दिया। उन्होंने हजारहा समझाया कि इन्हें बेचने के लिए नहीं लाए हैं। परन्तु कर्मचारी ने एक न सुनी। अन्त में मित्रों को बुलाकर जहाज पर ही आमों की अन्त्येष्ठि करनी पड़ी। यह एक घटना है जिससे हमें जापानी मनोवृति का पता लगता है और मालूम होता है कि वे कितने सतर्क हैं।.........यह कितने क्षोभ की बात है कि जो देश हमारे देश के फल को भी अस्पृश्य समझते हैं हम करोड़ों का माल खरीद कर उसे धनवान बना रहे हैं। भारत के धन से ही आज जापान एशिया से गणतन्त्र को मिटा देना चाहता है। अतः भारत को सावधान हो जाना चाहिए।

(जागृति)

दीपक के प्रकाश में—

यूरोप में सात मास—लेखक—श्री धर्मचन्द सरावगी; प्रकाशक—हिन्दी पुस्तक एजेन्सी २०३, हरिसन रोड कलकत्ता, पृष्ठ सँख्या ३४४; मूल्य २॥)

श्री धर्मचन्द जी सरावगी ने इस सचित्र पुस्तक में यूरोप के विभिन्न देशों की सैर से लौटने के बाद वहां का आंखों देखा हाल लिखा है। भाषा सरल और मनोरंजक है। पढ़ने में उपन्यास जैसा मजा आता है। किसी चीज का वर्णन अस्वाभाविक और पृष्ठ पेषण के लिहाज से नहीं किया गया है। भूगोल के विद्यार्थी, स्कूल के अध्यापक और व्यापारियों के काम की इसमें अनेकों बातें हैं और यूरोप की यात्रा के इच्छुकों के लिए तो यह निहायत ही काम की चीज है। जो लोग विदेशों की सैर नहीं कर सकते और उनके विषय में जानने के शौकीन हैं उनको यह पुस्तक अवश्य अपने पास रखनी चाहिए। हमारा बिश्वास है कि कोई भी आदमी २॥) खर्चा करके इसे खरीदने के बाद अपनी दी हुई कीमत से बहुत ज्यादा कीमती जानकारी इस पुस्तक से हासिल कर सकेगा।

बलिदान—लेखक, श्री यादवेन्द्रसिंह प्रकाश' बी० ए० एल० एल० बी० रीवा; प्रकाशक ठाकुर मुन्शीसिंह जो मन्त्री, प्रान्तीय यूथ लीग प्रतापगढ़ यू०पी० पृष्ठ सँख्या १८०; मूल्य १)

इस सामयिक कहानी सँग्रह में लेखक की छ: कहानियाँ हैं जो एक से एक आकर्षक तथा देशभक्ति के भावों से ओत-प्रोत हैं। पहली कहानी का शीर्षक बलिदान है। इसमें श्यामा का जीवन दूसरों के हित के लिए अपने सर्वस्व की आहुति देने का ज्वलन्त उदाहरण है। परिस्थियों में मनुष्य किस प्रकार ईमानदार और सभ्य की अपेक्षा बेईमान और डाकू तक बन सकता है इसका आभास ठा० जगदम्बा-प्रसाद के चरित्र में मिलता है। सुधा शीर्षक कहानी में सुधा के पति मिस्टर रणधीरसिंह का चरित्र बहुत ऊँचे दर्जे का है। देश के हित के पक्ष में उसने अपनी गवर्नरी तक पर लात मार दी है 'पवित्र पापी' कहानी तो हमें बहुत ही अच्छी लगी। पुस्तक के भूमिका लेखक पँ० परमानन्द जी हैं जिन्होंने स्वत: अपने जीवन को देश के लिए कुर्बान किया हुआ है और अभी पिछले वर्ष २३॥ साल की जेल काटकर लौटे हैं।

सच्ची कहानियां—प्रकाशक-दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा मद्रास। पृष्ठ सँख्या १०४, मूल्य ।=)

वैसे तो बालोपयोगी पुस्तकें प्राय: छपती ही रहती हैं परन्तु अच्छी २ पुस्तकों का बहुत अभाव है। इस पुस्तक में भिन्न २ विषयों पर २१ कहानियों का सँग्रह है। कहानियां बड़े २ विद्वानों, महापुरुषों के जीवन सम्बन्धी शिक्षादायक विषयों को लेकर लिखी गई हैं। सरल भाषा में होने के कारण पुस्तक बालकों के लिए बड़ी उपयोगी तथा सँग्रहणीय है।

चुने हुए फूल—यह पुस्तक दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, मद्रास ने प्राइमरी योग्यता के विद्यार्थी पाठकों के लिए प्रकाशित की है। इसके १०४ पृष्ठों में हिन्दी-उर्दू और हिन्दोस्तानी कविताओं का ३ गुच्छों में सँग्रह किया है। पहले गुच्छे में जहाँ ऊँची हिन्दी की कविताओं का सँग्रह है वहाँ दूसरे गुच्छे में उर्दू और तीसरे में हिन्दुस्तानी कविताओं का। पुस्तक के अन्त में कठिन शब्दों के अर्थ दे दिये गये हैं।

पुस्तक की छपाई, सफाई तथा कागज अच्छे होते हुए भी मू० आठ आना कुछ अधिक जान

पड़ता है। संग्रह अच्छा और मानव विकास में सहायक होने वाली कविताओं का किया गया है। इसलिए पुस्तक उपादेय है।

मोतियों का हार—लेखक—ब्रजनन्दन शर्मा प्रकाशक वही दक्षिण-भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास। पृष्ठ सँख्या ९२, मू० ।=)

इस बालोपयोगी पुस्तक में २० उत्तम कहानियों का संग्रह है। भाषा सरल, सुबोध होने के कारण बच्चे इसे चाव से पढ़ सकते हैं। माता पिताओं को अपने बालकों के हाथ में यह पुस्तक अवश्य देनी चाहिये।

मदशाला—लेखक—कृष्णचन्द्र शर्मा 'चन्द्र' प्रकाशक—चैत्यधाम, मेरठ, मू० ।।)

आजकल हिन्दी कवियों की रुचि 'हालावाद' की ओर बढ़ रही है। कवि सम्मेलनों में श्रोतागण भी 'मदशाला' सम्बन्धी रचनायें सुनने को बड़े उत्सुक रहते हैं। यदि वास्तव में ये रचनायें जनता में मद्य-का प्रचार करती हैं तथा रचयिताओं का भी यही अभिप्राय रहता हो तो ये देश के लिए अवश्य ही हानिकारक हैं। किन्तु हमारा ख्याल है कि कविगण इन रचनाओं में आध्यात्मिकता का पुट देकर सच्चे प्रेम का दिग्दर्शन कराने की कोशिश करते हैं। प्रस्तुत पुस्तक के लेखक का विचार है कि मनुष्य जीवन की प्रत्येक परिस्थिति में एक मस्ती और तन्मयता का रहना आवश्यक है अतः मनुष्य में जीवन-मद का सँचार होना अनिवार्य है। इस पवित्र उद्देश्य को सामने रखकर आपने यह पुस्तक लिखी है। प्रेम के नाम पर युवक समाज में फैली 'वासना' के स्थान पर सच्चे स्वर्गीय प्रेम को प्रकट करने के लिए 'सूफी सम्प्रदाय' के सिद्धान्तों का भी प्रतिपादन किया है। लेखक ने इस पुस्तक में हिन्दी तथा उर्दू—दोनों भाषाओं के व्यवहारिक शब्दों का प्रयोग किया है जिससे इसकी वर्णन शैली अधिक रोचक हो गई है। पुस्तक साहित्यिकों के लिए पठनीय है।

मेरा देश—लेखक—भगवत्प्रसाद शुक्ल 'सनातन'; प्रकाशक—ग्रामोत्थान पुस्तकालय पो० बहादरगढ़ (मेरठ) पृष्ठ सँख्या ६० मू० ।।)

देश सेवा के भावों से प्रेरित होकर कवि ने अपने विभिन्न अवसरों पर निकले हुए उद्गारों का इस पुस्तक में सँग्रह किया है। मां-बेटे, भाई-बहन और पिता-पुत्र का देश सेवा में क्या कर्त्तव्य होना चाहिए, इसका चित्रण लेखक ने बड़े ही मार्मिक शब्दों में किया है।

आदमी बनो—लेखक—उपरोक्त तथा प्रकाशक—उपयोगी पुस्तकमाला कार्यालय मौडर्न प्रिंटिंग मशीन प्रेस शीश महल मेरठ। पृष्ठ सँख्या ५० मू० ≡)

जिनको परमेश्वर ने आदमी बनाकर भेजा है उनको इस पुस्तक के पढ़ने से पता चल जायेगा कि वह वास्तव में आदमी है या नहीं। हालांकि इस पुस्तक को पढ़कर भी कोई पूरे अर्थों में आदमी नहीं बन सकता। फिर भी आदमी बनने का कुछ दूर तक तो यह पुस्तक मार्ग दिखलाती ही है। अतः अच्छा हो प्रत्येक व्यक्ति जिसकी आदमी बनने की चाह है इस पुस्तक को देखे।

भूल-सुधार

दिसम्बर मास के अङ्क के ५० वें पृष्ठ पर जिस पुस्तक का नाम 'सँघ धर्म तथा सेवा मार्ग' छप गया है, उसका सही नाम 'सेवा धर्म तथा सेवा मार्ग' है तथा इसके प्रकाशक का ठीक पता—साहित्य रत्न भण्डार, आगरा है। पाठक ठीक करलें।
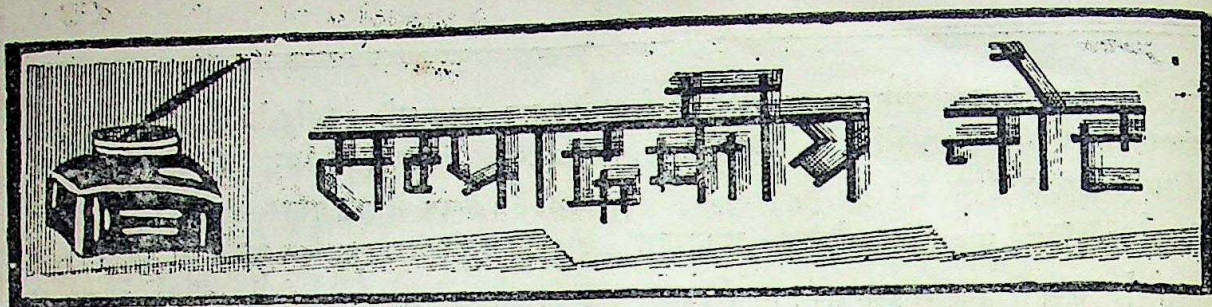
देशी राज्यों में जागृति—

नवयुग ने सबकी आंखें खोल दी हैं। आज कोई किसी का गुलाम बनकर रहना नहीं चाहता। आज चहुं ओर आज़ादी की चर्चा है, आज़ादी की हवा बह रही है। पराधीनता और परवशता से मानो मानवता ऊब गई है। ऐसी हालत में देशी राज्यों की दीर्घकाल से अँधकार में पड़ी हुई पीड़ित और पददलित प्रजा कैसे अछूती रह सकती थी? उसने भी उत्तरदायी शासन की माँग का आंदोलन जोरों से शुरू कर दिया है। आज़ादी का यह आंदोलन दिनोंदिन जंगल की आग की तरह फैलता जा रहा है। आग की लपटें कशमीर से कुमारी अन्तरीप तक जा पहुँची हैं। देशी राज्यों के शासन डोल गये हैं। वे हैरान और परेशान हैं कि हमारी राजभक्त, सीधी सादी और भोली भाली जनता को हो क्या गया? उसे किसने भड़का दिया है, उत्तेजित कर दिया है? प्रजा में अभूतपूर्व जागृति की चिनगारियों को देखकर देशी नरेश बाहर वालों को कोस रहे हैं। उनका खयाल है कि उनकी जनता में जो क्रांति व बेचैनी पैदा हुई है, उसकी जिम्मेवारी बाहर वालों पर है। जो ऐसा ख्याल करते हैं वे भ्रान्ति में पड़े हैं। वे समय के प्रवाह और मानव स्वभाव से अनभिज्ञ हैं। वे नहीं जानते कि संसार में आज क्या हो रहा है। वे नहीं जानते कि निरंकुशता और स्वेच्छाचारिता की आज धज्जियाँ उड़ाई जा रही हैं। वे नहीं जानते कि प्रजा अब अधिक जुल्म व सितम बर्दाश्त नहीं कर सकती। वे नहीं जानते कि उनकी प्रजा के लिए अब कीड़े-मकोड़ों का सा जीवन बिताना असह्य हो गया है। वे नहीं जानते कि जनता अब राजा को ईश्वर का प्रतिनिधि मानने को तैयार नहीं है। वे नहीं जानते कि 'करमन की गति न्यारी ऊधो', 'समरथ को नहीं दोष गुसाईं', 'यथा राजा तथा प्रजा' आदि जैसे दकियानूसी विचारों को सुनते सुनते जनता के कान पक गये हैं। वे नहीं जानते कि उनकी प्रजा दयनीय स्थिति में है, मानवोचित अधिकारों से वँचित है तथा दाने-दाने को तरस रही है जबकि वे खुद अपने महलों में गुलछर्रे उड़ा रहे हैं। वे नहीं जानते कि उनकी प्रजा ने उनकी पोल को भली-भांति समझ लिया है। वे नहीं जानते कि उनकी प्रजा में यह आन्दोलन स्वतः पैदा हुआ है। वे नहीं जानते कि उन्हीं की ज्यादतियों और काली करतूतों ने प्रजा को इस आंदोलन के लिए प्रेरित किया है।

देशी नरेशों को समझ लेना चाहिए कि उनकी प्रजा अपने जन्म-सिद्ध अधिकार के लिए भारी से भारी कुर्बानी करने को तैयार है। उन्हें समझ लेना चाहिए कि प्रजा अब उनकी चिकनी चुपड़ी किन्तु थोथी बातों में फंसने वाली नहीं है, वह तो अब उत्तरदायी शासन लेकर ही दम लेगी। उन्हें समझ लेना चाहिए कि मन-मानी करने, भोग विलास की सामग्री जुटाने पर लाखों रुपये खर्च करने तथा जनता की खून पसीना बहाकर पैदा की हुई कमाई पर मजे उड़ाने के दिन अब लद गये हैं। उन्हें आंखें खोलकर देख लेना चाहिए कि गिरफ़्तारियां, जेल, कानून, अदालत, लाठी चार्ज और गोली-काँड प्रजा की आज़ादी की भावनाओं को नहीं कुचल सकते। उन्हें समझ लेना चाहिए कि प्रजा के हार्दिक सहयोग के बिना वे एक दिन भी अपनी गद्दी पर टिके नहीं रह सकते। किन्तु खेद है कि वे टस से मस होना नहीं चाहते। उनके कारनामों से यही प्रतीत होता है कि वे समय के प्रवाह से फायदा उठाना नहीं चाहते, अपने निहित स्वार्थों को छोड़ने की तत्परता नहीं दिखाते।

प्रजा की न्यायोचित मांगों को स्वीकार न कर वे दमन से अपना उल्लू सीधा करना चाहते हैं। वे समझते हैं कि दमन-चक्र चलाकर, लोगों को जेलों में ठूंसकर, वे प्रजा की उमंगों को दबाने में सफल हो जायेंगे। ऐसा मालूम होता है कि वे इतिहास से कोई सबक लेना नहीं चाहते। वे नहीं जानते कि दमन तो आग में घी का काम करता है। दमन से आंदोलन ज़ोर पकड़ता है, कम नहीं होता। नौकरशाही ब्रिटिश भारत में इन सब हथियारों को आज़मा चुकी है और बुरी तरह असफल हो चुकी है। राजकोट के दीवान केडल सा० को भी बड़ा नाज़ था कि वे अपनी दमन-नीति से सत्याग्रह आँदोलन को कुचल देंगे और दरबार का बाल तक बांका न होने देंगे। लेकिन सत्य के सामने केडल साहब की एक न चली और अंततः राजकोट दरबार को प्रजा के सामने घुटने टेकने पड़े। अब राजकोट दरबार ने अपनी रियासत में उत्तरदायी शासन की घोषणा करके अपना पीछा छुड़ाया है। सुबह का भूला शाम को घर लौट आये तो उसे भूला नहीं कहना चाहिए। अतः हम ठा० साहब को उनके ठीक रास्ते पर आने के लिए बधाई देते हैं।

राजकोट की शानदार विजय ने स्पष्ट कर दिया है कि देशी राज्यों में उत्तरदायी शासन स्थापित हो कर ही रहेगा। महात्मा जी ने ठीक ही कहा है कि 'देशी नरेश या तो अपना अस्तित्व बिलकुल मिटा देने के लिए तैयार हो जायें या वे अपनी प्रजा को पूर्ण उत्तरदायी शासन के अधिकार दें और स्वयं उनके सँरक्षक बनकर रहें तथा अपने परिश्रम के लिए पुरस्कार लें।' इसके सिवाय कोई दूसरा रास्ता नहीं है। महात्मा जी की इस दोस्ताना चेतावनी के बाद भी यदि देशी नरेश नहीं चेते तो उनका विनाश निश्चित है। दुनिया की कोई शक्ति - उनकी सर्वोत्तम शत्ता - भी उन्हें डूबने से नहीं बचा सकेगी। देशी राज्यों का यह आँदोलन देश-व्यापी आन्दोलन का रूप धारण करता जा रहा है। इस बात से कोई इन्कार नहीं कर सकता कि भारत एक और अखण्ड है। कांग्रेस को इस अखण्डता की रक्षा के लिए सब कुछ करना होगा। अपनी हस्तक्षेप न करने की नीति को बालाए ताक रखकर उसे देशी राज्यों की प्रजा के स्वत्वों की रक्षा करनी होगी। वह अलग-थलग होकर रियासतों में अत्याचार का ताण्डव नृत्य होते न देख सकेगी। हाल ही में वर्धा में हुई कांग्रेस की कार्यकारिणी समिति ने स्पष्ट शब्दों में घोषणा कर दी है कि कांग्रेस देशी राज्यों के आंदोलन की उपेक्षा करके निरपेक्ष नहीं रह सकती।

हमें खुशी है कि समय की गति को समझकर कुछ देशी नरेशों ने अपनी रियासतों में उत्तरदायी शासन स्थापित करने की ओर क़दम बढ़ाया है। इनमें औंध और सांगली नरेशों के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। उत्तरदायी शासन की स्थापना की घोषणा करते हुए सांगली नरेश ने बिलकुल ठीक कहा है कि 'हमें समय के प्रवाह के साथ आगे बढ़ना होगा और अपने यहाँ की शासन व्यवस्था को आधुनिक ढँग की बनाने के लिए कोई भी बात उठा न रखनी होगी। मेरा विश्वास है कि वह समय आ गया है जब शासन व्यवस्था में और अधिक प्रगति करके प्रजा के सहयोग को रोजमर्रा के शासन के लिए अधिक प्राप्त किया जाए।' क्या हमारे देशी नरेश इस नेक सलाह को हृदयँगम कर समय रहते रहते चेतेंगे? क्या वे अपनी दुःखी और विक्षुब्ध प्रजा को सन्तुष्ट कर, अपनी बुद्धिमत्ता और दूरदर्शिता का परिचय देंगे? क्या वे अब भी अपने गुमराह और खुशामदी सलाहकारों के झांसे में आकर अपनी कब्र अपने ही हाथों खोदने का दुस्साहस करेंगे?

कांग्रेस किधर ?—

कुछ वर्षों से कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशन पर राष्ट्रपति का जलूस बड़ी सज धज से निकाला जाने लगा है। हम यह मानते हैं कि राष्ट्रोत्थान में ऐसे प्रदर्शनों के लिए स्थान है और होना चाहिए। लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि हम प्रदर्शन करते समय हकीकत को भी भूल जायें और नई रूढ़ियों को प्रोत्साहन दें। गत वर्ष राष्ट्रपति का जलूस ५१ बैलों के रथ में निकाला गया था, और इस बार समाचार पत्रों से ज्ञात होता है कि वह ५२ हाथियों पर निकाला जाएगा। हमने जब यह समाचार अखबारों में पढ़ा तो हम चौंक पड़े और सहसा हमारे मुँह से निकल पड़ा कि 'कांग्रेस किधर ?' हम समझते हैं कि ऐसी बनावटी और दिखावटी बातों से कांगरेस की शान नहीं बढ़ती। कांग्रेस का गौरव तो इस बात में है कि वह समय समय पर जनता से किये गये अपने वायदों को पूरा करे, भूखे और नंगों के लिए रोटी और कपड़े का जल्दी से जल्दी प्रबन्ध करे। हाथी-घोड़ों के जलूसों से भूखी मरती हुई जनता को शान्ति नहीं मिल सकती। अतः कॉंग्रेस को चाहिए कि वह इन दकियानूसी जलूसों को जो पुरानी सामन्त शाही और पूँजीवाद के चिन्ह हैं बन्द कर दे क्योंकि ऐसे जलूसों से कोई स्थायी लाभ नहीं हो सकता। क्या कॉंगरेस के कर्णधार इस ओर ध्यान देंगे ?

अपने ही हाथों भण्डा फोड़ !—

सीमान्त का प्रश्न दिनोंदिन भयंकर रूप धारण करता जा रहा है। लेकिन फिर भी भारतीय सरकार अपनी पुरानी नीति को बदलने के लिए तैयार नहीं है। वह कबीलों के हमले रोकने के लिए गरीब भारत का रुपया पानी की तरह बहा रही है। कबीलों के उपद्रवों पर १९२३ से १९३८ तक पिछले १५ वर्षों में वह २६ करोड़ रुपया फूँक चुकी है और पौने पाँच करोड़ से अधिक सैनिक कार्यों पर खर्च किया जा चुका है। जबतक सरकार सीमांत प्रदेश को गोरी फौजों के फौजी शिक्षण के लिए अपने हाथों में सुरक्षित रखने का मोह नहीं छोड़ेगी, तब तक यह प्रश्न कभी हल नहीं होगा। सरकार सदा यही रट लगाया करती है कि कबीले वालों के हमले साम्प्रदायिक भावना को लेकर हुआ करते हैं। लेकिन १९३७—३८ की कबीलों के इलाके की ताज़ा रिपोर्ट ने सरकार की नीति का भन्डा फोड़ कर दिया है। रिपोर्ट में जो आंकड़े दिये गये हैं उनसे स्पष्ट हो जाता है कि कबीले वाले हिन्दु और मुसलमान दोनों को ही लूटते हैं और उड़ाते हैं। मिसाल के तौर पर हजारा जिले में चार छापे मारे गये जिनमें २ मुसलमान घायल हुए, एक मुसलमान उड़ाया गया और एक की रिहाई के लिए रुपये की मांग की गई। मर्दान में जितने व्यक्ति उड़ाये गये वे सबके सब मुसलमान थे, बन्नू में उड़ाये हुये व्यक्तियों में १२ मुसलमान और ११ हिन्दु थे। इसी प्रकार जो व्यक्ति मारे गये उनमें ५ हिन्दु और ८ मुसलमान थे और घायलों में ६ मुसलमान और १२ हिन्दु। क्या ये आँकड़े इस बात को स्पष्ट नहीं करते कि छापा मारते समय कबीले वाले हिन्दु मुसलमान का खयाल नहीं करते ? यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि जब से सीमान्त प्रदेश में मौजूदा झगड़े शुरू हुए हैं तब से हमलों की तादाद बढ़ गई है। १९३१—३२ में हमलों की तादाद २१ और उड़ाये जाने वालों की सँख्या १६ थी। लेकिन १९३७-३८ में हमलों की तादाद ७४ और उड़ाए जाने वालों की सँख्या ५१ तक पहुंच गई। इससे साफ ज़ाहिर हो जाता है कि ज्यों-ज्यों सरकार गोला बारूद से काम लेती है त्यों-त्यों कबीले वाले अधिकाधिक भड़ककर लूट मार पर उतारू हो जाते हैं। समय आ गया है कि सरकार कबीलों के प्रदेश पर कब्जा करने की अपनी नीति को शीघ्रातिशीघ्र तर्क करके ऐसी नीति को अपनाए जिससे भूखों को रोटी मिले ताकि वे लूट मार का कभी खयाल ही न करें।

लाल फीता—

महात्मा गाँधी ने 'हरिजन' में लाल फीता' शीर्षक एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण लेख लिखा है। आप लिखते हैं कि—'अगर मन्त्री अपनी नई जिम्मेदारियों को पूरा करना चाहते हैं, तो उन्हें 'दफ़्तरी तरीके' को जला डालने का गुण तलाश करना चाहिए। मन्त्रियों को

उन लोगों से ज़रूर मिलना चाहिए, जिनकी सद्भावना से वे अपने पदों पर आसीन रह सकते हैं। उन्हें छोटी से छोटी और बड़ी से बड़ी शिकायतें ज़रूर सुननी चाहियें। ..... उन्हें अपने पास केवल इतने कागजात ही रखने चाहिएँ जिनसे कि उनकी याददाश्त ताजा रहे और काम का सिलसिला बना रहे. महकमाना खतोकिताबत कम हो जानी चाहिए। मंत्री इंडिया ऑफिस के सामने जवाबदार नहीं बल्कि वे अपने उन लाखों मालिकों के आगे जवाबदार हैं जो न तो यह जानते कि दफ़्तरी ढँग क्या है और न उन्हें उसके जानने की फिक्र ही है। उनमें से कितने ही तो लिख और पढ़ भी नहीं सकते, पर वे चाहते हैं कि हमारी मुख्य आवश्यकतायें पूरी हों। कांग्रेसवादियों ने उन्हें यह सोचना सिखा दिया है कि शासन सूत्र कांग्रेस के हाथ में आते ही हिन्दुस्तान में न कोई भूखा रहेगा और न कोई नंगा ही। मंत्रियों को इसी किस्म की समस्याओं को सुलझाने के लिए सोचने विचारने में समय देना चाहिए बशर्ते कि वे उस विश्वास के साथ न्याय करना चाहते हैं जिसका कि उन्होंने अपने ऊपर भार लिया हुआ है।" ऊपर की पंक्तियों में महात्मा जी ने जो कुछ लिखा है उसे मन्त्रियों को बड़े गौर से पढ़कर उस पर मनन एवँ अमल करना चाहिए। महात्मा जी की नेक सलाह पर चलकर ही मंत्री अपने वायदों को पूरा कर सकेंगे। अगर वे नौकरशाही के दकियानूसी तरीकों के माया जाल में फँसे रहे, फाइलों से ही दिन रात माथा-पच्ची करते रहे तो वे न तो अपनी गम्भीर जिम्मेदारियों को पूरा कर सकेंगे, और न जनता के अन्दर क्रांतिकारी मनोवृत्ति पैदा कर देश को आगे बढ़ा सकेंगे जिस उद्देश्य को दृष्टि में रखते हुए काँग्रेस ने पदग्रहण की इजाजत दी है। हम आशा करते हैं कि हमारे त्यागी और कर्मठ मन्त्री महात्मा जी की चेतावनी को हृदयँगम कर, प्रजा की असली समस्याओं को सुलझाने में दत्त-चित्त होकर लग जायेंगे।

अनुकरणीय त्याग—

चौधरी जगलाल बिहार सरकार के स्वास्थ्य और आबकारी विभाग के मंत्री हैं। आप जाति के हरिजन हैं। आप को ५००) मासिक वेतन मिलता है। आप इस वेतन में से केवल ५०) रुपये अपने निर्वाह के लिए रखकर बाकी का ४५०) हरिजन सेवक संघको हरिजनों की सेवा के लिए देदेते हैं। मंत्री होते हुए भी आप के घर में कोई नौकर या नौकरानी नहीं है। आप की स्त्री खुद पानी भर लाती हैं, घर की सफाई और सब काम भी खुद ही करती हैं। चौधरी जगलाल ने अक्तूबर मास में पंजाब का दौरा किया था। इस दौरे में आपने एक बार भी चाय नहीं पीई। आपका खयाल है कि चाय के बागों में काम करने वाले मजदूरों पर इतना जुल्म होता है कि हमें चाय पीने का कोई हक नहीं है। इसीलिए आप कई टी-पार्टियों में शामिल नहीं हुए। आप चीनी भी नहीं खाते। आपने अपने सारे दौरे में एक ही बार रेल से सफ़र किया बाकी समस्त दौरे में लारी और मोटर से ही काम चलाया। आपका रहन सहन खान-पान इतना सादा है कि उन्हें देखकर कोई यह अनुमान ही नहीं लगासकता कि वे किसी प्रान्त के वजीर तो क्या सरकारी नौकर भी होंगे। भारत जैसे गरीब देश का उत्थान ऐसे त्यागी-कर्मवीरों की कुर्बानी से होगा। क्या देश के कार्यकर्त्ता व पेटभक्त और पितृभक्त नवयुवक उनके जीवन से कुछ सबक सीखेंगे ?

आचार्य द्विवेदी जी का निधन—

हिंदी के धुरन्धर विद्वान, यशस्वी लेखक, साहित्य महारथी और सम्पादक सम्राट श्री आचार्य महावीरप्रसाद लम्बी बीमारी के बाद २१ दिसम्बर को चल बसे। आप के निधन से हिंदी संसार की जो क्षति हुई है उसका पूरा होना कठिन है। आप वर्षों 'सरस्वती' के सम्पादक रहे, बहुत सी पुस्तकें लिखीं। हिंदी सम्पादन कला के आप निर्माता तथा हिंदी की अनिश्चित शैली के स्थिर करनेवाले थे। हिंदी के आज जो अनेकों उच्चकोटि के विद्वान् दिखाई देते हैं, उनमें से अधिकांश ने आपके ही चरणों में बैठकर राष्ट्रभाषा सेवा की शिक्षा-दीक्षा प्राप्त की है। आप बड़े सरल हृदय, मृदुभाषी, मिलनसार, संयमशील थे। हिंदी संसार आपकी सेवाओं के लिए चिर ऋणी रहेगा।

—०—

संसार-चक्र

पँजाब

—नये बन्दोबस्त आराज़ी के अनुसार मालिया के बोझ को हलका करने के बजाय, बढ़ाकर सरकार ने किसानों के कष्ट बढ़ाये हैं। इसके विरोध में जिला लाहौर के किसान, असेम्बली हाल के सामने जबरदस्त प्रदर्शन करेंगे।

—शिरोमणी गुरुद्वारा प्रबन्ध कमेटी के चुनावों में ३९ निर्विरोध चुने जाने वालों में १८ सदस्य अकाली दल के हैं।

—पँजाब सरकार के इण्डस्ट्रीज़ विभाग की ओर से कच्ची सामग्री के अन्वेषण के लिए ४० रु० मासिक की छात्र वृत्ति, १ वर्ष के लिए ब्रिटिश पँजाब निवासी को देना स्वीकार किया है।

—पँजाब सरकार ने ३० नवम्बर तक हिसार के अकाल पीड़ित इलाके में १ लाख ३० हज़ार मन चारा रियायती दर पर बाँटा।

—लाहौर की अतरचन्द कपूर फर्म ने अपनी स्वर्ण जयन्ती पर २। लाख रुपया दान दिया जिसमें से २ लाख रु० के एक ट्रस्ट से एक खैरायती औषधालय खुलेगा।

—रावलपिण्डी ज़िले की एक सिख लड़की को जब यह पता लगा कि मेरी सगाई एक बूढ़े से हुई है तो उसने माता पिता को पत्र लिखा कि मैं जल मरूँगी किन्तु बूढ़े से शादी न करूँगी।

—शिमला म्यु० कमेटी के एक कांग्रेसी सदस्य के प्रस्ताव के अनुसार पंजाब सरकार ने कमेटी की कार्यवाई हिन्दुस्तानी में करने की स्वीकृति दे दी।

—नकोदर कमेटी ने प्रस्ताव पास किया है कि नकोदर पुलिस के लिए खद्दर की वर्दियां दी जायें।

—मौजा मल्हा (लुधियाना) की कांग्रेस में प्रस्ताव पास हुआ है कि ग्रामों के नम्बरदार चुनाव द्वारा चुने जावें।

—गवर्नर पंजाब ने फैसला किया है कि ६ मास के लिए ज़िला हिसार और तहसील रिवाड़ी के उन विद्यार्थियों से कोई फीस नहीं ली जायेगी जो पँजाब के किसी सरकारी दस्तकारी स्कूल में पढ़ रहे हैं।

सीमाप्रांत

—सीमाप्रांत सरकार बन्नू के हाथी खेल तथा मरवत इलाके में कुआं और तालाबों के बनाने के लिए ४० हज़ार रुपया खर्चा करेगी।

—मीराबहन आजकल सीमाप्रांत में पठानों के घरों में जाकर स्त्रियों को चर्खा चलाना तथा अन्य घरेलु दस्तकारियां सिखाती हैं।

—एक प्रसिद्ध वज़ीरी व्यापारी ने एक भेंट में म० गांधी के सम्बन्ध में कहा कि हम लोग उसे ईश्वर का दूत तथा सँसार का सबसे महान पुरुष मानते हैं. कबीले वाले उनके दर्शनों के लिए तरसते हैं।

—सीमाप्रांतीय असेम्बली में सरकार का किसानों की कर्ज़दारी सम्बन्धी बिल पास हो गया।

—सीमाप्रांतीय सरकार बन्नू के इलाके के पीड़ित व्यक्तियों को २० हज़ार रुपया बांटेगी।

यू० पी०

—काशी विद्यापीठ बनारस तथा जामियामिलिया देहली की डिग्री को यू० पी० की सरकार ने युनिवर्सिटी की बी० ए० की डिग्री के बराबर स्वीकृत किया है।

—यू० पी० के प्रधान मन्त्री श्री पन्त एक नंगे पैर तथा फटे पुराने वस्त्र पहने हुए आये गरीब किसान

की प्रार्थना स्वीकार कर उसके गांव में गए, सभा में भाषण दिया तथा उसी गरीब की झोंपड़ी में भोजन किया।

—यू० पी० सरकार की ओर से १० हजार रुपये की लागत की लारी में चलता फिरता अस्पताल खोला गया है। यह अस्पताल जिले-जिले में घूमकर ग्रामीणों को दवा देगा। भारत में यह पहला सफरी अस्पताल है।

—सरकारी कर्मचारियों को ५५ वर्ष की उमर के बाद अनिवार्य रूप से रिटायर करने की आज्ञा जारी कर दी गई है।

—यू० पी० सरकार ने शाही मन्जूरी लेकर अपना नया राजचिन्ह रखा है। इसमें रामचन्द्र जी का धनुष है जो गँगा से जमना तक है और इन दोनों के सँगम से आगे दोनों किनारों पर दो मछलियां पड़ी हैं जो अवध के नवाबों का चिन्ह होगी।

—सरकारी रेकार्डों और पत्र-व्यवहार में भविष्य में 'वर्नाक्यूलर' शब्द के स्थान पर 'प्रांतीय भाषा' या 'आधुनिक भारतीय भाषा' का प्रयोग किया जाया करेगा।

—यू० पी० असेम्बली में शीघ्र ही एक ऐसा बिल पेश होगा जिसके द्वारा पँचायतों को छोटी 'सोवियट' और स्थानीय म्यु० तथा जिला बोर्डों को छोटे२ प्रजातन्त्रों के से अधिकार दिये गये हैं तथा प्रत्येक व्यय प्राप्त व्यक्ति को म्यु० चुनावों में मत देने का अधिकार दिया गया है। ३० हजार ग्राम पँचायतें और एक हजार कमेटियां बनेंगी।

—भविष्य में यूरोपियनों के लिए नौकरियां सुरक्षित न रखने का फैसला कर लिया गया है।

बिहार

—बिहार सरकार अनिवार्य प्राइमरी शिक्षा लागू करने के लिए ४ लाख रुपया खर्चा करेगी तथा देहातों में बिजली पहुँचाने के लिए ३ करोड़ का कर्ज लेगी।

—बिहार सरकार उन लोगों को, जिन्हें असहयोग आंदोलन में भाग लेने के कारण सरकारी नौकरियों से अलग किया गया था अथवा जिन्होंने स्वयँ अस्तीफे दिये थे, पुनः सरकारी नौकरी में रखने तथा जो नौकरी न करना चाहें उन्हें पेन्शन देने का प्रबन्ध कर रही है।

—बिहार सरकार ने विद्या मन्दिर योजना जारी करने के लिए बेतिया जिले में ५८ विद्या मन्दिर खोलने का निश्चय किया है।

—बिहार कौंसिल में दो बिल पेश होंगे एक के अनुसार ४५ वर्ष से अधिक उमर का व्यक्ति १८ वर्ष से कम उमर की लड़की से शादी न कर सकेगा तथा दूसरे के अनुसार १ पत्नी के होते कोई व्यक्ति दूसरा विवाह न कर सकेगा।

बम्बई

—बम्बई सरकार ने प्रान्त के ग्रामों के लिये २ सौ डाक्टर रखने का निश्चय किया है जिसके लिये दो लाख रुपया वार्षिक खर्चा होगा। आयुर्वेदिक व यूनानी औषधालयों का भी आयोजन किया गया है।

—बम्बई सरकार ने १९३७-३८ में हरिजन उत्थान के लिए १ लाख रुपया दिया है।

—बम्बई के दो ट्रस्टों ने पशुपालन व कृषि शिक्षा के लिए यहां की सरकार को १४ लाख रुपया दिया है, जिससे गुजरात में एक कालेज खुलेगा।

—बम्बई सरकार ने ऐसी सूचना निकाली है कि जो आदमी अखबार, किताब, नोटिस आदि द्वारा नशीली चीजों का प्रचार करेगा, उनके गुण बखाने या हिमायत करे तो उसे १ हजार रुपया जुर्माना होगा।

—बम्बई सरकार ने अनाथ बालकों के लिए बाल-रक्षा-गृह खोला है जिसमें ७५० बालकों का प्रबन्ध होगा। भविष्य में और भी गृह बनाने की योजना है।

मद्रास

—मद्रास की सरकारी जमीन जाँच कमेटी ने बहुमत से तय किया है कि जमीन का मालिक उसको जोतने वाला काश्तकार है। जमींदार तो सिर्फ सरकार के माल उगाहने वाले एजेण्ट हैं।

—असेम्बली में एक महिला सदस्या ने प्रस्ताव पेश किया है कि हिंदू महिलाएँ मन्दिरों और धार्मिक सँस्थाओं को दान न दी जावें।

—मद्रास असेम्बली में मालाबार मन्दिर प्रवेश बिल, प्रजा को नागरिक अधिकारों का कानून, नशा बन्दी कानून व डिस्ट्रिक्ट बोर्डों के सुधार के बिल पास हो गए हैं।

सी० पी०

—सन १९४० ई० तक सी० पी० व बरार के सब प्राइमरी स्कूलों में वर्धा शिक्षा योजना के आधार पर शिक्षा देनी आरम्भ हो जावेगी।

—मध्यप्राँत की सरकार ने १ जनवरी से सारे सूबे में पूरी चरसबन्दी के कार्यक्रम पर अमल करने का निश्चय किया है।

—सी०पी के मन्त्रियों ने अपना १-१ मास का वेतन काँगरेस फण्ड में देने का फैसला किया है।

सिन्ध

—सिंध के प्रधान मन्त्री ने कड़ी चेतावनी दी है कि किसी अवस्था में मेरे सम्मान में कोई पार्टी न दी जावे। अभी उन्होंने हैदराबाद में दी जाने वाली पार्टी में हुए १००) खर्चा का चैक दिया था।

आसाम

—सब राजनैतिक कैदियों को रिहा कर दिया है।

—हरिजनों की शिक्षा के लिए ७५ हजार रुपया खर्च किया जायेगा।

—आसाम असेम्बली ने भी मन्त्रियों का वेतन ५ सौ रुपया तथा सौ रुपया मकान व मोटर भत्ता बिल पास कर दिया है।

देश

—३० जून १९३८ को समाप्त होने वाली तिमाही में ९४ श्रम-झगड़ों में ३८ लाख काम के दिन नष्ट हुए और ११। लाख मजदूरों ने इसमें भाग लिया।

—केन्द्रीय असेम्बली में गेहूं बिल पास हो गया है जिसके अनुसार गेहूं तथा गेहूँ के आटे पर १।) प्रति हण्ड्रेडवेट आयात चुंगी लगाई गई है।

—कानपुर महिला कांफ्रेंस में प्रस्ताव पास हुआ है कि कोई माता पिता ३५ वर्ष से अधिक आयु वाले पुरुष से अपनी लड़की की शादी न करे।

—श्री रोबिन चैटर्जी तथा एन० सी० भादुरा ने ८९ घण्टे १७ मिनट निरन्तर साइकिल चलाकर पहला रिकार्ड ६५ मिनट से मात कर दिया।

—हिंदुस्तान में कांग्रेस के ३८ लाख सदस्य बने हैं।

—सांगली के राजा ने उत्तरदायी शासन जारी करने की घोषणा कर दी है तथा राजकोट के दरबार ने लगातार कई मास के भीषण दमनचक्र लाठी-चार्ज व गिरफ्तारियाँ करके भी आखिर सत्याग्रहियों के सामने घुटने टेक दिये तथा राज्य में उत्तरदायी शासन जारी करके सभी कैदियों को छोड़ने व कड़े कानूनों को रद करने की घोषणा कर दी है।

विदेश

—इटली ने शस्त्रीकरण के लिए १० अरब लीरा की अतिरिक्त मन्जूरी दी है।

—जापानी माल के बहिष्कार के कारण सन ३८ के प्रथम ६ महीने में २१ फी सदी माल कम भेजा गया।

—टर्की के राष्ट्रनिर्माता कमाल अतातुर्क अपनी सब नकदी, सम्पत्ति तथा पूँजी रिपब्लिकन पीपिल्स दल के लिए छोड़ गये हैं। उनकी वसीयत दस लाख पौण्ड बताई जाती है।

—इस समय रूस में अखबारों की तादाद ३० करोड़ है।

—०:०—
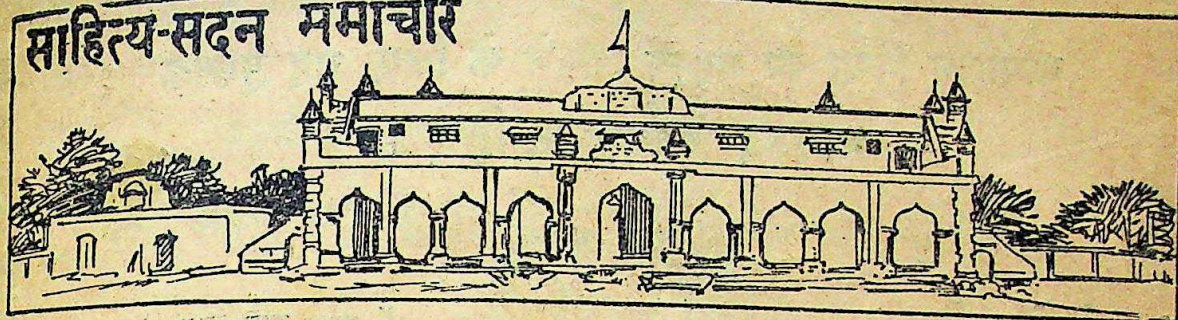
[कार्य विवरण, मास नवम्बर, १९३८ ई०]

केन्द्रीय पुस्तकालय

इस मास में २१६ पुस्तकें जनता द्वारा पढ़ी गईं। १२३ पत्र-पत्रिकायें प्रतिमास आती रहीं जिनमें हिन्दी, अँगरेजी, उर्दू, गुरुमुखी और गुजराती आदि के ७१ मासिक पत्र, ३५ हिन्दी साप्ताहिक, ६ गुरुमुखी साप्ताहिक ६ उर्दू साप्ताहिक, २ उर्दू दैनिक, २ हिंदी दैनिक तथा १ अँगरेजी दैनिक आते रहे हैं।

दान में प्राप्त पुस्तकों की सूची

१—ला० ईश्वरदास लोटा अबोहर, ने हिन्दी, अँगरेजी और उर्दू की ५६ पुस्तकें, १४=)॥ मूल्य की, पुस्तकालय को प्रदान कीं। पुस्तकों के नाम स्थानाभाव से नहीं दिये जा सके। इस सहायता के लिए सँस्था आपकी कृतज्ञ है।

२—८॥=) मूल्य की १४ पुस्तकें 'दीपक' कार्यालय से प्राप्त हुईं।

संग्रहालय

१—श्री चौधरी टीकमदास जी भूमियां-वाली ने भिन्न-भिन्न सन-सम्वत् तथा शासन काल के ५ धेले तथा पैसे संग्रहालय के लिए प्रदान किये।

२—श्री स्वामी केशवानन्द जी चीनी मिट्टी के बने रंग-बिरंगे सुन्दर-सुन्दर फलों के गुच्छे शिमला से लाये तथा इनके अतिरिक्त नीचे लिखी वस्तुयें आप होशियारपुर से लाये। चन्दन की लकड़ी का बना शेर, हिरन, ऊँट, गाय पीतल की, हाथी लकड़ी का, रँग-बिरँगी चार चिड़ियां, बगुला, ट्रे लकड़ी की तथा तीतर। इन सबका कुल मू० ९।=) है।

३—हस्तलिखित अध्यात्म रामायण गुरुमुखी सातों कांड सम्पूर्ण श्री महन्त हीरादास जी दानेवाला द्वारा प्राप्त।

चलता पुस्तकालय

मास नवम्बर में ३२ नईं पुस्तकें ३०॥।=)॥ मू० की आईं।

—००—

गोपालन विद्या का महत्त्व जानने के लिए यह पुस्तक
अवश्य देखनी चाहिए।

३० चित्रों सहित]

[पृष्ठ लगभग ३५०

गोपालन

तृतीय बार छपी है, इसमें पाँच खंड हैं। दूध, मलाई, मक्खन, घी इत्यादि २ की बनावट में रासायनिक पदार्थों का मेल; उनकी जाँच पर्ताल की नई २ रीतियाँ, गौ-भैंसों की बाबत जानने योग्य अनोखी बातें, दूध के पशुओं को अधिक दुधारू बनाने की सहज रीति, भले बुरे पशुओं की जाँच किस प्रकार की जाती है। अच्छे दूध के पशु कहाँ मिलते हैं, गौ चारण भूमि को किस प्रकार उपयोगी बनाया जा सकता है?

पशुओं की रोगावस्था में चिकित्सा और सुगम तथा सुलभ औषधियों का प्रयोग कौन कौनसी औषधियाँ गोशाला में रखनी चाहियें?

दूध और उसका व्यापार, डेरी फारम किस प्रकार सफलता पूर्वक चल सकती है? धार्मिक गोशालाओं से यथोचित लाभ उठाने की विधि सरकारी डेरियां कहाँ २ पर हैं। इस प्रकार की और बहुत सी अत्यन्त उपयोगी और अनूठी बातें इस पुस्तक में मैं। एक ५० वर्ष के अनुभवी लेखक द्वारा विस्तार पूर्वक लिखी गई है। सजिल्द पुस्तक का मूल्य केवल १।) रुपया, डाक व्यय अलग।

पुस्तक मिलने का पता--

भगवानदास वर्मा, भगवानदास स्ट्रीट, लाहौर छावनी।

REGD. No. L 3700

अनमोल बोल

मेरे पास एक दीपक है, जो मुझे मार्ग दिखाता है और वह है मेरा अनुभव। आपबीती से मैं अपने भविष्य की परीक्षा करता हूं।
—पैट्रिक हैनरी

* * *

पुलिस शक्ति द्वारा सुरक्षित आधुनिक शासितों के अत्याचारों से आत्मरक्षा का एकमात्र उपाय, जनता के लिए अहिंसात्मक असहयोग एवं भद्र अवज्ञा है।
—प्रो० हक्सले

* * *

कम उम्र और नाबालिग़ बच्चों के कच्चे दिमाग़ में ख़ास क़िस्म के विश्वास ठूँसना निकृष्टतम गर्भपात है।
—बर्नार्ड शा

* * *

विदेशी राज्य कितना भी दयालु क्यों न हो वह हमें बिना दबाए न छोड़ेगा; चाहे उसका उद्देश्य कितना ही अच्छा क्यों न हो। किन्तु उससे अहित छोड़कर हित कदापि नहीं हो सकता।
—अरविंद घोष

* * *

कमर पर सुनहली चपरास बाँधने और चाकरी में खड़े रहने की अपेक्षा जौ की रोटी खाना और ज़मीन पर बैठना अच्छा है। अमीर आदमी के सामने छाती पर हाथ बांधने से मिट्टी सानना अच्छा है।
—कल्पवृक्ष

* * *

मूर्खों के देश में लोग महापुरुषों को अवतार, नबी और महात्मा बना देते हैं, लेकिन उनकी आज्ञाओं पर अमल नहीं करते।

* * *

देश के सामने इस वक्त गुलामी, ग़रीबी और बेकारी के प्रश्न हैं। ये तभी दूर हो सकते हैं जब पहले गुलामी को दूर किया जाये।
—राष्ट्रपति सुभाषचन्द्र बोस

* * *

मृत्यु में आतङ्क नहीं होता। मृत्यु तो एक प्रसन्नतापूर्ण निद्रा है, जिसके पीछे जागरण का आगमन होता है।
—म० गाँधी

दीपक
१९-३-३७
पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी
१९९५
१९३९
संयुक्तप्रांत, मध्यप्रांत, बिहार, बम्बई, बड़ौदा, कोटा व राजगढ़ राज्य
शिक्षा-विभाग द्वारा पाठशालाओं व पुस्तकालयों के लिए
वा० मू०

{ दीपक—वर्ष ४, संख्या ५, मार्च १९३९ ई० }

'दीपक' के नियम

१—'दीपक' हर अंग्रेज़ी महीने के पहले सप्ताह में प्रकाशित होता है।

२—'दीपक' का वार्षिक मूल्य डाक व्यय व विशेषांक सहित केवल २।) है। एक प्रति ४ आने, विदेश से ४)।

३—'दीपक' में प्रकाशनार्थ लिखे जाने वाले लेख अधूरे न हों, पृष्ठ के एक ओर ही संशोधन के लिये इधर उधर जगह छोड़ कर सफाई से लिखे हों, विस्तार में चार पृष्ठ से अधिक न हों। भाषा उनकी सरल व शैली रोचक हो जिससे साधारण योग्यता वाले व्यक्ति भी जिनके हितार्थ 'दीपक' प्रकाशित हुआ है, उन्हें पढ़ व समझ सकें।

४—'दीपक' का मुख्य उद्देश **ग्राम-सुधार, समाज-उत्थान, शिक्षा व राष्ट्र-भाषा-प्रचार** द्वारा जनता-जनार्दनमें जीवन-जागृति पैदा करना है। अतः धार्मिक ईर्ष्या, साम्प्रदायिक विद्वेष पूर्ण उपरोक्त उद्देश्य के विपरीत कोई लेख न छप सकेगा।

५—लेख घटाने-बढाने, संशोधन करने तथा प्रकाशित करने या न करने का अधिकार संपादक को होगा।

६—'दीपक' के ग्राहकों को पत्र-व्यवहार करते समय अपना पूरा पता और ग्राहक नम्बर साफ अक्षरों में लिखना चाहिये, अन्यथा जवाब देर से मिलेगा। ३ मास से कम समयके लिये पता बदलवाने के लिये डाकखानेसे प्रबंध करें।

७—अस्वीकृत लेख डाक खर्च भेजने पर ही लौटाये जा सकेंगे अन्यथा नहीं।

८—जिन सज्जनों को किसी मास का 'दीपक' न मिले उन्हें पहले अपने डाकघर से पूछ ताछ करके बाद में हमारे पास लिखना चाहिये।

८—लेख, कविता, समालोचना के लिये पुस्तकें और बदले के पत्र, सम्पादक, 'दीपक' साहित्य सदन, अबोहर के पते से। और मूल्य तथा प्रबन्ध विषयक पत्र मैनेजर, 'दीपक' के पते से भेजने चाहिएं।

स्तंभ—सूची

कृपालु लेखक-लेखिकाओं से नम्र निवेदन है कि वे 'दीपक' के लिये कुछ लिखने से पहिले एक बार हमारे स्तंभों की सूची देख लें। इन स्तंभों के अतिरिक्त भाव-पूर्ण किन्तु सात्विक कविता और कहानियों के लिये भी 'दीपक' के कुछ पृष्ठ 'रिज़र्व' हैं। सरल भाषा में लिखे गये व्यवहारिक लेख 'दीपक' के श्रद्धापात्र होंगे।

—सम्पादक

गोपालन विद्या का महत्त्व जानने के लिए यह पुस्तक अवश्य देखनी चाहिए।

३० चित्रों सहित]

[पृष्ठ लगभग ३५०

गोपालन

तृतीय बार छपी है, इसमें पाँच खंड हैं। दूध, मलाई, मक्खन, घी इत्यादि २ की बनावट में रासायनिक पदार्थों का मेल; उनकी जाँच पर्ताल की नई २ रीतियाँ, गौ-भैंसों की बाबत जानने योग्य अनोखी बातें, दूध के पशुओं को अधिक दुधारू बनाने की सहज रीति, भले बुरे पशुओं की जाँच किस प्रकार की जाती है। अच्छे दूध के पशु कहाँ मिलते हैं, गौ चारण भूमि को किस प्रकार उपयोगी बनाया जा सकता है?

पशुओं की रोगावस्था में चिकित्सा और सुगम तथा सुलभ औषधियों का प्रयोग कौन कौनसी औषधियाँ गोशाला में रखनी चाहियें?

दूध और उसका व्यापार, डेरी फारम किस प्रकार सफलता पूर्वक चल सकती है? धार्मिक गोशालाओं से यथोचित लाभ उठाने की विधि सरकारी डेरियां कहाँ २ पर हैं। इस प्रकार की और बहुत सी अत्यन्त उपयोगी और अनूठी बातें इस पुस्तक में में। एक ५० वर्ष के अनुभवी लेखक द्वारा विस्तार पूर्वक लिखी गई है। सजिल्द पुस्तक का मूल्य केवल १॥) रुपया, डाक व्यय अलग।

पुस्तक मिलने का पता—

भगवानदास वर्मा, भगवानदास स्ट्रीट, लाहौर छावनी।

Approved for use in Schools in U.P., C.P., Bihar, Bombay, Orissa and Kotah State.

सत्यम् · · शिवम् · · सुन्दरम्

'दीपक' का लेखक-मण्डल

पाठकों को यह जानकर खुशो होगी कि 'दीपक' को अधिक उपयोगी व आकर्षक बनाने के लिए हमने एक 'लेखक-मण्डल' का आयोजन किया है। निम्नलिखित सुयोग्य लेखकों व राष्ट्रीय-कार्यकर्त्ताओं ने सहयोग देना स्वीकार कर लिया है:—

श्री विश्वप्रेमी राजामहेन्द्रप्रताप, टोकियो (जापान)।
श्री आचार्य अभयदेव सन्यासी, अरविन्दाश्रम, पाँडिचेरी
श्री जँगबहादुर सिंह सह०सम्पादक 'ट्रिब्यून' लाहौर।
श्री सुनामराय एम० ए० फाजिलका।
श्री व्रजभूषण मिश्र सम्पादक 'जीवनसखा' प्रयाग।
श्री उपेन्द्रनाथ 'अश्क' बी०ए०, एल०एल०बी० लाहौर।
श्री रामकृष्ण 'भारती' शास्त्री, लाहौर।
श्री रामावतार विद्याभास्कर, रतनगढ़ (बिजनौर)।
श्री मनीराम 'कँचन' तालबेहट झाँसी, (यू०पी०)।
श्री ठा० देशराज जी (यू० पी०)।
श्री भगवानदास केला, वृन्दावन, (यू० पी०)।
श्री भिक्षु नागार्जुन, चम्पारन (बिहार)।
श्री सरजूप्रसाद 'पेम' बिहार।
श्री रामकुमार 'स्नातक' जालौर (मारवाड़)।
श्री दयाशंकर मिश्र, अजमेर।
श्री त्र्यम्बक भट्ट, ग्रामसेवक विद्यालय, वर्धा (सी०पी०)
श्री प्रभुदयाल विद्यार्थी, मगनवाड़ी वर्धा, (सी०पी०)।
श्री हीरासिंह जींद राज्य।
"विनीत" बन्धु।

हृदय हुआ है खिन्न मेरा उसमें दुविधा ...
चारों ओर विपत्ति नहीं कोई सुविधा है ॥
मरना है जब हर तरह क्यों न कदम आगे धरूँ।
पड़ा पड़ा या पिछड़ कर कायर बनकर क्यों मरूँ ॥ २ ॥

Approved for use in Schools in U.P., C.P., Bihar, Bombay, Orissa and Kotah State.

सत्यम् :: शिवम् :: सुन्दरम्

सम्पादक—तेगराम

फाल्गुण १९९५ | वर्ष ४, संख्या ५ पूर्ण संख्या ४१ | मार्च १९३९

दुविधा का अन्त

[रचयिता—श्री दरबारीलाल 'सत्यभक्त']

पथ में कंटक बिछे, पड़ी है गहरी खाई।
खो बैठा सर्वस्व बची एक भी न पाई॥
बिपदाओं की घटा उमड़ती ही आती है।
बिजली भी यहीं कड़क कड़क मन धड़काती है॥
अन्धकार घनघोर है हुआ एक सा रात दिन।
पीछे भी पथ है नहीं और आगे बढ़ना है कठिन॥१॥

कैसे आगे बढ़ूं यहीं क्या पड़ा रहूँ मैं।
पड़ा पड़ा सड़ मरूँ कीच में गड़ा रहूँ मैं॥
हृदय हुआ है खिन्न भरी उसमें दुविधा है।
चारों ओर विपत्ति नहीं कोई सुविधा है॥
मरना है जब हर तरह क्यों न कदम आगे धरूँ।
पड़ा पड़ा या पिछड़ कर कायर बनकर क्यों मरूँ॥२॥

गद्य काव्य

दीपक !

[लेखक—श्री 'कण्टक']

दीपक !

स्वयं तिलतिल जलकर दूसरों को प्रकाश देने वाले दीपक !

जहाँ निराशा का अन्धकार था—वहाँ आशा का उजाला देने वाले दीपक !

तुम्हें मेरा नमस्कार है !

शत्-शत् झोंपड़ियों में जहां बीसवीं सदी का विज्ञान, आंखों को चकाचौंधकर देने वाली 'बिजली' बेकार है—सन्ध्या की धुन्धली वेला में वे नर-कंकाल तुम्हारे सामने ही तो नत-मस्तक होकर मूक-रुदन किया करते हैं। ओ मेरे प्रकाश के देवता दीपक !!

तुम्हें मेरा प्रणाम है !

आंधी ! क्या ? आंधी !!

मैं जानता हूं दीपक ! इसी आर्थिक-आंधी के कारण न जाने कितने सहोदर भाइयों ने भाई की गर्दन पर छुरी रक्खी, कितनी माताओं ने अपने हृदय के टुकड़ों की गर्दनें मरोड़ी। इसी आर्थिक तूफान ने ही तो इस चहकते भारत को आज बीहड़ कर दिया—इसीलिए तो आज मेरे घर में सूनेपन की उदासी साकार होकर अपनी करुण रागनी गा रही है।

किन्तु दीपक !

यह भयङ्कर आंधी ! और विश्व-विध्वंसक तूफान ! तुम्हारा कुछ भी न बिगाड़ सकेगा।

क्योंकि दीपक !

तुममें तपस्वी का तेज, त्यागी की सौम्यता, संयमी की सादगी और शहीद की सहनशीलता है।

इसलिए दीपक !

युग-युग तक कोटि-कोटि परवाने अपने प्राणों की आहुतियां देकर भी तुम्हें ग़रीबों के झोंपड़ों में—गगन-चुम्बी प्रासादों के पवित्र उत्सवों में—टिमटिमाते हुए देखना चाहेंगे।

क्योंकि दीपक !

तुम्हीं शोषित-वर्ग—किसान-मज़दूरों के सच्चे प्रतिनिधि, पथ-प्रदर्शक तथा सत्ता एवं ऐश्वर्य के मद में अन्धे हुए शोषक वर्ग को सद्-सद् विवेक कराने वाले हो, 'अन्धे की लकड़ी' हो।

ओ सादगी के पुजारी ! तिलतिल जलकर दूसरों को प्रकाश देनेवाले दीपक ! तुम्हें मैं करबद्ध हो—श्रद्धाञ्जलि समर्पित कर रहा हूं।

साम्प्रदायिक-समस्या

(ले०—श्री रामावतार विद्याभास्कर, रतनगढ़, बिजनौर)

> इस लेख में विद्वान् लेखक ने राष्ट्र रूपी वृक्ष को घुन की तरह खाने वाली सत्यानाशी साम्प्रदायिकता को जड़ मूल से उखाड़ फेंकने के लिए जो मौलिक विचार प्रकट किए हैं, वह प्रत्येक राष्ट्र-हितैषी के लिए मनन और अमल करने के योग्य हैं। हमारा दृढ़ विश्वास है कि साम्प्रदायिक-समस्या को हल करने का जो उपाय लेखक ने सुझाया है, उससे बढ़कर दूसरा और कोई उपाय नहीं हो सकता।
>
> —सम्पादक

आज भारत हिन्दू, मुसलमान, ईसाई पारसी यहूदी आदि अनेक झुण्डों में बटा हुआ है। साम्प्रदायिक संकीर्णता ने इन लोगों को पृथक्-पृथक् ही नहीं किन्तु एक दूसरे के खून का प्यासा तक बना डाला है यदि किसी प्रकार इन सब लोगों को साम्प्रदायिक संकीर्णता से ऊपर उठने के लिए समझाया जा सके तो सब झगड़े एक क्षण में समाप्त हो जायें और भारत में बसने वाले सब एक ही जाति के मनुष्य हो जाएँ। तब भारत की अनेकता का कारण नष्ट हो जाए और वह एक होने का गौरव भोग सके।

जो स्वार्थ भारत की पराधीनता का कारण है उसी ने साम्प्रदायिक-समस्या को जन्माया है। सबके ईश्वर भिन्न-भिन्न हैं। सबके ईश्वर-प्राप्ति के मार्ग भिन्न हैं। सब, सबके ईश्वरों तथा उसे पाने के मार्गों को मिथ्या समझते हैं। ये सब पृथक् ईश्वर-कल्पना के आधार से पृथक् हुए हैं। सबकी जेबों में अपने-अपने स्वार्थों की सूची पड़ी है और सब अपने लिए औरों से अधिक भाग चाहते हैं। यह समस्या लगातार देश की चिन्ता का विषय बनी हुई है। इसे सुलझाने के लिए सैंकड़ों बैठकें हो चुकने पर भी अब तक जो इसका समाधान नहीं हो रहा है उसका एक विशेष कारण है। कारण यह है कि इस समस्या को जिस रूप में सुलझाना चाहा जा रहा है उसमें समाधान हो सकना असम्भव है। जो इस समस्या को सुलझाने बैठते हैं वे सब से प्रथम यह भूल कर लेते हैं कि वे अपने-अपने को हिन्दु, मुसलमान आदि किसी सम्प्रदाय का अनुयायी प्रतिनिधि मानकर इसे सुलझाने बैठते हैं। वे अपने मनों में सम्प्रदायों को सचाई (ईश्वरीय रचना) मानकर और उन्हें स्वतन्त्र भारत के लिए भी स्वीकरणीय मानकर इसे सुलझाना चाहते हैं। सब अपने-अपने सम्प्रदायों तथा साम्प्रदायिक ग्रन्थों को ईश्वर का रचा हुआ मानते हैं। यही कारण है कि यह समस्या सुलझने के स्थान पर उलझती चली जाती है। सुलझाने वाले सब, न सुलझने के कारणों को बगल में रखकर इसे सुलझाना चाहते हैं। वे सब से प्रथम अपने मन में मनुष्य जाति के सम्प्रदायों में विभक्त हो बैठने का औचित्य स्वीकार करने की भूल कर लेते हैं और फिर इन सम्प्रदायों की एकता का दिखावटी प्रयत्न करते हैं! अर्थात् ये लोग देश के लोगों को पृथक् पृथक् सम्प्रदायों में बँटने की अनुमति देकर अर्थात् उन्हें अनेक रहने देकर फिर उन्हें एक बनाने का ऐसा प्रयत्न करते हैं कि जिसे असफल होना ही चाहिए। यदि मनुष्य जाति का ईश्वर के पवित्र नाम पर पृथक्-पृथक् झुण्डों में बट

जाना सचाई मान लिया जायगा तो फिर उन भुण्डों के स्वार्थों को भिन्न होने से कौन रोक सकेगा ? जब देश में अनेक स्वार्थ हो जायेंगे तब देश में एकता कहाँ से आयेगी ? और क्यों आयेगी ? क्योंकि इस समस्या का आधार कोई सत्य सिद्धान्त नहीं है । इसी से साम्प्रदायिक एकता वाले असफल होते हैं ।

यदि भारत अपने को इस व्याधि से मुक्त करना चाहे तो भारत के हिन्दू हिंदू न रहकर मनुष्य हो जाँय, मुसलमान मुसलमान न रहकर मनुष्य हो जाँय, ईसाई ईसाई न रहकर मनुष्य हो जाँय इत्यादि । राष्ट्र को अपनी ओर से एक भी भारतवासी को सम्प्रदायों के अनुयायी होने की अनुमति न देनी चाहिए । राष्ट्र की ओर से भूलकर भी साम्प्रदायिकता को कोई प्रोत्साहन न मिलना चाहिए । इस साम्प्रदायिक संकीर्णता का साहसपूर्वक राष्ट्रव्यापी विरोध होना चाहिए । जबकि राष्ट्र स्वतन्त्रता की सेवा करने जा रहा है, तब क्या वह अपने अधिवासियों को परतन्त्र रहने देकर, स्वतन्त्रता की सेवा कर सकेगा ? राष्ट्र को इस स्वतन्त्रता की सेवा के समय अपने प्रत्येक बच्चे को साम्प्रदायिक सँकीर्णता के विष से सर्वथा मुक्त करके स्वतन्त्र मनुष्य बना लेना चाहिए । नहीं तो स्वतन्त्रता अप्राप्त रह जायगी, क्योंकि साम्प्रदायिक लोग अपने-अपने ईश्वरों के नाम पर झगड़ते रहेंगे और स्वतन्त्रता नहीं आने देंगे । स्वतन्त्र भारत में न तो कोई हिन्दू होगा, न मुसलमान होगा और न कोई ईसाई होगा आदि । तब भारत भारतीय स्वतंत्रता की रक्षा करने वाले मनुष्यों का स्वतन्त्र राष्ट्र होगा । स्वतँत्र भारत में कोई भी मनुष्य अपने को इन साम्प्रदायिक नामों से कहलाना अपनी बौद्धिक दासता का चिन्ह मानेगा । स्वतन्त्र मनुष्य अपने को किसी सम्प्रदाय का अनुयायी कहता हुआ लजायेगा । मनुष्य का किसी सम्प्रदाय का अनुयायी होना सूचना देता है कि उसका मस्तिष्क स्वतन्त्र नहीं है । यदि राष्ट्र इस साम्प्रदायिक संकीर्णता का विद्रोही नहीं बनेगा तो देश सदा ही साम्प्रदायिकता के नाम पर अखाड़ा बना रहेगा ।

संसार की बहुत सी खून-खराबी, मारकाट आदि इन साम्प्रदायिक लोगों की ही कृपा के फल हैं । साम्प्रदायिकता के पेट में जो भाषा गूँज रही है उसे यदि लिपिबद्ध किया जाय तो उसे यह कहता हुआ पाया जायगा कि हम सच्चे, हमारा सम्प्रदाय सच्चा, दूसरे झूठे और उनका सम्प्रदाय झूठा । बताइये कि क्या यह मनोवृत्ति कभी किसी राष्ट्र को एक सूत्र में बंध जाने देगी । साम्प्रदायिकता विषैली भावना है । यह एक ही आदि-पुरुष की सन्तान को परस्पर लड़ाती है । इसे राष्ट्र में सम्मान का स्थान कैसे दिया जा सकता है ? दिया जाय तो राष्ट्र सुखी कैसे रह सकता है ?

दूसरों पर निर्भर रहने वाले मनुष्य ही सम्प्रदायों के अनुयायी बनते हैं । जो जिस सम्प्रदाय में अपनी आकांक्षा पूरी होता देखता है, वह उसी सम्प्रदाय को चुन लेता है । जिस सम्प्रदाय में अपनी इच्छा पूरी करने वाला ईश्वर दीखता है, मनुष्य उसी सम्प्रदाय में जाकर मुंड जाता है ।

ईश्वर को न पाया हुआ मानकर उसे किसी विशेष पद्धति से पाने की भावना रखना ही 'साम्प्रदायिक मनोवृत्ति' है । सम्प्रदायों का उपास्य ईश्वर सार्वजनिक ईश्वर नहीं होता । वह केवल उसी सम्प्रदाय की रुचि पूरी कर सकने वाला, केवल उसी सम्प्रदाय का घरेलू ईश्वर होता है । सम्प्रदायों की ईश्वर-कल्पना और उनकी उपासना का ढँग, एक दूसरे से सर्वथा भिन्न होते हैं । सम्प्रदायों ने नाना प्रकार के ईश्वर घड़ दिए हैं ।

सांप्रदायिक भावना में मनुष्य मात्र के उपास्य बनने योग्य ईश्वर का दर्शन नहीं मिल सकता । सम्प्रदायों के अधीन रहने वाले मनुष्यों के मन में सदा अप्राप्त वस्तु की मांग और प्राप्त की चिन्ता कराने वाली फलाभिलाषा बनी रहती है । यह फलाशा मनुष्य के मन में कामना रूपी अग्नि को सुलगाती है और उसे बलवान् नहीं बनने देती ।

स्वतन्त्रता की यही परम विशेषता है कि इसमें साम्प्रदायिक दुर्बल मनोवृत्ति की पूर्ण रूप से उपेक्षा की जाती है और मनुष्य को उसके मन में रहने वाली अनासक्ति रूपी शक्ति का दर्शन कराया जाता है ।

मनुष्य का ईश्वर कहीं बाहर ढूँढने की वस्तु नहीं है । मनुष्य का ईश्वर मनुष्य के हृदय में है । मनुष्य के मन

की पवित्रता ही उसका ईश्वर है। ईश्वर-भक्त इसी पवित्रता का पूजक, इसी का उपासक, इसी का आराधक या भक्त होता है। भक्त स्वयं ही अपना आराधक और स्वयं ही अपना आराध्य होता है। मनुष्य की मनुष्यता ही मनुष्य का आराध्य 'ईश्वर' है।

जिस दिन मनुष्य इस सच्चे ईश्वर को पहचानेगा, उस दिन उसका किसी सम्प्रदाय के ईश्वर से संबन्ध रखना असम्भव हो जायगा। उस अवस्था में पहुंचा हुआ मनुष्य अपने जीवन के प्रत्येक क्षण, कर्त्तव्य का दर्शन करता रहेगा, उस कर्त्तव्य को अपने अधिकार की सीमा में रहकर पालता रहेगा और इसी को 'ईश्वर दर्शन' मानेगा। यही उसकी 'ब्राह्मी स्थिति' कहायेगी। उसकी प्राप्त की हुई 'ब्राह्मी स्थिति' स्वयं ही अपनी रक्षा करती रहेगी। इस स्थिति में पहुंचा हुआ मनुष्य किसी कर्म से किसी भौतिक फल की आशा नहीं बांधेगा।

मन से फलाकाँक्षा को त्याग देने वाला ज्ञानी पुरुष ईश्वर को केवल अनासक्त मनोदशा के रूप में पाता है। ऐसा ज्ञानी किसी सम्प्रदाय के प्रवर्तक आचार्य को अपने मार्गदर्शन के रूप में कभी स्वीकार नहीं कर सकता। किसी साम्प्रदायिक धर्मग्रन्थ का वचन मनुष्य मात्र के आराध्य—सार्वजनिक सार्वभौम ईश्वर—का दर्शन नहीं करा सकता।

फलाकाँक्षा रहित मानसिक स्थिति एक ऐसी वस्तु है कि इसे सार्वजनिक रूप में समर्थन पाने का पूर्ण अधिकार है। इसको मानने में किसी भी विचारशील का मन विद्रोह नहीं कर सकता। स्वतन्त्रता के सेवकों को मनुष्य के मन की इस सार्वजनिक उदार अवस्था को अत्यन्त उज्वल रूप में सँसार के सामने रखना चाहिए। और इसी को देशवासियों का ईश्वर बनवाना चाहिए।

ईश्वर ने मनुष्य को केवल मनुष्य बनाकर भेजा है। उसने किसी को किसी साम्प्रदाय की भेड़ होने का चिन्ह लगाकर नहीं भेजा। सांप्रदायिक लोग अपने सार्वभौम मनुष्यता के अधिकारी बालकों के आस पास साम्प्रदायिक सँकीर्णता का मनुष्य को मनुष्य से पृथक् करने वाला जाल फैलाकर उनको विश्व व्यापी मनुष्यता का अधिकारी नहीं रहने देते। वे उन्हें भी सम्प्रदायों की भेड़ बना लेते हैं। यह मनुष्य की बौद्धिक-दासता का ऐसा कुपरिणाम है जिससे वह सबसे प्रथम अपने प्यारे बालकों को बाँध देता है।

यद्यपि ईश्वर ने मनुष्य को अपना मार्ग देखने की स्वतन्त्र बुद्धि देकर भेजा है, परन्तु मनुष्य इतना आलसी हो गया है कि वह अपना मार्ग स्वयँ देखना नहीं चाहता। वह अपने मार्ग का निर्णय किसी धर्म-ग्रन्थ में से या देवदूत की बातों के सहारे करना चाहता है। जो मनुष्य प्रत्येक मनुष्य को सत्य-मार्ग दिखाने के लिए सदा सबके मन में उपस्थित रहने वाले घट-घटवासी ईश्वर का नेतृत्व स्वीकार न करके किसी मनुष्य की समझ का भिखारी बनता है, वह कभी स्वतन्त्रता का आनन्द नहीं भोगेगा।

सँसार की किसी भी धर्मपुस्तक या किसी भी देवदूत को ईश्वर तथा मनुष्य का बिचौलिया या दुभाषिया मानना अपनी विचार-शक्ति तथा अपनी मनुष्यता का अपमान करना है। हम भी तो मनुष्य हैं। हमारे पास भी तो बुद्धि-रूपी ईश्वर की देन—विद्या है। हमारे हृदय में भी तो ईश्वरीय वाणी गूंज रही है। फिर हम किसी को अपना और ईश्वर का बिचौलिया क्यों मानें? ईश्वर ऐसी सत्ता नहीं है जो मनुष्य से पर्दा करती हो और सर्वसाधारण से बोलती हुई डरती हो तथा विशेष मनुष्यों पर कृपा करके उनके साथ बोलती हो।

ईश्वर मनुष्य से पृथक् सत्ता नहीं है। ईश्वर को देखना चाहो तो सत्पुरुषों के मन में देखो। सत्पुरुषों के शरीर में ईश्वर ही मानव-लीला करता है। जिसने अपना सत्पुरुषपना सुरक्षित नहीं रखा वह जीव है। जिसने रख लिया वही ईश्वर है। मनुष्य की हार्दिक पवित्रता से ऊँचा संसार में कुछ भी नहीं है। उसकी हार्दिक पवित्रता ही ईश्वर नाम से सम्मानित की जाती है। यह ईश्वर प्रत्येक मनुष्य की मनुष्यता के रूप में, प्रत्येक के भीतर पवित्र, दृढ़ विचारों के रूप में प्रत्येक धर्म-संकट के अवसर पर कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य के प्रत्येक दुराहे पर जागृत रहकर प्रत्येक मनुष्य को कर्त्तव्य की सच्ची दिशा सुझाता रहता है। मनुष्य की हार्दिक-पवित्रता ही मनुष्य का ईश्वर और मनुष्य की धर्मपुस्तक

है। इस धर्मपुस्तक में धर्मसंकटों को पार करने के कोटि-कोटि उपाय लिखे पड़े हैं। परन्तु मनुष्य आलसी हो गया है कि वह इस अपनी स्वभाव-प्राप्त पुस्तक को न पढ़कर दूसरे की पुस्तक का दास बन गया है। किसी दूसरे की लिखी पुस्तक को अपनी धर्मपुस्तक मानना अपना मस्तिष्क गिरवी रख देने की स्थिति है। पुस्तक में से ज्ञान नहीं आता। पुस्तक तो जड़ है। ज्ञान चेतन है। ज्ञान हृदय की वस्तु है। अज्ञान से द्वन्द्व-युद्ध ही ज्ञान का स्वरूप है। यह ज्ञान ज्ञानी में से आता है और यह पुस्तकों में लिख दिया जाता है। परन्तु इसे ज्ञानी ही ले सकता है, अज्ञानी नहीं। ज्ञान-प्राप्ति के लिए पुस्तकों का कोई उपयोग नहीं है। सँसार भर की पुस्तक अज्ञानी को ज्ञानी नहीं बना सकतीं। पुस्तक से ज्ञान नहीं लिया जाता। पुस्तक तो केवल सत्संग के साधन हैं। जिसके पास ज्ञान हो, वही पुस्तकों में ज्ञान लिखा देखकर सत्संग का लाभ उठाता है। सन्तों के नश्वर देह का अन्त होने पर भी समाज सन्तों से सत्संग कर सके, इसके लिए ग्रन्थों की रचना हुई। जिनके अन्तर में ज्ञान की ज्योति कुण्ठित हो जाती है, ज्ञान-ग्रन्थों को आद्योपांत पढ़कर उनमें से ज्ञान के स्थान पर अज्ञान ही अज्ञान बटोर लेते हैं। वस्तुत: ज्ञान पुस्तक की वस्तु नहीं है, वह तो ज्ञानी के हृदय की सम्पत्ति है। मनुष्य की हार्दिक पवित्रता ही ईश्वर का जीवित ज्ञान-ग्रन्थ है। जो मनुष्य इस ईश्वरीय ज्ञान-ग्रंथ की ध्वनि को काम, क्रोध आदि विकारों के कोलाहल में अनसुनी कर देता है, उसका सम्बन्ध इस ईश्वरीय पुस्तक से विच्छिन्न हो जाता है। जो मनुष्य इस ज्ञान-ग्रंथ की ध्वनि को काम, क्रोध आदि के कोलाहल में भी अपने हार्दिक कानों से सुनता है, वह ईश्वर को पा लेता है अर्थात् ईश्वर हो जाता है। कहने का तात्पर्य यही है कि मनुष्य के तथा ईश्वर के बीच में किसी देवदूत या धर्म-पुस्तक या गुरु नामक मध्यस्थ की कोई आवश्यकता नहीं है। इस सम्बंध में किसी बिचौलिए, दुभाषिये, दलाल की आवश्यकता होना, मनुष्य के निपट अज्ञानी होने का चिन्ह है।

इसलिए भारतीय स्वतंत्रता के सेवकों का यह भी एक कर्त्तव्य है कि वे अपनी दूरदृष्टि से देश में सम्प्रदायों के एकच्छत्र अधिकार को दृढ़तापूर्वक अस्वीकार कर दें। उन्हें चाहिए कि साम्प्रदायिक एकता के लिए कोई प्रयत्न न करके इस कल्पना को देश में से समूल नष्ट कर देने का प्रयत्न करें। उन्हें चाहिए कि मनुष्य के ऊपर से सम्प्रदायों के ईश्वर का आधिपत्य नष्ट कर डालें। उन्हें चाहिए कि मनुष्य को सार्वभौम ईश्वर का पता देकर 'मनुष्य को ही ईश्वर बन जाने का अधिकार है' यह सुसमाचार सारे देश में फैला दें। अर्थात् देश में से सर्वव्यापी मनुष्यता की शत्रु साम्प्रदायिकता को हटाकर मनुष्यता फैलाने का प्रयत्न करें।

यह बात बराबर देखी जा रही है कि जिस अनुपात से हिन्दू-मुसलिम एकता के प्रयत्न बढ़ते जा रहे हैं उसी अनुपात से अनेकता को प्रोत्साहन तथा पुष्टि मिल रही है। जिस प्रकार 'मत डरो-मत डरो' कहने से डरका प्रचार होता है, इसी प्रकार 'मत लड़ो-मत लड़ो' कहने से लड़ने का ही प्रचार होता चला जा रहा है।

जो मनुष्य-जाति एक ही आदि पुरुष से उत्पन्न हुई है, उसके अनेक धर्म होना, और उन सब अनेक धर्मों में सचाई होना सर्वथा असम्भव है। एकता ही सचाई है। अनेकता तो मिथ्यापन, बनावट और मन-घड़न्त है। संसार भर की मनुष्य-जाति का मनुष्यता ही एक मात्र धर्म हो सकता है। जिन लोगों ने मनुष्य-जाति को पृथक्-पृथक् धर्मों में विभक्त किया है, वे सब साम्प्रदायिक हैं और वे सब अज्ञानी हैं। वे सब सार्वभौम मनुष्यता के शत्रु हैं। वे विश्वव्यापी मनुष्य-जाति के अपराधी हैं। मानव-हृदय की पवित्रता तथा उस पर डटने की दृढ़ता ही सार्वभौम मनुष्यता का ऐसा रूप है जो सँसार भर के मनुष्यों को अच्छेद्य भ्रातृभाव में जकड़ सकता है। जो मनुष्य से मनुष्य को पृथक् बैठा देता है जो उन्हें परस्पर मिलने नहीं देता, जो दूसरों के लिए घृणा और द्वेष उत्पन्न करता है, वही साम्प्रदायिक है। मनुष्य जाति के टुकड़े-टुकड़े कर डालना ही साम्प्रदायिक का काम है। साम्प्रदायिक नास्तिक है। उसका ईश्वर से कोई सम्बन्ध नहीं है। वह ईश्वर के नाम पर दूकानदारी

करता है। सांप्रदायिक देशद्रोही है। वह स्वतन्त्रता का शत्रु है। वह संसार को अज्ञान में रखना चाहता है। वह कुछ लोगों का गुरु बनना चाहता है। वह धर्म-पुस्तक और देवदूत के नाम पर सँसार को ठगना चाहता है। गुरु, ग्रन्थ तथा सम्प्रदाय (मजहब) इन तीनों ने मिलकर मनुष्य जाति की सुन्दरता को नष्ट कर डाला है। जिस धर्म में अपने ही धर्म वालों को मनुष्य माना जाता है और दूसरे धर्म वालों को पतित और घृणय बताकर मनुष्यता को सँकुचित किया जाता है, वह धर्म धर्म नहीं है। राष्ट्र को ऐसे किसी भी मनुष्यता-द्वेषी धर्म (मजहब) को देश में प्रचार पाने का अधिकार स्वीकार नहीं करना चाहिए जिसका सार्वभौम मनुष्यता से सम्बन्ध न हो, किन्तु विरोध हो।

यदि साम्प्रदायिक समझौते के नाम पर सर्व-धर्म-समभाव की नीति स्वीकार कर ली जायगी तो देश में से परतन्त्रता का कारण ही नहीं हटेगा। यदि भेद को सचाई मान लीजिएगा तो फिर उसकी बौद्धिक-एकता करना असम्भव हो जायगा। यह समता बनावटी समता होगी जो कभी भी विषमता करने में देर नहीं किया करेगी। धर्मों का भेद न होना ही धर्मों के सत्य होने की कसौटी है। स्वतन्त्र राष्ट्र को यह स्वाभिमान होना ही चाहिए कि हमारे देश में मनुष्य बसते हैं, सांप्रदायिक नहीं !

सब धर्मों में सचाई हो सकती है। यह बड़ा भ्रम-पूर्ण विचार है। सचाई के विषय में इस प्रकार संदिहान रहने से काम नहीं चलेगा। यदि सब धर्मों में सचाई होती तो ये सब पृथक्-पृथक् ही क्यों बनते। इन सबका पृथक् पृथक् होना ही इन सब में सचाई के अभाव की घोषणा कर रहा है। सचाई कोई आकाश का तारा नहीं है कि वहां मनुष्य की पहुंच न हो सकती हो, सचाई ऐसी वस्तु नहीं है कि जिसकी मनुष्य के पास कसौटी न हो। मनुष्य-हृदय की पवित्रता ही सचाई है। हम पूर्ण हैं, हम अभ्रान्त हैं, हम आनन्दस्वरूप हैं—मनुष्य को इस प्रकार का आत्मबोध हो जाना ही सचाई है। मनुष्य मन का अप्रभावित, निर्विकार हो जाना ही सचाई है। यह सचाई मनुष्य के लिए अगम्य नहीं है। यदि सचाई मनुष्य के लिए अगम्य, अर्धगम्य या अँशगम्य रहेगी तो मनुष्य को अपना जीवन अन्धेरे में बिताना पड़ेगा। बताओ कि क्या ईश्वर ने मनुष्य को सँसार में अन्धेरे और अज्ञान में रहने के लिए उतारा है? क्या मनुष्य को ईश्वर ने मनुष्य के साथ कोई ऐसा ज्ञान दीपक जलाकर नहीं भेजा जिससे वह अपने धर्म-संकटों के अवसर पर अपना मार्ग देख सके ? नहीं-नहीं, मनुष्य के ईश्वर ने मनुष्य को सत्य के प्रकाश में जीवन बिताने के लिए हृदय की सावधान वाणी रूपी ज्ञान-दीपक जलाकर भेजा है। उसने मनुष्य के हृदय में एक ऐसी अनिवार्य, अखण्ड ज्ञान-ज्योति जलाकर भेजी है जो सत्य-असत्य या कर्तव्य-अकर्त्तव्य के प्रत्येक धर्म-सँकट या प्रत्येक दुराहे पर मानवीय गद्य-पद्य भाषा के रूप में मार्गदर्शी मशाल बनकर जल उठती है और मनुष्य को सत्यमार्ग दिखा देती है। यही ईश्वरीय वाणी है। यही ईश्वर का धर्मग्रंथ है। इसके अनुसार जीवन बिताने की दृढ़ता ही सत्यदर्शन है। इससे भिन्न सत्य-दर्शन नाम की कोई और अवस्था समझी जाती हो तो वह सत्य का धोखा है। मनुष्य हृदय की पवित्र ध्वनि ही सत्य है। मन की काम, क्रोध आदि से उठी हुई अवस्था ही सत्य है। जिस समय मनुष्य इस पवित्र मनोदशा में रहता है उस समय वह सम्पूर्ण सत्य का साक्षात् कर्त्ता, ऋषि, ज्ञानी, स्थित-प्रज्ञ, ब्रह्मदर्शी तथा ब्रह्मीभूत हो जाता है।

सत्य को प्राप्त करना प्रत्येक मनुष्य के जीवन का लक्ष्य है, प्रत्येक के लिए सम्भव है और प्रत्येक के लिए इतना सुलभ है कि जितना और कुछ नहीं। इतना सुलभ है कि सुलभता देखकर सहसा आश्चर्य करना पड़ता है और अपने विषयार्जन परायण काठिन्य-पूर्ण असत्य जीवन पर तरस आ जाता है। सत्य को छोड़कर शेष जितने पदार्थ हैं उन सबको मनुष्य को बाहर से लाना पड़ता है। वे सब कष्टदायक अनुचित श्रम से, अनेक स्वाभाविक साधनों तथा प्रयत्नों से प्राप्त होते हैं। उन पर

दूसरे विषयार्थी लोगों की श्येन-दृष्टि लगी रहने के कारण उन्हें प्राप्त करना संकट से शून्य नहीं होता। इसके विपरीत सत्य को प्राप्त करने में ऐसा एक भी भय नहीं है। उसे कहीं बाहर से लाना नहीं पड़ता। असत्य को अस्वीकार कर देना या असत्य से विपरीत चल पड़ना ही सत्य है। सत्य सब मनुष्यों के भीतर रहने वाली, सबको जीवित रखने वाली, प्राणदायिनी शक्ति है। सत्य को प्राप्त करने में कष्टदायक श्रम की, और प्रतियोगिता कराने वाले, चोरी तथा छीना झपटी के लिए ललचाने वाले, साधनों की अपेक्षा नहीं होती। इस पर किसी प्रतिपक्षी की दृष्टि भी नहीं पड़ सकती। जो पुरुष मिथ्या भाषण या मिथ्या व्यवहार करता है वह सत्य को विपरीत करके बोलता है या सत्य से विपरीत व्यवहार करता है। इसका यह अभिप्राय हुआ कि सत्यनारायण की वाणी तो सब मनुष्यों के हार्दिक कानों को सुनाई पड़ जाती है। केवल उसके अनुसार जीवन बिताने या न बिता सकने का प्रश्न रह जाता है, जो कि भले बुरे मनुष्यों का निर्माता है। आवश्यकता केवल इस बात की है कि मनुष्य सत्य में अटल रहने का पक्का निश्चय कर ले। इस दृष्टि से सत्य से सुलभ कोई भी पदार्थ नहीं है। सत्य को कष्टसाध्य या लगभग असाध्य बताने से सत्य की कोई सेवा नहीं होती। प्रत्युत ऐसे विचार सुनने से सत्य विमुखता को ही उत्तेजना मिलती है और सत्यार्थी हृदयों का उत्साह तोड़ा जाता है।

जो सत्य में यथा सम्भव पाने का बन्धन लगाते हैं या सत्य का सम्पूर्ण दर्शन न होने की बात पर विश्वास करते हैं, वे सत्यारूढ़ नहीं हो सकते। सत्यारूढ़ मनुष्य का पूर्ण रूप से सत्य का पालन करना अनिवार्य है। सत्य अनन्त है। उसकी शक्ति भी अनन्त है। जब मनुष्य सत्यारूढ़ होता है तब उसके पास सत्य की अनन्त शक्ति उतर पड़ती है। वह अनन्त शक्तिमान होकर सत्य के अनन्त रूप को देखता है और कहता है कि संसार की कोई भी शक्ति मुझे मेरे सत्य से विचलित नहीं करसकती।

सत्य अनन्त है, परन्तु साथ ही अखण्ड भी तो है। यदि सत्य के सम्पूर्ण दर्शन न होने के सिद्धान्त पर विश्वास करले तो सत्य को खण्डित मान लेना पड़ेगा। सत्य को खण्डित होकर दीखता हुआ समझना असत्य को सत्य समझना या असत्य के धोके में आना है। सत्य जब जहाँ दर्शन देता है तब वहां सम्पूर्ण ही दर्शन देता हैं। सत्य का अधूरा दर्शन या अधूरा संस्करण आज तक कभी नहीं हुआ। आंशिक सत्य, असत्य का ही धोका होता है।

जहां पवित्रता है, जहाँ पूर्णता है, जहाँ अभ्रान्ति है तथा जहाँ सच्चे सुख से भरपूर जीवन है;वहाँ सत्यनारायण अपनी षोडश कला से क्रीड़ा करते रहते हैं। जहाँ मन में पूर्णता है, जहां निःस्वार्थ भाव है, जहाँ निर्भमता और निःस्पृहता है, वहाँ पूर्ण सत्य का दर्शन हो रहा है। सत्य-दर्शन का इससे ऊंचा और कोई स्वरूप नहीं है। इस लिए राष्ट्र को शायद सब धर्मों में कोई न कोई सचाई हो, इस प्रकार के संशयग्रस्त विश्वास से चँचल न होकर साँप्रदायिकता को अस्वीकार कर देना चाहिए।

संप्रदायों में जितनी परस्पर मिलती हुई अविरोधी बातें हैं अर्थात् जितने सार्वभौम सत्य का वर्णन करने वाले प्रसंग हैं वे सब तो साम्प्रदायिक चार दिवारी में न समा सकने वाला सत्य है। वह सत्य साम्प्रदायिकों की वस्तु नहीं है। प्रत्येक सम्प्रदाय को पृथक् पृथक् करने वाले प्रसंग तो वे हैं जहाँ वे ईश्वर और मनुष्य के सम्बन्ध में दूसरों से पृथक् कल्पना और मार्गों का वर्णन करते हैं। वे वर्णन ही उन सम्प्रदायों की विशेषता हैं।

साम्प्रदायिक ग्रन्थों में कुछ अच्छे वर्णन देखकर कोई भी स्वतन्त्रप्रज्ञ मनुष्य उन्हें मान्य स्वीकार नहीं कर सकता। एक भी बहकी हुई बात करने वाले की सारी बातें ऊटपटाँग होती हैं। जैसे चोरी करने जाते समय पहना हुआ रामनामी दुपट्टा, गले में पड़ी हुई रुद्राक्ष की माला, तथा माथे पर लगा हुआ विशाल तिलक भी चोरी करने की भावना के अनुगामी होते हैं, इसी प्रकार मनुष्य की दृष्टि को संकुचित करने वाले साम्प्रदायिकों के अच्छे से अच्छे दीखने वाले वचन भी, उनके संकुचित वचनों के समर्थक होने के कारण, सर्वथा त्याज्य

(शेष पृष्ठ २८ पर)

भगवान का घर

[एक रूपक]

[ले०—काव्य कलाधर पं० सूरजचन्द डाँगी, बड़ी सादड़ी (मेवाड़)]

इस लेख में लेखक ने यह बताने की कोशिश की है कि दुनिया में धर्म के नाम पर होने वाली खूँरेजियां 'सर्वधर्म-समभाव' के सिद्धान्त को अपनाने से ही मिट सकती हैं। किन्तु हमारा ख्याल है कि जब तक लोग अपने अपने धर्मों से चिपटे रहेंगे और जब तक विभिन्न सम्प्रदायों का अस्तित्व रहेगा, तब तक दुनिया में सुख शान्ति न हो सकेगी। —सम्पादक

[भगवान सत्य-नारायण सँसार के समस्त संकट-रूप सर्पराज की सुन्दर शय्या बनाकर अपनी अखण्ड योग-निद्रा में मग्न हैं। भगवती अहिंसा महा-लक्ष्मी अपनी करुणा भरी दृष्टि से अखिल ब्रह्माण्ड के दुःखों को दूर करने का उपाय सोच रही हैं। पास में ही राम, कृष्ण, वीर, बुद्ध, ईसा मसीह और मुहम्मद आदि बच्चे खेल रहे हैं। इतने में गौ के समान दीन बनकर पृथ्वी माता प्रवेश करती है।]

भगवती—"पुण्यभूमि! आज तुम यहाँ कैसे?"

"महामाया! अब मुझे तुम पुण्यभूमि मत कहो, पुण्यभूमि तो मैं तब थी जब तुम्हारे ये बच्चे मेरे बेटों का दुःख दूर करने में—दिन-रात लगे रहते थे।"

"तो अब क्या हुआ? अब भी तो यह हज़ारों सन्तों को छोड़ आये हैं।"

"सच कहती हो मातेश्वरी; किंतु वे हज़ार संत तो हज़ारों पार्टियां बनाकर मेरे बेटों को लड़ना सिखाते हैं; दुःख दूर करने के बजाय मेरा सौ गुना दुःख बढ़ाते हैं। तुम्हारा नाम लेकर तो वे निरपराध जीवों की हिंसा का विधान करते हैं, और भगवान का नाम लेकर वे मन-घड़न्त कल्पनाएँ करते हैं। अपने स्वार्थ और अहँकार की पूजा करने के लिए वे मेरे बालकों को धोखा देते हैं और आप लोगों का झूठा स्वरूप बतला कर नाना प्रकार के भोग विलासों द्वारा अपना इन्द्रिय विषय पुष्ट करते हैं। और तो और, आपके इन राम, कृष्णादि पुत्रों को आपस में शत्रु समझते हैं। जिन ईसु महात्मा ने जन-समाज के उपकार के लिए क्रॉस पर लटकना खुशी से मन्जूर किया और जिन मोहम्मद साहब ने अनार्यों तक को आपके दर्शन कराये, उन्हीं महापुरुषों को वे लोग म्लेच्छ और मायावी कहते हैं और जिन राम और कृष्ण ने मेरा भार उतारने के लिए दुष्टों का नाश किया था, उन्हीं को काफ़िर और बदमाश

के नाम से पुकारते हैं। कहाँ तक कहूं माँ, जिन महाबीर और बुद्ध ने तुम्हारी बड़ी भारी सेवा के लिए जीवन भर फ़कीरी धारण करके नाना प्रकार के कष्ट सहे, उनको भी वे नास्तिक और पाखँडी की डिगरी देते हैं। समझ में नहीं आता इतना बड़ा अँधेर देख कर भी भगवान की योग-निद्रा क्यों नहीं खुलती"?

अहिंसा भगवती ने यह सब सुनकर दीर्घ निःश्वास लिया और राम, कृष्ण आदि बच्चों की तरफ़ सँकेत करके कहा:—

बच्चों! सुन रहे हो? पृथ्वी-माता क्या सुना रही है?

राम—"सब सुनता हूँ, जगदम्बे! परन्तु समझता नहीं कि मेरे छोटे भाइयों को नास्तिक और पाखंडी कौन कहते हैं?"

पृथ्वी—कौन क्या, तुम्हारे ही अनुयायी!

कृष्ण—हैं! हैं!! दादा राम के अनुयायी? भय्या वीर और बुद्ध को? ईसु और मुहम्मद को? घृणा की दृष्टि से देखते हैं! माँ, माँ, ऐसा क्यों?

पृथ्वी—वे कहते हैं कि हमारे राम और कृष्ण ने तो लोक कल्याण के लिए दुष्टजनों का सँहार किया, माता-पिताओं की खूब सेवा की, जन्म भर स्त्री-पुरुषों की रक्षा करते हुए दुनिया को मानव-धर्म की उत्तम शिक्षा दी; ब्राह्मणों को खूब आदर दिया और यज्ञ-याग-प्रमुख वैदिक क्रिया-कांडों का प्रचार और पालन किया। किन्तु इन वीर और बुद्ध ने जन्म लेकर तो वर्णाश्रम धर्म को चौपट कर डाला, वेद की खूब निन्दा की, और क्रिया-कांडों को जड़मूल से नष्ट-भ्रष्ट कर दिया, स्त्री पुत्रों को गोते छोड़ हाथ में एक झाड़ू पकड़ा और दुनिया में पाखण्ड धर्म का प्रचार किया। ईसु और मुहम्मद को तो वे अनार्य्य और मलेच्छ कह कर बिल्कुल घृणा की दृष्टि से देखते हैं।

कृष्ण—(सिर पर हाथ रखकर) हाय! हाय!! मातेश्वरी तुम्हीं बताओ, इसमें हमारा क्या अपराध है? मैंने तो स्पष्ट कहा था कि "सांख्य योगौ पृथक् बालाः प्रवदन्ति न पंडिताः, एकं सांख्य च योगं च यः पश्यति स पश्यति।" जिस समय हम पैदा हुए उस समय तुम खूब जानती हो, लोग अपनी मौज के लिए माँ-बाप और गुरुजनों तक को बँदी बनाते थे, कँस, जरासँध तथा रावणआदि दुष्टजनों के अत्याचार से तुम्हारी छाती फटी जाती थी उस समय हमको हमारे सनातन माता-पिता भगवान सत्य और भगवती अहिंसा की यही आज्ञा थी कि तुम दुष्टों का सँहार करो और जग-मर्यादा की रक्षा करने के लिए सम्पूर्ण वेद-बिहित कर्म करो, सँसार को कर्मयोग की शिक्षा दो। परँतु भाई वीर और बुद्ध

के ज़माने में तो वर्णों ने जातियों का रूप पकड़ लिया था, ब्राह्मण लोग शूद्रों की छाया तक को देखने में पाप समझते थे। वैदिक क्रिया-कांडों में भगवती अहिंसा का घोर अपमान हो रहा था। उस समय वीर, बुद्ध को जो भगवान की आज्ञा हुई वही उन्होंने किया और जगत को सन्यास का उपदेश दिया। वर्णों के झगड़े दूर किए और मेरे इस उपदेश को अक्षरशः सत्य करके बतला दिया "त्रैगुण्य विषयाः वेदाः निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन" उन्होंने निस्त्रैगुण्य बनकर सँसार के लिए नाना प्रकार के कष्ट समभाव पूर्वक सहन किए। हमने तो भूखों को भोजन दिया और वीर, बुद्ध ने रोगियों को उपवास कराना सिखाया। हमारी प्रवृति भी जन-हित के लिए थी और इनकी निवृति भी सब की भलाई के लिए ही थी।

वीर—दादा कृष्ण ने जो बात कही है, वह बिलकुल सत्य है—किन्तु मुझे इस बात का बड़ा आश्चर्य है कि मुहम्मद और ईसा भय्या को कौन अनार्य्य और मलेच्छ कहते हैं।

पृथ्वी—कौन क्या ? तुम लोगों के ही अनुयायी !!

बुद्ध—हैं ! हैं !! हमारे अनुयायी ! ईसा और मुहम्मद को मलेच्छ कहते हैं !! अचम्भे की बात है ! धर्म के नाम पर असाधारण त्याग करने वाले इन वीर पुरुषों को वे क्यों अपमान की दृष्टि से देखते हैं ?

पृथ्वी—वे कहते हैं कि—ये तो बर्बर समाज और असभ्य जनों के मुखिया हैं, गो मांस खाने वालों के गुरु हैं !!

बुद्ध—क्या उन लोगों की यह भी समझ में नहीं आता कि असभ्यों को शिक्षा देना कितना कठिन है ? जिस समय मुहम्मद पैदा हुए, मूर्तियों के नाम से मनुष्य तक की हत्या की जाती थी और ईसा के पैदा होने के समय मनुष्य मनुष्यता का गला घोंटता था। उस समय इन महापुरुषों ने अपना आत्मसमर्पण करके मनुष्यों को सँगठन सिखाया और शक्ति के अनुसार मनुष्यों पर दया लाने का उपदेश दिया।

ईसु—परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि हमने औरों को मारने का उपदेश दिया। उस समय मनुष्यों को नहीं मारना, इतना भी लोगों ने मान लिया यही बहुत था। किन्तु आज वीर और बुद्ध की कृपा से बनस्पति के स्पर्श में भी लोग भगवती का अपमान समझते हैं। अब तो हमारे अनुयायी कहलाने वालों को गो मांस छोड़ देना चाहिए था।

मुहम्मद—यह तो ठीक है किन्तु राम, कृष्ण वग़ैरा हमारे बड़े भाइयों को काफ़िर कौन

कहते हैं ? बड़े ग़ज़ब की बात है।

पृथ्वी—कौन क्या ? तुम्हारे ही अनुयायी।

मुहम्मद—अरे ! मैंने तो स्पष्ट कहा है कि प्रत्येक कौम में पैग़म्बर-रसूल होते हैं जो कि अपनी क़ौम को खुदा का पैग़ाम सुनाते हैं। किसी का भी अपमान करना गुनाह है। वे क्यों नहीं समझते ?

पृथ्वी—भाई ! तुम लोग तो सब मेरे दुःखों को दूर करने के लिए जी-जान से प्रयत्न कर गए। किन्तु तुम्हारे अनुयायी तो मेरा दुःख दिन दूना रात चौगुना बढ़ाते हैं। प्रतिवर्ष कुछ न कुछ बखेड़ा और खून-खच्चर तुम लोगों के नाम से मचा ही रहता है। मैं तो अब घबरा गई हूं। भगवान को जगाओ और विनय करो कि शीघ्र कुछ न कुछ उपाय करें, नहीं तो प्रलय हो जायगी। जगदम्बे ! करुणा करो और शीघ्र किसी महापुरुष को भेजो जो दुनिया को तुम्हारा सच्चा स्वरूप समझावे। तुम्हारे कष्ट के बिना मेरा शरीर नरक-पिण्ड के समान हो रहा है। मेरी बड़ी दुर्दशा हो रही है।

(सब मिलकर भगवान को जगाते हैं)

जगो प्रभु सत्येश्वर भगवान ॥
निर्गुण हो पर सब गुण धारी,
हो अकर्म सब कर्म बिहारी।
निराकार सर्वाकृति धारी,
तुम ही पुरुष प्रधान ॥ १ ॥ जगो० ॥

मन्दिर में तुम ही दिखलाते,
चैत्यालय में शोभा पाते।
गिरजाघर मस्जिद में जाते,
करते शान्ति प्रदान ॥ २ ॥ जगो० ॥

राम, कृष्ण, जिन, बुद्ध तुम्हारे,
ईसु मुहम्मद पुत्र दुलारे।
तुमको भजते भजते सारे,
पाते निर्मल ज्ञान ॥ ३ ॥ जगो० ॥

ज्ञानी बन सब ज्ञान सिखाते,
तीर्थंकर अवतार कहाते।
जग को निज जीवन दे जाते,
गाते तेरा गान ॥ ४ ॥ जगो० ॥

अन्धकार में अन्तर्यामी,
"सूर्य्य-चन्द्र" चमका दो स्वामी।
आकर फिर तेरा अनुगामी,
करदे क्रान्ति महान् ॥ ५ ॥ जगो० ॥

भगवान अपनी-योग निद्रा खोलते हैं। भू-देवी को आश्वासन देते हुए अपनी गम्भीर बाणी सुनाते हैं ! "देवी ! तुम चिन्ता मत करो। सँसार में उन्नति और अवनति का चक्र चला ही करता है। जब जब तुम्हारे ऊपर सँकट आया है। तब २ मैंने उनको दूर करने के लिए अपने किसी न किसी भक्त को भेजा है। अब भी मैं शीघ्र ही अपने किसी भक्त को भेजूंगा जो तुम्हें मेरा सन्देश सुनायेगा। तुम्हारे सब सँकटों को समझेगा, और उनको दूर करने का जीवन भर प्रयत्न करेगा।

पृथ्वी—धन्य है !! बोलो सत्येश्वर भगवान की.........सब—जय !

(पृथ्वी का प्रस्थान)

शिक्षा-समस्या

(ले०—श्री टी० जी० "विनीत")

ङ्गरेजी शासन के पूर्व हमारे देश की शिक्षा ५८ प्रतिशत थी। अकेले बङ्गाल में ही ८० हज़ार स्कूल थे। लेकिन अब तो यहां निरक्षरता ने मानो अपना डेरा ही जमा लिया है। गत् १५० वर्षों का हमारे देश का शिक्षा सम्बन्धी इतिहास अत्यन्त दुःखद और करुणोत्पादक है। हारटोग कमेटी की रिपोर्ट के अनुसार सन् १८९२ से सन् १९२२ तक अर्थात् ३० वर्षों में साक्षर पुरुषों की सँख्या १३.० से १४.४ प्रतिशत और साक्षर स्त्रियों की सँख्या ०.७ से २.८ तक बढ़ी है। साक्षर स्त्री तथा पुरुषों की सँख्या एक साथ लेने से पता चलता है कि उनमें ७० से ८.२ तक वृद्धि हुई है। सन १९३१ की मनुष्य गणना के अनुसार हमारे देश में २३९६९७२१ पुरुष और ४१६९१०५ स्त्रियां साक्षर थीं (इनमें वे भी शामिल हैं जो केवल अपने हस्ताक्षर मात्र ही कर सकते हैं)। यह सँख्या सम्पूर्ण जन सँख्या का ८.३ प्रतिशत है। इसके विपरीत यही आंकड़े डेन्मार्क में १००, जर्मनी में १००, जापान में ९९.२१, इंगलैंड में ९७, अमेरिका में ९५ और आस्ट्रेलिया में ९९.७ प्रतिशत हैं। दुनिया के १ अरब १० करोड़ अनपढ़ों में ३२॥ करोड़ अकेले भारत में हैं। जापान के साक्षरता-आंदोलन ने वहाँ के ९९.२१ प्रतिशत् व्यक्तियों को शिक्षित बना दिया है। रूस ने तो २० साल के अल्पकाल में ही अविद्या और निरक्षरता को अपने देश से काला मुँह करके निकाल दिया है। जर्मनी, फ्रांस, जापान आदि देश भारत के एक सूबे के बराबर हैं, पर वहाँ घर २ में ज्ञान की ज्योति जगमगा रही है। लेकिन हमारी दयालु (?) सरकार ने १५० साल में क्या किया? यहां तो १९२१ से १९३१ तक सिर्फ १ फीसदी तादाद पढ़े-लिखे लोगों की बढ़ी है, जबकि इन दस वर्षों में जनसँख्या १५ प्रतिशत बढ़ी है। इस प्रकार भारत में १९२१ की अपेक्षा १९३१ में अनपढ़ों की सँख्या लगभग ३ करोड़ अधिक होगई है। अगर यही बेढंगी रफ़्तार रही तो सदियों में भी भारत शत-प्रतिशत शिक्षित न हो सकेगा।

भारत अपनी आमदनी का केवल २ फी सदी शिक्षा पर खर्च करता है। इसके विपरीत इङ्गलैंड अपनी आमदनी का १० से २० फीसदी तक शिक्षा पर व्यय करता है। जहाँ भारत में प्रारम्भिक-शिक्षा लेने वाले प्रत्येक बालक पर प्रतिवर्ष ७॥≡)॥ खर्च होता है, वहाँ इङ्गलैंड में प्रत्येक बालक पर २३३॥) वार्षिक खर्च किया जाता है। जन सँख्या की दृष्टि से भारतवर्ष में जहाँ प्रति व्यक्ति ≈) खर्च किया जाता है, वहाँ डेन्मार्क में १७), अमेरिका में १६।), इङ्गलैंड में ९≈), फ्रांस में ९), जापान में ९) और फिलिपाइन द्वीप समूह में ८) खर्च होता है। इन आँकड़ों से रूस के जगत-प्रसिद्ध महात्मा टालस्टाय के इस कथन की पुष्टि हो जाती है कि 'सरकार की सत्ता प्रजा की जहालत पर निर्भर है।' विदेशी सरकार कभी भी यह गवारा नहीं कर सकती कि उसकी प्रजा शिक्षित हो या उसमें जागृति के अङ्कुर प्रस्फुटित हों। वह खूब जानती है कि उसकी भलाई इसी बात में है कि जनता अन्धकार और अज्ञान के अन्धकूप में पड़ी रहे। नौकरशाही ने हमें शिक्षित करने का जो थोड़ा-बहुत ढोंग रचा

है वह हमें मनुष्य बनाने के लिए, हमारा सर्वतोमुखी विकास करने के लिए नहीं—बल्कि अपना उल्लू सीधा करने के लिए, अपना शासन-सूत्र चलाने के लिए ! मेकाले ने साफ २ शब्दों में कहा था कि 'हमें यहां ऐसी शिक्षा का प्रचार करना चाहिए जिससे हमारे शासन के लिए ऐसे भारतीय काफी तादाद में मिल सकें जिनका शरीर तो भारतीय परन्तु आत्मा विदेशी हो।' यही कारण है कि शिक्षा पर करोड़ों रुपया खर्च होने पर भी हम पढ़ कर धोबी के कुत्ते की तरह न घर के रहते हैं और न घाट के। विद्यार्थी अपने जीवन में बुरी तरह असफल होते हैं—१५-२० रुपये की चाकरी के लिए वे दर २ भटकते फिरते हैं। वे शेक्सपीयर तथा मिलटन की रचनाओं की लम्बी-चौड़ी व्याख्या कर सकते हैं, लेकिन जीवन की ठोस हकीकत से वे कोसों दूर रहते हैं। फलतः जिन्दगी की जद्दो-जहद में वे बुरी तरह नाकामयाब होते हैं और लाख कोशिश करने पर भी अपना निर्वाह नहीं कर सकते। नौकरी के सिवाय कोई दूसरा काम करने में वे बिलकुल असमर्थ होते हैं। स्व० पेट्रिक गेड्स ने एक बार कहा था कि ये ग्रेजुएट महज़ कागज के पुतले हैं। क्या आज भी अधिकाँश ग्रेजुएटों के सम्बन्ध में यह बात नहीं है ?

प्रचलित शिक्षा-प्रणाली इतनी प्राण-घातक सिद्ध हुई है कि इसने हमारे देश वासियों को लुञ्ज-पुञ्ज बना दिया है। हमारी आज की शिक्षा गुलामी करने वाले क्लर्कों की फौज तैयार करने में बेतहाशा लगी हुई है—सरपट दौड़ी जा रही है। मदरास के प्रधान मन्त्री राजा जी ने अपने एक व्याख्यान में कहा था कि 'आखिर इस शिक्षा से फायदा ही क्या है ? शराबी शराब के नशे में चूर रहता है और शिक्षित शिक्षा के विलास में मस्त। ऐसे शिक्षित आदमी किसी शराबी से अधिक सँस्कारी नहीं समझे जा सकते। मौजूदा शिक्षाप्रणाली युवकों की सृजन शक्ति (Creative Faculty) को नष्ट करती है, प्रतिभा को कुचलती है।' आचार्य पी०सी० राय के शब्दों में हम नक्काल हैं, मौलिकता का तो हमारे अन्दर नाम-निशान नहीं। आज के पढ़े-लिखे महज़ ग्रामोफोन हैं। न उनमें विचार करने की शक्ति है और न ईजाद करने की। सच्चरित्रता और पवित्रता की तो बात ही जाने दीजिए। इस ओर ध्यान देने की तो किसी को फुरसत ही कहां है। यह कितने अफसोस और शर्म की बात है कि जिनको यहीं रहना और यहीं मरना है उन्हें भी सब कुछ अंग्रेजी में ही पढ़ना पड़ता है। कोई भी आजाद देश इस बात को सहन नहीं कर सकता कि उसके बच्चे-बच्चियों को विदेशी भाषा के द्वारा शिक्षा दी जाए। लेकिन हम गुलाम हैं इसलिए हम अपमान को महसूस नहीं करते। शुक्र है कि काँग्रेसी सरकारों ने इस ओर कुछ ध्यान देना शुरू किया है। लेकिन जिस कीड़ी की चाल से हम चल रहे हैं उससे हमें सन्तोष नहीं हो सकता। श्री रवीन्द्रनाथ टैगोर ने प्रचलित शिक्षा का बड़ा ही अच्छा खाका खींचा है। वे लिखते हैं कि 'हम स्कूलों को एक प्रकार की शिक्षा देने की मशीनें या कलें समझते हैं। मास्टर लोग इस कारखाने के एक तरह के पुर्जे हैं। १०॥ बजे घँटा बजाकर कारखाने खुलते हैं, कलों का चलना आरम्भ हो जाता है और मास्टरों के मुँह भी चलने लगते हैं। चार बजे कारखाने बन्द होते हैं, मास्टर रूपी पुर्जे भी अपना मुँह बन्द कर लेते हैं। तब विद्यार्थी इन पुर्जों की काटी-छाँटी हुई दो चार पन्नों की विद्या लेकर अपने-अपने घर लौट आते हैं। इसके बाद परीक्षा के समय इस विद्या की जाँच होती है और इस पर मार्क्स लगा दिये जाते हैं ... १०॥ से लेकर ४ बजे तक हम जो कुछ कण्ठस्थ करते हैं—जीवन के साथ, चारों ओर के मनुष्य समाज के साथ और घर के साथ उसका कोई सम्बन्ध नहीं है। ... हमारे विद्यालय एक प्रकार से एन्जिन हैं। वे वस्तुएँ तो जुटा सकते हैं पर उनमें प्राण नहीं डाल सकते, हमें उनसे प्राण-हीन विद्या मिलती है।" गुरुदेव ने जो कुछ लिखा

है वह अक्षरशः सत्य है। उन्होंने विनाशक शिक्षा-पद्धति की पोल खोलकर रखदी है। वास्तव में आज के स्कूल और कालेज कल-कारखाने हैं जहाँ से निर्जीव, शक्तिहीन, स्फूर्तिहीन व्यक्ति निकलते हैं जो न अपने पाँवों पर खड़े रह सकते हैं और न अपनी समस्याओं को हल कर सकते हैं। आज के पढ़े-लिखे युवकों में इतना साहस भी नहीं होता कि वे कष्टों और आपत्तियों को वीरतापूर्ण सहन कर सकें। मुसीबतें तो क्या सहेंगे वे तो केवल परीक्षा में फेल होने या नौकरी न मिलने पर ही रेल की पटड़ी पर लेटकर आत्मघात कर लेते हैं।

आज की शिक्षा इतनी खर्चीली है कि निर्धन इस से फायदा नहीं उठा सकते। यह पढ़े लिखे और अनपढ़ों में एक खाई पैदा करती है। यह बच्चों को चुपचाप बैठने और अपनी कुदरती चुस्ती-चालाकी को रोकने के लिए मजबूर करती है। यह कार्यशक्ति और सङ्गठन-शक्ति को नहीं बढ़ने देती। यह आँतरिक भावनाओं और उमङ्गों को निर्दयता से कुचलती है। यह सब को एक ही लाठी से हाँकती है।

हमारी गुलामी, अवनति तथा समस्त आफतों का कारण हमारी आज की शिक्षा है। खेद है कि देश के कर्णधारों ने इस ओर विशेष ध्यान नहीं दिया। वे यही समझते रहे कि शिक्षा तो इन्तजार कर सकती है लेकिन स्वराज्य इन्तजार नहीं कर सकता। अतः पहले स्वराज्य लेलें, फिर शिक्षा तो आप ही आप सुधर जाएगी। समय आगया है कि हम अपनी शिक्षा-प्रणाली में आमूल-चूल परिवर्तन करें। गति जीवन का दूसरा नाम है। गति के अनुसार हमें अपने दृष्टिकोण को बदलना चाहिए और आगे बढ़ने का भरसक प्रयत्न करना चाहिए। आज हमें इस प्रकार की शिक्षा-प्रणाली की जरूरत है कि जिस से हम भारतीय सँस्कृति और सभ्यता की रक्षा करते हुए पाश्चात्य सभ्यता और शिक्षा के गुणों को अपना कर अपनी उन्नति कर सकें। शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जो भाररूप न हो कर हमारे सर्वांगीय विकास का सर्वोत्तम साधन हो। शिक्षा का ध्येय पथभ्रष्टों को सन्मार्ग पर लाना, मानव जाति को ऊँचा उठाना और मनुष्य को इस योग्य बनाना है कि वह सच और झूठ में तमीज कर सके, मानव जाति के हित के लिए हँसते २ अपने जीवन की बलि दे सके, अत्याचार और अन्याय का खम ठोंक कर मुकाबला कर सके।" सचाई और असूल पर मर मिटने के लिए सदा तत्पर रहे। स्वामी सत्यदेव परिव्राजक के शब्दों में 'जो उद्योग हम में से पशुपन निकाल दे, मक्कारी दूर करदे, स्वार्थ नष्ट कर दे अन्यायी बलवान का राज्य हटादे उसी उद्योग का नाम शिक्षा है। शिक्षा बहुत अच्छी अङ्गरेजी या सँस्कृत बोलने में नहीं है, शिक्षा काले. गोरे, पीले चेहरे में नहीं है, शिक्षा बहुत से विद्वानों के नाम रट लेने में नहीं है, शिक्षा लम्बे-लम्बे व्याख्यानों में नहीं है, शिक्षा, टोपी, अचकन, तपलून में नहीं है, शिक्षा डिग्रियां प्राप्त करने में नहीं है— शिक्षित वह है जिसमें पशुपन का अभाव और मनुष्यत्व की वृद्धि हो। शिक्षित होने की पहचान मनुष्य के प्रतिदिन के व्यवहार से की जाती है।' इस बात से कोई भी इन्कार नहीं कर सकता कि प्रचलित शिक्षा इस कसौटी पर नहीं कसी जा सकती। आज की शिक्षा समाज के लिए हलाहल विष साबित हुई है। क्योंकि इसने हमारी शारीरिक, मानसिक, नैतिक तथा आध्यात्मिक शक्तियों का ह्रास करके हमें 'इतना पँगु बना दिया है कि हम बात बात में दूसरों का मुँह ताकते हैं।

हमें खुशी है कि देश अपनी कुम्भकरणी नींद से जागा है, उसने करवट बदली है। आज चारों ओर से यही तीव्र मांग हो रही है कि प्रचलित शिक्षा प्रणाली को शीघ्रातिशीघ्र तिलांजलि दे। ऐसी जीवनप्रद पद्धति को अपनाया जाए कि जिससे बालकों की छिपी हुई शक्तियों का विकास हो और देश का उत्थान हो। यही वजह है कि देश वर्धा-शिक्षा योजना में बड़ी दिलचस्पी ले रहा है। आज

जगह जगह पर नये अध्यापक तैयार करने के लिए ट्रेनिंग कालेज खोले जा रहे हैं और आशा की जाती है कि जौलाई तक कई प्रांतों में शिक्षा में क्रांतिकारी परिवर्तन हो जाएँगे। इस योजना के अनुसार प्रत्येक बालक को कोई न कोई दस्तकारी सीखनी होगी। इस योजना की विशेषता और मौलिकता यह है कि पाठ्यक्रम के सभी विषय किसी बुनियादी दस्तकारी के द्वारा ही सिखाये जाएँगे। इस प्रकार अपने ढंग की यह एक अनूठी योजना है। इस नई योजना के सम्बन्ध में लोगों में बहुत से भ्रम फैले हुए हैं। कोई कहता है कि इससे बालक का बौद्धिक विकास न होगा, कोई कहता है कि इस तालीम से टैगोर और तिलक जैसे काबिल लोग पैदा न होंगे। लेकिन यह बात नहीं है। यदि शिक्षकों ने अपने कर्त्तव्य को ईमानदारी से निबाहा तो यह योजना देश के अंदर एक अद्भुत क्रांति पैदा कर देगी। डाक्टर जाकिर हुसैन ने इस नई तालीम के सम्बन्ध में अपने जो विचार प्रकट किये हैं उन्हें हम 'दीपक' के पाठकों के सामने रक्खे बिना नहीं रह सकते। वे लिखते हैं कि "नई तालीम नई जिन्दगी का पयाम है। यह नई जिंदगी दुनिया को इस तरह न बदलेगी कि इसके बदलने से आदमी अच्छे बन जाएँ। पर यह मनुष्य को ऐसे बदल देगी और सँवार देगी कि फिर इसकी दुनिया आप ही आप बदल जाय। यह आंख को वह रोशनी देगी कि जिधर देखे उजाला कर दे। यह हाथ को वह सफ़ाई देगी जो दिल को भी साफ़ बना दे। यह मेहनत के पसीने की बूँद को मोती बना देगी। यह सच्चे, अच्छे और धुन के पक्के आदमी बनायेगी, जो नेकी के साथी हों और बुराई के दुशमन, जो अपनी बात मजबूती से कह सकें और दूसरों की सब्र से सुन सकें, जो अपने पैरों पर खड़े हों सकें और दूसरों का सहारा भी बन सकें। इतना ही नहीं नई तालीम नई जिन्दगी का वादा भी है—ऐसा वादा जो पूरा हो जाय तो आसूदगी, खुद्दारी, रवादारी, आज़ादी सभी नसीब हो जाएँ। यह वादा हम नई तालीम का काम करने वाले एक दूसरे से करते हैं और अपने मुल्क की नई पौद से करते हैं। हमने अपने मदरसों में आदमी की सूरत को इस तरह बिगड़ते देखा है कि रोना आ गया है। कहीं हमने देखा कि सर इतना बढ़ गया है कि हाथ-पांव सूख गये हैं। कहीं हाथ-पाँव मजबूत देखे, तो सर को खाली और आंख को अन्धा पाया। आदमियों के यही रोग असल रोग हैं। और हम नई तालीम का काम करने वाले एक दूसरे से वादा करते हैं कि मिलकर और एक दूसरे का हाथ बटाकर सुडौल-बदन, जागता हुआ दिल, सोचने वाला दिमाग़ और अपनी समाज की दुरुस्ती का सच्चा शौक रखने वाले नौजवान पैदा करेंगे और उसी वक्त दम लेंगे, जब ऐसे नौजवान तैयार होकर यह काम अपने हाथ में लेलें और हमें सुस्ताने की इजाजत दें।"

अखबार बेचने वाला सूप्रीम कोर्ट का जज

एक यहूदी स्कालर को जो बचपन में इतना ग़रीब था कि अखबार बेचकर रोज़ी कमाया करता था, सँयुक्त राष्ट्र अमेरिका के सूप्रीम कोर्ट का जज नियुक्त किया गया है। इसका नाम प्रोफेसर फ्रेंकफरटर है और इसकी उम्र इस वक्त ५६ साल है। इसका जन्म वियाना के एक ग़रीब परिवार में हुआ था। बारा साल की उम्र में जब वह अपने माता-पिता के साथ अमेरिका आया तो वह अँग्रेजी का एक शब्द नहीं बोल सकता था।

यह भेद-भाव क्यों ?

[ले०—विश्वप्रेमी राजा महेन्द्रप्रताप, टोकियो, जापान]
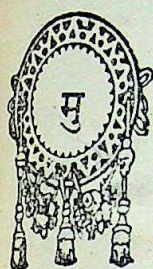
मुझे कहा गया है कि बच्चों के विषय में या स्त्रियों के सम्बन्ध में मैं अपने विचार लिखूँ। यह तो एक ऐसा प्रश्न है, कि जैसे कोई पूछे, कि नाक कैसी या आंखें किस प्रकार की? मैं तो समझता हूँ कि समस्त मुख अथवा चेहरे का चमत्कार ही शोभा देता है, अलग-अलग अंग नहीं। जी हाँ, आजकल नाकों के और कानों के और हाँ, आँखों के भी अलग २ डाक्टर या हकीम होते हैं। पर मैं वैसा एक वैद्य नहीं। इसलिए मैं बालकों के विषय में या देवियों के प्रति जो विचार, 'दीपक' के पाठकों के आगे रखूंगा वह यही कि उनको पुरुषों से अलग नहीं किया जा सकता।

बच्चे, युवा, बूढ़े और बच्ची, युवतियां, बूढ़ियाँ—इन का तो आरम्भ से अन्त तक एक जोड़ा है। यह जोड़ा प्रकृति में सर्वथा व्यापक है। दो आँख, दो कान और नाक में भी दो छेद, मुख (मुँह) अपना दायाँ-बायाँ भाग रखता है। नर, मादा और बच्चे सभी जानवरों में होते हैं और सभी साथ रहते हैं।

हमको ऐसी समाज रचनी चाहिए कि युवक और युवतियाँ उसमें अपना उचित स्थान प्राप्त करें और अपने २ स्थान पर अपने २ धर्म का पालन करें। आज देखने में ज़रूर आता है कि लड़के लड़ रहे हैं और अबलायें विलाप करती हैं। प्रश्न यह है कि यह कोलाहल कैसे दूर हो? मेरा कहना है कि यदि समाज को फिर से मेरे ढूँढे हुए नियमों पर सुदृढ़ता से चलायें तो इसकी आवश्यकता ही न रहेगी कि कोई भी बच्चों और औरतों का अलग २ हानि-लाभ सोचे।

बड़े २ नियम बनाए जाते हैं। पृथक् २ व्यक्तियों के हक़ सुरक्षित किए जाते हैं, और फिर इन पेचीदा कानूनों के जानकार वकील और जज अथवा न्यायकर्त्ता भी रखने पड़ते हैं। पर हम यह सहल वा सुगम बात नहीं करते कि संघ-वास की प्रथा चलायें!

मेरा कहना है कि एक-एक ग्राम को एक-एक कुटुम्ब बनाना चाहिए। सब ग्राम-निवासी ग्राम की भूमि जोतें और उसका फल खायें। सब मिलकर अच्छे २ घर बनाएँ। स्त्री-पुरुष सब अपने-अपने जोड़े ढूँढ लें। अपने २ कोठों में रहें, संतान उत्पन्न करें। पर बच्चे

समस्त ग्राम के समझे जाकर उन सबका पालन पोषण एक सा हो। इनमें जो विशेष बुद्धिमान और सदाचारी निकलेंगे उनसे प्रबन्ध में अधिक सहायता ली जायगी। पर यही तो है "कम्यूनिज़्म"? फिर वही बात! नहीं, यह है सँसार-सँघ का सँघ-बास! "कम्यूनिज़्म", मैं फिर याद दिलाऊँ क्या, लोगों को मज़दूर और पूँजीपतियों में बाँटता है। सेठ साहूकारों और नृपतियों से घृणा सिखाता है। हम केवल भले और बुरे भाव पहचानते हैं। भले भावों को बढ़ाना हमारा कर्त्तव्य है। और भला भाव है सबकी भलाई में अपनी भलाई समझना। यही सच्ची बुद्धिमानी है। समझे भाई?

एक भी नन्हें बच्चे को बेउपाय बचपन में ही मरने देना या उसको अच्छी से अच्छी विद्या न देना, न जाने किस बहुमूल्य रत्न को अनजान से मिट्टी में मिलने देना है। यह धोका है कि आज का पैसा रखने वाला समझता है कि उसका ही बेटा तीस मारखां निकलेगा। हम देखते हैं कि बहुत से खानदान इन्हीं लाडले कपूतों के हाथ तबाह होते हैं, और बहुत से कँगाल घर के पले लड़के अवसर मिलने पर, बड़ा २ काम करते हैं!

और स्त्री को भी कैसा जकड़ा है, मानो वह कैद में हो! इस प्रकार हमने आप अपने पैर में बेड़ी डाली है। नहीं, नहीं इससे भी अधिक अर्द्धांगी को बेकार बना, मानो, आधे शरीर को लकवा की बीमारी के भेंट किया है। यदि मुझे अवसर मिले, तो मैं तो आज ही सब ही बच्चे, बच्चियां और स्त्रियों को पूर्ण स्वतन्त्र कर दूँ। हो सकता है कि कुछ युवक या स्त्रियां उस चंडाल वृत्ति अथवा स्वभाव के बन गये हों कि स्वतन्त्रता और बराबरी मिलने को हानि समझें—कहें कि नहीं हम तो "चंडाल हैं" औरत हैं, बेकार हैं! उनका क्या किया जाय! उनका भी क्या किया जाय जो राजपूत होने का गौरव रखते हैं? यह तनिक भी नहीं सोचते कि क्षत्री बनना ब्राह्मण कहलाने वालों से नीचा बनना है! सँसार-सँघ उनपर दबाव नहीं डालता। संसार-संघ तो केवल स्वतन्त्रता का मार्ग खोल देता है, और कहता है कि आओ, यह मार्ग भंगी, ब्राह्मण, युवक वा स्त्री सब के लिये एक सा खुला है। यहाँ भेद-भाव नहीं है और न ही रहने पायगा।

मित्रो, भाई, बहनों, संसार-संघ ही एक मात्र सब बीमारियों का इलाज है। यह है राम बाण! आज ही सँसार-सँघी बन जाओ और जीवित मोक्ष प्राप्त करो! सँसार-सँघ की जय!!

हमारे देहात !

(रचयिता—श्री राजेश्वर गुरु)

हरियाली की गोदी खेली, बगिया या वीरान कहें !
देवों के दैवी-प्रसाद का शाप या कि वरदान कहें !
बर्बरता साकार इसे या मानवता का गान कहें !
जग क्रीड़ा-क्षेत्र कहें या जुग-जुग जला मसान कहें !

अपने शैशव में खेला था यह सारा सँसार यहीं।
'वसुधा ही कुटुम्ब' ने हमको सिखलाया था प्यार यहीं॥

इन भोली-भाली सूरत को मानव या हैवान कहें !
इन पापों से मुक्त हृदय को दानव या इन्सान कहें !
इन हड्डी के ढांचे को जीवित या मृत-प्राण कहें !
इन्हें घृणा से दुतकारें या ईश्वर-तुल्य किसान कहें !

हम मोहताजों को इनने ही पेट काटकर अन्न दिया।
धन्य त्याग! अपना खो हमको सब प्रकार सम्पन्न किया॥

घास फूस की नन्ही सी टपरी क्या इसे मकान कहें ?
एक गाय दो बैल इसे ही क्या इसका धन-धान कहें ?
दो मुट्ठी-चावल क्या इसको दिनभर का जलपान कहें ?
इन्हीं बिलखते रोते बच्चों को घर का अभिमान कहें ?

इस बिखरे अनन्त-वैभव का दुर्बल, दीनाधार यहीं।
विश्व-द्रौपदी की लज्जा का चीर भरा आगार यहीं॥

कहानी

शत्रु !

लेखक
श्री "अज्ञेय"

ज्ञान को एक रात सोते समय भगवान ने स्वप्न में दर्शन दिए और कहा--'ज्ञान ! मैंने तुम्हें अपना प्रतिनिधि बनाकर संसार में भेजा है। उठो, संसार का पुनर्निर्माण करो।'

ज्ञान जाग पड़ा। उसने देखा, संसार अन्धकार में पड़ा है, और मानव-जाति उस अन्धकार में पथ-भ्रष्ट होकर विनाश की ओर बढ़ती चली जा रही है। वह ईश्वर का प्रतिनिधि है, तो उसे मानव-जाति को पथपर लाना होगा, अन्धकार से बाहर खींचना होगा, उसका नेता बनकर उसके शत्रु से युद्ध करना होगा।

और वह जाकर चौराहे पर खड़ा हो गया और सबको सुनाकर कहने लगा—'मैं मसीह हूँ, पैग़म्बर हूँ, भगवान का प्रतिनिधि हूं। मेरे पास तुम्हारे लिए एक सन्देश है।'

लेकिन किसी ने उसकी बात न सुनी। कुछ उसकी ओर देखकर हँस पड़ते, कुछ कहते, 'पागल है' अधिकांश कहते, 'यह हमारे धर्म के विरुद्ध शिक्षा देता है, नास्तिक है, इसे मारो!' और बच्चे उसे पत्थर मारा करते।

* * *

आखिर तंग आकर वह एक अँधेरी गली में छिपकर बैठ गया, और सोचने लगा। उसने निश्चय किया कि मानव-जाति का सब से बड़ा शत्रु है धर्म, उसी से लड़ना होगा।

तभी पास कहीं से उसने स्त्री के करुण-क्रन्दन की आवाज़ सुनी। उसने देखा, एक स्त्री भूमि पर लेटी है, उसके पास एक बहुत छोटा सा बच्चा है, जो या तो बेहोश है, या मर चुका है, क्योंकि उसके शरीर में किसी प्रकार की गति नहीं है।

ज्ञान ने पूछा---'बहन क्यों रोती हो?'

उस स्त्री ने कहा---'मैंने एक विधर्मी से विवाह किया था। जब लोगों को इसका पता चला, तब उन्होंने उसे मार डाला और मुझे निकाल दिया। मेरा बच्चा भी भूख से मर रहा है।'

ज्ञान का निश्चय और भी दृढ़ हो गया। उसने कहा---'तुम मेरे साथ आओ, मैं तुम्हारी रक्षा करुँगा।' और उसे अपने साथ ले गया।

ज्ञान ने धर्म के विरुद्ध प्रचार करना शुरू किया। उसने कहा, 'धर्म झूठा बन्धन

है। परमात्मा एक है, अबाध है, और धर्म से परे है। धर्म हमें सीमा में रखता है, रोकता है, परमात्मा से अलग करता है, अतः हमारा शत्रु है।

लेकिन किसी ने कहा—'जो पराई और बहिष्कृता औरत को अपने पास रखता है, उसकी बात हम क्यों सुनें? वह समाज से पतित है, नीच है।'

तब लोगों ने उसे समाज-च्युत करके निकाल दिया।

❀ ❀ ❀

ज्ञान ने देखा कि धर्म से लड़ने से पहले समाज से लड़ना आवश्यक है। जब तक समाज पर विजय नहीं मिलती, तब तक धर्म का खण्डन नहीं हो सकता।

तब वह इसी प्रकार का प्रचार करने लगा। वह कहने लगा—'ये धर्मध्वजी, पोंगे, पुरोहित-मुल्ला ये कौन हैं? इन्हें क्या अधिकार है हमारे जीवन को बांध रखने का? आओ, हम इन्हें दूर करदें, एक स्वतन्त्र समाज की रचना करें, ताकि हम उन्नति के पथ पर बढ़ सकें।'

तब एक दिन विदेशी सरकार के दो सिपाही आकर उसे पकड़ ले गए, क्योंकि वह वर्गों में परस्पर विरोध जगा रहा था।

❀ ❀ ❀

ज्ञान जब जेल काटकर बाहर निकला, तब उसकी छाती में इन विदेशियों के प्रति विद्रोह धधक रहा था। यही तो हमारी क्षुद्रताओं को स्थायी बनाये रखते हैं। और इनसे लाभ उठाते हैं! पहले अपने को इन विदेशी प्रभुत्व से मुक्त करना होगा, तब....

और यह गुप्त रूप से विदेशियों के विरुद्ध लड़ाई का आयोजन करने लगा।

एक दिन उसके पास एक विदेशी आदमी आया! वह मैले-कुचैले, फटे-पुराने खाकी कपड़े पहने हुए था। मुख पर झुर्रियां पड़ीं थीं, आंखों में एक तीखा दर्द था। उसने ज्ञान से कहा, 'आप मुझे कुछ काम दें, ताकि मैं अपनी रोज़ी कमा सकूँ। मैं विदेशी हूं, आपके देश में भूखा मर रहा हूं। कोई भी काम आप मुझे दें, मैं करूँगा। आप परीक्षा लें। मेरे पास रोटी का टुकड़ा भी नहीं है।'

ज्ञान ने खिन्न होकर कहा, 'मेरी दशा तुमसे कुछ अच्छी नहीं है, मैं भी भूखा हूँ।'

वह विदेशी यकायक पिघल सा गया। बोला, 'अच्छा! मैं आपके दुःख से दुःखी हूँ। मुझे अपना भाई समझें। यदि आपस में सहानुभूति हो, तो भूखे मरना मामूली बात है। परमात्मा आपकी रक्षा करे। मैं आपके लिए सब कुछ कर सकता हूँ?'

❀ ❀ ❀

ज्ञान ने देखा कि देशी-विदेशी का प्रश्न

तब उठता है, जब पेट भरा हो। सबसे पहला शत्रु तो यह भूख है। पहले भूख को जीतना होगा, तभी आगे कुछ सोचा जा सकेगा........

और उसने भूख के लड़ाकों का एक दल बनाना शुरू किया, जिसका उद्देश्य था अमीरों से धन छीनकर सबमें समान रूप से वितरण करना, भूखों को रोटी देना, इत्यादि। लेकिन जब धनिकों को इस बात का पता चला, तब उन्होंने एक दिन चुपचाप अपने चरों द्वारा उसे पकड़ मँगाया और एक पहाड़ी के क़िले में क़ैद कर दिया। वहाँ एकान्त में उसे सताने के लिए नित्य एक एक मुट्ठी चबैना और एक लोटा पानी दे देते, बस।

धीरे-धीरे ज्ञान का हृदय ग्लानि से भरने लगा। जीवन उसे बोझ जान पड़ने लगा। निरन्तर यह भाव उसके अन्दर जगा करता कि मैं, ज्ञान, परमात्मा का प्रतिनिधि, इतना विवश हूं कि पेट-भर रोटी का प्रबन्ध मेरे लिए असम्भव है! यदि ऐसा है तो कितना व्यर्थ है यह जीवन, कितना छूँछा, कितना निरर्थक!

एक दिन वह किले की दीवार पर चढ़ गया। बाहर खाई में भरा हुआ पानी देखते देखते उसे एक दम से विचार आया, और उसने निश्चय कर लिया कि वह उसमें कूद कर प्राण खो देगा। परमात्मा के पास लौट कर प्रार्थना करेगा कि मुझे इस भार से मुक्त करो, मैं तुम्हारा प्रतिनिधि तो हूँ, लेकिन ऐसे सँसार में मेरा कोई स्थान नहीं है।

वह स्थिर, मुग्ध दृष्टि से खाई के पानी में देखने लगा। वह कूदने को ही था कि एकाएक उसने देखा, पानी में उसका प्रतिबिम्ब झलक रहा है और मानो कह रहा है, 'बस, अपने आप से लड़ चुके?'

❋ ❋ ❋

ज्ञान सहम कर रुक गया, फिर धीरे-धीरे दीवार से नीचे उतर आया और क़िले में चक्कर काटने लगा।

और उसने जान लिया कि जीवन की सबसे बड़ी कठिनाई यही है कि हम निरन्तर आसानी की ओर आकृष्ट होते हैं।

जोनबुल ?

सत्रहवीं सदी में स्काटलैंड में जॉन-आरबूथनट नामक एक साहित्यिक थे। उन्होंने एक किताब लिखी थी—History of John Bull. यूरोप का तत्कालीन इतिहास ही पुस्तक का विषय था। पुस्तक के स्त्री-पुरुष पात्र यूरोप के भिन्न २ देशों के प्रतीक थे। इङ्गलैंड में उन दिनों रानी एन (Anne) राज्य करती थी। इसलिए श्रीमती जानबुल अंग्रेज़ जाति की परिचायिका मानी गई। उसी समय से अंग्रेज़ जाति का उपनाम 'जानबुल' पड़ा।

रहस्यमय गाँधी

(ले०—श्री० गुन्थर)

महात्मा गांधी में ईसा मसीह और टैमनीहाल का सम्मिश्रण पाया जाता है। बुद्ध के बाद वे सब से महान् हिन्दुस्तानी हैं। मृत्यु के बाद वे भी बुद्ध की तरह पूजे जायेंगे। आज कल कुछ लोगों का ऐसा अनुमान है कि महात्मा गांधी पराजित हो चुके हैं अर्थात् उनका प्रभाव खत्म हो चुका है। वे तो यहां तक खयाल करते हैं कि हिन्दुस्तान में अब उन्हें कोई पूछता तक नहीं। लेकिन उनके इस कथन में कतई सचाई नहीं है। महात्मा गांधी अब भी जीवित भारतियों में सबसे प्रसिद्ध विभूति हैं, और कोई उनका मुकाबला नहीं कर सकता। मैंने किसानों को उनके पैरों की धूल को अपने सिर पर लगाते देखा है।

गूढ़ पहेली—वे एक गूढ़ पहेली हैं, वे एक अस्थिर व्यक्ति हैं—कभी एक बात पर जमे नहीं रहते। यह लिखकर मैं उनका अपमान नहीं कर रहा हूँ। लेकिन इस व्यक्ति के चरित्र और जीवन की परस्पर विरोधी बातों पर तो विचार कीजिए। वे महात्मा भी हैं और राजनीतिज्ञ भी।

सबसे बड़ी देन—महात्मा गांधी की भारत को सबसे बड़ी देन है अहिंसा—सैद्धान्तिक तथा व्यवहारिक। व्यवहारिक फल प्राप्त करने के लिए नैतिक साधनों के उपयोग का यह एक सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। लेकिन ठीक उसी समय जबकि अहिंसा का सिद्धान्त उनके हृदय पर अंकित हो गया था, वे युद्ध में घायलों की सेवा करने के लिए घायल-सेवक दल में लोगों की भरती कर रहे थे।

उपवास—उनके उपवास भी मशहूर हैं। यद्यपि उन्होंने महज नैतिक कारणों से उपवास किए तथापि सरकार को कई बार उन्हें जेल से मुक्त करने के लिए विवश होना पड़ा। वे किसी भी समय जेल से छूट सकते थे। कारण, सरकार अपने सिर पर यह जिम्मेदारी लेने को तैयार न थी कि अनशन के कारण जेल में उनकी मृत्यु हो जाए। किन्तु यह बात ध्यान रखने योग्य है कि उन्होंने कभी जान बूझकर जेल से छूटने के लिए उपवास नहीं किए।

विरोधाभास—उनकी अनमेल बातें अजीब सी लगती हैं जब तक आप यह न समझ लें कि उनका उद्देश्य कभी नहीं बदलता। वे किसी चीज के सार को देखते हैं, रूप को नहीं। मिसाल के तौर पर—वे ब्रिटेन से घोर सँग्राम कर चुके हैं, लेकिन अब नव-विधान के अन्तर्गत वे ब्रिटेन से सहयोग कर रहे हैं। उनका खयाल है कि अब हमारा उद्देश्य—भारतीय स्वाधीनता-लड़ाई की बजाय सहयोग से ही आसानी से पूरा हो सकता है। फिर भी विरोधाभास तो स्पष्ट ही है। वही महात्मा गांधी, जिन्होंने ब्रिटिश साम्राज्य से लोहा लिया था और जिसके उन्होंने छक्के छुड़ाये थे, आज कितनी ही बातों में ब्रिटेन का सबसे बड़ा मित्र है। उनके कुछ अनन्य भक्त और प्रशँसकों का खयाल है कि उनका ब्रिटेन के साथ समझौता करना सीमा को लांघ गया है। लेकिन भारतीय जनता पर उनका प्रभाव अटूट है—इसमें जरा भी कमी नहीं आई है।

विचित्र डिकटेटर—महात्मा गांधी एक अजीब प्रकार के डिकटेटर हैं—ऐसे डिकटेटर जो प्रेम से शासन करते हैं। लाखों घरों में उनका फोटो मिलता है। बच्चे और बीमारों को अच्छा करने के

लिए उनके फोटो का स्पर्श कराया जाता है। किसान बीस-बीस मील पैदल चलकर ट्रेन में ही उनके दर्शन करने आते हैं, चाहे गाड़ी वहां खड़ी भी न होती हो। गरीबी में फँसी जनता के लिए तो वे एक चमत्कारी पुरुष हैं। हिन्दुस्तान में सिर्फ वही एक व्यक्ति हैं जो महज एक शब्द से, छोटी उंगली को उठाकर ३५ करोड़ आदमियों में, जो साधारणतया दुनिया का पांचवाँ भाग हैं—सत्याग्रह शुरू कर सकते हैं। हिन्दुस्तान पर गांधी जी का इतना प्रभाव क्यों है? आओ, यह मालूम करने की कोशिश करें कि इस विलक्षण व्यक्ति में यह अलौकिक शक्ति कैसे पैदा हुई है।

सैर व प्रार्थना—वे प्रातः ४॥ बजे ही प्रार्थना के लिए उठ बैठते हैं और फिर टहलने के लिए बाहर चले जाते हैं और बड़ी तेजी से चलते हैं। चाहे वर्षा हो, चाहे धूप—उनका घूमना नहीं रुक सकता। वे लन्दन में भी ऐसा ही किया करते थे। उनकी रक्षा के लिए जो दो गुप्तचर उनके साथ रहते थे वे उनको भी थका डालते थे। उनके तेज चलने के बारे में मैंने जो कुछ कहा है उसमें किंचित मात्र भी अत्युक्ति नहीं है। मैंने अंग्रेजों को अच्छी हालत में उनके साथ-साथ चलने की कोशिश करते देखकर बड़ा आनन्द लूटा है। वे एक बड़ा डंडा लेकर एक साधारण पक्षी की तरह हवा हो जाते हैं। इस दैनिक कठोर व्यायाम की निस्बत वे प्रार्थना को अधिक महत्त्व देते हैं। जब वे लन्दन में थे तब भी कामन्स सभा के कमेटी वाले कमरे में, मिटिंग के समय ही, फर्श पर बैठकर स्वाभाविक रूप से प्रार्थना करने लग जाते थे। वे दिन में दो बार प्रार्थना करते हैं—प्रातः और सायंकाल। सायंकाल की प्रार्थना तो एक प्रकार का सार्वजनिक रूप धारण कर लेती है क्योंकि इसमें उनके सब साथी, गांव वाले और दर्शक भी, शामिल होते हैं।

भोजन—वे मांस कभी नहीं खाते। पका हुआ भोजन भी बहुत कम करते हैं। एक गिलास बकरी का दूध, खजूर, बादाम, एक चम्मच शहद, लहसुन, ताजा कटी हुई सब्जी, सन्तरे, अनन्नास, आम और शफतालू—यही उनका भोजन है।

कठोर परिश्रम—वे काम बहुत करते हैं। लोगों से निरन्तर मिलते रहते हैं, दर्शकों का स्वागत करते हैं और अपने सहकारियों से परामर्श करते रहते हैं। वे जहां भी होते हैं वही स्थान भारत की राजधानी बन जाता है। जो कोई विशेष दिलचस्प वार्तालाप होता है उसे उनके मन्त्री लिख लेते हैं और फिर वह शीघ्र ही उनके पत्र 'हरिजन' में छप जाता है। इस प्रकार उनका कोई शब्द रायगाँ नहीं जाता। दुनिया भर के लोगों से उनका पत्र व्यवहार चलता है। स्नान के समय ही वे काम से छुट्टी पाते हैं। वे गर्म पानी में ४० मिनट तक स्नान करते हैं और आम तौर पर टब में बैठकर पढ़ते भी हैं। सोमवार को वे मौन रहते हैं। चाहे कितना ही जरूरी से जरूरी काम क्यों न आ पड़े, वे अपने मौन व्रत को नहीं तोड़ते।

महात्मा गाँधी को अपने लिए रुपये की बहुत कम जरूरत पड़ती है। परिवार को चलाने की भी उनके सामने कोई समस्या नहीं है क्योंकि उनकी आवश्यकताएँ यों ही पूरी हो जाती हैं।

स्वास्थ्य—उनका स्वास्थ्य बिलकुल अच्छा है। वे इतने दुर्बल नहीं हैं जैसा कि उनके फोटो से प्रकट होता है। उनका धड़ सुडौल है, और मांस-पेशियां सख्त और चिकनी। उनके निजी चिकित्सक डाक्टर राय ने, जो हिन्दुस्तान के एक प्रसिद्ध डाक्टर हैं मुझे बताया था कि उनका स्वास्थ्य बिलकुल अच्छा है।

सादगी—गांधी जी की अकाल्पनिक सादगी को देखकर सहसा हँसी आ जाती है। एक बार अपनी धर्म पत्नी को, जो तीसरे दर्जे में सफर कर रही थी, सैकेंड क्लास के स्नानागार में स्नान करने

की इजाजत दे देने पर उनके दिल में आध्यात्मिक संकट उठ खड़ा हुआ था। उनकी बाबत एक और भी कहानी मशहूर है कि किसी अँग्रेज ने एक स्टेशन पर उनको कुली कहकर पुकारा। आज्ञा पाते ही गांधी जी ने उनका सामान उठाकर रेल में रख दिया।

आकर्षण व सत्यप्रियता—उनमें बड़ा आकर्षण है। वे चालीस वर्ष से ब्रह्मचर्य का पालन कर रहे हैं। फिर भी वे स्त्रियों का साथ पसन्द करते हैं। वे एक सन्त हैं लेकिन हंसते रहते हैं। हँसी उन्हें बहुत प्रिय है। वे बातचीत में खूब कह-कहा लगाकर हँसते हैं। एक बार उन्होंने अपने एक दोस्त से कहा था कि अगर वे विनोदप्रिय न होते तो कभी के मर गए होते। यह कहा जाता है कि उनमें इतना आकर्षण है कि भारत मन्त्री सर सैमुअल होर ने वायसराय लार्ड विलिंगडन को आदेश दिया था कि वे महात्मा जी से न मिलें, जिससे कि वे उनके खतरनाक आकर्षण से प्रभावित न हो जाएँ। यद्यपि उनमें इतनी चतुराई, आकर्षण और विचारशीलता है, किन्तु अपने असूल की रक्षा के लिए वे कठोर बन सकते हैं।

उनकी शक्ति का दूसरा साधन है उनका भारत सम्बन्धी बढ़ा चढ़ा ज्ञान। उन्होंने भारत का जो भ्रमण किया है वह भी युगान्तरकारी है। उन्होंने रेल के तीसरे दर्जे में या विशेषतया पैदल चलकर ही समस्त भारत का दौरा किया है।

गांधी जी बच्चों, ताजा हवा, हँसी, दोस्त और सचाई को सबसे ज्यादा पसंद करते हैं और झूठ से वे सख्त नफरत करते हैं। यह भी उनकी शक्ति का एक जरिया है। मैंने समस्त भारत में उनके बारे में यह बात सुनी है कि लोग उनके सामने झूठ नहीं बोल सकते। ऐसा लगता है कि उनमें कोई ऐसी दैवी शक्ति है जिससे प्रभावित होकर लोग उनके सामने झूठ बोलने का साहस नहीं करते। उनकी सत्यप्रियता और सरलता इतनी बढ़ी हुई है कि वे दूसरों से भी सच बुला लेते हैं।

महात्मा गांधी एक ओर अद्भुत आध्यात्मवादी हैं और दूसरी ओर महान राजनीतिज्ञ। बस इसी में उनकी महानता है। वे किसी से घृणा नहीं करते। जब एक बार समझौता हो जाता है तो फिर वे अपने शत्रुओं से उसी उत्साह से सहयोग करते हैं जिस उत्साह से कि उनके साथ लड़ाई की थी।

१९३४ में वे कांग्रेस से इसलिए अलग हो गये थे ताकि अधिक ईमानदारी और निष्पक्षता से काम कर सकें। वे ऐसी स्थिति में रहना चाहते थे जिससे कि वे महज कांग्रेस के विभिन्न दलों में ही नहीं बल्कि कांग्रेस और ब्रिटेन के बीच भी मध्यस्थता का काम कर सकें। यह ऐसा ही उदाहरण है जैसा कि अमेरिका के गृह-युद्ध में लिंकन का अपनी प्रेज़ीडेंटी से अलग हो जाने का, ताकि वे उत्तरी अमेरिका द्वारा दक्षिणी अमेरिका के प्रति ईमानदारी और सम्मानता का व्यवहार करा सकें।

ब्रेक—सन् १९३८ के अन्त तक के हालात से स्पष्ट है कि महात्मा गांधी निश्चित रूप से भारतीय राजनीति को सँयम में रखने के लिए एक शक्ति हैं। वे उग्रवाद के लिए ब्रेक का काम करते हैं। उन्होंने अपने मित्रों से कहा है कि कभी कभी मुझे ऐसा लगता है कि भारत को ब्रिटेन की गुलामी से मुक्त कराने का काम विधाता ने मेरे सुपुर्द किया है। किन्तु मेरे मरने पर ब्रिटेन अपने लिए भारी मुसीबत महसूस करेगा क्योंकि मेरी मृत्यु से उग्र शक्तियां बन्धन-मुक्त हो जायेंगी जो निश्चित रूप से भारतीय राष्ट्रीयता को आगे ले जाने वाली हैं।

कितना अलौकिक और गजब का है उनका जीवन! उन्होंने धर्म और राजनीति का मेल करा दिया है तथा भारतीय जनता में साहस, आत्मनिर्भरता और आत्माभिमान का मन्त्र फूँक दिया है जिससे वे सर्वथा अपरिचित थे।

[अंग्रेजी से अनूदित]

बुरा क्या ?

(रचयिता—बिसाऊ कवि, गाँव रतनपुरा, बीकानेर राज्य)

[कवि अपने युग का प्रतिनिधि होता है। उसकी रचनाओं में उस काल की विचार-धाराओं का प्रतिबिम्ब रहता है, जिन्हें पढ़कर उस समय के जनता के मनो-भावों का पता लग जाता है। कवि की दृष्टि जितनी विशाल होगी उतने ही अधिक व्यक्तियों के मनोभावों को वह प्रकट करेगा। राष्ट्रीय कवि राष्ट्रभर की, प्रांतीय कवि अपने प्रांत के तथा इलाका विशेष का कवि अपने इलाके के लोगों की मनो-भावनाओं का ही प्रतिबिम्ब अपनी रचनाओं में देगा। एक ऐसे ही ग्रामीण कवि की एक रचना दी जाती है जो कि राजस्थान से मिलते हुए अबोहर के आस पास के इलाके के मारवाड़ी भाषाभाषी बागड़ी कहलाने वाले निवासियों की विचार-धारा को व्यक्त करती है। आपको व्यवहार-ज्ञान का अच्छा अनुभव है तथा आपकी नीति व व्यवहारिक-ज्ञान सम्बन्धी रचनाएँ बड़ी सुन्दर हैं। मरुभूमि के इस इलाके में जो-जो बातें बुरी समझी जाती हैं उन्हीं को आपने इस कविता में बतलाया है। इस कविता को पढ़कर इलाके की जनता की मनोवृत्ति व मनोभावों का परिचय अच्छी तरह हो जाता है। अगर गावों में शिक्षा का प्रचार हो तो ऐसे लोगों छिपी हुई वृत्तियों का सुविकास हो सकता है जो आज साधन और अवसर के अभाव में नष्ट या विकृत हो रही हैं।

—सम्पादक]

बुए[1] आगे थाणो बुरो, परायो हक खाणो बुरो, बैरियाँ में जाणो बुरो।
सच्ची बात कहूँ। सुमरूँ माता सारदा रतनपुरे में रहूँ॥
गरीब सताणो बुरो, कुवेलेर[2] को जाणो बुरो, नेहतोड़ न्याणो[3] बुरो। सच्ची०
चोराँ बिच बैहणो[4] बुरो, सांपां बिच पैणो[5] बुरो, कोढ़ियाँ को लैणो बुरो। सच्ची०
जुए की हार बुरी, बैंतां की मार बुरी, कलिहारी नार बुरी। सच्ची०
गएड मस्तानी बुरी, दोस्ती दिवानी बुरी, चुहड़ी की जवानी बुरी। सच्ची०
काँटा वाली पांथ[7] बुरी, आंधां वाली बांथ[8] बुरी, पाँत[9] में दुभांत बुरी। सच्ची०
गाल उप्पर थप्पड़ बुरो, राह उप्पर लकड़ बुरो, अड़ी-खोरो[10] फक्कड़ बुरो। सच्ची०
सावण धरती सोणो बुरो, रात टाब्बर[11] रोणो बुरो, बोदो बीज बोणो बुरो। सच्ची०

१—दरवाजा, २—बेवक्त, ३—प्रीति को नष्ट करने वाला रुपये पैसे का लेन देन, ४—बैठना, ५—एक प्रकार का जहरीला सांप, ६—कर्जा. ७-पकी फसल को एक सिरे से दूसरे सिरे तक एक बार में एक आदमी जितना काटे वह एक पांथ हुई. ८—पकड़, गिरफ़्, ९—बराबर के हिस्से में भी पक्षपात, १०—जिद्दी, ११—बच्चा, १२—कमजोर।

पर्गां बिच फोड़ो बुरो, कटखाणो घोड़ो बुरो, पेट को मरोड़ो बुरो। सच्चो०
हल में सांढ[१३] थाकण[१४] बुरी, पाड़ौसन डाकण बुरी, स्त्री खुराकण बुरी। सच्चो०
सोदे बिच टोट्टो बुरो, मारण वालो झोट्टो[१५] बुरो, कच्योड़ो[१६] लँगोटो बुरो। सच्चो०
काया बिच कोढ़ बुरो, दुक्खन वालो गोड[१७] बुरो, पेट वालो छोड[१८] बुरो। सच्चो०
उन्हाले[१९] की लाय[२०] बुरी, घर में खांट[२१] गाय बुरी, गरीबां की हाय बुरी। सच्चो०
घर-घर नारी फिरनी बुरी, ज़बरदस्ती करनी बुरी, झूठी गवाही भरनी बुरी। सच्चो०
अमल वाली बाड़[२२] बुरी, दुक्खण वाली जाड़ बुरी, रात वाली राड़ बुरी। सच्चो०
पहाड़ की चढ़ाई बुरी, सांसी की लड़ाई बुरी, घर में पड़ाई[२४] बुरी। सच्चो०
माता वाली छोत[२५] बुरी, पूतवाली मौत बुरी, घणी फाटी पोत[२६] बुरी। सच्चो०
पिण्डे[२७] बिच पीत[२८] बुरी, कंजरां की रीत बुरी, घणी करनी अनीत बुरी। सच्चो०
सरीकां[२९] को बोल बुरो, आंधी वालो झोल[३०] बुरो, गल पड़ना गोल[३१] बुरो। सच्चो०
खैण[३२] वाली खांसी बुरी, मूरख वाली हांसी बुरी, राजवाली फाँसी बुरी। सच्चो०
तेजरे[३३] को ताप बुरो, बँसछेक[३४] सांप बुरो, मनसा[३५] को पाप बुरो। सच्चो०
धी वाली गाल[३६] बुरी, बिच्छु वाली जाल[३७] बुरी, पहलै करनी आल[३८] बुरी। सच्चो०
आंख बिच आक बुरो, बाढ्योड़ा[३९] नाक बुरो, सौकण वालो साक[४०] बुरो। सच्चो०
कुल वाली लाज बुरी, पांव[४१] वाली खाज बुरी, डूबण वाली जहाज बुरी। सच्चो०
पँचा बिच झूठ बुरो, काल चारूँ खूँट[४२] बुरो, बिरच्योड़ो[४३] ऊँट बुरो। सच्चो०
कबोल[४४] को फट्ट[४५] बुरो, रण्डियां को हट्ट बुरो, सिर बिच लट्ठ बुरो। सच्चो०
दाढ़ीवारी[४६] ठोडी बुरी, गँजे वाली मोडी[७४] बुरी, मस्ताओड़ी[४८] मोडी[४९] बुरी। सच्चो०

१३—ऊँटनी. १४—दुर्बल-थकी, १५—भैंसा, १६-फटा, १७—घुटना, १८—गर्भ में बच्चे का बढ़ना बन्द हो जाना, १९—गर्मी, २०—लू, २१—मोरने वाली, २२—लत, २३—लड़ाई-झगड़ा, २४—रोगी का चारपाई पर पड़ जाना, २५—चेचक की छोत, २६—धोती, २७—शरीर, २८—पित्ती. २९—भाई-बन्धु, ३०—तूफ़ान, ३१—गोला-गुलाम, ३२—दमे की, ३३—तेइया तीसरे दिन चढ़ने वाला ताप, ३४—जिसके काटने से सारा वँश ही नष्ट हो जावे ऐसा सांप, ३५—मन का ३६—गाली, ३७—डँक की जलन, ३८—छेड़खानी, ३९—कटा हुआ, ४०—रिश्ता ४१—खुजली, ४२—दिशा, ४३—झल्लाया हुआ, ४४—कुवचन, ४५—घाव, ४६—दाढ़ी रहित, ४७—सिर, ४८—मस्त हुई, ४९—साधवी।

(पृष्ठ ८ का शेषांश)

हो जाते हैं। जिस प्रकार रामनामी दुपट्टे से चोर श्रद्धेय नहीं बनता,इसी प्रकार कुछ अच्छी बातों से साम्प्रदायिकों के ग्रन्थ किसी स्वतन्त्रप्रज्ञ के लिए श्रद्धेय नहीं बन सकते। स्वतन्त्र मनुष्यों की बुद्धि कुछ अच्छे वाक्यों के भ्रम में फंसकर सम्प्रदायों के विष को राष्ट्र में फैलने का अधिकार स्वीकार नहीं कर सकती।

कोई भी स्वतन्त्र मनुष्य धर्मों की बहुलता के सिद्धान्तों को स्वीकार नहीं कर सकता। सँसार के सारे मनुष्य एक ही आदि पुरुष से उत्पन्न हुए हैं। कोई किसी से पृथक् नहीं है। कोई किसी से ऊँचा नीचा नहीं है। सब मनुष्य हैं। सब मनुष्यता के नाते भाई-भाई हैं। यदि मनुष्य जाति एक ही आदि-पुरुष की सन्तान मानी जाती है तो सारी मनुष्य जाति का एक ही धर्म होना अत्यावश्यक है। अनेक धर्मवाद अज्ञानियों की कल्पना है।

यदि धर्मों की अनेकता को राष्ट्र में सम्मान देकर घूमने दिया जाएगा तो देश में से धर्मान्धता का नाश होना असम्भव रहेगा, साम्प्रदायिक समस्या अनिर्णीत रहेगी, और फलरूप में देश परतन्त्र रहेगा।

स्वतंत्र मनुष्य सर्वधर्म-समभाव के नाम से सांप्रदायिकता के इस कड़वे विष को कैसे पी सकता है? कोई सत्यसेवी सांप्रदायिकों की संकुचित बातों को ज्यों का त्यों कैसे पचा सकता है। सांप्रदायिकों की संकीर्णता से विद्रोह न होना मनुष्य मस्तिष्क की अस्वाभाविक अवस्था है। विद्रोह न होना मन पर एक प्रकार का दबाव है। किसी भी साम्प्रदायिक पुस्तक में से सचाई अर्थात् ईश्वर के घर का भेद ढूंढना, धूल में से खाद्य टटोलने के बराबर है।

इस सम्बन्ध में जितना अधिक विचार किया जाता है, इसी परिणाम पर पहुंचना पड़ता है कि राष्ट्र को साहस करके हिंदू, मुसलमान, ईसाई, पारसी, यहूदी आदि सब संप्रदायों की वास्तविकता को अस्वीकार करके इस सांप्रदायिक समस्या को सदा के लिए सुलझा लेना चाहिए। और राष्ट्र में मनुष्यता को ही अपना धर्म मानने वाले मनुष्य तैयार करने चाहिए। इस साहस को करते ही राष्ट्र देखेगा कि राष्ट्र में समभाव तथा मित्रता आ गई है और सारा राष्ट्र कंधे से कन्धा भिड़ाकर स्वतंत्रता में सहयोग देने के लिए रणक्षेत्र में खड़ा है।

चुटकियां

—अध्यापक ने चौथी कक्षा को सवाल निकालने के लिए दिए। सब लड़कों ने सवाल निकाल दिए। मगर एक लड़के ने सवाल के साथ एक पैसा भी अध्यापक को दे दिया। अध्यापक ने हैरान होकर पूछा कि यह पैसा कैसा है? लड़के ने जवाब दिया—मास्टर जी! इस सवाल के जवाब में एक पैसे का फर्क है, वह मैंने अपनी जेब से पूरा कर दिया है।

पिता—(अपने बेटे से) आज तुम्हारे इम्तिहान का नतीजा निकलना था?
लड़का—जी हां, बधाई।
पिता—क्या तुम पास हो गये हो?
लड़का—जी नहीं,फेल हो गया हूं। आपको इस साल मेरी किताबें खरीदनी नहीं पड़ेंगी।
मालिक—एक महीना हुआ,तुमसे एक काम के लिए कहा था,मगर तुमने अबतक नहीं किया।
मुलाज़िम—माफ़ करें, मैं भूल गया था।
मालिक—अगर मैं भी एक महीने तक तुम्हारी तनख्वाह देना भूल जावूं तो?
मुलाज़िम—मैं फौरन आपको याद दिला दूंगा।

महिला-मण्डल

कोरा उपदेश !

[लेखिका—सुश्री शकुन्तला सेहल, खानेवाल]

आज कल जिसे देखो वही अपने आप को बड़ा भारी सुधारक और नेता मानता है। जहां चार व्यक्ति इकट्ठे बैठेंगे वहीं अपना अपना व्याख्यान झाड़ना आरँभ कर देंगे। एक दूसरे को लम्बे-चौड़े उपदेश देने का भरसक प्रयत्न करेंगे, भले ही उन उपदेशों के अनुसार चलने का उन्होंने स्वयं कभी भी कष्ट न उठाया हो। यह एक बड़ा भारी सामाजिक दोष है जो कि हमारे समाज में--विशेषतः शिक्षित व सभ्य कहलाने वाली सोसायटियों में, व्यापक रूपसे फैला हुआ है। एक सुप्रसिद्ध सुधारक उपदेश दे रहे हैं—"पूज्य माताओ, बहनो और उपस्थित सज्जनो ! मुझे अचम्भा है कि आप उस सर्वशक्तिमान परमेश्वर को त्याग कर, इन देवी-देवताओं से अपने लिए पुत्र; धन आदि की अभिलाषा रखते हैं। यह देवियां नहीं पत्थर की मूर्ति में लेवियां हैं। जन्त्र, मन्त्र, तन्त्र, कुछ नहीं। इनसे आपका उद्धार नहीं हो सकता, ये आपको सच्चा मार्ग नहीं दिखा सकती हैं। इसके लिए आपको आर्य समाज में शामिल होकर ऋषि दयानन्द द्वारा बताये वेदमार्ग पर चलना चाहिए। तभी आपको सच्चा सुख तथा शांति मिलेगी।" परन्तु संसार को कल्याण मार्ग बताने वाले उपदेशक जी की श्रीमती जी तथा माता जी उस उपदेश के समय गायब। पूछने पर पता लगा कि मँदिर में मूर्ति को मत्था टेकने गई हैं। उपदेशक महाराज का बच्चा, ईश्वर न करे, यदि बीमार हो जावे तो जादू-टोने और जन्त्र-मन्त्र आदि जो भी पीर-फ़कीर बच्चे के स्वास्थ्य-लाभ के लिए बतलावेंगे, आंख मूँद कर वही करेंगे।

अब जरा दूसरे समाज-सुधारक की बात सुनिये। उपदेश दे रहे में परदे पर—"परदा ! अरे परदा !! सब बुराईयों की जड़ परदा है। यदि परदा-प्रथा जैसी नाशकारी प्रथा बन्द हो जावे तो भारतवर्ष का शीघ्र ही उद्धार हो जावे। इस उन्नति और प्रगति के युग में जब कि प्रत्येक व्यक्ति को स्वतन्त्रता प्राप्त करने

के अधिकार की आवाज़ बलन्द की जाती है, तो स्त्रियों को परदे में बन्द करना उनपर घोर अत्याचार करना है, उनकी स्वतन्त्रता को छीनना है। परदा स्त्री जाति पर एक कलंक है। वैदिक काल में परदा न था। उस समय भारत उन्नति के शिखर पर था। आप फिर अपना वह गौरव प्राप्त कीजिए तथा परदा-प्रथा की धज्जियां उड़ा दीजिए, अखबारों-सभाओं द्वारा परदे के विरुद्ध ज़बरदस्त आंदोलन कीजिए। यदि आवश्यकता पड़े तो सत्याग्रह का भी सहारा लीजिये।" उपदेशक की ज़ोरदार स्पीच सुनकर सभा में उपस्थित परदा नशीन औरतें परदा उतार डालती हैं। चारों ओर जोश छा जाता है। किन्तु ज़रा उपदेशक महोदय के घर की ओर तो दृष्टि डालिये। आपकी धर्म पत्नी घर की चार-दीवारी के अन्दर बुरेहाल में बन्द है, मुँह खोलने की बात कौन कहे, क्या मजाल कि उसका हाथ-पैर आदि परदे से बाहर रह जावे। अबला गाय की भांति कैद खाने में बन्द है। उफ़! वह बेचारी सूर्य की किरणों तक के लिए तरसती है। प्रकृति के सुन्दर दृश्य, फल-फूल, बाग़-बगीचे, हरियाली आदि मानो उसके उपयोग के लिए बना ही नहीं। सभा-सोसायटियों में जाना उसके लिए घोर पाप है। स्वतन्त्रता से घूमना फिरना, वायुसेवन करना अक्षम्य अपराध है। वह सखी-सहेलियों के सँग दो घड़ी हँसी खुशी से मन बहलाने के सुख से वञ्चित है। यह है उपदेशक महोदय की परदा-प्रथा दूर करने का रहस्य। दूसरी ओर सुधारक जी स्वयं पराई स्त्रियों से हाथ मिलावें, उनके साथ भोजन करें, हँसी-मज़ाक, मन बहलाव करें तथा उन्हें उपदेश दें—"बहनो! अपनी स्वतन्त्रता के लिए लड़ो, अपने पैरों खड़ी होओ और जो आपके इस जन्मसिद्ध अधिकार को प्राप्त करने में रुकावट डालें उनका खम्भ ठोक कर मुक़ाबला करो, भले ही वह आपके पतिदेव हों या पिता।" शर्म है इस उपदेश पर। वर्तमान समय में यह स्थिति एक दो की नहीं बल्कि अधिकांश उन नेता तथा सुधारक कहलाने वाले व्यक्तियों के घरों की है जो कि अपने को समाज या देश का पथ-प्रदर्शक समझते हैं। दूसरों को उपदेश देने तथा स्वयं उन पर अमल न करने का यह रोग अत्याधिक बढ़ता जा रहा है। कहने को तो ये लीडर कह देंगे कि स्वदेशी वस्त्र धारण करो, दहेज प्रथा को बन्द कर दो, बेटी को यदि कुछ दो भी तो केवल मात्र शुद्ध स्वदेशी वस्तुएँ ही दो। किंतु ये बातें वे दूसरों को उपदेश देने के लिए ही कहते हैं, स्वयं अपने लिए नहीं। वे अपनी बेटी के विवाह में खूब दिल खोलकर दहेज देंगे और उसमें विदेशी पर स्वदेशी वस्तु को कोई तरजीह न दी जावेगी। जब पूछा जावे कि ऐसा क्यों किया तो कह देते हैं कि नाक कटती है। भला पूछे कोई उनसे कि क्या उन्होंने अपनी नाक पर दूसरों से अधिक मूल्य खर्चा था?

वर्तमान समय में कौन ऐसा पढ़ा लिखा है, जो कॉंग्रेस, आर्य समाज आदि प्रगतिशील सँगठनों के उद्देश्यों तथा उनके प्रमुख नेताओं को नहीं जानता ? प्रत्येक व्यक्ति अपने भले-बुरे का विचार कर सकता है। उपदेशों और लैक्चरों को असँख्य बार सुनो, परन्तु आप एक ही बात पाएँगे। लोगों ने सुना कि किसी लीडर का लैक्चर है। उसे सुनने के लिए लाखों की सँख्या में जा उपस्थित होंगे। किन्तु लैक्चर समाप्त होने पर वे घर आते समय सब सुना-सुनाया वहीं झाड़ आयेंगे। भला ऐसा सुनने से क्या लाभ ? सुनो चाहे एक बार, परन्तु उस पर दृढ़ता से आचरण करो। उपदेश दिल खोल कर दो किन्तु जिस उपदेश के द्वारा आप सँसार को अपने पीछे लगाना चाहते हैं तथा जिस पर चलने से, आप देश का कल्याण समझते हैं, स्वयं उस उपदेश या आदर्श को अपने आचरण में लाओ, अक्षरशः उसका पालन करो।

इस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति 'पर उपदेश कुशल' न बनकर, स्वयं तथा अपने घर को सुधारने का भार अपने ऊपर ले ले तो समाज में फैली अनेकों बुराइयां, कुरीतियां, अन्ध-विश्वास आदि सहज ही में दूर होजावें। फिर स्वराज्य मिलना भी कोई कठिन काम न रहेगा।

'अबलाओं' का परिवर्तन

कर बन्द घरों में हमको,
गुड़ियों की तरह सजाया।
सब बुद्धि नष्ट कर डाली,
हमको असहाय बनाया ॥
हम तक ही तो सीमित है,
बोले, अस्तित्व तुम्हारा।
सेवा कर धन्य बनो तुम,
है अबला नाम तुम्हारा ॥
उद्देश्य यही जीवन का
है, हमको सुखी बनाना।
चलना इँगित पर लेकिन,
तुम कभी न जीभ हिलाना ॥
अन्याय करें कितने ही,
उफ़ मत निकालना मुख से।
हम त्याग कर रहे, कितना,
रखते हैं तुमको सुख से ॥

अब बीत चुके हैं वे दिन,
जब अबला कहलाती थीं।
बनकर भिखारिणी तुमसे,
हम दया भीख पाती थीं ॥
जागृत भारत की अब हैं,
हम प्रगतिशील महिलाएँ।
पल भर में क्रांति मचाकर,
कहलायेंगी सबलाएँ ॥
मृतप्राय बने पुरुषों में,
भर देंगी हम नवजीवन।
भ्रम, आलस्य, बेकारी भी,
डर कर भागेंगी उस क्षण ॥
लेंगी निज अधिकारों को,
हम शक्तिशालिनी अब बन।
जग आंखें मल देखेगा,
"अबलाओं" का परिवर्तन ॥

('सङ्घर्ष')

शकुन्तला श्री वास्तव

वे कौन थे ?

*
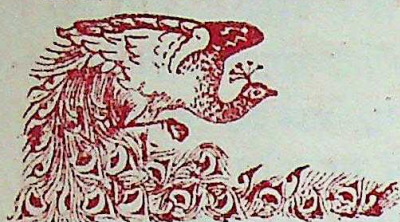
ले०—"बालसखा"

प्रिय बाल बन्धुओ, आप में से बहुत से यह खयाल करते होंगे कि निर्धन मनुष्य कुछ तरक्की नहीं कर सकता—आगे नहीं बढ़ सकता। किन्तु दर असल यह बात नहीं है। आप यह सुनकर ताज्जुब करेंगे कि दुनिया के लगभग सभी बड़े आदमी शुरू में गरीब ही थे। रेल, मोटर, हवाई जहाज़, टेलीफोन, ग्रामोफोन, रेडियो, सिनेमा तथा अन्य-अजीब, अजीब चीज़ों के ईज़ाद करने वाले धनवान और अमीर नहीं थे। वे तो झोंपड़ों में पैदा हुए थे, उन्हें तो खाने को भी मुश्किल से नसीब होता था। हिटलर, मुसोलिनी, स्टालिन का नाम आपने सुना और पढ़ा होगा। आज सारा संसार इनके नाम से थर्राता है—कांपता है। लेकिन आरम्भ में मुसोलिनी लुहार का काम करता था, हिटलर आवारा फिरा करता था और स्टालिन मोची का काम करके अपना पेट पालता था। हमारे देश में भी ऐसे व्यक्तियों की कमी नहीं है जो ग़रीबी में पलकर भी अपना नाम रोशन कर गये हैं। इस लेख में मैं आपको एक ऐसे ही महापुरुष का हाल बताऊँगा। वे एक ग़रीब परिवार में पैदा हुए थे। उनके रास्ते में अनेकों कठिनाइयां थीं। लेकिन उन्होंने कभी हिम्मत न हारी बल्कि उनका दृढ़ता से मुक़ाबला किया और दिनों-दिन तरक्की करते रहे।

शिक्षा—उन्होंने बड़ी मुसीबतें झेलकर कुछ लिखना पढ़ना सीखा। भला कैसे? उन्हीं के शब्दों में सुनिए। वे लिखते हैं कि "मैं एक ऐसे देहाती का पुत्र हूँ जिसका मासिक वेतन सिर्फ १०) था। अपने गांव के देहाती मदरसे में थोड़ी सी उर्दू और घर पर थोड़ी सी संस्कृत पढ़कर १३ वर्ष की उम्र में मैं ३६ मील दूर, रायबरेली के ज़िला स्कूल में अंग्रेज़ी पढ़ने लगा। आटा दाल घर से पीठ पर लादकर ले जाता था। दो आने महीना फीस देता था। दाल ही में आटे के पेड़े या टिकयायें पकाकर पेट पूजा करता था। रोटी बनाना तब मुझे आता ही न था। विवश होकर अंग्रेज़ी के साथ फारसी भी पढ़ता था। एक वर्ष किसी तरह वहां काटा। फिर पुरवा, फतेहपुर और उन्नाव के स्कूलों में चार वर्ष काटे। कौटुम्बिक दुरवस्था के कारण मैं उससे आगे न बढ़ सका। मेरी

स्कूली शिक्षा की वहीं समाप्ति हो गई।"

इसी से आप अन्दाज़ा लगा सकते हैं कि वे बचपन में कितने ग़रीब थे। हमारा देश गुलाम है। विदेशी सरकार यहां के बालकों कि शिक्षा का ठीक-ठीक प्रबन्ध नहीं करती। अतः बालकों को शिक्षा प्राप्त करने के लिए बड़ी भारी दिक़तें उठानी पड़ती हैं जिन्हें कोई ही बिरला साहसी बालक पार करके आगे बढ़ता है। लेकिन आज़ाद देशों में ऐसा नहीं हो सकता। वहां की सरकारें अपने बालकों को मुफ़्त शिक्षा तथा हर प्रकार की सहूलियतें व प्रोत्साहन देती हैं। हमारे देश के बालकों की तरह उन्हें भटकना नहीं पड़ता। यहां भी सरकार की ओर से बच्चों को इसी प्रकार प्रोत्साहन व पूरी सहूलियतें मिलें तो देश में अनेकों नर-रत्न पैदा हो जायें।

रेल की नौकरी——थोड़े से पढ़े-लिखे आदमी को नौकरी मिलना कितना कठिन है, इसकी आप अभी कल्पना नहीं कर सकते। बड़ी दौड़-धूप के बाद उन्हें अजमेर में १५) मासिक की नौकरी मिली। एक साल के बाद वे अपने पिता के पास बम्बई चले गए। वहां जाकर उन्होंने तार का काम सीखा। काम सीखने पर उन्हें २०) की नौकरी मिल गई। तार बाबू होते हुए टिकेट बाबू, माल बाबू तथा स्टेशन मास्टरी तक का काम भी उन्होंने अच्छी तरह सीख लिया। उनके अफ़सर उनकी ईमानदारी, योग्यता और काम से बड़े खुश और सन्तुष्ट रहते थे। थे तो वे क्लर्क ही लेकिन उनकी इतनी धाक थी कि बड़े बड़े अफ़सर तक उनसे सलाह-मशवरा लिया करते थे। रेल वालों ने कई बार उन्हें बड़े ओहदों पर भेजना चाहा, लेकिन उन्होंने इन्कार कर दिया। उन्हें ज्ञान बढ़ाने का बड़ा शौक था। इसलिए वे रुपये के लोभ से किसी ऐसे काम पर नहीं जाना चाहते थे कि जिससे उनकी पढ़ाई में विघ्न पड़े। उन्होंने अपनी तरक्की के लिए कभी अर्ज़ी नहीं दी और न किसी की खुशामद की। प्रतिवर्ष बिना कहे ही उन्हें तरक्की मिल जाया करती थी। उन्होंने नौकरी करते समय चार नियम बना लिए थे—(१) वक्त की पाबंदी करना (२) रिश्वत न लेना (३) ईमानदारी से काम करना (४) ज्ञान बढ़ाना। जब तक नौकरी की, तबतक बड़ी सख्ती से उन्होंने इन चारों नियमों का पालन किया।

इस्तीफा——वे बड़े सच्चे, निडर और न्यायप्रिय थे। अपने ऊपर हुए ज़ुल्म तो वह सह सकते थे, लेकिन दूसरों पर ज़ुल्म होते देखकर उनको बड़ा दुःख होता था। एक दिन उन को हुक्म हुआ कि तुम अपने कर्मचारियों को लेकर रोज़ सुबह दफ़्तर में आजाया करो और दस बजे तक सब कागज़ात तैयार करके मेज़ पर रख दिया करो। उन्होंने कहा कि मैं खुद तो आजाया करूँगा लेकिन दूसरों को आने के लिए मजबूर न करूँगा। बस

इतने पर ही बात बहुत बढ़ गई। फलतः उन्होंने अपना इस्तीफा दे दिया। बाद में अफसरों ने अपनी गलती महसूस की और उनसे इस्तीफा वापिस लेने को कहा गया। उनके मित्रों ने भी उन पर बहुत जोर डाला। लेकिन उन्होंने किसी की एक न सुनी। वे चट्टान की तरह अपने फैसले पर डटे रहे। थूक कर चाटना उन्हें पसँद न था। इस प्रकार उन्होंने स्वाभिमान की रक्षा के लिए २००) मासिक की नौकरी पर लात मार दी। आह! कितने खुददार और पक्के थे वे! आज तो कोई १०) की नौकरी को भी नहीं ठुकरा सकता।

नौकरी के बाद----नौकरी के बाद उनके दोस्तों ने रुपये पैसे आदि से उनकी सहायता करने की इच्छा प्रकट की। लेकिन वे किसी को तकलीफ देना उचित नहीं समझते थे। उन्हें इँडियन प्रेस इलाहाबाद से २०) मासिक मिलते थे। इतने में ही गुज़ारा करने का उन्होंने निश्चय कर लिया। और सब काम छोड़कर वे लेखन के काम में लग गये। नौकरी के दिनों में वे पत्र-पत्रिकाओं में अपने लेख भेजते थे। वे बड़े योग्य लेखक थे। उनकी लेखनी का जादू सब स्वीकार करते थे। किसी कालेज या युनिवर्सिटी में न पढ़ने के बावजूद भी कठोर परिश्रम और अटूट लगन से उन्होंने अपनी योग्यता बहुत बढ़ाली थी। वे आठ भाषाएँ जानते थे। गद्य और पद्य दोनों में खूब लिख सकते थे। उनकी लेखन शक्ति से प्रभावित होकर इँडियन प्रेस ने उनको अपने प्रसिद्ध मासिक का सम्पादक बना दिया।

सम्पादक----सम्पादक बनने पर जो काम उन्होंने किया वह सदा अमर रहेगा। उन जैसा निर्भिक सम्पादक होना कठिन है। सम्पादन के काम में उन्होंने रात दिन एक कर दिया। कई बार तो सभी लेख वे भिन्न-भिन्न नामों से खुद ही लिखते थे। कई महीने का मैटर वे पहले से ही तैयार रखते थे। बाहर से आये हुए सब लेखों को वे शुरु से आखिर तक पढ़ते थे। उनमें ज़रूरी काट-छाँट करते थे। लेख को मांज-माँज कर वह तांबे से सोना बना देते थे। जो लेख उन्हें पसँद न आता था उसे कभी नहीं छापते थे चाहे वह उनके पक्के से पक्के दोस्त का ही क्यों न हो। सम्पादन का भार उठाने पर उन्होंने अपने लिए कुछ नियम बना लिए थे—(१) समय की पाबँदी (२) अपने लाभ हानि की परवा न करके पाठकों के हानि लाभ का सदा ख्याल रखना (३) न्याय पथ से कभी न डिगना। कहना न होगा कि जब तक सम्पादक रहे वे अपने इन नियमों पर अटल रहे। यही कारण है कि उन्हें आज हिंदी-सम्पादक-सम्राट के नाम से याद किया जाता है।

हिन्दी की सेवा—वे लगभग बीस साल तक सम्पादक रहे। इन बीस सालों में उन्होंने हिन्दी सँसार में तहलका मचा दिया। आज जो हिंदी आप अपनी पुस्तकों में देख रहे हैं, यह उन्हीं की कोशिशों का फल है। इसी लिए उन्हें वर्तमान हिंदी का पिता-जन्म दाता कहा जाता है। इसमें ज़रा भी शक नहीं कि वे हिंदी माता की सेवा के लिए ही जन्मे थे। हिंदी माता की सेवा करना उन्होंने अपने जीवन का लक्ष्य बना लिया था। उस समय हिंदी की बड़ी दुर्दशा थी। अँग्रेजी पढ़े लिखे बाबू हिंदी में लिखना अपनी हतक समझते थे। उन्होंने सैंकड़ों हिंदी के लेखक तैयार किए। हिंदी के सम्बन्ध में उन्होंने १९१५ में लिखा था कि "अपने देश, अपने प्रांत और अपने जन-समुदाय के सर्वांगीण कल्याण की रामबाण ओषधि है हिंदी भाषा का प्रचार।" हिंदी भाषा भाषी उनके अह-सान को कभी नहीं भूल सकते।

स्वभाव—शुरू में तो वे कुछ उग्र स्वभाव के थे। लेकिन बाद में उनका स्वभाव बिलकुल ही बदल गया था। वे सहृदयता, मृदुलता और कोमलता की जीती जागती तसवीर थे। दूसरों को दुःखी देखकर वे रो पड़ते थे। तन, मन, धन से उनको सहायता करने के लिए वे सदा तैयार रहते थे। उनके लिए उनकी थैली हमेशा खुली रहती थी। अपना सब कुछ लुटा कर भी वे दीन हीनों की सेवा किया करते थे। बीमारों की सेवा करने में उन्हें बड़ा मज़ा आता था! उनको वे मुफ्त दवाइयां बांटते थे। रेल की नौकरी करते हुए उन्होंने अपने आस पास के सैकड़ों आदमियों को रेल में मुलाज़िम करवा दिया था। गांव वाले अपने दुःख दर्द की सभी बातें उन्हें सुनाया करते थे जिन्हें वे बड़े चाव और प्रेम से सुना करते थे। वे अपने गांव के मुनसिफ भी थे। बड़े गौर से दोनों पक्षों की बातें सुनते थे। अगर किसी के पास जुर्माना अदा करने के लिए रुपया नहीं होता था तो अपने पास से ही दे दिया करते थे। शिष्टता और भलमनसाहत उन में कूट-कूट कर भरी थी। अतिथि सत्कार में तो वे कमाल ही कर दिया करते। मेहमानों की सुविधा का वे बड़ा ख्याल रखते थे—बार २ पूछते कि कोई तकलीफ तो नहीं है। वे अपने नौकरों से भी मनुष्योचित व्यवहार करते थे। उनके व्यवहार को देख कर कोई नहीं कह सकता था कि वे उनके नौकर हैं या परिवार के आदमी। गरज़ यह कि वे सबको अपना ही समझते थे और प्रेम से बर्ताव करते थे।

दिखावे से घृणा—वे बनावट और दिखावे से कोसों दूर भागते थे। अपनी सेवाओं का ढिंढोरा पीटना उन्हें पसन्द न था। वे एकांत में रहकर चुपचाप सेवा करने के हामी थे। जब कोई उनके गुणों का बखान करता था तब उनकी आंखों से

आंसू निकल पड़ते थे। वे सदा यही कहा करते थे- 'क्या मैं और क्या मेरी सेवाएँ।' वे अपनी सेवाओं का बदला नहीं चाहते थे, जो कुछ करते थे अपना कर्त्तव्य समझकर ही करते थे।

व्यवस्था व नियमितता—सफाई और व्यवस्था का वे बड़ा ध्यान रखते थे। पुस्तकों को वे रोजाना हाथ से झाड़ते थे। उनकी हरेक चीज तरतीब से रखी रहती थी। अगर कोई किसी पुस्तक को उसके स्थान से उठा कर दूसरी जगह रख देता था तो उन्हें फौरन पता लग जाया करता था। उनकी नजर बड़ी तेज थी। वे हरेक चीज को सम्भाल कर रखते थे। वे पैकटों के कवर, चपड़ी, डोरी, कोरे कागज रख लिया करते थे और समय आने पर इन सब चीजों को काम में लाते थे। लिखने के बाद अपने कलम का निब पोंछ कर रखते थे। एक बार २० वर्ष की रखी हुई एक अग्ररबत्ती उन्होंने हरिभाऊ जी को दी थी। नियम पालन में वे बड़ी कठोरता से काम लेते थे। खुद भी नियमों का पालन करते थे और दूसरों से भी करवाते थे। सदा अपने पास कांटा रखते थे और शक हो जाने पर पत्रों को तोलकर डाक में डालते थे। कहाँ है आज इतनी ईमानदारी का अहसास! वे वायदे के बड़े पक्के थे। जो बात एक बार जबान से निकल गई बसे पूरा करके ही छोड़ते थे। पत्रों का जवाब वे लौटती डाक से ही दे दिया करते थे। सौ काम छोड़कर भी वे पत्र का जवाब समय पर देते थे। हिसाब पाई पाई का रखते थे। कहने का मतलब यह है कि उनका सब काम नियमपूर्वक और व्यवस्थापूर्वक होता था।

सादगी व स्वदेश प्रेम—इनकी सादगी का क्या कहना। आम तौर पर धोती और कुरते में ही रहते थे। बहुत मोटा कपड़ा पहनते थे। वे अपने लिए बहुत थोड़ा खर्च करते थे। आमदनी के तिहाई हिस्से में ही सब काम चला लेते थे। इसका यह मतलब नहीं कि वे लोभी थे। जरूरी खर्च करने में ज़रा भी आगा पीछा न देखते थे। वे इतनी सादगी से रहते थे कि उन्हें देखकर कोई यह नहीं कह सकता था कि वे इतने बड़े विद्वान और एक सुप्रसिद्ध पत्र के सम्पादक होंगे। कई बार बाहर से आने वाले उन्हीं से उनका पता पूछा करते थे। जहां तक हो सकता था वे स्वदेशी चीजें ही इस्तेमाल करते थे। हिंदी 'प्रताप' के पृष्ठ पर छपने वाला यह मूल-मन्त्र उन्हीं का बनाया हुआ है:—

जिनको न निज गौरव तथा निज देश का अभिमान है
वह नर नहीं नर-पशु निरा है और मृतक समान है।

वे कौन थे—प्रिय बन्धुओ, मैंने जिन महानुभाव का हाल आपको ऊपर बताया है, वे थे आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी—हिन्दी के पिता। वे २१ दिसम्बर को ७४ साल की आयु में इस सँसार से चल बसे।

यह सही है कि उनका शरीर आज संसार में नहीं है, लेकिन उनका नाम सदा अमर रहेगा। सचमुच ही वे महावीर थे। उन्होंने ग़रीबी को बुरी तरह पछाड़ा, निराशा को दूर भगाया और विपत्तियों का वीरता के साथ मुकाबला किया अतः अब आप कभी न कहें कि निर्धन मनुष्य कुछ नहीं कर सकता। हिम्मत और साहस से सभी कुछ हो सकता है—नामुमकिन भी मुमकिन बन सकता है। आज से आप भी कमर कसलें और इरादा कर लें कि जो कुछ करना है उसे करके ही रहेंगे चाहे कितने ही कष्टों और आफ़तों का सामना क्यों न करना पड़े। मैं आपको यक़ीन दिलाता हूँ कि दृढ़ निश्चय करने पर विजय आपके पांव पर आ पड़ेगी।

—०:०—

मोची से गणितज्ञ

अमेरिका के तरमोंट नामक प्रदेश में चार्ल्स फ्रास्ट नाम का मोची रहता था। वह अपने काम से रोज़ाना एक घण्टा निकाल कर गणित का अभ्यास किया करता था। इस प्रकार लगातार १० साल तक अभ्यास करते रहने के बाद वह उच्चकोटि का गणितज्ञ बन गया। संस्कृत के एक कवि ने ठीक ही कहा है—"सत्यं श्रमाभ्यां सकलार्थ सिद्धिः" सचाई से प्रयत्न करने से अत्यधिक सफलता मिलती है।

—शङ्करदेव विद्यालङ्कार

विनय

(रचियता कु० इन्दिरा देवी)

जिसने सारा जगत बनाया।
जिसने हम तुमको जन्माया॥
आओ सब मिल उसको पावें।
हम सब उसमें घुल मिल जावें॥ १॥

हम सबके दिल में जो बोले।
भले बुरे का मारग खोले॥
उस की बात सुनो सब भाई।
चाहो अपनी अगर भलाई॥ २॥

'कर कर' कहता भली बात को।
'मत कर' कहता बुरी बात को॥
आठ पहर बालक से बोले।
उसको बालक क्यों कर भूले॥ ३॥

आज़ादी खुद ही हासिल करनी होगी

उद्देश्य भिन्न हो सकते हैं, लेकिन मुझे तो असली उद्देश्य यही मालूम दिया है कि मनुष्य अपने व्यक्तित्व में अमीर हो और उन नकली कीमतों तथा अनुभवों से छुटकारा हासिल करे जिनका वह इस समय गुलाम बना हुआ है। अमीरी से मेरा मतलब दौलत नहीं, बल्कि अपने आपका असली ज्ञान है और साथ ही उन सब कामों का ज्ञान भी जो उसके अन्दर हो रहे हैं। मनुष्य के लिए ज़रूरी है कि वह अपने आपको भरपूर रखे। लेकिन ऐसा होना उसके लिए उस वक्त तक मुश्किल है जब तक कि वह दूसरों की नकल करता रहेगा। सोसायटी असली आजादी नहीं दे सकती। मनुष्य को असली आजादी खुद ही हासिल करनी पड़ेगी। सोसायटी के रस्मो-रिवाज व दिखावटी आचार-व्यवहार से छुटकारा हासिल किए बिना आजादी नहीं मिल सकती। आज़ादी हासिल करने के लिए इन्सान को तीव्र-बुद्धि होना पड़ेगा। मुझे कोई कारण नहीं दिखाई देता कि क्यों कोई आदमी यह आजादी हासिल नहीं कर सकता, बशर्ते कि उसके अन्दर सच्ची लगन हो। मनुष्य का जैसा भी जीवन है उसे समझने की धुन होनी चाहिए। उसे कठिनाइयों का सामना जरूर करना पड़ेगा और यह भी मुमकिन है कि उसे दुनियां की तथाकथित नीति और मौजूदा नेतृत्व से टक्कर लगानी पड़े। छुटकारा पाने का और कोई रास्ता नहीं है। वर्तमान निराशा का यही कारण है कि मनुष्य सोसायटी, मजहब, रीति-रिवाज और अन्य बन्धनों में जकड़ा हुआ है। यह दशा उस समय तक रहेगी जब तक मनुष्य जागृत होकर गुलामी जैसी बेहूदगी को पहचानने नहीं लग जाता।

—जे० कृष्णमूर्ति

निर्भयता का ज्वलन्त उदाहरण

हैलोदैरस रोमन बादशाह का एक निडर सिनेटर था। सिनेट में एक ज़रूरी मामले पर बहस थी। बादशाह ने हैलोदैरस को कहा कि वह कौंसिल में न जाए। हैलोदैरस ने जवाब में कहा—

"आपको अख्तियार है कि आप मुझे कौंसिल ओहदे से हटा दें। लेकिन जबतक मैं कौन्सिलर हूँ उस वक्त तक कौन्सिल में ज़रूर जाऊँगा।"

"तुम वहाँ जाकर कम से कम खामोश ज़रूर रहना।" बादशाह ने कहा।

"मेरी राय मत पूछिए, मैं खामोश रहूँगा।"

"मगर राय तो मुझे जरूर पूछनी पड़ेगी" बादशाह ने कहा।

"मगर मुझे भी जरूर कुछ कहना ही पड़ेगा. जो मुझे ठीक मालूम देगा।" हैलोदैरस ने दृढ़ता से जवाब दिया।

लेकिन तूने अगर ऐसा कुछ कहा तो मैं तुझे जरूर कत्ल कर दूँगा" बादशाह ने कहा।

"तो मैंने आपसे जिन्दा रहने की कब ख्वाहिश की थी? आप अपना काम करें, मैं अपना करूँगा। आपका काम है—मार देना और मेरा काम है निडर रहते हुए मर जाना। आपका काम है—मुझे जलावतन कर देना और मेरा काम है बगैर तकलीफ महसूस किए निकल जाना।" (प्रीतलड़ी—उर्दू)

मलेरिया—शेरों से भी भयानक

मलेरिया के कारण संयुक्त-राज्य अमेरिका में ७ करोड़ ९० लाख एकड़ जमीन, जो नील के दहाने जितनी उपजाऊ है, बिना काश्त और आबादी के पड़ी रहती है। यह रक़बा इतना बड़ा है कि उत्तरी-अफ्रीका की कपास की फसल जितनी पैदावार अकेला दे सकता है।

लन्दन हाइजीन व ट्रोपिकल मैडीसन स्कूल के भूतपूर्व डाइरैक्टर डा० एण्ड्र्यू बैलफोर्ड ने अन्दाजा लगाया है कि ब्रिटिश साम्राज्य को मलेरिया से होने वाले रोग व मृत्यु के कारण प्रतिवर्ष ५ करोड़ २० लाख पौण्ड से लेकर ६ करोड़ २० लाख पौण्ड की हानि उठानी पड़ती है।

सँयुक्त-राज्य अमेरिका में मलेरिया से १९२१ में जो हानि हुई वह इतनी थी कि उससे उस समय की अमेरिका की जलसेना का सारा खर्च पूरा हो सकता था।

स्याम में शेर प्रतिवर्ष ५० आदमियों को खा जाते हैं लेकिन मलेरिया के मच्छरों से प्रतिवर्ष ५० हजार आदमियों की मृत्यु हो जाती है। (ट्रिब्यून)

राष्ट्र का प्राण

मैं कहता आया हूँ कि यदि अस्पृश्यता रही तो हिन्दू-धर्म न रह सकेगा; उसी तरह मैं कहूँगा कि अगर देहात नष्ट हुए तो हिन्दुस्तान भी मर जायगा। जो कुछ रहेगा वह हिन्दुस्तान नहीं होगा। दुनिया में हिन्दुस्तान का जो ईश्वर-निर्दिष्ट कार्य (मिशन) है उसी का लोप हो जाएगा। देहात का पुनरुज्जीवन तभी होगा जबकि वह चूसा नहीं जायेगा। विराट औद्योगीकरण की बदौलत प्रतियोगिता और बिक्री की समस्या खड़ी होगी और उसका परिणाम देहातों की साक्षात् या परोक्ष लूटखसोट में ही होगा। इसलिए हमें अपनी सारी शक्ति देहात को आत्म-निर्भर बनाने पर ही केन्द्रित करनी चाहिए। देहातों में उत्पादन केवल उपयोग ही के लिए हो। ग्राम-उद्योगों का यह आवश्यक लक्षण कायम रखते हुए देहाती ऐसी आधुनिक कलों का भी उपयोग कर सकते हैं जिन्हें वे खुद बना सकें और उपयोग में ला सकें। शर्त इतनी ही है कि उनका उपयोग दूसरों को चूसने के लिए हरगिज नहीं होना चाहिए।

—गांधी जी

मूर्खता की हद !

भारतवर्ष की एक जाति-विशेष के लोगों का प्रोग्राम सारे माघ मास के लिए:—

१—केशी स्नान नहीं करना। २—नया कोरा कपड़ा नहीं पहनना। ३—पुराने कपड़ों को धोना नहीं। ४—टपकती छत को ठीक नहीं करवाना। ५—घर में कोई नई चीज खरीद के नहीं लानी। ६—चूल्हे को मिट्टी नहीं लगानी—चाहे टूटता टूट जावे। ७—बहू को पीहर नहीं भेजना। ८—बेटी को सुसराल से नहीं लाना। ९—किसी की शादी नहीं करनी। १०—कपड़ा नहीं रँगवाना। ११—हाथ के नाखून नहीं कटवाने। १२—टूटी जूती भी ठीक नहीं करवानी। १३—नया फल मुंह में नहीं डालना। किसी के घर बिवाह में नहीं जाना। १५—घर में झाड़ू नहीं देनी। (नवीं दुनिया—गुरुमुखी)

कब्ज़ की अचूक दवा

१—कम से कम एक समय का भोजन नहीं तो सुबह का जलपान ही केवल फलों से कीजिये; गूदेदार, छिलकेदार फलों का उनमें होना जरूरी है।

२—गीली और नरम चीजें अधिक न खाइये। खाना जितना सूखा होगा उतना ही चबाने में आवेगा और इसलिए उतना ही पाचन के लिए भी अच्छा होगा।

३—भात में बहुत सी दाल या शोरबा डालकर तथा रोटी को उनमें खूब गिला कर खाना अनुचित है। खुश्क दाल या खुश्क तरकारी के साथ भात और रोटी खाने का अभ्यास डालिए देखिये उस में स्वाद और स्वास्थ्य दोनों अधिक हैं।

४ दिन में काफ़ी फिरना, एवँ शारीरिक परिश्रम हो जावे इसका ध्यान रखिये।

५—प्यास लगे तो पानी पीना टालिये मत—काम में डूबे रहने से अकसर ऐसा होता है।

६—पाखाना जाने के नियत समय को टालिये मत और दूसरे समय भी जब हाजत मालूम हो तो हाजत को पूरी कीजिये—शर्म से दबा न बैठिये !

७—सप्ताह में एक दिन-रात, नहीं तो केवल दिन या केवल रात भर ही सिर्फ जल पर रहा कीजिये।

(जीवन सन्देश)

—०:०—
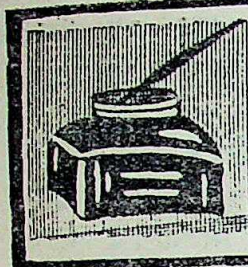
देशी राज्य आंदोलन—

"आज सब समस्याओं की समस्या है देशी राज्यों की और उनकी उस प्रजा की जो शान्तिपूर्वक स्वेच्छाचारी कुशासन की बहुत समय तक शिकार हो चुकी है। पर अब वह इसका शिकार न होगी। उत्तर में हिमालय से दक्षिण में कन्या कुमारी तक वह जाग उठी है, और उस आज़ादी के पाने के लिए बढ़ रही है जिससे कि उसे एक लम्बे अर्से तक महरूम रखा गया है। आज हम ब्रिटिश साम्राज्यवाद के उस घृणित रूप का सामना कर रहे हैं जो कि आज भी देशी राज्यों में पुरानी सामंतशाही की स्थिति को कायम रखना चाहता है। राजकोट उसके चंगुल में है और जैपुर ने उस चुनौती को मँजूर कर लिया है। उड़ीसा के राज्यों में ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने प्रजा की नई जागृति को कुचलने और अत्याचारों, धांधली, शर्मनाक दमन को जारी रखने के लिए अपनी सेना जमाकर रखी है।" ऊपर के थोड़े से शब्दों में ही पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने देशी राज्यों की समस्या को बिलकुल खोलकर रख दिया है। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में बता दिया है कि साम्राज्यशाही हर उपाय से जन-आन्दोलन को कुचल डालना चाहती है। सर्वोच्चसत्ता बहुत दिनों से इस बात का ढोल पीट रही है कि राजाओं की रक्षा करने के लिए वह अपनी पुरानी संधियों के कारण बन्धी हुए है। अतः वह हर हालत में राजाओं के खिलाफ होने वाले आंदोलन में उनका साथ देगी। यदि राजाओं के प्रति वह अपना कर्तव्य समझती है तो क्या देशी राज्यों की प्रजा के प्रति उसका कोई कर्तव्य नहीं है? क्या वह देशी राज्यों में होने वाले अत्याचारों, अन्यायों तथा कुशासन को आँखें मूंदकर देख सकती है? क्या राजाओं पर नैतिक दबाव डालकर उन्हें अपनी प्रजा को उत्तरदायी शासन देने के लिए तैयार करना उसका फर्ज नहीं है? यदि नहीं तो फिर कीड़ों से खाई हुई गली-सड़ी सन्धियों की दुहाई देने से क्या लाभ हो सकता है? उसकी इस लचर और लंगड़ी दलील को कोई समझदार व्यक्ति सुनने के लिए तैयार नहीं है। ब्रिटिश साम्राज्यशाही की चालें बड़ी अजीब हैं। उसके ढँग निराले और अनोखे हैं। यूरोप में तो वह सन्धियों की धज्जियां उड़ाकर जनतन्त्र का खात्मा करने वालों के सामने घुटने टेकने को तुली हुई है, और यहाँ संधियों को पूरा करने का ढोंग रचा जाता है। क्या खूब! भारतीय इतिहास का प्रत्येक विद्यार्थी जानता है कि ब्रिटिश जाति द्वारा नवाबों और राजाओं से किए गये इकरारनामों और अहदनामों को कहाँ तक पूरा किया गया है। अगर अंग्रेज जाति अपने वायदों पर कायम रहती तो भारत पर आज उसकी हकूमत न होती। एक बात और। क्या राजाओं से संधियां करते समय प्रजा की सलाह भी ली गई थी? अगर नहीं, तो ऐसी दकियानूसी सन्धियों के लिए प्रजा क्योंकर जिम्मेवार हो सकती है? सर्वोच्चसत्ता जब सन्धियों का ढोंग रचती है तो हमें हँसी आती है और "नौ सौ चूहे खाय के बिल्ली चली हज को" वाली कहावत याद आ जाती है। रियासतों के साथ की गई सन्धियों का जो स्वांग आज रचा जा रहा है वह इसलिए नहीं कि सर्वोच्चसत्ता को अपनी सन्धियों का ख्याल है बल्कि इसलिए कि ऐसा करने में ही उसकी स्वार्थ-सिद्धि है। ब्रिटेन खूब जानता है कि ब्रिटिश इण्डिया में अब उसके पैर जमने सम्भव नहीं। इन ५६० अलस्टरों की मदद से ही वह भारत को सदा गुलामी की जंजीरों में जकड़ कर रख सकता है। ऐसी हालत में सर्वोच्चसत्ता इन कठपुतली राजाओं और नवाबों की हस्ती बनाये रखने

के लिए ऐड़ी चोटी तक का ज़ोर लगादें तो इसमें आश्चर्य और हैरानी की कौनसी बात है। आश्चर्य तो यह है कि हमारे 'सुनहरी पिंजरे के बन्दी' अपने स्वार्थ में इतने बेखुद हो गए हैं कि वे हकीकत को देखना नहीं चाहते।

लेकिन जमाना बदल गया है। एक सिरे से दूसरे सिरे तक क्रांति की लहर दौड़ गई है। कहाँ है आज ज़ार की ज़ारशाही? क़ैसर और लुई की तानाशाही भी आज कहाँ है? और कहाँ है यूरोप की सामंत शाही और राजशाही? जब इन अजेय शाहियों का नामोनिशान मिट गया तो फिर यह बीसवीं सदी की भारत की सामन्तशाही कब तक ज़िंदा रह सकती है। सामन्तशाही मध्यकालीन युग की यादगार है। यह अधिक समय तक ठहर नहीं सकती। इसके पाँव उखड़ गये हैं। यह लड़खड़ा रही है। इसका सदियों का विशाल महल अब धड़ाम से गिरने वाला है। अगर ब्रिटिश साम्राज्यशाही राजाओं की पीठ न ठोंकती तो उन्हें कभी का होश आ गया होता। लेकिन वे तो सर्वोच्चसत्ता के बल पर कूद रहे हैं। अफ़ीमचियों की दुनिया में रहने वाले राजाओं को पता नहीं है कि उनकी ब्रिटिश साम्राज्यशाही अब दिनोंदिन कमज़ोर होती जा रही है। उसका दिवाला निकल रहा है। उसकी डिलमिल नीति ने उसका पतन कर दिया है। यूरोप में उसे अब कोई नहीं पूछता। हिटलर और मुसोलिनी ने उसके दांत खट्टे कर दिए हैं। तभी तो बेचारे चेम्बरलेन साहेब दौड़े-दौड़े कभी तो जर्मनी जाते हैं और कभी इटली। क्या राजा और नवाब यह सब कुछ नहीं देख रहे? क्या वे अब भी यही समझ रहे हैं कि यह देशव्यापी आँदोलन बासी कढ़ी के उफान की तरह दब जाएगा और वे उसी तरह गुलछर्रे उड़ाते रहेंगे, शिकार करते रहेंगे, पोलो खेलते रहेंगे और प्रजा की कमाई का लाखों करोड़ों रुपया अपने ऐशोआराम पर पानी की तरह बहाते रहेंगे। अगर वे अब भी इसी भ्रम में पड़े हैं तो अपने पांव पर आप हीं कुल्हाड़ी मार रहे हैं, समय की ललकार को बेदर्दी से ठुकरा रहे हैं। उन्हें यह भूल बहुत मँहगी पड़ेगी।

प्रजा के सन्तोष व सब्र का प्याला लबरेज़ होकर छलकने लगा है। उसका असन्तोष एक अभूतपूर्व जन-आन्दोलन के रूप में प्रकट हो गया है। वह अपने मालिकों की चाल और हथकण्डों को समझ गई है। उसने ठोकर और पुचकार 'Kicks & Kisses' की नीति को जान लिया है। उसने ढोल की पोल को महसूस कर लिया है। उसकी अटूट राजभक्ति अत्याचार, अन्याय, दमन, स्वेच्छाचारिता, क्रूरता और पाशविकता की चट्टान से टकरा कर चूर चूर हो गई है। उसे अब उल्लू नहीं बनाया जा सकता। उसने रोटी माँगी, पत्थर मिला, उसने न्याय चाहा, जेल मिली, उसने आज़ादी तलब की, गोलियाँ खानी पड़ीं। यह देखकर अब प्रजा ने अपने सर और धड़ की बाज़ी लगादी है। अपना सर्वस्व खोकर, नरक-यातनाएं सहकर भी वह अपना जन्मसिद्ध अधिकार लेकर रहेगी। देशी राज्य आँदोलन अब किसी एक आध-राज्य तक सीमित नहीं रहा है। समस्त भारत को इसने अपनी लपटों में ले लिया है। निकट भविष्य में ही यह आँदोलन अखिल भारतीय रूप धारण करने वाला है। सेगाँव के उस बूढ़े सन्त ने रणभेरी बजा दी है, बारदौली के विजेता सरदार ने मन्त्री-मण्डलों को इस्तीफा देने को तैयार रहने के लिए आदेश दे दिया है, राष्ट्रपति ने भी आज़ादी का बिगुल बजा दिया है, वीर जवाहर ने लुधियाना में सतलुज के किनारे रियासती प्रजा में स्वतन्त्रता का शंख फूँक दिया है और प्रजा ने सत्य और अहिंसा का कवच पहनकर गुलामी का जुआ उतार फेंकने का बीड़ा उठा लिया है। अब इस भीषण आग को बुझाना खालाजी का घर नहीं है। बस इस आग को बुझाने का एक ही उपाय है और वह है प्रजा को हंसते-हंसते शान के साथ उत्तरदायी शासन प्रदान करना। अगर राजे महाराजे अब भी सँभल जायें और बुद्धिमत्ता और दूरदर्शिता से काम लेना सीख जाएं तो अब भी बिगड़ी बन सकती है। राजाओं को समझ लेना चाहिए कि उनकी सार्वभौम सत्ता व्हाइटहाल में नहीं उनकी रियासत में ही रहती है और वह सत्ता है उनकी अपनी प्रजा जिसे वे सदियों से पांव तले रौंद रहे हैं। गांधी जी ने सोलह आने ठीक कहा है कि "मौजूदा महाराजे और

उनके उत्तराधिकारी सभी केवल जागृत प्रजा की कृपा से ही शासन कर सकेंगे अन्यथा नहीं।" इससे स्पष्ट है कि राजे प्रजा के सेवक बनकर ही रह सकते हैं मालिक बनकर नहीं। प्रजा उनके अस्तित्व को नहीं मिटाना चाहती। वह तो उनके स्वेच्छाचार के खिलाफ ही जहाद कर रही है। वह तो केवल यही कहती है—

यश वैभव सुख की चाह नहीं
परवाह नहीं जीवन न रहे।
यदि इच्छा है यही है जग में
यह स्वेच्छाचार दमन न रहे॥

कॉंग्रेस नैया भंवर में!—

श्री सुभाष के दोबारा राष्ट्रपति चुने जाने से भारतीय राजनैतिक क्षितिज घनघोर बादलों से आच्छादित हो गया है। कुछ नहीं कहा जा सकता कि ये बादल कब बरस पड़ें और देश में प्रलय मचादें। स्थिति दिनोंदिन डाँवाडोल होती जा रही है। कॉंग्रेस हाईकमाण्ड के १३ सदस्यों के त्यागपत्र दे देने से तो आशा की रही सही किरण भी लुप्त हो गई है। पं० जवाहरलाल के त्याग-पत्र ने तो श्री सुभाष को भी एकदम घोर असमंजस में डाल दिया होगा, क्योंकि वे तो पंडित जी पर ही अपनी आशा लगाये बैठे थे। पण्डित जी के वक्तव्य से स्पष्ट हो गया है कि सुभाष बाबू उन्हें भी अपनी ओर आकर्षित नहीं कर सके। हाईकमाण्ड के सदस्यों पर सुभाष बाबू द्वारा लगाये गये संगीन आरोपों से पंडित जी को भारी दुःख और सदमा हुआ है। खेद है कि उनके कहने पर भी उन बेबुनियाद आरोपों को वापिस नहीं लिया गया।

सुभाष बाबू ने कार्य समिति के अपने साथियों पर यह सँगीन इलज़ाम लगाया था कि वे सँघशासन को मंजूर करने के लिए ब्रिटिश साम्राज्य से षड्यन्त्र कर रहे हैं। इतना ही नहीं उन्होंने यहाँ तक कहा था कि संघ मन्त्रियों की फहरिस्त भी तैयार हो गई है। इन मिथ्या और अनुचित आरोपों का बार बार प्रतिवाद किए जाने पर भी सुभाष बाबू ने इनको वापिस लेकर अपनी भूल स्वीकार नहीं की। इन आरोपों से महात्मा जी को भी इतना दुःख हुआ कि उन्हें सुभाष बाबू को आइन्दा कोई मशवरा देने तक से इन्कार करना पड़ा। ऐसी भीषण स्थिति में कार्य समिति के सदस्यों के लिए त्यागपत्र दे देने के सिवाए और चारा ही क्या था। जब राष्ट्रपति उनको इतना अधम समझते हैं तो उनसे सहयोग की आशा रखना दुराशा मात्र है। हम यह नहीं मानते कि कार्यसमिति के सदस्यों ने त्यागपत्र देकर जल्दबाजी से काम लिया है। इतने भारी आरोप लगाये जाने पर भी सदस्यों का इतने दिनों तक खामोशी से बैठे रहना उनकी अगाध देशभक्ति और दूरदर्शिता का द्योतक है। उन्होंने सुभाष बाबू को सोचने और अपनी गलती का प्रतिकार करने का काफी मौका दिया है। लेकिन सुभाष बाबू की असाधारण चुप्पी से ऐसा लगता है कि वे अपने पुराने साथियों के सहयोग के बिना ही कॉंग्रेस को अपने प्रोग्राम के अनुसार चलाना चाहते हैं। अब जबकि १३ सदस्यों ने त्यागपत्र दे दिए हैं, सुभाष बाबू अपनी नयी कैबिनेट बनाकर अपनी इच्छानुसार कॉंग्रेस को अपने साँचे में ढाल सकते हैं। अतः उन्हें चाहिए कि साहस से काम लेकर अपने बल बूते से कांग्रेस को चलायें। अगर उनमें इतनी हिम्मत और हौसला नहीं है तो दो किश्तयों में पाँव रखने की भयंकर नीति को जल्द अज़ जल्द तर्क करके वे अपने साथियों से समझौता कर लें या खुशी खुशी अपना त्यागपत्र देकर अपनी देशहितैषिता और त्याग का परिचय दें। इस निकट उलझन को सुलझाने का और कोई बीच का मार्ग नहीं है।

आज की अनिश्चित स्थिति से देश के कोने कोने में सनसनी फैल गई है। चारों ओर से यही ध्वनि निकल रही है कि अब क्या होगा? क्या महात्मा जी की रहनुमाई और उनके कर्मठ साथियों के सहयोग के बिना सत्याग्रह संग्राम सफलतापूर्वक चलाया जा सकता है? क्या इस सँकट से कांग्रेस में फूट पड़कर इसके दो टुकड़े नहीं हो जायेंगे? क्या तथाकथित वामपक्षी कॉंग्रेस तंत्र को सत्य और अहिंसा के मौलिक सिद्धांतों पर सुचारु रूप से चला सकेंगे? ये सवाल हैं जो प्रत्येक देश हितैषी को

विह्वल बना रहे हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि कांग्रेस नैया भंवर में आ गई है और उत्ताल तँरगों के बीच डगमगा रही है। लेकिन हम खूब जानते हैं कि सँघर्ष जीवन-जागृति का चिन्ह है। इसलिए मौजूदा सँकट से घबराने और परेशान होने की ज़रूरत नहीं है। शीघ्र ही निराशा के काले बादल छिन्नभिन्न होकर आशा रूपी सूर्य बड़ी आवो-ताव के साथ चमकने लगेगा। हमें यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि सँसार की कोई शक्ति काँग्रेस को कमज़ोर नहीं बना सकती। कांग्रेस अपनी पूरी शान के साथ जिंदा रहेगी और सर्वोच्चसत्ता का स्थान लेकर ही रहेगी।

कांग्रेस कमेटी हिसार का प्रशंसनीय उद्योग--

इस वर्ष जिला हिसार में भंयकर अकाल पड़ने से जन-धन तथा पशुओं की जो अपार हानि हुई है, उसे सुनकर हृदय थर्रा जाता है। लाखों मनुष्यों तथा पशुओं का अन्न व चारे के बिना ऐसे समय में जबकि बड़ी-बड़ी मण्डियों व शहरों में अनाज के ढेर लगे पड़े हैं, कपड़ों की दुकानें भरी पड़ी हैं, भूखों मरना एक आश्चर्यजनक घटना है। यदि हिसार जिले के प्राणियों पर आई इस दैवी विपत्ति में हाथ बढ़ाने के लिए प्रत्येक देशवासी तैयार होता, अपना नैतिक कर्त्तव्य समझकर यथाशक्ति सहायता करता तो ३५ करोड़ संख्या के इस विशाल देश में कुछ लाख मनुष्यों व पशुओं पर आई विपत्ति सहज में ही दूर हो सकती थी। यद्यपि लाखों प्राणियों का संकट लाखों के प्रयत्न से ही दूर हो सकता है फिर भी सच्ची लगन से प्रयत्न करने पर मनुष्य कष्ट-पीड़ितों की बहुत कुछ सहायता कर सकता है—इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है हिसार की कांग्रेस कहत कमेटी का वह सराहनीय उद्योग जो कि उसने गत ३॥ मास में कहत पीड़ितों के लिए किया है। उक्त कमेटी के मन्त्री की रिपोर्ट हमारे सामने है जिससे पता लगता है कि ३॥ मास में कमेटी ने कहत पीड़ितों के लिए २८९७५॥=) नक़द प्राप्त किए तथा ३७२५) रु० के वादे, ७२५ हजार रुपये के वस्त्र अनाज सामग्री सँग्रह की, जिसमें १६७५७ नये वस्त्र-लिहाफ़, कमीज़ आदि तथा ३०६२० पुराने वस्त्र प्राप्त हुए तथा १२७६ मन ७ सेर १२ छं० अनाज एकत्र किया। कमेटी ने इस प्रकार १६८३९ नये व २७१८२ पुराने कपड़े और ५०२ मन ५ सेर १२ छं० अनाज पीड़ितों में बाँटा। इसके अलावा ६ कताई-बुनाई के केन्द्र खोलकर मजदूरी के रूप में १४८०६॥≡) २७२० स्त्री-पुरुषों को दिए। काँग्रेस कहत कमेटी को इस महान् सेवा कार्य में बम्बई जीवदयामण्डल, अकाल गौ कष्टनिवारणी सभा दादरी तथा राजपूताना अकाल सेवा समिति ने भी सहयोग दिया तथा ७० हजार रुपया खर्च करके ८॥ हजार गौओं की रक्षा की। जीवदयामण्डल बम्बई ने १०९३ गौओं व ३५ सांडों के लिए २०१५५६ चारा मुफ़्त दिया।

कांग्रेस कहत कमेटी ने उपरोक्त सँस्थाओं के सहयोग से अकाल पीड़ितों के लिए जो महान् कार्य किया है वह प्राणीमात्र के हितैषी प्रत्येक व्यक्ति के लिए अनुकरणीय है। वास्तव में हिसार की कांग्रेस ने अपने महान् उद्देश्य के अनुसार जिले की नंगी-भूखी जनता की सेवा का सँतोषजनक कार्य किया है। किन्तु यह कार्य पर्याप्त नहीं कहा जा सकता है क्योंकि समय पर पूरी सहायता न मिलने के कारण अकाल पीड़ित हजारों प्राणी छटपटा कर मर गये तथा सहस्रों हड्डियों का ढाँचा रह गये हैं। कमेटी की रिपोर्ट में अकाल की बढ़ती हुई भयकरता के सम्बन्ध में लिखा है कि--"कहत का कष्ट बढ़ता जा रहा है। इस मास में भी वर्षा नहीं हुई। गाय भूखी मर रही हैं, आदमी बेकार बैठे हैं। खाने की तकलीफ तो थी ही, अब पीने के पानी का कष्ट भी बढ़ता जा रहा है।" इन पंक्तियों को पढ़कर प्रत्येक देश-हितैषी का हृदय दुःख से विह्वल हुए बिना न रहेगा। हमें चाहिए कि अपने सिनेमा-थियेटर, नाच-रंग, मौज़-शौक, विवाह-शादी के खर्चों में कमी करके इन अकाल-पीड़ितों की सेवा करें। करोड़ों व्यक्तियों द्वारा अपने आवश्यक खर्च में से बचाई पाई-पाई की सहायता भी इन विपत्ति ग्रस्तों के लिए प्राणदायक सिद्ध हो सकती है।

दीपक के प्रकाश में--

पानी का इलाज—लेखक व प्रकाशक—श्री युगल किशोर चौधरी N. D. H. L. M. S. वैद्य मनीषी, पो० नीमकाथाना, जयपुर। पृष्ठ संख्या ५८, मू० ।-)

लेखक ने प्राकृतिक चिकित्सा सम्बन्धी उपयोगी साहित्य हिन्दी सँसार को भेंट किया है। प्रस्तुत पुस्तक में आपने सब प्रकार के नये पुराने भयँकर से भयँकर रोगों को भी जल-प्रयोग द्वारा दूर करने की विधि बतलाई है। सभी रोगों का कारण प्रकृति-विरुद्ध जीवन बतलाकर आपने प्राकृतिक पद्धति द्वारा स्वाभाविक रहन-सहन को रोग दूर करने का साधन बतलाया है तथा प्राकृतिक-स्नान करने की पूरी विधि, उस सम्बन्ध की आवश्यक हिदायत, ऐसे स्नान से लाभ, रोग दूर करने के उपाय आदि बतलाये हैं। बिना दवा-दारू व डाक्टर-वैद्य की सहायता के प्राकृतिक चिकित्सा के प्रेमी अवश्य हो, पुस्तक को पढ़ेंगे। मूल्य अधिक है!

क्या और कैसे खायें—लेखक व प्रकाशक डा० बालेश्वर प्रसादसिंह, स्वास्थ्य पुस्तक भण्डार ३० बाई का बाग़ प्रयाग, पृष्ठ सँख्या ४३, मू० ।)

यह सभी जानते हैं कि सब रोगों की जड़ पेट की खराबी है और पेट में गड़बड़ी होती है अनाप-शनाप आहार-विहार से। भारत के ९९.७ मनुष्य नहीं जानते कि शरीर को स्वस्थ व पुष्ट रखने के लिए क्या और कैसे खावें अतः सभी किसी न किसी रोग से ग्रस्त हैं। देशवासियों की भोजन सम्बन्धी इस अज्ञानता को दूर करने के लिए ही प्रस्तुत पुस्तक लिखी गई है। लेखक एक अनुभव-शील सुप्रसिद्ध प्राकृतिक चिकित्सक हैं तथा आपने अनेकों असाध्य रोगियों को केवल मात्र भोजन का हेर फेर करके स्वस्थ किया है। आपने इस पुस्तक में अपने ऐसे ही अनुभवों का निचोड़ दिया है। भोजन में जिन विटामिन, लोहा, चूना, क्षार, अमल आदि आवश्यक तत्वों का होना आवश्यक है उनके लिए भिन्न-भिन्न प्रकार की भोजन सामग्री, फल, सब्जी, कन्द सूखे-मेवे, अन्न, रस आदि के गुण बतलाये हैं। वैज्ञानिक ढँग से भोजन सम्बन्धी जितनी जानकारी इस छोटी सी पुस्तक में हैं, उतनी हमने अन्य किसी पुस्तक में नहीं देखी। यह पुस्तक प्रत्येक स्वास्थ्य प्रेमी को अवश्य पढ़नी चाहिए।

कब्ज़ या कोष्ठबद्धता—लेखक उपरोक्त प्रकाशक—लीडर प्रेस, इलाहाबाद, पृष्ठ सँख्या ५९, मू० ।-)

पुस्तक में कब्ज के कारणों और उनके दूर करने के उपायों पर वैज्ञानिक ढँग से प्रकाश डाला गया है। कब्ज को दूर करने के लिए जितने भी उपाय बताए गए हैं वे सबके सब बड़े ही सरल और प्राकृतिक हैं। मरीज़ को उन पर एक पाई भी खर्च नहीं करनी पड़ेगी। हमारा विश्वास है कि इस पुस्तक में दी गई हिदायतों के अनुसार चलने से हर प्रकार का कब्ज दूर हो सकता है। जो कब्ज के शिकार रहते हैं उन्हें पुस्तक को ध्यान पूर्वक पढ़ना चाहिए। पुस्तक है तो छोटी सी लेकिन है बड़े काम की। मू० अधिक मालूम पड़ता है।

महापुरुष मुहम्मद साहेब—लेखक—श्री कुमार यशपालसिंह विद्यालङ्कार, प्रकाशक—सेमीनार, बड़ौदा महाविद्यालय, बड़ौदा; मू० ।=)॥, पृष्ठ सं० ४१

प्रस्तुत पुस्तक में मुहम्मद साहेब की संक्षिप्त जीवनी और इस्लाम धर्म के मोटे २ असूलों पर प्रकाश डाला गया है। इस पुस्तक के अवलोकन से पाठकों को मुहम्मद साहेब और उनके द्वारा प्रतिपादित धर्म के सम्बन्ध में साधारण जानकारी हो

सकती है। पुस्तक में कोई नवीनता और विशेषता का न होना खटकता है।

सत्य-संगीत—लेखक—पं० दरबारीलाल जी सत्यभक्त, प्रकाशक—सत्याश्रम, वर्धा (सी० पी०) मू० ।।=), पृष्ठ सँ० १२८

पं० दरबारीलाल जी सर्वधर्म-समभाव व सर्वजाति समभाव के समर्थक हैं। प्रस्तुत पुस्तक की सब कविताएँ इसी भाव में रँगी हुई हैं। इन कविताओं में साम्प्रदायिकता और सङ्कीर्णता का नाम-निशान तक नहीं है। सभी धर्मों के अनुयायी इन कविताओं को प्रार्थना के रूप में इस्तैमाल कर सकते हैं। सभी कविताएँ जीवन और स्फूर्ति सञ्चार करने वाली हैं। लेकिन इनमें से 'क्या', 'क्या करूं', 'क़ब्र के फूल' और 'मिटने का त्यौहार' कविताएँ हमें बहुत ही पसन्द आईं।

प्रेम-तरंग (उर्दू) भाग दो—लेखक व प्रकाशक—ला० काशीराम जी चावला, सुपरिंटेण्डेण्ट दफ़्तर डिप्टी कमिश्नर, होशियारपुर। मू० प्रथम भाग ।।), द्वितीय भाग १)

दोनों पुस्तकों में विद्वान एवं अनुभवी लेखक ने जीवन के रहस्य को खोलकर रख दिया है तथा सत्यानाशी साम्प्रदायिकता की धज्जियां उड़ा दी हैं। विषय गम्भीर और गूढ़ होते हुए भी भावपूर्ण और ओजपूर्ण भाषा तथा रोचक शैली ने इसे इतना दिलचस्प बना दिया है कि पुस्तक को शुरू करने के बाद आद्यो-पांत पढ़ने को ही जी करता है। पहली पुस्तक में जो कुछ कहा गया है उस का समर्थन दूसरे भाग में शास्त्रों के हवाले देकर किया गया है। पुस्तक के प्रथम भाग में 'मजहबी जङ्ग' की हिमायत करते हुए जो दलीलें दी गई हैं वे हमें जँची नहीं। चाहे कोई माने या न माने मजहबी युद्धों का कारण तो मजहबी सङ्कीर्णता और असहिष्णुता के और कुछ नहीं हो सकता। सच्चा मज़हब जंग का समर्थन नहीं कर सकता! वह तो विरोधियों पर भी प्रेम से ही विजय प्राप्त करेगा। जो धर्म दुष्टों का सँहार करना सिखाता है, वह सच्चा धर्म नहीं कहला सकता। हमारी यह दिली ख्वाहिश है कि प्रत्येक मानव-हितैषी इन पुस्तकों को अवश्य पढ़े।

सचित्र मांसाहार विचार—(दो भाग) लेखक विद्या भूषण पं० ईश्वर लाल जैन विशारद, न्यायतीर्थ, प्रकाशक—आदर्श ग्रन्थ माला, मुलतान शहर, पृष्ठ सँख्या १२६, मू० ।=)

विद्वान लेखक ने वैज्ञानिक तथा विभिन्न धर्मों के ग्रन्थों के प्रमाण देकर बड़े सुन्दर ढँग से सिद्ध किया है कि मांसाहार राजनैतिक, धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक तथा शारीरिक सभी दृष्टियों से वर्जित व निन्दनीय है। प्रत्येक देश हितैषी को ठंडे दिल से इस पुस्तक को पढ़ना चाहिए और मांसाहार के दिनों दिन बढ़ते हुए प्रचार को बन्द करने का प्रयत्न करना चाहिए। हम लेखक को ऐसी उपयोगी और ज्ञानवर्धक पुस्तक के लिए बधाई देते हैं। हम चाहते हैं कि इस पुस्तक का घर घर में प्रचार हो।

देश-निर्माता—लेखक व प्रकाशक—श्री रामनारायण मिश्र, 'भूगोल' कार्यालय, प्रयाग, पृष्ठ सँ० , मू० १)

इस पुस्तक में सुयोग्य लेखक ने इस युग के उन १९ राष्ट्र-निर्माताओं की सँक्षिप्त सचित्र जीवनियां प्रांजल भाषा में दी हैं, जिन्होंने अपने अथक परिश्रम, अदम्य उत्साह तथा महान् व्यक्तित्व के बल से अपने सोते हुए देश को झकझोर कर उठाया, जाग्रत किया तथा उन्नति की ओर अग्रसर किया। आज जबकि भारत भी नींद से उठ चुका है और आगे की ओर बढ़ रहा है उसे ऐसे साहित्य की बड़ी जरूरत है जो कि आजादी की लड़ाई में उसके नव युवकों का पथ-प्रदर्शन कर सके। इन युग-परवर्तक वीरों के जीवन-चरित्रों से हम काफी ज्ञानोपार्जन कर सकते हैं। पुस्तक पठनीय है।

—सत्येन्द्रनाथ विद्यार्थी

किसानों की दुनियां—इस पुस्तक की लेखिका हैं श्रीमती राजकुमारी देवी और प्रकाशक हैं ठा० मुन्शीसिंह जी। "माधोप्रिंटिंगवर्कस बैरहना, इलाहाबाद" से एक आने में मिलती है। पूर्वी-हिन्दी भाषा में किसानों की दशा पर कई पद बड़े अच्छे और भावपूर्ण हैं। किसान हितैषियों को यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिए।

नरेन्द्र बी० ए०—लेखक—श्री पुरुषोत्तम महादेव वैद्य, प्रकाशक— नवरस-कार्यालय, इन्दौर शहर, पृष्ठ सँख्या ७५, मू० ।।)

प्रस्तुत पुस्तक में ६ कहानियां हैं। सभी कहानियों का नायक नरेन्द्र बी० ए० है जिसमें आधुनिक कालिजियेटों की भाँति फैशनपरस्ती, उछृङ्खलता तथा प्रेम का उन्माद है। लगभग सभी कहानियों में नरेन्द्र के किसी लड़की से प्रेम करने अथवा विवाह-पाश में फँसने की चर्चा है। सभी कहानियों का कथानक अपटू-डेट तथा रोचक और वर्णन-शैली में हास्य और व्यङ्ग का जो सुन्दर मिश्रण किया है, हिन्दी सँसार में बिल्कुल नई चीज है। इस तरह की कहानी लिखने में वैद्य जी का स्थान हिन्दी लेखकों में अग्रणीय है। पुस्तक का गेट अप बड़ा आकर्षक तथा कागज, छपाई आदि बढ़िया है; किन्तु मूल्य अधिक है।

विप्लव (हिन्दी मासिक)—श्री यशपाल द्वारा सम्पादित तथा 'विप्लव' कार्यालय, गणेशगंज, लखनऊ से प्रकाशित, पृष्ठ सँख्या ७२ तथा वा० मू० ४।।)

प्रसिद्ध क्रांतिकारी यशपालजी ने समाजवाद के सिद्धांतों का प्रचार करने के लिए यह पत्र निकाला है। इसमें सभी लेख, टिप्पणियां, आदि ठोस और मनन शील होते हैं। समाजवाद, मार्क्सवाद, गांधीवाद, आदि के सिद्धान्तों का सुयोग व्यक्तियों द्वारा तर्कपूर्ण विवेचन होता है। राष्ट्रीय अन्तर्राष्ट्रीय समस्याएँ, कहानियां, गल्प, कविताएँ, उद्योग-धन्धे आदि जिस भी विषय पर कलम उठाई जाती है सबमें क्रांति की ज्वालाएँ धधकती हैं, समाजवादी पत्रों में हमें यह पत्र सबसे उत्कृष्ट सामग्री से पूर्ण जँचा।

अनुभूत योग माला का यूनानी चिकित्सा दूसरा भाग—पृष्ठ सँख्या १९८

इस अँक में विद्वान सम्पादक ने यूनानी चिकित्सा शास्त्र के गहन अध्ययन के आधार पर शरीर के कान, नाक, होंठ, दांत-मसूड़े, मुँह-हलक, सीना, दिल, मेदा आदि प्रत्येक अँग के सैंकड़ों रोगों का यूनानी-पद्धति द्वारा चिकित्सा करने का विस्तृत वर्णन दिया है। अँक में सभी रोगों के सैंकड़ों युनानी अनुभूत नुसखे दिए गए हैं। यह सर्वसाधारण विशेषत: चिकित्सों के बड़े ही काम की चीज है। यह पत्र बरालोकपुर, इटावा से श्रीयुत पँ० विश्वेश्वर दयालु वैद्यराज द्वारा सम्पादित व प्रकाशित होता है।

सुधाकर (विशेषांक)—सम्पादक भोलादत्त ज्योतिर्विद व शांतिनाथ बी०ए० 'सुधारक' कार्यालय, मोहनलाल रोड़ लाहौर से प्रकाशित, वार्षिक मू० २) तथा इस अँक का ।)

१२० पृष्ठ के इस विशेषांक में सम्पादक महानुभावों ने विविध प्रकार की उपयोगी सामग्री जुटाने का प्रयत्न किया है। डेढ़ दर्जन के लगभग कविताएँ, आधी दर्जन कहानियाँ, साहित्यिक व खोजपूर्ण लेख निबन्ध पँजाब की हिन्दी परीक्षोपयोगी, लेख महिलाओं व बालकों के लिए उपयोगी व मनोरँजक सामग्री, हास्यरस, विज्ञान व उद्योग-धन्धे सम्बन्धी भी कुछ सामग्री है। इस प्रकार सहयोगी के इस अँक में पाठक विविध विषयक रचनाओं से लाभान्वित हो सकते हैं। निश्चित ध्येय को लक्ष्य में रखकर सर्वसाधारण में जागृति पैदा करने वाली सामग्री प्रस्तुत करने के लिए अभी काफ़ी प्रयत्न सहयोगी को करना चाहिए।

———०:०———

संसार-चक्र

इलाक़ा

स्वर्गीय चौधरी खजानचन्द जी

चूहड़वाली के श्री खजानचन्द जी का गत मास स्वर्गवास हो गया है। आप इस इलाके के एक सभभक्तदार और समाज-सुधार के कार्यों में दिलचस्पी लेने वाले प्रतिष्ठित व्यक्ति थे। साहित्य सदन, अबोहर के प्रति आपकी बड़ी श्रद्धा थी। हम मृतक के दुःखित परिवार के प्रति हार्दिक सहानुभूति प्रकट करते हैं।

ओडों के खिलाफ़ शिकायत की तहकीकात—

—फीरोजपुर जिला काँगरेस कमेटी के प्रधान साहेब सूचित करते हैं कि इस जिले के देहातियों की ओडों सम्बन्धी तकलीफ़ों की तरफ़ असेम्बली के कांग्रेसी मेम्बरों ने सरकार का ध्यान दिलाया तो सरकार ने खानाबदोश ओडों के खिलाफ देहातियों की शिकायतों की तहकीकात के लिए पीर अकबर अली, सरदार प्रीतम सिंह व पं० मुनीलाल कालिया की एक सब कमेटी बनाई है जो जल्द ही जिले में घूमकर सब हालात देखेगी। जिन देहातियों को कुछ शिकायतें हों वे सब कमेटी के सामने रखें।

पँजाब

—पँजाब में १९३८ के अँतिम तीन मास में अन्धाधुंध चलने से २१० मोटर दुर्घटनाएँ हुईं जिनमें ७१ मरे व २८२ घायल हुए।

—१७ फ़रवरी को पं० जवाहरलाल नेहरू नामधारी सिखों के प्रसिद्ध धर्मस्थान भैणीसाहब गए। कठोर नियम पालक नामधारियों के सब स्थानों को देखा. उनमें त्याग व कुरबानियों की कथाएँ सुनकर आप रो पड़े।

—इस वर्ष शि० गु० प्र० कमेटी के चुनावों में अकाली पार्टी को १२० सीटों में से १०३ मिलीं।

—१३ फरवरी को फतेहवाल केस का फैसला सुनाया गया। एक को कालापानी, पांच को १ से २ साल तक की सजा हुई तथा २६ छोड़ दिए गए।

—असौधा (रोहतक) में १९ फरवरी को जिला कांग्रेस कमेटी की ओर से विशेष तैयारी के साथ कांफ्रेन्स की गई। १ हजार कांग्रेसी स्वयँसेवक जिले भर से वहां पहुँच गये। उन पर एक सौ से अधिक गुण्डों ने लाठियों व तेज हथियारों से हमला किया। लगभग सौ कार्यकर्त्ता व स्वयँसेवक घायल हुए। बाद में समझौता हो गया कि कांग्रेस इस शामलात स्थान पर जलसा कर सकती है। इस प्रकार कांग्रेस की विजय हुई तथा उसने ३ मार्च को फिर कांफ्रेन्स करने का फ़ैसला किया है।

यू० पी०

—कानपुर के भीषण हिन्दू-मुसलिम दँगे में ४२ आदमियों के मरने २॥ सौ के घायल होने तथा ९०० के गिरफ्तार होने की सूचना है। दँगे के कारण शहर का सब कार बार बन्द हो गया, स्कूल-कालेज, मिलें आदि भी बन्द रहे तथा २५ हजार से अधिक लोग शहर छोड़ कर चले गये जिससे शहर उजड़ सा हो गया।

बम्बई

—आगामी वर्ष का बजट पेश करते हुए अर्थमँत्री ने २८ लाख ४६ हजार रुपये का घाटा दिखलाया तथा बतलाया कि इस वर्ष शराब बन्दी के कारण १॥ करोड़ रुपये की आय में कमी होगी, ४० लाख रु० लगान से कम आवेगा, ४५ लाख रु० ग्राम-सुधार में अधिक खर्च होगा तथा १५ लाख रु० शराब खोरी रोकने में खर्च होगा।

सिन्ध

—प्रधान मन्त्री ने सरकारी नौकरों के लिए खद्दर पहनने की घोषणा की है

—ओम मँडली के सँस्थापक दादा लेखराज जी ४ नाबालिक लड़कियों के उड़ा लेने के अपराध में गिरफ़ार कर लिए गए।

—सिंध कैबिनेट में बजाए तीन के ६ मँत्री हो गये हैं जिनमें से एक सर गुलाम हुसैन हिदायत उल्लास हैं।

उड़ीसा

—सरकार ने १ अप्रैल से प्रांत की सभी म्युनिसि-पैलिटियों में, अनिवार्य प्रारम्भिक शिक्षा जारी कर देने का निश्चय किया है।

आसाम

—मालूम हुआ है कि गवर्नर ने मँत्रियों की कमिश्नरों की बाकी जगह उड़ाने की बात मँजूर कर ली है। इसी बात पर मन्त्री मण्डल व गवर्नर में झगड़ा होने का खतरा था।

देशी राज्य

—अ भा० रियासती प्रजा मण्डल का छठा अधि-वेशन प० जवाहरलाल नेहरू के सभापतित्व में १५ से १७ फरवरी तक लुधियाने में बड़े समारोह से हुआ। भारत की सभी रियासतों के प्रतिनिधि इसमें शामिल हुए तथा अनेक महत्वपूर्ण विषयों पर प्रस्ताव पास किये गये।

—राजकोट में ३ फरवरी को श्रीमती कस्तूर बाई गांधी तथा सरदार पटेल की पुत्री मनाबेन पटेल गिरफ़ार हो गई हैं। रोजाना दर्जनों व्यक्ति गिरफ़ार हो रहे हैं। सख्त मार पीट से स्वयँसेवकों की मृत्यु तक हो जाने की खबर आई है।

—जयपुर में सेठ जमनालाल जी तीसरी बार १२ फरवरी को गिरफ़ार होकर नजर बन्द कर दिए गये हैं। प्रजा मण्डल के अन्य प्रमुख कार्यकर्त्ता-ओं को भी गिरफ्तार करके सजाएँ सुना दी गई हैं। सीकर, झुन्झुनू आदि में भी सत्याग्रह शुरू हो गया है।

—प्रसिद्ध मारवाड़ी तथा राजनीतिज्ञ मि० जी०पी० खेतान भी मार्च में जयपुर में सत्याग्रह करने की तैयारी कर रहे हैं।

—धार तथा नीलगिरी राज्यों ने बाहर के लोगों का राज्य में प्रवेश करना बन्द कर दिया है।

—हैदराबाद में अब तक ४ सौ से ऊपर जत्थे जिन में २ हजार से अधिक सत्याग्रही थे, गिरफ़ार होचुके हैं। महात्मा नारायण स्वामी को बेड़ियां पहनाई गई हैं। आर्य समाज के गुरुकुलों, कालेजों व स्कूलों के विद्यार्थी सत्याग्रह के लिये प्रति-दिन भारी सँख्या में जा रहे हैं। विदेशों से भी जत्थे आ रहे हैं।

—मध्य प्रदेश के समथर राज्य में शीघ्र ही बुन्देल-खण्ड राज्य कांग्रेस का अधिवेशन होगा जिसमें कितने ही राज्यों में सत्याग्रह आन्दोलन करने का निर्णय होगा।

देश

—१९१४ में जो भारत की मनुष्य गणना होगी उसकी अभी से तैयारी शुरू हो गई है। एक रात में समस्त देशवासियों की गिनती हो जावेगी। इस काम में २० लाख व्यक्ति लगाये जावेंगे तथा ५० लाख रुपये खर्च होने का अन्दाज है।

—१४ फरवरी को केन्द्रीय असेम्बली में मि० काजमी का मुसलिम महिला तलाक बिल पास हो गया जिसका उद्देश्य यह है कि धर्म परिवर्त्तन पर भी कोई मुस्लिम स्त्री अपने पहिले मुस्लिम पति से छुटकारा न पा सकेगी।

विदेश

—फ्रेंको ने अब लगभग सारे स्पेन को विजय कर लिया है तथा युरूप के कई देशों ने स्पेन में फ्रेंको की सरकार भी मानली है।

—ब्रिटेन युद्ध की जबरदस्त तैयारी के लिए १०८० करोड़ रुपया कर्जा लेगा।

साहित्य-सदन समाचार
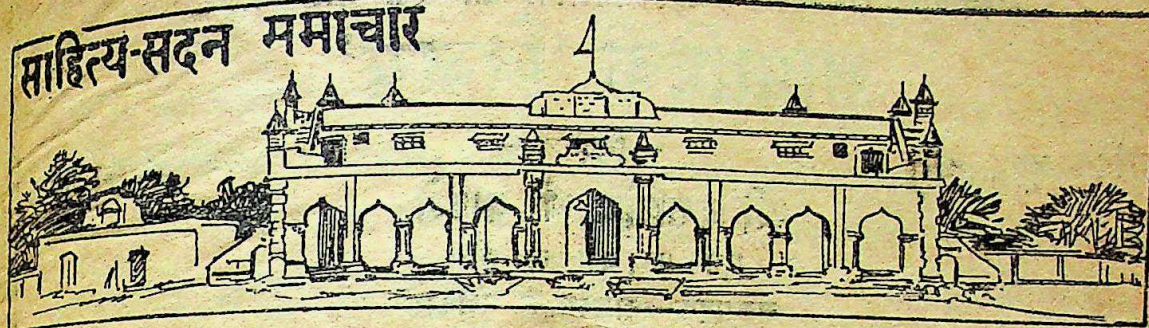
[कार्य-विवरण, मास जनवरी १९३९ ई०]

केन्द्रीय पुस्तकालय

इस मास में २३८ पुस्तकें जनता द्वारा पढ़ी गईं। १२५ पत्र-पत्रिकाएँ इस मास में आती रहीं जिनमें हिंदी, अँगरेजी, गुरमुखी और गुजराती आदि के ७१ मासिक पत्र, ३१ हिन्दी साप्ताहिक, ५ गुरमुखी साप्ताहिक ७ उर्दू साप्ताहिक, २ अँगरेजी साप्ताहिक, २ उर्दू दैनिक, २ हिन्दी दैनिक, तथा एक अँगरेज़ी दैनिक आते रहे हैं।

नई पुस्तकें

१३८) की १८ पुस्तकें 'दीपक' प्रेस, द्वारा प्राप्त हुईं।

संग्रहालय

श्री चौधरी मनफूलसिंह बिशनोई बी०ए० पन्नीवाली ने सँगमरमर की बनीं हुई भगवद्गीता जिस पर महात्मा गांधी की तस्वीर बनी है प्रदान की।

इस मास में जापानी सिक्का येन तथा अन्य सिक्के सँग्रहालय में रखे गये।

विशेष सहायता

अबोहर की सब व्यापारिक कम्पनियों ने एक रुपए पर एक पैसा धर्मादा 'साहित्य-सदन' को देना स्वीकार कर लिया है। सँस्था इन सबके लिए परम कृतज्ञ है।

क्या आप जानते हैं ?

सिंगार का खब्त—अमेरिका में औरतें अपने बनाव-सिंगार पर तकरीबन दो करोड़ रुपया सालाना खर्च करती हैं।

५० हज़ार शब्दों का कार्ड—आस्ट्रिया के वीलहेल्म लेन्डार नाम के एक व्यक्ति ने आस्ट्रिया के सब कानून-कायदे एक पोस्ट-कार्ड में लिखे हैं। इसमें ५२ हजार शब्द और १॥ साल में लिखा गया है। अक्षर इतने छोटे हैं कि बिना मेग्नीफाइङ्ग ग्लास के पढ़े नहीं जा सकते।

रेडियो के चमत्कार—केलिफोर्निया में रेडियो से लहरें भेजकर बीमार गायों का रोग दूर किया है। रेडियो से युबतियों की सुन्दरता बढ़ाई जा सकती है। चेहरे के दाग़ रेडियो की लहरों से मिटाये जा सकते हैं।

युद्ध की वेदी पर—यूरोप हर गुजरनेवाले मिनट में ७५ हजार रुपया युद्ध पर खर्च कर रहा है। १९३० तक सब देश १ खरब ५० अरब रुपया युद्ध के लिए खर्च कर चुके हैं। गत वर्ष दुनिया में युद्ध के लिए ४५ अरब रुपया खर्च हुआ।

हजामत खर्च—गोरी सेना की हजामत का खर्च २० लाख रुपया सालाना है।

पाँच छटाँक का बच्चा—यूरोप में एक बच्चा जिसका वजन ५ छटाँक है, पैदा हुआ है। संसार का यह सबसे हल्का बच्चा है।

हिटलर की पुस्तक—हिटलर ने एक किताब 'मेरी जद्दोजहद' लिखी है जिसकी ४५ लाख कापियाँ बिक चुकी हैं और इससे १ लाख ६० हज़ार पौंड वसूल होचुके हैं।

साँप नहीं काटता—गर्भवती स्त्री को साँप कभी नहीं काटता। यदि वह रास्ते में आजाय तो साँप वहीं खड़ा हो जाएगा।

बेकारों को वेतन—इंगलैण्ड में २० लाख बेकार ५०) मासिक पाते हैं।

अमेरिका में तलाक—१९३८ में अमेरिका की अदालतों में २२०४६८ तलाक की अर्ज़ियां मंजूर की गईं। इन तलाकों में १० लाख व्यक्तियों के दैनिक जीवन पर असर पड़ा।

बीड़ी की भेंट—अमेरिका में १९३७ में ९२०००० स्थानों पर आग लगी जिससे ८१ करोड़ रुपये की हानि हुई। ९६६०० स्थानों पर तो बीड़ी पीने से आग लगी जिससे ५१ करोड़ रुपये का स्वाहा हुआ।

अजीब बालक—झांसी में एक तीन साल का जन्मांध बच्चा है जिसे सारी रामायण, महाभारत और गीता कण्ठ[illegible] पांच महीने की उम्र में ही वह बो[illegible] था। डेढ़ साल की उम्र में [illegible] चौपाइयां गुनगुनाने [illegible] कुम्भ पर भी गया था।

Regd. No. L. 3700

अनमोल बोल

याद रखो जिस मनुष्य से कभी अपनी भलाई नहीं हो सकी, उससे दूसरों के लिए भी कभी कुछ नहीं हो सकता।

—जर्मन कवि गेटे

❀ ❀ ❀

खञ्जर, पिस्तौल या बन्दूक से मारने वाले एक आदमी के लिये तमाम दुनिया में तहलका मच जाता है। किंतु आश्चर्य है कि ग़रीबी, भूख, अकाल और महामारियों से तबाह होने वाले करोड़ों मनुष्यों की तरफ़ कोई ध्यान नहीं देता।

❀ ❀ ❀

कोई कृति प्राचीन होने के कारण आदरणीय नहीं हो सकती और न नवीन होने के कारण निश्चय ही हो सकती है। जो विद्वान होते हैं वे उसकी उत्तमता की परीक्षा करके उसे ग्रहण करते हैं। जो मूढ़ हैं वे ही दूसरे के उपदेश पर चलते हैं।

❀ ❀ ❀

शिकायतें करना कायरों का काम है। जो मर्द नहीं, जो गुलामी को पसँद करते हैं, वे ही दुखड़ा रोया करते हैं।

—एम०एन० राय

❀ ❀ ❀

उपाधियों का मूल्य सिर्फ रोटी, रुपया तथा पद के रूप में न आंकें बल्कि सेवा के अवसरों के रूप में उनका मूल्य निर्धारित करें।

—सरोजनी नायडू

❀ ❀ ❀

विचार करने से मनुष्य को सचाई और सफलता का मार्ग नज़र आने लगता है।

—शेक्सपियर

❀ ❀ ❀

जिस किसी ने ज़ालिम की मदद की, उसने मानो खुदा के ग़ज़ब को सिर पर [illegible]ा।

—हज़रत मुहम्मद

पीछे रे[illegible]
एक प्रति[illegible]
एजेंटों [illegible]

श्री कुलभूषण द्वारा, 'दीपक प्रेस' साहित्य सदन, अबोहर से प्रकाशित।

{ दीपक—वर्ष ४, संख्या ६, अप्रैल १९३९ ई० }
पृष्ठ संख्या
४१

Regd. No. L. 3700

अनमोल बोल

याद रखो जिस मनुष्य से कभी अपनी भलाई नहीं हो सकी, उससे दूसरों के लिए भी कभी कुछ नहीं हो ...

{ दीपक—वर्ष ४, संख्या ६, अप्रैल १९३९ ई० }

विषय — लेखक — पृष्ठ संख्या

'दीपक' के नियम

१—'दीपक' हर अंग्रेज़ी महीने के पहले सप्ताह में प्रकाशित होता है।

२—'दीपक' का वार्षिक मूल्य डाक व्यय व विशेषांक सहित केवल २॥) है। एक प्रति ४ आने, विदेश से ४)।

३—'दीपक' में प्रकाशनार्थ लिखे जाने वाले लेख अधूरे न हों, पृष्ठ के एक ओर ही संशोधन के लिये इधर उधर जगह छोड़ कर सफाई से लिखे हों, विस्तार में चार पृष्ठ से अधिक न हों। भाषा उनकी सरल व शैली रोचक हो जिससे साधारण योग्यता वाले व्यक्ति भी जिनके हितार्थ 'दीपक' प्रकाशित हुआ है, उन्हें पढ़ व समझ सकें।

४—'दीपक' का मुख्य उद्देश **ग्राम-सुधार, समाज-उत्थान, शिक्षा व राष्ट्र-भाषा-प्रचार** द्वारा जनता-जनार्दनमें जीवन-जागृति पैदा करना है। अतः धार्मिक ईर्ष्या, साम्प्रदायिक विद्वेष पूर्ण उपरोक्त उद्देश्य के विपरीत कोई लेख न छप सकेगा।

५—लेख घटाने-बढाने, संशोधन करने तथा प्रकाशित करने या न करने का अधिकार संपादक को होगा।

६—'दीपक' के ग्राहकों को पत्र-व्यवहार करते समय अपना पूरा पता और ग्राहक नम्बर साफ अक्षरों में लिखना चाहिये, अन्यथा जवाब देर से मिलेगा। ३ मास से कम समयके लिये पता बदलवाने के लिये डाकखानेसे प्रबंध करें।

७—अस्वीकृत लेख डाक खर्च भेजने पर ही लौटाये जा सकेंगे अन्यथा नहीं।

८—जिन सज्जनों को किसी मास का 'दीपक' न मिले उन्हें पहले अपने डाकघर से पूछ ताछ करके बाद में हमारे पास लिखना चाहिये।

८—लेख, कविता, समालोचना के लिये पुस्तकें और बदले के पत्र, सम्पादक, 'दीपक' साहित्य सदन, अबोहर के पते से। और मूल्य तथा प्रबन्ध विषयक पत्र मैनेजर, 'दीपक' के पते से भेजने चाहिएं।

स्तंभ—सूची

कृपालु लेखक-लेखिकाओं से नम्र निवेदन है कि वे 'दीपक' के लिये कुछ लिखने से पहिले एक बार हमारे स्तंभों की सूची देख लें। इन स्तंभों के अतिरिक्त भाव-पूर्ण किन्तु सात्विक कविता और कहानियों के लिये भी 'दीपक' के कुछ पृष्ठ 'रिज़र्व' हैं। सरल भाषा में लिखे गये व्यवहारिक लेख 'दीपक' के श्रद्धापात्र होंगे।

—सम्पादक

गोपालन विद्या का महत्त्व जानने के लिए यह पुस्तक
अवश्य देखनी चाहिए।

३० चित्रों सहित] [पृष्ठ लगभग ३५०

गोपालन

तृतीय बार छपी है, इसमें पाँच खंड हैं। दूध, मलाई, मक्खन, घी इत्यादि २ की बनावट में रासायनिक पदार्थों का मेल; उनकी जाँच पर्ताल की नई २ रीतियाँ, गौ-भैंसों की बाबत जानने योग्य अनोखी बातें, दूध के पशुओं को अधिक दुधारु बनाने की सहज रीति, भले बुरे पशुओं की जाँच किस प्रकार की जाती है। अच्छे दूध के पशु कहाँ मिलते हैं, गौ चारण भूमि को किस प्रकार उपयोगी बनाया जा सकता है ?

पशुओं की रोगावस्था में चिकित्सा और सुगम तथा सुलभ औषधियों का प्रयोग कौन कौनसी औषधियाँ गोशाला में रखनी चाहियें ?

दूध और उसका व्यापार, डेरी फारम किस प्रकार सफलता पूर्वक चल सकती है ? धार्मिक गोशालाओं से यथोचित लाभ उठाने की विधि सरकारी डेरियां कहाँ २ पर हैं। इस प्रकार की और बहुत सी अत्यन्त उपयोगी और अनूठी बातें इस पुस्तक में हैं। एक ५० वर्ष के अनुभवी लेखक द्वारा विस्तार पूर्वक लिखी गई है। सजिल्द पुस्तक का मूल्य केवल १।।) रुपया, डाक व्यय अलग।

पुस्तक मिलने का पता--

भगवानदास वर्मा, भगवानदास स्ट्रीट, लाहौर छावनी।

Approved for use in Schools in U.P., C.P., Bihar, Bombay, Orissa, Kotah and Rajgarh States

दीपक

सत्यम् :: शिवम् :: सुन्दरम्

सम्पादक—तेगराम

चैत्र १९९६ | वर्ष ४, संख्या ६ पूर्ण संख्या ४२ | अप्रैल १९३९

फूँकदे आज क्रान्ति की आग

रचयिता रामकुमार स्नातक: हिंदी प्रभाकर

[१]

शक्ति नवयुवक वर्ग की,
जाग अब जाग ।
हुआ मैदान समर का,
कायरता को त्याग,
फूँकदे आज क्रान्ति की आग ॥

[२]

विश्वमध्य कायर जीवन का,
मूल्य नहीं हतभाग्य !
जीवन निहित मृत्यु में प्यारे,
इससे दूर न भाग,
फूँकदे आज क्रांति की आग ॥

[३]

गा न भैरवी, गा न प्रभाती,
और न छेड़ विहाग ।
आज मृत्यु का नर्तन सुखमय,
गा मारू— रण— राग,
फूँकदे आज क्रांति की आग ॥

[४]

बलिवेदी पर बलि हो जाना,
यही श्रेष्ठतम त्याग ।
यही तपस्या, यही योग है,
यही ज्ञान वैराग,
फूँकदे आज क्रांति की आग ॥

विचार-माला

(ले० --श्री रामावतार विद्याभास्कर, रतनगढ़, बिजनौर)

[यदि आप ईश्वर का वास्तविक रूप जानकर आनन्दमय जीवन बिताना चाहते हैं, तो ईश्वर सम्बन्धी अपने भ्रमपूर्ण चिर सञ्चित विश्वासों को अलग रख, इस 'विचार-माला' को ध्यानपूर्वक पढ़िये। सं०]

ईश्वर को मानना ईश्वर का अज्ञान है

मानने वाला तथा माना जाने वाला, दोनों एक हो जाएँ, यही ज्ञान का स्वरूप है। ईश्वर अपना पृथक् अस्तित्व रखकर ही ईश्वर को माना जा सकता है। अपना अस्तित्व पृथक् रखना अज्ञान है। अज्ञानी होना ही ईश्वर को मानना है।

ईश्वर को जानने की इच्छा मनुष्य का अज्ञान है

जानने की इच्छा का न रहना ही जानना है। जानने की इच्छा का लुप्त हो जाना ही जानना है। जानने की इच्छा इन्द्रियों की आसक्ति है। जानने की इच्छा जिस विषय से लग जाती है उसी का अज्ञान बन जाती है। ईश्वर को जानने की इच्छा ईश्वर का अज्ञान है। ज्ञानी की यही पहचान है कि उसकी ईश्वर को जानने की इच्छा नष्ट हो जाती है। जिसे जानने की इच्छा है वह निश्चित रूप में अज्ञानी है। यही ज्ञानी-अज्ञानी का अन्तर है।

अज्ञानी सर्वत्र इसी बात का समर्थन देखना चाहता है कि ईश्वर को किसी ने भी नहीं देखा।

आस्तिकता-नास्तिकता के भेद

ईश्वर को जानना आस्तिकता तथा ईश्वर को मानना नास्तिकता है। हमारा अस्तित्व ईश्वर को जान लेने के लिये है। दूर से ईश्वर को मानते रहने के लिये हमारा अस्तित्व नहीं है, क्योंकि हम ही ईश्वर हैं। जब कोई ईश्वर की पृथक् सत्ता को अस्वीकार कर देता है, तब उसकी सत्ता ईश्वर की विराट सत्ता में विलीन हो जाती है। इसीको अद्वैतोत्सव कहा जाता है।

ईश्वर खुफिया-पुलिस नहीं है

क्योंकि ईश्वर सर्वव्यापक है इसी लिये 'पाप न करो' इस कल्पना ने ईश्वर को खुफिया पुलिस और मजिस्ट्रेट बना दिया है। क्योंकि ईश्वर से छुपकर पाप करना असम्भव है इसलिए 'पाप न करो' यह बड़ी रद्दी कल्पना है। इससे मनुष्य का घोर अपमान होता है।

ईश्वर की चाह क्या है?

भौतिक सुख की चाह कभी पूरी नहीं हो सकती। अन्त में मनुष्य को सुखी होने के लिए इस चाह को त्यागना पड़ता है। चाह का न रहना ही ईश्वर की चाह है। चाह न रहना ही ईश्वर का मिलन है।

काम विज्ञान

(ले०—आचार्य हरभाई त्रिवेदी, दक्षिणामूर्ति भावनगर)

> काम-विज्ञान का नाम सुनते ही हम नाक-भौं सिकोड़ लेते हैं और एक दम भड़क उठते हैं। इस लेख के पढ़ने और इस में प्रतिपादित विचारों को अनुभव की कसौटी पर कसने से पता लग जायगा कि मानव-समाज के हित के लिए इस विषय का अध्ययन अत्यन्त आवश्यक एवं उपयोगी है।
>
> —सम्पादक

आज कल इस विषय की बहुत चर्चा है। इस विषय की चर्चा होनी चाहिए या नहीं यह जानने के लिए यह देखना जरूरी है कि काम-विज्ञान है क्या? काम-विज्ञान को समझने के लिए शरीर और मन की काम वृत्तियों का अवलोकन करके, इस पर वैज्ञानिक ढंग से प्रकाश डालने की जरूरत है। कोई भी व्यक्ति विज्ञान पर पर्दा डालना नहीं चाहता। लेकिन फिर भी काम-विज्ञान की चर्चा करने वाले को शर्मिन्दा किया जाता है। इसका कारण यह है कि हम काम का विकृत रूप ही देखते हैं और फलतः हम इस विषय पर सदा पर्दा डालते हैं।

हम गाय या बकरी की प्रसूति देखकर जरा भी नहीं शर्माते। इस विषय पर बात करते हुए भी सँकोच नहीं करते। हम ऐसा भय भी नहीं करते कि पशुओं की काम-क्रिया को देखकर हमारे अन्दर विकार पैदा हो जाएगा। जब पशु-प्रसूति-शास्त्र को छिपाया नहीं जाता, तब मनुष्य के सम्बन्ध में ऐसी बातें करने से यह खयाल क्यों किया जाता है कि हम पतित हो जायेंगे?

जो वस्तु सर्वांश निर्दोष है उसे कोई छिपाना नहीं चाहता। लेकिन जो बहुत गन्दी है उसे हम छिपाते हैं। गन्दगी से भरे हुए फोड़े को हम छिपाना चाहते हैं क्योंकि वह हमारे शरीर की विकृति है। इसलिए जिस काम-चर्चा पर हम पर्दा डालना चाहते हैं, उसके विषय में हमारा मन जरूर विकृत होगा. अगर हम अपनी विकृतावस्था को मिटाना चाहते हैं तो और बातों पर विचार करने से पहले हमें यह जान लेना चाहिए कि अपने काम-आवेग को जाने बिना. तत्सम्बन्धी घृणा को दूर किए बिना और इस विषय पर पड़े हुए रहस्य के पर्दे को हटाए बिना हम विकृत आवेगों से छुटकारा नहीं पा सकते।

काम-वृत्ति मनुष्य के मन का आवेग है। इतना ही नहीं बल्कि अन्य आवेगों में यह सबसे बलवान् आवेग है। इस आवेग का आविष्कार मनुष्य की बहुत सी क्रियाओं में हम पृथक् पृथक् रूप में देखते हैं। इस आवेग का मनुष्य के मन में क्या स्थान और रूप है—इस विषय में मनोविज्ञान की भिन्न-भिन्न शाखाओं का भिन्न-भिन्न मत है। लेकिन उसकी चर्चा हम अभी नहीं करते।

इस विषय में फ्राइड तथा हेवलोकएलिस ने खूब विस्तार से लिखा है। नवीन मानस-शास्त्र की दृष्टि से काम-आवेग के सम्बन्ध में सबसे पहले

फ्राइड ने विचार किया है। फ्राइड तो यहाँ तक कहता है कि मनुष्य की एक-एक क्रिया में काम-भावना रहती है। यह बात प्रत्येक देश के प्राचीन साहित्य, चित्रों और अनेक प्रकार के रूपकों से साबित की जा चुकी है। काम-आवेग मनुष्य का उग्रतम आवेग है। प्रजोत्पत्ति और विश्वबन्धुत्व की भावना में यही आवेग अपने श्रेष्ठ रूप में प्रकट होता है।

काम-आवेग का अस्तित्व न हो तो प्रजा का नाश हो जाए और विश्वपूज्य विभूतियों का पैदा होना भी बन्द हो जाए। काम का विकृत स्वरूप मनुष्य को पतित करता है और इसका श्रेष्ठ रूप उसको वन्दनीय बनाता है। मनुष्य का ऊंचा उठना या अधोगति को प्राप्त होना इसी पर अवलम्बित है।

इस विषय में कुछ वर्षों से मैंने अनुभव करना शुरू किया है। मुझे अपनी संस्था में इस विषय में ठीक-ठीक जानने का मौका मिला है। मुझे बहुत से विद्यार्थी इस बुराई में फंसे हुए मिले। विद्यार्थियों के साथ शुरू शुरू में बातें करते हुए मुझे बहुत शङ्काएँ होती थीं। मुझे ऐसा महसूस होता कि ऐसी बातें करने का मुझे क्या अधिकार है? विद्यार्थी मुझे बनाते तो नहीं? अन्ततः नैतिक दृष्टि को एक ओर रख शरीर-विज्ञान की दृष्टि से विद्यार्थियों में विश्वास रखकर मैंने उनसे बातें करना शुरू किया।

मित्रों ने कहना शुरू किया कि "यह तो गन्दगी में हाथ डालने जैसी बात है"। लेकिन मुझे यह काम बुरा नहीं लगा। स्वच्छता या पवित्रता का लाने के लिए गन्दगी को दूर करने के सिवाए और कोई चारा ही नहीं है। मलिनता को दूर करने के बाद जो आनन्द प्राप्त होता है वह गन्दगी को दूर खड़े रहकर देखने और नाक-भौं सिकोड़ने से नहीं आता। गन्दगी को दूर कर सफाई करने का हक सबको यकसाँ है। डाक्टर फ्राइड ने जगत के कूड़े-करकट को साफ २ सामने रख दिया है और इस प्रकार जगत के मैल को धोकर उसे शुद्ध करने का काम शुरू किया है।

अनुभव से मैंने मालूम किया है कि किसी भी सामाजिक विकृति या चित्त-भ्रम के मूल में काम-विकृति का ही हाथ होता है। मैंने अपने इस अनुभव में फेर-फार करने की जरूरत महसूस नहीं की है। इस विषय को पूरी तरह समझने के लिए मुझे बड़ी उम्र के व्यक्तियों के जीवन को जानने की भी प्रेरणा हुई और मुझे लगा कि काम-दोष केवल विद्यार्थियों और युवकों में ही नहीं बल्कि उन में भी खूब पाया जाता है।

शास्त्र को भी देखने से मालूम होता है कि उसके सामने भी काम-प्रश्न ही सबसे अधिक जटिल है। जब तक हमारे समाज में काम-विज्ञान की तालीम नहीं दी जाती, जब तक इस विषय के सम्बन्ध में भरी हुई घृणा पाप-भावना और धारणा हमारे दिमाग से नहीं निकल जाती और जब तक हमारी मनोवृत्ति में जबरदस्त फेर-फार नहीं होता, तब तक प्रजनन-शास्त्र भी कुछ नहीं कर सकता।

विद्यार्थियों के अन्दर जो काम-दोष पाया जाता है उसके लिए अधिकतर माता-पिता ही जवाबदार हैं। स्त्रियों के साथ किया जाने वाला पशुता-पूर्ण व्यवहार विशेष रूप से बालकों पर बहुत बुरा असर डालता है। इसके अलावा हमारी आज की अनेक सड़ी हुई भावनाएं भी बालकों को विकृत बनाने में कुछ कम कारण नहीं हैं। इस हालत को सुधारने के लिए हमें अपनी आज की नैतिक, धार्मिक और सामाजिक आचार-व्यवहार की अनेक रूढ़-भावनाओं को परे फैंकना होगा। हमें अपनी इन पवित्र मानी जाने वाली धार्मिक भावनाओं के चक्कर में पड़े रहकर दुनिया के सामने और अधिक मूर्ख और हास्यास्पद नहीं बनना चाहिए। काम-आवेग को शर्म, घृणा और पाप की दृष्टि से देखकर हम अपने यहाँ काम-विकृति के हजारों रोगों, शारीरिक और मानसिक कुरूपता तथा वेश्यालयों को बढ़ा रहे हैं।

हमारी रूढ मान्यताओं और विकार के सभी अड्डों ने, समाज में हर प्रकार की काम-

विकृतिओं को उत्तेजना देकर, मनुष्य को विकृत बना दिया है। काम-आवेग न तो खराब आवेग है, न पाप है और न शर्म करने जैसी वस्तु है—यह बात अब हमें समझ लेनी चाहिए। स्त्री को पुरुष के देखने या छूने से या पुरुष के स्त्री को देखने या छूने से जो विकार एक दूसरे में पैदा होता है उसका कारण काम-आवेग नहीं है, बल्कि इसका असली कारण है काम-आवेग पर चौकी-पहरा रखने के फलस्वरूप पैदा हुई विकृति। इस विकृति को मिटाने के लिए हमें स्त्री-पुरुषों पर चौकी-पहरा लगाने की प्रथा को हटाना होगा। स्त्री-पुरुषों को एक दूसरे से दूर रखने में किसी प्रकार की बुद्धिमानी नहीं है। ऐसा करना मानव-स्वभाव से अज्ञानता का सूचक है। नियमों की भरमार और कड़ा चौकी-पहरा रखने के बावजूद भी स्त्री-पुरुषों में से काम-आवेग को उखाड़कर नहीं फेंका जा सकता, और ऐसा करने की जरूरत भी नहीं है। हम स्त्री-पुरुषों के सम्बन्ध की बहुत सी बातों को अश्लील और गन्दी मानते हैं और उनकी निन्दा करते हैं। इसका नतीजा यह है कि हम पवित्र बनने की बजाय अधिक पतित, श्रेष्ठ बनने के बदले अधिक विकृत, हो गये हैं।

बालक अपनी जननेन्द्रिय का स्पर्श करता है। ऐसा करने में बालक के अन्दर किसी प्रकार का विकार नहीं है। फिर भी विकृत माता-पिता यह देखकर भड़क उठते हैं और बालक को अपनी जननेन्द्रिय को छूता देखकर शर्म के मारे मर जाते हैं। वे बालक का हाथ पकड़कर खींच लेते हैं, उसकी तरफ आंख निकालते हैं, धमकाते हैं। इस प्रकार कितने ही माता-पिता अपनी गन्दगी बचपन में ही निर्दोष बालक के अन्दर दाखिल कर बालक के पवित्र और निर्दोष मन को कचरे का ढेर बना देते हैं।

अब जरा आगे चलिए। बालक जवान होता है। उस समय उसके एक-एक अँग में जोश होता है तथा उसको अपने शरीर-विज्ञान और आवेगों को समझने की अत्यन्त आवश्यकता होती है। ये सभी जरूरियात स्वाभाविक होती हैं। हमारे डाले हुए आवरण के कारण युवक अपने आवेगों को न तो समझ सकता है, न उन्हें ठीक मार्ग की ओर ले जा सकता है और न उनको संयत रख सकता है। स्वाभाविक वस्तु को अस्वाभाविक बनाकर समाज ने शिष्टता के नाम पर संकुचितता को जन्म दिया है। चारित्र्य की दृष्टि से यह प्रश्न शिष्ट-समाज में जितना विघ्न डालता है उतना ग्राम्य-समाज में नहीं डालता। इसलिए शिष्ट-समाज को या तो जीवन की प्रारम्भिक दशा स्वीकार कर लेनी चाहिए अथवा वैज्ञानिक ज्ञान को स्वीकार कर, शिष्टता में शास्त्रीयता लानी चाहिए। हमारे लिए पहला रास्ता शक्य नहीं है, इसलिए शास्त्रीय बनने का ही मार्ग हमारे लिए श्रेयस्कर है।

शास्त्रीय बनने के लिए हमें यह समझना होगा कि शास्त्रीय-ज्ञान ही सच्चा ज्ञान है। इससे पृथक् कोई नीति नहीं है—कोई धर्म नहीं है—कोई चारित्र-ज्ञान नहीं है। शास्त्रीय बनने के लिए शारीरिक-स्वाभाविकता से भयभीत नहीं हो जाना चाहिए। शरीर के एक २ अँग और जननेन्द्रिय के सम्बन्ध में उठती हुई एक २ जिज्ञासा को सन्तुष्ट करना होगा. शरीर का शास्त्रीय ज्ञान तथा एक-एक अँग की रचना और उसके स्वभाव को समझना होगा।

हम अब आकर्षण की बात की ओर आते हैं। काम-आवेग में मुख्यतः स्त्री पुरुष की ओर तथा लड़की लड़के की ओर आकर्षित होती है। आकर्षण के सम्बन्ध में हमने बहुत गलत फहमी पैदा करदी है, अनेक प्रकार के वहम फैला दिए हैं और स्त्री-पुरुष के स्वाभाविक आकर्षण को एक प्रकार की विकृति मान लिया है।

हमें समझना चाहिए कि स्त्री-पुरुष का पारस्परिक आकर्षण अन्य आकर्षणों की तरह एक स्वाभाविक आकर्षण है। दूसरे बहुत से आकर्षणों में हम मनुष्य को स्वतन्त्र

छोड़ देते हैं जबकि काम-आकर्षण की निन्दा कर उस पर कड़ा चौकी-पहरा बिठाते जाते हैं। इस प्रकार काम-आकर्षण को खराब या विकृत मानकर हमने समाज की हालत को दयनीय बना दिया है। यही कारण है कि आज हमारी बातों में, गालियों में, अशिष्टता आगई है। हमारे सिनेमा और नाटक भी विकृत हो गए हैं, तथा ऐसे विकृत साहित्य की भी भरमार हो गई है जो फैंक देने के लायक है। जो समाज मनुष्य पर चौकी-पहरा बिठाता है और काम-आकर्षण के नाममात्र से डरता है, वही समाज व्यभिचार को प्रोत्साहन देता है, विधवाओं को भ्रष्ट करता है और वेश्यालयों की वृद्धि करता है।

काम-आवेग का स्थूल रूप आत्म-रक्षण और जाति रक्षण है। इन आवेगों के भिन्न २ रूपों को हम प्रेम के नाम से पुकारते हैं। प्रारम्भिक प्रेम आत्म-रक्षण के लिए होता है। बालक की प्रारम्भिक क्रिया बिना किसी के सिखाए अँगूठा चूसने की होती है। बालक का दूसरा प्रेम माता की ओर होता है। इसके बाद बालक अपने भाई, बहनों तथा अपने साथ खेलने वाले साथियों को चाहने लगता है। इस तरह विस्तार पाते-पाते प्रेम, दम्पत्ति-प्रेम का रूप धारण करता है तथा देश-प्रेम या विश्वबन्धुत्व के रूप में विकसित होता है। प्रेम के सब स्वरूपों को हम काम-आवेग की ओर ले जा सकते हैं। प्रेम का मूल काम-आवेग के साथ सटा हुआ होने के कारण भीरु समाज प्रेम का नाम सुनकर ही भड़क उठता है। लेकिन इस प्रकार भड़कने की कोई जरूरत नहीं है। काम-आवेग सब में मौजूद है और इसी प्रकार प्रेम भी। प्रत्येक मनुष्य का आत्म-रक्षण और जाति-रक्षण के लिए चेष्टा करना न कोई खराबी है और न पाप।

साथ ही साथ एक और बात कहनी जरूरी है। जैसे कोई भी आवेग विकृत हो सकता है, उसी प्रकार बहुत सी बार काम-आवेग भी विकृत हो जाता है। दो लड़के, दो लड़कियां या लड़का लड़की एक दूसरे से प्रेम में मिलते हुए काम-विकृति में फँसकर काम-दोष का शिकार हो सकते हैं। लेकिन इससे भड़क जाने की कोई जरूरत नहीं है। हमें तो आवेग के स्वरूप को समझकर सावधानी से चलना चाहिए। जैसे प्रेम विकृत हो सकता है उसी तरह वह श्रेष्ठ भी बन सकता है। माता-पुत्र, भाई-बहन, पति-पत्नि, मित्रों आदि का सम्बन्ध श्रेष्ठ प्रेम का स्वरूप है।

अन्त में इस विषय पर हमें शिक्षण की दृष्टि से विचार कर लेना चाहिए। सह-शिक्षण वाली शालाओं में लड़कियों में काम आवेग का आविष्कार भिन्न-भिन्न रूप में होता है। शिक्षकों को यह सब कुछ जानने के लिए सावधान रहना चाहिए। उन्हें यह बात देखनी चाहिए कि काम-आवेग का आविष्कार दोष-रहित होता है या दोष-युक्त। अगर हमें इस बात का भान हो जाए कि काम-आवेग विकृति की ओर जा रहा है तो उस तरफ विशेष रूप से ध्यान रखने की जरूरत है।

यह ध्यान रखने में हम विद्यार्थियों से शरीर आरोग्य पर बात-चीत कर सकते हैं। शरीर-रचना और उसके एक-एक अंग की क्रियाओं पर प्रकाश डाल सकते हैं तथा बड़ी उम्र के विद्यार्थियों को सर्व प्राणी पदार्थों की प्रजनन-क्रिया समझा सकते हैं।

माता-पिताओं से !

[ले०—एक "युवक"]

ह निर्विवाद है कि माता-पिताओं की अज्ञानता का नन्हें-नन्हें बालक ही नहीं बल्कि युवा बालक भी बुरी तरह शिकार हो रहे हैं। हमारे देश में छोटे बालकों की शिक्षा का कोई समुचित प्रबन्ध न होने के कारण, उन्हें अपने माता-पिता की मर्ज़ी के मुताबिक ही चलना पड़ता है। मैं अपने वर्षों के कटु अनुभव से कह सकता हूं कि माता-पिता बालक को जिस मार्ग पर चलने के लिए विवश करते हैं, वह मार्ग स्थान २ पर कुओं और खाइयों से पटा पड़ा है। बालकों को इस कंटकाकीर्ण मार्ग पर चलने से कितनी असह्य पीड़ा होती है, उसकी अज्ञानांधकार में पड़े हुए माता-पिता कल्पना तक नहीं कर सकते। ऐसी दशा में घरों में बालकों पर जो अन्याय और अत्याचार होता है उसके विचारमात्र ही से रोमांच हो आता है, और हृदय मारे दुःख के जलने लगता है।

मैं एक बालिका को पढ़ाता हूं। उसकी बुद्धि तीव्र है, चित्र खींचने में उसे बड़ा मज़ा आता है। भाषा और भूगोल में भी वह खूब दिलचस्पी रखती है। लेकिन इतिहास और गणित के नाम से उसके होश-हवास उड़ जाते हैं, उसका दिमाग़ चकरा जाता है। मैंने बाल-मनोविज्ञान का थोड़ा बहुत अध्ययन किया है। मैं जानता हूं कि बालक पर जबरन कोई चीज़ नहीं लादी जा सकती। इसी विचार को लेकर मैंने लड़की के पिता से कहा, 'श्रीमान् जी, आपकी लड़की का दिल इतिहास और गणित में नहीं लगता। मैं चाहता हूँ कि ये विषय अभी इसको न पढ़ाए जाएँ। जब उस की रुचि होगी तब वह इन विषयों को खुद ही पढ़ लेगी। बिना रुचि के कोई चीज़ रटा-रटाकर उसके दिमाग़ में ठूँसना अनुचित मालूम पड़ता है। मैं आपको जगत्-प्रसिद्ध तत्ववेत्ता स्पेन्सर का हाल सुनाता हूं जिससे मेरे कथन की पुष्टि हो जाए। स्पेंसर भी लड़कपन में बहुत कमज़ोर था। लेकिन विज्ञान का उसे बहुत चसका था। वह तरह तरह के कीड़े, मकोड़े और पौधे दूर-दूर से लाकर घर पर जमा करता था और उनके विकास का अध्ययन करता था। उसके पिता उस पर न कोई दबाव डालते थे और न उसके रास्ते में कोई रोड़ा अटकाते थे। वे सदा उसे यही

कहा करते थे कि जो तुम्हें अच्छा लगे वही करो। तुम्हारी इच्छा हो तो स्कूल जाओ, अन्यथा नहीं। इतनी स्वतंत्रता प्रदान करने का नतीजा यह हुआ कि किसी स्कूल में न पढ़ने पर भी स्पेन्सर चोटी का विद्वान बन गया। उन्होंने जो मौलिक ग्रन्थ लिखे हैं, उन्हें पढ़ कर मनुष्य दंग रह जाता है। अपनी 'शिक्षा' नामक पुस्तक में वे लिखते हैं —"बच्चों को अपनी बुद्धि की उन्नति आप ही करने के लिए उत्साहित करना चाहिए। उन्हें इस तरह शिक्षा देनी चाहिए जिससे कि वे खुद ही हर एक बात के विषय में जानकारी प्राप्त करने की कोशिश करें।" मैंने यह भी कहा कि किसी न किसी तरह परीक्षा पास कर लेना ही शिक्षा का ध्येय नहीं है। शिक्षा का ध्येय तो छिपी हुई शक्तियों का विकास करना है। इस विकास के लिए बालकों को सुन्दर वातावरण में रखना चाहिए। हिटलर, मुसोलिनी, स्टालिन, टैगोर आदि की मिसालें देकर भी मैंने उन्हें समझाया था कि शिक्षा अन्तःप्रेरणा से आती है, ऊपर से ठूँसी नहीं जा सकती।

मेरी बातें सुनकर लड़की के पिता ने ज़रा तैश में आकर कहा, "आप क्या कह रहे हैं। बालक तो अबोध होता है। उसको इतना ज्ञान नहीं होता कि क्या पढ़ना चाहिए और क्या नहीं। बालक सदा खेल-कूद में ही दिन गुज़ारना चाहता है। पढ़ाई से वह सदा जी चुराता है। हमारे माता-पिता हमें मार-मार कर खीर न खिलाते तो आज हम लाखों करोड़ों का व्यापार कैसे कर सकते थे? बस, आप लड़की को पढ़ाते जाइए—डरा कर, धमका कर, कान ऐंठकर या पुचकार कर।" बालक का यह निरादर और अपमान मुझ से सहन नहीं हो सका। मैंने दृढ़ता से कहा, 'श्रीमान जी, आप गलती पर हैं। आपने बालकों को समझा नहीं है। बालक बुद्धू और भौंदू नहीं होता। वह बड़ा समझदार और चतुर होता है। उसमें हर एक बात को अच्छी तरह समझने की जिज्ञासा होती है। मनो-विज्ञान की खोजों ने सिद्ध कर दिया है कि बालक अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व रखता है। अपना विकास करने की उसमें अद्भुत शक्ति होती है। उसे तो केवल थोड़ी सी सहायता की ज़रूरत है।' लड़की के पिता ने बात काट कर कहा, "ज़रा सुनिए, अगर बालक सब कुछ समझता है, जानता है तो फिर शिक्षकों की ज़रूरत ही क्या है? सरकार करोड़ों रुपया स्कूलों पर क्यों खर्च कर रही है?" मैंने कहा, "आपने मुझे अच्छी तरह नहीं समझा। आप अभी तक भ्रम में पड़े हैं। जैसे पौधे को शुरू शुरू में सहारे की ज़रूरत होती है उसी प्रकार बालक को भी कुछ सहारा चाहिए। देखिए योगी अरविंद ने इस सम्बन्ध में क्या ही अच्छा कहा है। वे अपनी 'राष्ट्रीय शिक्षा' नामक पुस्तक में लिखते हैं—"गुरु का कर्त्तव्य शिक्षा देना अथवा कोई नियत काम

लेना नहीं है, वह तो एक सहायक मात्र या पथ-प्रदर्शक है। उसका धर्म है सुझाना, शिष्य के मन पर किसी विशेष विचार का लादना नहीं। शिक्षक का कर्त्तव्य केवल यही है कि वह विकासमान आत्मा को ऐसे मार्ग पर चला दे जिसका अनुगमन कर वह स्वयँ अपनी पूर्णता प्राप्त करले............जो मनुष्य के हृदयानुकूल होता है और जिसे वह अपने मन से स्वीकार कर लेता है, केवल वही उस के स्वभाव का अँश हो सकता है, बाकी सब छल मात्र है।" इससे स्पष्ट हो जाता है कि तोते की तरह रटी हुई पढ़ाई किसी भी काम की नहीं होती, इससे तो बालक के दिल और दिमाग़ पर बड़ा बुरा असर पड़ता है। इसी लिए आज कल हमारे देश में भी यह आँदोलन हो रहा है कि बालक को उसकी रुचि के अनुसार ही पढ़ाया जावे, माता-पिता की इच्छा या परम्परा के अनुसार नहीं।" इतना सुनकर तो श्रीमान् जी का पारा एक दम चढ़ गया। वे जामे से बाहर हो गए। कहने लगे "आपकी यह अटपटी बातें मेरी समझ में नहीं आतीं। आप अपना तर्क-वितर्क अपने पास ही रखिए। आपकी बात मानने से तो हमारे सभी बालक बिगड़ जाएँगे। आप हमारी इच्छा अनुसार पढ़ाना चाहें तो पढ़ाएँ वरन् हम दूसरा प्रबन्ध करलेंगे।"

अधिक मग़ज़ मारना ठीक न समझ कर मैं अपने घर आ गया और मन ही मन सोचता रहा कि कब तक ये रुढ़ी-चुस्त माता-पिता अपने बालकों को अपनी मिलकियत समझ कर उनकी कोमल भावनाओं और महत्वाकाँक्षाओं को निर्दयता से कुचलते रहेंगे? केवल एक घर में ही नहीं बल्कि प्रायः सभी घरों में बालकों के साथ ऐसा ही दुर्व्यवहार होता है। उनकी बात कोई नहीं सुनता, उनके दर्द कोई नहीं जानता, उनकी उमँगों और तरँगों का किसी को पता नहीं।

माता पिताओ! अपने सीने पर हाथ रखकर ज़रा ठँडे दिल से सोचो और ग़ौर करो कि ऐसे दूषित वातावरण और विषम स्थिति में पले हुए बालक बड़े होने पर गुलाम नहीं तो और क्या होंगे?

जुर्म एक रोग है

अमेरिका के एक डाक्टर ने प्रयोग से यह सिद्ध किया है कि जुर्म करना एक रोग है। आपने यह बात शिकागो के उन कैदियों के अध्ययन से सिद्ध की है जो बार-बार जेल जाने के आदी हो गए हैं। डाक्टर साहब का कहना है कि जुर्म करने वाले स्नायु तन्तुओं में एक ऐसा द्रव्य होता है जो जुर्म करने के लिए उभाड़ता है। इस अनुसन्धान ने इस बात की आवश्यकता सिद्ध की है कि जुर्म करने वालों को सज़ा देने की अपेक्षा उनका इलाज कराया जाना चाहिए। इस प्रकार कैदियों का इलाज होने से उनका रोग दूर होजाने पर वे छोड़ दिए जाया करेंगे।

दोषी कौन ?

जनवरी का महीना था। कड़कड़ाता हुआ जाड़ा पड़ रहा था। मण्डी में कपास के ढेर लगे हुए थे। मैं अपने एक मित्र के साथ धूप सेंक रहा था, कि इतने में थोड़ी दूर पर गुलगपाड़ा सुनाई दिया। बात की बात में बहुत से लोग वहां पर एकत्र हो गए। हम भी उस दुकान पर पहुँच गये।

दुकान के मुनीम साहिब जमीन पर पड़ी एक बच्ची की लातों और घूसों से मरम्मत कर रहे थे। लड़की बेचारी बुरी तरह रो रही थी। मासूम बच्ची पर पड़ रही इस भीषण मार का कारण जानने पर पता लगा कि उस बालिका ने कपास के ढेर में से आंख बचा कर थोड़ी सी कपास उठाली थी। उसे भागते हुये पकड़कर मुनीम साहिब ने यह कठोर दण्ड दिया था। पास खड़े लोग कह रहे थे—"मुनीम साहब ने थोड़ी सी कपास के लिये बेचारी को बड़ी निर्दयता से पीटा। अजी! वे तो पत्थर दिल हैं, उनके घर में कोई बाल-बच्चा नहीं है। वे क्या जानें मुहब्बत किसे कहते हैं!"

मुनीम साहिब समझदार आदमी मालूम होते थे। उन्होंने लोगों को खामोश कराते हुये कहा—'मेरी भी कुछ सुनोगे या अपनी ही कहते जाओगे।' उसने वहीं खड़े ग़रीब किसान की ओर संकेत करके कहा—'यदि चोरी करने पर भी लड़की को न मारता तो इस नर-कंगाल पर घोर ज़ुल्म होता। इस बेचारे ने सावन भादों की कड़कड़ाती धूप में हल चलाया, ठिठुराने वाली सर्दी की रातों में पानी लगाकर खेत को सींचा। किंतु अफ़सोस! इतना खून-पसीना बहाने पर भी सारी कपास बेचकर, वह सरकारी लगान भी न चुका सकेगा। अब आप ही कहिये कि इन आये दिन की चोरी की वारदातों को आंखें मूँद कर देखते रहें तो इन दुःखी और मुसीबत के मारे किसानों की क्या दुर्दशा हो?'

मैं मन ही मन सोचने लगा—एक तरफ एक अबोध निर्दोष बालिका है कि जिसको इतनी छोटी अवस्था में अपने पेट के लिए चोरी करनी पड़ती है; दूसरी ओर है भारत का भूखा-नंगा किसान, जिसे सुबह से शाम तक कठोर परिश्रम करने के बावजूद भी भर-पेट रोटी नहीं मिलती। उफ! हमारी यह दयनीय दशा! किस से दया की जाय और किस से निर्दयता!

इस दुःखद घटना को लगभग एक साल बीत गया। लेकिन मैं तो आज तक फैसला नहीं कर सका कि दोषी कौन है?

—सत्येन्द्रनाथ विद्यार्थी

पोण्डिचेरी के परमहंस

(ले०—श्री अभयदेव सन्यासी, अरविंदाश्रम, पोंडिचेरी)

श्रीअरविंद उन महापुरुषों में से हैं जो सँसार में कभी कभी उत्पन्न होते हैं। उनकी महापुरुषता अभी सँसार को मालूम नहीं है। कम से कम मेरी यही श्रद्धा है।

ऐसे महापुरुषों के विषय में भी अपने भारत में और विशेषतः उत्तरी भारत में लोगों को बहुत कम ज्ञान है। इसका कारण यह है की वे इस इश्तिहारबाजी के युग में भी इश्तिहार· प्रोपेगन्डा में जरा भी विश्वास नहीं रखते हैं। सत्य में—सत्यस्वरूप परमेश्वर में—प्रतिष्ठित होने के कारण उन्हें सन्सार की और किसी भी वस्तु की परवाह नहीं है। यही कारण है कि हम लोग इनके विषय में कुछ भी नहीं जानते हैं, अधूरा जानते हैं या भ्रमपूर्ण बातें जानते है।

पिछले दो तीन वर्षों में मुझे पोण्डिचेरी के श्री अरविंद आश्रम में जाकर कई बार रहने का सुअवसर प्राप्त हुआ है। इस परिचय के आधार पर ही मैं इस लेख में श्रीअरविंद के विषय में कुछ जानकारी पाठकों को भी देने का यत्न करूँगा।

श्रीअरविंद की सिद्धि—सरकार उनको एक घोर अनार्किष्ट करके जानती है। आम जनता उनको एक महान् देशभक्त करके पूजती है। इसी वास्ते उनको ७–८ बार कांग्रेस के प्रधान के लिए निमन्त्रित किया जा चुका है। पर वे अब इस स्थिति से ऊपर हो चुके हैं। अब से लगभग तीस वर्ष पूर्व अर्थात सन १९१० में वे बेशक अपने तीन पागलपन बताते हुए इधर आये थे। पर शीघ्र ही उनके पहिले दो पागलपन (अर्थात् एक अपना सर्वस्व भारत माता व जगन्माता को सौंप देने का पागलपन और दूसरा भारत माता को बँधन-मुक्त करने का पागलपन) तीसरे पागलपन में (अर्थात् भगवान् के साक्षात्कार कर लेने के पागलपन में) समा गये। पोंडिचेरी पहुँचकर वे पूरी तरह योग साधन में लीन हो गये। पाठकों को आश्चर्य होगा कि गत २० वर्षों से वे अपने मकान तक से बाहर नहीं निकले। वे योग के जिस ध्येय के लिए साधना कर रहे थे उसमें उनको सन १९२६ के २४ नवम्बर को सफलता प्राप्त हुई। तभी से श्री अरविंद ने अन्यों को योग सिखाने का कार्य भी अपने ऊपर लिया, और तभी से श्रीअरविंद के योग-आश्रम का आरम्भ हुआ। इससे पहिले उनका बाकायदा आश्रम न था।

माताजी—श्रीअरविंद के योगाश्रम का वर्णन वहाँ की श्री माताजी के वर्णन के बिना नहीं हो सकता। वहाँ पर एक फ्रेंच महिला रहती है, जिसका नाम मिरा (Mirra) है। आश्रम में उन्हें सब माता, माँ या Mother नाम से ही जानते या पुकारते हैं। उनकी आध्यात्मिक स्थिति श्री अरविंद की स्थिति के बराबर ही समझी जाती है। जब श्रीअरविंद केवल साधना में लगे हुए थे तब भी कई लोग इनके साथ साधना के लिये आकर रहते थे। उन्हीं दिनों ये माता जी लगभग १९१३ में पोंडिचेरी में आयीं। ये जापान में भी रही हैं और भारत में भी आयीं। भारत में आकर पोंडिचेरी में अचानक ही आयीं। ये भी प्रारम्भ से ही आध्यात्मिक साधना में थीं। वहाँ श्रीअरविंद से मिलीं और आश्रम में रहने लगीं। सन् १९१४ में योरोपीय युद्ध के कारण इन्हें फ्राँस लौट जाना पड़ा। युद्ध के बाद फिर ये यहाँ आयीं। 'आर्य' पत्र इन्हीं के आग्रह से श्रीअरविंद ने निकाला था। धीरे धीरे श्री अरविन्द को यह मालूम हुआ कि इन माता जी की आध्यात्मिक स्थिति विशेष उन्नत है। अब तो, जैसा कि मैंने ऊपर कहा है, दोनों की स्थिति एक समझी जाती है। बल्कि यहां तक समझा जाता है कि जो बात श्रीअरविन्द को कही जाय या

इनको कही जाय वह दोनों को मालूम हो जाती है। जब से आश्रम प्रारम्भ हुआ है, आश्रम की बाहरी सब व्यवस्था माता जी ही करती हैं। श्रीअरविंद तब से न किसी से बात करते हैं और न मिलते हैं, माताजी ही सब काम करती हैं। मानो ये माताजी प्रकृति हैं और श्रीअरविंद आत्मा हैं।

आम लोगों में फैला हुआ है कि ये माताजी पाल रिचार्ड की धर्मपत्नी हैं; पर यह भ्रम है। ये तो विधवा हैं।

श्रीअरबिन्द के दर्शन—जैसा मैंने अभी कहा है कि श्री-अरविंद २४ नवम्बर सन १९२६ से सर्वथा एकान्त-सेवी हो गए हैं। तब से न कोई उनसे मिल सकता है, न उन्हें देख सकता है, बात तो करेगा ही क्या। माता जी ही एकमात्र अपवाद हैं। पर उन्हें भी बहुत ही कम मिलने की आवश्यकता होती है। तो भी आम लोगों के लाभ के लिए यह व्यवस्था की गई है कि वर्ष में तीन दिन उनके दर्शन किए जा सकते हैं। वे तीन दिन निम्नलिखित हैं—

२१ फरवरी (माताजी का जन्मदिन)
१५ अगस्त (श्रीअरविन्द का जन्मदिन)
२४ नवम्बर (श्रीअरविंद का सिद्धि-दिवस)

इन तीन दिनों में जो इनके दर्शन प्राप्त करना चाहें उन्हें पहिले से दर्शन की आज्ञा प्राप्त कर लेनी चाहिए। बिना आज्ञा प्राप्त किए वहाँ किसी को नहीं जाना चाहिए। ऐसे ही जाना व्यर्थ हो सकता है। मैंने सन् १९३५ की २१ फरवरी के दिन प्रथम बार उनके दर्शन का लाभ प्राप्त किया। लगभग ३०० आदमी भिन्न २ स्थानों से दर्शनार्थी आए थे। पाठकों को यह ध्यान रखना चाहिए कि दर्शन के समय में भी उनसे कोई बात चीत नहीं की जा सकती है। दर्शन के लिये १ - १॥ मिनट प्रत्येक दर्शनार्थी को मिलता है। प्रथा यह है कि दर्शनार्थी फूल वा माला लेकर जाते हैं, उन्हें और साथ में दायें बैठी माताजी को प्रणाम करते हैं। इस पर वे दोनों सिर पर हाथ रख कर आशीर्वाद देते हैं। एक-दो क्षण उनकी तरफ देखते हुए या ध्यान करते व दे[र] तक प्रणाम करते हुए दर्शनार्थी अपना १॥ मिनट बिता देते हैं। दर्शन में मैंने उनकी मूर्ति को, फोटो में देखी मूर्ति से अधिक भव्य पाया। पाठकों को मालूम होना चाहिए कि जो भी कोई फोटो मिलती है, वह कम से कम २० वर्ष पुरानी है। इसके बाद इन्होंने अपनी कोई फोटो नहीं खिंचवाई।
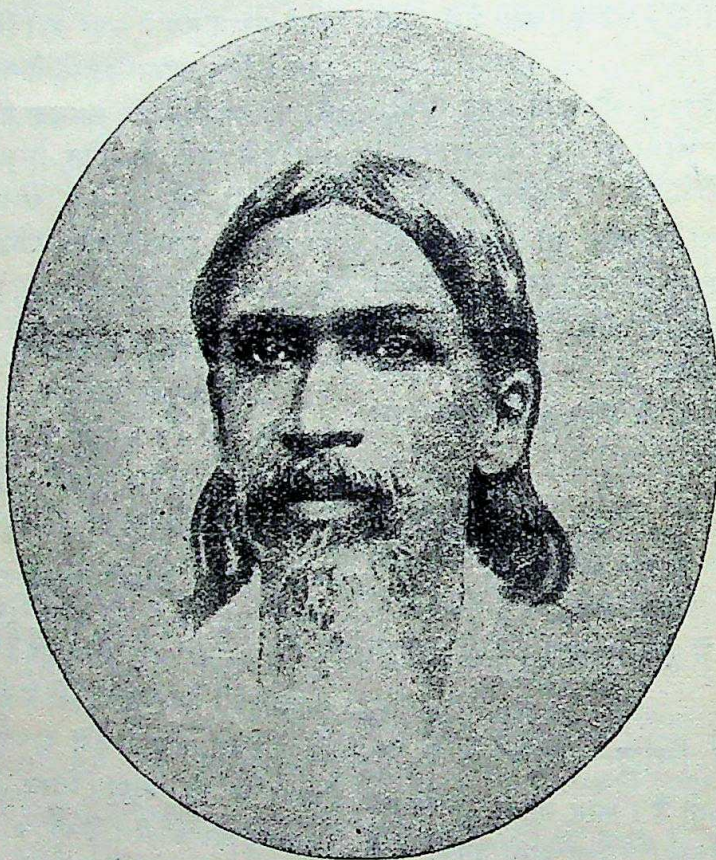
(श्री अरविंद घोष)

उनका आश्रम—लोग समझते होंगे कि उनका आश्रम किसी एक बड़े से मकान में शहर से बाहर बना होगा। परन्तु ऐसा नहीं है। आश्रम बनाया

गया है। यह बन गया है। स्वभावतः विकसित हुआ है। अतः जिस मकान में श्रीअरविन्द रहते थे उसमें तथा उसमे कुछ-कुछ दूरी पर करीब ४० मकानों में आश्रमवासी रहते हैं; आश्रवासियों को जोड़ने वाले श्री-अरविन्द तथा माता जी हैं। कोई घिरा हुआ स्थान या किसी अन्य बाहिरी स्थिति की, उन्हें जोड़ने के लिए आवश्यकता नहीं है। हाँ, सब साधक, भोजन, प्रणाम व ध्यान के सार्वजनिक कार्य प्रायः एक जगह इकट्ठा मिलकर करते हैं।

आजकल करीब २०० साधक-साधिकायें वहाँ रहती हैं। इनमें सवा सौ साधक और पौन सौ साधिकायें हैं। कुछ युरोपियन भी रहते हैं। तीन-चार परिवार मुसलमान भाइयों के भी हैं। प्राँतों की दृष्टि से गुजराती सबसे अधिक हैं। दूसरे नम्बर पर बंगाली और फिर मद्रासी हैं। महाराष्ट्र का वहाँ कोई नहीं हैं। पँजाबी और युक्तप्राँतीय हाल में ही दो--चार वहाँ पहुंचे हैं।

भोजन-व्यवस्था—बहुतों को शायद ऐसा मालूम होगा कि यहाँ भोजन सम्बन्धी कोई नियम-सँयम नहीं है। वहाँ जाने से पूर्व मैंने भी सुन रखा था कि वहाँ मांस, शराब का भी परहेज नहीं है। परन्तु वहाँ ऐसा नहीं देखा। (यद्यपि सिद्धान्ततः उच्च आध्यात्मिक के लिए ऐसे कोई बंधन वे अनिवार्य नहीं समझते)। आश्रमवासियों का भोजन निम्न प्रकार है--

प्रातराश-पावभर गौ का दूध, ब्राउन ब्रेड (बिना छने आटे की डबल रोटी) के चार टुकड़े और एक केला।

दोपहर-चावल, रोटी, दाल या शाक, पाव भर दही, तीन केले।

सायं-पाव भर दूध और रोटी, शाक। श्रीअरविंद व माता जी भी फलों का रस, दूध व शाक, रोटी आदि ही बहुत थोड़ी मात्रा में सेवन करते हैं।

अन्य व्यवस्था—आश्रमवासी ही भोजन बनाते व बरतन साफ करते हैं। आश्रम की अपनी बिजली की चक्की तथा बेकरी है। इसके अतिरिक्त इन्जिनियरिंग, बढ़ई, चित्रण, गोशाला, बाग़वानी आदि के विभाग (Department) आश्रम की तरफ से चलते हैं, जिनमें साधक लोग अपनी साधना के तौर पर कार्य करते हैं। उनका हर एक कार्य साधना के तौर पर होता है। माताजी जिस साधक को जो काम सौंपती हैं उसे वही करना होता है। और प्रायः साधक उसे अपना कल्याणकारी कार्य समझकर ही करते हैं।

खर्च—पाठक लोग जानना चाहेंगे कि दो सौ लोगों का खर्च कैसे चलता होगा। आश्रम का खर्च ४, ५ हज़ार रुपए महावार होगा। वैसे तो जो आश्रमवासी बनता है-स्वीकार कर लिया जाता है वह अपना सब कुछ (जहाँ अपना अन्तरात्मा और मन, वहाँ अपना सब भौतिक धन भी) आश्रम को समर्पित कर देता है। इस प्रकार से कुछ सम्पत्ति आश्रम को मिली है। पर आश्रम-वासियों में अधिकाँश तो ऐसे ही हैं जिनके पास एक कौड़ी भी नहीं थी। और प्रत्येक आश्रमवासी पर ३०।४० रुपया माहवार तो व्यय होता ही है। यह रुपया कुछ भक्त लोगों से प्राप्त होता है। श्रीअरविंद ने कभी आश्रम के लिए चन्दे की अपील नहीं की। बल्कि औरों को आश्रम के लिए रुपया इकट्ठा करने की उन्होंने कभी इजाज़त नहीं दी। वे इस सँस्था को सार्वजनिक सँस्था नहीं समझते। अतः जनता से न मांगते हैं और न जनता के प्रति उत्तरदाता समझते हैं। जो कुछ भक्त लोग स्वयँमेव दे जाते हैं उससे काम चलाते हैं। वे मानते हैं कि परमेश्वर का यह कार्य है, परमेश्वर ही रुपया देता है और देगा। यद्यपि यह कहा जा सकता है कि उन्हें कभी २ आर्थिक तँगी होती है तो भी अर्थाभाव के कारण उनका कार्य कभी रुका नहीं है।

उनका भावी कार्यक्रम—'क्या वे फिर राजनैतिक क्षेत्र में आवेंगे ?' यह प्रश्न है जो कि प्रायः पूछा जाता है। यह प्रश्न आम लोगों के लिए स्वाभाविक भी है। पर जो मनुष्य जान गये हैं कि वे कितने अति-महान् कार्य में लगे हैं उनके लिए ऐसे प्रश्नों की कोई गुँजाइश नहीं रहती। यद्यपि आज तक भी उनके दरवाज़े के सामने फ्रेंच और ब्रिटिश गुप्तचरों—सी० आई० डी०

का पहरा लगातार लगा रहा है और उस मकान में घुसने वाला व्यक्ति अपने विषय में पता लगाए जाने से अपने को बचा नहीं सकता, तो भी यह सच है कि वहाँ शुद्ध आध्यात्मिकता के सिवाय और कुछ नहीं है। सन १९२६ तक तो श्रीअरविन्द यह कहते रहे 'अभी नहीं' 'अभी कुछ नहीं कह सकता,' पर उसके बाद से तो वे एक महान् कार्य में लग चुके हैं। वह कार्य है एक नई 'जाति' उत्पन्न करना, मनुष्य को देव बनाना। वे ऐसा मनुष्य तैयार कर रहे हैं जो विज्ञान (Supermind) तत्व को प्राप्त करेगा और उसके कारण उसका मन अज्ञान और सँशय की क्रीड़ा-भूमि न रहकर सत्य-प्रकाश का मार्ग बन जायगा, उसका प्राण बदल कर, काम, क्रोध, राग, द्वेप आदि से सर्वथा शून्य होकर कार्य करेगा और उसके शरीर का भी ।ऐसा रूपान्तर हो जाएगा कि वह यूँ ही मृत्यु के वश न होगा। यह बहुत भारी साधना है, इसमें शायद एक युग लग जायगा; परन्तु पोण्डिचेरी के ये परमहँस जिस कार्य के लिए उत्पन्न हुए प्रतीत होते हैं, वह यही है। इसी महान् कार्य का आरम्भ इन्होंने यह आश्रम खोलकर किया है। यद्यपि वे बोलते और मिलते नहीं हैं तो भी लिखकर और अपनी आन्तरिक शक्ति से आश्रम का पथप्रदर्शन करते हैं। उनके लगभग ६ घण्टे प्रतिदिन अपने हाथ से साधकों के पत्रों के उत्तर देने में बीतते हैं। दिन रात में केवल दो-तीन घण्टे ही वे विश्राम-निद्रा लेते हैं। वे इस समय जितना कार्य कर रहे हैं उतना कार्य कोई साधारण पुरुष नहीं कर सकता। देश की स्वाधीनता तो उनके इस महान् कार्य में यहीं स्वयमेव आ जायगी। उसकी कुछ चिन्ता नहीं करनी चाहिए।

मुझ पर क्या प्रभाव पड़ा ?—आखिर लोग मुझ से यह जरूर पूछते हैं कि वहाँ इतने समय रहने का मुझ पर क्या प्रभाव पड़ा। एक वाक्य में उसका उत्तर है कि —

'उनके ग्रंथ पढ़कर मेरी उनमें बहुत श्रद्धा थी। परन्तु वहाँ रहकर मेरी यह श्रद्धा बहुत अधिक बढ़ गयी है।'

वहाँ खादी नहीं पहनी जाती, माताजी तो रोज नई-नई रेशमी साड़ियां पहनती हैं; वहाँ गुप्तता बहुत बर्ती जाती है, फूलों का बहुत अधिक उपयोग होता है, एवँ और कई बातें हैं जिनका असर बहुत से लोगों पर बुरा पड़ता है और कइओं को तो यह सब ढोंग प्रतीत होता है। परन्तु मेरे मन पर इनका कोई बुरा प्रभाव नहीं हुआ, क्योंकि मैं उनके दूसरे पक्ष को भी जानता हूँ। मेरा तो यही विश्वास है कि वहां पर एक बड़ा भारी (आध्यात्मिक) कार्य हो रहा है, जिसकी महत्ता को आज हम नहीं समझ रहे हैं।

इन परमहंस (श्रीअरविन्द) के विषय में सच्चे जिज्ञासुओं को और भी जो कुछ मैं जानता हूँ बताने को तैयार हूँ। अतः मेरा विचार है कि समग्र मिलने पर मैं उन वार्त्तालापों को भी प्रकाशित करूँगा, जो कि पोण्डिचेरी से लौटने पर गाँधी जी के वर्धा आश्रम की तथा गुरुकुल काँगड़ी की इसी निमित्त हुई सभाओं में मुझ से किए गये प्रश्नों के उत्तर के रूप में प्रकट कर चुका हूँ। पर अभी इतना ही।

(क्रमशः)

कहानी

अङ्गरेज़ी गधा

(ले०—श्री हीरासिंह सब-इन्स्पैक्टर, देहातसुधार)

दिल्ली एक्सप्रेस खटाखट करती हुई सीटी के साथ दौड़ी जा रही थी सर्दी का मौसम, रात का समय और भीड़ कम थी, इसलिए मैंने एक तख्ते पर अपना बिस्तरा सीधा कर लिया और कम्बल ओढ़ कर लेट रहा । कोई चार बजे होंगे, हमारे डिब्बे में टिकट ! टिकट ! की आवाज आने लगी । मुझे रेल में नींद तो कम ही आती है, पर मैं अभी ऊंघ में ही मुंह मा लपेटे पड़ा था । मुझे यह बेवक्त की शहनाई अच्छी नहीं लगी । जब मेरे तख्ते के बराबर, टिकट की आवाज आई तो जवाब में घबराई हुई आवाज में 'बाबूजी' का शब्द सुनाई दिया । यह आवाज ऐसी करुणाजनक थी, कि हर सुनने वाले का ध्यान बोलने वाले की तरफ खिंच जाए, पर बाबूजी पर इसका कोई असर न पड़ा। वह तड़क कर बोला, "पाजी कहीं का ! निकाल टिकट ।" मैंने मुंह पर से कम्बल हटाकर देखा कि एक नवयुवक फटा पुराना सा कम्बल ओढ़े एक कौने में बैठा कांप रहा है, हाथ जोड़े हुए है और लज्जा तथा करुणा की मूर्ति बना हुआ है । उसका चेहरा छल-छिद्रसे बरी दीख पड़ता था और आकृति से मालूम पड़ता था कि इसने अच्छे दिन देखे हैं । बाबू जी की डांट सुनकर वह बोला—

'बाबू जी ! माफ करो, है नहीं ।'

यह सुनते ही बाबू जी ने और तेजी खाई और फरमाने लगे, "हरामजादा ! तेरे बाबा की गाडी है ?"

मुझ से न रहा गया, उठ बैठा और बाबू साहिब को लिया आड़े हाथों कि पाजी, हरामजादे का क्या मतलब है ? टिकट नहीं है तो कायदे की कारवाई करें ।"

बाबू जी के होश ठिकाने आए । बोले—'अजी यह लोग तो रोजाना के आदी हैं । तँग कर रखा है इन्होंने । इसलिए तो गुस्सा आता है ।'

लड़का बोला—"बाबू जी यह न कहिए । मुझे आज घर से निकले दो महीने के करीब हो गए । इस अर्से में मैं सैंकड़ों मील पैदल चल चुका हूं । घर से चलकर तीस कोस हांसी पहुँचा । वहाँ से हिसार, सिरसा आदि होता हुआ भटिन्डा पहुँचा । किसी जगह कोई काम न मिला । सब मिल, कारखाने देखे । आखिर भटिन्डा में एक रुई के कारखाने में काम मिला ।फूटी किस्मत साथ ही रही, वह काम भी छूट गया । जब निराहार दिन बीतने लगे, वहाँ से चल पड़ा । रेल किराए के पैसे न थे । जाखल तक पैदल चला । भूख से चलने की हिम्मत न रही तो दिल में आया—'रेल में बैठ जाऊँ । मगर किसी ने बिना टिकट अन्दर घुसने नहीं दिया । जींद तक और पैदल चला । वहाँ से रेल में बैठा था, कि अब आपने आ ही दबाया । कृपा करके अब मुझे दिल्ली तक जाने दीजिए, शायद वहाँ ही कोई काम मिल जावे ।" सँगदिल बाबू पर इसका कोई असर न हुआ, वे बोले—'देखा, आप । कैसा चालाक आदमी है यह ! बैठा है भटिण्डा से और कहता है जींद से ।' फिर उस लड़के की ओर हाथ चलाकर और मुँह बनाकर बोला, 'अबे, मैंने तेरे जैसे बहुत चराए हैं । भटिण्डा से किराया चार्ज करूँगा, पैसे निकाल, पैसे ।"

"बाबू जी, पैसे होते तो रोटी ही न खा लेता, जो चलने की हिम्मत हो जाती और आपके धक्के न खाने पड़ते । आप मेरी हालत पर दया करें । मैं आप

से सचसच कह रहा हूँ।"

बाबू जी क्यों पसीजने लगे थे, टस से मस न हुए। आखिर एक मुसाफिर बोला—"बाबू साहिब! इस बेचारे के पास क्या रखा है। जाने दो इसको। गरीब है बेचारा।"

"बेचारा है? अगले स्टेशन पर चार्ज होगा। नहीं, कानूनी कार्रवाई होगी," यह कह कर बाबू आगे चला गया।

मुझे इस युवक पर बड़ी दया आ रही थी। उसकी घबराहट दूर करने के लिए मैंने कहा, "भाई घबराओ मत, मजे से बैठे रहो। मैं इससे आप निपट लूँगा।"

"बाबू जी! भगवान आपका भला करे।"

"भैया! यह तो बताओ, तुम हो कौन और तुम्हारी यह हालत कैसे हुई? मुझे तो तुम अच्छे घर के दीख पड़ते हो।"

"जनाब मैं क्या बताऊँ, आप न पूछते तो ही अच्छा था, पर खैर सुनिए, दिल थामकर सुनिए, मैं अपनी राम-कहानी सुनाता हूँ।"

मेरा नाम हरिचन्द है। रियासत पटियाला के नारनौल जिला के छोटे से एक गाँव का रहने वाला हूं। मेरा दादा एक खातापीता किसान था। गांव में उसकी काफी मान-तान थी। पर वह इलाका बारानी था। वर्षा भी थोड़ी होती थी। नहर का भी वहाँ कोई प्रबन्ध न था। कुएँ से भी खेती नहीं हो सकती थी, पानी बहुत गहरा और खारी था। वर्षा की कमी से आए दिन अकाल ही पड़ा रहता था। इन अकालों से दुखी होकर ही, मेरे दादा ने मेरे बाप को फौज में भरती करा दिया। मेरे पिता बड़े खूबसूरत नौजवान थे। वह अपने हर एक काम में सब साथियों से आगे रहते थे। इस वास्ते वह जल्दी ही तरक्की कर गए और होते-होते सूबेदार बन गए।

मेरे बाप को मुझ से बड़ा प्रेम था। मैं उनका पहला बेटा था। वह मुझे फौज में भी अपने साथ ही रखते थे। उन्होंने मुझे एन्ट्रेन्स तक पढ़ाया। शायद आगे भी पढ़ा देते, पर अब वह पेन्शन पर वापिस अपने घर आ चुके थे। परिवार उनका काफी बड़ा हो चुका था। बहतसालियों की वजह से दो भाई और एक बहन के कुटुम्ब का भी गुजारा उसी पेन्शन पर था। इसलिए मुश्किल से गुजर होती थी। साथ ही मेरे पिता खुद थोड़े ही पढ़े-लिखे थे। फौज में ही उन्होंने कुछ लिखना-पढ़ना सीखा था। इस वास्ते इस जमात को ही वह बहुत बड़ी पढ़ाई समझते थे। मेरी इच्छा थी, कि मैं भी अंग्रेजी फौज में ही अपने बाप की तरह नौकरी करूं. परन्तु मेरी इच्छा के विरुद्ध ही मुझे राज्य में ही एक दफ्तर में नौकर करा दिया गया। वहाँ ३०) मासिक मिलता था। मेरी शादी भी हो गई थी, हम दोनों के लिए यह काफी थे।

एक दिन अखबार में यह खबर निकली कि अमेरिका में गेहूँ का एक ऐसा बीज है जो बिना पानी के पैदावार दे देता है। बड़े वजीर को भी किसी ने वह लेख दिखा दिया। डायरेक्टर महकमा जराअत पंजाब को लिखा गया कि वह बीज मँगवा दिया जावे। वहाँ से जवाब आया कि ऐसा कोई बीज तो है नहीं, एक खेती का तरीका ऐसा है जिसके अनुसार काम करने से थोड़े पानी से फसल पैदा की जा सकती है। इस जानकारी के वास्ते अमुक पुस्तकें मंगवा सकते हो। किताबें मँगवाई गईं और रियासत के पुस्तकालय में रखवा दी गईं। मैं पहला आदमी था जिसने वह पुस्तकें पढ़ीं। मुझे पहले से ही खेती का शौक था और आए दिन की लोगों की अकालों से पीड़ा का भी दर्द था। किताबें पढ़कर वह दर्द और भी बढ़ गया। एक धुन सवार हो गई कि यदि दुर्भिक्ष निवारण का कोई उपाय हो सकता है तो, जरूर ढूँढ निकालना चाहिए।

साहिबान! वही धुन है जिसने यह हाल बना दिया है। छिब्बे जी गए थे चौबे होने, दुब्बे ही रह गए। चले थे औरों का कष्ट निवारण करने, आप कष्ट में पड़ गये। नौकरी छोड़ी लगे खेती करने। पर, खेती क्या करने लगा, मां बाप का प्यार खोया

और भाइयों की हमदर्दी। मां-बाप ने अलग कर दिया। भाई-बन्धु ईर्ष्या करने लगे। और जिन के लिए यह काम सम्भाला था वही पागल बताने लगे।

एक दिन वर्षा होकर हटी थी, बल्कि थोड़ी थोड़ी बून्दें अभी पड़ ही रही थीं। मैं फावली हाथ में लिए खेत को डौल लगा रहा था, कि पानी न निकल जावे। खेत रास्ते पर था। दो किसान वहाँ से गुजरे। एक दूसरे से बोला "भाई सुखलाल! क्या तुझे 'अँग्रेजी गधा' दिखाऊँ।" दूसरे ने पूछा,'कहाँ हैं?' 'यह देख' मेरी तरफ उँगली करके उसने कहा। 'ऊह ऊँ! यह तो मोहन सूबेदार का बेटा हरिचन्द डौल लगा रहा है।' 'हाँ, यही तो बात है। देख! सूबेदार का बेटा है। दसवीं तक अँग्रेजी पढ़ा है। ३०) महीना पर नौकर था। सब कुछ छोड़ दिया। लोग अपने घरों में आराम से बैठे हैं और यह है कि फावली लिए भीग रहा है। इससे बड़ा गधा और कौन हो सकता है।'

मुझे बड़ा दुःख हुआ, कि जिनके लिए कष्ट उठा रहा हूँ, वही उलटा गधा बताते हैं। परन्तु यह तो एक मिसाल है। मेरे साथ तो घर में अथवा बाहर रात-दिन ऐसी घटनाएँ घटती रहती थीं। मैंने कभी इनकी ओर ध्यान नहीं दिया। सभी के लिए मैं तो अछूत तथा पागल था। फिर भी मैं रात दिन इस काम में इसी तरह लगा रहा। पर, शायद परमात्मा को भी यह मँजूर नहीं था। दोनों साल सूखा पड़ा। वर्षा इतनी कम हुई कि दो हल की खेती में एक साल सात मन और दूसरे साल बारह मन अनाज हुआ और खर्च आया पूरा आठ सौ रुपया। कर्जदार हो गया। आगे मिलने से रह गया। आखिर फाके निकलने लगे। स्त्री और बच्चों की भूख न देख सका और घर से निकल पड़ा। जानता था कि किसी कारखाने में ही मजूरी मिल जावेगी। सो वह भी न मिली। यह है मेरी राम कहानी!'

एक मुसाफिर ने लम्बी सांस लेकर कहा, 'ओह! इसी तरह स्वावलम्बी तथा स्वाभिमानी किसान, पर-वस और बेबस मिल-मजूर बनते हैं।'

दूसरा बोला, 'हाँ भैया! पर यारो देहात में उन्नति का तथा सुधार का कोई काम करना बड़ा कठिन है।'

तीसरा—'वहाँ का तो वायु-मण्डल कुछ और ही हो रहा है।'

चौथा—'खेती और तालीम का तो कोई मेल ही नहीं समझते।'

जो पढ़ जाएँ उनके लिए जरूरी है कि वह चाकरी ही करे।'

छठा—'नहीं करे तो मजाक उड़ाया जाता है। वहाँ तो कहावत है:—

'पढ़े फारसी बेचे तेल। यह देखो कुदरत के खेल।।'

मैंने कहा—'साहिबान! कुछ भी हो, लड़का है हिम्मत वाला। इसकी जरूर मदद करनी चाहिए। नहीं तो यह औरों की तरह किसी कारखाने में ही जीवन बिता देगा।'

सबने कहा, 'हाँ, ठीक है।'

एक बोला. 'भाइयो! एक बात बड़े मजे की देखी, जिसका किसी को ख्याल ही नहीं।' दूसरा बोला, 'बतला दो।'

'साहिब, कोई समय था कि लोग गाडी वाले को धमकाया करते पर आजकल तो गाडीवाले ही लोगों को धमकाते, डांटते तथा गालियाँ देते बल्कि ठोकरें तक मारते देखे।'

'यह तो अँग्रेजी राज की बरकत है।' मैंने कहा—

एक और बोला. 'जमाना ही उल्टा है। रेल बाबू ही क्या, चौकीदार से लेकर जरनैल तक और पटवारी से लेकर वजीर तक सभी क्या हमारी कमाइयों से वेतन नहीं पाते हैं? फिर भी उनका डण्डा और हमारा सिर है।'

मैंने कहा—'यह हमारी ही कमजोरी है। हमारे अन्दर मेल-इत्तफाक नहीं, सँगठन नहीं! अगर यह हो जावे तो हम ही तो मालिक हैं।'

यह बातें हो ही रही थीं कि दिल्ली का स्टेशन आ गया। बाबू ने, उस नवयुवक को घेरना चाहा। मैंने

उसके हाथ पर एक चवन्नी रख दी, वह चुप हो रहा। मैं उस लड़के के सिर पर सामान रखकर बाहर ले आया।

मेरे दोस्त ने उठकर कहा, 'यार, आज तो खूब अपने सफर की सरगुज़श्त सुनाई ।। यह कब की बात है और उस लड़के का फिर क्या बना।'

आज छुट्टी का दिन था। समय बिताने के लिए मैं और मेरे दफ़्तर के पुराने मित्र बाबू रामगोपाल दोनों जमुना किनारे आ बैठे थे। इस प्रश्न का मैं उत्तर देना नहीं चाहता था। मैं खड़ा हो गया और बोला—'आओ चलें, देर हुई जा रही है।'

'भई यह ठीक नहीं है, बात पूरी करो नहीं तो, यार तो यह बैठे हैं।'

न मानता हुआ देखकर मैंने कहा, 'अच्छा सुनो। यह बात मुझे तो कल की सी मालूम पड़ती है, पर इसको कोई बीस साल हो गए हैं। वह लड़का अपने गाँव चला गया, और उसे फिर। कभी कोई आर्थिक कष्ट नहीं हुआ। आज वह बड़ा माननीय कांगरेसी लीडर है। देहात की जागृति में उसका बड़ा हाथ है।'

"तब तो उस जागृति में आपका भी बहुत कुछ हाथ हुआ।"

"नहीं भाई साहब! हम क्या देश सेवा कर पाए हैं।"

"सारी उमर तो गुलामी में गुज़ार दी।"

रामगोपाल ने कहा "दोस्त, तुम धन्य हो। गुलामी में भी तुम आजाद ही रहे हो। पर हां! एक बात याद आई, भाभी अक्सर शिकायत किया करती थीं, कि बाबू जी तनख्वाह में से सदा ही कुछ न कुछ गोल माल करते रहते हैं। कभी हिसाब पूरा नहीं बताते।"

मैंने पूछा—"फिर?"

"फिर क्या मैंने उनसे कह दिया, कि चावड़ी जाते तो कभी मैंने उन्हें देखा नहीं।"

इस पर दोनों ठहाका मारकर हँसे और "जै भारत माता की" कहकर उठ खड़े हुए।

पञ्जाब के भिखमंगों की समस्या

[ले०—श्री सुनामराय एम॰ ए॰]

यों तो सारा भारतवर्ष ही दीन-हीन और भिखारी बना हुआ है, परन्तु पँजाब में कांग्रेस राज्य न होने के कारण, भिक्षा-वृत्ति दिनोंदिन विकट रूप धारण करती जा रही है।

पहिले तो भिखारी—जो अधिकतर बूढ़े, अपाहिज तथा जन्म के फ़क़ीर होते थे, बड़े २ शहरों में मिलते थे, परन्तु अब तो ये भिखारी टिड्डी दल की भांति छोटे २ शहरों और गांवों तक में छा गए हैं। इन भिखारियों में बच्चों की सँख्या भी काफ़ी है। छोटे-छोटे बच्चे अनाथों का रूप धारण कर, चिमटा लिए दर-दर भीख माँगकर अपना पेट भरते हैं। बम्बई शहर तो बच्चों का दोज़ख ही बन गया है। उत्तरी-पश्चिमी भारत से कितने ही बच्चे वहां हर साल खे जाए जाते हैं, जहां

उन्हें लम्पटों की काम-वासना पूरी करने के लिए विवश होना पड़ता है।

हमारे देश की दरिद्रता का क्या कहना? इसने सारा जीवन ही फीका कर दिया है। लाहौर पहुँचिए। पहिले भूखे कुली स्टेशन के अन्दर आपको तँग करेंगे। बाहर निकलिये तो तांगे वाला आपका पल्ला पकड़ेगा। शाह-आलमी दरवाज़े के पास पहुँचिये तो निहायत ही मैला-कुचैला पहाड़ी आपका असबाब उठाने की खातिर तांगे के साथ दौड़ता नज़र आयेगा। अनारकली में दाख़िल होते ही होटल वाले बुरी तरह आपके पीछे पड़ जावेंगे। किसी दुकान से कोई चीज़ ख़रीदिये तो कोई मँगता आपके सामने हाथ पसार देगा और कोई पँखा करने लग जावेगा ताकि उसे कुछ मिले। ग़रज़ यह है कि हर सड़क, हर बाज़ार, हर दुकान और हर मकान पर बूढ़े, नौजवान, लड़के, लड़कियां, मर्द—औरतें भीख मांगते नज़र आते हैं। गांवों के ग़रीब किसान भी छोटे-छोटे शहरों में आकर भिखमँगे बन गए हैं। चन्द साल हुए सर फ़ीरोज़ख़ां नून ने कौंसिल में बिलकुल ठीक ही कहा था कि पँजाब का किसान अनाज की बेहद मँदी के कारण खेती करने के बजाय भीख मांगना अधिक लाभकारी समझता है।

भिखारियों की दुर्दशा देख और उनकी दर्दभरी आवाज़ सुन दिल पिघलता है और यह भी ख़याल आता है कि गृहस्थी होकर अकेले खाना और ग़रीबों को कुछ न देना महापाप है। लेकिन साथ ही यह तरँग उठती है कि आज कल का भारतवासी किसको भोजन दे और कैसे दे। जब अपनी और अपने बाल-बच्चों की उदर-पूर्ति न होती हो तो भिखारियों को क्या ख़ाक दिया जाये। पहले जहाँ भिखारियों के आने पर खुशी होती थी वहाँ अब दरवाज़े पर उनके आने से तबियत घबराती है, इनपर क्रोध आता है। वह आटा, रोटी या वस्त्र के लिए जितना अधिक आग्रह करते हैं, हृदय उतना ही उनके विरुद्ध होता चला जाता है।

लेकिन सवाल तो बार-बार यह उठता है कि यह भिक्षा-वृत्ति दूर कैसे हो। महज़ यह कह देने से अब काम न बनेगा कि—

'रहिमन वे नर मर चुके, जो कहुँ मांगन जांय।
उन तें पहिले वे मुए, जिन मुख निकसत नांय॥

भूखे ज़रूर मांगेंगे। आत्म-सम्मान वाला तो लाखों में एक होता है। इस लिए भिक्षा-वृत्ति को दूर करने के दो ही उपाय हैं—एक तो जनता की मनोवृत्ति में क्रांति पैदा करना और दूसरे गवर्नमेण्ट पर ज़ोर देना।

आज जनता की जो दूषित मनोवृत्ति है वह किसी से छिपी नहीं। भारतवासियों ने जो कल्पना की और जिस दरिद्र जीवन को चाहा वही उनको मिल गया है। अब फिर वे घबराते क्यों हैं। वही तो सिर हिला-हिला कर गाया करते थे—"एक रोटी और लँगोटी

द्वारे तेरे पाऊँ मैं। अब की बार दे दीदार नाम तेरा गाऊँ मैं ॥" ईश्वर ने दयालु होकर लँगोटी से भी वञ्चित कर दिया और रोटी के स्थान पर केले के छिलके और जूठे पत्ते मिलगए। इस तरह मुँह-मांगी मुराद मिल गई तो फिर शिकायत कैसी? अगर हम वास्तव में इस दुर्दशा को मिटाना चाहते हैं तो हमें अपनी मनोवृत्ति को बदलना होगा, जीवन का लक्ष्य निश्चित करना होगा और इस पर कोई आघात करे तो जीवन देकर भी इसकी रक्षा करनी होगी। उन्नतिशील देश के लोगों को जब भूख सताती है तो वे भिक्षा नहीं मांगते, वहां के बेकार आत्म-हत्या नहीं करते, बल्कि वे आँदोलन करते हैं, क्राँति उत्पन्न कर देते हैं और जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति को अपना जन्म-सिद्ध अधिकार समझ कर वे सरकार को अपनी माँगों को पूरा करने के लिए विवश करते हैं। सन १९३१ में अमेरिका के एक पत्र में यह समाचार प्रकाशित हुआ था कि एक स्थान के ३ सौ बेकार मज़दूरों ने अनाज के गोदाम के मालिकों पर धावा बोल दिया था और इस प्रकार अनाज प्राप्त करके उन्होंने अपनी आवश्कताओं को पूरा किया था। परंतु हमारे देश के बेकार और भूखे आंदोलन करने के बजाय भीख मांगना, पांव पड़ना और आत्म-हत्या व चोरी करना शुरू कर देते हैं। जो ज़रा पढ़े लिखे हैं वे देशद्रोही बनकर अपना पेट भरते हैं। ज़्यादा पढ़े लिखे ब्रिज और फ्लश (एक तरह का जुआ) खेलने लग जाते हैं। व्यापारी सट्टा शुरू कर देते हैं। कितने ही पामर अपनी लड़कियों को बेचकर पेट की अग्नि शान्त करते हैं। लेकिन आंदोलन कोई नहीं करता, स्वराज्य प्राप्ति की जद्दोजहद में कोई शामिल नहीं होता। इसके साथ ही दान देने वाले अन्धा-धुन्ध दान देते हैं। वे पात्र, कुपात्र का भेद नहीं समझते। इसलिए जब तक हमारे देशवासियों की मनोवृत्ति नहीं बदलती तब तक भिक्षा-वृत्ति कम होने की बजाय बढ़ती ही चली जायेगी।

भिक्षा-वृत्ति को दूर करने का दूसरा उपाय है सरकार। उन्नति-शील देशों की सरकारों ने भीख मांगना क़ानूनन बंद कर दिया है। वहां बेकारों को काम दिया जाता है या सरकार की तरफ़ से खर्चा मिलता है। लेकिन भारत की नौकरशाही कुछ भी नहीं करती। अपने सिर से बेकारी और बेरोज़गारी की बला टालने के लिए वह सट्टे की इजाज़त दे देती है, ब्रिज के जुए को बुरा क़रार नहीं देती, लड़कियों को बेचना कानूनन बन्द नहीं करती, भिक्षा मांगने वालों के खिलाफ़ कोई क़ानून नहीं बनाती, रिश्वतखोरी की लानत को दूर नहीं करती। वह यह सब कुछ इसलिए नहीं करती कि बेकारों की काफ़ी सँख्या इसी तरह ज्यों-त्यों करके अपना

पेट भर लेती है और उसे कुछ करना-धरना नहीं पड़ता।

हां, जब से भारत के कई प्राँतों में राज्य की बागडोर कांग्रेस ने अपने हाथ में ली है, तब से भिक्षा-वृत्ति को बन्द करने का यत्न होने लगा है। अगर रुपये की कमी न होती तो उन प्रांतों में बहुत जल्दी भिक्षा को देश निकाला दे दिया जाता। लेकिन विदेशी राज्य ने रुपया तो छोड़ा ही नहीं। फिर भी वहाँ कुछ न कुछ हो ही रहा है। बम्बई की कांग्रेस हुकूमत ने बालकों को भिक्षा-वृत्ति से बचाने के लिए बम्बई शहर और साथ के इलाके में बच्चों के लिये रोज़गार तलाश करने का यत्न शुरू कर दिया है। एक बाल-सहायक-सोसायटी बना दी गई है, उनके लिए एक शिल्प विद्यालय खोल दिया गया है। सबसे बढ़कर यह किया गया है कि एक स्थान पर बच्चों की बस्ती बसाई जा रही है जिसके लिए २ लाख की मांग की गई है। इसमें ७५० लड़के रखे जावेंगे, जिन्हें घरेलु दस्तकारियां और खेती-बाड़ी का काम सिखाया जावेगा।

क्या हमारे प्रांतमें इस सम्बन्धमें कुछ हो रहा है? हरगिज़ नहीं। यहाँ तो बेकार बच्चों और भिखमँगों का बन्दोबस्त करने के बजाय आपस में जँग जारी है। उलटा मुश्किल से निर्वाह करने वालों को भी भिखारी बनाया जा रहा है। यहां भिखारियों की तादाद दिनोंदिन बढ़ रही है। हर एक बेकार किसी न किसी रूप में भिखारी बन रहा है। कोई खुल्लम खुल्ला मांगता है, तो कोई अपने सम्बन्धियों और मित्रों से। कहने का मतलब यह है कि हरेक मांगने में लग रहा है। पँजाब प्राँत के मँत्रियों को चाहिये कि कांग्रेस और साधारण जनता को खुश करने के लिए खाली बातें न बनायें, बल्कि इन भिखारियों को कानून द्वारा और काम द्वारा योग्य नागरिक बनाने का भरसक प्रयत्न करें ताकि हमारा प्रांत भी कांग्रेसी प्रांतों के साथ-साथ उन्नति कर सके।

चाह !

[रचयिता – श्री दयाशङ्कर मिश्र, 'कण्टक']

नष्ट हो जावे धन-वैभव,
सहूँ पद-पद पर मैं अपमान।
बनूँ सन्यासी यौवन में,
बने किंकर, 'कंटक' भगवान ॥

किंतु सेवा-व्रत-वेदी पर,
करूँ अर्पित अपने यह प्राण।
मरूँ घुल-घुलकर सेवा में,
देव दे मुझको यह वरदान ॥

त्रिपुरी नगर की झांकी

(ले०—श्री प्रभुदयाल विद्यार्थी, मगनवाड़ी, वर्धा)

कुछ दिन पहले त्रिपुरी नगर में लाखों नर-नारी इकट्ठा होकर एक गहन विषय पर निर्णय करने के लिए आये हुए थे। महीनों से त्रिपुरी नगर की ओर सब की आँखें लगी हुई थीं। त्रिपुरी कांग्रेस, देश के इतिहास में अद्वितीय कांग्रेस हुई है। इस कांग्रेस का देश-देशान्तरों के ऊपर क्या असर होगा, यह तो भविष्य ही बताएगा।

त्रिपुरी नाम के पीछे एक ऐतिहासिक नाम भी लगा हुआ है। वैदिक-काल के राजा दिवोदास, सुदास और त्रसदस्यु ने, दास और दस्युओं को विजय करके जब पँजाब तथा आर्यावर्त में आर्यों का राज स्थापित किया तब से त्रिपुरी इतिहास में प्रसिद्ध है। वैदिक-युग बीत जाने के पश्चात् बहुत वर्षों तक त्रिपुरी स्थानीय राजाओं की राजधानी रही, लेकिन वर्तमान समय में वहाँ पहाड़ी तथा झाड़ियों का झुण्ड है। राष्ट्रीय कांग्रेस का ५२ वाँ अधिवेशन इसी पहाड़ियों के खण्डहरों तथा नर्बदा के पवित्र तट पर १०, ११, १२ मार्च को हुआ, जिससे राष्ट्रीय इतिहास में भी त्रिपुरी का नाम अजर-अमर हो गया।

त्रिपुरी-नगर बाँस की झोंपड़ियों तथा बाँस के दरवाज़ों से बसाया गया था और जबलपुर सिटी से बिजली लाकर विष्णुदत्त-नगर को जगमगाया गया था। जिस त्रिपुरी के लिए लाखों रुपया पानी की तरह खर्च किया गया था और कुछ दिनों के लिए गुलज़ार बना दिया गया था, आज वही नगर सुनसान हो गया है। आओ, उस उजड़े नगर की फिर से झांकी देखें।

त्रिपुरी-नगर में सबसे पहले जिस चीज़ की ओर सबका ध्यान खिंचता था वह था शहीदों की स्मृति में बनाया गया स्मारक। सँध्या समय उन शहीदों की याद में उनके मज़ारों पर दियों की जगमगाहट की जाती थी। वहाँ का वह दृश्य देखकर हृदय में एक नवीन स्फूर्ति पैदा होती थी। यह कांग्रेस के इतिहास में शहीदों की यादगार का निराला ढँग था।

दूसरी चीज़ थी अखिल-भारतीय चरखा सँघ और ग्रामोद्योग सँघ की प्रदर्शिनी। खादी और ग्रामोद्योग सँघ प्रदर्शिनी में भिन्न-

भिन्न प्रांतों की बनी हुई चीज़ों का प्रदर्शन सिलसिलेवार किया गया था और देश-प्रेमी भाई अपने हाथ से कते हुए सूत को श्रद्धा-पूर्वक सूत-यज्ञ की वेदी पर अर्पण करते थे। कताई-विभाग के दोनों तरफ मण्डप बने हुए थे, जहाँ पर बैठ कर कताई-धुनायी सम्बन्धी पूर्ण ज्ञान रखने वाले कुशल कारीगर अपना हस्त-कौशल दिखा रहे थे और तरह-तरह के हाथ बने चरखों का नमूना दिखाया जा रहा था। बुनाई-विभाग में कुशल बुनकरों का प्रदर्शन किया गया था। खादी-भवन प्रदर्शिनी भर में सबसे अधिक आकर्षक बनाया गया था। भवन के मध्य में चरखे और तकली का प्रदर्शन किया गया था। मञ्च के चारों ओर हस्त-चित्रकला के चित्र सजाए गए थे, जिनकी शोभा निराली थी। इसके अतिरिक्त भवन में भिन्न-भिन्न प्राँतों में तैयार किये जाने वाले खादी, रेशम और ऊन के कपड़ों के नमूने आदि रखे गए थे। खादी भवन के चारों ओर दूकानें रक्खी गई थीं। खादी और ग्रामोद्योग के प्रदर्शन का मुख्य उद्देश्य यही था कि लोगों में गांवों की बनी हुई चीज़ों के प्रति प्रेम उत्पन्न हो और वे अपनी भूली हुई चीज़ों को पुनः अपना लें।

ग्रामोद्योग-विभाग में गांवों के उन अनेक उद्योगों का प्रदर्शन हुआ था जिनको ग्रामोद्योग संघ की ओर से पुनः जीवित करने का प्रयास किया जा रहा है। इनमें मुख्य तेल पेलने का कोल्हू, हाथ-चक्की, चमड़ा कमाने की क्रियायें, हाथ से साबुन बनाना, हाथ से काग़ज़ बनाना, ताड़ के रस से गुड़ बनाना आदि थीं। यह सब चीज़ें अपने-अपने स्थान से कांग्रेस-नगर की शोभा बढ़ा रही थीं। नगर में लगे नाना प्रकार के आंकड़ों द्वारा बताया गया था कि कितनी चीज़ें विदेश से आती हैं और कितनी यहां तैयार की जाती हैं, तथा अब तक खादी और ग्रामोद्योग संघ ने क्या २ काम देश के लिए किया है। इससे नगर की शोभा और बढ़ गई थी।

तीसरी चीज़ हिन्दुस्तानी-तालीमी-संघ और विद्या-मँदिर शिक्षा-पद्धति का प्रदर्शन था। इस प्रदर्शन में बताया गया था कि चन्द महीनों में हम शिक्षा के विषय में कितना आगे बढ़े हैं और देश के ऊपर उसका क्या प्रभाव पड़ा है। इसके अलावा भी बहुत सी बातों का उल्लेख किया गया था।

त्रिपुरी के अत्यधिक आकर्षक होने का कारण था वहां की पहाड़ी-प्रकृति का सौन्दर्य तथा नर्बदा का कलकल निनाद! त्रिपुरी जाने वालों को वहाँ के पहाड़ी सौन्दर्य का ही ख़याल रह जायगा। सबकी आँखें प्रकृति-देवी की उस निराली छटा को देखने ही में लगी रहती थीं। आज भी प्रकृति-सौन्दर्य की यही झांकी हमारी आँखों के आगे आ जाया करती है।

—०:०—
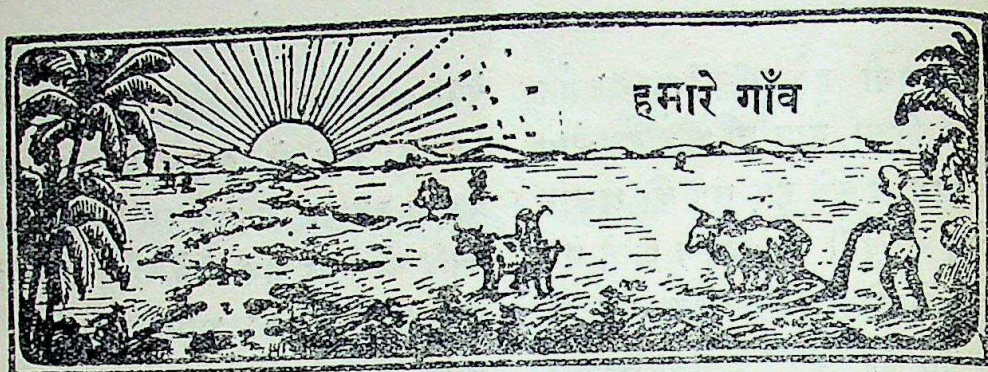
उपदेश, उपदेश और उपदेश !!!

[ले०—डा० रविप्रतापसिंह श्रीनेत]

ज़माना उन्नति का है। इसलिए आपस में होड़ लगी हुई है। एक दूसरे से आगे बढ़ना चाहता है। इस चाहमें एक बेचैनी छुपी है जो शायद आत्मा की भूख कही जा सके। यही भूख, हिंदोस्तान के अन्नदाता—किसानों और पूँजी की लागत—मज़दूरों की आत्मा को आशा के सपने में, न जाने कितने दिनों से जला पा सकने में समर्थ हो रही है।

इस भूख को मिटाने के लिए आज हमारी राष्ट्रीय शक्ति का एक ज़िम्मेदार हिस्सा बड़ी कोशिश कर रहा है। यही सबब है जो हमारा शहराती दिल और हमारे विलायती विचार बड़ी तेज़ी के साथ देहात की तरफ़ मुख़ातिब हो रहे हैं। 'ग्राम-सुधार' की आवाज़ चारों तरफ़ सुनाई दे रही है। ऐसा मालूम होता है कि गाँवों के सभी हिमायती हैं, किसानों के सभी दोस्त हैं और देहातों के सभी शुभचिंतक हैं,लेकिन दरअसल में देहातियों की जो हालत है उसके ज़िम्मेवार भी ये ही लोग हैं। इस ज़िम्मेदारी का निभाव वे बड़ी चालाकी के साथ कर रहे हैं शायद यही कारण है जो बातें बहुत और काम कम होते नज़र आ रहे हैं।

'ग्रामसुधार' की चर्चा आज दिन की फ़ैशन हो गई है। फ़ैशन में भी होड़ नज़र आ रही है। सरकारी हुक्काम, राष्ट्रीय सरकार की हाँ में हाँ मिलाते हुए बेसर पैर की स्कीमें सोच सोचकर प्रांतीय बजटों का बोझ बढ़ा रहे हैं। ग़ैर सरकारी कार्यकर्त्ता भी स्वदेश-प्रेम की अलामातें प्रस्तुत कर रहे हैं। सभी जगह स्कीमों, बातों और उपदेशों का बाज़ार गरम दिखलाई दे रहा है। कार्यक्षेत्र में उपयोगिता और अनुभव की कमी मालूम हो रही है। इसीलिए इतनी सुधारचर्चा के बाद भी देहात की हालत पहले जैसी ही नहीं; किंतु पहले से भी बदतर होती जा रही है। देहात सुधार के नाम पर सर धुनने वाले शहराती अपने साथ फ़ैशन और दिखावे की

वो बुराइयां ले लेकर गाँवों में जा रहे हैं, जो देहाती जीवन के लिए मुज़िर साबित हो रही है। उनकी आत्मा में एक अजीब बेचैनी घर कर रही है। इस बेचैनी से कोई छुटकारा नज़र नहीं आता। 'ग्राम-सुधार' की समस्या सुलझने के बदले और भी उलझ रही है।

इस मसले को हल करने के लिए देश-व्यापी "स्वास्तिक" प्रोग्राम की ज़रूरत है। देहात के लिए काम करने वालों को इसी प्रोग्राम का हामी होना लाज़िम है। भलती जमात भलती बातों को लेकर देहात के भोले वातावरण को न दूषित करें। इसकी देख-रेख प्राँतीय-सरकारों को करना चाहिए। राष्ट्रीय-कांग्रेस अभी खुद ही अपने मन्सूबों और मसलहतों के झमेले में बुरी तरह मुब्तिला है। ऐसी हालत में देहातियों के भोलेपन और उनकी नेकनीयती से खुदग़र्ज़ी के पुतले फ़ायदा न उठाएँ, इसका खयाल रखना बहुत ज़रूरी है।

बुत-परस्ती के इस देश में उपदेशों और लच्छेदार बातों की खूब शोहरत रही है और आज भी नज़र आ रही है। इन उपदेशों का असर उपदेशों का सा ही हुआ है। कोई ठोस काम उपदेशों में से नहीं निकाला जा सका है। 'ग्राम-सुधार' आज कल के देश-भक्तों का मन-बहलाव है, जिसमें कोरे उपदेशों की प्रधानता है। उपदेशक समझते हैं कि लेक्चरबाज़ी से काम चल निकलेगा। शायद इसी लिए शब्दों की झड़ी लगी रहती है। हाथ-पैर हिलाने की जगह जीभ की हरकत ही दीख पड़ती है। ज़बान चलाने से ही कोई सुधार न हो सकेगा। देहाती अच्छी तरह समझने लगे गए हैं कि सुधार के नाम पर शहराती हमें अपने मन-बहलाव का एक ज़रिया समझते हैं। उनके सामने कोई निश्चित कार्यक्रम नहीं, कार्यक्रम के पीछे लगन की पूँजी नहीं और न कुछ कर सकने की शारीरिक क्षमता ही है। ऐसी हालत में देहाती हमारे 'सुधार-अनपच' को हेय की दृष्टि से देखते हैं। न तो उनकी तरफ़ ध्यान ही देते और न उन पर विचार ही करते। हमारी सुधारकों की टोली यह ग़लती से समझ बैठती है कि उनका यह दौरा सफल रहा; क्योंकि कामरेड फ़लाँ बड़े ज़ोर से बोले, श्री फलां ने कांग्रेस कार्यक्रम का जीता-जागता नक़शा खींच दिया, पँडित फ़लाँ ने हरिजन मसले पर क्या ही उम्दा तक़रीर की? फ़लाँ वकील ने सरकार को कैसा कोसा? यही आज हमारा देहाती प्रोग्राम है। 'तुम हमारे देश के लाडले हो। तुम पर ही देश का भार है। तुम हमारे भाई हो। तुम ऐसे रहो, वैसे रहो, चरखा चलाओ, पानी पीओ, हवा खाओ, मौज उड़ाओ!' यही हमारे उपदेश हैं।

उपदेशों की पूँजी से हिंदोस्तान को कभी फ़ायदा न होगा। देहाती उपदेशों के

थोथेपन को खूब समझते हैं। उनके नज़दीक एक तोले काम की कीमत एक मन उपदेश से ज़्यादा है। उपदेश से हमें भी तो संतोष नहीं होता; लेकिन हम बेचारे दूसरों को उन से सन्तोष दिलाना चाहते हैं। आज का वातावरण उपदेशों से बोझीला हो उठा है, क्योंकि हमारे कानों के परदे से 'सुधार' के नाम पर, बस एक ही आवाज़ टकराती है। वह है—उपदेश, उपदेश और उपदेश !!!

—:०-०:—

होली का रहस्य

(ले० श्री कृष्णजसराय बी० ए०)

[विद्वान् लेखक ने इस लेख द्वारा सिद्ध किया है कि होली का त्यौहार केवल हिंदुओं के लिए ही नहीं बलिक जीवन-मुक्ति के इच्छुक प्रत्येक मनुष्य—हिंदू, मुसलमान, ईसाई, पारसी आदि सबके लिए समान रूप से महत्वपूर्ण है। काश ! भारतवासी इस सार्वभौम होली को मनाना जानते तो आज उनका यह पतन न होता। सं०]

हिन्दू त्यौहार वास्तव में किसी न किसी गूढ़ सचाई को लिए हुए हैं, उनमें महान् सिद्धान्तों के रूपक निहित हैं। होली ही के त्यौहार को लीजिए—इसमें संसार-रचना व संसार-यात्रा का मनोहर रूपक बाँधा गया है। पहले बसन्त के दिन एक हरी लकड़ी को पृथ्वी में गाड़ देते हैं। यह मानो जीवात्मा का प्राकृतिक रूपों में प्रवेश करना है। हमें सबसे पहले जीव का बनस्पति योनी में ही ज्ञान होता है। इसी परमात्मा रूपी जीवित पेड़ में से एक टहनी, जो जीवात्मा है, इस पृथ्वी पर आकर अनेक रूपों में प्रवेश कर गई ! इसका रूपक तरह-तरह के स्वाँगों से, जो इन दिनों में निकाले जाते हैं, दर्शाया गया है। उसी दिन से जीवात्मा की यात्रा इस संसार में शुरू हो जाती है। आवागमन के अटल सिद्धान्त के अनुसार जीवात्मा कभी कोई और कभी कोई देह धारण करती है। इस यात्रा में जीवात्मा अपना कर्म सँचित करती है। कुछ प्रारब्ध बन-बनकर क्षय हो जाते हैं, बाकी जीवात्मा के चारों ओर जमा होते रहते हैं। जब हरी लकड़ी गाड़ दी जाती है तो लोग उसके चारों ओर जलने वाली वस्तु--लकड़ी, उपला, फूँस-पत्ती आदि जमा करने लग जाते हैं। इस प्रकार यह ढेर बढ़ता रहता है। इसके चारों ओर नित्य नये २ स्वाँग भरे जाते हैं और अनेक प्रकार का मनोरँजन होता रहता है। होली पर डालने के लिए लड़कियाँ गोबर की अनेक आकार-प्रकार की चीजें बनाती हैं।

होली का दिन आता है। लोग घर पर जमा की गोबर की चीजों को लाकर होली के ढेर पर डाल देते हैं, फिर गाँव भर के सब लोग इकट्ठे होकर इस बड़े ढेर में आग लगा देते हैं। यह रूपक गीता के अनुसार हमारे सँचित कर्मों को ज्ञान की अग्नि में दग्ध कर देना है। दूसरा रूपक है--बसन्त के दिन गाड़ी गई हरी लकड़ी को जिसे होली में जलने न देने के कारण आग से निकाल लेते हैं। यह रूपक इस सिद्धान्त का निरूपण करता है कि जीवात्मा अजर, अमर, अक्षय है। अग्नि में वह जल नहीं सकती, पानी में वह गल नहीं सकती। जब इस जीवात्मा के सब सँचित-कर्म ज्ञान की अग्नि में जलकर भस्म हो जाते हैं तो वह उस उच्चकोटि पर पहुँच जा

है जिसको मोक्ष पद कहते हैं । ऐसी जीवात्मा को जीवन-मुक्त कहते हैं ।

परन्तु अधिकाँश मनुष्य ज्ञान वा भक्ति की इस कोटि तक नहीं पहुँचते। वे अभी और अधिक समय संसार-चक्र में घूमेंगे। ऐसे मनुष्य अपनी बालों (अन्न को, जो बीज रूप उनके कर्म हैं) को होली जलने के समय, बांसों में बाँध-बांध कर अग्नि से स्पर्श कराने ले जाते हैं और केवल अग्नि का स्पर्श ही कराकर वापिस ले आते हैं। उन बालों को 'प्रसाद' के रूप में सबको बाँटते हैं। यही वह लोग हैं जिनको मोक्ष-प्राप्ति नहीं हुई। अभी उनके सब सँचित-कर्म भक्ति व ज्ञान की अग्नि में दग्ध नहीं हुए। यह प्रलय होने पर भी यों ही निद्रावस्था में पड़े रहते हैं। फिर संसार-रचना होने पर, जिसका रूपक 'बासौड़े की माता' के पूजन में बाँधा गया है, ये लोग फिर जहाँ सोये थे उससे आगे चलने लगते हैं।

जीवन-मुक्त प्रेम-रूप होते हैं। उनके सूक्ष्म शरीर से प्रेम की सूक्ष्म धारायें व गोलियां सदा ही निकलती रहती हैं। उनका सारा ही सूक्ष्म शरीर गुलाबी रंग से युक्त दमकता रहता है। इसका रूपक होली के अगले दिन होने वाले कार्य से बाँधा गया है। उस दिन हम पिचकारी व कुमकुमों से होली खेलते हैं, गुलाल-अबीर उड़ाते हैं। मस्ती में हम अपने आप को भूल जाते हैं तथा हर किसी को अपने रँग में रँगना चाहते हैं। इस प्रकार इस रूपक में एक जीवन-मुक्त की दशा, उसके जीवन का रहस्य दिखाया गया है। अस्तु, जैसा कि ऊपर लिखा गया है यह मस्ती, यह आनन्द, अपने को भूल जाने में है, जिसका रूपक भँग पीकर मदहोश होने में दिखाया गया है। परन्तु इससे आप यह न समझें कि मैं भंग पीने का पक्षपाती हूँ--कदापि नहीं। परन्तु अपने आप को भूल जाने की और कोई सूरत भी तो नहीं थी। इस प्रकार जीवन-मुक्तों ने सबसे उत्तम नशीली वस्तु से ही काम लिया है। यदि कोई दिव्य दृष्टा हो तो उसको जीवन मुक्त का सूक्ष्म शरीर ठीक उसी प्रकार का दिखाई देगा जैसा कि गुलाल अबीर उड़ाने के समय होता है। फिर इस शरीर से प्रेम की धारायें, पिचकारी की धार व कुमकुमे जैसी गोलाकार निकलती दिखाई पड़ेंगी। होली खेलना इसी का रूपक है। यह सारा रूपक वर्ष के अन्तिम मास व अन्तिम दिन बाँधा गया है, जिसका अर्थ है कि एक मन्वन्तर (एक मनु का समय) पूरा हुआ। फिर प्रलय, फिर रचना। इस चक्र का कोई न आदि है न अन्त।

यहाँ तक तो ठीक हुआ। परन्तु, अश्लील गानों, कीचड़ व कालिस लपेटने, शराब पीने आदि का क्या मतलब ? मैंने आपसे पहले ही कहा था कि सब जीवन-मुक्त नहीं होते। अधिकतर मनुष्य व मनुष्य से भी गिरे हुए, पीछे रह जाते हैं। उनके हृदय में गुलाबी प्रेम की धारायें नहीं बहतीं, उनके भीतर तो राग द्वेष की कालिमा भरी रहती है। वह तो वैसी ही धाराएं अपने चारों ओर फेंक सकते हैं। जिसके भीतर जो होगा वही तो निकलेगा, शहद वाली बोतल में से शहद और ज़हर वाली बोतल में से ज़हर। अब आप समझ गए होंगे कि यह कीचड़-धूल उछालना, गन्दा बकना आदि इन्हीं पीछे रह जाने वालों की हालत का रूपक है।

प्रिय पाठक गण ! अब आपकी समझ में आ गया होगा कि होली के त्यौहार का क्या अभिप्राय है। क्या यह त्यौहार सब मनुष्यमात्र को न मनाना चाहिए ? प्रेम के सभी तो अनुयायी हैं--क्या हिन्दू, क्या मुसलमान, क्या ईसाई, क्या पारसी। यह त्यौहार सभी को मोक्ष का रास्ता बताता है, जिसकी सभी तलाश में हैं, अतः होली सार्वभौम त्यौहार है। सभी जीवन-मुक्त बनने के लिए इसे मनावें, खूब खेलें। हाँ, गुलाबी रंग से। परन्तु गुलाबी रँग की धारा आपके अन्दर से कब बहेगी ? जब आप अपने हृदय के सब अशुद्ध विचारों को; काम, क्रोध, मोह, लोभ, अहँकार को; ईर्ष्या-द्वेष को--प्रेम व ज्ञान की अग्नि में भस्म कर दो, होली के दिन के पीछे इनकी कालस आपके हृदय में रहने न पावे। आपका हृदय पवित्र होकर खरे सोने की तरह जगमगा उठे और

(शेष पृष्ठ २८ के नीचे)

'दीपक' की शादी

(ले०—एक 'भंगी')

[तरंगी लेखक ने शिष्ट विनोद का, जो जीवन के लिए अत्यन्त आवश्यक है, एक सुन्दर नमूना इस लेख में पेश किया है। —सम्पादक]

ली के हुल्लड़ में अन होनी बातें भी हो जाती हैं। जो कभी नहीं पीते थे वह बोतल पर बोतल चढ़ा जाते हैं, जिन पर कोई रँग नहीं चढ़ता 'सूरदास के वे काले कम्बल' भी इन दिनों में रँगीले बन जाते हैं।

अपने राम, जो चाय के नाम से भी चिढ़ते हैं, या उसके धधकते प्याले को देखते ही धिक् धिक् कहने लगते हैं, कल उसके साढ़े सत्रह कप चप-चप कर चूस गये और फिर बन गये भँगी। झाड़ू देने वाले भँगी नहीं, किन्तु भँग-भवानी को गटर-गटर पीने वाले भंगी!

बस फिर क्या था? तीनों लोक की सैर बिना ही हवाई जहाज के अपने राम करने को चल पड़े। लड़ खड़ाते पैरों से उडनखटोला की पीठ पर लद गये।

* * *

पहिली मंजिल मुरादाबाद में हुई। 'अरुण' के आफिस में देखा—अनेकों—अखबार देवता बेपेंदी के लोटों में कलम-घोटों से रगड़े देकर विजयासव बना रहे हैं।

'तू पी, तू पी' 'जरा और पी' के बाद मजलिस जमीं। सभापति के आसन पर बिना प्रस्ताव और अनुमोदन के 'विश्वबन्धु जी' जा जमे। 'अरुण' ने खड़े होकर अपने लाल २ होठों से मुसकराते हुए कहना आरम्भ किया - "भाइयो, और भौजाइयो! आज होली के हुल्लड़ में और धूरेंडी के धमासे में एक तमाशा और होना चाहिए और वह यह कि अबोहर के इस देहाती भाई 'दीपक' की शादी का सादगीपूर्ण उत्सव समारोह से मना डलें।" लाहौरी 'सुधाकर' ने धोती से मुँह पोंछते हुए कहा—'मेरे जैसे आर्य समाजी के होते हुए पुरोहित ढूँढने की भी दिक्कत आप लोगों को न होगी और मैं समझता हूँ, मेरी चिरपरिचित सहेली 'शांति' से यह सम्बन्ध हो जाय तो हमारी खुशी दुचन्द हो जाय।'

'सुधाकर' अभी कुछ और भी कहना चाहता था कि नाक बजाती हुई 'शांति' उठ खड़ी हुई और कहने लगी—"महाशय! होश की दवा खाओ। संतति नियमन के लिए बर्थ-कन्ट्रोल का प्रचार करने

(पृष्ठ २७ का अवशेष)

उसमें से प्रेम की गुलाबी धाराएँ चारों ओर, बिना भेद-भाव के, वर्षा करती रहें। वे जिन पर पड़ें वे ही प्रेम में मस्त हो अपने को भूल जावें। सब में आप और आप में सब भासने लगें—

'कंकर, पत्थर, ठीकरी, भई आरसी मोय।'

का समा बन्ध हो जावे। ऐसी होली सदा खेला करो, वरना आपके बिना खेले भी, बिना जाने भी, आपके काले हृदय से सदा काली धाराएँ निकलती ही रहेंगी जो आपका और दूसरों का भी, मुँह काला ही करती रहेंगी। इससे बचो और प्रेम की होली खेलो।

वाली कहाँ में समझदार महिला और कहाँ केवल स्वास्थ्य, सफाई और रोटी-राग की आठों पहर धूम मचाने वाला यह 'दीपक' !"

बीच ही में 'आर्य' चिल्ला उठा – "मैं भी इस सम्बन्ध का विरोध करता हूं। 'शांति' भले ही अप-टू-डेट खातून नहीं है, कभी २ आर्य-समाज के मार्ग से भी भटक जाती है; फिर भी और कुछ नहीं तो नमस्ते के नाते तो समाजिन ही है। 'दीपक' का कौनसा मजहब है ? जब तक इस बात का पता नहीं चल जाए, 'शांति' से उसका विवाह हरगिज नहीं होना चाहिए।"

चुपचाप कौने में बैठे हुए 'ग्राम-सेवक' को अपने पड़ौसी 'दीपक' की शादी में इस प्रकार का विघ्न पड़ना बर्दाश्त नहीं हुआ और सिर को खुजलाते हुए बोल उठा--'दीपक' जैसे यति' के साथ 'शांति' शादी करने में सहमत नहीं होती है, यह उसका दुर्भाग्य ही है, भला जो शहर की गन्दगी से दूर, स्वामी केशवानन्द जी के गुरुकुल में पल रहा हो, तेगराम जी से चर्खा कातना सीखता हो और बन्सीधर जी से घुलाई, रगाई, मिठाई, सफाई और सचाई के पाठ पढ़ रहा हो, ऐसे आदर्श बच्चे के साथ .... "

'जनता' चिल्ला उठी,—'दीपक' मुझे तो बहुत दूर तक पसन्द है। कसर इतनी ही है कि वह पीड़ित-वर्ग के साथ हमदर्दी करते हुए भी कामरेड नहीं है, वरना मैं तो 'हँसिए हथौड़े' की साक्षी देकर आज ही उससे विवाह कर लेती। हां, 'नवशक्ति' और 'दीपक' का स्वभाव करीब २ एक जैसा है। यह बड़े घर की बेटी अगर 'दीपक' को पसन्द कर ले तो यह सम्बन्ध निहायत अच्छा रहे।"

'नवशक्ति' ने 'जनता' को जोर से नोंचते हुए कहा—'निगोड़ी ! देखती नहीं मेरे मुटापे और कद की ओर। 'दीपक' पर प्यार रखते हुए भी मैं इस ओर कदम नहीं बढ़ा सकती। हाँ, 'जागृति' से कहा जाय। पर वह तो अपने चिकने चुपड़े (आ) वर्ण पर नाज करती है।"

'माधुरी', 'सरस्वती' व 'सुधा' ने एक साथ कहा—"दीपक' ऋषियों के जमाने का जैसा 'बालक' है। उसमें बाजारूपन नहीं। न वह फैशन पसन्द करता है और न ऊपरी चमक-दमक। माना है वह ठोस ज्ञान का प्रचार करता है. जनता को सुरुचिपूर्ण सामग्री देता है किन्तु इस कलियुग की रङ्गीली खातून पत्रिकाएँ जो शृङ्गारिक कविताओं की रसिक हैं, अर्द्धनग्नता जिन्हें प्रिय है कुछ और ही चाहती हैं।"

इस चख-चख को बढ़ती देखकर सभापति 'विश्वबन्धु' ने यह फैसला किया—'दीपक' की शादी 'नव-ज्योति' के साथ होना निहायत मौजूं रहेगी, गो कि 'राजस्थान' के साथ हकतलफी होगी पर गुण, कर्म और स्वभाव के अनुसार यही सम्बन्ध ठीक रहेगा। 'दीपक' जहां भारतीय सौम्यता का प्रतीक है 'नव-ज्योति' उसका नूतन संस्करण है।

चारों ओर से आवाज आई—'खूब ! खूब !'

* * *

'दीपक' अब तक तो चुप था, किन्तु गृहस्थ के बोझ को सर पर आता देखकर ऐसे जोर से महफिल में से दौड़ा कि अपने राम के उड़नखटोले में भी एक ठोकर लगा गया, जिससे अपने राम की आंख खुल गई और देखा श्रीमती जी पूछ रही हैं 'अब तो भंग नहीं पिओगे ?'

* * *

'दीपक' के पाठकों को होली की 'हलचल' में गुजरा यह शुभ-सँवाद चैत के आखिर में सुनने को मिलेगा। इसके लिए वे मेरे जैसे भंगी लेखक से नाराज न हों क्योंकि न तो मैं वँश भूषण हूँ और न कुलभूषण ! मैं तो केवल भँगी हूँ, अजी भँग पीने वाला "भँगी" !

मोह जाल !

(ले० श्री स्वामी केशवानन्द जी)

मैं शामके ६ बजे 'सदन' के दरवाज़े के साथ ही दीवार के सहारे कुत्ते के एक बच्चे को बैठे देखा। उसकी माँ पास ही नाले में पाँव फैलाए पड़ी थी और साथ ही उसका भाई एक किनारे अनन्त निद्रा में सो रहा था। इन दोनों को ज़हर की गोलियां दे दी गई थीं। आध घन्टे बाद, वहाँ एक हरिजन स्त्री आई और उन दोनों के पाँवों में रस्सी डाल कर ले गई।

* * *

रात के एक बजे जब मैं लघुशँका के लिए द्वार खोलकर बाहर सड़क पार करने लगा तो बिजली के उस खम्भे की जड़ में मेरी दृष्टि पड़ी जो ठीक सड़क के मोड़ पर दोनों तरफ़ प्रकाश फैंकता है। देखता क्या हूँ कि वही कुत्ते का बच्चा दो पांव के बल पीठ टिकाये, बड़ी उत्सुकता से बिजली के प्रकाश में देख रहा है कि कब उसकी माँ व भाई आयें। प्रतीक्षा-इन्तज़ार की एकाग्रता में आज वह सोना, बैठना, बोलना सब भूला हुआ था। उनके मृत शरीर को उसके सामने ही घसीट कर ले जाया गया था किंतु वह अब भी बड़ी उत्सुकता से इन्तज़ार कर रहा था कि वे कब आयेंगे।

* * *

कलकत्ते जैसे बड़े शहरों में ग्वाले स्थान की तँगी व दूध की बचत के कारण गाय, भैंस आदि के बच्चों को मार देते हैं तथा उन बच्चों की खाल में भूसा भर कर, दूध दुहते समय गाय, भैंस के सामने रख देते हैं। बच्चे की ममता में अन्धी हुई माँ उस भूसा भरी खाल को ही अपना बच्चा समझकर दूध दे देती है। उसे कुछ पता नहीं कि बच्चा कभी का मर चुका है। इसी प्रकार बन्दरिया अपने मृत बच्चे को ६ मास तक पेट से चिपटाए रखती है।

* * *

स्त्री का नौजवान पति प्लेग से मर जाता है। दाह-क्रिया करने के लिये उसे श्मसान ले जाने की तैयारी होती है। युवा स्त्री किस आग्रह से उसे घर से बाहर ले जाने से रोकती है ? पति का शरीर प्राणरहित है किंतु फिर भी पत्नी उसे छोड़ना नहीं चाहती।

* * *

यही है मोह-जाल, अज्ञानता, मूढ़ता जिस में फँसकर प्राणी सँसार में अनेक कष्ट, यातनाएँ सहता है। मोह का आवरण हटा कि फिर सर्वत्र सुख ही सुख है।

दहेज-प्रथा

(लेखिका—सुश्री शकुन्तला वेहल, खानेवाल)

यद्यपि संसार के सभी देशों में सामाजिक कुरीतियां किसी न किसी रूप में प्रचलित हैं, किन्तु भारतवर्ष बुरी तरह से इनके चँगुल में फँसा हुआ है। बाल-विवाह, पर्दा-प्रथा, दहेज आदि कुरीतियां आज हमारे समाज की जड़ काट रही हैं। दहेज-प्रथा तो आज के इस युग में अत्यधिक घातक सिद्ध हो रही है। कौन ऐसा भाग्यवान भारतीय होगा जो इसके फन्दे से बचा हो? प्रत्येक व्यक्ति अपनी लड़की को शक्ति से अधिक दहेज देने का यत्न करता है क्योंकि ऐसा न करना वह अपनी बेइज़्ज़ती समझता है। अतः सामर्थ्य न होते हुए भी क़र्ज़ लेकर, जायदाद गिरवी रखकर, बढ़ चढ़ कर दहेज दिया जाता है।

लकीर का फ़क़ीर बनना इस साढ़े तीन हाथ के पुतले को खूब आता है। एक बार वह जिस लीक पर चल दिया उसे दम रहते न छोड़ेगा, चाहे उस पर चलकर उसे असीम हानि ही क्यों न उठानी पड़े। दहेज-प्रथा का भी इसी प्रकार भारतवासियों ने लकीर के फ़क़ीर बनकर अनुकरण किया। प्राचीन-काल में, जब भारतवासी धन-धान्य से भर-पूर घरों में रहकर आनन्दपूर्वक जीवन बिताते थे, खाने-पीने, पहनने-ओढ़ने की उन्हें मौज थी; तब वे अपनी बेटियों को, शादियों के अवसर पर दिल खोलकर दहेज देते थे। जिस लड़की ने जवानी तक अपने माता-पिता के घर को धन-सम्पन्न बनाने में उनकी हर प्रकार की सेवा-सहायता की, उसे अपने घर से बिछड़ते समय वे यथाशक्ति सहायता देना अपना कर्त्तव्य समझते थे। देशवासियों की ऐसी ही समुन्नत अवस्था में दहेज-प्रथा प्रचलित हुई। उस समय शादी में दहेज देने का न समाज की ओर से कोई नियम था, न वर पक्ष की ओर से ही किसी प्रकार का दबाव डाला जाता था।

किन्तु आज देश की परिस्थिति इसके बिलकुल विपरीत है। गुलामी में जकड़े, सब प्रकार से शोषित व निर्धन भारतवासियों के पास प्राचीन काल के समान वह धन-दौलत

तो दूर रही, उन्हें तो आज अपना व अपने बच्चों का पेट पालना भी कठिन हो रहा है। ऐसी हालत में दहेज का क्या अर्थ है ?

किन्तु जैसा कि मैंने पहले बताया कि मनुष्य लकीर का फ़कीर है, अतः दहेज के कारण तबाह होते रहने पर भी वह इससे छुटकारा पाने को तैयार नहीं है। तैयार भी कोई कैसे हो—जब बिना भारी दहेज लिए रिश्ता करने को कोई तैयार नहीं होता। आज कितने ऐसे हैं जो बिना अपने घर व जायदाद को नष्ट किये अपनी बेटी को इतना भारी दहेज दे सकें ? कोई उचित-अनुचित ढँग से धन-सँग्रह करके भले ही मुँह-माँगा दहेज दे सके अन्यथा सदियों से चूसे जाने वाले साधारण भारतीय की आज ऐसी दयनीय दशा है कि वह एक पैसा भी दहेजादि में देने में असमर्थ है। किन्तु वह विवश है, सामाजिक बन्धनों में बुरी तरह जकड़ा है। उन्हें तोड़ने की उसमें हिम्मत नहीं। फलतः दहेज की बलिवेदी पर आज हज़ारों कुल-ललनाओं के जीवन चढ़ रहे हैं, अनेकों घर तबाह हो रहे हैं।

अधिक दहेज देने से पिता सदैव के लिए आर्थिक कष्ट सहता है और कम दहेज देने पर अपनी दुलार से पाली बेटी पर आफ़तों का पहाड़ गिराता है। दहेज-लोलुप कम दहेज मिलने पर उस लड़की को नाना प्रकार के कष्ट देते हैं। उस बेचारी को जन्मभर अपनी सास के ताने, ससुर की झिड़कियां, देवर-जेठ व ननदों की, जली-कटी बातें तथा पतिदेव की धमकियां सहनी पड़ती हैं। इतना ही नहीं, कितनी ही लड़कियों को तो सौतिन का मुँह देखना पड़ता है तथा जीवन भर उसकी चाकरी करते हुए, रो-रोकर उमर पूरी करनी पड़ती है। गृह-लक्ष्मियों को यह असह्य कष्ट, नारकीय घोर यातनाएँ भोगनी पड़ती हैं—दहेज़-प्रथा की बदौलत।

उन्नति के इस युग में, जबकि पुरानी दकियानूसी विचार-धाराओं को परे फैंका जा रहा है, हानिकारक सामाजिक नियमों की धज्जियां उड़ाई जा रही हैं, क्या दहेज जैसी नाशकारी प्रथा उसी पुराने रूप में बनी रहेगी ?

यदि युवतियां, जिन्हें सबसे अधिक इस प्रथा का शिकार होकर अपना भावी जीवन नष्ट करना पड़ता है, इसे जड़मूल से उखाड़ने का दृढ़ निश्चय कर लें तो समाज की जड़ में लगा यह घुन शीघ्र ही दूर हो जाये। यदि प्रत्येक लड़की यह निश्चय करले कि दहेज चाहने वाले किसी भी व्यक्ति से शादी न करूँगी, तो बात की बात में यह समस्या हल हो सकती है।

हंस

*

(ले०—आचार्य गिजुभाई)

खेत हरी-हरी घासों से भरे पड़े थे। तितलियां और भौंरे इधर-उधर उड़ रहे थे। कभी चिड़ियाँ चहचाती थीं; कभी कोयल कुहुकने लगती थी।

गांव बहुत दूर था। सब अपने-अपने घरों में थे। खेत खाली पड़े थे। वहां कोई न था।

एक तरफ गाँव, दूसरी ओर समुद्र। बीच में था मजबूत बाँध—इतना मजबूत कि उस पर गाड़ियां मजे से चलती थीं। बाँध ज़रा-सा टूट जाय, तो बस, चारों ओर पानी-ही-पानी! एक प्राणी भी मुश्किल से बच सके।

"भाई हँस, देख तो सही, यह छोटा-सा छेद कैसा? यहां तो बुदबुद की आवाज़ आती है।"

"छेद कहां है? बता, देखूं।"

"यह रहा, जरा-जरा-सा पानी निकलता है।"

"हाय-हाय! यह तो बांध में छेद हो गया!"

हँस ने चारों तरफ़ देखा, दूर-दूर नजर दौड़ाई; कोई भी न मिला!

छेद की तरफ़ देखा; पानी की बूँदें बराबर गिर रही थीं।

फिर चारों तरफ आंखें घुमाईं; कोई नहीं!

छेद की तरफ देखा; कुछ बड़ा हो गया था—धीरे-धीरे पानी गिर रहा था!

गांव में जाकर खबर दें तो? तब तक तो छेद बड़ा हो जाय, फिर किसी तरह बन्द नहीं हो सकता, पल-भर में समुद्र उमड पड़े; और सारा गांव जलमय हो जाय! तब?

हँस ने फिर चारों तरफ देखा; छेद की तरफ देखा; ऊपर देखा; नीचे देखा; और मन में विचारने लगा।

"भाई जा, दौड़-दौड़, ग़ज़ब हो जायगा, जाकर पिताजी से कहना—बांध में एक छेद हो गया है। खबरदार—कहीं रास्ते में ठहरा तो! कहना, हँस छेद में अँगुली डाले खड़ा है। प्राण भले ही निकल जायँ, अँगुली नहीं निकलेगी।"

छोटा भाई दौड़ा, जैसे हवाई-जहाज! वह गया, वह गया! कहाँ-का-कहां निकल

गया। वह लो आंखों से ओझल हो गया।

समुद्र गरज रहा था—प्रलय से बातें कर रहा था, फिर नजदीक-नजदीक आ रहा था।

हँस ने सोचा—अँगुली टूट जाय तो क्या? बाहर निकाल लूँ तो बस, पल-भर में सारा गांव बह जायगा।

अँगुली सून्न हो गई। हाथ फटने लगा।

हँस ने हाथ को दूसरे हाथ से घिसा, पर इससे क्या होता? हाथ तो निकम्मा हो गया था!

हँस ने चारों तरफ देखा—आता है कोई माई का लाल? आता है कोई आदमी?

हाय! निराशा!!

हाथ टूक-टूक हो रहा था। पहूँचा जैसे बर्फ हो गया था। पल-भर में तो कुहनी भी बर्फ! ऐसी भयँकर पीड़ा हो रही थी कि पूछो मत!

मगर हँस अँगुली कैसे निकालता? डाल दी सो डाल दी। इतने में तो कन्धे और पीठ में वेदना शुरू हो गई।

हँस ने चारों ओर आंखें फेरीं—कोई नहीं अरे, इतनी देर!

दर्द इतना सख्त था जो सहा न जाता।

हँस ने बाँध पर माथा टेक दिया। कान बांध से छू गए।

समुद्र की भीषण गर्जना सुन पड़ी—"लड़के! समझ जा, अँगुली निकाल ले। जानता नहीं, मैं कौन हूं—मेरा सामना करने वाला तू कौन?"

हँस का हृदय कांप उठा—अरे, अब तक नहीं!

मानों समुद्र की गर्जना फिर सुनाई दी—"भाग जा, भाग जा, तेरी मौत आई है। लड़के! तेरी मौत आ गई, खड़ा रह, ले आया।"

हँस के हृदय में हिम्मत न रही। अँगुली निकाल लूँ? भाग जाऊँ? छुटकारा पाऊँ?

फिर उसने विचार किया—"नहीं-नहीं, ऐसा कभी न होगा। अँगुली तो क्या, प्राण भी चले जायँ, तोभी परवाह नहीं। चल, आ जा, हँस अटल है। जो कुछ करना हो कर ले।"

हँस ने दांत पीसे। अँगुली छेद में ज़ोर से दबा दी।

वहां.........वे आदमी दीख पड़े! वे नजदीक आ पहुँचे, यह आ गए!

शाबाश हँस, शाबाश हँस चिन्ता नहीं, आ पहुँचे हैं।

फावड़े और कुदालियां लेकर सब पिल पड़े। एक मिनट में छेद बन्द हो गया!

हँस का जलूस निकला। चारों तरफ से उत्साह-भरे गांव के लोग, और बीचों बीच था वीर बालक हँस। एक बलिष्ठ आदमी के कन्धे पर बैठा था। सब का प्यारा हँस! लोग कह रहे थे—"शाबाश हँस, शाबाश हँस!"

भारतमाता और काँगरेस

मां जैसी है कौन प्यारी ।
जन्मभूमि जो भूमि हमारी ॥
अहा! उसे हम इतना चाहें ।
स्वर्ग न लें बदले जो पायें ॥
उसकी सेवा कर नहिं थकते ।
उसे दुःखी हम देख न सकते ॥
उसके हित भूखे रह सकते ।
उसके हित सब कुछ सह सकते ॥
उसके हित निज खून बहा दूँ ।
उसके हित निज शीश कटा दूँ ॥
उसका सुख ही खाना पीना ।
उसका सुख ही खुश हो जीना ॥
उसकी खातिर आग चबालें ।
उसकी खातिर विष भी खालें ।
शान न जाए आफत आए ।
तन धज्जी धज्जी हो जाए ॥
हम उठने तब वह ही उठती ।
हम लुटते तब वह ही लुटती ॥
अगर हिन्द पहले हम हिन्दी ।
पीछे हिन्दू मुस्लिम सिन्धी ॥
मूरख है जो तुझको भूला ।
ज्ञानी वह जो तुझ पर फूला ।

तू रानी हम राजे बेटे ।
नहीं किसी से हम फिर हेटे ॥
समझ गया क्या व्रत धारेंगे ।
यही, जान तुझ पर वारेंगे ॥
समझ गया क्या अहद करेंगे ।
यही, हटेंगे नहीं, मरेंगे ॥
समझ गया क्या अपना बाना ।
जग स्वतन्त्र करना करवाना ॥
समझ गया क्या अपना मजहब ।
भाई भाई हैं हिन्दी सब ॥
समझ गया क्या अपना कहना ।
प्रेम प्यार से मिलकर रहना ॥
है हममें किन की दिलशादी ।
जिसमें हो भारत आजादी ॥
आजादी की फतह पुकारो ।
जय स्वतन्त्रते! नारा मारो ॥
जन्म भूमि जननी की जय हो ।
जय हो जय हो और विजय हो ॥
फड़को खूब तिरंगे झण्डे !
बढ़े चलो पर ठँडे ठँडे ॥
कोई कभी न हिम्मत हारा ।
सच का जिसने लिया सहारा ॥

जय जय जय जय खूब पुकारो ।
जय हो जय हो नारा मारो ॥

("हिन्दुस्तान")

ज़रा हँस लें !

एक आदमी के पास पालतू बन्दर था। वह व्यक्ति पेटदर्द से बेतरह कष्ट पा रहा था। अनेक प्रकार के उपचार करने पर भी उसका रोग दूर नहीं हो सका। उसके लिए डाक्टर की ओर से दी गई औषधि टेबल पर रखी रहती थी। उस पर उस बन्दर की दृष्टि गई और उसने टेबल के पास जाकर जिस प्रकार मालिक नित्य दवाई पीता था, उसी तरह उसने भी एक कप (प्याले) में सारी दवाई उडेल ली और एकदम उसे पी गया। उस कड़वी और बेस्वाद दवाई से जो जी घबराया तो बन्दर तरह-तरह से उछल-कूद मचाकर मुँह बिगाड़ने लगा और ज़मीन पर लोटने लगा। उसकी यह दशा देखकर मालिक रोगी को हँसी आ गई। थोड़ी देर में वह इतने ज़ोरों से हँसने लगा कि हँसते २ लोट-पोट हो गया। इसका परिणाम यह हुआ कि उसे (मालिक) को जो अनेक वर्षों का पेटदर्द था वह बिलकुल नष्ट हो गया।

❋

साइँसदान—साइँस बहुत उन्नति कर रही है। बहुत जल्दी,ऐसी गोलियाँ बन जाएँगी कि जिनमें से एक को खाने से भूख मिट जाएगी।

विद्यार्थी—मगर यह तो बताइए उस वक्त पेट क्या करेंगे ?

❋

मैजिस्ट्रेट—मैं पहले एक दफा तुमको सरकार की लकड़ी काटने के जुर्म में माफ कर चुका हूँ। उस वक्त तुमने वादा किया था कि मैं फिर कोई कसूर न करूँगा।

मुलज़िम—जी हजूर।

मैजिस्ट्रेट—फिर तुमने अपनी औरत को इतना क्यों मारा।

मुलज़िम—हजूर, यह मुझे अब तक मालूम न था कि वह भी सरकार की है।

❋

चोर—(मैजिस्ट्रेट से) लेकिन आप हमारी एक बात की तारीफ नहीं करते।

मैजिस्ट्रेट—किस बात की ?

चोर—क्या यूरोप और क्या हिन्दुस्तान, सभी देशों के मज़दूर हड़ताल करते रहते हैं। लेकिन कभी हमारी निस्बत भी यह शिकायत सुनी कि हमने काम बन्द कर दिया हो।

❋

बब्बू—चाचा ! मुझे एक ढोल ला दो, मैं इसे बजा बजाकर खेलूंगा।

पिता—नहीं बेटा ! मुझे डर है कि तुम इसे मेरे कानों के पास बजा बजाकर मुझे हैरान करोगे।

बब्बू—नहीं चाचा ! मैं ऐसा नहीं करूँगा। मैं इसे उस वक्त बजाया करूँगा जब आप सो जाया करेंगे।

क्या आप जानते हैं ?

ढाई करोड़ मोटर—अमेरिका की फोर्ड मोटर कम्पनी ने अब तक ढाई करोड़ मोटरें तैयार की हैं।

भारत में पशु—ब्रिटिश भारत में गाय, बैल और भैंसों की तादाद १५ करोड़ ९९ लाख ३५ हज़ार है और भेड़ बकरियों की ६ करोड़ ११ लाख ५७ हज़ार है। घोड़ों, खच्चरों और गधों, ऊँटों वगैरा की ३८ लाख १ हज़ार है।

१५ पौंड के चूहे—ब्रिटेन में आजकल ऐसे चूहों की नसल बहुत बढ़ती जा रही है जिनका वज़न १५ पौंड है।

उम्र भर स्त्री नहीं देखी—पैरिस के एक पादरी के सम्बन्ध में, जो ८० साल की उम्र में मरा है; कहा जाता है कि उसने उम्र भर में किसी औरत को नहीं देखा। उसकी मां उसकी पैदाइश के दिन ही मर गई थी। उसे एक पादरी उठाकर ले गया था। उसने उसको इस ढँग से रखा कि उसे कभी औरत देखने का मौका ही न मिले।

सबसे मूल्यवान स्टाम्प—संसार का सबसे मूल्यवान स्टाम्प वह है, जो गाइना में सन १८५६ में चला था। वैसा एक स्टाम्प मि० अर्नेस्ट सी० जार्विस के पास है, जिसके लिए १९२५ में लन्दन में उसे लगभग एक लाख रुपये दिए जा रहे थे।

सबसे गहरा कुआं—हाल में केलिफोर्निया में एक कुआँ खोदा गया है, जिसकी गहराई ३ मील है। इससे अधिक गहरा कुआँ दुनिया में और कोई नहीं है।

बूढ़ों का स्कूल—अमेरिका में एक स्कूल खोला गया है जिसमें सिर्फ बूढ़ों को ही पढ़ाया जाता है। ७० साल से कम उम्र वाले तो किसी भी हालत में भर्ती नहीं किये जाते। इस समय इस स्कूल की सबसे बड़ी छात्रा हैं श्रीमती ग्रीन, जिनकी अवस्था २०१ वर्ष की है।

बोलने वाला अखबार—न्यूयार्क में मिस्टर फिन्स ने ४० अन्वेषणों के बाद बोलने वाला अखबार बनाने में सफलता पाई है। अखबार के हाशिए पर एक स्लिप लगी रहती है। आप उसे फाड़कर मशीन पर लगाइए, अखबार में छपी सभी खबरें आपको सुनाई देंगी। इसका इस्तैमाल बच्चे भी कर सकते हैं। इसकी कीमत केवल १ शिलिंग है। मशीन की लम्बाई ९ इँच और चौड़ाई ५ इंच है।

सबसे मोटी स्त्री—अमेरिका में मेरीलैंड में एक स्त्री थी। उसकी बनावट तो विचित्र थी ही, वजन में वह सवा दस मन की थी।

—०—

फुलवाड़ी

मज़हब और संसार

आज संसार में क्या हो रहा है ? ईसाइयों का ईश्वर अलग है, हिंदुओं का ईश्वर पृथक्, मुसलमानों का खुदा भिन्न है और प्रत्येक सम्प्रदाय का मत भिन्न है। संसार में यह मत रोगों की तरह लोगों में भेदभाव बढ़ाते हुए फैलते जारहे हैं। कुछ लोगों ने इन मतों को अपने स्वार्थ का साधन बना लिया है। आप एक मत के अनन्तर दूसरे का आश्रय लेते हैं और प्रत्येक का रसास्वाद ग्रहण करते हैं, क्योंकि आपने विवेक को त्याग दिया है। कारण, आप दुःख से पीड़ित हैं और अपना उद्धार चाहते हैं। ईसाई, हिंदू अथवा और कोई धर्म जो अपने मत का प्रचार करता है, उसी को मानने लगते हैं। इसका फल क्या होरहा है ? धर्म मनुष्य जाति में भेद उत्पन्न कर रहा है। ईश्वर के नाम पर लोग अनेक मत फैला कर मानव जाति को अनेक सम्प्रदायों में विभक्त कर रहे हैं और फिर भी आप लोग मनुष्य-जाति में वात्सल्य का नाम लेते हैं—ईश्वर की एकता सिद्ध करते हैं और तत्काल ही जिस वस्तु को आप खोजते हैं उसी का निषेध करते हैं। क्योंकि जिन मतों को आप लोग भेदभाव को दूर करने का साधन समझ कर मानते हैं, वे ही मनुष्य जाति के अङ्गों में उस भेदभाव को और भी दृढ़ कर देते हैं।

—जे० कृष्ण मूर्ति

कलयुगी कोष

शराब—बीसवीं सदी का अमृत।

सिग्रेट—सभ्यता का सबसे बड़ा चिन्ह।

चश्मा—बीसवीं सदी का सब से अच्छा जेवर।

टोप—जिसे पहन कर आदमी महाप्रभु बन जाते हैं।

चाय—जिसके पीने से भूख न लगे।

तम्बाकू—जिसे खाकर दाँत अमर कर दिए जाते हैं।

कुत्ता—सब से श्रेष्ठ जानवर।

देवी—जिसे खुश करने के लिए बकरों का बलिदान दिया जाता है।

मिल-मशीन—जिसमें हजारों आदमियों का काम दस ही आदमी करलें।

साइंस—मानव जाति को तबाह करने का इल्म।

बैंक—दौलत का गोदाम।

संस्कृत के पण्डित—सतियुग के आदमी।

भक्त—जो दिनभर माला सरकाता रहे।

पड़ौसी—जिसका धुआँ अपने घर में आए।

निमन्त्रण—जिसे पाकर ब्राह्मण जुलाब लेते हैं।

सञ्जीदा आदमी—जो हरदम मुहर्रमी शक्ल बनाए बैठा रहे।

जोरावर—जो वाद-विवाद में हारकर लड़ने के लिए तैयार हो जावे।

चूना—जिसे पान में सब शौक से खाते हैं।

(क्रान्ति—उर्दू)

भारत की देवी से !

आह! भारत की देवी।
कब तक अन्याय को सहती रहेगी?
कब तक स्वाभिमान को कुचलवाती रहेगी?
कब तक जीवन की मुश्किलों को हल न करेगी?
कब तक जीवन की पूरी २ साथिन न बनेगी?
कब तक अपने अधिकारों के लिए खड़ी न होवेगी?
कब तक मेहनत के मैदान में न उतरेगी?
कब तक सन्तान को सुशिक्षित न बनावेगी?

कब तक अपने साथी का बोझ बनी रहेगी ?
कब तक अपने पैरों पर खड़ी न होवेगी ?
कब तक शृंगारी गुड़िया बनकर कामों से जी चुरायेगी ?
कब तक हाथ से काम करने से नफरत करेगी ?
आह ! भारत की देवी !
तेरे अन्दर सचाई का स्रोत है।
तेरे अन्दर दृढ़ता का भण्डार है।
तेरे अन्दर धीरज का दरिया है।
तेरे अन्दर शक्ति का सँचार है।
तेरे अन्दर सहन शीलता का गुण है।
पर तुझे मान नहीं—अपनी शक्ति का,
तुझे विश्वास नहीं अपनी दिलेरी पर
मान कर, आपा पहिचान !
कुछ बन कर दिखा।

[नवीं दुनियां—गुरुमुखी]

चर्खा बनाम मिल

५० करोड़ के मील द्वारा बनें कपड़े को जितना कपास लगता है उसकी १०० करोड़ की खादी होगी, और इसमें ७० करोड़ मजदूर पलेंगे।

४० करोड़ पूँजी लगाकर मिलें जितना कपड़ा तैयार करती हैं, उतनी ही खादी बनाने के लिए सिर्फ ५ करोड़ पूँजी लगेगी।

बम्बई और अहमदाबाद की मिलों में ५० करोड़ से अधिक पूँजी लगी है। पर काम १७१००० को ही मिलता है; लेकिन २१ लाख की पूँजी से चरखा सँघ १५०००० लोगों को रोटी देता है।

भारत में ३०० मिलें हैं। इनमें ३९ करोड़ ८२ लाख रुपया लगा है और काम ४ लाख १७ हजार मजदूरों को मिलता है। किंतु खादी में २७ लाख की पूँजी पर २ लाख मजदूरों को रोटी मिलती है।

मिल मजदूरों को कमाई का २० प्रतिशत मिलता है किंतु खादी में मजदूरों को ७०प्रतिशत मिलता है।

(कर्मवीर)

भोजन बिन भजन कैसा ?

तीस करोड़ में से करोड़ों लोग बेकारी के कारण उत्तरोत्तर अधिकाधिक पतित हो रहे हैं, उनकी आत्म-मर्यादा नष्ट हो चुकी है, और उनमें ईश्वर के प्रति कोई श्रद्धा नहीं रह गई। कल्पना कीजिए यह कैसा भयानक सँकट है। उन्हें ईश्वर का सन्देश सुनाने की हिम्मत मैं नहीं कर सकता। सामने यह जो कुत्ता बैठा है उसे ईश्वर का सन्देश सुनाना और जिनकी आंखों में रोशनी नहीं, रोटी का एक टुकड़ा ही जिनका देवता है, उन्हें ईश्वर का सन्देश सुनाना एक ही सा है। मैं पवित्र परिश्रम का पैगाम लेकर ही उन्हें ईश्वर का सन्देश सुनाने जा सकता हूं। सवेरे मजेदार कलेवा करके सुग्रास भोजन की प्रतीक्षा में बैठे हुये हम जैसे लोगों के लिए ईश्वर के विषय में वार्ता-विलास करना आसान है, लेकिन जिन्हें दोनों समय भूखे रहना पड़ता है उनसे मैं ईश्वर की चर्चा कैसे करूँ ? उनके सामने तो परमात्मा केवल दालरोटी के रूप में प्रकट हो सकते हैं।

— गांधीजी

गहरा साँस

१ - श्वास-प्रश्वास नाक से लो मुँह से नहीं।
२—सीधा खड़ा होकर अथवा बैठकर हवा धीरे-धीरे अन्दर ले जाओ।
३—हवा अन्दर ले जाते समय पेट अन्दर ले जाओ तथा छाती को फुलाओ।
४—कुछ सेकिण्ड हवा अन्दर रक्खो।
५—फिर धीरे-धीरे बाहर निकालो।
६—हवा अन्दर लेते अथवा निकालते समय जोर न लगाओ, धीरे-धीरे ले जाओ व निकालो।
७—दिन में किसी भी समय दीर्घ-श्वास लेने का अभ्यास किया जावे तो कोई हर्ज नहीं, किन्तु शुद्ध व खुली हवा में दीर्घश्वास लेने का अभ्यास करो।

(किशोर—गुजराती)

—०—
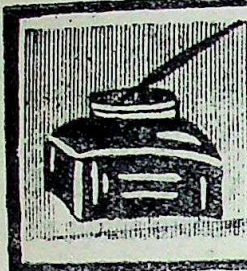
परीक्षा-ज्वर—

डाक्टरों और विशेषज्ञों का यह निश्चित मत है कि मलेरिया-ज्वर अत्यन्त भयानक होता है। यह मरीज़ को दुर्बल और पागल-सा बना देता है। न रात को चैन मिलता है और न दिन को आराम। लेकिन हमारे देश में आजकल एक इससे भी भयंकर ज्वर का दौर दौरा है। यह ज्वर है परीक्षा-ज्वर। इस परीक्षा-ज्वर ने हमारे देश के होनहार युवकों का बुरी तरह कचूमर निकाल रखा है। मलेरिया-ज्वर तो साधारणतया बरसात में ही अपना आक्रमण करता है, लेकिन परीक्षा-ज्वर का तो कोई ठिकाना ही नहीं। कहीं-कहीं तो यह ज्वर किसी न किसी रूप में रोज़ाना ही अपना वार करता है। परीक्षा-ज्वर का सबसे ज़बरदस्त हमला फरवरी से लेकर मई के अन्त तक रहता है। इस मौसम में यह ज्वर खूब फलता-फूलता है। इन दिनों में इस ज्वर के मरीज़ों—बेचारे विद्यार्थियों को दिन-रात ज़रा भी होश नहीं रहता। वे इस बुरी तरह से इस ज्वर के चंगुल में फँस जाते हैं कि खेलना-कूदना, हँसना बोलना, नहाना-धोना, खाना पीना, सिनेमा-थियेटर देखना तक भी भूल जाते हैं। रात को भी परीक्षा के ही स्वप्न आते रहते हैं। इन दिनों में आप कहीं चले जाइए—बागों में, खेतों में, नहर या नदी के किनारे या रेल की पटरी पर—आपको ये परीक्षा-ज्वर से पीड़ित मरीज़ हाथ में कोई किताब या कापी लिए कुछ न कुछ रटते हुए मिलेंगे। उन्हें इस बात की परवा नहीं होती कि जो कुछ भी वे रटते हैं उसे समझते हैं या नहीं। जैसे मलेरिया का मरीज़ आंख मींचकर कुनीन की कड़वी गोली गले के नीचे उतार लेता है, उसी तरह परीक्षा के रोगी पुस्तकों में लिखी हुई बातों को—खासकर उन बातों को जिनके इम्तिहान में पूछे जाने की अधिक सम्भावना हो—निगलने की कोशिश करते हैं ताकि परीक्षा के समय उन्हें जल्दी से जल्दी अपनी कापियों पर उगल आवें। यह है हमारी प्रचलित शिक्षा-प्रणाली का घातक और सत्यानाशी रूप! यह प्रणाली सर से पाँव तक परीक्षा-प्रधान है। प्रथम कक्षा से लेकर एम० ए० तक परीक्षाओं की भरमार है। क्या संस्था, क्या माता-पिता, क्या शिक्षक और क्या विद्यार्थी—सबका एक ही अटल ध्येय है—किसी न किसी तरह छल-प्रपञ्च रचकर—परीक्षकों की आँखों में धूल डालकर—घूंस तक देकर भी—परीक्षा में सफलता प्राप्त करना। मानों परीक्षा पास करने से ही जीवन-मुक्ति हो जाएगी।

इस परीक्षा-ज्वर ने युवकों का इतना शारीरिक, मानसिक और नैतिक पतन कर दिया है कि उसके विचार-मात्र से ही कंपकपी चढ़ जाती है और रोना आता है। मलेरिया-ज्वर का मारा हुआ व्यक्ति तो कभी न कभी काम करने के काबिल हो सकता है, लेकिन परीक्षा-ज्वर का सताया हुआ युवक किसी भी काम का नहीं रहता। उसका भविष्य अन्धकारमय हो जाता है और जीवन नीरस और उत्साह-हीन। हाँ, परीक्षा-ज्वर के प्रकोप के कारण मुसीबत के मारे गरीब अध्यापकों को कुछ फायदा ज़रूर हो जाता है। वे ट्यूशन करके इन दिनों में कुछ रुपया कमा लेते हैं। जैसे मलेरिया के दिनों में डाक्टरों और वैद्यों की दुकानों पर भीड़ लगी रहती है, उसी प्रकार परीक्षा-ज्वर के दिनों में अध्यापकों को भी परीक्षा के इन मरीज़ों को दवा देते-देते फुरसत नहीं होती। उन दिनों में स्कूल में भी डोज़ दिया जाता है और घर पर भी। दवाई पीते २ बेचारे युवक ऊब जाते हैं। यदि हम अपने युवकों—भावी देश-निर्माताओं को—महज़ किताबी कीड़े नहीं, मिट्टी के बोलते हुए पुतले नहीं, बल्कि सच्चे

निर्भीक और स्वस्थ नागरिक देखना चाहते हैं तो उन्हें इस परीक्षा ज्वर के चँगुल से छुड़ाना होगा। मलेरिया-ज्वर को मिटाने के लिए सरकार कुछ तो दौड़-धूप करती है, विलायत से विशेषज्ञ भी बुलाती है। लेकिन खेद और दुःख के साथ कहना पड़ता है कि परीक्षा-ज्वर से बुरी तरह पीड़ित देश के इन बालकों के लिए कुछ नहीं किया जाता। क्या यह अन्धेर नहीं है? ✓

रोमन लिपि—

हमें आश्चर्य के साथ दुःख भी हुआ जब हमने यह पढ़ा कि आसाम की काँग्रेसी सरकार ने पहाड़ी जातियों को शिक्षा देने के लिए रोमनलिपि को अपनाया है। रोमनलिपि भारतवर्ष में किसी भी दृष्टि से सर्वमान्य नहीं हो सकती। क्योंकि यह न तो राष्ट्रीय ही है और न वैज्ञानिक ही। इसके मुकाबले में देवनागरी लिपि सर्व गुण सम्पन्न है। यह सर्वांगपूर्ण, वैज्ञानिक, सरल और सुबोध है। इसमें ध्वनि को शुद्ध और सही-सही उच्चारण करने की क्षमता है। यही एक लिपि है जिसमें जो कुछ लिखा जाता है वही पढ़ा जाता है। लेकिन रोमनलिपि में लिखा कुछ जाता है तथा पढ़ा कुछ जाता है। इस प्रकार संसार की कोई लिपि देवनागरी लिपि का मुकाबला नहीं कर सकती। जिन देशों ने रोमनलिपि को अपनाया है उनकी लिपि रोमन लिपि से भी अधिक दोष-युक्त थी। इसलिए उन्होंने इसे अपनाया। लेकिन देवनागरी-लिपि के सम्बन्ध में यह नहीं कहा जा सकता जैसा कि हम ऊपर बतला चुके हैं। रोमनलिपि में छापने और टाइप करने की सुविधा के सिवाए और कोई गुण नहीं है। इस साधारण गुण के लिए लाखों करोड़ों मनुष्यों पर इस लिपि का थोपना अवाँछनीय तथा अन्यायपूर्ण ही नहीं बल्कि अविवेकपूर्ण भी है। जनता देवनागरी-लिपि को बड़ी आसानी और खुशी से सीख सकती है। इसके विपरीत रोमनलिपि को सीखने में उसे बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ेगा। यह बात भी हमें नहीं भुला देनी चाहिए कि भारतवासियों के लिए देवनागरी लिपि सीखना इसलिए भी ज़रूरी है कि उनके धर्म-ग्रन्थ इसी लिपि में या इससे मिलती-जुलती लिपि में लिखे गए हैं। उर्दू को छोड़कर सब प्राँतों की लिपियाँ किसी न किसी रूप में देवनागरी से ही मेल खाती हैं। ऐसी हालत में भारतीय जनता का तो देवनागरी लिपि के बिना गुज़ारा ही नहीं हो सकता। हाँ, यह ठीक है कि जब तक हमारे मुसलमान भाई देवनागरी लिपि को नहीं अपनाते तब तक वहाँ अरबी-लिपि का प्रचलन रहेगा। लेकिन इसमें ज़रा भी शक नहीं कि साम्प्रदायिकता के दूर होते ही मुसलमान भाई भी राष्ट्रभाषा सीखने के लिए देवनागरी लिपि को ही पसन्द करेंगे। अतः किसी भी दृष्टि से रोमनलिपि का समर्थन नहीं किया जा सकता।

यू० पी० में वेतन-कर—

सदियों से पीड़ित और शोषित किसान तथा ८-८, १०-१० रुपया मासिक वेतन पाने वाले गरीब चपरासियों और अरदलियों को राहत पहुँचाने के लिए युक्तप्रांत की काँगरेसी सरकार ने असेम्बली में एक बिल पेश किया है जिसके पास हो जाने पर २००) मासिक से अधिक वेतन पाने वाले मुलाज़िमों की तनख्वाह पर कर लगाया जाएगा। गरीबों की गाढ़ी कमाई पर गुलछर्रे उड़ाने वाले, विलासितापूर्ण जीवन बिताने वाले खुदगर्ज़ लोग बड़े ज़ोरशोर से इस बिल का विरोध कर रहे हैं। मानो, उन पर आफत का पहाड़ ही टूट पड़ा हो। स्वार्थ ने उन्हें इतना अन्धा कर दिया है कि जब कभी गरीबों की भलाई का कोई सवाल आता है तो वे बौखला जाते हैं। वे नहीं सोचते कि १०-१२ रुपया मासिक पाने वाला मुलाज़िम किस तरह अपना और अपने बाल-बच्चों का पेट पाल सकता है। स्वार्थी लोगों को समझ लेना चाहिये कि उनकी चीख-पुकार अब नहीं सुनी जाएगी। अब यह नहीं हो सकता कि एक तरफ तो हजारों रुपया वेतन पाने वाले मौज करते रहें और दूसरी तरफ रात-दिन खून-पसीना बहाने वाले भूखे और नंगे रहें। ज़माना बदल गया है, अब इस असमानता का सहन नहीं किया जा सकता। अबतो गरीबी और अमीरी के भेद भाव को मिटाना ही होगा। विरोधियों को जवाब देते हुये पं० पन्त जी ने बिलकुल ठीक कहा कि 'अब तक टैक्स

उन लोगों से वसूल किया जाता रहा है जो गरीब हैं और जिन से धन लेकर सरकार उनका नहीं बल्कि अमीरों की विलासता और आराम के साधन जुटाती थी। पर कांग्रेसी सरकार ऐसा गुनाह नहीं कर सकती। अब कर उनसे लिया जाएगा जो आसानी से दे सकते हैं और उनका हित किया जाएगा जो दिनोंदिन तबाह और बर्बाद होते जा रहे हैं। हम यू० पी० सरकार को इस सहायता के लिए हार्दिक बधाई देते हैं।

काँग्रेस में डेडलाक—

लोगों का ख्याल था कि राष्ट्रपति के चुनाव के बाद काँग्रेस में जो डेडलॉक – गति-अविरोध पैदा हो गया था, वह त्रिपुरी अधिवेशन में दूर हो जाएगा और कोई ऐसा मार्ग निकल आवेगा कि जिससे वामपक्षी और दक्षिण-पक्षी दोनों साथ मिलकर काम कर सकेंगे। लेकिन घटनाओं से ऐसा लगता है कि त्रिपुरी काँग्रेस के बाद मामला सुलझने के बजाए और भी पेचीदा हो गया है। सुभाष-बाबू के हाल ही में दिए गए वक्तव्य से यह स्पष्ट हो जाता है कि वे पंडित पंत के प्रस्ताव को, जिसमें राष्ट्रपति से महात्मागाँधी की इच्छानुसार वर्किंग कमेटी बनाने की प्रार्थना की गई है, अवैध्य समझते हैं। उनके समर्थकों ने भी इस प्रस्ताव के खिलाफ ज़ोरों से जहाद शुरू कर दिया है। खरे और नरिमानों ने भी अपने अस्त्र-शस्त्र सँभाल लिए हैं ताकि पड़े २ वे कहीं जँग-आलूदा न हो जाएँ। श्री एम० एन० राय ने भी उग्रवादियों को सँगठित करने का ऐलान कर दिया है। समाजवादियों का पारा भी एक दम चढ़ गया है। वे इस भ्रम में पड़ गए हैं कि उनकी पार्टी के नेताओं ने काँग्रेस को गाँधी बाबा की झोली में डालकर अपने सिद्धान्तों की हत्या की है। गांधी भक्त भी अपनी उधेड़ बुन में लगे हुए हैं। उधर सुभाष बाबू और उनके पुराने साथियों के दिल इतने फट चुके है—चाहे वे मानें या न मानें—कि उनका वर्तमान विकट परिस्थिति में साथ मिलकर काम करना असम्भव सा हो गया है। कहने का मतलब यह कि सभी काँग्रेसी दिग्गज पहलवान लँगर-लँगोटे कसकर अखाड़े में आ डटे हैं—ब्रिटिश साम्राज्यशाही से सँयुक्त मोर्चा लेने के लिए नहीं बल्कि अपने-अपने दल का प्रभुत्व स्थापित करने के लिए। इस गुत्थी को सुलझाने का—इस 'मुर्दा ताले' को खोलने का – अब तो यही एक मात्र उपाय नजर आता है कि महात्मागाँधी सुभाष बाबू को अपनी इच्छानुसार अपनी कैबिनेट बनाने और काँग्रेस को उग्रनीति के अनुसार चलने के लिए खुला छोड़ दें जैसा कि वे अपने एक वक्तव्य में कह भी चुके हैं। बाद में अगर यह महसूस हो कि इससे काँग्रेस का काम चौपट हो रहा है, देश को हानि पहुँच रही है, तो फिर सुभाष बाबू को त्यागपत्र देने या नयी कैबिनेट बनाने के लिए विवश किया जा सकता है क्योंकि कांग्रेस में अब भी गांधीवादियों का स्पष्ट बहुमत है। यह बात नहीं भूल जानी चाहिए कि झूठा समझौता करने या लीपा-पोती करने से डेडलाक खत्म न होगा।

अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति—

अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति ने एक बार फिर विकराल रूप धारण कर लिया है। युद्ध के बादल अब फिर मंडराने लगे हैं। हिटलर ने बात की बात में, बिना शोर-गुल मचाए या खून का एक कतरा बहाये जैकोस्लोवेकिया को हड़प लिया और मेमल पर भी अपना कब्जा जमा लिया। इतना ही नहीं हिटलर ने रूमानिया के साथ आर्थिक सन्धि करके अपनी पोज़ीशन को अनुकूल बना लिया है। हिटलर ने ब्रिटेन और फ्राँस की कमज़ोरी को खूब अच्छी तरह समझ लिया है। अतः वह दिनोंदिन बेधड़क होकर आगे बढ़ता जा रहा है। अगर यही रफ़्तार जारी रही तो कोई ताज्जुब नहीं कि वह फ्रांस और इंगलैंड को भी कुचलने की तैयारी करे और समस्त यूरोप पर स्वस्तिका झण्डा फहराकर ही दम ले। एक समय था जबकि समस्त यूरोप में ब्रिटेन की तूती बोल रही थी। लेकिन आज उसे कोई नहीं पूछता। आज तो हिटलर और मुसोलिनी का बोल बाला है। मुसोलिनी ने तो यहाँ तक कह दिया है कि अगर यूरोप के राष्ट्रों ने हमारे खिलाफ गुट-बन्दी की तो हम डटकर इसका मुकाबला करेंगे। इससे पता चलता है कि हवा किस ओर बह रही है।

दीपक के प्रकाश में—

तलाश —लेखक व प्रकाशक—श्री ब्रजमोहन 'मिहिर', प्रयाग, पृष्ठ संख्या ४८ मू० ।—)

यह पुस्तक जे० कृष्ण मूर्ति की विचारधारा के आधार पर लिखी गई प्रतीत होती है। सारी पुस्तक का सार यह है कि "अनन्त आनन्द की प्राप्ति के लिए तुम्हें किसी की आवश्यकता नहीं है। सब बातों से निराश हो जाने पर ही तुम्हारे अन्दर जागृति आयेगी और उसे प्राप्त कर लेने की सच्ची लगन उत्पन्न होगी।" पुस्तक का विषय इतना महत्वपूर्ण है कि इसे खोलकर लिखा जाता तो पाठकों को बहुत लाभ होता। जीवन-रहस्य को समझने के लिए यह पुस्तक बड़े ही काम की है। ऐसी पुस्तकों का हिंदी में सर्वथा अभाव है। अतः हम लेखक को ऐसी अनूठी पुस्तक लिखने के लिए बधाई दिए बिना नहीं रह सकते। पुस्तक का मूल्य अधिक है।

कथा-कुँज—सम्पादक प्रो० जगन्नाथ अग्रवाल एम० ए० तथा श्री उपेन्द्रनाथ 'अश्क' बी० ए० एल० एल० बी०. प्रकाशक- पँजाब संस्कृत पुस्तकालय, सैद मिट्ठा बाजार लाहौर, मू० २)

प्रस्तुत पुस्तक हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ कहानियों का प्रतिनिधि सँग्रह है। इस सँग्रह की सभी कहानियाँ कोरी शिक्षाप्रद ही नहीं बल्कि इतनी रोचक और दिलचस्प हैं कि एक बार शुरू करके खत्म करने को ही जी करता है। भाषा चुस्त, सरल और मुहावरेदार है। हम निःसँकोच कह सकते हैं कि सभी दृष्टियों से यह सँग्रह स्कूली विद्यार्थियों के लिए बड़े ही काम का है। विद्यार्थी बड़े चाव से इन कहानियों को पढ़ेंगे। कहानी से पहले प्रत्येक कहानी लेखक का संक्षिप्त परिचय भी दे दिया गया है। शुरू-शुरू के ३८ पृष्ठों में कहानी के विकास का इतिहास भी दिया गया है जिससे इस सँग्रह की उपयोगिता और भी बढ़ गई है। छपाई. सफाई, कागज और गेट-अप सभी सँतोषप्रद हैं। अतः प्रत्येक लाइब्रेरी और घर में इस कथा-कुंज का होना जरूरी है।

नीम के उपयोग—लेखक—श्री केदारनाथ पाठक 'रासायनिक' प्रकाशक—श्री उमेदीलाल वैश्य श्री श्यामसुन्दर-रसायनशाला, गायघाट बनारस पृष्ठ सँख्या १०८ मूल्य ।||) ।

नीम भारत के सभी भागों में पाया जाने वाला ऐसा वृक्ष है जिसका प्रत्येक भाग—जड़. तना, डाली, पत्ता, फल, फूल. बीज, तेल, छाल आदि रोगनाशक हैं। नीम के इन सभी अँगों का सही उपयोग जानने वाला व्यक्ति कभी बीमार नहीं हो सकता और होवे तो इन्हीं के उपयोग से स्वास्थ्य लाभ कर सकता है। लेखक ने नीम के इन्हीं अनेकों रोगों सम्बन्धी उपयोगों का इस पुस्तक में वर्णन किया है। ग्रामों में जहाँ वैद्य-डाक्टर सुलभ नहीं, ऐसे उपयोग सीखकर रोगों से कुछ बचाव किया जा सकता है।

भारतीय ग्रन्थ माला बृन्दावन की ३ पुस्तकें—

१. भारतीय शासन—पुस्तक का आठवाँ सँस्करण हमारे सामने है जिसमें पिछले सभी सँस्करणों में आवश्यक सँशोधन करके भारत की आज तक की शासन व्यवस्था का पूरा ब्यौरा सिलसिलेवार दिया है। पुस्तक का यू०पी० आदि काँग्रेसी प्रांतों की ओर से शिक्षा प्रचार के लिए खरीदी जाकर खूब प्रचार हुआ है। भारतीय शासन सम्बन्धी आवश्यक ज्ञान प्राप्त करने के इच्छुक प्रत्येक व्यक्ति को इसे पढ़ना चाहिए। सवा रुपए में उपरोक्त पते पर मिलती है।

२. भारतीय जागृति (तीसरा सँस्करण)—पिछली एक शताब्दी से देश में जो धार्मिक सामाजिक, वाणिज्य व्यवसाय, कृषि. शिक्षा, भाषा व साहित्य, विज्ञान आविष्कार तथा राजनीतिक दशा

में अपूर्व जागृति हुई है उसका इस पुस्तक में सुन्दर विवेचन किया गया है। जनता ने पुस्तक की उपयोगिता को समझकर इसे खूब अपनाया है। इस नये सँस्करण में देश की आज तक की जागृति का विवरण दिया गया है। मू० सवा रुपया।

पूर्व की राष्ट्रीय जागृति—हिन्दी के विद्वान लेखक प्रो० शँकर सहाय सिक्सेना द्वारा लिखित २७० पृष्ठों की इस पुस्तक में साम्राज्यवाद के चँगुल में फँसे पूर्वी राष्ट्रों—मिस्र, टर्की, अरब, ईरान व अफगानिस्तान की राष्ट्रीय जागृति का इतिहास दिया है। प्रथम अध्याय में पूर्व में साम्राज्यवाद के प्रसार के कारणों व परिणामों का विशद वर्णन करके लेखक ने गुलामी में जकड़े व पद-दलित उपरोक्त पूर्वीय राष्ट्रों के जागरण तथा अपने जन्मसिद्ध अधिकारों को प्राप्त करने के लिए की गई जद्दोजहद का विवेचन किया है। भारतवासियों के लिए, जो अभी तक भी साम्राज्यवाद से मुक्ति नहीं पा सके हैं, यह पुस्तक समयोपयोगी सिद्ध हो सकती है। मूल्य १।) रुपया।

सत्यज्ञान-निकेतन, ज्वालापुर (यू०पी) की २ पुस्तकें—

१. सञ्जीवनी बूटी (द्वितीय भाग)—श्री स्वामी सत्यदेवजी परिव्राजक की स्फूर्ति दायक लोह-लेखनी से लिखी 'सँजीवन बूटी' पुस्तक के प्रथम भाग को हिंदी-संसार ने बहुत ही उपयोगी समझ कर, खूब अपनाया था। उसी पुस्तक के इस दूसरे भाग में यशस्वी लेखक ने जीवन सम्बन्धी बहुत सी आर्य वँशों का विचार धाराओं, प्रसिद्ध बुद्धिवादी सुकरात के सिद्धांतों का विवेचन, सत्यज्ञान-प्राप्ति के साधन, मनुष्य का जीवनादर्श, मानसिक व शारीरिक स्वास्थ्य रक्षार्थ विविध इन्द्रियों व अवयवों के व्यायाम, प्राणायाम, भोजन आदि का विश्लेषण आदि विषयों पर विस्तृत रूप से प्रकाश डाला है। पुस्तक अत्यंत रोचक तथा सुगम भाषा में लिखी गई है। अपने को बौद्धिक व शारीरिक दृष्टि से ऊँचा उठाने वालों तथा विद्यार्थियों के लिए पुस्तक बड़े काम की है। २५६ पृष्ठों की पुस्तक का मूल्य केवल ।।) है।

२. भारतीय समाजवाद की रूप रेखा—श्री स्वामी सत्यदेवजी परिव्राजक ने ४८ पृष्ठ के इस ट्रैक्ट में सँक्षेप में यह बतलाने का प्रयत्न किया है कि भारत के लिए पश्चिम के सोशलिज्म की जरूरत है या प्राचीन आर्यों के समाजवाद की। आपने पाश्चात्य-इज्मों को जीवन की अत्याधिक आवश्यकताएँ बढ़ाने वाला बताया है जिनकी पूर्ति करने के संघर्ष में समाज में हिंसा-प्रतिहिंसा, मारा मारी, कलह और असमानता बढ़ती है। अतः ये इज्म भारत में सच्चा सोशलिज्म नहीं ला सकते। आप ज्ञान प्राप्ति को मनुष्य का सच्चा जीवनादर्श मानते हैं जो कि अपनी आवश्यकताओं को अत्यंत संयमित कर ज्ञान संचय करने के लिए अधिक अवकाश प्राप्त करके ही पूरा कर सकता है। वादों के इस युग में जब देश में उथल-पुथल मची है, हमें चाहिए कि किसी एक मार्ग का अनुसरण उसको कालानुसार बुद्धि की कसौटी पर कसकर करें। यही इस ट्रैक्ट का असली सार है। सोशलिस्टों को अवश्य ही इसका अध्ययन करना चाहिए मू० ≈)

मुद्रण-प्रवेश अर्थात् कम्पोज कला—अनुवादक—श्री गोपी वल्लभ उपाध्याय, व प्रकाशक शंकर रामचन्द्र दाते, लोक-संग्रह छापाखाना, ६२४ सदाशिव पेठ, पूना २, पृष्ठ संख्या २३१, मूल्य २)।

इस युग में प्रेस की अत्यधिक वृद्धि होते हुए भी देशी भाषाओं में प्रेस सम्बन्धी साहित्य नहीं के बराबर ही है। मराठी की मूल पुस्तक के इस हिंदी अनुवाद में प्रेस सम्बन्धी हरेक जानकारी पर अच्छा प्रकाश डाला गया है। एक मामूली काम सीखने वाले आदमी से लेकर कम्पोजीटर, फोरमैन, मशीनमैन, मैनेजर

प्रूफ शोधक, लेखक तथा सम्पादक तक के समस्त कार्यों को इस ढँग से बताया गया है कि नया आदमी भी पुस्तक की मदद से प्रेस कार्य को सीख सकता है। पुस्तक में बताए हुए ढंग से प्रूफ-संशोधन, कम्पोज़ तथा छपाई आदि कार्य किया जावे तो छपाई का स्टेण्डर्ड बहुत ऊँचा हो सकता है। प्रेस सम्बन्धी ३६ सादे चित्र. छपाई, सफाई तथा कागज़ उत्तम होने पर भी मूल्य अधिक है।

—उदयचन्द्र 'आर्य' दीपक प्रेस

सुख संचारक कम्पनी मथुरा की १९३९ की डायरी—यह डायरी सुन्दर और आकर्षक है। प्रत्येक पृष्ठ पर एक एक उपयोगी लोकोक्ति भी दी गई है। रेल या पारसल का महसूल, ब्याज व वेतन फैलाने का नकशा तथा माप भी दिये गये हैं।

युवक से—लेखक—बाबू श्री कृष्णराय 'हृदयेश' प्रकाशक—बा० बैजनाथप्रसाद बुकसेलर, राजा दरवाजा बनारस सिटी पृष्ठ ५२; मू० ।)

खड़ी बोली के सरल पद्यों में लिखित पुस्तक में भारतीय युवकों को पराधीनता की बेड़ियां तोड़ने व सामाजिक रूढ़ियों को छिन्न-भिन्न करने का आह्वान किया गया है। ग़रीब देश के युवकों को कर्त्तव्य मार्ग का इसमें सुन्दर निर्देश किया गया है।

वातायन—प्रकाशक—कवि कोविद-संघ फर्रुखाबाद; पृष्ठ ५८ मू० =)

सँघ के सदस्यों द्वारा समय २ पर पढ़ी गई कविताओं का यह सँग्रह है। इसकी सभी रचनायें समयोपयोगी तथा सुन्दर हैं।

कृषक कहावत दर्पण—लेखक—ठा० राजेश्वरी प्रसादसिंह, प्रकाशक उपरोक्त, पृष्ठ सँख्या ११६, मू० ।।)

पुस्तक में—घाघ, डाक, सहदेव, रामू, कालिका, मनोहर, नानकचन्द आदि कवियों की किसानोपयोगी चुनी हुई ५१४ कहावतों का संग्रह है। पशु-पक्षी, कीट-पतंग आदि की आकृति व अंग संचालन क्रिया द्वारा तथा आसमान में ग्रह-नक्षत्रों को देखकर इन कहावतों के आधार पर वर्षा, बाढ़ भूचाल आदि ऋतु-परिवर्तन सम्बन्धी बातों का पता लग सकता है। पुस्तक में कृषि-सुधार सम्बन्धी आँकड़े भी दिए हैं। ग्राम सुधार प्रेमियों तथा किसानों के लिए विशेष उपयोगी है।

विश्व-परिचय—मूल लेखक श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर, अनुवादक—हजारी प्रसाद द्विवेदी, प्रकाशक—विश्व भारती ग्रन्थालय २१०, कार्नवालिसस्ट्रीट. कलकत्ता। विश्व कवि ने इस पुस्तक में विज्ञान सम्बन्धी गूढ़ बातों को बड़ी सरल भाषा व मधुर शैली में लिखा है। इसमें परमाणुलोक, नक्षत्रलोक, और ग्रहलोक, व भूलोक सम्बन्धी, वैज्ञानिक खोजों के आधार पर, बड़ा ही रोचक वर्णन किया गया है। जिन बातों को विज्ञान-शास्त्री अपनी रसायन शाला के क्रियात्मक प्रयोगों द्वारा नहीं समझा सकता, उनको विश्व कवि ने अपने विशाल अनुभव व दिव्य-दृष्टि से लेखनी द्वारा विद्यार्थियों को हृदयंगम करने का सुन्दर प्रयत्न किया है। पुस्तक इतनी उपयोगी सिद्ध हुई है कि ८-१० महीने के भीतर ही मूल बँगला पुस्तक ४ बार छप चुकी है। विद्यार्थियों ही नहीं बल्कि वयस्क विद्वानों के लिए भी यह बड़े काम की है। कपड़े की सुन्दर जिल्द सहित पुस्तक का मूल्य १) है।

ग्राम सुधार (इलैक्ट्रोकलचर अँक)—श्री डा० एस०एस० नेहरू ने बिजली द्वारा इलाज करने की नवीन पद्धति का आविष्कार करके मानव जाति का भारी उपकार किया है। सर्वसाधारण में इलैक्ट्रोकलचर का प्रचार करने के लिए 'ग्राम-सुधार पत्र आरम्भ से ही प्रयत्न कर रहा है किन्तु यह विशाल अँक निकालकर तो सम्पादक महोदय ने इस पद्धति सम्बन्ध अत्यधिक सामग्री उपस्थित की है। इस समबन्ध की इतनी सामग्री अब तक कहीं भी

प्रकाशित नहीं हुई थी। इलैक्ट्रोकलचर चिकित्सा का वैज्ञानिक विश्लेषण, उसका प्राणियों व बनस्पति के लिए उपयोग व उसकी विधि आदि का विस्तृत वर्णन इस अँक में अंग्रेजी, हिंदी, उर्दू व गुजराती लिपियों द्वारा किया गया है किंतु मूल्य अधिक है। इस विषय में रुचि रखने वालों के लिए यह अंक बड़े काम का है।

ज़ेबुन्निसा के आँसू—लेखक श्री ओमप्रकाश भार्गव बी०एस०सी० विशारद व श्री ईश्वरप्रसाद माथुर बी०ए० प्रकाशक—साहित्य रत्न भण्डार, सिविल-लाइन्स, आगरा, २४४ पृष्ठों की सजिल्द पुस्तक का मूल्य १)

औरँगजेब की पुत्री राजकुमारी जेबुन्निसा एक उच्चकोटी की कवियित्री थीं। सुयोग्य लेखकों ने राजकुमारी की फ़ारसी भाषा में रचित भावपूर्ण कविताओं के सँग्रह को हिन्दी भाषा में सुन्दर आलोचनात्मक शैली से उपस्थित किया है। हिंदी तथा उसकी जननी सँस्कृत, इसीप्रकार उर्दू व फ़ारसी की श्रेष्ठ रचनाओं का एक से दूसरी भाषामें अनुवाद होने से हिन्दु-मुसलमानों को एक दूसरे के साहित्य के गुणों को समझने व संस्कृति को अपनाने में बड़ी सहायता हो सकती है। पुस्तक में जेबुन्निसा का जीवन-चरित्र भी दिया गया है।

संसार-चक्र

इलाका

—कुलार के चौ० लेखराम ग्यौराण के बड़े भाई चौ० बस्तीरामजी का १४ फ़रवरी को स्वर्गवास हो गया है। औसर या अन्य किसी भी प्रकार की फ़िज़ूल खर्ची को बँद करके आपके लड़कों ने ग्राम-सुधार पँचायत, अबोहर के नियमों का हौसले से पालन किया। यह काम पँचायत की तरफ़ से चुने गए कुलार गांव के प्रतिनिधि चौ० लेखराम ग्यौराण की कोशिश से हुआ। इस अवसर पर नीचे लिखा दान देने का निश्चय किया। २५) के गेहूँ जाट-विद्यालय, सँगरिया, १०) के गेहूँ साहित्य सदन, अबोहर के चलते पुस्तकालय को और १०) का गुवार गौशाला अबोहर को दिया।

—उड़ांग गांव के चौ० रामकरण चांगल का युवावस्था में ही भयँकर बीमारी से स्वर्गवास हो गया। बिरादरी की पुरानी रीति के मुताबिक लोगों ने उसके घर वालों को औसर के लिए मजबूर किया लेकिन उड़ांग गांव के लिए ग्राम-सुधार पँचायत अबोहर की की ओर से चुने हुए प्रतिनिधि चौ० शिवदत्तसिंह ढाका की कोशिश से औसर न हुआ। इसके कुछ दिन बाद उडांग में दूसरी मृत्यु हुई चौ० बस्तीराम सिहाग की। इस मौक़े पर भी चौ०शिवदत्तसिंह ढाका औसर रोकने में सफल हुए इस प्रकार उडाँग में इन दो औसरों के बन्द होने से आगे के लिए इस कुरीति का ख़ात्मा हो गया।

—गाँव बेगांवाली के चौ० मोटाराम झिंझा का पिछले दिनों स्वर्गवास हो गया। आपका वहाँ और बीकानेर राज्य के उस गांव में जहां उसकी जमीन थी में हजारों रुपए खर्च करके इस प्रकार दो बार औसर किया गया।

पँजाब व सीमा प्रान्त

—पंजाब में अछूतों के लिए हाई स्कूल, टैकनीकल

स्कूल तथा कालिजों में वज़ीफे सुरक्षित रक्खे जाते हैं। मैडिकल कालेज में भी एक सीट उनके लिए खाली है। सरकारी और सहायता प्राप्त सभी स्कूलों में अछूत दाखिल हो सकते हैं। सरकार के सभी महकमों को हिदायत जारी की गई है कि सरकारी मुलाज़मतों में, जिनमें पुलिस की मुलाजमत भी शामिल है, अछूतों की भरती की जाए। इस समय जरायम-पेशा कौमों के आठ हज़ार से अधिक लड़के और लगभग १ हज़ार लड़कियाँ स्कूलों में शिक्षा प्राप्त कर रही हैं।

—पंजाब की जेलों के इन्सपैक्टर जनरल ने जेलों के सुपरिंटेन्डन्टों के नाम एक सरक्यूलर जारी किया है जिसमें लिखा है कि जो शिक्षित कैदी हों उन्हें बतौर अध्यापक नियुक्त किया जाय। अशिक्षित कैदियों को किताबें चाक तथा सीमेंट बोर्ड दिए जाएं।

—असेम्बली में एक सवाल का जवाब देते हुए सर सिकंदर ने बतलाया कि मुलाज़मत में ६६ फी सदी ज़मींदार लिये जाया करेंगे।

—१ अप्रेल सन ३९ से पंजाब भर में लाइसेन्स-याफ़्ता फर्में और निरीक्षक जिनके पास योग्यता के सार्टिफ़िकेट होंगे, बिजली का सामान वगैरा लगाने का काम करेंगे।

—पंजाब में हिंदी की दुर्दशा का इसी से पता चलता है कि लुधियाना की एक कम्पनी के मालिक श्री हँसराज थापर को हिन्दी में लिखा हुआ २२ जनवरी का एक पत्र १० मार्च को मिला।

—मुलतान डिवीज़न में बालिग़ शिक्षा के आधीन १० हज़ार से अधिक व्यक्ति शिक्षित हो चुके हैं।

—ज़िला लाहौर के किसानों ने अपनी तकलीफें सरकार तक पहुँचाने के लिए एक ज़बरदस्त प्रदर्शन असेम्बली भवन के सामने करने की ज़ोरदार तैयारियां कीं। किन्तु सरकार की ओर से १४४ दफ़ा लगा दी गई जिससे किसानों के जत्थों को प्रतिबन्ध के स्थानमें प्रवेश करने पर गिरफ़्तार किया जाने लगा। अब तक सैंकड़ों किसान गिरफ़्तार हो चुके हैं। मियाँ इफ़्तखारुद्दीन एम० एल० ए० जब प्रदर्शनकारियों से मिलने के लिए गए तो इँचार्ज पुलिस अफ़सर ने उन्हें धमकी दी कि चुप रहो, अधिक बोलोगे तो मैं तुम्हें मार डालूँगा। उनके विरोध करने पर उस अफ़सर ने उन्हें २-३ बैंत मारे। जब मियां इफ़्तखार-उद्दीन ने बतलाया कि मैं पँजाब असेम्बली का मेंबर हूँ तो इसके जवाब में पुलिस अफ़सर ने कहा कि जहन्नुम में जाओ तुम और जहन्नुम में जाए पंजाब असेम्बली।

—असेम्बली में एक प्रश्न के उत्तर में सरकार की ओर से बतलाया गया कि सन् १९३८ में पंजाब में ४०८ आत्म-हत्याएं हुईं।

—सीमा प्राँत के प्रधान मन्त्री ने आज्ञा जारी कर दी है कि स्कूलों में अँजुमन-इस्लाम की पुस्तकें हटा दी जाएँ, वृद्धों और निर्बल कैदियों को बेड़ियाँ न लगाई जाएँ।

यू० पी०

—ग्राम-सुधार अफ़सर ने १९३८ की रिपोर्ट पेश करते हुए बतलाया है कि नई योजना के अनुसार १०५९ ग्रामीण केन्द्रों में काम हो रहा है, हर केन्द्र में २५ गाँव हैं. गावों में ९०३ 'रहन-सहन-सुधार सभायें' खोली गई हैं जो पँचायतों का काम करती हैं। ३७९ बीज गोदाम खोले गये, ५१००० हज़ार खाद के गड्ढे खुदवाए गए, १२२००० फलों के पेड़ लगाए गए, १३०० अखाड़े खोले गए. निरक्षरता-निवारणार्थ ९६० प्रौढ़ शिक्षक, ३६०० वाचनालय और ७८४ पुस्तकालय खोले गए हैं।

—गाँवों में नई सड़कें बनाने के लिए ३५ लाख तथा पुलों की मरम्मत के लिए २५ लाख रुपया मँजूर किया। ३-४ वर्ष में २५०० मील लम्बी सड़कें बनेंगी।

— गत जनवरी मास में लगभग ३॥ लाख शिक्षितों ने शिक्षा देने के लिए प्रतिज्ञापत्र भरे और इस समय १॥ लाख प्रौढ़ों को सरकार द्वारा शिक्षा दी जा रही है।

—इस वर्ष असेम्बली ने २,१३,६८,९१९ रु० शिक्षा-बजट के लिए मंजूर किए। इससे पहले इस प्रांत में शिक्षा के लिए इतना बड़ा बजट कभी मँजूर न हुआ था।

बम्बई

—सरकार ने सूबे की सभी स्थानीय सँस्थाओं को हिदायत कर दी है कि वे अपने फण्ड से माननीय मन्त्रियों को जो अभिनन्दन-पत्र पेश करें उनका खर्च किसी भी हालत में १५) से अधिक न हो।

—बम्बई कौंसिल में शराब के विज्ञापनों पर पाबन्दी लगाने का प्रस्ताव स्वीकृत हो गया है।

—११ मार्च को समाप्त होने वाले सप्ताह में बम्बई से २ लाख ३० हजार रुपये का सोना विदेश गया।

आसाम

—आसाम सरकार की अफीम निषेधक योजना असेम्बली में स्वीकृत हो गई जिसके लिए १॥ लाख रुपया खर्च होगा और इसके कर की आय में ५ लाख की कमी होगी।

बंगाल

—इधर कुछ महीनों के भीतर २०० से अधिक राजबन्दियों को छोड़ दिया गया है। अब प्रांत भर में करीब १५० राजबन्दी और रह गये हैं।

देशी राज्य

—खबर है कि बीकानेर राज्य के श्री गँगानगर शहर में ५ मार्च को किसानों की एक सभा सरदार दरबार सिंह एम० एल० ए० के सभापतित्व में हुई। सभा में कई महत्वपूर्ण प्रस्ताव पास किए गये। इन प्रस्तावों में प्रजा के घोर कष्टों का हृदयस्पर्शी चित्र खींचा गया है। और बताया गया है कि किस तरह राज्य ने सूद माफी की घोषणा करने के बावजूद भी सूद माफ नहीं किया तथा ७०० खरीदारों की जमीनें जब्त कर ली गईं आदि। 'हिन्दुस्तान' में २९ मार्च को यह खबर छपी है कि स० दरबारसिंह की १ लाख की सम्पत्ति जब्त करली गई है।

—राजाओं को वायसराय की सलाह के अनुसार अपना कर्त्तव्य निश्चित करने का अवसर देने और रियासतों में सत्याग्रह की नई दिशा पर विचार करने के लिए महात्मा जी ने जयपुर और त्रावनकोर में सत्याग्रह स्थगित करा दिया है। लेकिन इसके बावजूद वहाँ गिरफ़ारियाँ और दमन जारी है।

देश

—त्रिपुरी काँग्रेस में लगभग २॥ लाख खर्च हुआ और करीब करीब इतनी ही आमदनी हो गई।

—कांग्रेस का अगला अधिवेशन दिसम्बर में बिहार में होगा।

—दिल्ली में महात्मा गांधी के पास एक अपरिचित महिला आई और केवल एक मिनट उनसे बातें करके १० हजार रुपये के नोट हरिजन उन्नति के लिये देकर चली गई।

—कांग्रेस के निमन्त्रण पर मिस्र का एक बड़ा वफद त्रिपुरी अधिवेशन में शामिल हुआ। वफद के सदस्य भारत में हुई अभूतपूर्व जागृति को देखकर बहुत खुश हुए। महात्मा गाँधी से मिलकर वे अत्यंत प्रभावित हुए।

विदेश

—अँदाजा लगाया गया है कि स्पेन की लड़ाई में १० लाख मरे और लगभग इतने ही घायल हुये। मरे हुओं में ढाई लाख सिपाही हैं बाकी नागरिक। यह याद रहे कि स्पेन की आबादी २॥ करोड़ की है। इसके अलावा कई अरब पौंड खर्च हो चुका है।

—हर हिटलर ने, जैकोस्लोवेकिया और मेमल को बिना किसी प्रकार की लड़ाई या विरोध का सामना किये अपने कब्जे में कर लिया।

—ब्रिटेन हवाई सेना पर प्रति दिन २५ लाख पौण्ड खर्च कर रहा है। उसकी आज की हवाई सेना १९२९ से १९३४ तक के किसी भी वर्ष से १२ गुनी है।

संयुक्त प्रांत, मध्यप्रांत, बिहार, बम्बई, उड़ीसा, कोटा व राजगढ़ राज्य शिक्षाविभाग ... पुस्तकालयों के लिए स्वीकृत।

वैशाख १९९६] साहित्य सदन, अबोहर मई १९३९

वातावरण का जादू

मैंने उससे गरज कर कहा और उसने मुझे गरज कर जवाब दिया। मैंने उसे आँखें दिखाईं, और उसने मुझे आँखें दिखाकर जवाब दिया। मैंने मुसकराते हुए, मीठे, प्यार भरे, शब्दों में उससे बातें कीं और उसने हँसकर नरमी से जवाब दिया।

* * *

मैं गाली बकनेवालों के बीच जाकर खड़ा हुआ, और मुझपर उनकी छाप पड़ी। मैं कुत्सित लोगों की कृपा भरी चेष्टायें देखने को ठहरा, और मुझपर उनकी छाप पड़ी! सन्तों में मुझ पर सन्तपने की छाप पड़ी।

* * *

सुगन्धी फूल मेरे हृदय की सुगन्ध को बाहर ले आते हैं। गन्दा वातावरण मुझे गन्दगी की ओर घसीटता है। क्रोधी वायुमण्डल में मैंने क्रोध का अनुभव किया है। उच्च वायुमण्डल ने मुझमें उच्चता पैदा की है। मैं तो वही हूँ जो मैं हूँ; पर विभिन्न वातावरण दर्पण बनकर मुझे अपने विभिन्न रूपों के दर्शन कराता है।

— आचार्य गिजुभाई

यू० पी० के ग्राम सुधार विभाग द्वारा

ग्रामीण पुस्तकालयों के लिये स्वीकृत❀

सर्व साधारण के लिये उपयोगी, सरल पुस्तकें

❀विश्वधाय—इस में गौओं के पालन-पोषण सम्बन्धी ३२ आवश्यक विषयों का विशद वर्णन किया गया है। पुस्तक प्रत्येक गोपालक तथा ग्रामीण भाई के लिए अत्यन्त काम की है। लगभग ८० पृष्ठों की इस सचित्र पुस्तक का मूल्य केवल ।) है। डाक खर्च अलग।

❀ग्राम-सुधार नाटक—ग्रामीणों पर होने वाले घोर अत्याचार, उन में फैल अनेकों कुरीतियों व अन्ध-विश्वासों का नग्न चित्र तथा ग्रामोद्धार के सरल उपायों का यदि आप दिग्दर्शन करना चाहते हैं तो राष्ट्रीय भावों से ओत प्रोत इस नाटक को पढ़िये। सवा सौ पृष्ठों की पुस्तक का मूल्य ।।=) है। डाक खर्च अलग।

❀बाल गोपाल—बालकों के रोजमर्रा काम में आने वाली बातों को इस छोटी सी पुस्तक में सुन्दर और सरल गीतों में वर्णित किया गया है। भाषा चटकीली और इतनी सरल है कि पुस्तक में एक भी संयुक्त अक्षर नहीं आया है। पृष्ठ सख्या ४२, मू० =)।।, डाक खर्च अलग।

❀ईसप-नीति-निकुंज (प्रथम भाग)—इस पुस्तक में महात्मा ईसप की ६१ शिक्षाप्रद, दिल चस्प कहानियों का पद्यानुवाद है। कविता बड़ी सरल है। एक बार शुरू करके खतम करने को ही जी चाहता है। मू० ।।) डाक खर्च अलग।

बालोपदेश (प्रथम भाग)—इस पुस्तक की सर्व प्रियता इसी बात से सिद्ध हो जाती है कि गाँधी आश्रम हटुण्डी जैसी राष्ट्रीय संस्था ने अपनी सभी ग्रामीण पाठशालाओं के लिये इस की इकट्ठी ही सैंकड़ों प्रतियां ली हैं। पृष्ठ ३०, मू०–) मात्र, डाक खर्च अलग।

मिलने का पता:—साहित्य सदन, अबोहर (पंजाब)

नोट:—'दीपक' के ग्राहकों को ये सब पुस्तकें पौने मूल्य में मिलेंगी।

{ दीपक—वर्ष ४, संख्या ७, मई १९३९ ई० }

विषय — लेखक

'दीपक' के नियम

१—'दीपक' हर अंग्रेज़ी महीने के पहले सप्ताह में प्रकाशित होता है।

२—'दीपक' का वार्षिक मूल्य डाक व्यय व विशेषांक सहित केवल २॥) है। एक प्रति ४ आने, विदेश से ४)।

३—'दीपक' में प्रकाशनार्थ लिखे जाने वाले लेख अधूरे न हों, पृष्ठ के एक ओर ही संशोधन के लिये इधर उधर जगह छोड़कर सफाई से लिखे हों, विस्तार में चार पृष्ठ से अधिक न हों। भाषा उनकी सरल व शैली रोचक हो जिससे साधारण योग्यता वाले व्यक्ति भी जिनके हितार्थ 'दीपक' प्रकाशित हुआ है, उन्हें पढ़ व समझ सकें।

४—'दीपक' का मुख्य उद्देश ग्राम-सुधार, समाज-उत्थान, शिक्षा व राष्ट्र-भाषा-प्रचार द्वारा जनता-जनार्दनमें जीवन-जागृति पैदा करना है। अतः धार्मिक ईर्ष्या, साम्प्रदायिक विद्वेष पूर्ण उपरोक्त उद्देश्य के विपरीत कोई लेख न छप सकेगा।

५—लेख घटाने-बढाने, संशोधन करने तथा प्रकाशित करने या न करने का अधिकार संपादक को होगा।

६—'दीपक' के ग्राहकों को पत्र-व्यवहार करते समय अपना पूरा पता और ग्राहक नम्बर साफ अक्षरों में लिखना चाहिये, अन्यथा जवाब देर से मिलेगा। १ मास से कम समयके लिये पता बदलवाने के लिये डाकखानेसे प्रबंध करें।

७—अस्वीकृत लेख डाक खर्च भेजने पर ही लौटाये जा सकेंगे अन्यथा नहीं।

८—जिन सज्जनों को किसी मास का 'दीपक' न मिले उन्हें पहले अपने डाकघर से पूछ ताछ करके बाद में हमारे पास लिखना चाहिये।

९—लेख, कविता, समालोचना के लिये पुस्तकें और बदले के पत्र, सम्पादक, 'दीपक' साहित्य सदन, अबोहर के पते से और मूल्य तथा प्रबन्ध विषयक पत्र मैनेजर, 'दीपक' के पते से भेजने चाहिएं।

स्तंभ—सूची

१ ज्ञान-चर्चा
२ पुस्तकालय
३ शिक्षा-दीक्षा
४ राष्ट्र-भाषा
५ हमारे गाँव
६ देहाती-साहित्य
७ खेती-बाड़ी
८ उद्योग-धंधे
९ पशु-पालन
१० स्वास्थ्य-साधना
११ हमारा आहार
१२ महिला-मंडल
१३ बाल-मंदिर
१४ प्रकृति और विज्ञान
१५ सामयिक चर्चा
१६ फुलवाड़ी
१७ सम्पादकीय नोट
१८ संसार-चक्र

कृपालु लेखक-लेखिकाओं से नम्र निवेदन है कि वे 'दीपक' के लिये कुछ लिखने से पहिले एक बार हमारे स्तंभों की सूची देख लें। इन स्तंभों के अतिरिक्त भाव-पूर्ण किन्तु सात्विक कविता और कहानियों के लिये भी 'दीपक' के कुछ पृष्ठ 'रिज़र्व' हैं। सरल भाषा में लिखे गये व्यवहारिक लेख 'दीपक' के श्रद्धापात्र होंगे।

—सम्पादक

Approved for use in Schools in U.P., C.P., Bihar, Bombay, Orissa, Kotah and Rajgarh States.

दीपक

सत्यम् :: शिवम् :: सुन्दरम्

सम्पादक—तेगराम

वैशाख १९९६ | वर्ष ४, संख्या ७ | मई १९३९

पूर्ण संख्या ४२

'दीपक' से !

नुक्ता-चीनी करें लोग तू
अपना काम किये जा;
राह बताने वाले जो हों
उन्हें प्रणाम किये जा !

× × × ×

देख कामयाबी औरों की
तेरे दिल में डाह न हो;
सब्ज़-बाग़ दिखलाये दुनिया,
फिर भी तू ग़ुमराह न हो !

—'यात्री'

केवल 'दीपक' के लिए लिखित

देहाती-साहित्य की आत्मा

[ले०—डा० रविप्रतापसिंह 'श्रीनेत']

भारत नवजीवन का अनुभव कर रहा है। सभी चीज़ें बदलती जा रही हैं। लोक-जीवन भी परिवर्तन की इस लहर से अछूता नहीं रहा। शहरों की दुनियाँ ने 'इन्क़लाब की देन' देहातों में पहुँचा दी है। देहात की आबादी नवजीवन के पैग़ाम का स्वागत कर रही है। यह पैग़ाम—हँसी-खुशी और आज़ादी का है।

गुलामी की खुमारी के इन दिनों में भारतीय साहित्य का रूप बहुत-कुछ गुलामाना हो गया था। इस गुलाम-साहित्य ने राष्ट्र की आत्मा को एक ऐसा गहरा धक्का पहुँचाया, जिससे उठना अभी भी सम्भव नहीं हो सका है। यही कारण है जो आज भी 'प्याला, बाला और हाला' से जकड़ा हुआ है। हमारा साहित्य अपनी विवेक-हीनता का परिचय दे रहा है। साहित्य की इन निश्चेष्ट सँज्ञाओं की छूत गाँवों की तरफ़ बढ़ रही है। इस छूत के बढ़ाने में आज कल के सिनेमा बुरी तरह सहायक हो रहे हैं। हमारा साहित्य अमीरों का मनबहलाव है, साहित्यिकों की दिमाग़ी ऐयाशी है और साहित्य-बाज़ों का पेशा है। उसमें जीवन नहीं, जीवन की टीस नहीं, सचाई नहीं, सुरुचि नहीं और आज़ादी की आग भी नहीं। ऐसे निकम्मे साहित्य के निर्माता भारत के देहाती साहित्य की आत्मा के सन्देश को नहीं जान पाये हैं।

शायद इसी लिए देहात के लोक-गीत, धार्मिक-गीत, कथा-गीत वीर-गीत, पोवड़े लोरियाँ, दन्त-कथाएँ, रास और कहानियाँ—सभी गँवारू साहित्य (Vulgar Literature) के नाम से तिरस्कृत किए जाते हैं। देहाती-भारत का साहित्य इन्हीं विभागों में बँटा हुआ है। इन्हीं अँगों में देहाती सचाई, चेतना और वीरता का इतिहास भरा पड़ा है। इनकी रक्षा ही भारतीय सँस्कृति की रक्षा कही जायगी। इन्हें मिटाकर या भुलाकर भारत के आज के साहित्यिक भारतीय सँस्कृति की रक्षा न कर सकेंगे। यही कारण है जो भारतीय सँस्कृति के पुजारी देहाती साहित्य की रक्षा निधि के समान करते आ रहे हैं। उनकी इस सद्-बुद्धि को अभी तक मौजूदा साहित्यकार सिर्फ़ एक 'सनक' समझते थे; लेकिन राष्ट्रीय काँग्रेस के 'देहाती-पैग़ाम' की चर्चा ने उनकी भी आँखें खोल दी हैं।

आज़ादी के मानी आज देहाती आज़ादी के हैं। इसी लिए चारों तरफ़ से 'देहात' की ही आवाज़ आ रही है। शहर की फ़ैशन देहात में घुस रही है और देहात के रँग में शहर रँगा जा रहा है। रद्दोबदल की यह चँचलता बड़ी तेज़ी के साथ शहर और देहात में सरस रही है। 'शान्ति-निकेतन' से गुरुदेव ने देहाती-साहित्य की महत्ता का अमर सन्देश सुनाया। देहाती साहित्य के अन्वेषक श्री देवेन्द्र सत्यार्थी और पंडित रामनरेश त्रिपाठी ने अपनी परिमित शक्तियाँ इस ओर लगा दीं; उधर अन्तर्राष्ट्रीय पत्रकार सेण्ट निहालसिंह ने 'गीतों और लोरियों' का सन्देश सभ्य संसार को सुनाना आरम्भ किया।

विज्ञान और सभ्यता के मतवाले सुदूर विदेशियों ने भारतीय लोरियों का प्राण-पूरक सन्देश सुना! साहित्य के सफल प्रणेता सन्नाटे में आ गए। उन्हें तभी मालूम हुआ कि भारत के देहाती साहित्य की आत्मा में जीवन, आज़ादी और वीरता का जो सन्देश छुपा है; वह निस्सन्देह अमर है। समय और राजनैतिक परिवर्तन के दोषों से वह सर्वथा मुक्त है। इसलिए देहाती साहित्य की रक्षा करना ही, भारतीय सँस्कृति के लिए अत्यावश्यक है।

देखना, वह भूत खड़ा है !

[ले०—विश्वप्रेमी राजा महेन्द्रप्रताप, टोकियो, जापान]

बुरा न मानें, पर हो सकता है कि आप भी विश्वासी जीव न हों ? बहुत दफा मैं सच भी कहते २ रुक जाता हूँ। आज सन्देह का राज्य है। मैं और आप भी सन्देह से मुक्त नहीं। आप मानें या न मानें, चाहे यह आपको अनोखी ही बात लगे, परन्तु सच यह है कि कल सवेरे मैं यह स्वप्न देखता उठा कि मैं 'दीपक' को यह लेख लिखता हूँ कि 'देखना, वह भूत खड़ा है।' 'दीपक' ने, मानो अन्धयारे में ही नहीं, नींद में भी उजियारा कर दिया !

भूत कहीं हो या न हो, पर भूत जैसी डरावनी वस्तु जीवन में अनेक हैं। पर आज मैं जो इस विषय पर कुछ कहना चाहता हूं वह इसलिए नहीं कि पाठकों को भूत से डराऊँ, किन्तु स्वप्न की समस्या को पूरी करते हुए निवेदन यह करूँगा कि डरावनी चीजों से डर कर न बैठ जाना चाहिए। डर के कारणों को जड़ से उखाड़ फैंकना कर्त्तव्य है। और वह कैसे ? क्या केवल समझा बुझाकर ? शास्त्र के प्रमाण देकर ? नहीं ! मेरा कहना है कि मूल कारणों को दूर करना चाहिए। भूख के कारण को मन बहला कर टाला जा सकता है, पर मिटाया नहीं जा सकता। भूख को तो रोटी देकर ही, कुछ आहार देकर ही सन्तुष्ट करना होगा।

देखना, भूत खड़ा है ! वह भूत है। कौन सा भला ? हमारी मूर्खता भूत है ! हमारी निर्धनता भूत है ! हमारी दासता भूत है ! और इन सब भूतों के भगाने के मन्त्र भी अलग २ हैं। जी हाँ ! मैं कहा करता हूँ कि सब बीमारियों का इलाज हमारा 'संसार-संघ' है। सब भूतों के भगाने का एक मात्र जन्त्र भी वह एक है। ऐसा क्यों ? वह इसलिए कि उसमें बहुत सी दवायें मिली हुई हैं, इसलिए कि उसमें 'लाहौल' और 'गायत्री' एकत्र हैं। (पाठक जानते हैं कि अरबी का 'लाहौल' और सँस्कृत का गायत्री मन्त्र पढ़कर लोग भूतों को भगाया करते हैं)। और 'सँसार-संघ' में सर्वधर्म मिलाप भी है और नवीन प्रकार का सँगठन भी। अवश्य ही मूर्खता ज्ञान से ही जायगी। निर्धनता को नवीन धन्धों और अच्छी प्रकार की खेती से ही मिटाया जा सकता है। और दासता को दासता की बेड़ी काटे बिना हटाया नहीं जा सकता। लम्बी-चौड़ी बातों से रास्ता नहीं कटता।

कहीं पहुँचने के लिए हमको उधर चलना ही होगा।

पर मेरा कहना है कि चार अक्षर को पढ़ लेना विद्या नहीं। सहस्रों पुस्तकों का छान डालना भी विद्या की पूर्ति नहीं करता, उनसे ज्ञान तो अवश्य ही नहीं होता। धन होते हुए भी मनुष्य निर्धन जैसा हो सकता है। जिसके पास कुछ भी पृथ्वी है वह धनी तो अवश्य है पर समाज और राजनैतिक कारणों के कारण निर्धन रहता है। इसी प्रकार कहने को स्वतन्त्र देश भी दूसरे बड़े राज्यों के बन्धनों में बन्धे रहते हैं। उनके इशारों पर चलते हैं, और बड़े से बड़े राज्य भी आज भूतों से डरते हैं। न जाने किस समय लड़ाई छिड़ जाय और फिर सब किया कराया मटिया-मेट हो जाय ! और बड़े राज्यों के पुँछल्ले एक की पूँछ से छुटे तो किसी दूसरे की पूँछ से बंध जा सकते हैं !

मैं कहता हूं कि हमको ऐसी स्वतन्त्रता चाहिए कि हम अपने घर में, अपने कर्म के स्वतन्त्र विधाता होवें और किसी के पुंछल्ला न रहें। वहाँ डर का भूत भी न रहे। एक महान् 'सँसार-सँघ' के राज्य में समस्त सँसार के बराबरी के भाग रहते किसी बाहरी आक्रमण का भय पास तक न आ सके। ऐसी स्वतन्त्रता चाहिए और धनी भी ऐसे कि हमारे ग्राम और नगर के कोठार भरे रहें। जिसको जो वस्तु चाहिए वह अवश्य मिल सके। यदि कभी अकाल या बाढ़ या भूकम्प आदि के कारण हमारे कोठार नष्ट हो जायें तो पड़ौसी हमारी सहायता करें क्योंकि हम भी तो पड़ोसियों की सदा सेवा करेंगे। ज्ञान और विद्या हमको केवल ऐसी चाहिए जो इस सुपथा की पुष्टि कर दे। जो विद्या इसमें सन्देह उत्पन्न करे वह मूर्खता ही नहीं भूत का छल भी है !

मैं यह लिखता हूँ और सदा दोहराया करता हूँ कि अंधियारा होने पर भी 'दीपक' इस पर प्रकाश डाल आपको दिखाता है। पर इन विचारों पर चलना या न चलना यह केवल आपका कार्य है। चले तो मँजिल पर पहुँचेंगे, अर्थ सिद्ध होगा, सुख मिलेगा और यह सुख सुदृढ़ भी होगा। और नहीं तो ईश्वर जाने जो राम गुरू खुदा को मँजूर।

रावलदीन

(ले०—श्री स्वामी केशवानन्द)

साधु आश्रम फ़ाज़िल्का में प्रातः ४ बजे से रात के १० बजे तक रावलदीन! रावलदीन!! की आवाज़ आती रहती है। न तो रावलदीन आश्रम में आने वाले नये पुराने भक्तों में से नज़र आ रहा है और न ही उसकी वेष-भूषा साधु-सन्तों की सी दिखाई देती है। फिर भी, जैसे भक्त परमेश्वर को ठहर-ठहर कर पुकारता है, इस आश्रम की जागृत-अवस्था में इस माली को हर बात में, हर आदमी क्यों पुकारता है?

इस आश्रम में भक्त सदा आते-जाते रहते हैं। वे तन, मन, धन से इसी आश्रम को अपना इष्ट-देव मानते हैं। आश्रम में नित्य नये साधु आते रहते हैं जो थोड़े बहुत दिन ठहर कर चल देते हैं, किन्तु आश्रम के महन्त स्थायी रूप से यहाँ रहते हैं। यहाँ के पुस्तकालय का पुस्तकाध्यक्ष भी मान्य व्यक्ति है। आश्रम के वाचनालय में प्रतिदिन अनगिनत लोग समाचार पढ़ने आते हैं। नहाने-धोने वालों का यहाँ ताँता बन्धा रहता है। इसके अलावा आश्रम में शिव-मन्दिर, समाधि और गुरु-ग्रंथ सा० पर फूल आदि चढ़ाने, तथा प्रतिदिन कथा सुनने के लिए भी सैंकड़ों आदमी आते हैं। इस प्रकार आश्रम में प्रातः से सायं तक लोग आते-जाते रहते हैं। इन सबका, शहर में रावलदीन की अपेक्षा अच्छा सम्मान है, प्रभाव है; तथा आश्रम के कार्यों में भी इनकी पूछ है। फिर भी आश्रम के कौने-कौने से रावलदीन की ही आवाज़ क्यों सुनाई देती है?

आइये, आश्रम में रावलदीन की व्यापकता का कारण खोजें। पहले हम इसके बार-बार पुकारे जाने का एक छोटा सा कारण बताकर, फिर बाद में वह बड़ा कारण बतायेंगे जिसके लिए उसकी यह कथा लिखी जा रही है।

मनुष्य के दो रूप हैं—एक स्थूल, जो दूर से दृष्टि पड़ते ही अपने आप दिखलाई पड़ता है और दूसरा है उसके विचारों व कर्मों द्वारा निर्मित सूक्ष्म—अदृश्य रूप। मनुष्य का सच्चा और असली रूप यही है, परन्तु इसे स्थूल रूप की तरह सब कोई नहीं देख सकते। पहले हम रावलदीन के उस स्थूल-रूप को दिखा रहे हैं जिसके लिए वह प्रत्येक की ज़बान पर चढ़ा हुआ है। यह कोई १० वर्ष से १०) मासिक पर आश्रम में माली के

काम पर नियुक्त है। इसका काम है—भैंसे को कुएँ के रहट में जोड़ नहाने वालों व बगीचे को सींचने के लिए दोनों वक्त पानी निकालना, पशुओं के लिए चारा व देवताओं पर चढ़ाने के लिए फूल तैयार करना, बगीचे में सब्ज़ी लगाना। यह तो पता नहीं कि आरम्भ में इसके साथ क्या-क्या काम करने की शर्त की गई थी, परन्तु वर्षों से यही देख रहे हैं कि वह प्रतिदिन मुँह अन्धेरे उठकर मन्दिर, शिव-मन्दिर, बरामदे आदि सभी स्थानों में बुहारी निकालता है, आने वालों को सब्ज़ी, फूल, कुवार, गन्दल, गिलोय आदि आवश्यक वस्तुएँ देता है, आश्रम के रोगियों के लिए दवाई, भोजन आदि लाता है, अभ्यागत प्रतिष्ठित व्यक्ति के लिए भोजन, वस्त्र आदि का प्रबन्ध करता है, प्रति-दिन सांयकाल ४॥—५ बजे नित्य नये घरों में, जिनके यहाँ से बारी से भोजन आता है, जाकर सूचना देता है कि कितने सन्तों का भोजन भेजना है, कुम्भादि पर्वों पर महन्त तथा अन्य सभी साधु-सन्तों के चले जाने पर आश्रम के सारे सामान की बड़ी सावधानी से चौकसी रखता है। प्रतिदिन नियम से मन्दिर में, दिया-बत्ती कर व शँख बजा, आरती के साधन जुटाता है, तथा प्रत्येक आश्रमवासी के स्थान पर दियाबत्ती करता है। इन्हीं सब कामों के द्वारा उसके स्थूल-रूप का परिचय मिलता है जिसके लिए उसे पुकारा जाना ज़रूरी हो गया है। वास्तव में देखा जावे तो रावलदीन ही जीता-जागता आश्रम है जो प्रत्येक की इच्छा हर समय पूरी करता है। यह रावलदीन का वह स्थूल रूप है जिसका लोगों से सीधा सम्बन्ध है।

अब हम रावलदीन के उस सूक्ष्म-रूप के सम्बन्ध में लिखते हैं जिसकी हमारे हृदय पर गहरी छाप पड़ी है, जिसमें हमें एक महान्-आत्मा के दर्शन हुए हैं। यहाँ के लोगों का रिवाज़ है कि प्रति अमावस्या तथा संक्रांति को तथा विवाह-शादी, सामाजिक व धार्मिक त्यौहारों पर अच्छे-अच्छे भोजन-पदार्थ व दूध, फल, मिठाई आदि आश्रम में श्रद्धापूर्वक भेजते हैं। ये ऐसी चीज़ें हैं कि जिनका हिसाब नहीं होता कि कितनी चीज़ें आईं, कौन कितनी खा गया तथा कितनी बची हैं और कौन है जो इन्हें छूता तक नहीं। रावलदीन को सभी जानते हैं और वर्षों से आज़मा चुके हैं कि अपने वेतन के रुपयों के सिवाय, चाहे मन्दिर में चढ़ाई गई सामग्री हो, चाहे आश्रम में मुफ़्त में आई हुई कोई चीज़ हो अथवा अन्य किसी की वस्तु हो, वह इन सबको मिट्टी के ढेले के समान समझता है। वह आश्रम में लोगों द्वारा भेजे दूध को दूध नहीं, मीठे को मीठा नहीं समझता। इसी प्रकार आश्रम में आया आटा, दाल, घी, गुड़ आदि पदार्थ इसके लिए शक्ल से चाहे भोजन-पदार्थ हों किन्तु वह इन्हें अपने उद्योग के

लिए ज़हर समान समझकर, छूता तक नहीं।

पिछली सर्दियों में मैं आश्रम में गया हुआ था। प्रातः लगभग चार सेर दूध आश्रम में आया जिसे रावलदीन ने गर्म कर रखा था। इसके अलावा मेरा दूध बाहर से आया। उस दिन मेरे और रावलदीन के अलावा आश्रम में और कोई आदमी न था। मैंने उस दूध में से रावलदीन को भी कुछ लेने के लिए कहा। लेकिन अपने लिए दूध को छूना उसने काले साँप से भी भयँकर समझा।

नये सम्वत् पर होने वाला, वार्षिकोत्सव हो रहा था। सम्वत् के पहले दिन अमावस्या आती है। अतः इन दोनों दिन शहर के सभी घरों से कच्चे सामान के अलावा खीर, हलवा आदि पक्के पदार्थ भी आते हैं और दोनों दिन आश्रमवासियों एवँ उत्सव में भाग लेने वालों का, देवता के प्रसाद के रूप में मनों घी के हलुवे से सत्कार किया जाता है। प्रातः ८ बजे से प्रसाद बँट रहा था। अनगिनत लोग पँक्ति में बैठ के गर्मागर्म हलवा बिना दाँत लगाये, बराबर पेट में भेज रहे थे। खाने का यह सिलसिला ५-६ घण्टे तक चलता रहा, मनों हलवा खाया गया और बहुत सा बच भी गया। परन्तु रावलदीन— वह रावलदीन जिसने अपने हाथों से अनेकों व्यक्तियों को भर पेट हलवा खिलाया था, अपनी अलग रसोई में टिक्कड़ (मोटी रोटियें) बना रहा है। काम के दिनों में और दूसरे खास महीनों में भी वह दिन में एक बार ही रोटी बना लेता है और रात को वही ठंडी रोटियां खा लेता है। इस क्रम को अपनाये उसे वर्षों हो गए। अपनी कमाई के सिवाय उसे एक टुकड़ा भी छूना हराम है। घोर पाप है। बड़े से बड़ा प्रलोभन उसे इस नियम से डिगा नहीं सकता।

रावलदीन की आवश्यकतायें इतनी कम, भोजन-वस्त्र का खर्च इतना थोड़ा कि हर कोई उसे देखकर दँग रह जाये। मैंने एक दिन उससे कहा कि महीने में कितना घी खाते हो? जवाब मिला—'दो-तीन आने महीने के तेल में साग-सब्ज़ी बना लेता हूँ और उसी से रोटी खा लेता हूँ। घी खाऊँ तो घर में माता, स्त्री, बाल-बच्चों को क्या भेजूँ?' सब्ज़ी वह बगीचे से ले लेता है क्योंकि इसमें उसका हिस्सा है, वह उसके हाथ की कमाई हुई है। बाकी २-२॥ रु० महीने का आटा खाता है। तेल, गुड़ आदि मिलाकर कुल ३) महीना उसका भोजन-खर्च है। एक दिन उसकी कोठरी में सर्दी में रात के ओढ़ने के वस्त्र देखे तो पता चला कि कई तह वाले टाट (सनी) के ही ओढ़ने के कपड़े हैं। यदि उसके चेहरे को ग़ौर से देखें तो उस पर वह तेज़ नज़र आयेगा जो दूध, मलाई, और बढ़िया-बढ़िया पदार्थ खाने वाले जवानों के चेहरे पर भी नहीं दिखाई देगा। मुझे तो वर्षों इस गेरुए रँग में रँगे हो गए किन्तु अभी तक स्वाद को

नहीं जीत सका। किंतु गज़ब का सयँम है इसका अपनी जिह्वा पर। लोग तो—साधारण ही नहीं सुशिक्षित तक, खाने की चीज़ को चुराकर खाने में बुरा नहीं समझते। हाँ, अनेकों ऐसे भी हैं जो दूसरे की वस्तु चोरी के रूप में न खाएँ, किन्तु प्रसाद के रूप में आये उत्तमोत्तम भोजन-पदार्थों को खाने से कौन चूकता है। पर उस महान् सयँमी को तो देखिए। उसके सामने नाना प्रकार के स्वादिष्ट पदार्थ प्रातः से लोग खा रहे हैं। उसको भी निमन्त्रित किया जाता है। उसका भी उनके उपभोग करने का दूसरों जितना अधिकार है। वह भी उन्हें खाये, सब के साथ बैठकर नहीं तो अलग बनाकर खुद खाले। परंतु वह तो अटल नियम पर दृढ़ है उन पदार्थों की ओर आँख उठा कर भी नहीं देखता। वह महान् योगी है, स्थिति-प्रज्ञ है, इन्द्रियों का स्वामी है। यह है सच्ची करामात, यह है सिद्धों की सिद्धी, यह है सच्चा इँद्रिय-निग्रह, मन पर काबू, यह है अनिर्वचनीय उपनिषद्-ज्ञान की महान विद्या, ब्रह्म-विद्या का सच्चा विवेक यह है क्रियात्मक जीवन। इस का नाम है तीव्रतर वैराग्य। यहाँ पण्डितों की पण्डिताई मौन धार लेती है, भक्तों की भक्ति पँख लेकर उड़ जाती है, कथा तो यहाँ ऐसी रुकती है कि वर्षों के स्वाध्याय और मनन के बाद इसके रहस्य को हृदयँगम कर तब फिर कहीं आगे चले। साधु वेषधारी-सन्त यहाँ टिक नहीं सकते। यहाँ तो छाती ठोककर नीर-क्षीर विवेक करने वाला परमहँस, इन्द्रियजीत ही ठहर सकता है। इन सब विभूतियों को हम रावलदीन में पाते हैं। उसने इन्द्रियों को जीत लिया—जग जीत लिया। मन पर काबू कर—सँसार पर काबू कर लिया।

सचमुच रावलदीन बहुत ग़ज़ब का संयमी है। लेकिन यदि इस सयम के साथ २ विवेक, विचार, ज्ञान-शक्ति भी होती तो आज उसके हाथ में सैंकड़ों व्यक्तियों के मन की बागडोर होती। जैसे बिना वैराग्य के विवेक काम नहीं देता, उसी प्रकार बिना विवेक के वैराग्य विशेष महत्व नहीं रखता। फिर भी रावलदीन सैंकड़ों के लिए आदर्श है। उसके जीवन से बहुत सी शिक्षाएँ मिलती हैं, जिन पर चल कर, मनुष्य अपना बहुत कुछ कल्याण कर सकता है और इस तरह अपने जीवन को सफल बना सकता है।

ग्रामसेवक-विद्यालय वर्धा

(ले० —श्री मथुरदलाल विद्यार्थी, मगनवाड़ी, वर्धा)

भारतवर्ष में शारीरिक परिश्रम कराते हुए, बौद्धिक शिक्षा देने के लिए आज कितने स्कूल-कालेज चल रहे हैं? यों तो सभी लोग आज यह स्वीकार करने लगे हैं कि, बिना उद्योग-धन्धों की शिक्षा दिए विद्यार्थियों को केवल बौद्धिक शिक्षा देने से उनका पूर्ण विकास नहीं हो सकता है। यह आवाज़ तो आज चारों ओर से आ रही है परन्तु देखना यह है कि इसे कार्य-रूप में लाने के लिए लोगों ने कितनी मेहनत उठायी है? इसको असली रूप में लाने से लोग कितने हिचकिचाते हैं? पूज्य विनोबा जी जिन्होंने एक मूक खादीसेवक के रूप में अपना सारा जीवन लगा दिया है, के शब्दों में सुनियेगा—"एक न एक कारण खड़ा करके अबतक हम शारीरिक श्रम से बचने का प्रयत्न करते आ रहे हैं, संसार में फैली हुई विषमता, ऊँच नीच के विचार, गुलामी और हिंसा, ये सब विशेषकर उस आर्थिक-पाप के परिणाम हैं जो शारीरिक-श्रम से बचने के प्रयत्न में हम अब तक करते आये हैं। बच्चे और बूढ़े शारीरिक-श्रम न करें, विद्यार्थी और अध्यापक शारीरिक-श्रम न करें, जो रोगी और असमर्थ हैं वे तो कदापि न करें, निरुद्योगी और उच्चोद्योगी भी न करें, सन्यासी और देश-भक्त भी न करें, विचारक, प्रचारक और व्यवस्थापक भी शारीरिक-श्रम न करें तो आखिर करें कौन?" आज चन्द सीमित लोगों के ही शारीरिक मेहनत करने से समाज में भेद-भाव और ऊँच-नीच की बहुत बड़ी खाई पड़ गई है जिसको देखकर हृदय कम्पायमान हो उठता है। यह किसी से छिपा नहीं है कि शारीरिक-श्रम न करने से देश में कितनी बेकारी फैली हुई है, तिस पर भी अभी लोग शारीरिक-श्रम को नीची निगाह से देखते हैं।

उपरोक्त शिक्षित व सभ्य समाज में शारीरिक-श्रम के प्रति उपेक्षा-भाव को दूर करने के लिए १ जनवरी १९३६ ई० को महात्मा गाँधी की सलाह द्वारा अखिल भारतीय ग्राम-उद्योग-संघ की ओर से मगनवाड़ी-वर्धा में एक 'ग्राम-सेवक विद्यालय' खोल-कर शारीरिक-परिश्रम कराते हुए बौद्धिक शिक्षा देने का प्रबन्ध किया गया है। आज उस स्कूल को चलते हुए चार साल हो गए हैं। मैं उसी स्कूल के सम्बन्ध में कुछ बातें आगे लिखूँगा।

यह स्कूल विशेषकर गाँवों में सेवा-कार्य के लिए जाने वाले नवयुवकों को ट्रेनिंग देने के वास्ते खोला गया है। प्रारम्भ में स्कूल के खुलने पर एक दिन विद्यार्थियों ने मिलकर महात्मा गाँधी से पूछा कि—'हम लोग गांवों में जाकर अपना आदर्श जीवन किस तरह से व्यतीत करें?' गाँधी जी ने कहा—'आप लोग गाँव वालों की सेवा करें और उन्हीं से परिश्रम के बदले खाने भर के लायक अन्न आदि ले लिया करें। इसमें शर्म की कोई बात नहीं है, यह तो विनम्रता है। इसमें कार्य-कर्ता के बहुत खर्चीला हो जाने की सम्भावना भी कम रह जाती है, क्योंकि गाँव वाले उसके खर्चीलेपन को न तो प्रोत्साहन देंगे और न बर्दाश्त ही करेंगे। इस हालत में कार्य-कर्ता का काम तो इतना ही होगा कि काम के समय गाँव वालों के लिए ही काम करें और अपने लिए जितने अनाज व साग-सब्ज़ी की आवश्यकता हो

गाँव वालों से जुटा लें। डाक-व्यय आदि अन्य छोटे २ खर्चों के लिए भी अगर जरूरत हो, तो उनसे थोड़ी सी रकम ले लेना उचित होगा। अपने को तो हमेशा स्वावलम्बी बनने की चेष्टा करनी चाहिए। और यदि गाँव वाले कुछ न दें; उस समय आप लोग अपने निर्वाह के लिए खुद कोई काम कर लिया करें। किसी सँस्था या अन्य लोगों पर आश्रित रहना व्यर्थ होगा।" महात्मा जी की बातों पर अब ग्राम-सुधारकों को विशेष रूप से ज्यादा विचार करने का समय आ गया है। यदि ग्राम-सुधारक लोग ग्राम-सेवा की भावना से वहाँ गए हैं या जाना चाहते हैं, तो उनका फर्ज है कि वे अपना ध्यान महात्मा जी के शब्दों पर देकर गाँव वालों के विश्वासपात्र बनें।

जब से यहाँ 'ग्राम-सेवक विद्यालय' खुला है और यहाँ से शिक्षा देकर सेवकों को गाँवों में ग्राम-सुधार का काम करने की ओर आकर्षित किया जाने लगा है, तब से उन्हें अच्छा नागरिक बनाने के सब प्रयत्न किए जा रहे हैं। जैसे कि—जहाँ तक उनसे हो सके गाँव में अधिक से अधिक परिश्रम करके अपने प्रत्यक्ष उदाहरण द्वारा गाँव वालों को अपनी काहिली दूर करने की शिक्षा दें। यहाँ पढ़ने वालों से हर प्रकार का शारीरिक श्रम तो लिया ही जाता है, परन्तु विशेषकर गाँवों की सफाई करने के लिए मैला उठाने के काम को विशेषतः तरजीह दी जाती है। उन्हें कम से कम खर्च में अपना जीवन-निर्वाह करने का ढंग बताया जाता है। यहाँ पर उनका पौष्टिक भोजन का खर्च केवल ५) महीना आता है। सब खर्च मिलाकर १०) से अधिक कभी नहीं आने पाता है। यहाँ की सादगी और मितव्ययता देखकर मद्रास प्रांत के प्रधान मन्त्री राजगोपालाचार्य ने एक दिन विद्यार्थियों से कहा था—"मुझे यह देखकर बड़ी खुशी हुई है कि आप लोगों को यहाँ पर इस प्रकार की शिक्षा दी जा रही है कि जिससे आप लोग गाँवों में १०) मासिक खर्च करके सेवा का कार्य अच्छी तरह कर सकेंगे। अब मैं आप लोगों को एक बात साफ-साफ बता देना चाहता हूँ कि जब आप किसी गाँव में जाकर बैठ जायँ तो आप सबको वहाँ भी इससे कुछ भी अधिक खर्च नहीं करना चाहिए। इस पैमाने के अनुसार आपको अपना जीवन ठीक-ठीक नियमित करना चाहिए। अगर आप ऐसा करेंगे तो मैं विश्वास दिलाता हूँ कि जिस किसी गाँव में जाकर आप रहेंगे, वह आपको इस तरह प्यारा हो जायगा कि मानों आप वहीं के निवासी हों, और तब आपको किसी सँस्था का मुँह नहीं ताकना पड़ेगा। आपकी आवश्यकताएँ गाँव के लोग पूरी कर देंगे पर शर्त यह है कि वे मर्यादा के अन्दर हों, क्योंकि यह तो आपको जानना ही चाहिए कि शायद ही गांव का अकेला कोई पुरुष आदमी इससे अधिक खर्च करता होगा। एक बात और आप लोग याद रक्खें कि जब तक आप अपने हुनर में खुद दस्तकारी में कुशल न हो जायँ तब तक गांवों में जाने की बात न सोचें। वहाँ एक मामूली हलवाहे या जुलाहे या मामूली कुम्हार या चमार की तरह जाने से कोई फायदा नहीं। जब तक उन्हें यह मालूम न हो जाय कि आप उन्हें हुनर सिखा सकते हैं, तब तक वे न आपकी बातें सुनेंगे और न आपकी तरफ ध्यान देंगे।" राजा जी के ही दृष्टिकोण को सामने रखकर यहां ट्रेनिङ्ग दी जा रही है। यहाँ का शिक्षण-क्रम बिलकुल वैसा ही बनाया गया है। विद्यार्थियों को सारे मानव-समाज में एक आदर्श कुटुम्ब बनाने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है, जिससे मानव-जगत में सत्य, अहिंसा का सुन्दर साम्राज्य स्थापित हो सके। लेकिन यह सब केवल शिक्षा से ही नहीं होता है। उसके लिए त्याग तथा तपस्या की आवश्यकता है। शब्दों के बजाय हृदय को सत्यमय बनाने की जरूरत है। इस स्कूल का आदर्श गाँधी जी के सिद्धांत हैं। परन्तु फिर भी कमियों का रहना अनिवार्य है, क्योंकि हरेक मनुष्य में कुछ न कुछ कमियों या त्रुटियों का समावेश तो है ही। अब ...

सैंकड़ों विद्यार्थी यहां से शिक्षा पाकर निकल चुके हैं परन्तु कई अवांछनीय कारणों से बहुत कम लोग सफलीभूत हो पाते हैं। लेकिन इसका उद्देश्य और कार्य सुन्दर है।

यहाँ का शिक्षण क्रम मामूली ज्ञान के लिए पाँच महीने का रहता है, किन्तु सब उद्योगों को सीखने के लिए कम से कम एक साल तक तो अवश्य रहना चाहिए। पाँच महीने तक जो विद्यार्थी वहां अध्ययन करते हैं, उन्हें नीचे लिखे दो उद्योगों में से किसी एक का शिक्षण—ग्राम सेवा के कुछ उपयोगी बौद्धिक-ज्ञान के साथ दिया जाता है।

हाथ-उद्योग

१—हाथ से कागज बनाने का उद्योग, पाँच महीने तक शिक्षा लेने वाले छात्र को सीख लेना पड़ता है।
२ तेल पेरना।
३—धान की भूसी निकालना, अनाज पीसना।
४—मधु-मक्खी पालना।
५—ताड़ छेदना और गुड़ बनाना।
६—ताड़-गुड़ और शक्कर बनाना।
७—साबुन बनाना।

बौद्धिक शिक्षा

१—गांधी-विचार-दोहन।
२—ग्रामीण अर्थ-शास्त्र।
३—सफाई, स्वास्थ्य और आरोग्य।
४—अखिल भारतीय ग्राम-उद्योग-संघ का सिद्धांत।
५—बहीखाता।
६—उद्योग के द्वारा तालीम।

बौद्धिक-शिक्षण के साथ रोजाना ४ घण्टा शारीरिक-श्रम भी लिया जाता है। विद्यार्थियों को सुबह चार बजे उठना पड़ता है. दोनों वक्त प्रार्थना भी होती है। छुट्टी के दिनों को छोड़कर, बाकी दिनों में विभिन्न कामों के लिए नीचे लिखा समय क्रम रहता है।

मुख्य उद्योग	घण्टा	मिनट
" "	४	३०
कातना	०	४५
खाना पकाना और सफाई	१	०
बौद्धिक शिक्षण	१	२०
व्यक्तिगत स्वास्थ्य निमित्त	१	०
स्वाध्याय	१	३०
प्रार्थना	०	३०

विद्यार्थियों को विद्यालय के छात्रालय में रहना पड़ता है और भोजन भी वहीं करना पड़ता है। जात-पांत का भेद-भाव कुछ नहीं है। छात्रालय में पूर्ण शाकाहारी भोजन मिलता है। नशीली चीजों के लिए सख्त मनाही है।

क्यों छोड़ूं मैं भी.........

(श्री उपेन्द्रनाथ 'अश्क')

जब इस जग के स्रष्टा की
रचना में नश्वरता है।
वह बन बन कर मिट जाती,
वह नित निर्मित करता है।

जाना कब आहें भरना
उसने असफल होने पर ?
वह कब चुप हो बैठा है
सिर को घुटनों में देकर ?

मैं भी छोड़ूं क्यों मधुरे !
नित—नूतन जगत बनाना ?
यह लाख बार बुझ जाए
क्यों छोड़ूं दीप जलाना ?

अप्रकाशित 'दर्पण' से

पाँडिचेरी के परमहंस

(ले०—श्री आचार्य अभयदेव सन्यासी, अरविंदाश्रम, पाँडिचेरी)

[२]

गत लेख में मैं पाठकों के सम्मुख जो कुछ उपस्थित करने का वचन दे चुका हूँ उसे इस लेख द्वारा पूरा कर रहा हूँ अर्थात् जब मैं दो मास तक (१८ फर्वरी से १५ अप्रैल तक) पाँडिचेरी के श्रीअरविंद आश्रम में रह कर लौटा तो वहाँ के वृत्तांत सुनने के लिये जो सभा वर्धा के गांधीजी के आश्रम में हुई तथा गुरुकुल कांगड़ी में हुई उस में पूछे गये प्रश्नों एवं उठाई गई शंकाओं का उत्तर सारांशतः मैं नीचे देता हूं। आशा है इस से श्रीअरविंद आश्रम के विषय में पाठकों को कुछ और ज्ञानवृद्धि होगी।

—लेखक

प्र०—वहां की दैनिक-चर्या क्या है ? आश्रम में कितने लोग रहते हैं ?

उ०—श्रीअरविंद आश्रम में लगभग दो सौ साधक रहते हैं। ये श्रीअरविंद से योग सीखने के लिए आकृष्ट हुए हैं और उनके योग के या उस आश्रम के योग्य समझे जाने के कारण आश्रमवासी बना लिए गए हैं।

प्रत्येक साधक अपना वह कार्य करता है, जो उसे सौंपा गया है अथवा जिसे करने की उसने अनुमति प्राप्त करली है। ऊपर से देखने में वहाँ साधक को बहुत स्वाधीनता है; पर अन्दर से प्रत्येक साधक बन्धा हुआ है। वहां कोई सार्वजनिक नियम नहीं है कि साधक इतने बजे जागें, इतने बजे स्नान करें, इतने बजे सोएँ इत्यादि। फिर भी प्रत्येक साधक अपनी दिन-चर्या में छोटासा भी फेरफार बिना इजाजत लिए नहीं करता है। और जो काम उसे दिया गया है उसे समय-पालन-पूर्वक (Punctuality के साथ) करता है। अर्थात् वहां प्रत्येक साधक अपनी वैयक्तिक दिनचर्या का पालन करता है; या उसे पालन करना चाहिए, ऐसी आशा की जाती है। भोजन में भी इतनी पाबन्दी है कि इतने बजे से इतने बजे के बीच भोजन ले लेना चाहिए। सामूहिक तौर पर नित्य किए जानेवाले वहां (भोजन के अतिरिक्त) दो कार्य होते हैं, जिनका नाम 'प्रणाम' और 'ध्यान' है।

प्रणाम

प्रणाम प्रातः नौ बजे से साढ़े दस बजे तक होता है। इसमें सब साधक माताजी को प्रणाम करते हैं। आपको मालूम हो चुका है कि वहाँ पर एक फ्रेंच महिला रहती हैं जिनका नाम 'मिरा' है। इनकी आध्यात्मिक-स्थिति वहाँ श्रीअरविंद जितनी ही मानी जाती है। आश्रम का सब बाह्य-कार्य-सञ्चालन ये माताजी ही करती हैं। श्रीअरविंद तो किसी से मिलते नहीं, दृष्टिगोचर तक नहीं होते (वर्ष में केवल तीन दिन दर्शन देते हैं)। तो ये ही माताजी हैं जिन्हें सब साधक इस समय प्रणाम करने और आशीर्वाद लेने उपस्थित होते हैं। माताजी करीब साढ़े नौ बजे नीचे आती हैं। सब साधक पूर्व ही

आकर बैठे होते हैं । माताजी आकर बीच में एक चौकी पर बैठती हैं, और ५—१० मिनट ध्यान करती हैं। उसके बाद एक-एक साधक उठकर उन्हें प्रणाम करता है—उनके चरण छूता है, या उनकी गोदी में सिर रखता है या कोई-कोई उनसे आंखें मिलाकर त्राटक करता है। तात्पर्य यह कि प्रत्येक साधक अपनी श्रद्धानुसार किसी न किसी प्रकार प्रणाम करता (झुकता) है । झुकते समय माताजी प्रत्येक साधक के सिरपर हाथ रखकर आशीर्वाद देती हैं । साथ ही एक फूल उसके हाथ में देती हैं । इस प्रकार दो सौ साधकों के प्रणाम करने में करीब सवा घण्टा लगता है। जो साधक किसी कार्य (Duty) पर होते हैं, वे भी ५—१० मिनट के लिए आकर प्रणाम कर जाते हैं । यह है प्रणाम !!!

ध्यान

शाम को भोजन के बाद करीब ७ बजे ध्यान होता है । साधक पहले से आकर शांत एवं मौन बैठते हैं। माताजी आकर सीढ़ियों पर खड़ी होती हैं और ध्यान करती हैं । सब साधक ध्यान में बैठे रहते हैं । करीब २०—२५ मिनट यह ध्यान चलता है। इस ध्यान या प्रातः के प्रणाम को समाप्त कर माताजी जब ऊपर जाती हैं तो ऊपर की सीढ़ियों से वे एक झरोखे से झांकती हैं । साधक उन्हें देखते हैं और वे साधकों की ओर देखती हैं । प्रातः प्रणाम के बाद विशेषतः साधक ठहरे रह कर यह झांकी लेते हैं।

मुझे भी प्रणाम और ध्यान में सम्मिलित होने की इजाजत मिली थी, और मैं दो महीने तक ये कार्य श्रद्धापूर्वक करता रहा।

मर्यादा

प्र०—क्या वहां स्त्रियां भी रहती हैं ?

उ०—हाँ ! वहां करीब ७०—८० स्त्रियां रहती हैं। दो सौ साधकों में से इतनी साधिकाएँ हैं।

प्र०—तो क्या वहां साधक सपत्नीक भी रह सकते हैं।

उ०—वहाँ पति-पत्नी सम्बन्ध से कोई नहीं रहता। वहां ऐसे साधक भी हैं जिनकी पत्नी भी साथ में कुछ समय बाद आश्रमवासिनी बनाली गई हैं किंतु वे जुदा रहती हैं। वहां जितने साधक-साधिका रहते हैं. वे केवल साधना करने के लिए रहते हैं। सब साधक-साधिकाओं का सम्बन्ध सीधा माताजी व श्रीअरविंद से है । अतः वहां स्त्री-पुरुषों का परस्पर साधक-साधिका या भाई-बहन का ही सम्बन्ध है। यही सम्बन्ध उनका है जो पहिले पति-पत्नी थे।

मुझे उस चिट्ठी-पत्री को भी पढ़ लेने की इजाजत मिल गई थी, जो केवल आश्रमवासियों के लिए हैं, बाहर वालों के लिए नहीं । उसे पढ़ने पर मैंने देखा कि श्रीअरबिंद ब्रह्मचर्य पर अधिक जोर देते हैं। जिस स्त्री व पुरुष ने इस वासना को ही सर्वथा शान्त नहीं कर देना है, उसका श्रीअरविंदाश्रम में कोई काम नहीं है। ऐसे आदमी को श्रीअरविंद कहते हैं कि यदि तुम इसके लिए भी तैयार नहीं तो तुम बाहर दुनिया में रहो। यह मार्ग तुम्हारे लिए नहीं।

मैं जहां तक अनुभव कर सका हूं वहां तक यही कह सकता हूं कि वहाँ ब्रह्मचर्य का प्रबल वायुमण्डल है ।

प्रवेश

प्र०—वहां प्रविष्ट होने के क्या नियम हैं ?

उ०—किसी को प्रविष्ट करना या न करना श्रीअरविंद व माताजी के हाथ में है । प्रविष्ट होने के और कोई नियम नहीं हैं । श्रीअरविंद कहते हैं कि मैंने किसी को नहीं बुलाया है । जो पुरुष व स्त्री उनके आश्रमवासी होने की प्रार्थना करते हैं, उन्हें वे अपनी इच्छानुसार स्वीकृत या अस्वीकृत कर देते हैं। मैं एक अच्छे साधक को जानता हूँ,जिसे चार बार अस्वीकृत किए जाने के बाद अन्त में उसकी प्रार्थना स्वीकार की गई। प्रायः वे उन लोगों को भी जिनको वे इस मार्ग योग्य समझते हैं कुछ देर बाहर के आदमी के तौर पर रहने की सलाह देते हैं और कुछ समय उन्हें देख लेने के बाद ही आश्रमवासी बनाते

हैं। थोड़े से ऐसे भी दृष्टान्त हैं जिन्हें उन्होंने बहुत जल्दी स्वीकार कर लिया है, रखकर देखने की आवश्यकता नहीं समझी। वहां पर समझा जाता है कि बाहर के आदमी के तौर पर रहते हुए जिसे आश्रम का कुछ काम करने को दे दिया जाय तो उसकी स्वीकृति हो जाने की सम्भावना बढ़ जाती है। वे स्वीकृति (आश्रम में प्रविष्ट) उसे ही करते हैं जिसे वे अपने योग-मार्ग का अधिकारी समझते हैं, या उसमें सहायक समझते हैं।

भोजन-व्यवस्था

प्रश्न—वहाँ के साधक लोग भोजन में क्या खाते हैं? हमने सुना है कि वहाँ के लोग मांस, शराब आदि खाते-पीते रहते हैं?

उत्तर—मैं ने भी ऐसा सुन रखा था। पर वहां मैंने उलटा देखा। गौ का दूध, चीनी, बिना मसाले का शाक व दाल, चावल, केले, नींबू और बिना छने आटे की डबल रोटी (Brown Bread) वहां का नियत आहार है। वे तीन बार भोजन करते हैं। सुबह और शाम का भोजन हलका होता है। मांस, मछली, शराब आदि का वहाँ कुछ काम नहीं व मिर्च, मसाले व सिगरेट भी वहां निषिद्ध हैं। बात यह है कि जब तक आश्रम नहीं बना था अर्थात् श्री अरविंद अपनी साधना में लगे थे, तब तक उनके आस पास रहने वाले किसी भी विशेष नियम में नहीं रहते थे। तब तक की उपर्युक्त बातें हैं। परन्तु सन १९२६ में, जब से श्री अरविंद ने सिखाने का कार्य प्रारम्भ किया और माता जी ने सब प्रबन्ध अपने हाथ में लिया, तब से जो लोग आश्रमवासी बनना चाहते थे उन्हें सिगरेट तक पीना छोड़ देना पड़ा।

प्रश्न—भोजन कौन बनाते हैं?

उत्तर—आश्रम के साधक साधिकायें—विशेषतः साधिकाएँ-ही ये सब काम करती हैं। अतः वहां का भोजन बहुत सफाई से और वैज्ञानिक तौर पर भी पवित्र बनता है।

अपनी गोशाला के दूध के अतिरिक्त जो दूध शहर से लिया जाता है वह भी अपने सामने स्तनों को औषध से धोकर दुहाते हैं। केले, नींबू आदि लाल दवा में धोकर बर्ते जाते हैं। खाने के लिए जो चीनी व एनामल के बर्त्तन प्रयुक्त किये जाते हैं; उन्हें गर्म पानी, साबुन का पानी तदन्तर स्वच्छ पानी में से गुजारा जाता है। यह सब काम साधक करते हैं। हरेक साधक की थाली जालीदार अलमारी में यथा-स्थान (जहाँ उसका नाम लिखा रहता है) रखी होती है, और दूसरे कमरे में कतार में आसन बिछे हाले हैं। उनके सामने प्रत्येक साधक के लिए लकड़ी की छोटी सी तिपाई (जिस पर एक स्वच्छ कपड़ा बिछा होता है) पड़ी रहती है। साधक आता है, अलमारी में से अपनी थाली उठाकर, आसन पर बैठ, तिपाई पर रख, चुपचाप भोजन करने लगता है। वहाँ भोजन बार-बार बांटा नहीं जाता है। साधक के कथनानुसार नियत भोजन पहले ही थाली में परोसा रहता है। वहाँ सब काम चुपचाप चलता है। भोजन कर चुकने पर वह बाहर यदि कुछ जूठन हो तो एक पीपे में डालकर थाली आदि बरतन जुदा २ यथा-स्थान रख दिए जाते हैं और बर्तन साफ करने वाले साधक इन बर्तनों को अपने जिम्मे ले लेते हैं।

भोजन में तीन पाव दूध (सुबह-शाम पाव-पाव भर दूध और दोपहर को पाव भर दही) होता है। घी का प्रयोग नहीं होता। फलों में केला (प्रातः एक केला, दोपहर को तीन केले) और नींबू प्रतिदिन दिए जाते हैं।

हिन्दी

प्र०—श्रीअरविंद हिन्दी जानते हैं? आश्रमवासी आपस में किस भाषा में बातचीत करते हैं? क्या वहाँ यूरोपियन भी रहते हैं?

उ०—श्रीअरविन्द साफ २ लिखी हुई हिन्दी पढ़ लेते हैं (चूँकि उन्होंने संस्कृत बहुत पढ़ी है), समझ लेते हैं। अतएव पहला पत्र मैंने उन्हें हिन्दी

-ही लिखा था। वे योगी हैं अतः यह भी आशा की जाती है कि वे एक-एक शब्द बिना पढ़े भी भाव समझ जाते हैं। परन्तु वे उत्तर तो इङ्गलिश में ही देते हैं। अतः वहां की भाषा इङ्गलिश ही कही जा सकती है। पर वहां के गुजराती (जो कि संख्या में सब से अधिक हैं) परस्पर गुजराती भाषा में ही बातचीत करते हैं। बङ्गाली बङ्गला में, मद्रासी अपनी अपनी तामिल-तेलगु में भी। वहां पर ४—५ बिहारियों के और १—२ पञ्जाबियों के अतिरिक्त हिन्दी जानने वाले गिने-चुने ही हैं। भारत-बाह्य देशों में से फ्रांस, इङ्गलैंड, अमेरिका के भी ८—१० साधक-साधिकाएँ वहाँ हैं। ५-७ मुसलमान साधक-साधिकाएँ भी हैं। पर वहां ये सब एक हैं। जाति, रङ्ग, मजहब का कोई भेद नहीं है।

अन्य व्यवस्था

प्र०—क्या वहाँ आसन, प्राणायाम आदि सिखाया जाता है?

उ०—नहीं, वे जिस योगमार्ग से चलते हैं उसमें आसन, प्राणायाम करना कुछ भी आवश्यक नहीं है।

प्र०—तो साधक लोग वहां क्या काम करते हैं?

उ०—उनके योग में 'कर्म' को उत्तम स्थान है। 'ध्यान' और 'प्रणाम' का मैं पहले वर्णन कर चुका हूँ। इनके अतिरिक्त जिन साधकों को (और प्रायः सभी को थोड़ा बहुत) काम दिया होता है, वे अपने उन कामों को भगवदर्पण-बुद्धि से करते हैं। आटा पीसना, डबल रोटी बनाना, रसोई पकाना, सफाई, पहरा देना, बढ़ई का काम, गोशाला, इञ्जिनियरिङ्ग, बाग़बानी, लोहारी, टाइप करना, पुस्तक आदि लिखना, कविता करना, गान, चित्रकारी आदि सभी प्रकार के काम वहाँ अपनी साधना के रूपमें किए जाते हैं। यह बताना अप्रासङ्गिक नहीं होगा कि वहां एक प्रसिद्ध इञ्जिनियर साधक हैं। भारत के प्रसिद्ध गायक (जो यूरोप में भारतीय गान की छाप बिठा आये हैं) श्री दिलीपराय वहीं श्रीअरविन्द को अपना जीवन सौंप कर बैठे हैं। गुजरात के एक प्रसिद्ध कलाकार वहीं के हो गए हैं। तो आप जानना चाहेंगे कि उनका योगमार्ग क्या है?

(क्रमशः)

—:०:—

'दीपक' पर सम्मति—

आज अप्रेल का 'दीपक' चम्पारन से भटकता हुआ यहां आया। 'दीपक' के इस रूप में देखकर अतीव प्रसन्न हुआ। आप लोगों ने 'दीपक' द्वारा पञ्जाब का मुख उज्ज्वल किया है—पँजाबवासी भले ही इसका महत्त्व न समझें।

छपरा जेल }
६—४—३९ }

—भिक्षु नागार्जुन

❀ ❀ ❀ ❀

इन प्रतिकूल परिस्थितियों के बीच भी 'दीपक' की रोशनी से आत्मा की टोह लेता रहा, क्योंकि 'दीपक' प्रकाश का प्रतीक है और प्रकाश ही जीवन का उल्लास है। 'दीपक' खेतों, खलिहानों और चरागाहों में बसे हुए भारत के लिए हर महीने जीवन का उल्लास लेकर आता है। उससे देहाती-दुनियाँ लाभ उठाये—यही मेरी मन्शा है।

छिन्दवाड़ा (सी० पी०)

—डा० रविप्रतापसिंह श्रीनेत

सामयिक-चर्चा

जनतन्त्र क्या है ?

(ले०—श्री अमरनाथ विद्यालंकार, सर्वेन्ट्स आफ़ दी पीपल सोसायटी, अमृतसर)

आज भारतवर्ष में 'जनतन्त्र' की बड़ी चर्चा है। इसके असली रूप, विभिन्न भाग तथा फासिज़्म, कम्यूनिज़्म आदि से इसका अन्तर आदि बातों को अनुभवी लेखक ने बहुत आसान तरीके से बतलाया है। —सम्पादक

आजकल जनतन्त्र', 'लोकतन्त्र' या जम्हूरियत—जिसे अङ्गरेज़ी में 'डिमोक्रेसी' कहते हैं—की सर्वत्र बहुत चर्चा है। लोग समझ-बूझकर या बगैर समझे बूझे, दोनों तरह इन शब्दों का उपयोग करते हैं। आमतौर पर इतना सभी ने समझ लिया है कि यह एक अच्छी चीज़ है, और इस का विरोध करना अपने आपको लोगों की नज़रों में गिराना है। मगर हम में से बहुत कम लोग इसका पूरा अर्थ और इसके अन्तर्निहित भावों को समझते हैं। इस लिए इसे समझाना ज़रूरी है।

'जनतन्त्र' या 'लोकतन्त्र' का अर्थ है 'जनता का शासन'। अङ्गरेज़ी शब्द का भी यही भावार्थ है। ईसा से छठी, पांचवीं और चौथी सदी पूर्व यूनान में जनतन्त्र शासन था। भारतवर्ष में भी इससे मिलती-जुलती शासन-प्रणाली यहां के 'गण राज्यों' में प्रचलित थी। परन्तु उस ज़माने के जनतन्त्र और आज के जनतन्त्र में बहुत अन्तर है। पुराने ज़माने में जनता खुद अपना शासन करती थी। नगर के सब लोग एकत्र हो कर शासन-प्रबन्ध सम्बन्धी मामलों पर अपनी राय देते थे। इसे जनता का प्रत्यक्ष-शासन (direct democracy) कहते हैं।

परन्तु आज-कल जनता परोक्ष रूप से शासन करती है। जनता प्रत्येक विषय पर खुद राय न देकर अपने प्रतिनिधि नियुक्त करती है। प्रतिनिधि चुनना जनता के हाथ में है। प्रत्येक व्यक्ति को राय देने का हक हासिल है और वह राय देता है कि किसे प्रतिनिधि चुना जाय? प्रतिनिधिगण प्रतिनिधिसभा या पार्लमेंट में इकट्ठे होकर शासन सम्बन्धी प्रश्नों का निर्णय करते हैं। प्रतिनिधि जनता के प्रति उत्तरदाता है। शासन-सत्ता या प्रभुत्व (Sovereignty) जनता के हाथ में है, जिसका इस्तेमाल जनता के प्रतिनिधि रूप से निर्वाचित सदस्य करते हैं। आजकल के जनतन्त्र में सम्पूर्ण वयस्क या बालिग़ नागरिकों को मत देने का हक रहता है। परन्तु प्राचीन यूनान में प्रत्येक व्यक्ति को नागरिक नहीं समझा जाता था। दास लोग नागरिक नहीं समझे जाते थे। नागरिकता के अधिकारों के लिए सम्पत्ति की शर्त भी थी। स्त्रियों को भी नागरिकता के अधिकार प्राप्त नहीं थे। यदि आधुनिक जनतन्त्र के किसी नागरिक को प्राचीन यूनान के किसी जनतन्त्र-राज्य में रहना होता तो वह उसे जनतन्त्र का नाम न देकर 'वर्गतन्त्र' का नाम देता, क्योंकि शासन के समस्त अधिकार एक वर्ग के हाथ में थे। राज्य के अधिक ग़रीब और महत्त्वशून्य व्यक्तियों को शासन प्रबन्ध में हिस्सा लेने का कोई अवसर न था। आधुनिक जनतन्त्र में हरएक नागरिक को बराबर के हक हासिल हैं।

आधुनिक जनतन्त्र जनता का परोक्ष शासन है—या आप इसे प्रतिनिधि-तन्त्र शासन (Representative or Parliamentary democracy) कह लीजिए। परन्तु प्रतिनिधि भी सीधे स्वयं शासन नहीं करते। शासन तो मन्त्रिमण्डल करता है। यह मन्त्रिमण्डल

का शासन या Cabinet Government हुई। यह मँत्रिमण्डल या तो प्रतिनिधिसभा से अधिकार प्राप्त करता है, जैसा इङ्गलैंड में है, अथवा सीधे जनता से, जैसा अमेरिका में प्रेज़ीडेंट के चुनाव में होताहै। दोनों ही हालतों में मँत्रिमण्डल प्रतिनिधिसभा या जनता के प्रति उत्तरदाता है—इसलिए इसे उत्तरदायी शासन या Responsible government का भी नाम दिया जाता है। इस प्रकार आधुनिक जनतँत्र के दो अंग हुए—प्रतिनिधि-सभा और उत्तरदाता शासक-वर्ग (executive)।

जनतँत्र-शासन का सारा दारोमदार इस बात पर है कि जनता किस किस्म के प्रतिनिधि चुनती है? यदि जनता चौकन्नी और जागृत है, यदि उसे अपने शासन-कार्य में दिलचस्पी है, यदि उसे अपने हित-अहित का ज्ञान है इतना ही नहीं यदि उसमें अपने हिताहित का निश्चय करने के लिए पर्याप्त विवेक-बुद्धि भी है, तो अवश्य वह योग्य और विश्वासपात्र प्रतिनिधियों को चुनेगी। परन्तु यदि जनता में उपर्युक्त योग्यता नहीं तो वह निकम्मे प्रतिनिधि चुनेगी, अपने मताधिकार का दुरुपयोग करेगी, घरेलू स्वार्थों के लिए अपने अधिकारों को बेच देगी। इसलिए जनता का जागरूक—चौकन्ने रहना और अपने अधिकारों की पूरी तरह चौकीदारी करना जनतन्त्र के लिए आवश्यक है। साथ ही जनता में खुद अपना शासन आप करने की प्रबल लालसा होनी चाहिए। जहाँ जनता "कोउ नृप होय हमें का हानी, चेरी छोड़ नहीं होउब रानी" की उपासक होती है, वहाँ जनतँत्र सफल नहीं हो सकता।

जिस प्रकार जज के आगे दोनों पक्षों के वकील अपना २ पक्ष पेश करते हैं और दोनों की दलीलों को सुनकर जज अपना फैसला देता है, इसी तरह जनतारूपी जज के सामने विविध गिरोह या दल शासन-सम्बन्धी मामलों पर अपना २ विचार पेश करते हैं। जनता को प्रतिनिधियों को चुनना है। पर चुनाव के लिए दो या दो से ज़्यादा व्यक्ति चाहिएँ। भिन्न २ असूलों और नीतियों के पक्षपाती जनता की अदालत में अपना केस पेश करते हैं, क्योंकि चुनाव में व्यक्तियों की अपेक्षा हमेशा सिद्धांतों और नीतियों का महत्व ज़्यादा होता है। विविध सिद्धाँतों और नीतियों के समर्थक जुदा २ दलों या पार्टियों में विभक्त हो कर जनता की राय अपने पक्ष में करने की कोशिश किया करते हैं। इससे हरेक सवाल के विविध पहलू जनता की नज़रों में आ जाते हैं, और वह उनके मुताल्लिक अपना निर्णय दे सकती है। इसलिए पार्टी या दलों की जरूरत हुआ करती है। जिस दल का बहुमत प्रतिनिधियों में होता है वही दल शासन की जिम्मेवारी सम्भालता है। इसलिए इसे दलगत-शासन (Party government) भी कहते हैं। जबतक कोई दल जनता का विश्वासपात्र रहता है, तबतक वही शासन कार्य चलाता है। दूसरे दल शासक दल की नुक्ताचीनी करके उसकी कमजोरियों को जनता के आगे लाते हैं और धीरे २ अपने सिद्धांतों और नीतियों की सत्यता सिद्ध करने की कोशिश करते हैं। यह दल 'विरोधी दल' कहलाते हैं। दल या पार्टियाँ भी जनतन्त्र-शासन के लिए उसी प्रकार आवश्यक हैं जिस तरह अदालत के लिए वकील। जिस राज्य में सिर्फ एक दल हो वहाँ जनतन्त्र-प्रणाली नहीं चल सकती। आधुनिक जनतन्त्र और फ़ासिस्ट तथा कम्युनिस्ट राज्यों की प्रणालियों में यही एक बड़ा भेद है। फासिस्ट और कम्युनिस्ट राज्यों में शासन-प्रबंध एक पार्टी के हाथ में है और उस एक पार्टी के अतिरिक्त सब पार्टियाँ गैर कानूनी हैं। लेकिन जनतन्त्र-प्रणाली का आधार इस तथ्य में है कि मानव व्यक्तियों में परस्पर मतभेद और विचार-भेद स्वाभाविक और आवश्यक है, और इस स्वाभाविक भेद को मिटाने का अर्थ दिमागी-स्वतन्त्रता का विनाश है। क्योंकि विचार-भेद स्वाभाविक है इसलिए पार्टियाँ भी स्वाभाविक और आवश्यक हैं। जनतन्त्र शासन में विरोधी दल की सत्ता उतनी ही आवश्यक है जितनी शासक दल की। ज्यों ही शासक दल अपने सिवा अन्य दलों को कुचल देगा, जनतँत्र एक पार्टी का शासन या वर्गतन्त्र (oligarchy) बन जाएगा। इसलिए जहाँ लोग विचार-भेद को सहन नहीं करते वहाँ जनतँत्र-प्रणाली सफल नहीं होती।

जनतन्त्र-प्रणाली एक आदर्श प्रणाली है। परन्तु इसकी शर्तें बहुत कड़ी हैं। जैसा कि ऊपर कहा गया है, जनता जागृत और शिक्षित होनी चाहिए और उसे शासन-कार्य में दिलचस्पी होनी चाहिए। जनता, पार्टी, प्रतिनिधि और शासकवर्ग को अपनी २ सीमा में रहना चाहिए। जहाँ वे सीमाओं का उल्लङ्घन करने लगें, वहाँ जनतन्त्र नहीं रह सकता। पार्टी अपनी सीमा का उल्लङ्घन करे तो झगड़े शुरू हो जाते हैं और एक पार्टी अन्य पार्टियों को ख़तम कर देती है। जनता अपने अधिकारों से बेख़बर हो तो उसकी असावधानता के कारण प्रतिनिधि या शासक-वर्ग अधिकारों का दुरुपयोग करने लगते हैं। परन्तु दूसरी ओर यदि अपने ही चुने हुए प्रतिनिधियों पर निरन्तर अविश्वास बना रहे या वह उनकी बात २ पर नुक्ताचीनी करती रहे तो कोई आत्म-सम्मान वाला व्यक्ति उसका प्रतिनिधित्व न करना चाहेगा। एक वहमी सायल का मुकद्दमा कोई अच्छा वकील लेने को तैयार नहीं होता। प्रतिनिधि यदि शासन की ज़िम्मेदारी महसूस न करें तो व्यर्थ के लम्बे वाद-विवाद में समय खोया करते हैं। वे आवश्यक और अनावश्यक में भेद नहीं करते और तिल का ताड़ बनाकर मामूली से विचार-भेद को गहरे मतभेद का कारण बना लेते हैं। हमेशा याद रखना चाहिए कि अनावश्यक तफ़सीलों पर लड़ना बुद्धिमत्ता नहीं। ऐसे प्रतिनिधि मन्त्रिमण्डल को बार २ बदलवा करते हैं।

मन्त्रिमण्डल या शासक-वर्ग यदि अपनी ज़िम्मेदारी को न समझे तो वह अधिकारारूढ़ होकर अपने सिद्धान्तों को भूल जाता है। जिस देश या राष्ट्र में जिस अंश तक जनतन्त्र-शासन के यह चारों अङ्ग भली-भान्ति कार्य कर रहे हैं, उसी अंश तक वहाँ जनतन्त्र-प्रणाली को सफलता प्राप्त हो रही है।

हमारे देश में जनतन्त्र या जमहूरी शासन की चर्चा बहुत है, परन्तु हम अपने देश की जनता को इस प्रणाली की जिम्मेवारियों को सम्भालने के लिए तैयार करने का प्रयत्न बहुत कम कर रहे हैं। इस प्रणाली की सफलता जनता की शिक्षा और सुसंस्कार पर निर्भर है। इसलिए हमारा प्रथम कर्तव्य जनता को जनतन्त्र-प्रणाली की जिम्मेवारियों से आगाह करना और उसके लिए उसे तैयार करना है।

मेरा प्यार

[रचयिता—श्री विपिनबिहारी वाजपेयी]

मेरे जीवन बन आधार।
यह मेरा चिर-सञ्चित प्यार॥

किसके चरणों पर ढुरका दूँ?
हृदय खोल कर किसे चढ़ा दूँ?
किसमें सम्प्रति घुला मिला दूँ?
मेरे जीवन बन आधार।
यह मेरा चिर-सञ्चित प्यार॥

प्रणयादिक में काम तुष्टि है,
देशभक्ति में स्वार्थ दृष्टि है,
सुविज्ञान में लोभ सृष्टि है,
वहां न होगा एकाकार।
यह मेरा चिर-सञ्चित प्यार॥

काम क्रोध की जहां न गति है,
माया ममता पूर्ण न मति है,
जिसका आदि न जिसकी इति है,
वहीं लीन हो हे कर्त्तार!
यह मेरा चिर-सञ्चित प्यार॥

त्रिपुरी के संगम पर—

(ले०—श्री रमेश वर्मा)

पुरी के राष्ट्रीय महापर्व में 'दास परस अरु मज्जन पान' कर जो लोग लौटे, वे दिमागों पर कई तरह के विचारों का बोझ और दिलों में कई तरह की भावनाओं की हलचल लेकर आये। जिसको जैसी भावना रही, उसने उसी रूप में त्रिपुरी की राष्ट्र-मूर्त्ति के दर्शन किए।

आज जब वातावरण कुछ शाँत है, (आजकी दशा त्रिपुरी से भी अधिक बिगड़ी है। सं०) तब त्रिपुरी की हलचलों के अन्दर बहने वाली भिन्न-भिन्न विचार-धाराओं के प्रवाह, गुण और स्थिति पर व्यापक दृष्टि से विचार करने का समय आ गया है। क्या कांग्रेस सँयुक्त-मोर्चा बन सकती है? या वह एक राष्ट्रीय संस्था के रूप में ही काम कर सकती है? यह एक व्यापक प्रश्न है जो कांग्रेस की हलचलों के अन्दर काम कर रहा है। वाम-दक्षिण या नरम-गरम का भेद कांग्रेस में विवाद-ग्रस्त विषय है, क्योंकि काँग्रेस में नरम या माडरेट शब्द अपमानजनक समझे जाते हैं और खुले रूप में कोई भी काँग्रेस का आदमी इन्हें अपनाने के लिए तैयार नहीं है। मुख्य भेद एक नीति का है। क्या अलग अलग सिद्धान्त और आदर्शों को मानकर चलने वाले व्यक्ति काँग्रेस की एक ही नाव में बैठकर पार हो सकते हैं? जहाँ तक विचार और सिद्धान्तों का सम्बन्ध है, वहाँ तक तो कोई भी व्यक्ति काँग्रेस के ध्येय में निष्ठा रखकर, उसमें शामिल होकर आजादी की लड़ाई लड़ सकता है। पर जब एक ही तरह के विचार और एक से सिद्धांतों में विश्वास रखने वाले व्यक्ति सँगठित रूप से कांग्रेस की नीति और उसके कार्य-क्रम पर अपना प्रभाव डालें तो क्या यह काँग्रेस और राष्ट्रीय आंदोलन के लिए हितकर बात होगी? कांग्रेस में एक पक्ष इस बात में विश्वास नहीं करता। उसे कांग्रेस के अन्दर सँयुक्त मोर्चे की नीति पसन्द नहीं—वह एक ही तरह का नेतृत्व चाहता है। महात्मा गाँधी और पँ० जवाहरलालनेहरू का अन्तर यहीं स्पष्ट होता है। महात्मा जी ने बार २ कांग्रेस की शुद्धि करने की बात पर जोर दिया है। बहुत से समाजवादी व कम्यूनिस्ट लोगों का यह ख्याल है कि यह शुद्धि शायद इसी प्रकार की होगी जैसी रूस में कम्यूनिस्ट पार्टी की शुद्धि कई बार हो चुकी है। तब उग्रवादी कम्यूनिस्ट या सोशलिस्ट काँग्रेस में रह सकेंगे, यह परिस्थितियों पर निर्भर है। काँग्रेस का दूसरा एक पक्ष कांग्रेस में सामूहिक प्रतिनिधित्व (Collective affiliation) का समर्थक है। इसमें समाजवादी, साम्यवादी, किसान सभा वाले आदि लोग शामिल हैं। गाँधी जी के अनुयायी काँग्रेस में इस दूसरे पक्ष के लोगों का नेतृत्व नहीं चाहते। यह दूसरा दल जिसे वाम पक्ष का नाम दिया गया है, उसमें नीति और कार्य क्रम के सम्बन्ध में आपस में मतभेद है। कहीं वे आपस में एक हैं और कहीं अलग अलग। त्रिपुरी में जो कुछ हुआ वह सब इन्हीं अलग २ खयाल, नीति, आदर्श और कार्यक्रम का परस्पर सँघर्ष था।

दक्षिण व वाम-पक्ष

दक्षिण या वाम-पक्ष का सवाल अब तक किसी सिद्धांत या विशेष नीति का द्योतक नहीं बना है। यह एक राजनैतिक प्रयोग (Political Expression) है जो अब काँग्रेस में दो अलग-

अलग दल-विशेष के रूप में व्यवहृत होने लगा है। कांग्रेस में वाम या दक्षिण पक्ष के बीच में कोई रेखा नहीं खींच सकते। श्रीयुत जयरामदास दौलतराम के शब्दों में तो स्थान और समय-विशेष पर एक वाम-पक्षीय, दक्षिण-पक्षीय और दक्षिण-पक्षीय वाम-पक्षीय भी हो सकता है। अगर वामपक्षीय का मतलब अपेक्षाकृत उग्रवादी होता है तो कांग्रेस समाजवादियों के मुकाबले कम्यूनिस्ट लोग वाम-पक्षीय कहे जा सकते हैं। पर वाम-पक्ष का यह अर्थ भ्रमात्मक है। आजकल कांग्रेस में वाम-पक्षीय से मतलब गांधी जी के अनुयायियों से इतर दूसरे व्यक्तियों से है जो कांग्रेस में उग्र कार्य-क्रम चाहते हैं। सभी गांधीवादी दक्षिण-पक्षीय हैं, ऐसा भी नहीं कह सकते, क्योंकि गाँधीवादियों में भी कुछ तो इतने ही उग्र हैं, जितना कोई समाजवादी हो सकता है। कुछ लोग ऐसे हैं जो सभी बातों में न गाँधीवादियों के साथ हैं, न समाजवादियों के। ऐसे लोगों को बीच का आदमी (Centrist) कहते हैं। कांग्रेस समाजवादी, कम्यूनिस्ट, रायवादी और किसान सभा वाले, जिस एक जगह पर बैठ सकते हैं वह वाम-पक्ष (Left Bloc) है। इन दलों में भी किसी की नीति और कार्यक्रम से दूसरे को गहरा मत-भेद है, पर कांग्रेस को उत्तरोत्तर क्रांति-पथ पर अग्रसर करने की नीति में इन सबका एक मत हो सकता है। गांधीवादियों के साथ इनका मौलिक और सैद्धान्तिक मत-भेद है, इसलिए इन दो के बीच में एक रेखा खिंच जाती है। किन्तु इसी को वाम या दक्षिण-पक्ष नहीं कहते। कुछ स्वतन्त्र कांग्रेसजन, जो न समाजवादी हैं, न गांधीवादी, अपने को वामपक्ष के साथ सम्बन्धित रखते हैं। यह पहले कहा जा चुका है कि गाँधी-वादियों में कुछ व्यक्ति ऐसे हैं, जिनका गांधी जी की बातों या कांग्रेस हाईकमाण्ड की धारासभाओं वाली नीति से मतभेद है। इन सबको यदि एक वामपक्षी का आदमी समझ लिया जाय तो कांग्रेस में उसकी शक्ति शुद्ध गांधीवादियों के बराबर की है। राष्ट्रपति के चुनाव में यह सब एक थे और इसी कारण श्रीयुत बोस राष्ट्रपति चुने गये। परन्तु अलग-अलग नीति और सिद्धांतों के कारण वे हर मामले पर एक नहीं हो सकते। वामपक्ष की एकता तभी असम्भव दिखाई पड़ रही है, क्योंकि जो गांधीवादी किसी मामले पर वाम-पक्ष का साथ दे जाते हैं वह तभी तक जब तक वह मामला वाम या दक्षिण पक्ष के सवाल के रूप में पेश नहीं होता। राष्ट्रपति के चुनाव में यद्यपि श्री सुभाष बोस ने अपने वक्तव्यों में वाम और दक्षिण पक्ष की बात कही, पर चुनाव में राय देने पर प्रतिनिधियों के सामने यह सवाल मुख्य नहीं रह गया। तब कुछ गांधीवादी सुभाष बोस के साथ थे, पर त्रिपुरी में, जहाँ यह सवाल वामपक्ष बनाम दक्षिण-पक्ष के रूप में सामने आया तो सब गांधीवादी एक थे। इसी प्रकार वे स्वतन्त्र व्यक्ति जो न गांधीवादी हैं और न समाजवादी, कब तक वामपक्षीय रह सकते हैं, यह भी सन्देह का विषय है। कांग्रेस-समाजवादी इसीलिए इन लोगों के साथ वामपक्ष वालों का दल (Left Bloc) बनाने के विरोध हैं। कांग्रेस-समाजवादी केवल समाजवादी-एकता (Socialist Unity) के हामी हैं। कांग्रेस में वाम और दक्षिण पक्ष पर उनका विश्वास नहीं है। दक्षिण पक्ष का अर्थ ये लोग माडरेट या 'नरम दल वाले' लोग लगाते हैं, इसलिए कांग्रेस-समाजवादी नेता आचार्य नरेन्द्रदेव कहते हैं कि कांग्रेस में कोई नरमदली या दक्षिण-पक्ष का नेता नहीं है। पं० जवाहरलाल नेहरू के भी यही विचार हैं। आपने हाल ही में अपने लेखों में यह लिखा है [कांग्रेस में कोई दक्षिण पक्षीय नेता नहीं है]। इसका अर्थ है कि वे लोग सम्पूर्ण कांग्रेस को वामपक्षीय कहते हैं और दक्षिण तथा वाम-पक्ष के अस्तित्व को स्वीकार करते हैं।

दृष्टिकोण में भेद

असल में वामपक्ष का अर्थ कांग्रेस में अब तक कांग्रेस के पुराने नेताओं की शैली के विरोध करने

पर उठा है। या बामपक्ष को कांग्रेस में कांग्रेस की 'आफ़िसियल पार्टी' का विरोधी दल कह सकते हैं। पर इस विरोध में भी अन्तर है। कांग्रेस-समाजवादी कांग्रेस के वर्तमान नेतृत्व का विरोध नहीं करते। वे केवल उसकी उन बातों का विरोध करते हैं, जो उनकी राय में कांग्रेस को उत्तरोत्तर अग्रगामी बनाने और उसे समाजवाद की ओर ले जाने में रुकावट पैदा करती हैं। कम्यूनिस्ट लोग कांग्रेस में नए नेतृत्व के हामी हैं, पर कांग्रेस में एकता बनी रहने पर सबसे अधिक जोर देते हैं ताकि उनका साम्राज्य-विरोधी मोर्चा मजबूत रहे। गाँधी जी या गांधीवादियों के साथ रहते हुए यदि कांग्रेस का नेतृत्व बामपक्ष के हाथ में आ जाय तो वे इसका स्वागत करेंगे, पर नेतृत्व बदलने पर अगर गांधी-पक्ष के नेता कांग्रेस से अलग होते हैं तो उन्हें नेतृत्व देकर भी, कांग्रेस की एकता को वे कायम रखना चाहते हैं। रायवादी लोग कांग्रेस के बर्तमान नेतृत्व को नहीं चाहते और वे हर दशा में उसे बदल देने के पक्षपाती हैं।

इस प्रकार कांग्रेस के वामपक्ष में अलग-अलग सिद्धान्त (Ideology) हैं। उनकी नीति और कार्य-क्रम में भी कहीं-कहीं फर्क है। कुछ स्वतन्त्र कांग्रेसजन वर्तमान नेतृत्व से और खासकर सरदार पटेल से वैयक्तिक मामलों में नाराज हैं और वे बाम-पक्ष के साथ हैं।

दो प्रकार की मनोवृत्ति

फिर भी पं० जवाहरलाल नेहरू और कांग्रेस-समाजवादी लोगों द्वारा अस्वीकार किए जाने पर भी, काँग्रेस में वाम और दक्षिण पक्ष का सवाल नहीं मिटेगा; क्योंकि इसका सम्बन्ध कांग्रेस की सामूहिक नीति से न होकर विशेषतः व्यक्तियों की मनोवृत्ति से है। जिस प्रकार आज यह सबूत नहीं दिया जा सकता कि कांग्रेस के अन्दर कोई भी व्यक्ति फैडरेशन के सम्बन्ध में अंग्रेजी सरकार से समझौता करना चाहता है, हालांकि यह बात हवा में उड़ रही थी और जहाँ पक्षी उड़ते हों वहाँ जलाशय का अनुमान कर लेना अदूरदर्शिता नहीं है, इसी प्रकार कांग्रेस में कुछ व्यक्तियों का झुकाव विधानवाद की ओर है। आजादी के लिए वैधानिक तरीका अच्छा है या सीधी मुठभेड़—यह सिद्धान्त का सवाल है और सैद्धान्तिक मतभेद है। काँग्रेस से बाहर विधानवाद के समर्थक व्यक्ति भी हैं, जिनके अलग राजनैतिक दल हैं। पर कांग्रेस-जन को क्रान्ति (अहिंसात्मक क्रान्ति) द्वारा ही देश को आजादी प्राप्त होने में विश्वास रखना पड़ेगा। कांग्रेस में इस तरह की मनोवृत्ति के अस्तित्व से इन्कार नहीं किया जा सकता जो कांग्रेस के क्रांति द्वारा आजादी प्राप्त करने की नीति से विरोध न प्रकट करते हुए भी वैधानिक तरीकों में विश्वास करती है। इसलिए काँग्रेस में बाम और दक्षिण-पक्ष का भेद खड़ा होता है तो वह इन दो मनोवृत्तियों का भेद है—एक क्रांतिकारी मनोवृत्ति, दूसरी सुधार-वादी मनोवृत्ति (Constitutionalim)। पर कांग्रेस में यह दूसरी मनोवृत्ति खुले रूप में प्रकट नहीं हो सकती क्योंकि तब उसे कांग्रेस छोड़ देनी पड़ेगी। इसलिए वह कांग्रेस के धारा सभाओं के कार्य-क्रम का समर्थन करती है। जब तक कांग्रेस, सरकार से सीधी लड़ाई नहीं छेड़ती, तब तक इनका खुला रूप सामने नहीं आता। पर आन्दोलन छिड़ने पर इनकी क्या अवस्था होगी, इसके उत्तर भिन्न-भिन्न हो सकते हैं। जहाँ तक हो सकेगा, ये लोग कांग्रेस को शीघ्र ही सीधी लड़ाई छेड़ देने से रोकेंगे। राष्ट्रपति सुभाष और उनके पक्ष के लोग तथा समाजवादी सीधी लड़ाई में अधिक विश्वास रखते हैं और वे चाहते हैं कि कांग्रेस शीघ्र ही लड़ाई का ऐलान करे। इस तरह इन दोनों पक्षों में कांग्रेस में खींचातानी है।

काँग्रेस का नेतृत्व

कांग्रेस में अब तक जिन व्यक्तियों का नेतृत्व रहा है, उसके सम्बन्ध में यह नहीं कह सकते कि

यह सुधारवादी हो गया। यद्यपि जब से कांग्रेस ने पदग्रहण की नीति स्वीकार की है, तब से उसकी कार्य-प्रणाली ऐसी रही है जिससे यह मालूम हुआ कि उसका झुकाव विधानवाद की ओर हो गया है। पर उक्त दोनों दलों के बीच उसकी स्थिति मध्यस्थ की सी है। कांग्रेस जब से विधान को अमल में लाने लगी है तब से कांग्रेस के उक्त नेतृत्व की शक्तियां अधिकतर धारा सभाओं के कार्य-क्रम को सफल बनाने में लग गई। कांग्रेस के पदग्रहण से कांग्रेस के ऊपर दोनों तरह का असर हुआ। एक ओर उसकी शक्ति बढ़ी—कांग्रेस की मेम्बर सँख्या बहुत बढ़ गई, और जन-साधारण के ऊपर भी उसका व्यापक असर हुआ। पर दूसरी तरफ कांग्रेस में उसके क्रान्तिकारी कार्य-क्रम से मेल न खाने वाले व्यक्तियों की तादाद बढ़ गई और कांगरेस के सामने कोई आन्दोलन न होने के कारण उसके बाहर के आंदोलनों ने जोर पकड़ा। किसानों के स्वतन्त्र सँगठन और मजदूरों की यूनियन अधिक वेग से अपना कार्य करने लगीं। उनमें कांग्रेस के क्रांतिकारी विचारों के लोग काम करने लगे। इधर कांगरेस कमेटियों का काम कांगरेस के मेंबर बढ़ाने और कांगरेस-चुनाव लड़ने का रह गया। कांग्रेस नेताओं को यह खटका पैदा हुआ कि यह बाहर के आंदोलन बढ़कर कांगरेस के मुकाबले की शक्ति पैदा न कर लें, इसलिए उन्होंने किसान आंदोलन का विरोध करना शुरू कर दिया। इससे कांगरेस के जो लोग इन स्वतन्त्र मजदूर और किसान संघों में काम करते थे, उनके साथ कांगरेस के उच्च नेताओं का मत-भेद बढ़ गया। कांगरेस-सरकारें विधान के अन्दर किसान और मजदूरों की बढ़ती हुई मांगों को पूरा न कर सकीं, कांगरेस हाई-कमाण्ड ने इस अवसर पर किसान और मजदूरों की विरोधी ताकतों के साथ मेल-जोल और समझौते की नीति से काम लिया। इससे मतभेद और भी बढ़ा। कांगरेस के उग्रवादी दल की ओर से कांगरेस मिनिस्ट्री और उसके साथ कांगरेस के उच्च नेतृत्व की आलोचना होने लगी। इस तरह कांगरेस के नेतृत्व और उग्रवादी लोगों के बीच में विरोध की खाई जितनी चौड़ी हुई, उतना ही कांगरेस नेताओं का कांगरेस के विधानवादी दल के साथ निकट का सम्बन्ध हो गया। राष्ट्रपति के चुनाव के समय कांगरेस में यह दो विरोधी ताकतें रोष की सीमा तक पहुँच चुकी थीं।

किंतु कांगरेस के उच्चनेताओं को यह विश्वास था कि इस विरोध की ताकत कांगरेस में उनके मुकाबले थोड़ी है। पर चुनाव-परिणाम से पता चल गया कि कांगरेस में सीधी लड़ाई लड़ने के समर्थक बहुत हैं। अतः एक ओर वे कांगरेस में अपने नेतृत्व को अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए विधान-वादी लोगों को उग्रपंथ वालों से भिड़ा देने का आयोजन करने लगे, दूसरी तरफ उन्होंने कांगरेस के क्रांतिकारी कार्यक्रम को फौरन अमली रूप दे दिया। त्रिपुरी कांगरेस इन्हीं परिस्थितियों के बीच हुई। उसमें दोनों ही दलों की विजय हुई। कांगरेस के पुराने नेता और उनके साथ विधान को अमल में लाने वाले व्यक्ति तथा उनके साथी, जिनको गांधीवादी दल या दक्षिण-पक्ष का नाम दिया गया, मतगणना में जीते तो; दूसरी तरफ कांगरेस ने विधानवाद की निस्सारता स्वीकार कर कांगरेस को सीधी लड़ाई लड़ने के लिए अग्रसर किया। यह उग्रवादी दल की जीत हुई।

नेतृत्व को अक्षुण्ण बनाए रखने के शब्दों से गलतफहमी पैदा न हो, इसलिए इसका सम्बन्ध पहली कही गई बातों से मिलाना चाहिए। कांगरेस में नए उग्रवादी दल का नेतृत्व रहे तो पुराने नेता कांगरेस में काम न करके रचनात्मक-कार्य की ओर चले जायेंगे। इसमें पुराने नेताओं का कोई स्वार्थ नहीं है, बल्कि उन्हें डर यह है कि कांगरेस के मौलिक सिद्धान्त और नीति में परिवर्तन नहीं हो जाय, जिसको कि वे कदापि स्वीकार नहीं करेंगे।

—:०:—

गोमाता

[ले०—श्री व्रजभूषण मिश्र, एम०ए०, सम्पादक, 'जीवनसखा']

गऊ को माता कहा जाता है। यह मानवीय-प्रकृति है कि जिस से जितना अधिक लाभ होता है, उसके साथ उतना ही गहरा कोई न कोई रिश्ता जोड़ लिया जाता है। इस रिश्ते से उसका मनुष्य के लिए जो महत्व है वह ज्ञात होता है। गाँव में कोई काका, कोई भैया लगा ही करता है। इसी प्रकार अपना प्रेम तथा जन्तु की महत्ता दिखलाने की दृष्टि से ही गाय को माता की पदवी मिली है। अब देखना यह चाहिए कि क्या वास्तव में गाय माता समान है? माता का सब से बड़ा गुण है सन्तति को दूध पिलाना। बच्चा, पैदा होने के बाद से ही, माता का दूध चाहता है। माता दूध पिलाती है। गाय भी वही काम करती है। माता की महत्ता उसके वात्सल्य-प्रेम की वजह से है। मेरा स्वयं का अनुभव है कि एक दिन हम सब लोग घर में ताला लगा कर बाहर जा रहे थे। गाय ने खूब शोर मचाया, खूब रम्भाई और हम लोगों के आने पर उसने प्रसन्नता प्रकट की। गाय में भी वात्सल्य-रस भरा है। मेरे यहाँ एक गाय थी, जो बड़ों को तो मारती थी पर छोटों को वह कभी कुछ नहीं कहती थी। यह उसका वात्सल्य-प्रेम ही तो कहा जावेगा। जिस प्रकार माता से सदा सहायता मिलती है उसी प्रकार गाय भी सहायता देती है। उसका गोबर बुरे कीटाणुओं को मारने के कारण पवित्र माना गया है। गोमूत्र की प्रशंसा वैद्यक में बहुत ही अधिक है। शोथ की बीमारियों में इसका चमत्कार विशेष रूप से देखा जाता है। गाय के भोजन में कोई विशेष व्यय की भी आवश्यकता नहीं है। बहुत ही साधारण सात्विक भोजन कर अपने पालने वालों की सदा सहायता गऊ माता किया करती है।

मनुष्य स्वार्थ के वश भी तो नाना प्रकार

के नाते जोड़ता है। गाय से उसकी स्वार्थसिद्धि होती है इसलिए वह उसे माता पुकारता है। भारत का अधिक हिस्सा ग्रामनिवास कर, कृषि-व्यवसाय में लगा है। कृषि के लिए सब से महत्त्वपूर्ण वस्तु है—सुन्दर, मज़बूत बैलों की जोड़ी। यह है धेनुधाय की देन। गाय की सन्तति के ही कारण हम लोगों को भोजन मिलता है। यदि बैल हल न जोतें तो खेती असम्भव हो जावे। भैंसा इस कार्य के लिए सदा अनुपयुक्त है। भैंसा डटकर लगातार कोई काम नहीं कर सकता। वह बड़ी जल्दी हाँफने लगता है। यह तो बैल की ही शक्ति है कि वह धीरे २ पर ठीक तौर से काम करता चला जावेगा। तङ्ग करना तो वह जानता ही नहीं। अंग्रेज़ी में एक कहावत है—*'Slow and steady wins the race'* धीरे पर दृढ़ चाल से जीत होती है। बैल तो इसका जीता-जागता उदाहरण है। घण्टों काम में लगाए रहिए, वह चूँ करने वाला जानवर नहीं। चुपचाप साधारण रीति से काम करते रहना उसकी एकमात्र प्रकृति है। इस प्रकार भोजन-प्राप्ति में सब से बड़ा हाथ गाय का है। इस स्वार्थ की बुद्धि से भी गाय को माता पुकारने की प्रथा है।

गाय की सबसे बड़ी देन है उसका दूध, जिस के विषय में कहा है:—

केचिद्वदन्ति अमृतमस्तु सुरालयेषु
केचिद्वदन्ति शशितारकमण्डलेषु।
ज्ञातं सदा सकल शास्त्रविचारदक्षैः
भूलोक प्राणीजन जीवना शुद्ध दुग्धे॥

अर्थात् कुछ लोगों का कहना है कि अमृत देवलोक में है, कुछ इसे चन्द्र-तारों के मण्डल में बतलाते हैं। पर सब शास्त्र को विचार किए हुए लोगों को यह ज्ञात हो गया है कि पृथ्वी के प्राणियों का जीवन शुद्ध दूध में ही है। अस्तु, दूध ही अमृत है। दूध की प्रशँसा तथा धेनु की प्रशंसा में कवियों ने बहुत कुछ कह डाला है। प्रकृति के पाकगृह का तैयार किया हुआ यह अमूल्य भोजन है। फल-फूल, मेवे, अन्न भोजन की दृष्टि से नहीं उपजते। उनकी उत्पत्ति, वृद्धि के लिए ज्ञात होती है, पर दूध की उत्पत्ति केवल पीने के ही लिए है। यह सन्तान की भूख बुझाने और उसकी पुष्टि तथा वृद्धि के लिए है। सँस्कृत में दूध का एक नाम 'बाल-जीवन' भी है। यह केवल बाल-जीवन ही नहीं वरन, मानव-जीवन भी है। गाय के दूध में मानव-शरीर को धारण और पोषण करने के सभी उपादान प्राप्त हैं। केवल गो-दुग्ध पर ही सारा जीवन सुखपूर्वक व्यतीत किया जा सकता है। पानी तक की आवश्यकता स्तन्यपायी को नहीं रहती। दूध की महिमा का वर्णन करते हुए वैद्य शिरोमणि लौलिम्बराज ने कहा है:—

सौभाग्य—पुष्टि-बल शुक्र-विवर्धनानि,
किं सन्ति नो भुवि बहूनि रसायनानि।
कन्दर्पवर्धिनि परं तु सिताज्ययुक्ता,
दुग्धादृते न मम केऽपि मतः प्रयोगाः॥

इसका तात्पर्य यह है कि पृथ्वी पर सौभाग्य, पुष्टि, बल, और वीर्य को बढ़ा

वाले रसों में मिश्री, घी मिले हुए दूध के अतिरिक्त और कोई रस नहीं है। 'खवासुल अदविया' में भी इसकी बड़ी प्रशँसा है। हिपोक्रेटस ने, जो पाश्चात्य आयुर्वेद का जन्मदाता माना जाता है, दूध की बड़ी महत्ता बतलायी है। आजकल भी दूध पिलाकर वैद्य लोग काया-कल्प कराते हैं। तुरन्त यदि बल की आवश्यकता हो तो दूध देना बड़ा ही हितकर है। 'सद्यः बलकरं पयः' कहा गया है। दूध की इतनी महिमा होते हुए भी अधिकतर प्राकृतिक-चिकित्सक इसे हानिकारक बतलाते हैं। वे रोगियों को दूध के व्यवहार से रोकने की कोशिश करते हैं। इसका कारण यह है कि दूध ग्राही वस्तु है। प्राकृतिक-चिकित्सा विसर्जन चिकित्सा है। इस चिकित्साविधि का मुख्य उद्देश्य है खराबियों को निकालना। निकालने के साथ ग्राही वस्तु का व्यवहार हितकर नहीं। इसीलिए इस चिकित्सा-पद्धति में दूध का व्यवहार नहीं बतलाया जाता।

दूध के अनन्तर हम लोगों को मिलता है मठा, दही, नवनीत, और घी। मठा बहुत ही लाभदायक वस्तु है। मठा में विशेषता यह है कि यदि कुछ खाने के बाद पिया जावे तो शीघ्र पचाकर निकाल देता है, और यदि खाली पेट व्यवहार में लाया जावे तो भूख नहीं लगने देता और शक्ति पूर्ववत् बनाये रखता है। तक्र की प्रशँसा वैद्यक में बहुत है। प्राकृतिक-चिकित्सा में इसका व्यवहार इसके विरेचनशील होने के कारण बहुत ही होता है। दही कफकारक परन्तु पाचक है। नवनीत की प्रशँसा क्या की जावे? ताजे मक्खन का व्यवहार मनुष्य की शारीरिक, मानसिक तथा नैतिक उन्नति में बड़ा ही सहायक है। नैनू की मात्रा थोड़ी होनी चाहिए। चिकनाई अधिक होने के कारण यह शीघ्र पचता नहीं। अतः इसका व्यवहार सम्हल कर करना उचित है। इसके बाद नम्बर आता है घी का। घी में पानी का कुछ भी हिस्सा नहीं रहता, वह हैयँगवीन से भी भारी है। विष-नाशक शक्ति इसमें विशेष रूप से है। आज-कल घी का मिलना असम्भव हो गया है। जाने क्या क्या मिलाकर एक अजीब से मिश्रण का नाम घी दे दिया गया है। यह अत्यन्त ही हानिकर है। बड़े हर्ष का विषय है कि इस ओर भारत सरकार का ध्यान गया है। आशा है शीघ्र ही कोई लाभदायक प्रभाव दृष्टिगोचर होगा। घी से होम की प्रथा है। इसकी सुगन्धि, बहुत ही अच्छी तथा स्वास्थ्यप्रद होते हुए, रोग के कीटाणुओं को नष्ट करने की अपूर्व शक्ति रखती है।

ऐसे रासायनिक तत्त्वों को देने वाली गाय को माता न कहा जावे यही आश्चर्य है। गाय, जिसको हम लोग माता कहते हैं, आज-कल बड़ी ही हीन दशा में है। केवल दूध के साथी तो सब हैं पर उसकी सेवा, उसकी सुश्रूषा का ध्यान किसी को नहीं है। इसके

भोजन में हरीघास, दुग्धवर्धक वस्तु का अभाव है। स्वेच्छानुसार विचरण भी अब नहीं कर पाती। शहर में तो खैर चौबीसों घन्टे बन्धी ही रहती है, गाँव में भी छूटने की नौबत अब नहीं रह गयी है। पहले गांवों में गोचरण-भूमि रहती थी, अब तो सीर से ही नहीं बच पाती। गो-आत्मा के दुखी होने से समृद्धि असम्भव है, यह आजकल प्रत्यक्ष दिखलायी देता है। गोशाला का प्रबन्ध, गोस्नान आदि महत्त्वपूर्ण बातों पर अब ध्यान ही नहीं दिया जाता। अब तो कीचड़ में लिपटी और दीन-हीन गऊ ही दीख पड़ती है। स्वस्थ, सुन्दर, सुदृढ़, सदा प्रसन्नचित्त, जुगाली करने वाली गऊ अब सपना हो गयी। गो-वँश की दुर्दशा के कारण ही आजकल जनता इतनी दुखी तथा कमज़ोर दिखलाई पड़ रही है। हम लोगों के अत्याचार की चरमसीमा—फूका तक पहुँच गयी है। इस प्रथा के अनुसार २२ इँच लम्बी और आठ इँच घेरे की नली गाय की जननेन्द्रिय में डाल कर हवा भरी जाती है जिससे दुग्ध-ग्रन्थियों पर दबाव पड़े और दूध अन्तिम बूँद तक निकल आवे। इस राक्षसी क्रिया के अनन्तर बहुधा निरीह, निर्जिह्वा पशु अचेत हो जाता है। गो-वध की वृद्धि का रोकना तो सबको ज्ञात ही है।

सभा-समितियों से वास्तविक ठोस काम की आशा नहीं। लोग एकत्रित हो हजारों प्रस्ताव 'पास' कर सकते हैं, पर कार्य-रूप में परिणत करने के समय कोई भी प्रत्यक्ष नहीं दिखलाई देता। गोशालाओं की वृद्धि तो हो गई है पर वास्तविक लाभ अभी वहां भी नहीं दृष्टिगोचर हो पाया है। वणिक्-बुद्धि वहां भी माताओं पर अत्याचार कर रही है। यदि वास्तव में इस अत्याचार को रोकना है तो सबसे अच्छा उपाय यह है कि आप एक गोपालक बनिये और दूसरों के सामने उदाहरण उपस्थित करिए, न कि शिक्षा। इस तरह से यदि सौ मनुष्य भी वैज्ञानिक रीति से गोपालन प्रारम्भ कर दें तो देश का बड़ा लाभ हो। यह प्रथा देखा देखी सारे भारत-वर्ष में फैल जावेगी। गया में कुछ महानुभावों ने गोरक्षिणी सभा का आयोजन किया है। यह प्रयास बहुत ही स्तुत्य है। जो लोग स्वयँ गोपालन न कर सकें वे दूसरों को सिखलावें और उन्हें रुपये पैसे से सहायता दें। सभा की सफलता तभी है जब वास्तव में गोवँश को लाभ हो, न कि कुछ शोक प्रस्ताव 'पास' किये जावें और कुछ लेखों का सँग्रह कर दिया जावे।

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन

[ले०—श्री नारायणदत्त पाण्डे, एम०ए०, एल-एल०बी०]

हिंदी-साहित्य-सम्मेलन भारतवर्ष भर में अपने प्रकार की सबसे बड़ी संस्था है। अपने जन्मकाल (सम्वत् १९६७) से आजतक इसने हिन्दी की कितनी बड़ी सेवा की है—यह जानकारों से छिपा नहीं है। संक्षेप में, हिन्दी भाषा तथा साहित्य का उत्थान और हिंदी तथा देवनागरी का प्रचार—इन दो उद्देश्यों को लेकर सम्मेलन की स्थापना हुई थी। आज सम्मेलन गर्व के साथ कह सकता है कि इन दोनों उद्देश्यों की पूर्ति में उसे आशातीत सफलता प्राप्त हुई है और आगे के लिए भविष्य और भी उज्ज्वल दीखता है।

आज दिन सम्मेलन एक बहुत बड़ी सजीव संस्था है। इसका प्रचार पूर्ण भारतवर्ष के अतिरिक्त लंका और ब्रह्मदेश तक भी है। केन्द्र प्रयाग में है। प्रयाग ही से सम्मेलन की समस्त प्रवृत्तियां अनुशासित होती हैं। प्रयाग में सम्मेलन की स्थावर सम्पत्ति के रूप में एक विशाल संग्रहालय तथा अन्य भवन बने हैं। इस समय सम्मेलन के साथ ३० से अधिक प्रमुख भारतीय सँस्थाएँ सम्बद्ध हैं। सम्मेलन का कार्य पृथक् २ विभागों में बट कर चलता है। प्रत्येक विभाग एक समिति के द्वारा चलाया जाता है। इस प्रकार साहित्य समिति, सँग्रह-समिति, प्रचार-समिति, राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति तथा विश्वविद्यालय-परिषद् अपना २ कार्य पृथक् रूप से करते हैं। सम्मेलन का समस्त साधारण कार्य कार्य-समिति द्वारा सञ्चालित होता है। विशेष महत्वपूर्ण बातें स्थायी-समिति (जो यूनिवर्सिटियों के 'कोर्ट' के समान है) द्वारा तय होती हैं। स्थायी-समिति अखिल हिंदी-साहित्य सम्मेलन की प्रतिनिधि-स्वरूपिणी सब से बड़ी समिति है। सम्मेलन का वार्षिक अधिवेशन प्रतिवर्ष भिन्न २ प्रांतों में होता है।

सम्मेलन की साहित्य-समिति निम्नलिखित उद्देश्यों की पूर्ति का प्रयत्न करती है:—

(१) हिन्दी साहित्य के सब अङ्गों की पुष्टि तथा उन्नति का प्रयत्न करना।

(२) नागरी लिपि को मुद्रण-सुलभ और लेखन-सुलभ बनाने की दृष्टि से उसे अधिक विकसित करने का प्रयत्न करना।

(३) हिन्दी भाषा को अधिक सुगम, मनोरम व्यापक और समृद्ध बनाने के लिए समय २ पर उस के अभावों को पूरा करना और उसकी शैली और त्रुटियों में सँशोधन का प्रयत्न करना।

(४) हिन्दी के ग्रन्थकारों लेखकों, कवियों, पत्र-सम्पादकों, प्रचारकों और सहायकों को समय २ पर उत्साहित करने के लिए पारितोषिक, प्रशंसा पत्र, पदक, उपाधि आदि से सम्मानित करना।

(५) हिन्दी-साहित्य की वृद्धि के लिए उपयोगी पुस्तकें लिखवाना और प्रकाशित करना।

(६) हिन्दी भाषा और साहित्य सम्बन्धी अनुसन्धान का प्रबन्ध करना।

साहित्य-समिति उपर्युक्त उद्देश्यों की पूर्ति के लिए भरसक प्रयत्न करती रही है। उद्देश्य (१) को कार्य रूप में परिणत करते हुए समिति ने सुलभ-साहित्य माला, वैज्ञानिक-पुस्तक-माला, साहित्य-रत्न-माला तथा अतिरिक्त फुटकर रूप से भी कई ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं।

संग्रह-समिति निम्नलिखित उद्देश्य की पूर्ति के लिए सतत प्रयत्नशील है:—

हिन्दी की हस्तलिखित और प्राचीन सामग्री तथा हिन्दी भाषा और साहित्य के निर्माताओं के स्मृति-चिन्हों की खोज करना और इनके तथा प्रकाशित पुस्तकों के सङ्ग्रह और रक्षा के निमित्त सम्मेलन की ओर से एक वृहत सङ्ग्रहालय की व्यवस्था करना।
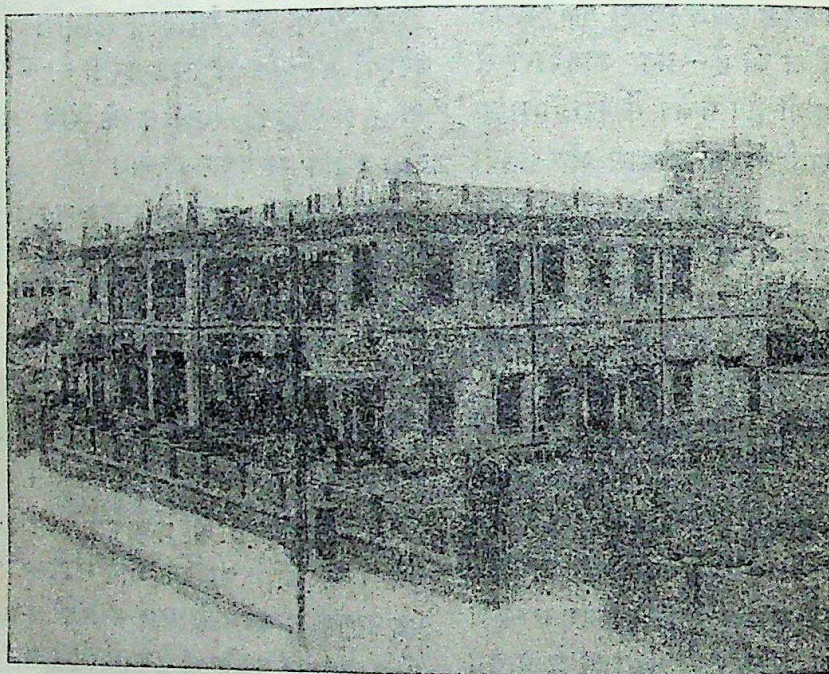
(सम्मेलन-कार्यालय तथा संग्रहालय)

सम्प्रति सम्मेलन का सँग्रहालय यद्यपि 'वृहत' विशेषण से काफी दूर है, तथापि इस दूरी को कम करने के लिए सँग्रह-समिति बराबर प्रयत्नशील है। सँग्रहालय के लिए एक विशाल भवन सम्मेलन के पास बन चुका है। अब इस भवन को वास्तविक सँग्रह-भवन का रूप देना शेष है। इस समय एक वाचनालय भी सँग्रहालय के अन्तर्गत है। सँग्रहालय की पुस्तक सँख्या तथा अन्यान्य सँग्रहणीय वस्तुओं की वृद्धि के लिए हिंदी-प्रेमी जनता और हिंदी-प्रकाशकों तथा पत्र-पत्रिकाओं की सेवा अपेक्षित है।

प्रचार-समिति का कार्यक्रम निम्न लिखित उद्देश्यों को दृष्टि में रखते हुए सञ्चालित होता है:—

(१) हिन्दी भाषी प्रान्तों में सरकारी प्रबन्ध, देशी राज्यों, पाठशालाओं, कालेजों, विश्वविद्यालयों म्युनिस्पैल्टियों और अन्य सँस्थाओं, समाजों, जन-समूहों तथा व्यापार, जमींदारी और अदालत के कार्यों में देवनागरी लिपि और हिन्दीभाषा के प्रचार का उद्योग करते रहना।

(२) सारे देश के युवकों में हिन्दी का अनुराग उत्पन्न करने और बढ़ाने के लिए प्रयत्न करना।

(३) जहां आवश्यकता समझी जाय वहां पाठशाला, समिति तथा पुस्तकालय स्थापित करने और कराने का उद्योग करना तथा इस प्रकार की वर्तमान सँस्थाओं की सहायता करना।

राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति प्रचार-समिति के द्वितीय तथा तृतीय उद्देश्यों के अतिरिक्त निम्नलिखित उद्देश्य की पूर्ति के लिए प्रयत्नशील रहती है:—

देश-व्यापी व्यवहारों और कार्यों को सुलभ करने के लिए राष्ट्रलिपि देवनागरी और राष्ट्रभाषा हिन्दी का प्रचार बढ़ाने का प्रयत्न करना ।

इस समिति द्वारा राष्ट्रभाषा प्रचार-कार्य मुख्यतः अहिंदी प्रांतों में किया जाता है । इसी के प्रयत्नों के फल-स्वरूप आज दिन सुदूर दक्षिण, बङ्गाल तथा आसाम ऐसे प्रांतों में भी हिन्दी-विदों की संख्या बढ़ती जा रही है।

('सत्यनारायण कुटीर' वाचनालय)

सम्मेलन के कार्यक्रम का सब से महत्वपूर्ण अङ्ग सम्मेलन-परीक्षाओं का सञ्चालन है। सम्मेलन के अन्तर्गत हिन्दी-विश्व-विद्यालय नामक सँस्था है जिस का काम परीक्षाओं द्वारा हिंदी-प्रचार करना है । आज दिन उत्तमा (रत्न), मध्यमा (विशारद), प्रथमा, कृषि-विशारद, वैद्य-विशारद, आरायज्ञनवीसी, मुनीमी, सम्पादन कला (रत्न तथा विशारद) और राष्ट्रभाषा-प्रचार (प्रवेश, परिचय तथा कोविद) परीक्षाएँ विश्व विद्यालय द्वारा ली जाती हैं। परीक्षा-सञ्चालन का कार्य सम्मेलन ने सम्वत १९७१ में प्रारम्भ किया था । तब से कितने ही 'रत्न', 'विशारद', 'कोविद' आदि सम्मेलन से निकल चुके हैं । प्रतिवर्ष परीक्षार्थियों तथा परीक्षा-केन्द्रों की सँख्या बढ़ती ही जाती है। सम्वत १९७१ में परीक्षा-केन्द्र केवल ८ थे। प्रथमा परीक्षा में बैठने वालों की सँख्या २० थी। मध्यमा, उत्तमा तथा अन्य परीक्षाओं में कोई विद्यार्थी शामिल नहीं हुआ था। १९९५ में परीक्षा केन्द्र बढ़कर ५६२ हो गए। प्रथमा, मध्यमा, उत्तमा व अन्य परीक्षाओं में बैठने वालों की तादाद क्रमशः—१०७७, १०८६, १४६ और १०८ तक जा पहुँची। इससे स्पष्ट हो जाता है कि पिछले वर्षों में सम्मेलन-परीक्षाओं का प्रचार कितनी शीघ्रता से बढ़ा है।
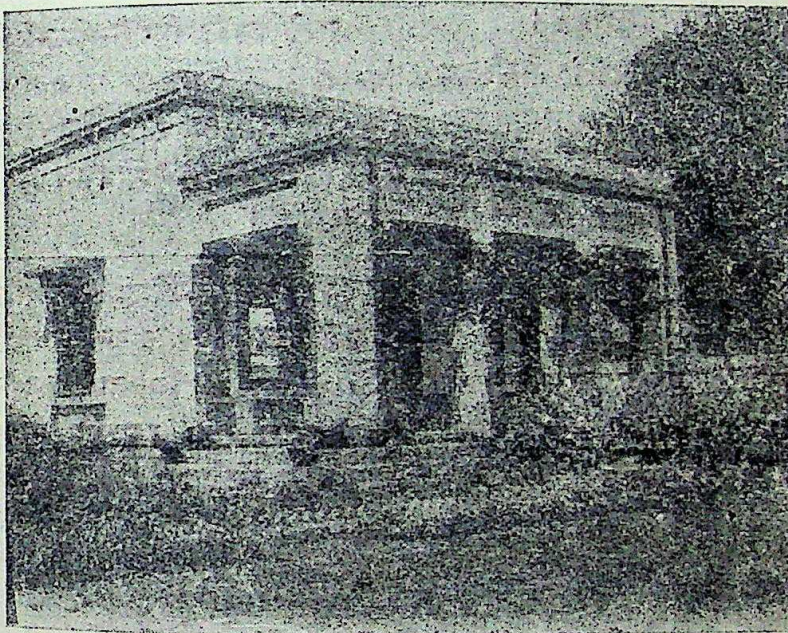
परीक्षार्थियों की वृद्धि के साथ-साथ ही सम्मेलन की परीक्षाओं का मान भी बढ़ता जा रहा है । 'रत्न' परीक्षा का मान अन्य विश्वविद्यालयों की एम०ए० परीक्षा के समकक्ष ही रक्खा गया है और 'विशारद' का मान बी०ए० के बराबर। ऐसी आशा है कि इसी रूप में सम्मेलन की परीक्षाएँ सरकार द्वारा भी शीघ्र ही सम्मानित हो जायेंगी। इसके लिए सम्मेलन प्रयत्नशील है।*

---

* संयुक्त प्रान्तीय इन्टरमीजिएट बोर्ड तथा दिल्ली बोर्ड द्वारा विशारद परीक्षा इस अर्थ में सम्मानित हो चुकी है कि सम्मेलन के विशारद-उत्तीर्ण छात्र उक्त बोर्डों की हाई स्कूल परीक्षाओं में केवल अँग्रेजी विषय लेकर सम्मिलित हो सकते हैं जिसमें पास हो जाने पर वे हाई स्कूल का प्रमाण-पत्र प्राप्त कर लेंगे।

वैद्य-विशारद परीक्षा भी यू० पी० इण्डियन मेडिसिन

सम्मेलन की परीक्षाओं द्वारा हिन्दी के प्रचार तथा उत्कर्ष में जो सहायता हुई है उसके लिए सम्मेलन प्रेमियों का उल्लास स्वाभाविक ही है। हिन्दी के अधिक प्रचार तथा अधिक उत्कर्ष के लिए सम्मेलन के उद्देश्यों की पूर्ति मे सम्मेलन की सहायता और विशेषत: सम्मेलन-परीक्षाओं का अधिकाधिक प्रचार वांछनीय है। हिन्दी-प्रेमियों का कर्त्तव्य है कि समस्त भारतवर्ष में उपयुक्त स्थानों पर सम्मेलन की परीक्षाओं के केन्द्र स्थापित कराने का प्रयत्न करें तथा अधिकाधिक परीक्षार्थियों को उक्त परीक्षाओं में सम्मिलित होने के लिए प्रोत्साहित करें।

सम्मेलन-परीक्षाओं की पढ़ाई के लिए सम्मेलन एक हिंदी-विद्यापीठ का भी सँचालन करता है। यह विद्यापीठ प्रयाग से लगभग तीन मील पर यमुना के किनारे महेवा (नैनी) नामक स्थान पर स्थित है। यह स्थान अत्यन्त रमणीय तथा स्वास्थ्यप्रद है। यहां पर विद्यापीठ की निजी सम्पत्ति रूप में ६० एकड़ भूमि है। इस भूमि पर कृषि सम्बन्धी व्यवहारिक ज्ञान के लिए एक फार्म भी चलाया जाता है। विद्यापीठ में उत्तमा, मध्यमा और कृषि-विशारद के परीक्षार्थियों के लिए शिक्षा का प्रबन्ध है। शिक्षा निःशुल्क दी जाती है और छात्रावास में रहने के लिए भी कोई शुल्क नहीं लिया जाता। विद्यापीठ का मुख्य उद्देश्य यह रहा है कि विद्यार्थियों को ऐसी शिक्षा दी जाय जिससे वे स्वावलम्बी बनें और विद्यापीठ से निकलने पर उन्हें आजीविका के लिए भटकना न पड़े।❋

सम्मेलन ने हिन्दी-शीघ्र-लिपिकला (Short hand) की शिक्षा का भी प्रबन्ध किया है। लगभग डेढ़-दो वर्षों से शीघ्र-लिपि कक्षायें कार्यालय में चालू हैं और कितने ही छात्र इस सुविधा से लाभ उठा रहे हैं।

बोर्ड द्वारा सम्मानित हो चुकी है, अर्थात् इस परीक्षा में उत्तीर्ण परीक्षार्थी ५ वर्ष प्रैक्टिस कर लेने के पश्चात् अपना नाम 'बी' श्रेणी के वैद्यों में रजिस्टर करा सकते हैं।

❋आर्थिक कठिनाइयों के कारण सम्मेलन को कुछ काल के लिए विद्यापीठ बन्द कर देना पड़ा था। किन्तु हर्ष का विषय है कि ता० २२ मार्च सन १९३९ से विद्यापीठ का पुनः उद्घाटन हो गया है और कक्षायें प्रारम्भ हो गई है।

पर्दा
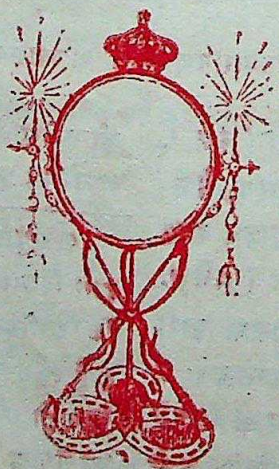
[लेखिका—सुश्री इन्दुप्रभा]

उन्नति के इस युग में हिन्दुस्तान में पर्दा जैसी घातक प्रथा प्रचलित है। पर्दे के कारण स्त्रियों का जीवन पशुओं से भी बदतर हो गया है। पर्दे के कारण स्त्रियों में अनेकों दुर्गुण पैदा हो गए हैं। इसके द्वारा स्त्रियों का स्वास्थ्य खराब होना तो अनिवार्य है, साथ ही मानसिक पतन का भी कोई ठिकाना नहीं रहता। आज पर्दे के चङ्गुल में फंसी अपनी माँ-बहनों की हालत देखकर कलेजा दहल उठता है। गाँव की कितनी ही स्त्रियां घर के बाहर पैर तक नहीं निकाल सकती हैं। उन्हें बाहर की स्वच्छ वायु कभी नसीब नहीं होती तथा प्राकृतिक सौन्दर्य कभी भी आँखों से देखने को नहीं मिलता।

पर्दे ने हमारी अवस्था एक हृदय-हीन मशीन की तरह बना दी है, जो कि चौबीसों घण्टे काम करे लेकिन उसके आमोद-प्रमोद के लिए कोई साधन न हो। ग्रामीण बहनें पुरुषों ही नहीं अन्य बहनों से भी बोलने का अधिकार नहीं रखतीं। कहाँ तक कहूँ! वे अपने जीवनाधार पति से भी नहीं बोल सकतीं। हाँ! बोलती भी कब और कैसे हैं? कभी किसी अन्धेरी रात में भूले-भटके अपने जीवन-सहचर के पास पहुँच कर जब अपनी वासना तृप्त करती हैं। उस समय के अलावा उन्हें अपने पति से दुःख-सुख की बातें कहने, सलाह-मशवरा करने का कोई अवसर नहीं मिलता। ऐसी अवस्था में क्या वे अपना उत्थान करेंगी और क्या अपने पति-पुत्रों का? जब भारतीय स्त्रियों को अपनी बहनों व पति से भी बोलने में हर्ज है, तो बाहरी पुरुषों की तो उनपर परछाईं पड़ना भी असम्भव है। बाहिरी पुरुष यदि बाहिर से आते हैं तो ऐसा खखारना व गला साफ करना शुरू करते हैं कि मानो गले में कुछ अटक गया हो। जबतक कि बहुएँ आँगन (रास्ता) साफ न करदें, तब तक उनका वह कार्य जारी रहता है।

शिक्षा की—चाहे वह शारीरिक हो या मानसिक, स्त्रियों में कोई ज़रूरत ही नहीं

समझी जाती। शिक्षा से मेरा तात्पर्य स्त्रियों को स्कूल-कालेज की ही शिक्षा देने से नहीं बल्कि उस शिक्षा से है जो उनके सद्गुणों का विकास करके, उन्हें योग्य गृहिणी बनाती है। मेरी बहनों का सब से आवश्यक विषय है—'पाक-शास्त्र'। लेकिन कम ही स्त्रियों को 'पाक-शास्त्र' का यथेष्ट ज्ञान रहता है। पाक-शास्त्र की पारङ्गत वही कही जा सकती है, जो रोगियों का भोजन, स्वास्थ्य-प्रद, पाचक व सरस भोजन, रक्त-वर्धक भोजन, पकवान, अचार और पापड़ आदि सभी प्रकार के भोजन बनाने की क्रिया की पूरी जानकार हो। इन से अनभिज्ञ रहने से मेरी बहनों व भाइयों का स्वास्थ्य चिंताजनक दिखलाई पड़ता है। स्त्रियां यदि भोजन पर उचित ध्यान रक्खें तो ५०% रोग दूर हो जावें। मैं अपने विषय से कुछ दूर आपड़ी। लेकिन इन सब का मूलकारण पर्दा तथा तज्जनित निरक्षरता—अज्ञानता ही है। स्त्रियों में जो अन्धविश्वास, जादू-टोना, पीरपूजा आदि की कुप्रथा भर गई हैं; उनका मूल कारण भी पर्दा व अन्धश्रद्धा ही है। क्या स्त्रियों को पङ्गु बनाने वाली पर्दा-प्रथा के सिवाय और कोई दूसरी प्रथा होगी? पर्दे ने तो हमारा सब प्रकार से पतन कर दिया है।

पर्दे का मूल कारण चाहे बुरा न हो, लेकिन इसका आजका वीभत्स रूप देखा नहीं जाता। पर्दा वास्तव में आपत्-काल में स्त्रियों को अपना चरित्र-बल व सतीत्व कायम रखने के लिए ही स्वीकृत हुआ था। पर्दा यहाँ की पुरानी प्रथा नहीं है। यहां पर्दे का पदार्पण मुसलिम-शासनकाल में हुआ, ऐसा कहा जा सकता है। जिस समय यहां मुसलमानों का आधिपत्य था, चारों ओर इन्हीं का बोलबाला था। तरह २ के अत्याचार हो रहे थे। बादशाह अपनी वासना-तृप्ति के लिए सुन्दर रमणी खोजता फिरता था। किसी सुन्दर रमणी का पता मिल जाने पर वह उसे अपने अन्तःपुर के लिए बुला लेता था। उस समय किसी सुन्दर नवयौवना का अछूती रहना मुश्किल था, पद्मिनी और अलाउद्दीन का हाल उस समय का ज्वलन्त उदाहरण था। धीरे २ पर्दे का प्रादुर्भाव हुआ। अपना सतीत्व कायम रखने के लिए स्त्रियाँ घरमें ही रहने लगीं। उस समय कोई स्त्री घर के बाहर न निकलती थीं। यदि कोई निकलती थीं तो सिर से पैर तक का बुर्का ओढ़ करके ही बाहर पैर रखती थी। इस प्रकार काल-गति के अनुसार पर्दा एक जबर्दस्त प्रथा बन बैठी। अस्तु, पर्दा उस खास समय के लिए बना था जब कि स्त्रियों को इसकी शरण लिए बिना अपने सतीत्व की रक्षा करना ही असम्भव हो गया था। अब वह समय नहीं है, इस लिए अब इसकी कोई ज़रूरत भी नहीं है। अबतो ज़रूरत है स्त्रियों को पुरुषों की सह-

सहधर्मिणी व अर्धाङ्गिनी नाम को सार्थक करने की।

पर्दे में बहुत दिनों से पड़े रहने के कारण भारतीय महिला समाज का मानसिक पतन बहुत अधिक हो गया है। वे पर्दे का असली तथ्य नहीं समझतीं। कुछ शहरी बहनें तो घर में पर्दा करती हैं, लेकिन बाहरी पुरुषों से इतनी स्वच्छन्दता से बातें करती हैं कि जिसे देखना भी बुरा मालूम पड़ता है। ऐसी स्त्रियां की ताक में बदमाश-गुण्डे बैठे रहते हैं। समय पाते ही वे उन्हें अपने चङ्गुल में कर लेते हैं। दूसरी कुछ गंवारू बहनों को, जो पर्दे के कारण घर की चार-दीवारी में रात-दिन सड़ती रहती हैं, कभी शुद्ध वायु न मिलने से तपेदिक, हिस्टीरिया आदि प्राण-घातक रोग लग जाते हैं। आज जबकि दुनिया की स्त्रियां अपने देश का नित्य नया वैज्ञानिक उत्थान कर रही हैं, तब यहाँ की स्त्रियां पर्दे में बैठी अपने भाग्य को कोसती रहें, तो देश का कैसे उद्धार होगा?

नई विचारधारा के सुधारवादी लोग अब उससे उकता गए हैं। अब वह ऐसी लज्जाजनक स्थिति को जड़ से उखाड़ कर फेंक देना चाहते हैं। परन्तु हमारे दिलों पर प्राचीनता की जो अन्धी छाप पड़ी है, क्या वह ऐसा करने देगी? कुछ लोगों का कहना है कि शास्त्रों का अनुसरण करो, यदि शास्त्र में इसका उल्लेख है तो इसका रहना ज़रूरी है, फिर यह तो पुरानी प्रथा है इसका रहना ज़रूरी है। कुछ का कहना है कि बेपर्दे स्त्रियां भली नहीं होतीं।

लेकिन हमें गम्भीरतापूर्वक इस पर विचार करना चाहिए कि इसका रहना कहां तक उचित है। पर्दा तो जरूरी ही टूटना चाहिए क्योंकि यह कृत्रिम है, इसके पीछे अनाचार छिपा रहता है। पर इसका यह अभिप्राय नहीं कि हम उसके मूल में समाविष्ट शील, सँकोच और सदाचार को भी छोड़ बैठें। स्त्री के इन उज्ज्वल गुणों को कायम ही नहीं रखना है, बल्कि बढ़ाना भी आवश्यक है। लज्जा के कारण घूँघट-पर्दे का स्वांग न रचें लेकिन बड़े छोटों का अदब न छोड़ना चाहिये। आंखों की शर्म हया व कपड़े लत्तों का तो अवश्य पूरा ध्यान रखना पड़ेगा। तभी हमारा पर्दा छोड़ना सार्थक होगा। हमें न तो मेम साहब बनाना है, न देश को इसकी ज़रूरत ही है, हमें तो सीता, सावित्री की चाह है। लेकिन पर्दे के आवरण में अधिक दिनों से दबने के कारण पर्दा-प्रथा तोड़ने पर शुरु में उच्छृँखलता न फैलाने पावे। इस लिए स्त्रियाँ सद्शिक्षा रूपी प्रकाश द्वारा बाहर आवें। इसके लिए स्त्रियों को जागृत होना पड़ेगा। जब वे अपनी शक्ति व सामर्थ का विचार कर अपने उत्थान के लिए कमर कस के खड़ी हो जावेंगी तभी यहां का पर्दा दूर होगा।

बिना पर्दा दूर हुए आज़ादी नहीं मिल सकती। पुरुष अकेले कोई कार्य नहीं कर सकते। किसी भी देश में अकेले स्त्री या पुरुष कोई काम नहीं कर सकता। दोनों का मिल कर आगे बढ़ना अनिवार्य है। स्त्रियों का नाम ही जीवन-सहकारी है। पुरुषों को अपनी अर्धाङ्गनी, माता और बहनों के पैरों की बेड़ियाँ काट कर उन्हें प्रकाश में लाना चाहिए, उनकी बुराइयों को दूर कर, उनमें शिक्षा की ज्योति जगानी चाहिए। तभी यहां की स्त्रियों का उत्थान होकर पुरुष जाति को आगे बढ़ाने का मौका मिलेगा। इस प्रकार देश के लिए स्त्री व पुरुष दोनों की आवश्यकता है। अतः पर्दा की बेड़ी खोलकर स्त्री व पुरुष दोनों मिलकर अपनी माता की बेड़ी काटने में अग्रसर होवें। तब देश के स्वतन्त्र होने में देर न लगेगी।

—०:०—

"मैं"

(रचयिता—श्री "कमल")

मैं क्या नहीं हूं विश्व में मैं शक्ति हूं मैं भक्ति हूं।
मैं क्रिया कारण करण हूं ताप या बाधा हरण हूं,
पाप का भी मैं तरण हूं वैराग्य हूं अनुरक्ति हूं॥
मैं क्या नहीं हूं॰

निस्सार हूं मैं सार हूं निस्तार हूं विस्तार हूं.
शृंगार हूं भूभार हूं दुत्कार हूं मैं प्यार हूं.
मैं आप अपनी मुक्ति हूं। मैं क्या नहीं हूं॰

मैं सृष्टि का क्रम यतन हूं. उत्थान हूं मैं पतन हूं.
मैं स्थूल सूक्ष्म अतन हुं मैं तत्व हूं मैं सतन हूं.
जागृति प्रलय सुषुप्ति हूं। मैं क्या नहीं हूं?

सन्तोष हूँ. कटुक्रोध हूँ, अज्ञात हूं प्रतिबोध हूँ,
विस्मृति हूँ मैं शोध हूँ. अनुरक्ति हूँ अनुरोध हूँ,
मैं प्राप्ति नवधा भक्ति हूँ। मैं क्या नहीं हूँ॰

मैं मृत्यु हूँ मैं काल हूँ. मैं मधुर भीषण व्याल हूँ.
मैं दीन हूँ महिपाल हूँ. मैं जाल हूं जञ्जाल हूँ,
मैं आप अपनी मुक्ति हूँ। मैं क्या नहीं हूँ॰

मैं काम हूं मैं प्राण हूं मैं विपत्ति हूँ मैं त्राण हूं,
मैं लक्ष्य हूँ मैं बाण हूँ, मैं ही अगुण गुण खान हूं,
मैं विश्व की अभिव्यक्ति हूँ। मैं क्या नहीं हूँ?

मैं इन्द्र हूँ में वज्र हूँ मैं वृत नाशक शक्र हूँ
मैं आप अपनी व्यष्टि हूँ, मैं आत्म हूँ मैं सृष्टि हूँ,
मैं विश्व अनुपम शक्ति हूँ। मैं क्या नहीं हूँ॰

चोर का दिल

ले० - डा० रविप्रतापसिंह श्रीनेत

"कांटिनैन्टल एक्सप्रैस' क़रीब एक घण्टे चल कर 'ब्रुकलिन' स्टेशन पर रुकी। प्लेटफ़ार्म आदमियों से खचाखच भरा हुआ था। शोरो-गुल के मारे, कान के पर्दे फटे जा रहे थे। मुसाफिरों का चढ़ना-उतरना जारी था। खोंचेवाले तरह २ की चीज़ें बेच रहे थे। मालूम होता था कोई बड़ा भारी मेला भरा हुआ है। बेचैनी का एक अजीब नज़ारा था!

उहरो विलसन इसी समय स्टेशन पर आया। बारह साल का लड़का था। निहायत ही कमज़ोर और ग़रीब। उसने शायद दो दिन से खाना तक न खाया था। लेकिन भीख भी नहीं मांगी थी। उतरा हुआ चेहरा, भरा हुआ दिल और राक्षस की भूख ले कर वह स्टेशन पर जा लगा! कपड़े फटे हुए थे। कहीं २ पैबन्द भी लगे थे। ग़रीबी और मोहताजी उसे प्रेम से लपेटे थीं। प्लेटफ़ार्म की चहल-पहल वह देखता ही रह गया। मीलों पैदल चलकर आया था। थकावट के मारे शरीर जवाब दे रहा था। एक्सप्रैस देख कर थकावट की उदासी मिटती जा रही थी। विलसन ने सोचा—'काश! मैं भी इसी एक्सप्रैस का मुसाफिर होता!' इस विचार के साथ ही उमङ्ग और उत्साह ने उसके दिल को जा पकड़ा। उतरे हुए चेहरे पर आशा की हँसी दौड़ आई। लेकिन प्लेटफ़ार्म पर कैसे जाना हो? यह कड़ी समस्या थी। इसी पर उसका दिल सोच रहा था। वह सोच में डूबा—एक्सप्रैस के भयावक इँजिन को देख रहा था! किसे परवाह थी जो विलसन की तरफ देखता?

प्लेटफ़ार्म ऊँचे २ सीखचों से घिरा था। दो-तीन दरवाजे थे। उन्हीं में से प्लेटफ़ार्म पर जाया जा सकता था; लेकिन टिकिट देखने वाले जमदूतों की तरह डटे हुए थे। मुसाफिरों की एक भीड़, एक दरवाजे में से गुज़र रही थी। एक्सप्रैस का टाइम हो चुका था। इसी लिए उस भीड़ के मुसाफिर जलदी में थे। विलसन को उपाय सूझा। उसने पक्का इरादा किया कि वह भी इसी भीड़ के अन्दर पिल पड़े। धक्कम-धक्का में निकल ही जाएगा। वह उसी भीड़ में जा घुसा। किसी तरह, उसका

मनोरथ पूरा हुआ। वह प्लेटफ़ार्म पर निकल आया। एक्सप्रैस ने सीटी दी। लोग डब्बों में घुसने लगे। बिलसन कहाँ जाय यही सोच रहा था। आखिर वह भी सामने के एक डिब्बे में घुस गया। इतने में दूसरी सीटी हुई और एक्सप्रेस के डिब्बे धीरे २ रेंगने लगे। बिलसन एक बेंच पर बैठ गया। देखते ही देखते एक्सप्रैस की रफ़्तार तेज़ हो गई। हवा को चीरती हुई वह हवा की तरह भागी जा रही थी। डब्बे के मुसाफिर बातचीत कर रहे थे। कुछ लड़के केक खा रहे थे; कुछ फलों पर हाथ साफ कर रहे थे। बिलसन—आफ़त के मारे बिलसन के चेहरे पर रेल के सफर की खुशी तो थी; लेकिन, भूख की आग उसकी आत्मा को जला रही थी।

किसी तरह आधा घण्टा बीता। एक्सप्रैस की रफ़्तार कम होने लगी। कुछ मुसाफिर उठने की तैयारी करने लगे। देखते ही देखते मकानात नज़र आने लगे। फिर, रेल के चक्कों की आवाज़ आने लगी। एक प्लेटफ़ार्म नज़र आया। लोगों की उत्सुक भीड़ और खोंचे वालों की कर्कश आवाज़! रेल खड़ी हो गई। डब्बे के दरवाजे खुल गए। लोग उतरने और चढ़ने लगे। इतने ही में एक टिकिट-चैकर बिलसन के डब्बे में घुसा। उसने लोगों के टिकिट देखना शुरू किया। बिलसन—बिना टिकिट बैठा हुआ बिलसन घबरा गया। उसकी अक्ल गुम हो गई। सिर चक्कर खाने लगा। जिस्म से पसीना छूट आया। वह अपनी जगह से उठा; पर खड़े होने के पहले ही फर्श पर धम से गिर पड़ा। साथी मुसाफिर उसकी तरफ लपके; लेकिन बिलसन बेहोश हो चुका था। पानी सींचने पर, उसे होश आया। उसका दिल चोर का दिल था। उसमें साहस कहां से आता? उसका विवेक ही उसकी चोरी पर लानत भेज रहा था। किसी ने उससे टिकिट नहीं मांगा; पर उसकी चोरी, उसके लिए ही असह्य थी। चोर का दिल ही कितना?

दंगे का समय

[र०—श्री वीरेन्द्र]

बालक आया दंगा लाया।
समझ साथ में पर ले आया ॥१॥

दंगे पर फिर काबू पाया।
उसका उसने नियम बनाया ॥२॥

उल्टे दंगे से मुँह मोड़ा।
समय शाम का उसको छोड़ा ॥३॥

अमर रहो माता कोरिया !

[ले० – श्री आचार्य गिजुभाई]

कोरिया स्वतन्त्र था, सुखी था; किंतु जापान ने उसकी स्वतन्त्रता छीन ली।

कोरिया को यह कैसे अच्छा लगता ? गुलाम होना कौन पसन्द करेगा ? कोरिया की एक-एक स्त्री, एक-एक पुरुष और एक-एक बालक स्वतन्त्रता के लिए तरस रहा था।

कोरिया की पाठशालाएँ जापान के आधीन थीं। एक पाठशाला में एक दिन जलसा हुआ। जापानी अधिकारियों से पाठशाला खचाखच भर गई।

अधिकारियों ने कोरिया के बालकों से लम्बे २ भाषण देते हुए कहा—"जापान तुम्हारा राजा है। उसकी आज्ञा तुम्हें माननी चाहिए। इसी में सच्ची राजभक्ति है।"

बेचारे शिक्षक तो गुलाम थे ही, वे क्या करते ? उन लोगों ने आगन्तुक अधिकारियों का खूब आदर-सत्कार किया; और जापान का जय-जयकार करने लगे।

इतने में एक बालक भाषण-मञ्च पर आकर खड़ा हो गया—केवल तेरह वर्ष का !

सब आश्चर्य-चकित थे।

बालक ने पहले ऐसा भाषण दिया कि जापानी अधिकारी खुश हो गए। वे कहने लगे—"वाह, कोरिया कैसा राजभक्त है ! उसके बालक भी राजभक्ति को समझते हैं !"

भाषण पूरा होने को आया। बालक तनकर खड़ा हो गया, छाती फूल उठी, आँखों से चिनगारियां बरसने लगीं।

सब अधिकारी देखते रहे, सोच में पड़ गए—"अब बालक क्या कहेगा ? क्या करेगा ?"

बालक बोला—"मित्रो ! मैं तुमसे एक चीज़ चाहता हूं—सिर्फ एक !"

बालक का हाथ छाती पर पहुँचा। सैंकड़ों बालकों के हाथ छाती पर पहुँच गए।

जापानी अधिकारी विचार कर ही रहे थे, इतने में उस बालक का हाथ कुर्ते के नीचे गया और बाहर आया। हाथ में मातृभूमि का एक छोटा-सा झण्डा था !

बालक ललकारता हुआ बोला—"हमारी मातृभूमि हमें लौटा दीजिए।"

सब जापानी विचार में डूब गये—यह क्या ?

इतने में चार सौ हाथ आकाश की ओर उठे और चार सौ झण्डे फहराने लगे ! चार सौ कण्ठों से आवाज़ निकली—

"अमर रहो माता,
अमर रहो माता,
अमर रहो माता कोरिया !"

जलसा भँग हो गया। जापानी सिपाही टूट पड़े। मार-पीट और लड़ाई-झगड़ा! पर वे बालक कब हार मानने वाले थे? वे तो बोलते ही गए—

"अमर रहो माता,
अमर रहो माता,
अमर रहो माता कोरिया!"

सफ़ाई

[१०—इन्द्रादेवी]

झाड़-पोंछ घर स्वच्छ बनाओ।
गंदे कीड़े दूर भगाओ॥

चीज़ें निज-निज स्थान बिठाओ।
हर कौने को शुद्ध बनाओ॥

घास फूस को दूर हटाओ।
कूप रसोई साफ़ बनाओ॥

गलियों के तुम भाग बनाओ।
फिर निज हिस्से को चमकाओ॥

गढ्ढा खोदो टट्टी जाओ।
फिर मिट्टी से उसे दबाओ॥

करो सफ़ाई अपने हाथों।
मत डालो औरों के माथों॥

मोल खरीदी शुद्धी छोड़ो।
'नौकर-शुद्धी' से मुँह मोड़ो॥

खुद ही कपड़ों को धो डालो।
मत धोबी के सिर पर डालो॥

जो मैलापन तुम कर डालो।
उसको अपने हाथों टालो॥

मन को अपने स्वच्छ बनाओ।
शुद्धी का आनन्द उठाओ॥

यह कैसा धर्म ?

जो धर्म भाई को बेगाना बनाता है, ऐसे धर्म को धिक्कार ! जो मजहब अपने नाम पर भाई का खून करने के लिए प्रेरित करता है. उस मजहब पर लानत ! कुछ बेकसूर अन्धविश्वासों, कुछ फजूल किंतु अहानिकारक रस्मोरिवाजों की ओर से हम आंख मूँद सकते हैं. लेकिन उनकी आड़ में यदि मजहब कौम को टुकड़े २ बाँटना चाहता है तो हमारे धैर्य की हद हो जाती है। जब आदमी चुटया काट, दाढ़ी बढ़ाने भर से मुसलमान और दाढ़ी मुडा, चुटिया रखने मात्र से हिन्दू मालूम होने लगता है तो इसका मतलब साफ है कि यह भेद सिर्फ बाहरी है और बनावटी है। एक चीनी चाहे बौद्ध हो या मुसलमान, ईसाई हो या कनफूशी, लेकिन उसकी जाति चीनी रहती है, एक जापानी चाहे बौद्ध हो या शिन्तोधर्मी लेकिन उसकी जाति जापानी रहती है, एक ईरानी चाहे वह मुसलमान हो या जरतुश्ती, किन्तु वह अपने लिए ईरानी छोड़, दूसरा नाम स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं; तो हम हिन्दियों को मजहब टुकड़े-टुकड़े में बाँटने को क्यों तैयार हैं और उनकी इन नाजायज हरकतों को हम कैसे बर्दाश्त करें ?

—राहुल सांकृत्यायन

भारतीय राजाओं की फिजूलखर्ची

—जोधपुर के किले में शस्त्रागार में करीब ८५ लाख पौंड (११॥ करोड़ रुपये) मूल्य के जवाहरात हैं जिनमें ठोस सोने के बच्चों के खिलौने, अनेकों हीरों से जड़ी औरतों की जूतियां तथा कीमती पत्थर जड़ी अनेकों वस्तुएँ हैं।

—एक १८ वर्षीय रानी के बदन पर उसके बदन से भी भारी २॥ लाख के जेवर लदे थे जिस से दो दासियां उसे पकड़ कर चलाती थीं।

—ट्रावनकोर के राजा प्रतिदिन ५ हजार ब्राह्मणों को भोजन देते हैं।

—नैपाल के महाराज की शिकार पार्टी में ३९० हाथी रहते हैं और वे अपने हाथी पर से हाका करने वालों को बराबर सिक्के लुटाते रहते हैं।

—एक महाराजा के यहां सिर्फ एक मेहमान के लिए १०० नौकर तथा २८ पहरेदार रखे गये थे।

— एक महाराज के पास २७० मोटरें हैं जिनमें एक क्रोमियम प्लेटेड रोल्स राइस है।

—जयपुर के महल में ३ हजार स्त्रियां काम करती हैं और अस्तबल में २ सौ घोड़ों के लिए बिजली के पँखे लगे २०० बढ़िया कमरे बने हैं, और घोड़ों को धोने के लिए 'शावर बॉथ' हैं।

—एक महाराज के यहां मेहमानों को सोने के लिए सोने के मुलम्मे के पलंग दिए जाते हैं। उसके महल में १५ रसोईघर है और दिनमें १५ बार भोजन तैयार होता है।

—हैदराबाद के निजाम का जनानखाना बहुत बड़ा है। जब वे दिल्ली जाते हैं तो उनके साथ २०० औरतें रहती हैं।

—श्रीमती रोजिटा फोर्ब्स

मेरा मकसद ?

'यदि आप दुःखी नहीं हुए तो मैं आपको दुःख का अनुभव किस प्रकार करा सकता हूं ? यदि आप को आनन्द की इच्छा नहीं, तो मेरा इस विषय में

आपको कहने से क्या लाभ ? यदि आपका दिल प्रेम के लिए गद्गद् नहीं हुआ तो प्रेम के सम्बन्ध में मेरी बातें करनी भी व्यर्थ हैं। मैं आपको कोई ऐसी औषधि नहीं दे सकता, जिससे आपको तुरंत समझ-विवेक हो जाय। ज्ञान-प्राप्ति उस समय होती है जब मनुष्य के हृदय में उसके प्राप्त करने की इच्छा हो। आप असलियत के खोजी बनें और हर एक चीज के खिलाफ जो कि आपको घेरे बैठी है, विवेकपूर्ण क्रांति करें। मैं आपको यह नहीं सुझा सकता कि आप जीवन को कैसे गुज़ारें। मैं एक सूरजमुखी फूल को गुलाब का फूल नहीं बना सकता, परन्तु पूर्णता-प्राप्ति के लिए सूरजमुखी फूल के अन्दर ही बल तथा शक्ति पैदा कर सकता हूँ। यही मेरा मकसद है।

— जे. कृष्णमूर्ति

चोरी गये सोने के बक्स का पता कैसे लगा ?

१९३२ की बात है कि सोने के बक्स बन्दरगाह मार्सेल्स में जहाज से उतारकर ट्रेन में रक्खे गये थे। मगर रास्ते में एक बक्स ग़ायब था। जिस कमरे में बक्स रखे गये थे वह बड़ा सुरक्षित था। परिस पहुँचकर एक बक्स कम निकला। मगर कमरे में ताला, जिस पर मुहर लगी हुई थी, ठीक-ठीक लगा हुआ था। पुलिस को बड़ा आश्चर्य हुआ। चोरी की इस खबर से तमाम मुल्क में सनसनी फैल गई। बक्स का पता लगाने में कई सप्ताह तक कोई सफलता न मिली। एक दिन एक अफसर को उसकी सास की आत्मा ने स्वप्न में बताया कि चोरी करने वाला अमुक जरायम पेशा गिरोह है जिसने गार्ड की साजिश से चोरी की है। इस सूचना के अनुसार उस अफसर ने जाँच शुरू की। गार्ड और जरायम पेशा गिरोह के चार आदमी गिरफ्तार किये गए। खोज-बीन करने पर मालूम हुआ कि सोना एक अमेरिका की कम्पनी के हाथ बेचा गया है। जब मुकदमा अदालत में पेश हुआ तो चोरी के सम्बन्ध में सनसनी पैदा करने वाले हालात का पता लगा। अपराधियों को सजायें मिलीं और हुकूमत ने सोने की वापसी के लिए अमरीका-सरकार से लिखा पढ़ी शुरू की।

(मस्ताना जोगी उर्दू)

दीपक के प्रकाश में--

हमारा भोजन—लेखक डक्टर के० आर० दिलकश, एन० डी० लखनऊ। मूल्य ≡) पृष्ठ संख्या ५२

यह निर्विवाद है कि हमारे देश में ९० फी सदी बीमारियाँ अवैज्ञानिक भोजन के कारण होती हैं। लोग नहीं जानते कि क्या खाना चाहिए, कब और कैसे खाना चाहिए। प्रस्तुत पुस्तक में इन्हीं सब बातों पर प्रकाश डाला गया। पुस्तक है तो छोटी सी लेकिन मैटर में इसमें सभी जरूरी बातें देने का प्रयत्न किया गया है। स्वास्थ्य के महत्त्व को समझने वाले प्रत्येक व्यक्ति को यह पुस्तक पढ़नी चाहिए और उसके अनुसार अपने भोजन में फेरफार करके अपने स्वास्थ्य को ठीक रखना चाहिए।

रूरल इण्डिया (अंग्रेज़ी मासिक)—सम्पादक—हरिशङ्कर द्विवेदी, प्रकाशक—Servants of India Society's Home, Sandhurst Road, Bombay. वार्षिक मू० ५)

रूरल इण्डिया बड़ा ही सुन्दर, उपयोगी और ज्ञान बर्धक पत्र है, इसके सभी लेख मार्मिक और ठोस सामग्री से परिपूर्ण होते हैं इस पत्र की विशेषता यह है कि इसको चलाने वाले सभी ग्रामसुधारक काम करते हैं। पत्र की छपाई, सफाई और गेट-अप आदि आकर्षक और सन्तोष-जनक है। हम संचालकों से अनुरोध करेंगे कि वे इस पत्र का हिन्दी संस्करण भी जारी करें कि जिससे सर्व साधारण को भी लाभ पहुँच सके। पत्र का सम्पादन परिश्रम और योग्यता से होता है।। सभी ग्राम प्रेमियों को यह पत्र अवश्य पढ़ना चाहिए।

लाला हरदयाल —

मातृभूमि के अनमोल लाल, प्रसिद्ध क्रान्तिकारी ला० हरदयाल का हृदय-गति बन्द होने के कारण ४ मार्च को अमेरिका में स्वर्गवास हो गया। ला० हरदयाल जी की मृत्यु से हमारे देश की जो क्षति हुई है, उसका पूरा होना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। आप बचपन से ही बड़े ज़हीन थे। 'होनहार बिरवान के होत चीकने पात' वाली कहावत आप पर सोलह आने चरितार्थ होती थी। आपको शुरू से ही पढ़ने लिखने का बड़ा शौक था। आपकी बुद्धि बड़ी तीव्र थी। अतः बीस साल की उम्र में ही अङ्गरेज़ी और इतिहास में एम०ए० पास कर लिया था। अङ्गरेज़ी में तो आपको ९८ फी सदी नम्बर मिले और सिवाय बी० ए० के आप सभी श्रेणियों में सर्वप्रथम रहे थे। आपकी अलौकिक और आश्चर्यजनक स्मरण-शक्ति को देखकर तो बड़े २ विद्वान दांतों तले उंगली दबा लिया करते थे।

भारत सरकार ने आपकी विद्वत्ता पर मुग्ध हो कर लगभग २७०० रुपया वार्षिक का वज़ीफ़ा दे कर आपको ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी में उच्च-शिक्षा प्राप्त करने के लिए भेजा। वहाँ भी आप अपनी श्रेणी में सर्वप्रथम रहे और ८० तथा ६० पौंड के दो वज़ीफे हासिल किए। लेकिन लन्दन में रहते २ भारतीय क्रान्तिकारियों के सम्पर्क में आते ही आपके विचारों ने पलटा खाया। मातृभूमि को गुलामी की बेड़ियों से मुक्त कराने के लिए आप बेचैन और बेक़रार हो गए। आपने अपनी समस्त भावी आशाओं और महत्वाकाँक्षाओं को ठुकरा दिया। सरकारी वज़ीफों को एक दम छोड़ दिया। वज़ीफा छोड़ते समय भारत-मन्त्री को आपने लिखा था कि "जिस जाति ने मेरे देशवासियों को सङ्गीन के बल से गुलाम बना रखा है, उससे किसी तरह का वज़ीफा लेना मैं पाप समझता हूँ।"

पढ़ाई छोड़ कर आप भारत लौट आए और अपने देशवासियों को विप्लव के लिए तैयार करने लगे। सरकार आपके प्रभावशाली प्रचार से घबरा उठी। इसलिए आप १६०८ में भारत से भाग गए। वर्षों तक विदेशों में घूम २ कर भारत के नाम को रोशन किया। इन दिनों में आपको घोर कष्टों का सामना करना पड़ा था। १६२७ में आपको लन्दन में रहने की इजाज़त मिल गई। अब आपका दिल राजनीति से हट गया था। लन्दन में आपने अपना सारा समय अध्ययन में ही लगाया। इन्हीं दिनों में आपने पी० एच० डी० की डिग्री प्राप्त की और कई महत्वपूर्ण पुस्तकें लिखीं।

आपका ज्ञान अगाध था। आपकी तर्कशक्ति अद्भुत थी। आप डेढ़ दर्जन के क़रीब भाषाओं को खूब अच्छी तरह जानते थे। जहाँ जाते थे वहीं की भाषा पर अधिकार कर लेते थे। आपके गवेषणापूर्ण भाषणों को सुनकर और विद्वत्तापूर्ण लेखों को पढ़कर प्रत्येक व्यक्ति मन्त्रमुग्ध हो जाया करता था। आपकी लेखनी में जादू था, ज़बान में मिठास और आकर्षण था। लन्दन में 'हरदयालिज़्म' का प्रचार करने के लिए 'मॉडर्न-कल्चर' नामक इन्स्टीच्यूट की स्थापना की थी। इस संस्था का उद्देश्य था समस्त मानवजाति में मानव-धर्म (Humanism) का प्रचार करना। कुछ भारतीयों का कहना है कि लाला जी हिन्दू धर्म के कट्टर समर्थक थे। लेकिन उनकी प्रसिद्ध पुस्तक '१२ धर्म और आधुनिक जीवन' से जो पहले पहल १६३८ में प्रकाशित हुई, स्पष्ट हो जाता है कि अपा

किसी धर्म विशेष के अनुयायी नहीं थे । आप गत दस वर्षों से मानव-धर्म का प्रचार करते थे । आप दुनिया की सब कौमों में मेल मिलाप बढ़ाना तथा कौम, नसल, मज़हब और रङ्ग रूप के नाम पर पैदा हुए सब प्रकार के वहमों, पक्षपातों और भ्रमों को मिटा देना चाहते थे। आप विश्व की भलाई चाहते थे। आप ईश्वर, स्वर्ग, नर्क देवी-देवता, जिन, भूत फरिश्ते शैतान, चमत्कार, दैवीशक्ति (इल्हाम) आदि कपोल-कल्पित बातों में कतई विश्वास नहीं रखते थे । अपनी उक्त पुस्तक में आपने साफ २ लिखा है कि शान्ति से रहने के लिए मनुष्य को ईश्वर का खयाल छोड़ना होगा— "God must go if Man is to live in peace" सौ बात की एक बात यह कि आप मनुष्य को ही प्रकृति की सर्वोत्कृष्ट कृति और मानव-धर्म को ही सर्वश्रेष्ठ धर्म समझते थे।

राजा महेन्द्रप्रताप—

देशभक्त राजा महेन्द्रप्रताप गत २१ वर्ष से अपनी मातृभूमि से निर्वासित हैं । उनका अपराध केवल यही है कि वे अपने देश से प्यार करते हैं । जब से काँगरेसी मन्त्रिमण्डलों की स्थापना हुई है तभी से निर्वासित देशभक्तों पर से प्रतिबन्ध उठाए जाने का भरसक प्रयत्न किया जा रहा है । इस प्रयत्न के फलस्वरूप शेख अबेदुल्ला सिंधी तो भारत लौट भी आए हैं । लेकिन भारत सरकार राजा महेन्द्रप्रताप को भारत लौटने की इजाज़त देने को तैयार नहीं है । राजा महेन्द्रप्रताप के विचारों में नवीन-अन्तःसमान का फर्क़ पैदा हो गया है । वे अब हिंसक क्रान्ति में ज़रा भी विश्वास नहीं रखते । अब तो वे अपने 'विश्व-सङ्घ' नामक पत्र द्वारा विश्व-शाँति का प्रचार कर रहे हैं । वे एक ऐसे शाँतमय राज्य का स्वप्न देख रहे हैं कि जिसकी स्थापना से दुनिया में शोषण और मारकाट का सदा के लिए अन्त हो जाएगा । उनके एक-एक शब्द से प्रेम की ध्वनि निकलती है । वे किसी से — अपने विरोधी से भी, ईर्षा-द्वेष नहीं रखते, ऐसे सुंदर और प्रेमी व्यक्ति पर किसी प्रकार का शक करना मानवता का घोर अपमान करना है । बङ्गाल के राजबन्दियों और काकोरी षड्यन्त्र केस के कैदियों के रिहा हो जाने से ही जब कोई आफत नहीं आई तब विश्वप्रेमी राजा महेन्द्रप्रताप के भारत लौटने से क्या ग़ज़ब ढह जाएगा ?

हमारा दृढ़ विश्वास है कि राजा जी भारत में शाँति के दूत के रूप में आवेंगे । उनके यहाँ लौटने से पहले की अपेक्षा देश में अधिक शाँति और सब जातियों में अधिकाधिक मेल-मिलाप होगा । अतः सरकार को चाहिए कि वह खुशी २ उनको भारत लौटने की आज्ञा देकर अपनी दूरदर्शिता और राजनीतिज्ञता का परिचय दे।

श्रद्धेय टण्डन जी का स्वास्थ्य—

संयुक्त प्रांतीय असेम्बली के स्पीकर, हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सर्वस्व तथा साहित्य सदन, अबोहर के परम हितैषी माननीय पुरुषोत्तमदास जी टण्डन कई मास से हृदय-पीड़ा से रुग्ण हैं । उनके मन्त्री १४ अप्रेल के पत्र में लिखते हैं कि "बाबूजी के बाएँ हाथ तथा हृदय-स्थान पर तनाव और सनसनी होती रहती है जो इस बात का प्रमाण है कि रोग की जड़ अभी गई नहीं है । अब तक बाबूजी दो कदम भी चल नहीं सकते। वे चौबीसों घण्टे चारपाई पर ही रहते हैं, मिलना जुलना कतई बन्द है।" टण्डन जी देश की अमूल्य निधि हैं। उनका एक २ क्षण देशसेवा में ही गुज़रता है । उन्हें सदा एक ही धुन रहती है कि उनका देश शीघ्रातिशीघ्र आज़ाद हो । रात-दिन कार्यव्यस्त रहने के कारण ही उनका स्वास्थ्य बिगड़ गया है । इस रुग्णावस्था में भी वे कभी २ देश सम्बन्धी बातचीत करने लग जाते हैं जिसके कारण उन्हें कष्ट होने लगता है और दर्द बढ़ जाता है । हमारी यही प्रार्थना है कि टण्डन जी शीघ्र ही स्वस्थ होकर अपने अनुभव और अगाध ज्ञान द्वारा पूर्ववत् देश और राष्ट्रभाषा हिन्दी की सेवा करने लगें ।

संसार-चक्र

इलाका

—गाँव महराणा के चौ० मामराज, बगड़ावत व लेखराम विशनोई की माताजी का पिछले महीने स्वर्गवास हो गया जिसके पीछे सैंकड़ों रुपये खर्च करके औसर किया गया लेकिन चौ० लेखराम जी ने, जोकि ग्राम-पञ्चायत के प्रतिनिधि भी हैं, इस फिजूल-खर्च में बिलकुल भाग न ले कर उपयोगी संस्थाओं को दान देने का निश्चय किया है।

—अबोहर निवासी हैदराबाद सत्याग्रह आन्दोलन में विशेष दिलचस्पी ले रहे हैं। २० अप्रेल को अबोहर के ७ आर्य वीरों का एक सत्याग्रही जत्था यज्ञ-हवन, झण्डा अभिवादन, तिलक, आशीर्वाद थैली भेंट करना आदि कार्यवाही के बाद गाजे बाजे के साथ हैदराबाद को रवाना हुआ। दूसरा जत्था भेजे जाने की तैयारी होरही है।

प्रान्त

—पञ्जाब में सन १९३८ में १८ साम्प्रदायिक दंगे हुए, १९ पुस्तकें व २६ समाचार पत्र जब्त हुए।

—३ अप्रेल को असेम्बली में युनियनिस्ट दल के ३ मेम्बर अलग होकर विरोधी दल में मिल गये जिनकी संख्या अब ५१ हो गई है। और भी कई मेम्बरों के मंत्री मण्डल दल से शीघ्र अलग होने की संभावना है।

—दिल्ली जिला बोर्ड गौओं की नसलसुधार के लिये १० हजार रु० के साण्ड खरीद कर गावों में बाँटेगा तथा अकाल के कारण उन साण्डों का पालन खर्च भी बोर्ड देगा।

—पञ्जाब असेम्बली में डिप्टी स्पीकर, प्रधान मन्त्री तथा अन्य मन्त्रियों के विरुद्ध अविश्वास के प्रस्ताव पेश किए गए।

—यू० पी० असेम्बली की लम्बी बहस के बाद काश्तकारी बिल पास हो गया।

—मेरठ की म्युनिसिपैल्टी ने शहर में भीख मांगने को रोकने के लिए एक कानून बनाया है।

—सी०पी० असेम्बली में एक बिल पेश हुआ जिस से अच्छे बर्ताव वाले कैदियों को घर जाने के लिए साल में दस दिन की छुट्टी मिला करेगी।

—मद्रास की कांग्रेसी सरकार ने १९३९-४० में प्रान्त के १८०० और लोअर मिडिल स्कूलों में हिंदुस्तानी की शिक्षा अनिवार्य करदी है।

—इस बार कांग्रेसी उम्मेदवार श्री बी० ए० करञ्जिया बम्बई कारपोरेशन के मेम्बर चुने गए।

—इस वर्ष अकेले बम्बई शहर से युनि० की मैट्रिक परीक्षा में ५१०० परीक्षार्थी बैठे।

—आसाम असेम्बली में कृषि-आय-कर बिल पास होगया जिसके अनुसार कृषि से ३ हजार से अधिक आय होने पर कर लगेगा।

देशी राज्य

—हैदराबाद सत्याग्रह के चौथे डिक्टेटर राजगुरु श्री धुरेन्द्र शास्त्री २२ अप्रेल को ५३० सत्याग्रहियों के साथ गिरफ़्तार हुए। पांचवें डिक्टेटर बिहार के श्री वेदव्रत तथा छठे लाहौर के म० कृष्ण नियुक्त हुए हैं। अप्रेल के दूसरे सप्ताह में अन्तर्राष्ट्रीय आर्य सङ्घ की कार्य समिति की जो बैठक शोलापुर में हुई थी उस में निर्णय हुआ कि सत्याग्रह को और अधिक जोर से चलाया जावे। फलतः देश के कोने २ से सत्याग्रही

जत्थों की भरमार हो रही है। लोग सत्याग्रह में नाम लिखाने के लिए अत्यन्त उत्सुक हैं। सत्याग्रही जत्थों को स्थान २ पर थैलियां भेंट हो रही हैं। क्या बूढ़े, क्या जवान, क्या मर्द क्या औरत, क्या लड़के और क्या लड़कियां सभी में जोश का दरिया उमड़ आया है। कहा जाता है कि मई मास में ५ हजार सत्याग्रही सत्याग्रह करेंगे।

—पूना के पास की छोटी सी रियासत रामदुर्ग में बड़ा झगड़ा हो गया। उत्तेजित भीड़ ने जेल के ८ सिपाहियों को मार डाला। भीड़ में से भी पाँच आदमी मरे।

—हैदराबाद रियासत में १० अप्रेल को सब कांगरेसी कैदी, जो कि २०० के लगभग थे, छोड़ दिए गए।

—मण्डी नरेश ने राजा के नीचे राज्य में पूर्ण उत्तर दायी शासन स्थापित करने की घोषणा की है।

—पटियाला दरबार ने प्रजा परिषद के सत्याग्रह करने पर सँ० १९८८ की हिदायत को रद करने या उसमें उदार परिवर्त्तन करने की घोषणा की है। इस हिदायत के अनुसार राज्य में राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक कार्य नहीं हो सकता। कोई संस्था सरकारी आज्ञा बिना स्थापित नहीं हो सकती। इसके अनुसार कोई भी आदमी बिना मुकदमा चलाए अनिश्चित समय के लिए किले में नजर बन्द किया जा सकता है।

—ग्वालियर सरकार ने ३५ हजार रुपये की खादी प्रतिवर्ष खरीदने का आर्डर राजस्थान चर्खा संघ को दिया।

—महात्मा जी के भरसक प्रयत्न करने पर भी राजकोट में सुधार कमेटी कायम नहीं की जा सकी महात्मा जी बेहद निराश होकर राजकोट से कलकत्ता रवाना हो गए हैं। फिलहाल तो राजकोट का मामला खटाई में पड़ गया है।

देश

—केन्द्रीय असेम्बली के १५ अप्रेल को सताप्त होने वाले दिल्ली अधिवेशन में कांग्रेस दल ने ३८ बार मत विभाजन में विजय प्राप्त की। ४ बार हारे तथा दो बार तटस्थ रहे। ४० दिन के इस अधिवेशन में १७५० प्रश्न पूछे गए।

- केन्द्रीय असेम्बली द्वारा स्वीकृत बीमा ऐक्ट एक जुलाई सन १९३९ से लागू हो जावेगा।

—कांग्रेस पार्टी के कहने पर कराँची कारपोरेशन ने शहर में संयुक्त निर्वाचन करने का प्रस्ताव पास किया है।

—हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग ने हिन्दी शार्ट हैण्ड सिखाने के लिए प्रयाग में १० अप्रेल से एक कक्षा खोली है। २) मासिक शुल्क देकर हर कोई हिन्दी शार्ट हैण्ड सीख सकता है।

विदेश

—रिपब्लिकनों के आत्म-समर्पण करने पर स्पेन पर जनरल फ्रैंको का अधिकार हो गया है।

—ब्रिटिश सरकार भारत के १९३५ के शासन-विधान में यह महत्वपूर्ण संशोधन करने जा रही है कि युद्धकाल में प्रान्तों में केन्द्रीय सरकार को व्यवस्था और शासन पर पूर्ण अप्रतिहत अधिकार रहेगा।

—इङ्गलैंड में बाधित-सैनिक-भरती की घोषणा कर दी गई है। इसके अनुसार २० से २१ वर्ष के सभी आदमियों को फौज में भरती होना पड़ेगा।

पाठकों से निवेदन

एक कर्मचारी के अकस्मात् चले जाने के कारण, इस अंक को निश्चित समय पर प्रकाशित करने के लिये पूरे पृष्ठ न छप सके। अतः यह अंक ४४ पृष्ठों का जा रहा है। प्रेमी पाठक हमारी इस बिवशता को समझते हुए, क्षमा करेंगे।

—मैनेजर

'दीपक' का लेखक-मण्डल

पाठकों को यह जानकर खुशी होगी कि 'दीपक' को अधिक उपयोगी व आकर्षक बनाने के लिए हमने एक 'लेखक-मण्डल' का आयोजन किया है। निम्नलिखित सुयोग्य लेखकों व राष्ट्रीय-कार्यकर्ताओं ने सहयोग देना स्वीकार कर लिया है:—

श्री विश्वप्रेमी राजा महेन्द्रप्रताप, टोकियो (जापान)।
श्री आचार्य अभयदेव सन्यासी, अरविंदाश्रम, पांडिचेरी
जंगबहादुर सिंह सम्पादक 'ट्रिब्यून', लाहौर।
गुलामराय एम० ए०, फाजिलका।
भूषण मिश्र, सम्पादक 'जीवनसखा', प्रयाग।
उपेन्द्रनाथ 'अश्क' बी० ए० एल० एल० बी०, लाहौर।
रामकृष्ण 'भारती' शास्त्री, लाहौर।
रामावतार विद्याभास्कर, रतनगढ़ (बिजनौर)।
नीराम 'वत्सन' तालबेहट, झांसी, (यू० पी०)।
ठाकुर देशराज जी (यू० पी०)
भगवानदास केला, वृन्दावन, (यू० पी०)
नागार्जुन चम्पारन, (बिहार)।
रघुप्रसाद 'प्रेम' (बिहार)।

श्री रामकुमार 'स्नातक' जालोर (मारवाड़)।
श्री दयाशङ्कर मिश्र, अजमेर।
श्री त्र्यम्बक भट्ट, ग्रामसेवक विद्यालय, वर्धा (सी० पी०)
श्री प्रभुदयाल विद्यार्थी, मगनवाड़ी वर्धा, (सी० पी०)।
श्री हीरासिंह जींद राज्य।
श्री "विनीत" बन्धु।
श्री आचार्य हरभाई त्रिवेदी, भावनगर
श्री अमरनाथ विद्यालङ्कार, सदस्य, लोक-सेवक-संघ अमृतसर
श्री डा० रविप्रतापसिंह श्रीनेत, छिंदवाड़ा।
श्री रमेश वर्मा, आगरा
श्री कृष्णजसराय बी० ए०, देहली।
श्री विश्वप्रकाश दीक्षित 'बटुक', मेरठ।

Regd. No. L. 3700

अनमोल बोल

जो तुम्हारी देह का नाश कर सकता हो, किंतु आत्मा की हत्या करने की क्षमता न रखता हो, उससे कभी मत डरो। परन्तु उससे तो ज़रूर ही डरो जो आत्मा और शरीर दोनों ही की हत्या करता है।

— बाइबिल

* * *

बुराइयों का उल्लू अज्ञानता के घोर अंधकार में ही देख सकता है, परन्तु जब उसे विचार ज्ञान के उज्ज्वल प्रकाश में लाया जाता है तो उसकी आंखें कुछ नहीं देख सकतीं।

* * *

कमज़ोर वह नहीं जिसे कमज़ोर कहा जाए बल्कि वह जो अपने को कमज़ोर समझता है।

— गाँधीजी

* * *

अपने सुख के लिए चिन्ता शील होना, दुःखी होने का निश्चित तम उपाय है। सुख जीवन का लक्ष्य नहीं है। साधारण जीवन का लक्ष्य अपने कर्त्तव्य को पूरा करना है।

— अरविन्दाश्रम की माताजी

* * *

पूजा करना या नमाज़ का अदा करना तो महज़ विधवाओं का काम है। रोज़े या व्रत रखना सिर्फ रोटी की किफ़ायत करना है। हज करना महज़ तमाशा देखना है। लेकिन मर्दों—वीरों का काम तो दूसरे के दिलों को खुश करना है।

— उमर ख़य्याम

मुद्रक एवं प्रकाशक— श्री कुलभूषण द्वारा, 'दीपक प्रेस' साहित्य सदन, अबोहर से प्रकाशित।

दीपक
ज्येष्ठ १९९६
साहित्य सदन अबोहर
जून १९३९
२ - ६ - ३९
वार्षिक मूल्य
२॥)
एक अंक
।)

यू० पी० के ग्राम सुधार विभाग द्वारा

ग्रामीण पुस्तकालयों के लिये स्वीकृत❀

सर्व साधारण के लिये उपयोगी, सरल पुस्तकें

❀गौ-स्वाध्याय—इस में गौओं के पालन-पोषण सम्बन्धी ३२ आवश्यक विषयों का विशद वर्णन किया गया है। पुस्तक प्रत्येक गोपालक तथा ग्रामीण भाई के लिए अत्यन्त काम की है। लगभग ८० पृष्ठों की इस सचित्र पुस्तक का मूल्य केवल ।) है। डाक खर्च अलग।

❀ग्राम-सुधार नाटक—ग्रामीणों पर होने वाले घोर अत्याचार, उन में फैले अनेकों कुरीतियों व अन्ध-विश्वासों का नग्न चित्र तथा ग्रामोद्धार के सरल उपायों का यदि आप दिग्दर्शन करना चाहते हैं तो राष्ट्रीय भावों से ओत प्रोत इस नाटक को पढ़िये। सवा सौ पृष्ठों की पुस्तक का मूल्य ।।=) है। डाक खर्च अलग।

❀बाल गोपाल—बालकों के रोजमर्रा काम में आने वाली बातों को इस छोटी सी पुस्तक में सुन्दर और सरल गीतों में वर्णित किया गया है। भाषा चटकीली और इतनी सरल है कि पुस्तक में एक भी संयुक्त अक्षर नहीं आया है। पृष्ठ संख्या ४२, मू० =)।।, डाक खर्च अलग।

❀ईसप-नीति-निकुंज(प्रथम भाग)—इस पुस्तक में महर्षि ईसप की ६१ शिक्षाप्रद, दिल चस्प कहानियों का पद्यानुवाद है। कविता बड़ी सरल है। एक बार शुरु करके खतम करने को ही जी चाहता है। मू० ।।) डाक खर्च अलग।

बालोपदेश (प्रथम भाग)—इस पुस्तक की सर्व प्रियता इसी बात से सिद्ध हो जाती है कि गाँधी आश्रम हटुण्डी जैसी राष्ट्रीय संस्था ने अपनी सभी ग्रामीण पाठशालाओं के लिये इस की इकट्ठी ही सैंकड़ों प्रतियां ली हैं। पृष्ठ ३०, मू० -) मात्र, डाक खर्च अलग।

मिलने का पता:—साहित्य सदन, अबोहर (पंजाब)

नोट:—'दीपक' के ग्राहकों को ये सब पुस्तकें पौने मूल्य में मिलेंगी।

{ दीपक—वर्ष ४, संख्या ८, जून १९३९ ई० }

विषय — लेखक — पृ० सं०

गोपालन विद्या का महत्त्व जानने के लिए यह पुस्तक
अवश्य देखनी चाहिए।

[...० चित्रों सहित] [पृष्ठ लगभग ३५०

गोपालन

तृतीय बार छपी है, इसमें पाँच खंड हैं। दूध, मलाई, मक्खन, घी इत्यादि २ की बनावट में रासायनिक पदार्थों का मेल; उनकी जाँच पर्ताल की नई २ रीतियाँ, गौ-भैंसों की बाबत जानने योग्य अनोखी बातें, दूध के पशुओं को अधिक दुधारू बनाने की सहज रीति, भले बुरे पशुओं की जाँच किस प्रकार की जाती है। अच्छे दूध के पशु कहाँ मिलते हैं, गौ चारण भूमि को किस प्रकार उपयोगी बनाया जा सकता है?

पशुओं की रोगावस्था में चिकित्सा और सुगम तथा सुलभ औषधियों का प्रयोग कौन कौनसी औषधियाँ गोशाला में रखनी चाहियें?

दूध और उसका व्यापार, डेरी फारम किस प्रकार सफलता पूर्वक चल सकती है? धार्मिक गोशालाओं से यथोचित लाभ उठाने की विधि सरकारी डेरियां कहाँ २ पर हैं। इस प्रकार की और बहुत सी अत्यन्त उपयोगी और अनूठी बातें इस पुस्तक में हैं। एक ५० वर्ष के अनुभवी लेखक द्वारा विस्तार पूर्वक लिखी गई है। सजिल्द पुस्तक का मूल्य केवल १।।) रुपया, डाक व्यय अलग।

पुस्तक मिलने का पता—

भगवानदास वर्मा, भगवानदास स्ट्रीट, लाहौर छावनी।

'दीपक' के नियम

१—'दीपक' हर अंग्रेज़ी महीने के पहले सप्ताह में प्रकाशित होता है।

२—'दीपक' का वार्षिक मूल्य डाक व्यय व विशेषांक सहित केवल २।) है। एक प्रति ४ आने, विदेश से ४)।

३—'दीपक' में प्रकाशनार्थ लिखे जाने वाले लेख अधूरे न हों, पृष्ठ के एक ओर ही संशोधन के लिये इधर उधर जगह छोड़ कर सफ़ाई से लिखे हों, विस्तार में चार पृष्ठ से अधिक न हों। भाषा उनकी सरल व शैली रोचक हो जिससे साधारण योग्यता वाले व्यक्ति भी जिनके हितार्थ 'दीपक' प्रकाशित हुआ है, उन्हें पढ़ व समझ सकें।

४—'दीपक' का मुख्य उद्देश **ग्राम-सुधार, समाज-उत्थान, शिक्षा व राष्ट्र-भाषा-प्रचार** द्वारा जनता-जनार्दनमें जीवन-जागृति पैदा करना है। अतः धार्मिक द्वेष, साम्प्रदायिक विद्वेष पूर्ण उपरोक्त उद्देश्य के विपरीत कोई लेख न छप सकेगा।

५—लेख घटाने-बढाने, संशोधन करने तथा प्रकाशित करने या न करने का अधिकार संपादक को होगा।

६—'दीपक' के ग्राहकों को पत्र-व्यवहार करते समय अपना पूरा पता और ग्राहक नम्बर साफ अक्षरों में लिखना चाहिये, अन्यथा जवाब देर से मिलेगा। १ मास से कम समयके लिये पता बदलवाने के लिये डाकखानेसे प्रबंध करें।

७—अस्वीकृत लेख डाक खर्च भेजने पर ही लौटाये जा सकेंगे अन्यथा नहीं।

८—जिन सज्जनों को किसी मास का 'दीपक' न मिले उन्हें पहले अपने डाकघर से पूछ ताछ करके बाद में हमारे पास लिखना चाहिये।

९—लेख, कविता, समालोचना के लिये पुस्तकें और बदले के पत्र, सम्पादक, 'दीपक' साहित्य सदन, अबोहर के पते से और मूल्य तथा प्रबन्ध विषयक पत्र व्यवस्थापक, 'दीपक' के पते से भेजने चाहिएं।

स्तंभ-सूची

१ ज्ञान-चर्चा
२ पुस्तकालय
३ शिक्षा-दीक्षा
४ राष्ट्र-भाषा
५ हमारे गाँव
६ देहाती-साहित्य
७ खेती-बाड़ी
८ उद्योग-धंधे
९ पशु-पालन
१० स्वास्थ्य-साधना
११ हमारा आहार
१२ महिला-मंडल
१३ बाल-मंदिर
१४ प्रकृति और विज्ञान
१५ सामयिक चर्चा
१६ फुलवाड़ी
१७ सम्पादकीय नोट
१८ संसार-चक्र

कृपालु लेखक-लेखिकाओं से नम्र निवेदन है कि वे 'दीपक' के लिये कुछ लिखने से पहिले एक बार हमारे स्तंभों की सूची देख लें। इन स्तंभों के अतिरिक्त भाव-पूर्ण किन्तु सात्विक कविता और कहानियों के लिये भी 'दीपक' के कुछ पृष्ठ 'रिज़र्व' हैं। सरल भाषा में लिखे गये व्यवहारिक लेख 'दीपक' के श्रद्धापात्र होंगे।

—सम्पादक

Approved for use in Schools in U.P., C.P., Bihar, Bombay, Orissa, Kotah and Rajgarh States

सत्यम् :: शिवम् :: सुन्दरम्

सम्पादक—तेगराम

ज्येष्ठ १९९६ } वर्ष ४, संख्या ८ पूर्ण संख्या ४४ { जून १९३९

चार पंक्तियां

[रचयिता—श्री उपेन्द्रनाथ 'अश्क' बी० ए० एल-एल० बी०]

कुछ उलटे-सीधे ख़त में,
ये चार पंक्तियां प्यारी ।
हैं भाव न जिनमें विकसित,
जिन पर लज्जा सी भारी ।

जिनका हर शब्द ग़लत है,
टेढ़े-मेढ़े हैं अक्षर ।
सिमटे फीकी सियाही में,
जो रूखे से काग़ज़ पर ।

क्यों फूल फूल उठता हूं,
आंखों पर इनको धर धर ?
पढ़ता हूं, फिर पढ़ता हूं;
मैं बार बार क्यों पढ़ कर ?

(अप्रकाशित 'दर्पण' से)

आदत

(ले० — श्री ब्रजमोहन मिहिर)

हमारा दुःख कभी-कभी इस रूप में हमारे सामने आता है कि हम अपनी सूझ से उस का कारण मालूम कर लेते हैं। लेकिन जीवन में न उसका कोई प्रभाव होता है और न कोई परिवर्तन ही। प्रत्येक व्यक्ति इस बात से पूर्णतः सहमत है कि जब तक संसार के किसी पदार्थ में आस्था है तब तक भय और दुःख सदा उसके साथ रहता है। इस बात की सूझ हो जाय, इसे रोकने के लिये मन भांति-भांति के तरीकों को अपनाता है और वास्तविक बात को सामने नहीं आने देता। अपनी सञ्चित प्राचीन बातों के प्रति उसका इतना अधिक मोह होता है कि बुद्धि द्वारा उसके मनमें जितने भाव आते हैं उन सबों को वह अपनी युक्ति द्वारा कुचल देता है।

दुःख का कारण मालूम हो जाने पर उसका अन्त होना चाहिये, लेकिन ऐसा नहीं होता; दुःख फिर भी बना ही रहता है क्योंकि हमारी सूझ में इतनी गम्भीरता नहीं होती कि वह हमारे दुःख का अन्त कर सके। विश्लेषण द्वारा जब मन दुःख का कारण मालूम कर लेता है तो उसके कारण का अनुसन्धान ही उसके आश्रय का एक मुख्य साधन बन जाता है। दुःख के कारण को मालूम कर लेने की आशा, उस दुःख के अन्त हो जाने का यथेष्ट प्रमाण है, यह बिलकुल भ्रम है।

मन दुःख का कारण क्यों तलाश करता है? इसका मुख्य उद्देश्य तो उसपर विजय प्राप्त करने का रहता है। लेकिन इसे छिपाने के लिये वह सामने यह रखता है कि उसे वह समझने की कोशिश कर रहा है। यह सर्वदा भ्रमजनक और असत्यमूलक है। दुःख में ही वह द:यें व:यें देखता है। जब मनुष्य का मन स्वभावतः प्रसन्न होता है, उसमें जीवन की मस्ती रहती है। तो वह उसका कारण तलाश करने के लिये नहीं बैठता; क्योंकि सचमुच यदि उसमें मस्ती है तो उसके कारण का अन्वेषण उसका अन्त कर देगा। उस मस्ती के बीच उसे सदा के लिये कायम रखने की इच्छा कभी-कभी उसका विश्लेषण करने लगती है। आनन्द को सदा बनाये रखने की यह इच्छा, दुःख पर विजय प्राप्त करने का प्रबल वेग, उसका उस समय की पूर्णावस्था में प्रतिरोध उत्पन्न कर देता है।

यदि हमारा मन केवल इस बोझ से लदा है कि हम यह जान लें कि सत्य क्या है, प्रेम क्या है, आनन्द की प्राप्ति कैसे हो सकती है—तो वह भय से कभी स्वतन्त्र नहीं हो सकता। भय जैसे सुख का अन्त कर देता है; वैसे ही वह दुःख पर भी पर्दा छोड़ कर उसे मुर्दार बना देता है। यदाकदा जैसे हम सुख या आनन्द में तल्लीन हो जाते हैं, वैसे ही क्या हम दुःख में भी हो सकते हैं? दुःख के साथ भी क्या हमारा कोई सीधा और घनिष्ट सम्बन्ध हो सकता है? जब तक ऐसा नहीं होता, हम उसके रहस्य को कभी नहीं समझ सकते।

दुःख के आने पर मनुष्य घबरा जाता है और मुकाबला नहीं करना चाहता। दुःख को दबा देने के लिए या उसे भुला देने के लिए वह बहुत से उपाय करता है इस लिये वह दुःख में उस तरह से तल्लीन नहीं होपाता जैसा कि वह सुख में होजाता है। इसका पता भी उसे रहता है। मन बहुत ही चालाक है, वह

अपनी सुख की इच्छा को किसी प्रकार नहीं जाने देता। अतः वह वास्तविक बात को समझने से ज़ोरा भगाता रहता है। दुःख के समय यदि उसे हमारा बुद्धि की सहायता से समझने की कोशिश नहीं करते तो उस समय के लिये किसी उपाय द्वारा हमारा दुःख चाहे दब जाय, लेकिन हमको उससे छुटकारा कभी नहीं मिलता। मकान की नींव की भाँति वह दुःख बहुत गहराई में पहुँच जाता है और जैसे उस नींव पर बड़े बड़े मकान बन जाते हैं, वैसे ही उस दुख की नींव पर दुःख की एक बहुत बड़ी इमारत खड़ी हो जाती है। दुःख का अन्त उसी समय होता है जब हम दुःख के समय उसे समझने की कोशिश करें। जो आदतें हमें कष्ट दिया करती हैं उन्हें हमको कार्य-सम्पादन के समय ही समझना चाहिये। उसे दबाने के लिये जब तक हम कोई उपाय तलाश करते रहेंगे तब तक उसे कभी नहीं समझेंगे क्यों कि उपाय की खोज भी तो उससे बचने का ही साधन है।

किसी बात से छुटकारा पाने के लिये जब तक हम अपनी अभिरुचि रक्खेंगे, हमारा बंझ और अधिक बोझीला होता जायगा। हमारी अभिरुचि इस इच्छा की पुष्टि करती है कि दुःख से बचने के लिये हम अनेक उपायों को खोज करते हैं, उसे समझने की नहीं। यह राग हमारी आराम पाने की इच्छा का ही परिणाम है।

भंगियों की पञ्चायत

[ले०—'पण्डित-मुल्ला भंगी' पीटर-पीर-प्रताप*]

गर्मी के दिन, रात का समय, चाँद की चाँदनी खिली हुई है। चारों ओर मीठा प्रकाश फैला है। एक उजाड़ बाग़ में, जहाँ दो-चार ही हरे पेड़ हैं, भंगियों की पञ्चायत हो रही है।

किसी ने कहा—"ऐसे समय रूखी बातें नहीं भातीं, दारू का दौर चलना चाहिए।"

दूसरा बोला —"आज हम जागृति के युग में रहते हैं, यह नशे की बात कैसी?"

एक और बोला —"यह जागृति तो हमारा सत्यनाश करने आई है। अब तक कैसे चैन से बीतती थी? सेठ-साहूकारों, राजा-बाबुओं से इनाम मिलते, भांति २ के भोजन पाते, सदा सुखी रहते थे। पर जब से यह जागृति आई है, खाना भी सूखा मिलता है। इनाम की तो बात ही क्या? वह कहते हैं, यह बुरे रसम-रिवाज हैं! और वह हमें ही चले हैं उलटा पाठ पढ़ाने, बराबरी की सीख सिखाने। बराबरी तो मिली नहीं, पर हमारे पुराने हक़ जाते रहे........!"

प्रधान—"बस करो, यह हैं-हैं। हमें अहमद कृष्ण का व्याख्यान सुनने दो। अहमद कृष्ण जी बोलिये। अहमदकृष्णः—"भाइयो और बहनो! हमने जो यह अपना चित्र देखा, इस में ही समस्त जगत भरा पड़ा है। किसी का कहना कि "दारू का दौर

* राजा महेन्द्रप्रताप

चलने दो", फिर किसी का टोकना कि जागृति युग है, और उसके पश्चात एक और भाई का टोकना कि जागृति-युग ने हमारा सत्यानाश कर दिया, यह तीन प्रकार के व्यक्ति केवल हम में ही नहीं, जहाँ देखो वहाँ मिलेंगे, मनुष्य-मात्र में दिखाई पड़ेंगे ! (वाह वाह) और यह वाह-वाह करने वाले भी, भाई ! सब ही सभाओं में होते हैं। (और व्याख्यान करने वाले भी) । (हँसी) जी हाँ ! और टोकने वाले भी (हँसी)।

हँसी को जाने दीजिए। अब सुनिए ! मैं जो कहना चाहता हूँ, वह यह है कि हम और आप बिना सोचे-विचारे संसार के प्रभाव में बहे चले जाते हैं और चूँकि सोचते नहीं, इसलिए जगे-जगाए मनुष्यों की भाँति नावों में बैठ नदी पार नहीं करते। नदी के प्रभाव से भी लाभ नहीं उठाते। वरन रोड़ों की तरह पानी के नीचे मिट्टी में दबे पड़े रहते हैं। और प्रभाव ने हमें उखेड़ा भी, तो आपस में ही टकराते हैं (वाह-वाह)।

बहनो और भाइयो ! यदि आपने उन्नति करनी है तो सब से पहले यह पञ्चायत ही तोड़नी होगी ! (यह क्या ? यह क्या ?) (सुनो-सुनो) हमारी पञ्चायत यदि भंगियों की पञ्चायत है तो हम सदा भंगी ही रहेंगे। यह पञ्चायत हमको भंगी बनाए रखती है। हमारे भंगीपन को और भी पक्का करती है....."

प्रधानः—क्षमा करें ! मुझे कुछ कहना पड़ता है। सभा का रोष देख मैं चुप नहीं रह सकता। मेरा कर्त्तव्य है कि मैं यह स्पष्ट कर दूँ कि यह सभा पञ्चायत की है। हमने जो आपको बुलाया, इसी लिए कि आप हम को कुछ ऐसी सलाह देंगे कि जिस से हम अपनी और भी उन्नति कर सकें। आप तो हमारी जड़ ही काटते हैं। (किसकी जड़ ?) पञ्चायत की ! (पञ्चायत किसके लिए ?) भाइयों की भलाई के लिए। (नहीं-नहीं)। (हाँ-हाँ) ! (तड़तड़-धड़धड़) ! (सभा में गड़बड़) ! सभा टूट गई—भंग हो गई।

❀ ❀ ❀

पत्रों में अनेक लेख लिखे जा रहे हैं। कोई कहता है कि यह तो कोई लाल रूसी आगया। यदि भंगी भंगी नहीं रहेंगे तो संसार का काम कैसे चलेगा ? एक मन्दिर के महन्त ने उस भंगियों के प्रधान को बुला एक सरोपा दिया। और कहा—"तुम बड़े चतुर पुरुष हो। तुम विश्वास रखो, तुम्हारा अगला जन्म किसी अच्छे कुल में होगा।" प्रधान—"यह सब महाराज की कृपा है।" भंगियों में प्रधान का और भी नाम होगया। वह एक दूसरे से कहते—"अजी, प्रधान जी को सरोपा मिला है। हमारे प्रधान जी को महन्तजी भी मानते हैं। हम इनकी बात मानें या उस अहमदकृष्ण की, जो हमारी रोटी भी बन्द कराना चाहता है ? प्रधान जी की जय !"

❀ ❀ ❀

पाँडिचेरी के परमहंस

(ले०—श्री आचार्य अभयदेव सन्यासी, अरविंदाश्रम, पाँडिचेरी)

[२]

मार्ग

प्र०—हां, श्री अरविन्द का योगमार्ग क्या है. इस विषयमें भी आप कुछ बतलाना पसँद करेंगे ?

उ०-श्रीअरविन्द जिस योग के गुरु हैं उसे उनके शब्दों में 'पूर्णयोग' कहना चाहिए। यह योग हठयोग व राजयोग आदिकी तरह केवल शरीर या मन आदि से संबंध रखनेवाला नहीं, किन्तु संपूर्ण आधार और संपूर्ण जीवन से संबंध रखता है। जो इसे समझना चाहते हैं, उनको कमसे कम उनकी पुस्तकों का पूरा अध्ययन कर लेना चाहिए। उनकी 'The Mother' 'Riddle of this world' तथा 'Light on Yoga' और Basis of Yoga' आदि पुस्तकें अवश्य देखनी चाहिएँ, इन चारों पुस्तकों का हिन्दी में भी अनुवाद होचुका है। उनकी 'Arya' पत्रिका में 'Synthesis of Yoga' वाली लेखमाला भी पढ़ लेनी चाहिए। इनसे भी तभी सहायता मिलेगी जब मनुष्य स्वयं योगमार्ग का कुछ अनुभव रखता होगा। तो भी जो कुछ मैं कह सकता हूं वह यह कि उनका यह 'पूर्णयोग' शक्ति—ईश्वरीयशक्ति को मुख्य मानकर चलता है। श्री अरविन्द ने 'Mother' में लिखा है कि 'तीन बातें हैं जो कि मनुष्यको अपने प्रयत्नसे सतत करनी हैं। फिर शेष सब माताकी शक्ति कर देती है। पहली बात है अभिकाँक्षा (Aspiration), परमेश्वर की तरफ जानेकी अभिकांक्षा, तीव्रसंवेग। यह हमें ही करना है, यह हमारे लिये भगवान नहीं करेंगे। दूसरा 'परित्याग' (Rejection) अर्थात् अपने अन्दर हीन प्रकृतिकी गतियों का त्याग। मनसे कल्पनायें, पक्षपात, आदतें आदि का त्याग। प्राणसे रागद्वेष आदि सब वासनाओं का त्याग। भौतिक प्रकृतिसे मूढ़ता, संशय, आलस्य आदि का त्याग। तीसरा आत्म-समर्पण (Surrender) पूर्ण शरणागति, परमेश्वरमें अपना पूर्णतया प्रणिधान। ये यत्न हम करते रहें तो ऊपर से उतरनेवाली ईश्वरीय शक्ति हममें अद्भुत परिवर्तन करके हमें भगवान् का विशुद्ध यन्त्र बना देगी।'

ऐसा कहा जा सकता है कि इस मार्ग में ऊपरसे (शिरके ऊपर) शक्तिके अवतरणका तथा अन्दर (हृदयमें) पवित्रता और भक्ति आदि की स्थापना का अभ्यास किया जाता है। इन दोनों केन्द्रों का विकास आवश्यक है।

गोपाल की लीला अपार है। होता वह ही है जो खुदा को मन्ज़ूर। परम गुरु की कृपा से समय ने पलटा खाया। अहमद कृष्ण के लगातार उद्योग ने लोगों के विचार बदल दिये। जाति-जाति की सब पंचायतें तोड़ दी गईं। इनके स्थान पर स्थान-स्थान की पंचायतें बनीं। भंगी ब्राह्मण का भेद मिट गया। हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई सब एक होगये। जो जहाँ छोटी उम्र के होते वह अपने बड़ों की सेवा करते। समस्त ग्रामों में ग्राम-ग्राम के कुटुम्ब बन गये। होली, दिवाली, ईद, मोहर्रम, सब ही मिल कर मनाते। तीर्थ करने वृन्दाबन, बुद्धगया, मक्का और जैरुसलम जाते। हौले-हौले यह जो आर्यान् में महान परिवर्तन हुआ समस्त संसार में फैल गया और सर्व-व्यापक जगत-राज्य स्थापित होगया। यह कहानी है।

श्रीअरविन्द के मार्ग की दो विशेषतायें हैं। पहली है विज्ञानमय अवस्था (Supermental state) को प्राप्त करना। उनका कहना है कि अभी तक संसार मनोमय दशा (Mind) से ऊपर नहीं उठ सका है। और जब तक इससे ऊपर न उठा जाय तब तक इस संसार में कोई वास्तविक उन्नति व परिवर्तन नहीं हो सकता है। इसलिये उनके योगका ध्येय उस अवस्था तक पहुँचना है। और फिर उस अवस्था तक पहुँचकर भी वहीं स्थिर हो जाना नहीं है, किन्तु उस विज्ञानमय शक्तिको नीचे लाकर अपने मन, प्राण और शरीरका सर्वथा दिव्य रूपान्तर कर देना है। अतः दूसरी बात है 'दिव्य रूपान्तर, (Transformation)। श्रीअरविन्दकी मान्यता है कि पहिलेके यद्यपि कोई बिरले योगी विज्ञानमय (Supermind) अवस्था तक पहुँचे थे। पर उन्होंने उसकी भी शक्ति द्वारा अपने नीचेके भागोंके रूपान्तर करनेकी आवश्यकता नहीं समझी या नहीं कर सके। कइयोंने मन तक का रूपान्तर किया, पर प्राण और शरीर के रूपान्तर का कार्य शायद किसीने नहीं किया। श्रीअरविन्दकी साधना के पिछले (अन्तिम) दश वर्ष 'शरीर का रूपान्तर उस दिव्य-शक्ति द्वारा किया जा सकता है या नहीं?' इसी प्रयत्नमें बीते हैं। और नवम्बर १९२६ में उन्हें इसमें सफलता प्राप्त हो गई। अतएव २४ नवम्बर का (उनके दर्शनके तीन दिनोंमेंसे एक) दिन उनकी सिद्धि का दिन करके माना जाता है। अस्तु, मतलब यह कि विज्ञानमय (Supermental) अवस्था की प्राप्ति और अपना दिव्य रूपान्तर (Transformation) ये दो बातें उनके योग की विशेषतायें हैं।

दर्शन

प्र०—क्या आपने श्रीअरविन्दके दर्शन किये ? बातचीत की ?

उ०—हाँ, दर्शन किये। बातचीत वे करते ही नहीं हैं। गत वर्ष २१ फर्वरी (माताजीके जन्मदिन) के दर्शन-दिन के लिये मैंने दर्शन करने की इजाजत मांगी थी, जो कि मुझे मिल गई थी। यह याद रखिये कि इन तीन दर्शन के दिनों में भी बिना पहले इजाजत लिये उनके दर्शन कोई नहीं कर सकता। इस दर्शन के दिन करीब ३०० लोगोंने उनके दर्शन किये, जिनमें १५० के लगभग तो आश्रमवासी थे और शेष १५० बाहरसे आये दर्शनाभिलाषी लोग थे। प्रत्येक को एक-डेढ मिनट दर्शन करनेका समय मिलता है। एक समय में एक ही आदमी दर्शन करता है। एक दिन पूर्व एक फेहरिस्त टंग जाती है, कि किसके बाद कौन और कितने बजकर कितने मिनट पर, कौन दर्शन करने पहुँचेगा। उसी क्रमसे उसी समय दर्शनार्थी जाते हैं। दर्शनार्थियों की एक फेहरिस्त श्री अरविन्द के पास भी होती है। दूसरी मंजिल पर एक कमरे में 'कोच' पर श्रीअरविन्द और माताजी बायें और दायें बैठे होते हैं। रिवाज के मुताबिक प्रत्येक दर्शनार्थी फूल व माला हाथ में लेकर जाता है। इस फूल व माला की भेंट देकर दर्शनार्थी झुक कर जुदा-जुदा दोनों को प्रणाम करता है और उस समय दोनों जुदा और फिर इकट्ठे उसके सिरपर हाथ रख कर आशीर्वाद देते हैं। उस समय कुछ भी बोलना मना है। दर्शनार्थी चाहे तो अपने उस एक-डेढ मिनट में उनकी तरफ देखता रह सकता है।

ऐसा समझा जाता है, और कई तो अनुभव करते हैं कि इस दर्शन से उनकी आत्मिक उन्नति होती है। पॉंडिचेरी जाता हुवा, जब मैं वर्धा से मद्रास के लिये रेल में बैठा तो मेरी उसी डब्बे में एक मद्रासी युवक से भेंट हो गई ? जो कि पहले कई बार दर्शन कर चुका था और इसबार भी दर्शन करने जाने वाला था। मैंने उससे पूछा कि 'तुम क्यों दर्शन करने जाते हो, क्या कौतुहलवश ?' उसने कहा कि 'इससे मुझे आन्तर बल (Inner Strength) प्राप्त होता है।' मैंने कहा कि 'तुम तो पहले भी दर्शन कर चुके हो, क्या कभी ऐसा अनुभव भी किया ?' उसने कहा 'हां, तभी तो फिर दर्शन करने की इच्छा होती है।'

आश्रम के कई मित्रों ने दर्शन कर चुकने के बाद

मुझसे पूछा कि 'तुमने क्या अनुभव किया ?' इस का भी मतलब यही था, कि दर्शन से एक विशेष अनुभव होना चाहिए और ऐसा अनुभव उनको होता था, पर मैं तो उस पहली बार के दर्शन के विषय में यह नहीं कह सकता कि मुझे ऐसा कुछ विशेष अनुभव हुआ। शेष बातचीत के बारे में यह है कि चिट्ठी-पत्री द्वारा मैं श्रीअरविन्द से उन दो महीनों में बातचीत करता रहा। यह मैं बतला चुका हूं कि वहां सब साधक चिट्ठी-पत्री द्वारा उनका पथ-प्रदर्शन प्राप्त करते हैं। करीब ५-६ घंटे प्रति दिन उनके, पत्रों के उत्तर देने में ही व्यतीत होते हैं, ऐसा सुना जाता है।

माताजी

प्र०—माताजी बातचीत करती हैं ?

उ०—हाँ! पर वे भी कम से कम बोलती हैं। वे साधकों से मिलती हैं और सब प्रबन्ध, आश्रम सब का सञ्चालन-कार्य वही करती हैं। उनके दर्शन रोज होते हैं। दोनों महीने प्रणाम और ध्यान के समय प्रतिदिन उनके दो बार दर्शन मैं भी प्राप्त करता रहा।

प्र०—उनसे आपने बात-चीत की है ?

उ०—इन पिछले दो महीनों के बाद लौटते समय मैंने माताजी से मुलाकात का समय माँगा था। उन्होंने समय दिया। उस समय मैंने बातचीत मामूली की; बातचीत की कोई आकाँक्षा व आवश्यकता भी न थी। मैं तो उनके सामने कुछ देर बैठा रहा। इस मुलाकात का मुझपर कुछ विशेष प्रभाव हुआ, ऐसा कह सकता हूँ। उसके बाद भी कई बार मुलाकात का सुअवसर हुआ है।

पहिले-पहिले दिन जब मैं 'प्रणाम' में सम्मिलित हुआ तो मुझे इन माताजी को प्रणाम करने की इच्छा न हुई थी। सब लोग उठ २ कर प्रणाम कर रहे थे। बाहर से आए दर्शनार्थियों में काका कालेलकर और मद्रास के हरिहर शर्मा भी प्रणाम के लिए उठे और मुझे भी इशारा किया, तब मैंने कहा—'मेरा तो प्रणाम करने को जी नहीं करता।' पर आगे दिनों-दिन मेरी भक्ति उनमें बढ़ती गई और मैं उन्हें सचमुच माता अनुभव करने लगा। शायद प्रारम्भ में यह सँस्कार कि एक महिला—यूरोपियन महिला और रेशमी कपड़े पहने बैठी हुई ········यह सब सँस्कार प्रतिकूल भाव पैदा करने के लिए काफी होते हैं। औरों के मन में भी वहाँ प्रारम्भ में ऐसी रुकावट आती है, यह मुझे मालूम हुआ है।

प्र०—आप पर उस संस्था के विषय में कैसी छाप पड़ी।

उ०—यह तो मैं कह चुका हूँ कि श्रीअरविंद की पुस्तकें आदि पढ़ने से जितनी श्रद्धा मुझ में उनके लिए थी, वहां जाने से और भी बढ़ गई। आश्रम के विषय में मेरी धारणा है कि वह एक बड़ा पवित्र, बड़ा महान् गुरुकुल है। मैं बहुत सी अच्छी संस्थाओं और आश्रमों को अन्दर से जानता हूँ, पर मैंने इस कुल में जितनी कम से कम रगड़ के साथ, शान्ति के साथ काम चलता देखा है, वैसा और कहा नहीं। शायद इसका कारण यह है कि वहाँ सब लोग श्रीअरविंद में पूर्ण भक्ति से प्रेरित हो कर ही आए हैं और इसी श्रद्धा से वहाँ रहते हैं। इस कुल का उद्देश्य कितना महान् है, यह मैं पहले कह ही चुका हूँ। यह भी इसका कारण है। और उस आश्रम में आदमियों को पूरा परख कर लिया जाता है। यह कहा जा सकता है कि श्रीअरविंद अपनी दिव्य-दृष्टि से देखकर ही किसी को आश्रमवासी बनाते हैं और उस आश्रम में सब कुछ श्रीअरविंद व माताजी की आज्ञा है, एक मात्र उनका शासन है। सब लोग उन्हें अपना पूरा आत्मसमर्पण करके रहते हैं।

वस्त्र-आच्छादन

प्र०—क्या वहां खद्दर पहिना जाता है ?

उ०—ऐसा कोई नियम नहीं है। साधारणतया जो कपड़ा आश्रम से मिलता है वह खद्दर नहीं होता। वहां तो विदेशी कपड़े का कोई परहेज नहीं है। सुना है कि श्रीअरविन्द कहते हैं कि खद्दर में उन्हें कई

ऐतराज नहीं है, पर उसका उन्हे आग्रह भी नहीं है; अतः जो कपड़ा मिलता है उसे ही वो आश्रमवासियों को पहनने को देते हैं। कई ऐसे आदमी, जो यहाँ शुद्ध खद्दर पहिनते थे वे वहां अब मिल का कपड़ा भी पहिन रहे हैं। यह तो आप जानते ही होंगे कि असहयोग या भद्र-अवज्ञा आन्दोलन में काम करने वाले भी अनेक व्यक्ति वहां पहुँचे हैं। उनमें से कुछ नवप्रविष्ट साधकों को मैंने खद्दर भी पहिने देखा। माताजी भी कहती हैं कि जो कपड़ा हमें मिलता है वही मैं देती हूँ। और साधक लोग (जब आश्रमसे ही कपड़ा लेना है तब) तो जो भी कपड़ा माताजी दे देवें उसे ही कल्याणकर समझकर पहिनते हैं।

व्यय

प्र०--आश्रम में खर्च होनेवाला रुपया कहांसे आता है?

उ०--कुछ भक्त लोग देते हैं। मद्रास के एक वकील अपनी सब कमाई माताजी के चरणों में दान देते हैं। माताजी उनके खर्च के लिए जो देती हैं उसे लेकर वे अपने को धन्य मानते हैं और अपने ऊपर वही व्यय करते हैं। शेष सब रुपया आश्रम को चला जाता है। इस प्रकार शायद कम से कम दो तीन हजार रुपया माहवार आश्रम को मिलता है। इसी प्रकार कुछ अन्य व्यक्ति देते हैं। कुछ धनशाली साधक जब आश्रमवासी बने तो उन्होंने अपनी सारी संपत्ति भी आश्रम को सौंप दी। कुछ संपत्ति इस प्रकार भी आश्रमको मिल चुकी है।

प्र०—क्या वहाँ धन स्वीकार करने में ऐसा कुछ ख्याल नहीं किया जाता कि अच्छी कमाई का रुपया ही स्वीकार किया जाय? वकीलोंकी कमाई तो अच्छी नहीं कही जा सकती।

उ०—इसका उत्तर तो मैं नहीं दे सकता। इतना कह सकता हूँ कि श्रीअरविन्द की दृष्टि कुछ भिन्न ही है। किसी मिलते हुये धनको वे भी अस्वीकार कर देते हैं यह तो देखा गया है। पर वे किस दृष्टि से अस्वीकार करते हैं यह मैं नहीं जानता। इतना स्पष्ट है कि वे सब धनको भगवान् का ही समझते हैं और यह मानते हैं कि भगवान् का धन भगवान् के काममें ही व्यय होना चाहिये। जो कुछ उन्हें मिलता है, उसे भगवान्से मिला जानकर ही स्वीकार करते हैं। अतएव धनके व्यय आदि के विषय में अपने को भगवान् के ही प्रति उत्तरदाता समझते हैं, अन्य किसी के प्रति नहीं। उनकी संस्था कोई सार्वजनिक संस्था भी नहीं है। यद्यपि आश्रम के खर्च का बाकायदा हिसाब किताब रखा जाता है, तो भी उस हिसाबको जनता का देखने का अधिकार है, ऐसी बात नहीं है। कुछ समय पूर्व वहीं की (फ्रेंच) गवर्नमेंटने इस बात का भय अनुभव किया कि पॉंडिचेरी में श्रीअरविन्द के नाम जायदाद आदि बढ़ती जाती है और उसने आग्रह किया कि यदि यह एक संस्था है तो इसकी Association-Act के अनुसार रजिस्ट्री हो जानी चाहिए। इस पर श्री अरविन्दको एक वक्तव्य प्रकाशित करना पड़ा जिसमें उन्हों ने बताया कि अमुक उद्देश्य से मेरे पास ये लोग इकट्ठे होते हैं और यह कोई सार्वजनिक संस्था नहीं है।

(क्रमश)

मताग्रह का ज़हर

(ले०—श्री एडमेण्ड होम्स)

(अनु० —श्री प्रि॰ बंसीधर बी०ए०एल०टी०)

प्रसिद्ध शिक्षा-विशेषज्ञ डा० मेरिया मोण्टेसोरी ने अपनी एक पुस्तक में, जिसका हाल ही में अङ्गरेज़ी में अनुवाद हुआ है, यह कहानी लिखी है —"एक बार रोम के पार्क, पिनशियन गार्डन में मैंने करीब ... वर्ष के एक सुन्दर, हँसमुख बालक को देखा जो कि एक छोटी सी बालटी को, पास पड़े हुए कङ्कड़ों से भरने में लगा हुआ था। उसके समीप ही चुस्त पोशाक पहिने एक नर्स—दाई खड़ी थी जोकि प्रकट रूप में उसे अति प्यार करती थी; और यह समझती थी कि वह उसे बड़ी सावधानी से रखती है। चूँकि घर जाने का समय हो गया था, इसलिए दाई बच्चे को बड़े धैर्य के साथ, इस काम को समाप्त करने के लिए प्रेरित कर रही थी और उसे गाड़ी में बैठाना चाहती थी। अपनी प्रेरणाओं द्वारा बच्चे पर कोई प्रभाव न पड़ता देख, उसने स्वयँ ही बालटी को कङ्कड़ों से भर दिया और, इस दृढ़ धारणा के साथ कि उसने बच्चे की इच्छा-पूर्ति कर दी है, बच्चे तथा बालटी को गाड़ी में रख दिया। दाई के ऐसा करने पर बच्चा ज़ोर से रो पड़ा। मैं उसकी चीख सुनकर तथा अन्याय एवँ अत्याचार के प्रति उत्पन्न हुए विरोध के भावों को उसके चेहरे पर देखकर सहम गई। सचमुच इस प्रहार से उस बच्चे की कोमल बुद्धि पर भारी आघात हुआ। वह छोटा बालक बालटी को कङ्कड़ों से भरवाना नहीं चाहता था; अपितु अपने हाथों से भरने के लिए स्वयँ ही सब हरकतें करना चाहता था, ताकि वह इस काम को स्वयँ ही करके अपनी माँस-पेशियों की कसरत तथा फासले का अन्दाज़ा करके आँख की साधना कर सके। इसके अलावा तर्क-वितर्क करके वह अपनी बुद्धि का प्रयोग और अपने कार्य का निर्णय करके इच्छा-शक्ति को उत्तेजित करना चाहता था। इस प्रकार आत्मविकास ही उसका एकमात्र अज्ञात उद्देश्य था, बाह्य रूप से बालटी को कङ्कड़ों से भरना नहीं। बाह्य-संसार के प्रकट आकर्षण उसके लिए दिखावे मात्र थे। उसका मुख्य हेतु तो असलियत मालूम करना था। वास्तव में, यदि वह उस बालटी को भर भी लेता, तब भी शायद उसे फिर खाली करता, और इस क्रिया को तबतक जारी रखता, जब तक उसकी अन्तरात्मा सन्तुष्ट न होती। यह आत्म-तुष्टि की भावना ही थी जिसने कुछ क्षण पहले बालक के चेहरे को गुलाब के फूल की भाँति प्रफुल्लित कर रखा था। लेकिन उस दाई ने, जो उसे प्रेम करती थी, यह समझकर कि बच्चा कुछ कङ्कड़ लेना चाहता था उसकी बालटी में खुद कङ्कड़ भर कर उसे दुखी बना दिया।

इस साधारण कहानी में एक गूढ़ रहस्य भरा पड़ा है। जिस छोटी सी दुखान्त कथा का इसमें वर्णन है वह शिक्षा के विराट दुखान्त अभिनय का ही एक प्रतीक है;और उसे हम अभिनय के प्रथम एक्ट का प्रथम सीन—दृश्य कह सकते हैं। बालक के साथ व्यवहार करने में प्रौढ़ व्यक्ति शुरू में ही एक भारी भूल कर बैठता है। वह स्वयँ उस गुमराह शिक्षा का शिकार है जिसने उस के जीवन विषयक दृष्टिकोण को झूठा बना दिया है। इस लिए वह यह मान लेता है कि बालक का भी यही दृष्टिकोण है। प्रौढ़ व्यक्ति समझता है कि बच्चा भी उस के समान बहिर्मुख-प्रवृत्ति वाला है, वह भी बाह्य-पदार्थों को प्रेम करता है, वह विनोद के लिए नाना प्रकार के खिलौने, गुड़ियां, इनाम, सम्पत्ति, प्रतिष्ठा आदि चीज़ें चाहता है। परन्तु, सचाई तो यह है कि शिक्षा द्वारा

दूषित होने से पहले, बालक इस प्रकार की किसी भी चीज़ की इच्छा नहीं रखता। वह तो शक्ति-सम्पन्न होना तथा बढ़ना चाहता है।

श्रीमती मोण्टेसोरी की कहानी की प्रौढ़ दाई अपने ढँग का एक सुन्दर उदाहरण है। बहुधा देखा जाता है कि बालक को समझने में वयस्क व्यक्ति इस दाई से भी कहीं अधिक अज्ञानता दिखलाता है। प्रायः वह बालक के जीवन-विषयक दृष्टिकोण के सम्बन्ध में बनाई गई अपनी प्राथमिक धारणाओं को आंशिक रूप से छोड़ कर दूसरी गम्भीर भूल कर बैठता है। अनुभव द्वारा इस बात को समझ लेने के बाद भी, कि बालक का दृष्टिकोण प्रौढ़ से अनेक प्रकार से भिन्न होता है, वह अनायास ही यह मान बैठता है कि उसका ही दृष्टिकोण बिल्कुल सत्य है और बालक का बिलकुल असत्य। दूसरे शब्दों में, वह यह मान लेता है कि बालक की इच्छा और उद्देश्य भी वही होना चाहिये जो कि उसका। अगर बालक ऐसा करने में असफल होता है तो प्रौढ़ व्यक्ति यह नतीजा निकालता है कि अपरिपक्वता के कारण बालक के स्वभाव में कुछ नुक्स है जिसको शिक्षा द्वारा ठीक करना चाहिये। परन्तु वास्तव में मौलिक रूप से बालक का ही दृष्टिकोण ठीक है। इसके विपरीत प्रौढ़ का ग़लत, बशर्ते कि शिक्षा ने उसे दूषित न किया हो।

कभी-कभी तो ऐसा प्रतीत होता है कि बालक सम्बन्धी अज्ञानता मानव-स्वभाव में गहरी पैठ गई है। ऐसी दशा में यदि बालक वयस्क के जीवन-विषयक दृष्टिकोण को न अपनाये, तो समझ लिया जाता है कि बालक जन्म से ही दूषित स्वभाव वाला और पापी है। इसलिए शिक्षा का कार्य बालक को प्रकृतिदत्त रुचियों और नियमों के बजाय बनी बनाई निश्चित आज्ञाओं के अनुसार चलाकर इन खराबियों को निकाल, पुनः पनपने न देना ही मान लिया गया है। पिनशियन गार्डन की दयालु दाई अपने भोलेपन के कारण यह समझती थी कि उसका बच्चा कँकड़ से भरी बाल्टी चाहता है। इसलिए उसने रोते हुए बच्चे को खींचकर गाड़ी में बिठा दिया था। यदि वह कठोर तथा सहानुभूति-शून्य होती तो बच्चे की इस अनिच्छा को उसकी विद्रोही आत्मा की जन्म-जात हठ समझती, और बालक के आँसुओं को, जो कि उसकी सद्भावना-युक्त भूल पर प्रतिकार के रूप में बह रहे थे, वह बालक के कठोर हृदय की कृतघ्नता ख्याल करती।

प्रौढ़ व्यक्ति बालक के समझने में जो भूल करता है, उसका स्पष्ट कारण यह है कि उसूल और सद्भावनाओं से प्रेरित होकर वह सदैव अपने विचारों को बालक पर लादता है। इस प्रकार वह बालक के स्वाभाविक विकास को रोकने के लिए भरसक प्रयत्न करता है। वयस्क का बालक पर अपने विचार लादने का आशय है उसका बालक के प्रति मताग्रह की दृष्टि (Dogmatic direction) रखना, अर्थात् अपना मत बालक पर ठूँसना। प्रौढ़ व्यक्ति यह आशा रखता है कि बालक बिना सोचे-विचारे यंत्र-वत् उसके आदेशों का पालन करता रहे। यह दृष्टिकोण रखने में वयस्क व्यक्ति न केवल शिक्षा की झूठी फ़िलासफ़ी के प्रति वफादारी प्रकट करता है, अपितु सदियों की रूढ़िगत उस परम्परा के प्रति भी आदर प्रकट करता है, जिसने कि शिक्षा को अत्यधिक प्रभावित किया है। इस परम्परा के प्रभाव से छुटकारा पाने के लिये जो प्रयत्न किये जा रहे हैं, उन्हीं के द्वारा हमें पता चलेगा कि यह परम्परा क्या है। असन्तोष एवं बेचैनी की विनाशात्मक लहरें समस्त सभ्य सँसार में फैल रही हैं, और सँसार की सभ्यता को सामाजिक उथल-पुथल की दलदल में धँसाने की धमकी दे रही हैं। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि यह लहरें एक विराट् परिवर्त्तन की सूचक हैं। पुराने युग की बातें अब शनैः-शनैः समाप्त होती जा रही हैं किंतु नवीन युग इनका स्थान लेने में अभी पूर्ण रूप से समर्थ नहीं हुआ है। प्राचीन व्यवस्था में मताग्रह (Dogmatism) अर्थात् एक व्यक्ति का आग्रहपूर्वक आदेश देना और दूसरों का यँत्रवत् उसे स्वीकार कर लेना—की प्रधानता रही है। इस युग का यही काम था जिसे इसने अबतक किया और निस्सन्देह आगे भी एक लम्बे अर्से तक इसे जारी रखेगा। इसने समाज में एक प्रकार की व्यवस्था कायम कर, सामाजिक जीवन को अपने ही ढँग से विकसित होने दिया है। लेकिन इसके लिए समाज को एक

की कीमत अदा करनी पड़ती है, क्योंकि हर समय और हर स्थान पर मताग्रह जीवन को निर्जीव बनाता है।

मताग्रही वह व्यक्ति है जो दूसरों से यह कहता है कि 'अमुक चीज़ मुझे अच्छी लगती है, यह तुम्हें भी अवश्य अच्छी लगनी चाहिए। दूसरे शब्दों में, तुम्हें अवश्य ही इस सिद्धाँत का पालन करना चाहिए। अमुक बात मुझे सत्य मालूम पड़ती है, इसलिए तुम्हें भी यह अवश्य ही सत्य मालूम पड़नी चाहिए। दूसरे शब्दों में, तुम्हें इसे अवश्य ही ठीक मानना चाहिए। अमुक चीज़ मुझे सुन्दर प्रतीत होती है, इसलिए तुम्हें भी यह अवश्य सुन्दर प्रतीत होनी चाहिए! दूसरे शब्दों में, तुम्हें अवश्य ही इस की प्रशँसा करनी चाहिए। अमुक बात मुझे वाँछनीय है इसलिए तुम्हारे लिए भी यह वाँछनीय होनी चाहिये। दूसरे शब्दों में, तुम्हें भी इसका अनुकरण करना चाहिए। अमुक चीज मुझे ठीक जँचती है इसलिए तुम्हें भी यह ठीक जंचनी चाहिए। दूसरे शब्दों में तुम्हें इसे अवश्य मानना चाहिए।" संक्षेप में; मताग्रह-दृष्टि का अभिप्राय यह है "मेरा काम कानून बनाना, आज्ञा और आदेश जारी करना है। तुम्हारा कर्त्तव्य इनको मानना और इसके अनुसार चलना है।"

मताग्रह का उद्गम कभी व्यक्ति से कभी समष्टि से, कभी जाति से, कभी वर्ग से, कभी विशेष प्रवृत्ति से, और कभी सर्व-साधारण से होता है। आम तौर पर कुछ व्यक्ति मत-निर्धारित (Dogmatise) करते हैं, और बहु-संख्यक व्यक्ति उसका पालन करते हैं। लेकिन हमेशा ऐसा नहीं होता। उदाहरणार्थ चर्च, व्यवसाय या ट्रेड-यूनियन के लिए अपने प्रत्येक सदस्य से अपने मत का सत्ता से मनवाना अनिवार्य होता है। ऐसे भी अनेक अवसर आते हैं जब कि किसी व्यक्ति को लोकमत, उस युग की परम्परा या परिपाटी के रूप में अपने ही साथियों के भारी बहुमत का सामना करना पड़ता है।

जो व्यक्ति मताग्रहवाद के चँगुल में फँस जाता है उसके ऊपर वह तीन प्रकार से अपना प्रभाव डालता है:—

(१) उस व्यक्ति के उद्देश्यों और इच्छाओं को बहिर्मुखी करके मताग्रहवाद उसे साँसारिक बनाता है—उसे अध्यात्म-शून्य करता है—अंत में उसे निर्जीव बना देता है।

(२) उच्च शक्तियों को रोककर उसके विकास को कम करता है, उसके जीवन को संकीर्ण और जँगली बनाता है और उसे अपने संकुचित व अविकसित व्यक्तित्व में ही सीमित कर देता है।

(३) आत्म-नियन्त्रण के स्थान पर बाहरी कवायद रखकर यह जीवन को पतित बनाता है।

यह तीनों प्रकार की प्रवृत्तियाँ अन्ततः तीन नहीं केवल एक ही है कारण, ये सब की सब विकास को रोकती और शक्ति को क्षीण करती हैं। साथ ही जीवन की सतह को नीचा और जीवन-क्षेत्र-परिधि को संकीर्ण बनाती हैं।

जब मैं यह कहता हूं कि मताग्रहवाद मनुष्य के जीवन को बहिर्मुख बनाता है तो इससे मेरा तात्पर्य यह है कि वह हमें जीवन के प्रमुख कार्य—जीवन और जागृति के कार्य से विमुख करता है और जीवन को महत्वहीन, अकिंचन कार्यों में संलग्न करता है। जैसे बाह्य और दिखावटी फल प्राप्त करने के लिए काम करना और उस काम का इस ढंग से प्रदर्शन करना कि लोग उसका मूल्य आँक सकें, तथा संग्रह करना और खर्च करना।

मताग्रहवाद अपना यह प्रभाव क्यों पैदा करता है, यह मालूम करना सरल है। बाहरी काम ही केवल एक काम है जिसका मताग्रही व्यक्ति नियन्त्रण कर सकता और मूल्य आँक सकता है। उसका सब से पहला काम है आदेश देना और यह देखना कि वे आदेश कार्य रूप में परिणत होते हैं या नहीं। आदेश देना अति सरल काम है; लेकिन उसको कार्यरूप में परिणत कराना उतना सरल नहीं। उस व्यक्ति पर, जो मताग्रही का शिकार है, नाना प्रकार का दबाव डालकर मताग्रही अपने आश्रितों के कार्यों को बाह्यरूप से व्यवस्थित एवं नियन्त्रित कर सकता है और उसकी आन्तरिक प्रवृत्तियों को भी परोक्षरूप से प्रभावित कर सकता है; लेकिन उनको

व्यवस्थित और नियन्त्रित नहीं कर सकता। उदाहरण के तौर पर - वह अपने अनुयायियों को किसी भी मत में विश्वास रखने के लिए प्रेरित कर सकता है, उसे मानने के लिए और प्रकट रूप से उसका इज़हार करने के लिए भी विवश कर सकता है। लेकिन वह उन्हें उसपर विश्वास करने के लिए बाध्य नहीं कर सकता। अगर वह फौजी या जहाज़ी अफसर है तो वह अपने मातहतों को अपने आदेशों को ज्यों का त्यों मानने के लिए मजबूर कर सकता है, किंतु उनकी वफादारी को हासिल नहीं कर सकता। उसका आदेश पालन करते हुए भी, वे हृदय में उसके प्रति घृणा और विद्रोह-भाव रख सकते हैं। दूसरे शब्दों में, मताग्रही की स्थिति ही ऐसी होती है कि वह सदैव बाध्य परिस्थितियों पर ही निर्भर रहता है। वह अपने आश्रित व्यक्ति से यन्त्रवत्, दिखावटी रूप में आज्ञा पालन करवा सकता है, परन्तु वास्तविक रूप में नहीं। ज्यों-ज्यों वह अपनी आज्ञा पालन कराने का आग्रह करता है, त्यों त्यों उस की आज्ञाएँ निर्जीव होती जाती हैं और उसके चङ्गुल में फँसे हुए व्यक्ति का जीवन विषयक दृष्टिकोण बहिरङ्ग — Externalise दिखावामात्र हो जाता है। यदि वह अपने आदेशों की परीक्षा करना चाहे तो उसे यह देखना चाहिए कि उनका परिणाम हू-बहू निकलता है या नहीं? और इसलिए उसे अपने आदेशों को इस प्रकार से बनाना होगा कि उनसे उन्हीं के अनुसार ऐसे परिणाम प्राप्त हों जिनकी माप की जा सके। मताग्रहपूर्ण आदेशों तथा उनके हूबहू पालन के दूषित पारस्परिक सम्बन्ध की कोई सीमा नहीं है। जितनी अधिक आज्ञा-पालन की माँग होगी, उतनी ही अधिक मताग्रहपूर्ण आज्ञा देने की आवश्यकता होगी। जितनी अधिक मताग्रहपूर्ण आज्ञा देने की आवश्यकता होगी, उतनी ही अधिक ठीक २ हिदायतें बनाने की आवश्यकता होगी, और इसलिये उतनी ही अधिक उनके हूबहू पालन की भी आवश्यकता होगी। फलत; जितना अधिक दबाव मताग्रहवाद में फँसे हुए व्यक्ति पर पड़ता है, उतना ही अधिक वह सफलता के लिए, उन्नति के लिए, समृद्धि के लिए, प्रसन्नता के लिए बाहर की ओर देखता है। उसका जीवन, व्यवहार अधिकाधिक दिखावटी, यन्त्रवत् एवँ शिथिल पड़ता जाता है।

जीवन की बहिर्मुख-प्रवृत्ति हमको दुनियावी बना देती है। सँसार की आकर्षण शक्ति, जिससे मेरा तात्पर्य हमारे दिखावटी सामाजिक जीवन से है—उसी अनुपात से शनैः-शनैः बढ़ती जाती है जिससे कि बाह्य परिणामों का मूल्य आंका जाता है। इसलिए वे परिणाम आंतरिक क्रियाओं के सूचक नहीं होते, जिनके बिना उनका कोई अर्थ और स्थायी महत्व नहीं होता, और अन्त में वह दिन आता है जबकि हम स्वेच्छा से इस सँसार के अधीन होकर कैदी बन जाते हैं। इस प्रकार वे स्वतः ही इसके झूठे स्टैण्डर्ड और आदर्शों की पाबन्दियों को मान बैठते हैं।

यह एक तरीका है जिसके द्वारा मताग्रह का दबाव विकास को रोक देता है। मनुष्य की उच्च शक्तियों को विकसित होने से रोककर यह मताग्रहवाद, अपने ध्येय तक पहुँचने के लिए एक छोटा, स्पष्ट एवँ निश्चयात्मक मार्ग ग्रहण करता है। हमारी समस्त शक्तियाँ काम में लाने से ही विकसित होती हैं। इस नियम का कोई अपवाद नहीं है। हम चलना चलकर ही सीखते हैं, हम बोलना बोलकर ही सीखते हैं। हमारे पाचक-अवयव शिथिल एवँ कमज़ोर पड़ जाते हैं, यदि हम स्वभाव से ही न पचने वाला खाना खाते हैं। हमारा व्यवसाय, पेशा, शिल्प, कला, खेल, व्यायाम आदि चाहे कुछ भी क्यों न हो, हमारी उपर्युक्त शक्तियों का विकास अभ्यास तथा सतत् काम करने से स्वतः ही होता है।

['ट्रेजेडी आफ़ एजूकेशन' का अनुवाद]

(क्रमशः)

'एक दार्शनिक'

(ले०—श्री दयाशङ्कर मिश्र, 'कण्टक')

रात के ९॥ बज चुके थे । गाड़ी छूटने ही वाली थी कि उसने श्याम के हाथ पर एक लिफाफा रख कर, रुंधे हुए स्वर में कहा "मैंने तुम्हें बहुत तकलीफ दी है । क्षमा करना—मैं बहुत दुखी हूँ श्याम ...... !"

कुछ देर तक चुप रहकर श्याम की डबडबाई आंखों मे देखती रही और फिर बोली—"श्याम ! इस पत्र में लिखी हुई किसी बात से यदि तुम्हारे दिल को चोट लगे तो यह आखिरी अपराध समझकर बुरा न मानना ।" गाड़ी ने सीटी दी—भक-भक-भ .... करती हुई गाड़ी चलने लगी । 'अच्छा श्याम .... !" धीरे २ उसका स्वर रात की उस अन्धियारी में दूर-दूर बहुत दूर बिखरता गया । जब तक गाड़ी श्याम की आंखों से ओझल नहीं हो गई, वह उसी जगह प्लेटफार्म पर खड़ा रहा और फिर घर की तरफ भारी पैरों से चल दिया । घर आ कर "कन्हैया ! एक गिलास पानी लाना" कहते हुए श्याम एक आराम कुर्सी पर लेट गया और उसका दिया हुआ लिफाफा जेब से निकाल बड़े कुतूहल से पढ़ने लगा; क्योंकि जिन्दगी में पहली बार उसे एक अन्तरपीड़ा से काँपती हुई कोमल अङ्गुलियों द्वारा लिखे गए पत्र को पढ़ने का 'सौभाग्य' या 'दुर्भाग्य' प्राप्त हुआ था:—

अजमेर
२० मार्च, १९३८

श्याम !

आज मैं न जाने कितनी आशा, अभिलाषा, अरमान और विथा-पीर छिपाए अजमेर से भागी जा रही हूं । याद होगा श्याम ! हम दोनों एक साथ एक कालेज में पढ़े—एक ही दिन मैं गवर्नमेंट गर्ल्स हाई स्कूल की हैडमिस्ट्रेस बनी और तुम हिन्दू यूनिवर्सिटी में 'दर्शन' के प्रोफेसर बने—पिछले ४ वर्ष से एक ही मकान में रहे । मुझे कभी भी अपने मन की विथा तुम से कहने का साहस न हुआ और आज भी नहीं है । अब मुझसे यहां नहीं रहा जा रहा है । तुम्हारे साथ रहकर मैं पागल हो जाऊंगी । मैं सच कह रही हूं श्याम ! मेरी आत्मा अब अधिक नहीं सह सकती । तुम्हारे जीवन में एक उद्देश्य है—'पूर्वीय दर्शन (फिलासफी) का पुनरोत्थान" मेरे जीवन का उद्देश्य ? किसी एक को अपने में ......। नहीं यह नही लिखूंगी, यह मेरी 'लाइफ' का एक 'सीक्रेट' है । श्याम ! मैं जीवन की इस असफलता को लिए अब आगे न बढ़ सकूँगी । इसीलिए मैंने तुम से छिपाकर अध्यापन-कार्य से स्तीफा लिख भेजा था । आज दोपहर को डाइरेक्टर ऑफ एजूकेशन ने वह मेरा स्तीफा सखेद मंजूर कर लिया है । इसलिए आज मैं जा रही हूं, एक दो दिन के लिए नहीं, जैसा कि तुमसे कहा था । मैं सदा के लिए या बहुत दिनों के लिए जा रही हूँ । नहीं कह सकती कि मैं अपने इस उद्देश्य-हीन जीवन को लिए कहाँ भागती हुई जा रही हूं और इस सीमा-हीन विश्व के बाहर जाकर भी अपनी वह साध पूरी कर सकूँगी या नहीं ।

पिछली ८ तारीख को तुम्हारा टैनिस का फाइनल मैच था । कितनी भीड़ थी उस रोज । तुम मुझे अपना मैच दिखाने ले गए थे । तुम्हारे एक २

'शाट' पर. जो तुम्हारे प्रतिद्वन्दी मि० गुप्ता को लौटाना कठिन हो रहा था, मेरा जी उछला पड़ता था। तुम्हारे मुँह पर उस समय पसीने के वे स्वेत-कण झिलमिल झिलमिल करते हुए कितने सुहावने दीखते थे। जी चाहता था श्याम ! कि अपने रूमाल से ……। जिस कप को जीतने के लिए तुमने इतना परिश्रम किया, उसी 'कप' को मैं तुमसे बिना पूछे लिए जा रही हूँ। क्षमा करना श्याम ! जाने क्यों इस 'कप' से मुझे मोह हो गया है ! अच्छा श्याम ! एक अनिश्चित काल के लिए बिदा।"

तुम्हारी—
शोभा

प्रो० श्याम सारा पत्र पढ़ गए, किंतु कुछ भी न समझ सके। उन्हें पत्र का एक-एक अक्षर फिलासफी का गूढ़ तत्व जैसा लग रहा था - वह अपने जीवन से क्यों ऊब गई ? उसके जीवन की साध !—मेरे साथ रहने से पागल हो जायगी ! आखिर क्यों ? क्या है यह सब !—सोचते २ शोभा का रुँधा हुआ कंठ, वह क्लांत-मलीन चेहरा, दो सुन्दर डबडबाई हुई आँखें, पत्र के एक-एक शब्द में अँकित हो-हो कर उसके सामने आने लगा। ममता ! मोह !! कहते हुए प्रो० श्याम ने उस पत्र को मेज की दराज में डाल दिया।

जब से शोभा गई है, प्रोफेसरने टैनिस खेलना छोड़ दिया है। वे कालेज से लौट कर अपने कमरे में बैठे रहते हैं। वे कभी भी बाहर नहीं निकलते। शोभा का जाना वे एक साधारण सी बात समझने का प्रयत्न करते हैं किंतु वह उनके लिए हो गई एक असाधारण सी बात—जैसे उनका अपना कुछ खो गया है। आज प्रोफेसर की किसी भी तरह उस एक कमरे में तबियत न लग रही थी। उन्होंने अपनी लाइब्रेरी से वैराग्य, भक्ति, दर्शन की किताबें निकालीं; कोरे सफे उलट पुलट कर उसी जगह फिर जमादीं। कितनी ही बार उन्होंने अपनी मनो-शक्ति गीता के श्लोकों पर केन्द्रित की। बार २ गुन-गुनाये:—

ध्यायो विषयान्पुंसः संगस्तेषूपजायते
संगात् संजायते कामः कामात् क्रोधोऽभिजायते।
क्रोधाद्भवति संमोहः सम्मोहात्स्मृति विभ्रमः
स्मृति भ्रंशाद् बुद्धि नाशो बुद्धि नाशात्प्रणश्यति॥

किन्तु सब बेकार। उन्होंने अपनी छड़ी उठाई और पड़ौस के एक डाक्टर और वकील के घर, जो सगे भाई भाई थे, दिल बहलाने के लिए चल दिये।

❀ ❀ ❀

"क्या सोच रहे हैं प्रोफेसर साहब ! आप तो बिलकुल पीले पड़ गए हैं। अच्छा ! लीजिए चाय पीजियेगा" चाय का एक 'कप' प्रोफेसर साहब की तरफ बढ़ाते हुये वकील मि० बसन्त ने कहा ! "सोच क्या रहा हूँ ?" टूटे स्वर में प्रो० श्याम ने कहा "मैं यह सोच रहा हूँ कि सच्चा सात्विक प्रेम भी अनन्त है ? मृत्यु ही ऐसे जीवन का अन्त नहीं है; मृत्यु तो……" प्रो० श्याम अपनी बात पूरी भी न कर सके थे कि बीच ही में डा० प्रसन्नकुमार ने चाय के प्याले को अपने मुँह से हटा कर एक अर्थ-भरी दृष्टि से देखते हुए कहना शुरू किया 'भाई बसन्त ! ये दार्शनिक भी एक अजीब आदमी हुआ करते हैं। इनकी फिलासफी में सदा 'जन्म' 'मृत्यु' 'जीवन' के 'आदि' 'अन्त' की ही बातें रहा करती हैं। कभी भी उन मिनटों, घन्टों और महीनों पर ये विचार नहीं करते, जिनसे मिलकर जन्म, मृत्यु का मध्य भाग सम्पूर्ण जीवन बना करता है"।

"जरूरत भी क्या है ? जिसे हर मास की अन्तिम तारीख को साढ़े तीन सौ रुपये मिल जाते हों, वह क्यों मुफ़ में आज की जिन्दगी की कशमकश को समझने में माथा-पच्ची करे। घसेटी मुहल्ला के शराबी लाला गनेशीलाल की तरह इन्हें भी दिन-रात फिलासफी का नशा चढ़ा रहता है। बुरा न मानना

प्रोफेसर ! मैं विनोद कर रहा हूं क्योंकि आपकी तबियत भी कुछ खराब सी दिख रही है।" मि० बसन्त ने कहा।

"बुरा मानने की बात नहीं हैं मि० बसन्त ! फिलोसफी' को 'शराब' बताकर आप भारत के उन सारे वेदान्ती, दार्शनिक और तात्विक ऋषियों का अपमान करते हैं जिनके पांडित्य और अगाध ज्ञान का लोहा सारा विश्व आज तक मान रहा है। निर्जन जंगलों की भयानक कन्दराओं में बैठ कर जिन महापुरुषों ने इस महान् सत्य की खोज की, उन्हें शराबी कह कर आप महा पाप कर रहे हैं। घोर अनर्थ ! मुझे ही देखिये जिस 'पूर्वीय दर्शन के पुनरोत्थान के लिये मैंने अपनी 'लाइफ' के एक कीमती हिस्से को बर्बाद कर दिया—इस यौवन में ही वृद्ध बना बैठा हूँ, जिस 'दर्शन' के लिए अपने सारे अरमान, सारी तमन्नायें खाक में मिला दीं, उस की आपकी निगाह में कोई क़ीमत नहीं। उसी को शराबी कह रहें हैं मि० बसन्त। यह अन्याय है! अत्याचार है!" खाली चाय के प्याले को जोर से रखते हुए प्रोफेसर ने कहा।

"प्रोफेसर साहब ! यदि यह अन्याय और महा पाप है तो भी मैं इसका समर्थन ही करूँगा। मैं आप से पूछता हूँ कि आपके २५ वर्ष के इस 'दर्शन' और 'फिलासफी' के स्वाध्याय से उन गरीब किसान और मजदूरों को क्या लाभ मिला जो आपके विशाल भवन के नीचे दिन-रात भूख से बिलबिलाया करते हैं। शायद आपने कभी न सोचा होगा कि एक तरफ 'भवन' और दूसरी तरफ 'झोंपड़ी' क्यों? सिवाय इसके कि 'भाग्य' 'सँतोष' का पाठ पढ़ाकर अत्याचारियों के अत्याचार सहने का उन्हें सिखला दिया। 'दमन' को 'हरि इच्छा' 'भगवान की मर्जी' बनाकर उनका सर्वनाश किया। यही न है आपकी 'फिलासफी' और महान् सत्य की खोज!" मि० बसन्त ने हाथ मलते हुए कहा।

अपनी आँखों पर दाएँ हाथ का अँगूठा और मध्यमा अँगुली रखकर आँख बन्द करते हुये बड़े शान्त और दृढ़ स्वर में प्रोफेसर ने कहा—"मि० प्रसन्न ! सत्य की खोज करने के लिए हमें उन भ्रम-रूपी बादलों को हटा देना चाहिये जो हमें उस 'महान् सत्य' से अनजान बनाए रखते हैं। हम सत्य का प्रकाश तभी देख सकेंगे जब हमारे आगे से सँसार के झँझट, प्रपँची दुनिया की उखाड़-पछाड़ और राजनीति के षड्यंत्रों का काला परदा हट जायगा।"

"प्रोफेसर साहब ! मुझे दुःख होता है आपके विचारों पर—जिस तरह चीन के 'ला०ओट०जे०' (La-ot-ze) जैसे दार्शनिकों ने चीन में फैलती हुई राष्ट्रीयता और उसकी प्रगति के खिलाफ जोरदार आवाज उठाकर उसे पतन के गहरे गड्ढे में फैंक दिया, फल स्वरूप चीन आज अपनी अन्तिम साँसे भर रहा है; उसी तरह आप जैसे दार्शनिक वेदान्ती भी भारत को पतन की ओर ले जाने का असफल प्रयत्न कर रहे हैं। प्रोफेसर साहब ! ईश्वर भक्ति को मैं स्वार्थ समझता हूं। केवल अपनी ही आत्मा के उत्थान का ध्यान रखकर सँसार की सारी आत्माओं का खयाल छोड़ देना, परमार्थ नहीं स्वार्थ है। प्रोफेसर और दार्शनिकों को मैं प्रकृति का शत्रु; साम्राज्यशाही का एजेन्ट समझता हूँ। 'ईश्वर' 'वेदांत' 'दर्शन' की आड़ में गरीबों के खिलाफ एक षड्यन्त्र रचा गया है। आँख बन्द कर आत्मा का अध्ययन करना, आत्म-निरीक्षण नहीं आत्म-पतन है प्रोफेसर साहब !" कहते-कहते डा० प्रसन्न का मुँह लाल हो गया।

* * *

जमाने की रफ़्तार, और मानव-समाज की निरन्तर बढ़ने वाली प्रगति की धारा के आन्तरिक रहस्यों को ठीक-ठीक न समझने के कारण क्रांति युग में भी बहुत से मनुष्य ऐसे पाये जाते हैं जो 'राष्ट्रीयता' और 'नवीन विचारों' की उपेक्षा करके 'प्राचीन युग' के गीत गाया करते हैं यद्यपि उनका

अपना 'चरित्र' सर्व साधारण से बहुत ऊँचा होता है। प्रो० श्याम भी उसी वर्ग के एक दार्शनिक थे।

अन्धेरी रात—चारों तरफ सन्नाटा—प्रोफेसर श्याम अपने कमरे में लेटे हुए थे। सन्नाटे को तोड़कर दीवार में लगी हुई घड़ी ने टन-टन-टन करके बारह आवाजें कीं और फिर वही टिक्-टिक्-टिक्। आज उन्हें नींद नहीं आती थी। मानों उनके कानों में मुँह लगा कर डा० प्रसन्न टिक् २ करके कह रहे हैं—'यह परमार्थ नहीं स्वार्थ है। आत्म-निरीक्षण नहीं आत्म-पतन है प्रोफेसर!' उन्हें ऐसा मालूम पड़ रहा था जैसे उनकी 'पूर्वीय दर्शन का पुनरोत्थान' के लिये की गई २५ वर्ष की सतत् सजीव तपस्या को डा० प्रसन्न का एक-एक शब्द पैनी छुरी बनकर बोटी-बोटी काट रहा है। ………उनकी आंख झपक गई—बड़ा गन्दा झोंपड़ियों का समूह फूँस के छप्पर, चारों तरफ टट्टी-पेशाब की दुर्गन्ध; हर एक झोंपड़ी में मनुष्य की शक्ल के कुछ जीव फटे गूदड़ों में एक दूसरे से सटे हुए कुतिया के पिल्लों की तरह पड़े हुए हैं……। एक भयङ्कर चीत्कार 'आह! मैय्या!' प्रोफेसर चौंक पड़े। बूढ़े, जवान, स्त्री, बच्चे सभी के हाथ पीठ की तरफ ले जाकर बाँध दिये गये थे। एक लोहे की मशीन, जिस पर लिखा था 'गरीब'। पास में एक काँच की टँकी जिस पर लिखा था 'खजाना'। मशीन में चर-चर च…की आवाज हुई और खून की एक तेज धार उस टँकी में जा गिरी। फिर चीत्कार……चर-चर-च…खून का फुव्वारा—वह काँच की टँकी छल-छल छ……करती हुई बड़ी तेजी से भरी जा रही थी। वे सारे अभागे एक-एक करके मशीन में पीस दिए गये। मानवी बर्बरता का यह नग्न-दृश्य देखकर प्रोफेसर का वह भावुक हृदय जोर से धड़कने लगा। वे पत्थर की तरह खड़े रहे।

वे सारे चीत्कार—हाय! मय्या! बचाओ! शान्त हो गये। चारों तरफ मरघट जैसी नीरवता! एकाएक थोड़ी दूर पर उस घने अन्धकार को चीरकर आंखों को चकाचौंध कर देने वाला प्रकाश फूट निकला, और उसके साथ एक मीठी कोमल आवाज, 'झिम-झिम झुम-झुम' नूपुरों की झंकार, लहरों की तरह एक नर्तकी नाच रही थी। इकहरी देह, दो काली आंखें शायद विश्व में सबसे सुन्दर, धानों की बालों जैसी मीठी, नील कमल की माला सी सुन्दरी। शहर के सारे सभ्य और शरीफ, उस अमीरों की महफिल में इकट्ठे हुए थे। गंजे सिर का बूढ़ा जज, जिसने जवानी के दिनों में दो वेश्याओं का खून किया था, शहर का पड़ियल शराबी कोतवाल भी एक सुनहली कुर्सी पर बैठा २ दाहिने हाथ से अपनी मूछें मरोड़ रहा था। बिजली की रोशनी में उन रईसजादों के कपड़े 'झिलमिल-झिलमिल' कर रहे थे, सेन्ट, इत्र, लवेन्डर और क्रीम की मस्त खुशबू! जैसे इन्द्रदेव की अमरावती—स्वप्न पुरी थी। वह नाच रही थी। उसके नाच में जादू भरा था। जैसे प्रोफेसर के जड़ शरीर में चेतनता का आविर्भाव हुआ। वह उस जादूगरनी के पास बहुत पास जा खड़े हुये। प्यालों और गिलासों की खन-खनाहट! वे सारे धनिक उस टँकी में लगी हुई एक रबर की नली से खून ले ले कर जाम पर जाम पी रहे थे। उनके गाल कबूतरों के पेट जैसे फूलते जा रहे थे। उन गालों की लाली! वह सुर्खी! गरीबों का खून! सारी टँकी पी गये वे समाज के शरीफ!

एक भयँकर कोलाहल! झोंपड़ियों में रहने वाले वे सारे नंग-कँगाल भूत प्रेतों की तरह इस अमीरों की महफिल की तरफ भागे चले आरहे हैं 'इन्कलाब-जिन्दाबाद! इन्कलाब जिन्दाबाद!' शरीफों में भगदड़ मच गई। पहिले एक, फिर अनेकों मुख से प्रोफेसर ने सुना—'यही है वह दार्शनिक 'पकड़ो' "धनवानों का एजेन्ट।" ढोंगी है! स्वार्थी!' प्रोफेसर जीतोड़कर भाग रहे थे। दम फूल गया, पसीने में लथपथ! उछलकर बिस्तर से अलग जा पड़े। वे बार २ आंखें मल रहे थे। उनका मस्तिष्क, जिसमें दर्शन-शास्त्र का अगाध ज्ञान-भंडार भरा पड़ा

था।, उन्हें यह न समझ सकता था कि वह 'सत्य' है या 'स्वप्न' !

❀　❀　❀

एक-एक करके सब तारे छिप गये। चिड़ियाँ चहकने लगीं और धीरे-धीरे ९ बज गये किन्तु प्रोफेसर बिस्तर से न उठे। उनके चेहरे पर मुर्दनी छा गई थी, नौकर के बार-बार याद दिलाने पर 'बाबू जी ! कालेज का टेम हो गया', प्रोफेसर उठे। हाथ-मुंह धोया और कपड़े बदलकर नौकर से 'आज खाना न खाऊँगा' कहते हुए पैदल ही कालेज को जाने वाली सड़क पर चल दिये। वे सिर झुकाये चले जा रहे थे वही स्वप्न! "ढोंगी है ! स्वार्थी है।" कानों के पर्दों में बार-बार कोई कह उठता था। "टिकिट ! टिकिट !" स्टेशन के गेट कीपर ने कहा। प्रोफेसर ने सिर उठाया, देखा तो स्टेशन का गेट कीपर। 'ओह ! Excuse me—क्षमा करें, मैं ग़लती से इधर आ निकला।' और फिर वे कालेज जाने वाली सड़क की तरफ मुड़ पड़े। सड़क पर तांगे वाले आवाज लगा रहे थे "हटना बाबू जी ! परे को भय्या जी !" प्रोफेसर के कानों ने सुना 'ढोंगी है ! स्वार्थी है !'

कभी-कभी एक साधारण सी घटना, एक छोटी सी बात जीवन में एक बड़ा परिवर्तन कर दिया करती है। शोभा के जाने के बाद एक कमजोरी, एक चोर जो उनके दिल में आ बैठा था, उसे पिछली रात के स्वप्न ने धीरे-धीरे हटा दिया था। प्रोफेसर ने कालेज से लौटकर शीशे की अलमारी से वे सारी फिलासफी और दर्शन की पुस्तकें निकाल-निकाल कर आग कर डालीं ताकि किसी दूसरे का दिमाग़ ख़राब न कर डालें। प्रोफेसर का फिलासफी का नशा, शोभा का प्रिय-प्रेम, देश-प्रेम में बदल रहा था।

❀　❀　❀

छः मास बाद।

होली के दिन थे। कालिज की छुट्टियाँ हो गई थीं। प्रोफेसर अपनी कार में बैठे-बैठे एक गांव में जा निकले। चारों तरफ अकाल पड़ रहा था। इस वर्ष पानी की बूँद न पड़ी थी। गाँव में पशुओं का नाम न था। उन्हें कसाइयों की छुरी तले कटवाकर पापी पेट की ज्वाला शान्त की गई थी। 'कांग्रेस अकाल पीड़ित सहायक समिति' की तरफ से कुछ कार्यकर्त्ता गांवों में भूखे नंगों की कुछ मदद कर रहे थे। किंतु उनके सामने आर्थिक कठिनाई और साधनों का अभाव था। जिस समय अजमेर में घर-घर में रँग, पिचकारी, गुलाल, पकवानों की सुगन्ध फैल रही थी, उसी समय—उन्हीं क्षणों में पास वाले गांव के झोंपड़ों में प्रोफेसर के सामने एक जीवित-मुर्दों का ढेर चुपचाप, भगवान की कृपा-कटाक्ष की आशा लगाये पड़ा था। उनके बदन सूख गए थे, जैसे उनका सारा खून किसी ने चूस लिया है। छः मास पहिले का एक स्वप्न याद आया। प्रोफेसर की दांई आंख के कोने से एक आंसू निकल कर उनके गाल पर टपक पड़ा।

❀　❀　❀

चार मास बाद।

केवल ग़रीब कार्यकर्त्ताओं को ही गाँवों में न भेजकर, खुद तपती दुपहरियों में पसीने से लथपथ, धूल और गर्द भरी सड़कों पर मस्ती के साथ पैदल चलकर, प्रोफेसर ने अकाल के जमाने में किसानों की जो मदद की थी, उससे जनता के हृदय में उनके लिए एक विशेष स्थान बन गया था। जिस प्रोफेसर को गांव के ठिकानेदारों के जुल्मों के खिलाफ आवाज बुलन्द करने के लिए कॉलेज से स्तीफा देना पड़ा. जिसने श्रीखण्ड और मेवा की डलियां छोड़कर किसानों के बीच जाकर मुट्ठी भर चने चबा कर, गद्दा-तकिया की जगह कङ्करीली जमीन पर एक चादर बिछा कर रातें काटी हों; उस का यदि जनता पलक-पाँवड़े बिछाकर अभिनन्दन करे तो आश्चर्य ही क्या? प्रोफेसर प्रान्तीय कांगरेस

कमेटी के अध्यक्ष बनाए गए।

उसी साल अजमेर नगर कांग्रेस कमेटी म्युनिसिपल चुनाव लड़ने जा रही थी। इसलिए अनेकों पद-लोलुप खद्दर पोश बनकर, ज्यादा से ज्यादा चार आना कांगरेस मेम्बर बनाकर, नगर की एग्जीक्यूटिव में आना चाहते थे ताकि कांगरेस-टिकिट पर चुनाव में खड़े हो कर अपना पेट भरें। जब इस वर्ग ने अपनी दाल गलती न देखी तो सरकारी पक्ष से मिल कर प्रोफेसर के खिलाफ प्रचार करने के लिए एक अखबार निकाला। अजमेर के मुहल्ले-मुहल्ले में प्रोफेसर के खिलाफ विष उगला गया। चूँकि इन धनवानों, रायसाहेबों और खान बहादुरों का मध्यम वर्ग पर असर था। कार्ल मार्क्स के शब्दों में 'बेवकूफ जनता' प्रोफेसर के खिलाफ होने लगी। उन्हें हिन्दू 'जाति-द्रोही' और मुसलमान 'काफिर' के नाम से पुकारने लगे।

एक दिन लोगों ने दैनिकपत्रों में पढा—"प्रो० श्याम का कांगरेस की अध्यक्षता से स्तीफा", 'वे शीघ्र ही इस सिलसिले में अपना वक्तव्य देने वाले हैं'।

प्रोफेसर कांगरेस के पदों से हट कर रचनात्मक कार्य में जुट पड़े थे। गांव-गांव में ग्राम-उद्योगों की प्रदर्शनी की गई, ग्राम-सुधार सभायें कायम की गईं। उनके सारे साथी गाँवों में जाकर शिक्षा, सफाई औषधि-वितरण और खादी कार्य करके ग्रामीण जनता में राजनैतिक विचार फैलाने लगे।

रात के १२ बजे होंगे। प्रोफेसर श्याम एक ग्राम-उद्योग प्रदर्शिनी का उद्घाटन करके घर लौटे। बरामदे में रोशनी देखकर आश्चर्य हुआ। फिर सोचा शायद नौकर मेरा इन्तजार करते-करते सो गया और लाइट 'ओफ' करना भूल गया है। बरामदे में आकर देखा-एक सोफा पर शोभा पैर फैलाये एक हाथ सिर के नीचे दबाये सो रही है। प्रो० श्याम हलके-हलके क़दम रखकर उनके सिरहाने की तरफ खड़े हो गये—पीला चेहरा—सिर के बाल सूखे पत्ते की तरह इधर-उधर उड़ रहे थे। वह बिलकुल दुबली हो गई थी—उसके चेहरे की चमक बहुत कुछ कम हो गई थी. फिर भी आसमानी साड़ी और 'सिलवर' 'ब्लाउज' में बड़ी भली दिख रही थी। इतना सुन्दर शोभा को उसने कभी न देखा था। वह अभिभूत हो उठा. पागल हो उठा, दिल चाहा. सोती हुई शोभा को हृदय से लगाकर आज जी भर कर रोले, खूब सिसक-सिसक कर आंखों के सारे सँचित आंसुओं को बहाकर आत्मा को शान्त करले। किंतु उसका 'देवत्व' जाग उठा—खबरदार! श्याम!! एक राष्ट्र-सेवक इस प्रकार स्निग्ध-निगाह से एक सोती हुई नारी को नहीं देख सकता—नीचता है यह! हृदय के इस द्वन्द में, भावनाओं के इस सँघर्ष में, उसके मुँह से एक हल्की सी चीख अनजान में निकल पड़ी "शोभा।"

"ऊँ ऊँ ऊँ ऊँ—एँ—श्याम! आ गये तुम—अच्छा हुआ। मैं तो समझती थी २-४ रोज दर्शनों के लिये तपस्या करनी पड़ेगी" एक सूखी मुस्कराहट के साथ अपनी आसमानी साड़ी को दोनों हाथों से सँभालते हुये उसने कहा।

चन्द मिनटों पहिले जिस कमजोरी ने प्रो० श्याम को पागल बना दिया था. उसने उनका मुँह बन्द कर दिया। इतनी ताक़त भी शेष न रक्खी कि वे एक शब्द भी बोल सकें। उनके चेहरे का भाव स्कूल से भगे एक विद्यार्थी की तरह हो रहा था। वे कटी पतँग की तरह उसी सोफे पर शोभा से तनिक दूर सँभलते हुए बैठ गये।

"शोभा! अच्छी हो—कैसे आई? क्या फिर हेडमिस्ट्रेस बनने का इरादा है?" सारी शक्ति बटोर कर प्रोफेसर ने कहा।

"न पूछो श्याम! मेरा इरादा मुझ तक ही रहने दो—मैं ··· मैं तो ऐसे ही चली आई।" मानो एक मर्मान्तक वेदना से आहत होकर वह बोल रही थी।

शोभा १ वर्ष बाद आई थी। इन व्यवहारिक

...शब्दों के अलावा प्रोफेसर से वह 'कुछ और' चाहती थी, किन्तु वह इस 'कुछ और' को न प्रोफेसर के शब्दों में पा सकी और न उसके चेहरे पर ही खोज सकी। उसने एक निराशा भरी सांस ली और उसी सोफे पर लुढ़क गई।

❀ ❀ ❀

५ रोज से शोभा बुखार में पड़ी तड़प रही थी। प्रोफेसर श्याम पास के ग्रामों में कार्यकर्त्ताओं द्वारा चलाये गये केन्द्रों का निरीक्षण करके लौटे थे। "कन्हैया! शोभा कहां है ?" टोपी टांगते हुए प्रोफेसर ने कहा।

"बाबूजी जिस रोज आप गये थे उसी दिन सांझ को बाई जी को जुर चढ़ गया था। अभी तक उतरा नहीं है" कन्हैया ने कहा।

"किसी डाक्टर को दिखाया ?"

"नहीं बाबू जी! मना कर दिया था बाईजी ने।"

"मना कर दिया था। क्यों ? मना क्यों ·····" कहते कहते प्रोफेसर जूते पहिने ही, शोभा के कमरे में जा पहुँचे। शोभा ने एक बार आंखें खोलीं और फिर आंखें बन्द करती हुई बोली —"मना इसलिए कर दिया था कि अब दवा करना बेकार है। अब मैं न बचूँगी श्याम! यहां आओ श्याम थोड़ी देर मेरे पास आकर बैठ जाओ" प्रोफेसर एक कुर्सी खींचकर पलंग के पास बैठ गए। "वहां नहीं, यहां! यहां! मेरे पास" चारपाई पर एक तरफ सरकती हुई शोभा बोली।

कुर्सी से उठकर प्रोफेसर चारपाई पर बैठ गए "श्याम! मैं जानती हूं कि एक दिन तुम 'दार्शनिक' थे और मुझ 'कामिनी' से नफरत करते थे। आज राष्ट्रसेवक हो और मुझ 'नारी' को देशसेवा में बाधक समझते हो। लेकिन श्याम! अब तो मैं मर रही हूँ, अब तो मुझे अछूत न समझो श्याम! आज की रात मेरी आखिरी रा·····" कहते-कहते शोभा फफक-फफक कर रोने लगी। बुखार की तेजी और दिल में बर्षों की जलती हुई आग एकाएक भभक उठी। आवेश में आकर उसने प्रोफेसर का हाथ अपनी छाती पर रखकर जोर से दबा लिया। "श्याम! तुम कहा करते हो कि जो 'शान्ति' मैंने भक्ति, दर्शन के अध्ययन में नहीं पाई वह देश के भूखे नंगों की सेवा में पा रहा हूं। किंतु जिस 'शांति' के लिए मैं जीवन-भर इधर उधर भटकती रही, वह आज इन अन्तिम क्षणों में पा रही हूँ। अब मैं 'शान्ति' से मर सकूँगी श्याम!" वह कह रही थी और उसका गर्म शरीर श्याम के गात पर दबाव देता हुआ चिपटता आ रहा था। उसकी सांस तेजी से आ जा रही थी। उस मृत्यु की भयंकर जबड़ों में दबोची हुई शोभा के स्पर्श से भी प्रोफेसर के सारे शरीर में एक बिजली सी दौड़ उठी।

शोभा! श्याम! और तब दोनों अपलक बहुत देर तक 'याचना' और 'स्वीकार' भरी आंखों से एक दूसरे को देखते रहे।

"शोभा! घबड़ाओ नहीं, तुम जल्द अच्छी हो जाओगी। अब मैं तुम्हें एक पल के लिए भी न छोड़ूंगा। मातृभूमि हमें बुला रही है शोभा! हम दोनों मिलकर बहुत कुछ कर सकेंगे शोभा! अच्छा अब सीधी लेट जाओ, मैं डा० प्रसन्नकुमार को बुला लाऊँ। अधिक रोने से सिर में दर्द होने लगता है न ?" शोभा की आंखों से आंसू पोंछते हुए प्रोफेसर ने कहा।

❀ ❀ ❀

बीमारी से लड़ते-लड़ते शोभा को दस दिन हो गए। कभी उसकी हालत सुधर उठती थी और कभी फिर सूखी खाँसी के साथ टेम्प्रेचर बढ़ जाता था।

"क्या सोच रही हो शोभा!" प्रोफेसर ने कहा "मैं लेटी-लेटी यही सोचा करती हूं कि कितना अच्छा होता, मैं भी तुम्हारे साथ मातृभूमि की कुछ सेवा कर पाती। लेकिन मेरे भाग्य में इतना सुख ·····

कहाँ ? श्याम ! मुझे ऐसा लग रहा है कि अब मेरी जीवन-सन्ध्या...... " उसका गला भर आया।

"नहीं शोभा ! तुम इतनी निराश क्यों हो रही हो ? डाक्टरों की राय है कि तुम बहुत जल्दी अच्छी हो जाओगी। मातृभूमि को तुम्हारे जैसी शिक्षित महिलाओं की जरूरत है। तुम्हारे हाथों देश का बहुत कुछ भला होना है। आज डाक्टर ने जो दवा बदली है वह ज्यादा कड़वी तो नहीं है ? अब तुम आराम करो" स्नेह भरे हाथों से सिर को थपथपाते और कभी उसके बालों को हलके हाथों से सुलझाते हुये प्रोफेसर श्याम कह रहे थे।

'तुम क्यों इन दवाओं से मेरा पेट भर रहे हो मैं अब बचूँगी नहीं श्याम !"

'शोभा ! ऐसा नहीं कहते हैं !'

* * *

भगवान जाने शोभा कब ठीक होगी।

आज

(प्रणेता—विपिनबिहारी बाजपेयी)

आज वह उत्साह आया।
विकट कंटक-मार्ग मेरा, फूल सा कोमल बनाया ॥१॥

अब न हिचकूंगा, बढ़ूंगा, मर मिटूंगा आनपर मैं।
मातृ-भू को मुक्ति दूंगा, खेल कर भी जान पर मैं ॥२॥

विश्व की हलचल मुझे, कर्त्तव्य-पथ पर दृढ़ करेगी।
सिन्धु की दुर्धर थपेड़ें, थपकियों सम श्रम हरेंगी ॥३॥

दामिनी की दमक से तेजस्विता का भास होगा।
सह हिमाचल का भयंकर शीत, शान्त्याभास होगा ॥४॥

आज माँ के चरण-युग छू, धारता हूँ वीर बाना।
आज मुझको भाग्य से लड़ है क्षितिज के तीर जाना ॥५॥

आज कंटक मार्ग मेरा, फूल सा कोमल बनाया।
आज वह उत्साह आया ॥६॥
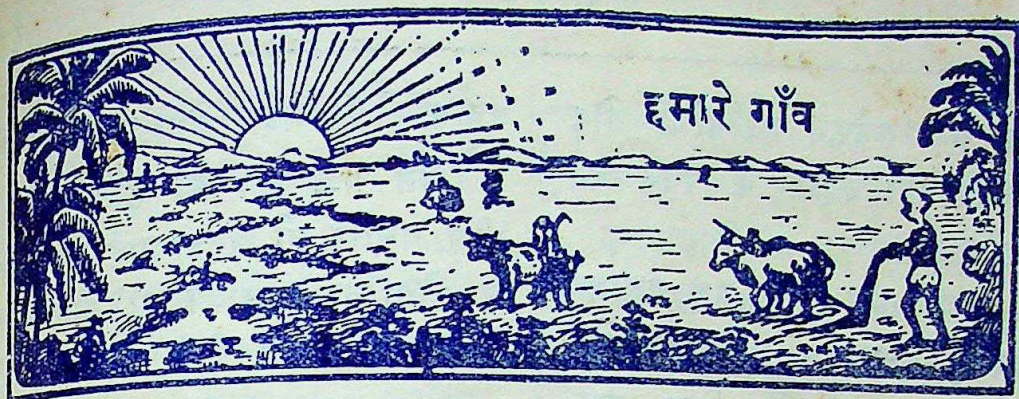
हमारे देहातों की अवनति का मूलकारण

[ले०—श्री हीरासिंह सब-इन्सपैक्टर, ग्रामसुधार, जींद]

हिन्दोस्तान अधिकतर देहात में बसता है। इसके लग भग अस्सी प्रतिशत आदमियों का गुजारा खेती तथा खेती सम्बन्धी कामों पर है। सरकारी खजाने की आय भी ज़्यादातर जमीन, जमींदारों, कृषकों, तथा जमीन की पैदावार से है और वाणिज्य-व्यापार भी इस देश में खेती की पैदावार पर ही बहुत कुछ निर्भर है। खेती की सभी पैदावार ग्रामीण करते हैं। इसलिये देश समृद्धिशाली तथा सम्पन्न तब ही हो सकता है जब गांव समृद्धिशाली हो जावें। यानी जब तक गांव उन्नति नहीं करते तब तक देश भी उन्नत नहीं हो सकता।

हिन्दोस्तान के देहातों की हालत दिन पर दिन खराब हो रही है। वह कंगाली, बीमारी व गँदगी के घर बने हुए हैं। देहातियों के सिर पर इतना कर्ज़ा है कि उसके बोझ से उनका कचूमर निकल रहा है। रात दिन मेहनत करते हैं पर पेटभर रोटी और तन ढकने को कपड़ा नहीं मिलता। हमारे देहातों की सदा से यही हालत हो, यह बात नहीं है। हिन्दू-राजकाल में गांव धन-धान्य से भरपूर और हर प्रकार से स्वावलम्बी थे। इस बात को हिन्दू शास्त्र, इतिहास, रामायण, महाभारत जैसे प्राचीन ग्रंथ ही नहीं, अन्य देशों के इतिहासकार व यात्रियों के लेख भी सिद्ध करते हैं। इस्लामी-राजकाल में भी, सिवाय धार्मिक कष्टों के, देहात का भीतरी जीवन बदला नहीं था। आर्थिक, सामाजिक और बहुत अँशों में राजनैतिक ढांचा भी वही हिन्दू-राजकाल जैसा बना रहा। इस वास्ते इस्लामी-राजकाल में भी देहातों की हालत गिरी नहीं। किन्तु अंग्रेजी राज्य ने देहातों की कायापल्ट करदी। गांवों की पंचायत-प्रथा

जैसा पिछला सब सङ्गठन का ढाँचा तोड़ दिया गया और यही देहात के पतन का मुख्य कारण हुआ।

'यथा राजा तथा प्रजा' यह कहावत बिलकुल सच है। राजकीय नीति का प्रजा पर बड़ा भारी असर पड़ता है। हिन्दू, मुसलिम, ब्रिटिश आदि सभी कालों में उस समय की राजकीय नीति का जबरदस्त प्रभाव भारतीय जनता पर पड़ता रहा है, किन्तु अँग्रेजी काल में भारतीय जनता शासकवर्ग से विशेष रूप से प्रभावित हुई है।

हिंदू-काल में पृथ्वीराज तक राजा आये, चले गये। राज्य बदलते रहे तथा उनकी नीति में भी कुछ परिवर्तन होते रहे किंतु देहात की हालत एकरस ही बनी रही, क्यों कि नित्य नये बदलने वाले शासक भी गांवों के संगठन व शांति में कोई हस्तक्षेप न करते थे। राज्य अपना भूमिकर ले लेने के अलावा गाँवों से अधिक संबन्ध न रखते थे और प्रजा जन भी कोई बड़ा भारी अन्याय ही हो जाता था, तब राजा तक पहुँचते थे। गांव का सभी प्रबन्ध पञ्चायतों के हाथ में था। हरएक गांव एक प्रकार की प्रजातंत्रीय हुकूमत थी।

जाति-बिरादरी के झगड़े निमटाने के लिये हर एक जाति की जातीय-पञ्चायत होती थी। इन पञ्चायतों में जमीदार-पञ्चायत सब से बड़ी समझी जाती थी। वह जातीय झगड़ों के अतिरिक्त गांव के हर प्रकार के प्रबन्ध की जिम्मेदार होती थी।

इन पञ्चायतों का सम्बन्ध पाँच, दस, बीस, पचास, सौ अथवा सार्वदेशिक पञ्चायतों से होता था। राज्य की सीमा से इनका कोई सम्बन्ध न होता था, पर जमीदार पञ्चायत राज्य तक ही महदूद होती थी और जमीदार-पञ्चायतों का सब से बड़ा पञ्च अथवा सरदार राजा ही होता था। वह साधारणतः उसी जमीदार जाति में से होता था जिस जाति के लोग उस देश में बसते थे। अगर कई जमींदार जातियाँ एक राज्य में होती थीं, तो मुख्य जाति का मुखिया राजा होता था और अन्य जमींदार जातियाँ उस मुख्य जाति के साथ एक प्रकार का 'फेडरेशन' सा बना लेती थीं। राज्य का विस्तार तथा राज्य-सत्ता का निर्भर इन जमींदार-पञ्चायतों पर ही होता था। यहाँ तक कि राज्य-गद्दी के झगड़े तक इन पञ्चायतों के द्वारा तह होते थे, क्योंकि जमींदार जाति सिर्फ साधारण नागरिक—प्रजाजन ही नहीं होती थी, बल्कि वह राज्य की रिजर्व सेना भी होती थी और गद्दी के जिस उम्मीदवार के साथ इनकी अकसरियत होती थी वही उम्मीदवार गद्दी पाता था; यों बहुमत से नहीं तो लड़कर पालेता था। यही नहीं, देश पर शत्रु द्वारा आक्रमण कर देने के समय भी जमींदारा-पँचायतें राजा को धन, जन से हर प्रकार सहायता देती थीं।

इन्हीं कारणों से जमीदार-पँचायतें सिर्फ जातीय-पञ्चायतें ही नहीं बल्कि राजनीतिक संस्थायें भी थीं।

अन्य जातीय पञ्चायतों के भी सार्वदेशिक मुखिया होते थे, पर उनका राजनीति से कोई सम्बन्ध नहीं होता था। जातीय पञ्चायतें अब भी बिगड़ी हालत में मौजूद हैं। छोटी कहलाने वाली जातियों में मुखिया तथा पञ्च भी कहीं-कहीं आज तक पाये जाते हैं पर उनका असर बहुत कम रह गया है। जमींदार जाति भूमि की मालिक समझी जाती थी। राज्य-कोष को वही भरती थी और राज्यसेना भी वही बनाती थी। वही संकट के समय स्थिर करों के अतिरिक्त राज्य की धन-जन से सहायता करती थी। इसलिए इसकी ही सहायता से राज्य तथा राजा कायम रहते थे। राजा को हर प्रकार इन का ख्याल रखना पड़ता था।

इन जमींदार पञ्चायतों को गाँव की अन्य जातियों के साथ सद्व्यवहार करना पड़ता था क्योंकि उनके सहयोग बिना इनका भी काम नहीं चल सकता था। इस प्रकार गाँव एक प्रजातन्त्र बन जाता था। हर एक गांव दूसरे गाँव से दोस्ती, दुशमनी, युद्ध तथा सुलह, किसी दूसरे गांव पर आक्रमण तथा अपने गाँव की बाहर के आक्रमण से रक्षा करने आदि सभी महत्वपूर्ण कार्यों के करने में सदैव स्वतन्त्र था। राज्य को उनके ऐसे किसी भी काम में हाथ डालने की कोई आवश्यकता न थी, न अधिकार ही।

मुसलमानों के राज्यकाल में ग्रामीण प्रजातन्त्र की प्रणाली कुछ बदली। राजा जमींदार-पञ्चायतों का मुखिया नहीं रहा इसलिए ग्राम-पञ्चायतों का राज्य और राजनीति के साथ सम्बन्ध बहुत कुछ कम हो गया, पर गांव का भीतर का प्रबन्ध उसी तरह बना रहा।

हर एक गांव अपनी खाद्य-सामग्री, अन्न घी, दूध तथा पहनने का कपड़ा अपने गांव में ही पैदा कर लेता था। उसके अपने चमार, जुलाहे, लुहार, बढ़ई, तेली, नीलगर, कुम्हार, आदि होते थे। लोगों का रहन सहन इतना सादा और उनकी आवश्यकताएँ इतनी थोड़ी और साधारण होती थीं कि गांव तथा आस पास से ही वे पूरी हो जाती थीं। गांव की फालतू पैदावार को बाहर भेजने के लिए और थोड़ी बहुत आवश्यक चीजें बाहर से लाने के लिए गाँव में बणिक या व्यौपारी होता था जो कि गांव का साह भी होता था, यानी फालतू धन धरोहर रखता था और जरूरत वालों को धन उधार देता था। गांव का पंडित, मन्दिर के पुजारी के अलावा बहुधा ज्योतिषी तथा वैद्य भी होता था। वही रस्म-रिवाज पर कर्म-कांड कराता था। बालकों को शिक्षा वही देता था और समय-समय पर बड़ों को भी कथा-वार्ताओं द्वारा

उपदेश देता रहता था। इस प्रकार गाँव हर तरह से स्वावलम्बी होता था।

जमीदार हर एक काम करने वाले को उसकी सेवाओं के बदले में हर एक फसल पर जमीन की पैदावार में से कुछ नियत भाग तथा कुछ भूमि जोतने के लिये अथवा अन्न तथा भूमि दोनों देता था। शुभ अवसर ब्याह-शादी, पुत्र-जन्म आदि पर भी कुछ दान नाई, कुम्हार, लुहार, धोबी, बढ़ई आदि को अन्न, धन तथा वस्त्र के रूप में दिया जाता था। पँडित को भी पूजा, उपदेश, बालकों की शिक्षा तथा चिकित्सा आदि सेवाओं के बदले भोजन, भोजन सामग्री, वस्त्र आदि ही भेंट किए जाते थे। मँदिर के साथ बहुधा कुछ भूमि भी लगा दी जाती थी जिसकी आय से मँदिर का खर्च चलता था। गांव की सामूहिक सेवा के अन्य काम करने वालों को भी कुछ न कुछ भूमि गाँव की ओर से देदी जाती थी। इस तरह गांव की खेती जमीदार अथवा किसान का ही काम न था, वह सब ही जातियों का साझीदारी का काम होता था। परन्तु अँग्रेजी राज्य की नीति से यह सब ढाँचा टूटना शुरू हो गया और धीरे २ यह सब ग्राम-सङ्गठन नष्ट हो गया।

अदालतों और पुलिस ने पञ्चायतों का स्थान ले लिया। लोग न्याय के लिए सीधे पुलिस तथा अदालतों में जाने लगे, पञ्चायतों की कोई पूछ न रही। पँचों ने जब अपनी मान-मर्यादा जाती देखी तो वे उसको बनाये रखने के लिए पुलिस और अदालतों के एजेन्ट बन गए। वही पञ्च जो सारे गाँव को एक सूत्र में बाँधने वाले, न्याय करने वाले तथा गांव के जान, माल, धन, मान के हर प्रकार से रक्षक होते थे, अब गांव में भेद पैदा कर मुकदमे बनवाने लगे और रिश्वतें दिलवा कर गांव को लुटवाने लगे। और इसका परिणाम यह हुआ कि प्रजाजन पञ्चायतों के शासन से मुक्त होकर, अब बिना सरदार की सेना की तरह, छिन्न भिन्न हो गये। उनमें कोई नियम सँयम नहीं रहा, गांव के अपने ही भाई की मान-मर्यादा, हानि-लाभ, सेवा-सुश्रुषा का कोई भी खयाल न रहा। इस नीति से एक ग्रामीण दूसरे के दुःख का कारण बन गया। अतः सबके सब दुःखी हो गए। साथ ही रेल, ज़हाज, डाक, तार आदि के सुभीतों की वजह से अँग्रेजी कारखानों ने अँग्रेजी माल से देश को भरना शुरु कर दिया और देश की घरेलु दस्तकारी तथा उद्योग-धन्धों की हर प्रकार उपेक्षा व ह्रास करके उनका विनाश ही कर दिया। ब्रिटिश शासन के साथ ही देश में पाश्चात्य सभ्यता का दौर दौरा हुआ। उसने सादगी को भँग करके आवश्यकताओं को यानी खर्च को बढ़ा दिया। विदेशी शासन की शोषण की नीति के कारण आय के जरिये बन्द कर दिये गए। देश का धन

विदेशों को जाने लगा और देश तथा उसका ग्राम-देहात हर प्रकार से कमज़ोर तथा कंगाल हो गया। इस प्रकार आज जो हालत देहात की है वह किसी से छुपी हुई नहीं है। सुधार की कोशिशें भी हुई हैं और हो रही हैं, परन्तु कोई उन्नति दिखाई नहीं देती।

लोग देहात की अवनति के भिन्न २ कारण बताते हैं। कोई इसका कारण देहातियों की फूट, मुकदमेबाज़ी और रिश्वत बताता है, कोई कहता है कि उनकी कुरीतियाँ, फिज़ूल-खर्ची, कर्ज़ा, भारी ब्याज-दर और साहूकारा लेन-देन की खराबियां है। कोई खेती के हज़ारों साल पुराने ढंग, ज़मीन का छोटे २ अनुपयोगी टुकड़ों में बंट जाना, वर्षा की कमी, नित्य के अकाल, जङ्गलात का कम हो जाना कहता है। कोई कहता है कि माल-गुज़ारी तथा आबियाना की भारी दरों ने देहात को कङ्गाल बना दिया है। कोई कई सूबों के ज़मींदारी-सिस्टम को दोषी ठहराता है। कोई दुनिया के व्यावसायिक तथा व्यापारिक मुकाबले को देहातियों के लिए बुरा बताता है जो कि रेल, जहाज़, डाक, तार, मोटर आदि ने और भी तेज़ बना दिया है। कोई घरेलु उद्योग-धन्धों का ह्रास, स्वदेशी चीज़ों का अभाव तथा विदेशी चीज़ों के प्रभाव एवं प्रचार को देहात की कमज़ोरी का कारण बताता है। कोई देहातियों की निरक्षरता तथा देहात की गन्दगी को ज़िम्मेदार ठहराता है। जितने मुँह उतनी बातें हैं।

इसी तरह सुधार तथा उन्नति के लिए भी इतनी ही तजवीज़ें बताई जाती हैं। बीसियों तरह की सभा-सोसाइटियां बनाने की तजवीज़ें हैं। बहुत किस्म की सोसाइटियां, यथा—सहकारी, कर्ज़ा देने वाली, खेती में उन्नति कराने वाली, बड़ी उमर के आदमियों को शिक्षा देने वाली आदि बनाई जा चुकी हैं और बनाई जा रही हैं। पर किसी का कोई असर दीख नहीं पड़ता।

यह सभी बातें ठीक हैं। अवनति के कारण भी और उन्नति के उपाय भी; पर अन्धों का हाथी है। जिस तरह अलग २ कान, पूँछ आदि हाथी नहीं हैं बल्कि सब मिल कर हाथी बनाती हैं। अस्तु, देहातों की अवनति का मुख्य-कारण—मूल-व्याधि जब तक दूर नहीं की जाती, तब तक उस बड़ी व्याधि से पैदा हुई छोटी २ व्याधियां अलग २ इलाज करने से नहीं जा सकतीं, चाहे हरएक का इलाज कितना ही ठीक क्यों न हो। हमारी मूल-व्याधि—विदेशी राज्य की कूटनीति है, जिसने हमारे पञ्चायत-सिस्टम यानी ग्राम-सङ्गठन को तोड़ दिया। अब भी सम्भलने का समय है, जबकि हमारे हाथों में कुछ शक्ति आई है। इसको हमें ग्रामों के पुनरसङ्गठन पर लगाना चाहिए, इसी में बुद्धिमानी है।

—०:०—

केवल 'दीपक' के लिए लिखित

साहित्यसेवी रामराव

[ले०—डा० रविप्रतापसिंह श्रीनेत]
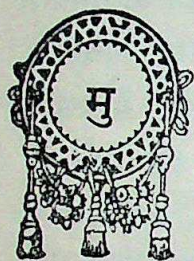
मुमकिन है कि रामराव का नाम साहित्य-सेवा से जुड़ा हुआ देखकर कइयों को आश्चर्य हो. कइयों को विस्मृति के परदे पर स्मृति की रेखाएँ खींचनी पड़ें और कइयों को उत्सुकता आ पकड़े; लेकिन मुझे कहने दीजिए कि रामराव इन कइयों की इन सारी चेष्टाओं से बहुत दूर था। प्रेस और प्लेटफ़ार्म के प्रचार से बहुत परे था, तिस पर भी साहित्य-सेवा की एकान्त साधना में उसने अपने जीवन की आख़िरी घड़ियां काटीं। शिक्षा और सँस्कृति की गोद में पलकर साहित्य-क्षेत्र में आने वालों की कमी नहीं और न कोई आश्चर्य ही है उनकी साहित्यिक रुझान को देखकर; लेकिन रामराव-सरीखी साहित्य-सेवा मुझे तो बेजोड़ मालूम हुई। यही सबब है जो आज रामराव की साहित्य सेवा का ज़िक्र करने के लिए तबियत मचल पड़ी है। रामराव के व्यक्तित्व की साहित्यिक इकाई, अपनी ग़रीबी और मोहताजी की सारी निधियाँ लिए आँखों के सामने खड़ी हुई है। तब क्यों कर न आपके सामने रामराव का जीवन, साहित्य-सेवक के रूप में रक्खा जाय ?

चार क्लास हिन्दी पढ़ा हुआ रामराव पुलीस सिपाही था। पूरे ३० साल तक नमकहलाली के साथ सरकार की नौकरी बजाई। सिपाही की हैसियत से पेन्शन ली। नेक-नीयती और ईमानदारी का नतीजा यह हुआ कि वह अपनी नौकरी के दौरान में सिपाही रहा। न तो बढ़ हो सका और न औरों की तरह बालाई आमदनी ही कर सका। ग़रीबी की जिस हालत में नौकरी में दाख़िल हुआ, ठीक उसी हालत में नौकरी के रोब से जुदा हुआ। पुराने स्केल पर नौकरी की थी; इसी लिए पेन्शन भी कम ही मिली। सिर्फ़, इतनी ही कि रामराव का छोटा परिवार सस्ती जगह में रहकर न तो मर ही पाये और न जिन्दा ही रह सके। ज़िन्दगी और मौत के इस झमेले में रामराव की दुनिया अभावों को लेकर कुछ उजड़ी-सी और कुछ बसी-सी अपने दिन पूरे कर रही थी। रामराव मानो दुनियावी आवश्यकताओं के अभाव से कहीं परे था। उसने ग़रीबी और अभावों के बीच एक दिन अनायास ही सुना कि राठौर वकील ने हिन्दी की सेवा और प्रचार के लिए 'हिन्दी प्रचारिणी-समिति' का निर्माण किया है। उनके साथ पटोरिया; खरे और ओकटे भी हैं। रामराव के हृदय ने गुदगुदी अनुभव की। उसको मालूम हुआ कि इस समिति में उसका स्थान है। वह राठौर वकील से मिलने चल पड़ा।

ठाकुर रामप्रसादसिंह राठौर का कमरा वकीली शान से सजा हुआ था। मुवक्किलों के बीच कभी-कभी नव-जात समिति का ज़िक्र भी छिड़ जाता। गोंड-सँस्कृति के बीच बसे हुए छिंदवाड़े के लिये समिति की स्थापना एक ऐसी चीज़ थी जिसका नाम बरबस राठौर वकील के मुँह से निकल ही जाता। छाया की तरह साथ रहने वाले खरे वकील भी तो उमँगों में तैर रहे थे। इतने में दरवाज़े पर कोई आता हुआ दिखलाई दिया। वकील साहब समझे कि कोई मुवक्किल ही होगा। चेहरा सूखा हुआ, गाल पिचके हुये, जिस्म पर कमज़ोरी की झुर्रियाँ; लेकिन फिर भी कर्त्तव्य की मुस्कराहट मौजूद थी। वकीली लहजे में शायद पूछा गया—'क्या है ?' रामराव की मुस्कराहट फैली आँखें कोटरों में से चमक उठीं। रामराव ने कहा—'समिति खुली है क्या ? उसीमें काम करना चाहता हूँ।' त्याग उत्साह और धुन की पूँजी पर स्थापित की गई समिति के पास क्या हो सकता था जो होता ? राठौर ने खरे की तरफ़ अर्थ भरी निगाह से देखा। खरे की निराशा शायद आशा में परिणत होते हुए राठौर की आँखों से कह गई कि अच्छा है करने दो काम इन्हीं को।

राठौर की व्यावहारिकता, स्पष्टवादिता में बदलती हुई बोली—'क्या लोगे ? साफ़-साफ़ कह दो।' रामराव का उत्साहित दिल मानों बग़ावत करने के लिए उतारू हो—इसलिये कि शिक्षा और सँस्कृति के लाडले क्या ग़रीबी में सिमटे हुए दिल की भाषा नहीं समझते ? रामराव ने अपनी दिली बगावत को दबाते हुए कहा—"जो आप दें !"

उस दिन से रामराव समिति का नौकर था। मरने के चन्द दिन पेश्तर तक समिति की पुस्तकों और अखबारों में उलझा रहता। समिति की जिन्दगी से ही रामराव की साहित्य-सेवा शुरू हुई और समिति की सेवा की शक्ति आज वह भौतिक रूप में अलग ज़रूर है; लेकिन उसकी आत्मा हमेशा ही समिति के भविष्य पर आशीर्वाद की तरह उपस्थित रहेगी। रामराव ने समिति के हितों से अपने आपको ऐसा एकमन किया कि मैं कह सकता हूं कि रामराव ही समिति था और समिति ही रामराव। समिति का काम—सभी छोटा बड़ा रामराव करता। झाड़ू देना, विछायत बिछाता। अलमारियाँ साफ़ करता, किताबें क़रीने से लगाता। नम्बर डालता रजिस्टर पर चढ़ाता। दान-स्वरूप किताबें इकट्ठा करता। चन्दा उगाहता, उसके पाई-पाई का हिसाब रखता। सेक्रेटरी से हिसाब जँचाता और रोज़ का आया हुआ चन्दा रोज़ ही जमा कर देता। मीटिंग के नोटिस घुमाता, दस्तखत कराता। सभा-सोसाइटियों में जाता; बोलता बिलकुल नहीं पर अपने विचार अवश्य ही स्वतन्त्र रखता। साहित्यिक बैठकों में बड़ी दिलचस्पी लेता। उसे समझते देर न लगती कि 'मधुशाला' के गीत पटौरिया वकील किस फ़िक्र से गाते हैं। 'अँग्याचारी' में राठौर और खोसटे जी कैसा कमाल करते हैं ? गीता-प्रवचन में वटक साहब मरहूम. त्रिवेदी साहब और 'सुपरवाइज़र गुण्डे साहब' कितना अच्छा बोलते हैं ?

रामराव दिन भर समिति के कामों से लिपटा रहता। यदि ज़रा भी कोई पुस्तक फटी दिखी तो रामराव ने उसी समय उस पर जिल्द अपने हाथ से चढ़ा दी। सेवा बढ़ाने के लिये वह हरक्यूलियन प्रयत्न करता। जिस दिन नये मेम्बर बना लेता, उस दिन मानो उसने एक जँग जीत ली हो। खुशी का क्या पूछना है ? दूर ही से मुस्कराते हुये आता और 'जैरामजी' के बाद ही अपनी सफलता सुना देता ! उसकी आशा पर समिति के जीवन की आशा निर्भर सी मालूम देती। रामराव बीमार हो, उसकी लड़की बीमार हो या उसकी स्त्री ही बीमार हो; लेकिन रामराम समिति का पुस्तकालय ज़रूर ही खोलता। यह नहीं कि समिति का पुस्तकालय आज तक बन्द ही नहीं हुआ; लेकिन रामराव को सँतोष हमेशा जब हुआ तब पुस्तकों के बीच ही हुआ। रामराव को पुस्तकालय की तमाम हिन्दी पुस्तकों का ज्ञान था। वह रोज ही कुछ न कुछ पढ़ा करता। कभी-कभी उसका यह ज्ञान उसकी मामूली बातों में निकल ही पड़ता। रामराव अपनी लियाक़त कभी जाहिर न करता; क्योंकि वह जानता कि उसके ज्ञान का आधार (Basis) पुस्तकालय की थोड़ी-बहुत सी पुस्तकें ही हैं।

'हिन्दी प्रचारिणी-समिति' ने अपने जीवन में जो कुछ भी कर पाया है, उसका बहुत सा श्रेय रामराव को ही है। सच पूछा जाय तो कल्पना और आशा की दुनिया में रहने वाले इन कार्यकर्त्ताओं की स्कीमों को रामराव ने ही कार्यरूप में परिणत किया। समिति ने शहर में हिन्दी-साहित्य के प्रति जो सहानुभूति और रुचि पैदा की है, उसके लिए रामराव ने बड़े प्रयत्न पैदा किये हैं। रामराव को शायद ३) महीना ही मिलता था, वह भी रहने पर; वरना उसके लिए भी रामराव ने कभी तक़ाज़ा नहीं किया। एक बार मैंने पूछा—'रामराव! क्या तुम कोई अच्छी नौकरी करना चाहोगे ? तुम्हें ७-८ रुपये महीना मिल जायगा।' रामराव को शायद ग्लानि हो गई हो। मासिक-पत्रिकाओं की फाइलें रखते हुए बोला—"डाक्टर साहब ! अब तो समिति के साथ ही रहने दीजिए। रुपए का लोभ अब तो मुझे समिति से अलग न कर सकेगा।" उस दिन मैंने समझा कि इनके चोले में रहने वाला सेवक महज़ सेवक ही नहीं है; वरन् एक साधक है जो समिति के मन्दिर में बैठा हुआ सरस्वती

की साधना एकान्त भाव से सेवा के रूप में कर रहा है। उसके बाद मैंने रामराव को वक्त फ़वक्त छेड़ना शुरू किया। मुझे धीरे-धीरे मालूम होता रहा कि रामराव खुद भी अपने को हिन्दी साहित्य का एक अनन्य सेवक ही समझता है। वह कहता कि साहित्य सेवक वही कहला सकता है जिसके प्रयत्नों द्वारा साहित्य का प्रचार हो और निर्माता वही है जो उसका निर्माण करे। शायद, इसीलिए तो वह अपने सादे और गंभीर ढँग से कहता — 'साहित्य की सेवा सब सेवाओं से अच्छी है।'

रामराव ने अपने हृदय के अन्दर अपनी समिति की सेवाओं को सदैव साहित्य की सेवाओं के रूप में ही समझा क्योंकि समिति के कारण ही हिन्दी-साहित्य का काफी प्रचार हुआ। इसलिए मैं भी रामराव को एक कर्मठ साहित्य सेवी के रूप में देखता हूँ। गए महीने में जब रामराव अपनी मौत के मुंह में जा रहा था, तब भी समिति और समिति का भविष्य उसकी स्मृति पर पूरी तरह आसीन थे। रामराव आज हमारे बीच नहीं है, लेकिन उसका उत्साह और उसकी लगन अब भी हमारा पथ-प्रदर्शन करेंगी। मैं इन पंक्तियों द्वारा साहित्य सेवी रामराव की स्मृति में, ये अपने उद्गार आपके सामने रख रहा हूं। सेवा की उज्वलता के लिए रामराव का त्याग और रामराव की लगन ईश्वर हमें दें!

हे कवि !

[प्रणेता श्री "कमल"]

लिख ले हे कवि ! अपने कर से आज जगत् की गाथा ।
अपने युग का कवि प्रतिनिधि है, धाता—भाग्य-विधाता।
किस्मत के अँकों को हे कवि ! रुचि अनुकूल बदल दे ।
डर मत विधि-कृत होनहार को पद पद तले कुचल दे।
आप विपद कवि आप सम्पदा, है दोनों का भोगी !
आप औषधि मृत्युञ्जय कवि, आप खाट का रोगी।
है आप हार, कवि आप जीत, आप बली अभिमानी ।
अपने विद्यालय का गुरु कवि, धी विद्या का ज्ञानी ।
कवि कलित पुष्प है प्रखर बाण जरा मरण है काया ।
खुद का भेद खुदी में कवि ने अपने आप छुपाया ।
कवि आप 'ऋचा' कवि आप साम आप चतुर उद्गाथा ।
अपनी पीड़ा का कवि गायक आप सुहृद-दुखत्राता ।
अपना राज्य बसाने वाला कवि है अपना राजा ।
अपनी सेना का नायक कवि चाहे जब भी आजा।
आप न्यायवर आप दण्ड दे अपना रुदन मिटावे ।
अपने चोरों के ऊपर कवि शासन कड़ा बिठावे ।
हे कवि ! कवि ही तो होता है अपने युग का धाता ।
जैसा युग चाहेगा कविवर, वैसा ही बन जाता ।

गर्मियों का तोहफ़ा—प्याज़

[ले०—श्री रामनारायण 'मृदुल']

भगवान ने अमीरों— पूञ्जीपतियों के लिए जहाँ घी, दूध, भिन्न २ प्रकार के फल और मेवे आदि अनेकशः पौष्टिक-खाद्य उत्पन्न किए हैं, वहाँ ग़रीबों को भी इस श्रेणी के खाद्यों से वञ्चित नहीं रखा है। गाजर, बेर, मूँगफली, प्याज़ नाना प्रकार के जङ्गली कन्द, मूल, फल ऐसे ही पदार्थ हैं। इनके उचित उपयोग से निम्न-श्रेणी के लोग जो लाभ पा सकते हैं वह श्रीमानों को अनेकों बहुमूल्य पौष्टिक-भोगों में भी प्राप्त नहीं हो सकता। आज हमें ऐसे ही एक उपयोगी पदार्थ—प्याज़ के विषय में अपने प्रेमी पाठकों को कुछ बतलाना है।

प्याज़ की खेती अति प्राचीन काल से भारत में की जाती है। अफ़गानिस्तान और बिलोचिस्तान में जङ्गली प्याज़ भी मिलता है। कहा जाता है कि इसकी जन्मभूमि पैलेस्टाइन है।

स्काटलैंड और फ्राँस में प्याज़ को बड़ी श्रद्धा से देखा जाता है। मिश्र में भी प्याज़ पवित्र माना जाता है। स्पेनिश लोग यात्रा में प्याज़ अवश्य साथ रखते हैं। हमारे देश में भी गरीब लोगों का प्याज़ एकमात्र सहारा है। उच्च श्रेणी के लोग भी बहुधा गर्मी के दिनों में अथवा महामारी के अवसर पर घर के दरवाज़ों पर प्याज़ लटका देते हैं। ब्राह्मण आदि उच्च वर्ग के लोग इसका व्यवहार नहीं करते। इसका कारण इसकी तेज़ गन्ध है। मध्यभारत में एक ऐसी भी दन्तकथा प्रचलित है कि सृष्टि के आदि में जब सब प्रकार के भोजन भगवान् के सामने पत्तल में ला कर परोसे गए तब प्याज़ लुढ़क कर पत्तल से बाहर चला गया। तभी से ठाकुर जी के भोज्य-पदार्थों की सूची में से बेचारे प्याज़ का नाम काट दिया गया।

प्याज़ पाचक, बलवर्द्धक, उत्तेजक, कफ और ज्वर नाशक, सर्दी और खाँसी को कम करने वाला तथा पेशाब अधिक लाने वाला है। इससे तरकारियों का स्वाद तो बढ़ता ही है, साथ ही अनेक रोगों में भी यह उपयोगी है। स्कर्वी (खून की कमी) और जलोदर रोगों में इसके सेवनसे लाभ होता है। पशुओं को बहुत सी बीमारियों में तो यह रामबाण है। विगत महायुद्ध में इन्फ्लुएञ्जा के बहुत से रोगी इसके रस से अच्छे हुए थे।

संसार के सभी भोजन-विशारद लोग इसकी उपयोगिता स्वीकार करते हैं। सुप्रसिद्ध मोटर-विक्रेता, कलाकार और दानी विलियम मोरिस (लार्ड नुफील्ड) ने एक स्थान पर कहा है—"प्याज़ जैसा अमूल्य पदार्थ देने के लिए मैं ईश्वर का उपकार मानता हूं। स्वाद और तीव्रता के साथ यह एक बहुत पौष्टिक खाद्य है। अन्य अमूल्य पदार्थ भले ही न मिलें; किंतु प्याज़ सबको मिले।"

गुजराती में भी इसकी पौष्टिकता को प्रकट करने वाली कई कहावतें प्रचलित हैं—"काँदो ए पुरुषनो बाँधो" अर्थात् प्याज़ ही मनुष्य शरीर को सङ्गठित करता है। 'जे खाय काँदो, ते जब्ल्ले पड़े माँदो" अर्थात् जो प्याज़ खाता है, वह सदा नीरोग रहता है।

हमारे देश में प्याज़ सब जगह पैदा होता है। गुजराती में इसे डुङ्गली, काँदा; मराठी में काँदा, संस्कृत में पलांडु, बङ्गला में पेंयाज़, पंजाबी में गंडे, फ़ारसी में प्याज़, तैलङ्गी में निरूपी, कर्नाटकी में उप्पेगड्डु और अङ्गरेज़ी में अनियन (Onion) कहते हैं।

साधारणतया प्याज़ की दो जातियाँ हैं—सफ़ेद और लाल; परन्तु बङ्गाल में एक जाति का प्याज़ और होता है, जो छोटा, मगर तेज़ होता है। लाल प्याज़ में बहुत गन्ध होती है; पर सफ़ेद में हल्की होती है। इसकी पैदावार भी कम होती है; इससे यह लाल की अपेक्षा महङ्गी पड़ती है।

सफ़ेद और लाल प्याज़ के गुणों में भी थोड़ा अन्तर है। सफ़ेद प्याज़ भारी, धातु-वर्द्धक, वृष्य, स्निग्ध, गुरु, कफकर तथा रुचिकर होती है। रक्त दोष, कै, अरुचि तथा वातपित्त-नाशक समझी जाती है।

लाल प्याज़ शीतल तीक्ष्ण, वृष्य, पित्तकर, स्निग्ध और अग्नि वर्द्धक है। कफ, कृमि, अर्श तथा वायु का नाश करने वाली है। प्याज़ के बीज वृष्य तथा प्रमेह के लिए अतीव लाभदायक होते हैं।

प्याज़ तरकारी के रूप में और कच्चा भी खाया जाता है। इसके बारीक लच्छे कतर कर नीबू का रस, सिरका अथवा दही के साथ मिला लेने से स्वाद बढ़ जाता है तथा गन्ध की तेजी भी जाती रहती है। ऊपर बताया जा चुका है कि कई रोगों में यह उत्तम औषध का काम भी देता है। आगे की पंक्तियों में इसके कतिपय लाभदायक प्रयोग दिए जाते हैं:—

(१) बिच्छू या मक्खी के दंश पर प्याज़ का रस लाभकारी है।

(२) गर्मियों में प्याज़ पास रखने से लू नहीं लगती। यदि किसी को लू लग जाय तो सफ़ेद प्याज़ को भूनकर एक हरी प्याज़ के साथ पीस लिया जाय। फिर दो तोला शक्कर और ३ मासे जीरे का चूर्ण मिलाकर खाने से लाभ होता है।

(३) गर्मी से सिर में दर्द होने पर प्याज़ काट कर सूँघना चाहिए।

(४) प्याज़ का रस शहद के साथ खाने से शक्ति बढ़ती है।

(५) नकसीर में प्याज़ का रस सूँघना चाहिए।

(६) हैजे में २-२ घण्टे के अन्तर से प्याज़ का रस पिलाना चाहिए।

(७) आँख आने पर प्याज़ का रस डालने से फायदा होते देखा गया है।

(८) प्याज़ को भूनकर हल्दी के साथ घी में तल लिया जाय इसको गरम २ फोड़ों पर बांधने से लाभ होता है। यह एक अच्छी पुल्टिस है।

(९) दाढ़ के दर्द में प्याज़ के बीज रखने से लाभ होता है।

(१०) प्याज़ के छोटे २ टुकड़े ५—६ बार धोकर गाढ़े दही के साथ खाने से आंव का रोग जाता है।

(११) गुड़ और हल्दी सफेद प्याज़ के साथ खाने से कमल रोग नष्ट होता है। सिरके के साथ खाने से भी कमल रोग दूर होता है।

(१२) बढ़ी हुई तिल्ली और बादी में प्याज़ हितकर है।

(१३) प्याज़ का रस चीनी के साथ खाया जाय तो खूनी बवासीर अच्छी होती है।

(१४) कान के दर्द में भी प्याज़ का रस लाभ पहुँचाता है।

(१५) प्याज़ के रस में अफीम घोलकर पीने से अतिसार मिट जाता है।

(१६) सफेद प्याज़ का रस आंख में डालने से उन्माद और शरीर की ऐंठन दूर होती है।

(१७) प्याज़ और गुड़ हमेशा खाने से बालक की ऊँचाई बढ़ती है।

(१८) सफेद प्याज़ के टुकड़े करके सूंघने से जुकाम दूर होता है।

(१९) ३-४ प्याज़ के छोटे-छोटे टुकड़े करके छटांक भर घी में तल लिया जाय और रोटी के साथ उसे खाया जाय तो शक्ति बढ़ती है। यह प्रयोग अनेकों बाजीकरण औषधियों से सुलभ और लाभकारी है।

प्याज़ छीलते समय उसमें से रस निकलता है और आंख में जाने से आँसू निकलने लगते हैं। यदि जड़ की तरफ से उसे छीला जाय तो रस नहीं उड़ेगा।

प्याज़ गरीबों के लिए ईश्वर की अनुपम देन है। यह पाचन-शक्ति को बढ़ाता है। इसके साथ खाया गया भोजन शीघ्र पच जाता है।

मातृस्नेह

[ले०—श्री आनन्दप्रकाश दीक्षित, कक्षा ६ मेरठ]

मानव-समाज ज्ञानी मूर्ख, धनी-ग़रीब, पुण्यात्मा-पापात्मा, न्यायशील अत्याचारी आदि विभिन्न प्रकार के मनुष्यों से बना है। किंतु मनुष्य-सँसार में ऐसा कोई न मिलेगा जो स्नेह शून्य हो। प्रत्येक मनुष्य किसी न किसी से स्नेह करता ही है फिर वह स्नेह चाहे हलके दर्जे का हो या उच्चकोटि का।

स्नेह दो प्रकार का होता है--शुद्ध आन्तरिक तथा स्वार्थपूर्ण ऊपरी—बनावटी। अधिकाँश मनुष्यों का स्नेह स्वार्थ युक्त होता है। शुद्ध स्नेह केवल माता में ही होता है। माता का हृदय सदैव स्वार्थहीन—विशुद्ध स्नेह से भरपूर रहता है। कुटुम्ब में चाचा-चाची, मामा-मामी, ताऊ-ताई, भाई-बहिन, में परस्पर एक दूसरे से स्नेह होता है। किन्तु उनका स्नेह लोक चलन के नाते से होता है। स्नेहशीलता में वे मातृ हृदय को नहीं पहुँच सकते। सँसार भर में माता के लिए पुत्र तथा सन्तान के लिए 'माता' के समान प्यारी चीज कौन सी होगी ? यह सच्चे स्नेह का ही तो फल है। यद्यपि किसी-किसी माता तथा सन्तान के पारस्परिक सम्बन्ध कठोर भी देखे जाते हैं किन्तु अपवाद कहाँ नहीं होता ?

पिता भी पुत्र से बहुत स्नेह करता है किन्तु उसके स्नेह में स्वार्थ की मात्रा अत्यधिक रहती है। पिता अपने भविष्य को सुखी बनाने के लिए ही अपने पुत्र को स्नेह से पालता है। यदि पिता के इस उद्देश्य में बाधा पड़ती है तो वह पुत्र पर से अपना सारा स्नेह हटा लेता है, उसे पुत्र तक समझने तथा अपने को उसका पिता कहलाना भी बरदाश्त नहीं करता। किन्तु माता ऐसा कभी भी नहीं कर सकती। वह पुत्र के किसी भी अपराध पर उसे त्याग नहीं सकती, बल्कि पति के विमुख होने जैसे भारी पाप तथा अन्य घोर कष्ट उठा कर भी वह पुत्र-बिछोह सहने को तैयार न होगी। पुत्र के सुख के लिए माता भारी से भारी कष्ट सह लेती है, बड़े से बड़ा त्याग कर सकती है।

माता अपने भोजन-वस्त्र, तथा अन्य किसी भी शारीरिक सुख की परवाह न करके पुत्र के लिये सब प्रकार के सुख जुटाने का प्रयत्न करती है। ऐसी अनेकों विधवाओं के उदाहरण मौजूद हैं कि जिन्होंने अत्यंत गरीब, और असहायावस्था में भी घोर परिश्रम कर, चक्की पीस, चर्खा चला, मजदूरी कर, अपने पुत्रों को लिखा-पढ़ाकर सुयोग्य बनाया है। माता जैसा निःस्वार्थ प्रेम तथा त्यागमय जीवन संसार में अन्य किस प्राणी में मिलेगा? इन्हीं अलौकिक गुणों के कारण माता का पद सर्वोच्च है, महान् है। माता के हृदय-धन सन्तान के आगे संसार के सब सुख-वैभव, शाहीशान-शौकत, पूजा पाठ, मन्दिर-मस्जिद, आदि का क्या मूल्य है, इसे हिन्दी की सुप्रसिद्ध कवियित्री श्रीमती सुभद्रा कुमारी चौहान के स्नेह से छल छलाते हृदय से अपनी पुत्री के प्रति प्रकट किये गये इन पद्यों में देखिए:—

यह मेरी गोदी की शोभा, सुख सुहाग की है लाली।
शाही शान भिखारिन की है, मनोकामना मतवाली॥
दीप शिखा है अन्धकार की, घनी घटा की उजियाली।
ऊषा है यह कमल भृंग की, है पतझड़ की हरियाली॥
सुधाधार यह नीरस दिल की, मस्ती मगन तपस्वी की।
जीवित ज्योति नष्ट नयनों की, सच्ची लगन मनस्वी की॥
मेरा मन्दिर, मेरी मसजिद, काबा, काशी यह मेरी।
पूजा पाठ ध्यान जप तप, है घट घट वासी मेरी॥
कृष्णचन्द्र की क्रीड़ाओं को, अपने आँगन में देखो।
कौशल्या के मातृमोद को, अपने ही मन में लेखो॥
प्रभु ईसा की क्षमा शीलता, नबी मुहम्मद का विश्वास।
जीवदया जिनवर गौतम की, आओ देखो इसके पास॥
परिचय पूछ रहे हो मुझ से, कैसे परिचय दूँ इसका।
वही जान सकता है इसको, माता का दिल है जिसका॥

छाती का दूध कब छुड़ावें ?

स्वस्थ बच्चे देश की सबसे बड़ी सम्पत्ति होती है। बच्चे स्वस्थ तभी बन सकते हैं जब उन्हें पैदा करने वाले माता-पिता स्वस्थ हों और बच्चों को वैज्ञानिक ढंग से पालने की सभी जरूरी बातें जानते हों। बच्चे को जन्म से १०-१२ वर्ष की आयु का होने तक अनेकों दिशाओं में से गुजरना पड़ता है। अतः उसकी इस परिवर्तनशील अवस्था के अनुसार ही यदि बच्चे का पोषण होता रहे तो वह स्वस्थ व पुष्ट बनेगा। वर्ष भर बच्चा अपनी माता के दूध पर ही पलता है। फिर गाय, बकरी आदि के बाहरी दूध की आवश्यकता पड़ती है। और अधिक बड़ा होने पर फल, सूखे मेवे, साग-सब्जी आदि दी जानी चाहिए। २-२॥ वर्ष की आयु में वह हल्का व नरम अन्न-पदार्थ खाने योग्य होता है। इस प्रकार बच्चे को भोजन की इन विभिन्न स्थितियों में से गुजरने में बड़ी भारी सावधानी की आवश्यकता होती है; विशेषतः उस समय जबकि बच्चा माता का दूध पीना बन्द करके बाहरी दूध वा अन्न आदि आरम्भ करता है। असावधानी से अन्न-प्राशन कराने से अधिकांश बच्चों के पेट व आमाशय खराब हो जाते हैं जिससे वे जन्म-भर इन रोगों के शिकार रहते हैं। अतः प्रत्येक माता-पिता को इस बात का ज्ञान होना आवश्यक है कि बच्चे को कब और किस प्रकार माता का दूध छुड़ा कर ऊपरी दूध आदि अन्य भोजन दिया जावे। नीचे इस सम्बन्ध में कुछ आवश्यक सूचनाएँ दी जाती हैं:—

१—बच्चे को माता का दूध एक साल तक पिलाना चाहिये क्योंकि उस समय तक बच्चे के पोषण और विकास के लिए यही प्राकृतिक भोजन सर्वोत्तम होता है।

२—एक साल से पहिले माता का दूध छुड़ाने से बच्चे के विकास में रुकावट पड़ती है। इसी प्रकार एक साल से अधिक समय तक छाती का दूध पिलाते रहने से बच्चे को लाभ नहीं होता क्यों कि जिन पदार्थों की उस आयु में बच्चे के भोजन में आवश्यकता होती है, वे एक वर्ष के बाद माता के दूध में नहीं रहते जिससे बच्चा पीला व कमजोर हो जाता है।

३—छाती का दूध छुड़ाने के समय माता व बच्चा—दोनों का स्वास्थ्य ठीक हो।

४—छाती का दूध एक दम न छुड़ाना चाहिए। ऐसा करने से माता व बच्चा—दोनों के स्वास्थ्य को हानि पहुँचेगी।

५—आवश्यकता से अधिक समय तक बच्चे को छातियों का दूध पिलाते रहने के कारण माता की अत्यधिक शक्ति व्यय होती है, उसके स्वास्थ्य को बड़ी हानि पहुँचती है तथा वह समय से पूर्व ही बूढ़ी और बड़ी उमर वाली दिखन लगती है, सौन्दर्य भी नष्ट हो जाता है, जबकि निश्चित समय तक दूध पिलाने वाली माताओं का सौन्दर्य, स्वास्थ्य आदि स्वाभाविक रूप से अच्छा रहता है।

६—साधारणत: १ वर्ष की उमर में बच्चे का दूध छुड़ाया जाता है किन्तु यदि माता का स्वास्थ्य एक दम खराब हो जावे या उसे क्षय, न्यूमोनिया आदि भयंकर रोग हो जावे, अथवा माता गर्भवती हो जावे तो बच्चे को तुरन्त छाती का दूध पिलाना बन्द कर देना चाहिए।

७—यदि माता का स्वास्थ्य ठीक हो तो नीचे लिखे कारणों के रहते १ वर्ष की उमर के बाद तक भी बच्चे को छाती का दूध पिलाते रहना आवश्यक है—गर्मी का मौसम होने से जबकि बच्चे की पाचन-शक्ति पर गर्मी का प्रभाव पड़ता है, बच्चे के तुरन्त ही किसी बीमारी से अच्छे होने पर जब तक वह पूर्ण स्वस्थ न होवे दूध न छुड़ावें तथा बच्चे के दाँत निकलने के समय जबकि उसका स्वास्थ्य स्वभावत: गिर जाता है।

८—जब ऊपर बताई सब अवस्थायें अनुकूल हों तथा छाती का दूध छुड़ाने का निश्चित समय आजावे तो धीरे-धीरे छाती का दूध छुड़ाना आरँभ कर दें। साथ ही थोड़ा-थोड़ा ऊपरी दूध देना आरम्भ कर देना चाहिए। इस प्रकार छाती के दूध की मात्रा कम करते जाना तथा ऊपरी दूध को अधिक करते रहना चाहिए। यदि इस परिवर्त्तन से बच्चे के स्वास्थ्य में किसी प्रकार की कमी न आवे तो फिर छाती का दूध पूर्णत: बन्द कर देना चाहिए।

९—जिन माताओं को आरँभ से ही छाती में काफी दूध न उतरता हो वे पहिले से ही अपने दूध के साथ-साथ थोड़ा थोड़ा ऊपरी दूध भी पिलाया करें। इस प्रकार मिला-जुला दूध पिलाने से छातियों को कुछ विश्राम मिलता है और माता के शरीर पर जोर पड़ना कम हो जाता है। बच्चा भी पनपता रहता है। किन्तु माता के दूध का मुकाबिला यह मिश्रित दूध नहीं कर सकता। एक वर्ष की आयु से पहले मिश्रित दूध पीने वाला बच्चा, छातियों का प्राकृतिक दूध पीनेवाले बच्चे जैसा पुष्ट व स्वस्थ नहीं हो सकता है।

कौन जीता ?

*

[ले०—श्री अजयसिंह भोगल, सी० पी०]

एक था जंगल बड़ा भयानक। उसका नाम 'पूमा' था। उसमें एक शेर रहता था। वह बड़ा ही ताक़तवर था। देखने में भी बहुत बड़ा मालूम होता। जँगल के सभी जानवर उससे डरते। इस तरह शेर की धाक जम गई थी। वह सभी को सताता और मस्त घूमता।

शेर से सभी जानवर हैरान थे। चुप रहने के सिवाय करते ही क्या? एक दिन की बात सुनो। सभी जानवरों और जन्तुओं ने एक सभा की। उसमें यह तह किया कि किसी-न-किसी तरह इस घमण्डी शेर को नीचा दिखाया जाय। बात तय हो गई; पर यह काम किसको सौंपा जाय? शेर की ताक़त और उसके डर से कोई आगे न आता।

जब यह महफ़िल लगी हुई थी, उसी समय एक मच्छर भिनभिनाता हुआ आन पहुँचा। उसने जब यह बात सुनी, तो बड़ा अचरज उसे हुआ। वह बोला—"आप लोग मत घबराइये, शेर को मैं नीचा दिखाऊँगा।" सब जीव-जन्तु और जानवर इस तरह मच्छर की तरफ देखने लगे, मानों उन्हें विश्वास ही न हुआ हो। मच्छर ने उन्हें विश्वास दिलाया और कहा—'आज दो पहर को वह शेर 'कूरा' नाले पर पानी पीने के लिए आयेगा।" आप लोग सब पास ही की झाड़ी में छिपे रहना। मैं उस समय, उसको नीचा दिखाऊँगा।

दो पहर के समय सारे जानवर 'कूरा' नाले के पास की झाड़ी में चुपचाप छिप गए। शेर अपने वक्त पर पानी पीने आया। मजे से पानी पिया और 'बड़' की छाया में पड़ रहा। सारे जानवर डर के मारे कांप रहे थे। सभी मच्छर की बहादुरी देखने के लिए बेक़रार हो रहे थे।

शेर बेख़ौफ़ सो रहा था। उसे इस बेफ़िक्री के साथ सोता देखकर यह मालूम होता कि वह सारे जँगल का राजा है। मच्छर इसी समय उड़कर शेर के पास पहुँचा। थोड़ी देर तक भिन-भिनाता रहा। फिर

फुदक के शेर के माथे पर जा बैठा। उस समय भी शेर मस्त सो रहा था। मच्छर ने उसे काट लिया। शेर इस पर मारे गुस्से के लाल हो गया। गुर्राकर बोला —"तेरी इतनी

हिम्मत? मालुम नहीं तुझे कि यहां पर 'पूमा' बन का राजा आराम कर रहा है?"

मच्छर झट बोला —"मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है? नाराज क्यों हो रहे हो?"

शेर गरज कर बोला —"मुझे काट भी खाया और ऊपर से यह मुँह जोरी!"

मच्छर—"काटना और भिन-भिनाना मेरी आदत है। उसके लिए मैं क्या करूँ?"

शेर—"छोटे मुँह और बड़ी बात? एक ही चांटे में अपना काम तमाम समझ।"

मच्छर—"ऐसा? देखूँ तुम मेरा क्या कर सकते हो?" (इतना कह कर मच्छर, जो अभी तक भिन-भिनाता हुआ उड़ रहा था, जा कर शेर की नाक पर बैठ गया) बोला— "तू जङ्गल का राजा है, मैं राजा का राजा हूँ, देखूँ, तुम क्या करते हो?"

शेर मारे गुस्से के काँपने लगा। ताकत से उसने एक पञ्जा मच्छर को मारने के लिए उठाया। इसके पेशतर कि पञ्जा मच्छर को लगे, मच्छर उड़ गया। और वह ताकत का पञ्जा शेर की नाक पर बुरी तरह पड़ा।

शेर का अपना पंजा शेर ही के नाक पर पड़ा। गुस्से और शर्म से वह गड़ गया। इसी समय झाड़ियों से सारे जंगली जानवर व पशु निकल आये। सभी ने एक साथ मिलकर कहा —"वाह, भाई मच्छर वाह! खूब छकाया इस घमण्डी को!" शेर मारे शर्म के वहां से भाग गया। सियारों ने 'हुआँ हुआँ' करके शेर से पूछा—"जीता कौन? शेर या मच्छर?"

("बाल" के सौजन्य से)

—०:०—

खाने का नियम

[रचयिता—श्री वीरेन्द्र जी]

मिला पेट बालक को भूखा।
सदा माँगता रहता टूका॥
समझ भूख के पास न होती।
कहती हरदम रोटी होती॥

हर दम खाता डंगर होता।
अपनी नरता को खो देता॥

फिर बालक को अक्कल आई।
खाने की फिर रीति बनाई॥
हर दम का फिर खाना छोड़ा।
जीभ लहक से फिर मुँह मोड़ा॥

चार समय का खाना माना।
और समय फिर लिया न दाना॥

रोक-थाम की शक्ती आई।
बाल सन्त ने मन बिठलाई॥
खाने में ईश्वर को पाया।
बाल-नियम वह बनकर आया॥

कर्म

रचयिता　इन्दुमतीजी

अन्धेरा था जग में छाया।
एक चमकती दीखी काया॥
कर्म देवता सूरज आया।
मालिक का सन्देशा लाया॥

सोते उसने आय जगाये।
सब के घर उसने खुलवाये॥
बिन बोले नर नार जगाये।
जगते उसने काम लगाये॥

कर्म-शक्ति मत रक्खो छानी।
यह सूरज के मन की बानी॥
इस को केवल पाते ज्ञानी।
ज्ञानी ने सूरज की मानी॥

समाज का भूकम्प

वेद भगवान ने कहा है कि "जो अकेला खाता है वह पाप खाता है।" इतना ही नहीं "पाप खाता है", तो भगवद्गीता ने भी कहा है। लेकिन वेद भगवान आगे बढ़कर कहता है कि "वह अपना वध प्राप्त करता है।" "मोघमन्नं विन्दते अप्रचेताः सत्यं ब्रवीमि बध इत्सितस्य।" क्या ऋषि भी कभी झूठ बोलता है? वह कहता है 'सत्यं ब्रवीमि'। सच कहता हूं कि 'वह अपना वध प्राप्त करता है'। यह नहीं कि "मृत्यु प्राप्त करता है।" मृत्यु और वध का फर्क समझ लेना चाहिए। वह वध कैसा सो भी वेद भगवान ने बता दिया है। गरीबों को सताकर जो शरीरश्रम से जान बचाते हैं वे भगवान को ही सताते हैं। फिर भगवान रुद्ररूप धारण करते हैं। रुद्र याने रुलानेवाला। बुभुक्षुमाण गरीब आदमी ही रुद्र है। गरीबों को कष्ट होते ही समाज में भूकम्प हो जाता है। उस भूकम्प के कारण समाज का नीचे का तला डगमगाने लगता है। तब ऊपर के मँजिल भी डगमग-डगमग डोलने लगते हैं। जो मँजिल जितनी ऊपर हो उतना ही उसे अधिक खतरा होता है। यूरोप में आज कल ऐसे ही भूकम्पों की तय्यारियां हो रही हैं। इस सँकट से समाज को बचाने का एक ही इलाज है और वह है समाज में पैठे हुए आलसरूपी महारोग का नाश करना। हर रोज शरीर परिश्रम करना चाहिये।

(सर्वोदय)

प्रीत-सिपाही की कठिनाइयाँ

मजहब का सिपाही होना बहुत मुश्किल नहीं, सिर कटा लेना भी बहुत मुश्किल नहीं, फांसी पर लटक जाना भी कठिन नहीं, पर ईर्षा न करना, क्रोध को अपने अन्दर जज्ब कर लेना, क्षमा कर सकना, किसी की प्रीत पीछे अपने जीवन भर की उमँगों को तर्क करना, अपने दुशमन को लाभ पहुँचाने के लिए तैयार हो जाना, दुनिया के सुख के लिए अपने तास्सुबों का लिहाज न करना, अपने विरोधियों के साथ इन्साफ कर सकना, सबसे आगे खड़े होने की योग्यता रखते हुए भी सबसे पीछे खड़े होना, याददाश्त पर अधिकार होते हुए भी बिलकुल भुलाया जाना स्वीकार करना, टूटे हुए दिल के टुकड़ों से साबत दिल का काम लेते रहना और किसी को पता न लगने देना, सारा जीवन बेइन्साफी के नीचे बीता देना लेकिन आत्मा के अन्दर कटुता न आने देना—ये अत्यन्त कठिन परीक्षाएँ हैं, जिनमें कोई कामिल सिपाही ही पूरा उतर सकता है।

इस सिपाही के स्वाद बड़े सादे और स्वच्छ होते हैं। इसका इखलाक पवित्र होता है क्योंकि इसके सारे वेग वश में रहते हैं। यह दूसरों की कमजोरियों को क्षमा-दृष्टि से देखता है, पर अपने आपको कभी माफ नहीं करता, न अपनी गलतियों के लिए माफी चाहता है। यह अपने हरेक अवगुण का दण्ड भुगतकर ही सँतुष्ट हो सकता है।

(प्रीतलड़ी—गुरुमुखी)

हमेशा याद रखिये !

—जो धीरे-धीरे नहीं बढ़ता उसे पीछे पड़ने का खतरा रहता है।

—किसी दस्तावेज पर सही करने से पहिले उस में लिखी बातों को भली भांति समझ लेना आवश्यक है।

—जिस बात से मित्र लज्जित होवे उसे मत करो।

—जो मनुष्य मानसिक व शारीरिक शिक्षा की उपेक्षा करता है, उसका मानसिक व शारीरिक विकास न होगा।

—छोटे से बीज से ही विशाल वट-वृक्ष पैदा होता है।

—हठपूर्वक मोहर्रमी शक्ल बनाये रखना, मूर्खता है।

—सूरत देखकर ही अपनी राय बना लेना भूल है।

—हरेक आदमी हरेक काम में हाथ नहीं डाल सकता।

—अस्तबल का ताला लगाने से पहले हमें भली भांति देख लेना चाहिए कि घोड़ा अन्दर है भी।

(ट्रिब्यून—अँग्रेजी)

आज की समाज रचना

मैं अपनी आज की समाज-रचना का नाश चाहता हूँ जो कि सबल और निर्बलता का बाड़ा पैदा करती है, अमीरी और ग़रीबी के भेदभाव को जन्म देती है, और जो मनुष्यों को श्रेष्ठ व तुच्छ बनाती है। इस प्रकार यह जाति-जाति का वर्गीकरण हम सबको सचमुच अभागे बनाता है।

बलात्कार, झूठ, आंसू, शोक, डर, दुःख, ग़रीबी, हरामखोरी और गुनहगारी की ईन्टों से बनी, रक्तपात के भयँकर स्वप्न के समान, आज की समाजतन्त्र की इमारत का नामो-निशान मिटाने की मुझे लगन है। इस समाज-तन्त्र की एक-एक यादगार का मैं नाश चाहता हूँ।

—रिचार्ड वाग्नर

जैसा सवाल वैसा जवाब

एक डचमैन जर्मनी में सफर कर रहा था। जब वह जर्मन ट्रेन के रेस्टोरांकार में खाना खा रहा था, तब एक वेटर हेल हिटलर कहते हुए उसके सामने आया। जर्मनी में यह नियम है कि जिससे हेल-हिटलर कहा जाय, वह भी उत्तर में हेल हिटलर कहे। पर उस डचमैन ने उत्तर में हेल हिटलर नहीं कहा। इस पर वह वेटर बहुत बिगड़ा और उस डचमैन से कहा कि जब-जब मैं तुमसे हेल-हिटलर कहूं, तब-तब तुम्हें हेल हिटलर कहना पड़ेगा।

यह सुनकर डचमैन ने कहा—हिटलर ? हालैण्ड में हिटलर को कोई कुछ नहीं समझता।

वेटर ने कहा—आज भले ही हिटलर को कोई कुछ न समझे, पर याद रखो, एक दिन हमारा हिटलर हालैण्ड में अपना आसन जमायेगा।

उस डचमैन ने मुस्कराते हुए कहा—सम्भव है, क्योंकि तुम्हारे कैसर पहले ही हमारे हालैण्ड में डेरा डाले हुए हैं। (विश्वमित्र)

बिना ज़मीन की खेती

कमरे के भीतर हौज में पानी भरा, उस पर कुछ बुरादा छिड़क दिया तथा रासायनिक मसाला पानी में डाला। बस आपका खेत तैयार हो गया। बीज डाल दीजिए, दो-तीन सप्ताह के अन्दर पौदे उग आयेंगे। इस कठौती की खेती को अमरीका वालों ने अपनाया है। इस तरीक़े पर तैयार किए गए टमाटर के पौधों की ऊँचाई २५ फ़ीट तक पहुँच चुकी है। (देशदूत)
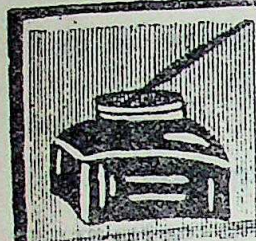
महात्माजी की महानता—

राजकोट के मामले में अपनी भूल को स्वीकार कर, अवार्ड 'निर्णय से होने वाले लाभों का परित्याग कर, अपने आमरणव्रत को पूर्णरूपेण अहिंसात्मक न मानकर, वायसराय को हस्तक्षेप करने के लिए लिखने को पाप का काम मान तथा दरबार वीरवाला के प्रति अपनी दुर्भावना स्वीकार कर, महात्माजी ने एक बार फिर इस बात को प्रमाणित कर दिया है कि वे कितने महान् हैं, सत्य और अहिंसा के कितने पक्के उपासक हैं। लीडर जैसे प्रतिक्रियावादी पत्र ने भी इस बात को स्वीकार किया है कि अपनी गलती की सार्वजनिक घोषणा करके महात्माजी ने जिस अद्वितीय नैतिक साहस का सबूत दिया है, उस की मिसाल ढूँढने पर भी इतिहास में न मिलेगी। अगर कोई अन्य नेता ऐसी घोषणा करता तो उसका नेता बने रहना कठिन ही नहीं बल्कि असम्भव था। यूरोप में तो ऐसे नेता को शायद किसी की गोली का ही शिकार बनना पड़ता। लेकिन महात्माजी के इस सत्साहस ने उनके जीवन में चार चाँद लगा दिए हैं। वे अपने देशवासियों की नज़रों में बहुत ऊँचे उठ गए हैं। वे साक्षात् सत्य के अवतार माने जाने लगे हैं। अगर हमारे सभी नेता महात्माजी की तरह सत्य और अहिंसा को मन, वचन और कर्म से अपना लें, तो हमारा देश एक क्षण में आज़ाद हो सकता है। लेकिन अफसोस तो यह है कि उन्होंने सत्य और अहिंसा के रहस्य को समझा ही नहीं है। उनकी वाणी और कर्म में कोई सामञ्जस्य नहीं है। कहते कुछ हैं और करते हैं उसके ठीक विपरीत। यही कारण है कि आज कांग्रेस में गंदगी ही गंदगी नज़र आ रही है, दलबंदी का बोलबाला है, पद-लोलुपता का बाज़ार गर्म है। एक दूसरे पर कीचड़ उछाल कर अपना उल्लू सीधा करना चाहता है—भोली भाली जनता की आँखों में धूल डालकर, लच्छेदार भाषण दे अपनी नेतागिरी को येन केन प्रकारेण बनाए रखना चाहता है। समय आ गया है कि देश के कर्णधार दलबंदी और नामवरी की दल-दल से निकल कर सत्य और अहिंसा के सिद्धांतों पर चलना सीखें।

स्कूलों में बेत की सज़ा—

यू० पी० सरकार के शिक्षा विभाग ने गतवर्ष एक सरक्यूलर द्वारा स्कूलों में बेत की सज़ा को बिलकुल उड़ा दिया था। पहले तो हेडमास्टरों को बेत की सज़ा देने की इजाज़त थी लेकिन उक्त आज्ञा द्वारा हेडमास्टरों से भी यह विशेषाधिकार छीन लिया गया। चाहिए तो यह था कि हेडमास्टर इस आज्ञा का स्वागत करते और इस पर अमल करके अन्य अध्यापकों के सामने एक उदाहरण पेश करते जिससे कि यह पाशविक प्रथा सदा के लिए स्कूलों से उठ जाती। लेकिन खेद के साथ कहना पड़ता है कि उन्होंने ऐसा नहीं किया। उक्त सरक्यूलर के निकलने के बाद भी बेत की सज़ा स्कूलों में पूर्ववत जारी है और हेडमास्टरों की ओर से यह कोशिश की जा रही है कि उनको बेत की सज़ा देने का अधिकार फिर से दिया जाना चाहिए। उनका कहना है कि बिना इस किस्म की सज़ा के वे स्कूलों में अनुशासन कायम नहीं रख सकते। अगर बेत के ज़रिये ही अनुशासन कायम रखा जा सकता तो फिर अन्य अध्यापकों को भी यह अधिकार क्यों नहीं होना चाहिए। हमारा तो दृढ़ विश्वास है कि योग्य हेडमास्टर बिना बेत के अपने स्कूल में अनुशासन कायम रख सकता है। अगर वह ऐसा नहीं कर सकता तो उसे यह मान लेना चाहिए कि वह

हेडमास्टर बनने के योग्य नहीं है। जब हम जेलों में भी इस निन्दनीय और घृणित सज़ा को नहीं चाहते तो स्कूलों में इसका बना रहना किस प्रकार सहन कर सकते हैं? नवीनतम खोजों, मनोविज्ञान वेत्ताओं और शिक्षा-विशेषज्ञों के अनुभवों ने यह सिद्ध कर दिया है कि सज़ा से बालक ठीक होने की बजाय बिगड़ता है। ऐसी हालत में इस सज़ा को कायम रखना बालकों के साथ घोर अन्याय करना है। हम कोई असम्भव बात नहीं कह रहे हैं। हमारे देश में भी ऐसी संस्थाएँ मौजूद हैं जिन में बालकों को किसी प्रकार का शारीरिक दण्ड नहीं दिया जाता। पाश्चात्य देशों ने इस दिशा में जो उन्नति की उसका तो कहना ही क्या है? वहाँ तो बालकों को मारना पीटना भारी अपराध समझा जाता है। हमें यह बात कभी नहीं भूलनी चाहिए कि जब तक हम अपने बालकों की बेकदरी करते रहेंगे, शारीरिक-दण्ड देकर उन को अपमानित करते रहेंगे, तब तक हमारे देश का उद्धार नहीं होगा।

सद्भावना-प्रसारक आन्दोलन—

धार्मिक, राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक, व्यावसायिक विचार-भेद के कारण आज देशों में हिन्दू मुसलिम, पूँजीपति मजूर, जमींदार-किसान, काँगरेसी-गैर काँगरेसी, वामपक्षीय-दक्षिणपक्षीय, प्रान्तीय-गैर प्रान्तीय, ज़रायत-पेशा गैर ज़रायत पेशा, शहरी-देहाती आदि का सङ्घर्ष चल रहा है—पारस्परिक दुर्भाव बढ़ रहे हैं। एक पक्ष वालों का दूसरे पक्ष वालों में विश्वास नहीं, सहानुभूति नहीं, कर्तव्यपालन की भावना नहीं। इन विभिन्न टुकड़ों में से लोगों का एक ही उद्देश्य रहता है—विपक्षी को नीचा दिखाने, बदनाम करने तथा उसकी हस्ती ही मिटा देने के लिए हर उचित-अनुचित साधनों से काम लेना। अतः आज का वायु-मण्डल झूठ, धोखा, षड्यन्त्र और सँशय से दूषित हो रहा है। विरोधी विचार रखने वाले के प्रति व्यवहार करते समय मानवता को भुलाकर जोर जुल्म, अमानुषिक अत्याचार, खूँरेज़ी, हत्या आदि द्वारा पाशविक-कृत्य किए जाते हैं, तब दयालुता, सहिष्णुता आदि गुणों का लोप हो जाता है। ऐसी भयङ्कर अवस्था में मानवता पनप नहीं सकती—कोई व्यक्ति सुखी रह नहीं सकता; जबकि एक पड़ौसी दूसरे के लिए खूँखार हिंसक पशु से भी भयानक, ज़हरी विषधर से भी घातक तथा बम—मशीनगन से भी अधिक संहारक बना हुआ है। इस बुराई को दूर करने के लिए थियोसोफिकल सङ्घ, पटना की ओर से प्रयत्न किया गया है। वहाँ सैयद अब्दुलअज़ीज के सभापतित्व में प्रमुख नागरिकों—हिन्दू, मुसलमानों; बिहारी, बङ्गालियों व प्रान्त के अन्य सभी विचार वालों की एक सार्वजनिक सभा पारस्परिक-प्रेम व सद्भावना स्थापित करने का आन्दोलन चलाने के लिए की गई। बिहार के प्रधानमन्त्री ने सभा का उद्घाटन करते हुए सद्भाव पैदा करने वाली ऐसी सँस्थाओं की सहायता करने की इच्छा प्रकट की। इस आन्दोलन को बड़ा ही लाभदायक व आवश्यक बताते हुए राष्ट्रपति बा० राजेन्द्रप्रसाद ने सन्देश दिया है कि "हम सबको यहीं रहना और मरना है। फिर जहाँ हममें स्नेह-पूर्ण भावना होनी चाहिए वहाँ पर द्वेषभाव क्यों?" पटने के थियोसोफिकल सङ्घ ने इस आँदोलन का श्रीगणेश करके देश के सामने एक सुन्दर मिसाल रखी है जिसका प्रत्येक प्रान्त के कोने २ में ऐसी सभाएँ स्थापित हो कर अनुकरण होना चाहिए।

दीपक के प्रकाश में—

देश-दर्शन—भूगोल विषय के सुप्रसिद्ध विद्वान् तथा हिन्दी में इस विषय के एक मात्र मासिक 'भूगोल' के यशस्वी सम्पादक पं० रामनारायण मिश्र ने 'देश-दर्शन' नाम से पुस्तकाकार सचित्र मासिक निकालने का आयोजन किया है जिसमें प्रतिमास संसार के किसी एक प्रदेश का दिग्दर्शन कराया जाया करेगा और उस देशका आकार, विस्तार बनावट; जलवायु-उपज; जानवर; आबादी व जातियां, कारोबार-व्यापार, शिक्षा, प्राचीन व आधुनिक शासनप्रणाली, रहन-सहन, भाषा, दर्शनीय स्थान, ग्राम जीवन, खेलकूद त्यौहार आदिका वर्णन होगा। इस मासिक के पहले अँक में लंका का उपरोक्त रूप में वर्णन किया गया है। वर्णन को सजीव बनाने के लिये तिरंगे व कई दर्जन सादे चित्र भी दिये गये हैं। छपाई मोटे अक्षरों में सुन्दर व आकर्षक है तथा कागज भी बढ़िया है। विद्यार्थियों के लिये बहुत ही उपयोगी चीज है। इसे पढ़ लेने के बाद उस देश का पूर्ण भौगोलिक ज्ञान हो जावेगा। वार्षिक मू० ४), एक प्रति का ।≈) तथा समस्त पुस्तकमाला का ५०) है। पता—भूगोल कार्यालय, इलाहाबाद।

रूस—लेखक श्री सुरेन्द्रनाथ दुबे विद्याभूषण बी० ए० प्रकाशक-रस्तोगी आदर्श, जयपुर सिटी मू० अजिल्द ।।।) । पृष्ठ संख्या-१२८ विद्वान लेखक एक ग्रन्थ-माला के रूप में संसार के उन्नत राष्ट्रों का परिचयात्मक वर्णन लिखना चाहते हैं। उस माला का यह प्रथम ग्रन्थ है जिसमें इस युग के समुन्नत राष्ट्र रूस की भौगोलिक, ऐतिहासिक, सामाजिक, धार्मिक राजनैतिक तथा व्यापारिक अवस्था का प्राचीन व मौजूदा समय का वर्णन किया गया है। रूस की राज्यक्रांति उसके बाद में वहांकी जनता की अद्भुत जागृति तथा साम्यवादी सिद्धान्तों का प्रचार आदि विषयों पर भी प्रकाश डाला गया है। रूस की समुन्नत आधुनिक दशा के परिचायक कई चित्र भी दिये गये हैं।

वाणी मन्दिर, छपरा की ४ पुस्तकें:—

१. प्रेमचंद की उपन्यास-कला—लेखक—जनार्दनप्रसाद झा 'द्विज' मूल्य १।)

उपन्यास केवल मन बहलाव का साधन नहीं अपितु इसमें सभी नीति, दर्शन शास्त्रों के सद्-उपदेश निहित रहते हैं। उपन्यास सम्राट स्व० प्रेमचन्द जी को हिन्दी साहित्य संसार में कितना ऊँचा स्थान प्राप्त है उसका ठीक २ पता इस पुस्तक के पढ़ने से लगता है। पुस्तक छोटी किन्तु सभी आवश्यक विषयों से पूर्ण है। भाषा सरस व मनोरञ्जक तथा भाव स्पष्ट हैं। अपने विषय में विद्वान लेखक ने प्रेमचन्द जी के अन्तस्तल तक पहुँचकर, उनकी मानव हृदय को छूनेवाली मनोवृतियों का दिग्दर्शन कराया है। अबतक के उपन्यास लेखकों की प्रेमचदजी से तुलना करके आपने उनके वस्तु-विन्यास, चरित्र-चित्रण, कथो-कथक, आदि उपन्यास कलाके विभिन्न अँगों का किस योग्यता से प्रतिपादन किया है। मानव-प्रकृति का गहरा ज्ञान मुहावरेदार भाषा तथा हंसी-हंसी में जीवन सम्बन्धी महान् उद्देश्यों को बतला देनेवाले उनके गुणों का भी विवेचन किया है। समालोचना शैली सराहनीय है 'अवश्य देखिये देखन योगू है। हिन्दी संसार को यह उत्तम रत्न सेवार्पितकर द्विजजी ने उसके साहित्य की वृद्धि की है। पुस्तक में कहीं २ वाक्य-विन्यास की असंगतता है और कुछ छोटी मोटी व्याकरण की अशुद्धियां भी रहगई है जो स्वाभाविक हैं।

— रामलग्न त्रिपाठी

२. जान हथेली पर—लेखक—श्री रामवृक्ष बेनीपुरी पृष्ठ संख्या १२२, मू० ।।।) । प्रस्तुत पुस्तक में विदेशों के ऐसे ७८ वीरों की कहानियां हैं जिन्हों ने जान हथेली पर रखकर वीरता पूर्ण कार्य किये और 'जान हथेली पर' की कहावत को चरितार्थ किया है। इन कहानियों के नायक छोटे २ बालक-बालिकायें, युवक-युवतियों से लेकर बूढ़े तक भी हैं जिन्होंने अपनी वीरता के अद्भुत कारनामे दिखाये हैं। बच्चों के हाथ में ऐसे पराक्रमी वीरों की जिंदादिली की कहानियां जितनी अधिक दी जावेंगी हमारी भावी सन्तान उतनी ही निर्भीक साहसी और पराक्रमी होगी। इस चीज की देश को अत्यन्त आवश्यकता है। कहानियाँ छोटी' सरल तथा इतनी मनोरञ्जक और रसपूर्ण हैं कि एक बार पढना शुरु करने पर बिना समाप्त किये छोड़ने को जी नहीं चाहता।

२. तलवार की धारपर—लेखक श्री चन्द्रभाग्य शर्मा पृष्ठ संख्या ६७ मूल्य ।।) ; किसी भी देश में सामाजिक राजनैतिक क्रांति पैदा करने के लिये किसी विशेष प्रतिभासम्पन्न व्यक्ति की आवश्यकता होती है। इस पुस्तक में भी इस प्रकार के छः प्रमुख क्रांतिकारियों का जीवन परिचय है जिन्हों ने देश की स्वतन्त्रता के लिये अपना जीवन तलवार की धार पर वार दिया। पराधीनता के विरुद्ध जीवन रहते लड़कर शहीद हुए वीरों की रोमांचकारी घटनाओं से ओत प्रोत हैं। ऐसी कहानियां पढने से बालकों में भी देश की आजादी के लिये मर मिटने की हविस पैदा हुए बिना न रहेगी। हर बाल पुस्तकालय में ऐसी पुस्तकों का होना जरूरी है।

४. फुटबाल की नियमावली—लेखक श्री जंगबहादुरसिंह, नेपाली, पृष्ठ संख्या १८ मूल्य=) ; प्रस्तुत पुस्तक में फुटबाल खेलने के नियम तथा उसकी उपयोगिता पर प्रकाश डाला गया है। अँगरेजी में तो ऐसी बहुत सी पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं हिन्दी में इस विषय की यह सर्वप्रथम पुस्तक है। इसके पढने से बहुत सी जरूरी बातों का ज्ञान हो जायेगा। पुस्तक खिलाड़ी को शिक्षक का काम देती है।

बालक (द्विवेदी-स्मृति-अंक)—श्री आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के निधन पर हिन्दी के अनेक पत्रों व पत्रिकाओं ने अपने विशेषांक निकाल कर उनके प्रति श्रद्धांजलि अर्पित की है। 'बालक' के इस विशेषांक में भी दो दर्जन से अधिक गद्य-पद्यमय लेखों द्वारा द्विवेदी जी के विभिन्न गुणोंपर प्रकाश डाला गया है। लोकमत की लहर शीर्षक से द्विवेदी जी की महत्ता, सहृदयता, वत्सलता मितव्यता, सदाचार, अतिथिसत्कार, पाण्डित्य आदिका आलौकिक गुणोंका अन्य सम्पर्क में आने वाले साहित्यक पुजारियों ने जो वर्णन किया हैं वह हृदय ग्राही है। द्विवेदी जी का इन स्मृतियों से हम अपने जीवन को ऊँचा उठाने के लिये बहुत कुछ सीख सकते है। पुस्तक-भण्डार लहेरिया सराय से प्रकाशित होनेवाले इस पत्र का वार्षिक मू० ३) है।

भारतीय रसायन शास्त्र—सँग्रहकर्त्ता व प्रकाशक—पँ० विश्वेश्वर दयालु जी वैद्यराज, बरालोकपुर, इटावा (यू०पी०) पृष्ठ सँ० ७१, मू० ।।) प्रस्तुत पुस्तक को विज्ञ लेखक ने लिखकर अथवा नाना तन्त्रों से सँग्रह कर सँस्कृत के विद्वानों का ध्यान तो अवश्य आकृष्ट किया है। परन्तु सर्व-साधारण अथवा निम्नश्रेणी के वैद्यगण तथा विद्यार्थियों को चाहिए—उतना लाभ नहीं मिल सकेगा। अस्तु यदि लेखक महोदय अनुवाद तथा टीका-टिप्पणी सहित इस अनुपम ग्रन्थ को प्रकाशित करते तो निस्सन्देह हार्दिक धन्यवाद के पात्र हो सकते थे।

—अनन्त शर्मा वैद्य, आयुर्वेद-विशारद

सदाचारी बालक—लेखक रामसुभग पाठक "विशारद" प्रकाशक -हिन्दी-साहित्य सदन जहानाबाद (गया) पृष्ठ ९६ मूल्य ।॥) आधुनिक स्कूलों तथा कालिजों में शिक्षा रूपी खेले जाने वाले नाटकों का हुबहू नकशा इस पुस्तक में खींचा गया है। शिक्षा तथा सुधार सम्बन्धी सुझाव न होते हुए भी इससे पाठक अपने स्कूल में नित्य खेले जाने वाले चित्र-पट का मिलान करके शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं । मूल्य कुछ अधिक है ।

सुदर्शन—एटा से प्रकाशित होने वाले साप्ताहिक पत्र के 'ग्रामसुधार अँक' में ५६ पृष्ठों की ग्रामीणों—किसानों के लिये उपयोगी सामग्री का संकलन किया गया है । देहातियों की सभी प्रमुख समस्याओं को सामने रखते हुए उनमें सुधार करने, नवचेतना पैदा करने के विषय पर कई महत्व पूर्ण तथा मनन शील लेख हैं । कवितायें भी सुन्दर फड़कती हुई हैं। अनेकों चित्र, कार्टून तथा कहानियाँ देकर अँक को काफी आकर्षक व मनोरञ्जक बनादिया गया है। ग्रामसुधार सम्बन्धी सुन्दर सामग्री एकत्रित करने का प्रशंसनीय प्रयत्न किया गया है । इस अँक के सम्पादक हैं—प्रो० शंकरसहाय सक्सेना M. A. M. Com तथा कामता प्रसाद जैन, M. R. A. S.

कमला—हिन्दी के सुप्रसिद्ध पत्रकार श्रीबाबू रावविष्णु पराड़कर के सम्पादकत्व में यह हिन्दी की मासिक पत्रिका भारतीय स्त्री समाज में फैले अनेकों कुसँस्कारों को दूर कर, भारतीय आदर्श तथा परम्परा को स्थापित करना है। अतः इस में आदर्श माता, पति, बहन व कन्या बनाने के लिये उपयुक्त सामग्री का संग्रह है। इसके अलावा गृहस्थी सम्बन्धी भोजन, फल-फूल, शाक-सब्जी की जानकारी, पहेलियाँ, चुटकले, ज्ञानवर्द्धक सामग्री का भी संग्रह है। सम्पादकीय टिप्पणियों द्वारा महिला समाज की मौजूदा प्रमुख समस्याओं की योग्यता पूर्ण विवेचना की जाती है । महीने भरके चुनेहुए समाचार भी दिये जाते हैं । पृष्ठ संख्या १८४. कागज, छपाई व ढया अनेकों चित्र वार्षिक मूल्य ५), एक प्रति का ॥), प्रकाशक—भार्गव-पुस्तकालय काशी ।

साहित्य-सन्देश (द्विवेदी-अँक)—स्वर्गीय आचार्य द्विवेदी जी के निधनपर हिन्दी के अनेकों पत्रों ने उनकी स्मृति में 'द्विवेदी अँक' निकालकर द्विवेदी जी के जीवन, आदर्श तथा साहित्य सेवा पर प्रकाश डाला है किन्तु 'साहित्य-संदेश' के इस अँक में मुख्यतः उनकी साहित्यक-प्रतिभा का विवेचन किया गया है। एक दर्जन से अधिक उच्च कोटि के साहित्य ममज्ञों ने द्विवेदी जी की विविध साहित्यिक प्रवृत्तियों की विवेचना की है । साहित्यिक दृष्टि से इस अँक में दी गई सामग्री महत्वपूर्ण है । मिलने का पता—साहित्य-सन्देश, कार्यालय, आगरा ।

कान्यकुब्ज—श्री कान्यकुब्ज प्रतिनिधि-सभा के इस मासिक मुखपत्र का मध्य प्रान्तीय सम्मेलन-अङ्क समालोचनार्थ प्रस्तुत है। इस अङ्क में अधिकांश सामग्री उक्त सम्मेलन, उसके साथ हुए महिला-सम्मेलन नागपुर की कार्यवाही तथा कान्यकुब्ज सभा सम्बन्धी अन्य आवश्यक सामग्री यथा उनमें फैली हुई कुरीतियां, अन्धविश्वास, आदि तथा अनेकों कार्यकर्त्ताओं के चित्र हैं । समाजसुधार सम्बन्धी कई लेख, निबन्ध, कहानी, प्रहसन, कविताएँ आदि भी हैं। पत्र का वार्षिक मूल्य २), इस अङ्क का १), पृष्ठ सँख्या, १५६ कागज बहुत बढ़िया व छपाई बहुरङ्गी है। पता—मैनेजर 'कान्यकुब्ज', हुसैनगञ्ज, लखनऊ ।

संसार-चक्र

—पंजाब के प्रधानमन्त्री ने प्रांत के सभी पत्रों को चेतावनी दी है कि २९ मई के बाद में हैदराबाद सत्याग्रह के सम्बन्ध में अपने पत्र में किसी भी बात का उल्लेख न करें क्योंकि इससे प्रांत में साम्प्रदायिक तनातनी बढ़ने का खतरा है।

—२४ मई को लाहौर में हिमालय के तपोधन अवधूत केशवानन्द जी द्वारा स० ध० प्रतिनिधि भवन की आधारशिला रखी गई। यह भवन १ लाख रु० में बनेगा।

—लाहौर जिले के किसान सत्याग्रह को अब प्रांतीय किसान सत्याग्रह बना दिया गया है और प्रांत भर से किसान जत्थे इसके लिए आ रहे हैं। ४ जून को प्रांतभर में कांगरेस की ओर से 'किसान-मार्चा-दिवस' मनाया जावेगा।

—बम्बई में मद्य-निषेध कानून लागू होने से बम्बई के गवनर सर आर० लुमली ने अगस्त से गवर्नमेंट हाऊस में किसी उत्सव या भोज में शराब न बरतन का निश्चय किया है।

—यू०पी० असेम्बली में प्राणदण्ड उठाने का प्रस्ताव पास होगया है।

—बिहार सरकार ने पुलिस वर्दी के लिए ५०८०) रु० का ७० हजार गज खादी का आडर दिया है।

—बिहार के फुलवाड़ी शरीफ में १० लाख रु० की लागत से साइकिल बनाने का एक कारखाना खुलेगा जिस में प्रतिदिन ४०० साइकलें तैयार होंगी।

—बङ्गाल प्रांत में सन १९३८ में ३९३१ आत्म-हत्या हुईं।

—उड़ीसा सरकार ने निरक्षरता-निवारण के लिए ६ वर्षीय योजना बनाकर इस अर्से में ९४ शिक्षित करने का प्रबन्ध किया है।

—सीमांत के प्रीमियर डा० खान साहिब के पुत्र को माल महकमे के अफसर के काम में बाधा डालने के कारण २२ मई को गिरफ्तार कर लिया गया।

—बङ्गाल कौंसिल में पेश 'कलकत्ता म्युनिसिपल बोर्ड सँशोधन' बिल के कारण मन्त्रिमण्डल में संकट उपस्थित होने की सम्भावना है क्योंकि हिन्दू-हितों के लिए घातक समझते हुए हिन्दू-मन्त्री बिल का तीव्र विरोध कर रहे हैं।

—केन्द्रीय असेम्बली का गर्मी का अधिवेशन इस वर्ष शिमला में नहीं होगा।

—अ० भा० हिं० सा० सम्मेलन दशहरा पर काशी में हो रहा है।

—कांगरेस का ५३ वां अधिवेशन बिहार के छोटा नागपुर डिवीजन की रामगढ़ स्टेट में होगा।

—कलकत्ता में २९-३० अप्रेल को हुई अ० भा० कां० कमेटी में सुभाष बाबू ने राष्ट्रपति पद से स्तीफा दे दिया फलतः बा० राजेन्द्र प्रसाद नये राष्ट्रपति चुने गये। सुभाष बाबू ने उग्रदल वालों की 'फार्वर्ड-ब्लाक' नाम से नई पार्टी बनाई है किन्तु पं०जवाहर-लाल नेहरू व समाजवादी इस पार्टी में शामिल नहीं हुए हैं।

—राजकोट के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण वक्तव्य देते हुए म० गांधी ने अपने उपवास को हिंसा युक्त तथा वायसराय को हस्तक्षेप के लिये लिखने को पाप का काम बताते हुए ग्वायर निर्णय का परित्याग कर दिया है और प्रजा परिषद् से ठाः साहब द्वारा बनाई शासन कमेटी को स्वीकार करने व उसमें सहयोग देने की सलाह दी है। राज्य की ओर से सब आर्डिनन्स व अन्य पाबन्दियों के हटाने, कैदियों की रिहाई, जुरमानों व जब्तीयों की वापसी आदि की घोषणा हो गई है।

—:०:—
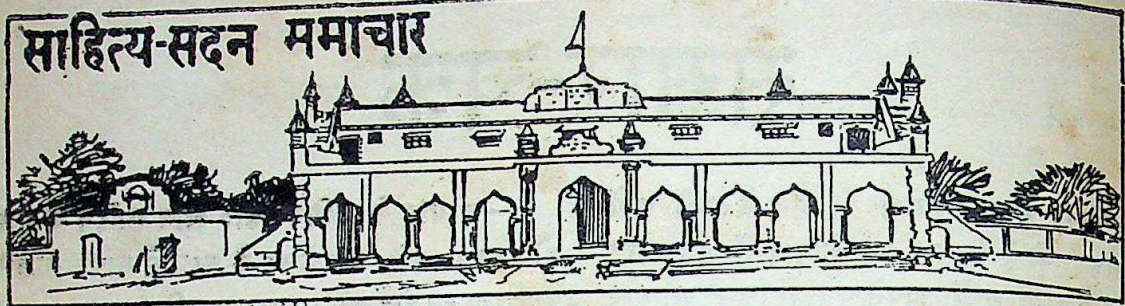
[कार्य-विवरण मास फरवरी से अप्रेल १९३९ तक]

इन महीनों में ८३५ पुस्तकें जनता द्वारा पढ़ी गईं। प्रतिमास १२० पत्र-पत्रिकायें क्रमशः आती रहीं जिनमें हिंदी, अंगरेजी, गुरमुखी और गुजराती आदि के ७१ मासिकपत्र, २५ हिंदी साप्ताहिक, ५ गुरमुखी साप्ताहिक, ७ उर्दू साप्ताहिक, २ अंगरेजी साप्ताहिक, २ उर्दू दैनिक २ हिंदी दैनिक तथा १ अंगरेजी दैनिक आते रहे हैं।

नई पुस्तकें (खरीदी गईं)

1. The Problem Child Price 3-8 0
2. The Problem Parents 3-8-0
३. अरविन्द और उनका योग ॥)

दान में प्राप्त

भगवद्दत्त वैदिक रिसर्च इन्स्टीट्यूट माडल-टाउन लाहौर द्वारा प्राप्तः—

"वैदिक वाङ्मय इतिहास प्रथम भाग" मू० २)

श्री जवाहरलाल जी टांटिया द्वारा प्रदत्त—

१. सूर्य किरण चिकित्सा २)
२. ध्यान से आत्म चिकित्सा ॥)
३. प्राकृतिक आरोग्य विज्ञान ।)
४. रसोद्धार तन्त्र (गुजराती) ३)
५. वैदिक रससार ॥)

संग्रहालय

साहित्य-सदन के वाचनालय (Reading-Room) में ९) मूल्य के प्राकृतिक दृश्यों सम्बन्धी चार चित्र—शीशे में जड़कर लगाये गये हैं।

चलता-पुस्तकालय-मन्दिर

साहित्य सदन के चलता पुस्तकालय में लगभग २ हजार पुस्तकें हैं। इनके रखने के लिये कोई निश्चित स्थान न होने से चलता पुस्तकालय-मन्दिर बनाया जारहा है जिसका आकार १५ × २० फीट होगा। इसमें ऊपर गैलरी (टाण्ड) बनाकर चलता पुस्तकालय की पुस्तकों की अलमारियां बनेंगी। नीचे, समय समय पर साहित्य सदन में आकर ठहरने वाले ग्रामीणों के लिये विश्रामकरने का प्रबन्ध होगा। गैलरी के जंगलों व कमरे की दीवारों पर विविध प्रकार की ज्ञान बढ़ाने वाली सामग्री से पूर्ण नक्शे; चित्र, आँकड़े सूत्र आदि लगाये जावेंगे ग्रामीणों की सहायता से ही यह काम हो सकेगा। इसके लिये एक कमेटी बनादी गई है जिसने धन-संग्रह करना शुरूकर दिया है।

दीपक प्रेस, साहित्य सदन, अबोहर को नीचे लिखी सहायता प्राप्त हुई है। जिन सज्जनों ने स्वयं सहायता दी तथा जिन्होंने यत्न कर के दूसरों से दिलाई, उन सब के हम कृतज्ञ हैं:—

धर्मवीर जी डिप्टी-कलैक्टर, खानेवाल द्वारा प्राप्त:—

[illegible]) Pt. S. N. Ravi Kant S. D. O, Canals, P. O. Lunda (लूंडा)

[illegible]) ला॰ यशवन्तराय जी जिलेदार, नहर P. O. तुलम्बा (जि॰ मुलतान)।

[illegible])

ला॰ दीवानचन्द जी जुलका द्वारा प्राप्त:—

[illegible]) बा॰ दीवानचन्द, जी जुलका एजेन्ट इम्पीरीयल बैंक आफ इण्डिया, कसूर

[illegible]) सेठ राधाकृष्ण जी शारदा कसूर

[illegible]) मुहम्मद अमीन, मुहम्मदसरदार, मुहम्मद शरीफ कसूर

[illegible]) ला॰ शङ्करदास गणपतराम कसूर

५) ला॰ गुरादित्तामल हरदयाल कसूर

५) ऊधमसिंह गुलाममुहम्मद, कसूर

५) सेठ लक्ष्मी चन्द मोहनलाल, लक्ष्मी चन्द मेघराज कसूर

६७)

श्रीराम जी अग्रवाल द्वारा प्राप्त:—

१५) सतलुज काटन मिल्ज लि॰, उकाड़ा।

११) श्री॰ ला॰ बिशनस्वरूप रामनाथ, उकाड़ा मण्डी

११) „ सेठ शिवनारायण किशननारायण मौंटगोमरी।

११) श्रीराम जी अग्रवाल, बिड़ला काटन फैक्टरी लि॰ उकाड़ा।

४८)

१००) श्री अलखप्रकाश जी वाट-किन्समायर एण्ड कम्पनी, जालन्धर शहर

५०) मुकुन्द एरन एण्ड स्टील वर्क्स लि॰ बदामी बाग, लाहौर।

५०) सेठ भगवानलाल पुरुषोत्तम अबोहर।

२५) ला॰ दौलतराय हँसराज अबोहर।

—०:०—

Regd. No. L. 3700

अनमोल बोल

दूसरों की बनाई हुई जंजीरों को तो आदमी तोड़ सकता है, मगर खुद अपने हाथों से तैयार की हुई जंजीर को कौन तोड़ सके ।

—थोरो

* * *

वास्तविक सुख दूसरों के दुःख दूर करने में है ।

—गोविन्दवल्लभ पंत

* * *

अगर आपने अपने दिमाग़ का ज़रासा भी कोना एक क्षण के लिए खाली रखा कि दूसरे लोगों के मत, विचार और उपदेश चारों तरफ से उसमें प्रवेश पायेंगे और आपके दिमाग़ की स्वाभाविक सतह में खलल पैदा कर देंगे ।

—बर्नार्डशा

* * *

इस विश्व की हर चीज़ है तसवीरे-यार ।
जब ज़रा गर्दन उठाई देखली ॥

—कृष्णाजसराय

* * *

वह मनुष्य जिसका जिस्म सुडौल है, जो अच्छा दिल और मेदा रखता है, जिसके बाज़ू मज़बूत और दिमाग़ खुला हुआ है, ज्यादा अमीर है । मज़बूत हड्डियाँ सोने से ज्यादा, अच्छे पट्ठे चांदी से बढ़कर और अच्छी आँतें महल और ज़मीनों से ज्यादा कीमती होती हैं ।

—इमर्सन

मुद्रक एवं प्रकाशक---श्री कुलभूषण द्वारा, 'दीपक प्रेस' साहित्य सदन, अबोहर से प्रकाशित ।

दीपक—वर्ष ३, संख्या ६, जुलाई १९३८ ई०

'दीपक' के नियम

१—'दीपक' हर अंग्रेज़ी महीने के पहले सप्ताह में प्रकाशित होता है।

२—'दीपक' का वार्षिक मूल्य डाक व्यय व विशेषांक सहित केवल २।।) है। एक प्रति ४ आने, विदेश से ४)।

३—'दीपक' में प्रकाशनार्थ लिखे जाने वाले लेख अधूरे न हों, पृष्ठ के एक ओर ही संशोधन के लिये इधर उधर जगह छोड़ कर सफाई से लिखे हों, विस्तार में चार पृष्ठ से अधिक न हों। भाषा उनकी सरल व शैली रोचक हो जिससे साधारण योग्यता वाले व्यक्ति भी जिनके हितार्थ 'दीपक' प्रकाशित हुआ है, उन्हें पढ़ व समझ सकें।

४—'दीपक' का मुख्य उद्देश **ग्राम-सुधार, समाज-उत्थान, शिक्षा व राष्ट्र-भाषा-प्रचार** द्वारा जनता-जनार्दनमें जीवन-जागृति पैदा करना है। अतः धार्मिक ईर्ष्या, साम्प्रदायिक विद्वेष पूर्ण उपरोक्त उद्देश्य के विपरीत कोई लेख न छप सकेगा।

५—लेख घटाने-बढ़ाने, संशोधन करने तथा प्रकाशित करने या न करने का अधिकार संपादक को होगा।

६—'दीपक' के ग्राहकों को पत्र-व्यवहार करते समय अपना पूरा पता और ग्राहक नम्बर साफ अक्षरों में लिखना चाहिये, अन्यथा जवाब देर से मिलेगा। ३ मास से कम समयके लिये पता बदलवाने के लिये डाकखानेसे प्रबंध करें।

७—अस्वीकृत लेख डाक खर्च भेजने पर ही लौटाये जा सकेंगे अन्यथा नहीं।

८—जिन सज्जनों को किसी मास का 'दीपक' न मिले उन्हें पहले अपने डाकघर से पूछ ताछ करके बाद में हमारे पास लिखना चाहिये।

९—लेख, कविता, समालोचना के लिये पुस्तकें और बदले के पत्र' सम्पादक, 'दीपक' साहित्य सदन, अबोहर के पते से और मूल्य तथा प्रबन्ध विषयक पत्र मैनेजर, 'दीपक' के पते से भेजने चाहिएं।

स्तंभ—सूची

१ ज्ञान-चर्चा
२ पुस्तकालय
३ शिक्षा-दीक्षा
४ राष्ट्र-भाषा
५ हमारे गाँव
६ देहाती-साहित्य
७ खेती-बाड़ी
८ उद्योग-धंधे
९ पशु-पालन
१० स्वास्थ्य-साधना
११ हमारा आहार
१२ महिला-मंडल
१३ बाल-मंदिर
१४ प्रकृति और विज्ञान
१५ सामयिक चर्चा
१६ फुलवाड़ी
१७ सम्पादकीय नोट
१८ संसार-चक्र

कृपालु लेखक-लेखिकाओं से नम्र निवेदन है कि वे 'दीपक' के लिये कुछ लिखने से पहिले एक बार हमारे स्तंभों की सूची देख लें। इन स्तंभों के अतिरिक्त भाव-पूर्ण किन्तु सात्विक कविता और कहानियों के लिये भी 'दीपक' के कुछ पृष्ठ 'रिज़र्व' हैं। सरल भाषा में लिखे गये व्यवहारिक लेख 'दीपक' के श्रद्धापात्र होंगे।

—सम्पादक

Approved for use in schools in U. P., C. P., Bihar, Jodhpur and Kotah States.

सत्यम् :: शिवम् :: सुन्दरम्

सम्पादक—तेगराम

आषाढ़ १९९५ | वर्ष ३, संख्या ९
 पूर्ण संख्या ३३ | जुलाई १९३८

दीपक ज्योति

[श्री हजारीलाल जैन 'विनीत', जैन गुरुकुल. गुजरांवाला]

आओ ! दीपक ज्योति जगावें ।
सुन्दर, कांतिमयी इस की लौ घर में करती उजियाला,
नन्हें बालक प्रसन्न करता है ऐसी कांतिवाला ।
ले दीपक को अपने कर में दीपक राग सुनावें,
शीघ्र दीप जगमगा उठें हम परवाने बन मिट जावें ।
दिव्य कांति से इसकी भारत क्या जग में हो उजियाला,
हृदय-कमल खिल उठें प्रेम से पहना स्वतन्त्रता-माला ।
भाई ! दीपक ज्योति जगावें ।

विचार-माला

[लेखक—श्री रामावतार जी विद्या भास्कर, रतनगढ़, (बिजनौर)]

(१) वर्तमान का सदुपयोग और भविष्य चिन्ता—

मनुष्य को अपनी सम्पूर्ण शक्ति वर्तमान के काम में लगानी चाहिए। उसे आगे क्या करना है ? इस चिन्ता में पड़कर वर्तमान को न बिगाड़ना चाहिए। जो मनुष्य वर्तमान के काम को मन लगाकर करता है उसका जीवन सुन्दर और सफल हो जाता है। वर्तमान को बिगड़ने देना आलस्य है। आलस्य मनुष्य का सर्वनाश कर देता है। जीवन को विफल बनाने वाले को दुःख भोगना पड़ता है।

जो वर्तमान से लाभ नहीं उठाता वही अगली चिन्ता किया करता है। वह वर्तमान को खोता रहता है। परन्तु विवेकी मनुष्य का कर्मक्षेत्र केवल वर्तमान होता है। वह अपने आपको वर्तमान कर्त्तव्य के लिए सौंप देता है, वह शक्ति को फिर के लिए बचाकर नहीं रखता, वह भावी परिणाम को नहीं देखता, वह वर्तमान कर्त्तव्य को उचित रीति से करने को ही अपनी सफलता मानता है।

मूर्खों का कर्मक्षेत्र सदा भविष्यत् रहता है। वह वर्तमान को बर्बाद करता और भविष्यत् को ताकता रहता है। वह जुआरी के समान आकस्मिक लाभ की प्रतीक्षा करता रहता है। जिनमें वर्तमान से लाभ उठाने की योग्यता नहीं होती वे ही भविष्य चिन्ता में वर्तमान को खोया करते हैं और अनेक प्रकार के मनोरथ घड़ते रहते हैं। जो मनुष्य भूत-भावी की और न देखकर केवल वर्तमान पर दृष्टि रखते हैं उन्हें मनोरथ के महल या नये-नये कार्यक्रम बनाने का अवकाश कभी नहीं मिलता। वर्तमान का सदुपयोग भूतभावी की निरर्थक चिन्ता को खाता रहता है।

वर्तमान क्षणभर का है। सम्पूर्ण महा-काल मनुष्य के अधिकार में कभी नहीं आता। एक एक क्षण उसमें से टूट टूट कर मनुष्य के पास आता रहता है। प्रत्येक क्षण अपने साथ कोई न कोई कर्त्तव्य लेकर आता है। यदि मनुष्य इस कर्त्तव्य का पालन करे तो उसका वह क्षण सफल हो जाय अर्थात् उसका वर्तमान जीवन धन्य हो जाय।

जिसका वर्तमान जीवन धन्य है निश्चय जानो कि वह आत्मदर्शन या ईश्वर भजन कर रहा है। जो मनुष्य अपने वर्तमान क्षण को धन्य कर रहा है वही जीवन मुक्त है वही ब्रह्मदर्शी और वह साक्षात् ब्रह्म है। भविष्य की चिन्ता करना पतितपना है, नास्तिकता है और मूर्खता है।

(२) भजन और ध्यान—

जीवन के प्रत्येक क्षण अपनी निर्विकार दशा का स्मरण तथा मनन करते रहना ही भजन या ध्यान कहाता है! मन के निर्विकार होने से पवित्र जीवन प्राप्त होता है। भजन और ध्यान पवित्र जीवनचर्या से पृथक् वस्तु नहीं है। सुधरी हुई जीवनचर्या ही भजन और ध्यान है।

स्वार्थी मनुष्यसमाज ने जब अपवित्र जीवनचर्या बिताने में अपनी भौतिक हानि देखी तब उसने अपनी जीवनचर्या में से भजन और ध्यान का बहिष्कार कर दिया और उसे किन्हीं एकान्त स्थानों में प्रातः-सायं घड़ी दो घड़ी कुछ शब्दों के पाठ करने का रूप दे डाला।

भजन और ध्यान जीवन व्यवहार से पृथक् करने की बात है इस भ्रान्त धारणा ने मनुष्य जाति को सुधार की ओर से उदासीन बना डाला है और उसकी बड़ी हानि की है।

ऐसे लोगों ने भजन को भी भोग बढ़ाने या ईश्वर के दरबार से भोग मांगने का साधन बना लिया है। जो मनुष्य भोग की इच्छा रखकर भगवान् को भजता है वह भगवान् नाम से शैतान का भजन करता है। यह भजन नहीं यह विषयों की भीख माँगना है।

(३) भगवान्—

वीरों, सन्तों या ईश्वर भक्त लोगों का वीर हृदय ही भगवान् है। जिन लोगों ने भगवान् के दर्शन किये थे उनके मन पवित्र थे। इससे यह अभिप्राय निकला कि उन लोगों के पवित्र हृदयों को ही लोगों ने भगवान् कहना प्रारम्भ कर दिया।

सचमुच भगवान् नाम का कोई भी भौतिक शरीर संसार में नहीं है और भगवान् मनुष्य से पृथक् कोई सत्ता नहीं है। भगवान् ही मनुष्यत्व का आनन्द लूटने के लिए अर्थात् कर्त्तव्य पालन का संतोष भोगने के लिए अनन्त मनुष्यों के रूप में प्रकट हुआ है। ज्ञानी मनुष्यों ने इस अभिप्राय को समझ लिया है कि पवित्र हृदय ही भगवान है। भक्त हृदय और भगवान् हृदय ये दो हृदय संसार में नहीं हैं। मनुष्य समाज ने ज्ञानी लोगों के पवित्र हृदयों को इसलिए 'भगवान के हृदय' नाम से सम्मानित किया था कि इससे मनुष्य समाज पवित्रता के लिए उत्साहित होता रहेगा।

ज्ञानी पुरुष इस बात को जानता है कि मैं पवित्रता का अवतार हूँ। यह मेरा समझा हुआ शरीर पवित्रता का आनन्द लूटने के लिए ही उत्पन्न हुआ है। पवित्रता ही मेरे शरीर के रूप में प्रकट हुई। यह शरीर मेरा नहीं है, पवित्रता ही इस शरीर की स्वामिनी है। ऐसे विचार रखने वाला ज्ञानी अपने हृदय को अपना कहने को उद्यत नहीं है, इसलिए ज्ञानी के निर्विकार हृदय को भागवत हृदय कहा जाता है। जो अज्ञानी अपने हृदय को अपना कहने के लिए उद्यत है उसे मनुष्य-हृदय कहा जाता है।

तात्पर्य यही है कि ज्ञानी लोगों का सांसारिक प्रभाव से रहित हृदय ही भगवान् नाम से सम्मानित किया जाता है।

(४) भक्त—

जो मनुष्य अपनी मनुष्यता का आनन्द भोगने में तल्लीन है वही 'भक्त' है। भक्त वह है जो इस भौतिक देह में आसक्त नहीं, किन्तु सदा अपने पवित्र चिन्मय देह की रक्षा करने में लगा रहता है। जो अपने भौतिक देह को अपने चिन्मय देह की सेवा में सौंपे रहता है वही 'भक्त' कहाता है। जो अपनी पवित्रता की रक्षा करता रहता है वही 'भक्त' है। जो पवित्रता को ही अपना शरीर मानता है वह 'भक्त' है। भक्त वह है जो अपने जीवन के द्वारा संसार को सत्य का राजमार्ग दिखाता रहता है। भक्तों का जीवन दैवी-संपत् की प्रदर्शिनी होता है। संसार को भक्तों के जीवन से अपनी जीवन समस्या का सदुत्तर मिल जाता है। भक्तों की मनोदशा ही ब्रह्म-विद्या कहाती है। भक्त दिन भर जो कुछ सोचता है वही 'ब्रह्म विद्या' है।

—*-:-*—

परमात्मा कहाँ है ?

ईश्वर तो उस किसान के पास है जो तपती हुई ज़मीन पर नंगे पांव हल चला रहा है।

परमात्मा उस सड़क बनाने वाले के ऊपर छाया किये हुए है, जो अपना कठिन काम कर रहा है। वह हमेशा उनके साथ है और उसके कपड़े गर्द से लतपत हैं। अतः अपने साफ़ और क़ीमती वस्त्र उतार फेंको और अपने वहमों की दुनिया से निकल आओ और एक किसान के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर खड़े हो जाओ।

कुछ चिंता मत करो अगर तुम्हारे कपड़े फट जायें और तुम्हारा जिस्म गर्द से खराब हो जावे।

—टैगोर

सुखी जीवन की दो आवश्यकताएँ

[लेखक -श्री सुनामराय एम० ए०]

प्रत्येक मनुष्य सुख का अभिलाषी है। वह जानता हुआ भी कि सुख-दुःख दोनों साथी हैं, वह सुख की ही इच्छा करता है और इसे ही अपने जीवन का लक्ष्य मानकर उसकी प्राप्ति के लिए रात दिन परिश्रम करता है। किन्तु खेद इस बात का है कि बहुत थोड़े मनुष्य इस हक़ीक़त को जानते हैं कि सुखी जीवन के उपाय क्या हैं? सुखी जीवन का आधार क्या है? यह सम्भव है कि भिन्न-भिन्न विद्वानों ने भिन्न-भिन्न दृष्टि से इस विषय पर प्रकाश डाला हो, किन्तु सुख-प्राप्ति के लिए जो साधन उन्होंने बतलाये हैं, उन सबका निचोड़ दो बातों में आ जाता है।

मनुष्य के व्यक्तित्व के तीन अंग हैं—ज्ञान, प्रयत्न, और इच्छा (Cognition, Emotion and will)। यदि इन तीनों अंगों में एकता हो, सामंजस्य हो तो मनुष्य का मन व हृदय शान्त रहते हैं और उनमें किसी प्रकार का विकार उत्पन्न नहीं होता। जो दिमाग़ सोचता है दिल भी वही चाहता है और वही इरादा बनता है। इनमें किसी प्रकार की टक्कर नहीं होती, और न यह सवाल पैदा होता है कि 'क्या करूँ लाख समझाने पर भी दिल नहीं मानता।' आन्तरिक-शान्ति तभी मिल सकती है जब इन तीनों का मेल हो जाये। मनुष्य के चित्त की इस अवस्था को आन्तरिक-ऐक्य (Internal harmony) कहा जाता है। सुखी जीवन की पहली आवश्यकता यही 'आन्तरिक एकता' है। जिस मनुष्य को यह एकता प्राप्त हो जाती है उसकी अवस्था गोसांईं तुलसीदास जी के महाराज रामचन्द्र जी के सदृश 'शान्त, शुद्ध, सम सहज प्रकासा' की सी हो जाती है।

अब प्रश्न यह उठता है कि इस आन्तरिक एकता की प्राप्ति में सबसे बड़ी रुकावट क्या है? हमारे खयाल में यह रुकावट बचपन की वह नैतिक व धार्मिक शिक्षा है जिसका असर सारी उम्र रहता है और जिसके फलस्वरूप कई ग़लत खयालात और विश्वास दिल और दिमाग़ पर जम जाते हैं। जब बड़ी उम्र में इन खयालात और विश्वासों पर चोट पड़ती है तब कभी दिल नहीं मानता और कभी दिमाग़ साथ नहीं देता। नतीजा यह होता है कि इच्छा शक्ति Pendulum (लटकन) की तरह कभी दिल की तरफ और कभी दिमाग़ की तरफ हरकत करती रहती है। मिसाल के तौर पर एक बालक को ले लीजिए जिसे बचपन में मजहब की ओर से यह तालीम दी गई है कि पर्दा और बुर्का अच्छा है। बड़ा होने पर उसे स्वास्थ्य-विज्ञान की

कितनी ही पुस्तकें पढ़ा दो, कितना ही उसे समझा दो कि हवा और रोशनी के अभाव में क्षयरोग हो जाने का खतरा है, तो भी उसका दिल इस बात को नहीं मानेगा। उसका दिमाग तो इस बात को स्वीकार कर लेगा लेकिन उसका दिल उसकी मुखालफत ही करेगा। यह मानी हुई बात है कि औसत दर्जे का इन्सान दिमाग की बजाय दिल की बात माना करता है जैसा कि एक विद्वान का कथन है "More Powerful than a thousand is the Counsel of heart" अर्थात् हज़ारों की राय के मुकाबले में दिल की बात मानी जाती है। एक हिन्दू को बचपन में चांद-ग्रहण और सूरज-ग्रहण के समय दान देकर राहू और केतु का कर्ज चुकाना बतलाया जाता है। बड़ा होने पर प्राकृतिक भूगोल में चांद-ग्रहण और सूरज-ग्रहण के कारण पढ़ने के बावजूद भी वह इन मौकों पर चौकन्ना हो जायेगा, दान देगा, स्नान करेगा, और रोटी जल्दी-जल्दी पहले से ही खालेगा। उसका दिमाग उसे कहता रहता है कि वह गलती कर रहा है लेकिन बचपन की धार्मिक शिक्षा के कारण उसका दिल नहीं मानता। उसे डर लगता है कि यदि उसने ऐसा न किया तो न मालूम इस जिन्दगी में उस पर क्या मुसीबत आ जाये या मरने के बाद उसकी क्या दशा हो? इसी प्रकार हिन्दू, मुसलमान, और सिख को बचपन से ही सन्ध्या, नमाज और जप जी की तालीम दी जाती है चाहे उनके दिल में ईश्वर प्रेम हो या न हो। वे शराब पीलेंगे, झूठ बोलेंगे, बेईमानी कर लेंगे, लेकिन ज्योंही नमाज या सन्ध्या का वक्त आयेगा वे उन्हें फौरन शुरू कर देंगे। उन्हें कितना ही समझालो कि जब तुम्हारे अन्दर न तो ईश्वर प्रेम ही है और न तुम्हारा जीवन ही पवित्र है, फिर माला फेरने या खुदा को याद करने से क्या लाभ? समझाने से शायद इनका दिमाग मान भी जाये लेकिन इनका दिल तो हरगिज नहीं मानेगा। हमारे इलाके की अरोड़ा जाति में यह रस्म है कि जब कोई मर जाता है तब उसके रिश्तेदार दस दिन तक सफेमातम (शोक शय्या) पर सोते हैं। कोई इनसे पूछे कि ऐसा करने से क्या मृतक प्राणी को कोई लाभ पहुँचता है? हरगिज़ नहीं। क्या इससे तुम्हें कोई लाभ होता है? हरगिज़ नहीं। क्या सिवाय माता-पिता या हकीकी बहन-भाइयों के किसी और के दिल में भी इस कदर रंज है कि वह ज़मीन पर ही कराहता रहे? हरगिज़ नहीं। लेकिन सब कुछ मानकर भी वे इस ज़लील और दुःखद रिवाज को नहीं छोड़ते क्योंकि बचपन में उनको इसकी तालीम दी गई है। कहने का मतलब यह कि बचपन की ग़लत नैतिक और धार्मिक शिक्षा आन्तरिक आनन्द,

...क शान्ति और मानसिक खुशी के
...में सबसे बड़ी रुकावट है।

सुखी जीवन की दूसरी आवश्यकता है
...एकता' (External harmony)। मनुष्य
...ल, दिमाग़, इच्छाशक्ति और भावनाओं
...तना ही सामंजस्य क्यों न हो यदि
...हालत खराब है तो भी दिल में उथल-
...पैदा होकर शांति भंग हो जाती है और
...हमारी इच्छायें दूसरे लोगों से टकराती
...उनके विपरीत हैं तो भी अमन कायम
...रह सकता। इस अमन के रास्ते में
...बड़ी रुकावट भिन्न-भिन्न देशों, जातियों
...वर्गों का परस्पर संगठित विरोध है।
...तक रंग, जाति, कौम, पेशा, मजहब और
...का निकृष्ट भेद-भाव बना रहेगा तबतक
...असम्भव है। अगर सफ़ेद रंग वाला,
...काले और भूरे रंग वालों से घृणा करता
...अगर हिन्दू मुसलमान से नफरत करता
...अगर ज़मींदार महाजन को अपना जानी
...न समझता है, अगर जापान चीन को
...समझकर उसे हड़प करना चाहता
...अगर एक कौम दुनियां की तमाम मन्डियों
...कब्ज़ा करना चाहती है, तो बतलाइये कि
...हालत में अन्दरूनी-ऐक्य क्या कर
...गा। क्या वह इस संघर्ष के सामने टिक
...गा? जब तक दुनियां में यह धक्कम-पेल
...है, यह संगठित वैर-भाव मौजूद है,
...लड़ाई-झगड़ा मौजूद है, तब तक विज्ञान
और औद्योगिक शिक्षा से दुनियां को जो लाभ होना था, वह हरगिज़ न होगा। इसके विपरीत साइँस चन्द आदमियों के हाथों में पड़कर ज़हरीली गैसों, भयंकर टैंकों और अन्य नाशकारी शस्त्रास्त्र से असंख्य निर्दोष व्यक्तियों को मौत के घाट उतारती रहेगी और औद्योगिक शिक्षा करोड़ों मनुष्यों को भूखा मारती रहेगी। इस प्रकार हम देखते हैं कि बाह्य जद्दोजहद अन्दरूनी शान्ति को एक क्षण में खत्म कर देती है। हक़ीक़त यह है कि जब दुनियांदारों के अन्दर शांति होगी तो वे बाह्य अमन को भी कायम रख सकेंगे क्योंकि असली चीज़ तो मन ही है। जब एक व्यक्ति का मन ठीक होता है तो उसे शांति मिलती है और जब सारे संसार का मन ठीक होगा तो सारे संसार को शांति मिलेगी। इसलिए आजकल शिक्षा द्वारा इस सार्वभौम मन (Universal mind) को ठीक करने का प्रयत्न किया जाता है।

बस, सुखी जीवन के यही दो उपाय हैं, यही सफल जीवन की दो आवश्यकताएं हैं जिन्हें संक्षेप में ऊपर बता दिया गया है। खेद के साथ कहना पड़ता है कि हमारे देश में इन दोनों बातों का सर्वथा अभाव है। हमारा धार्मिक एवं सामाजिक दृष्टिकोण हमें आन्तरिक-ऐक्य (Internal harmony) प्राप्त नहीं करने देता। विज्ञान और औद्योगिक शिक्षा का अभाव हमें अन्य देशों में सम्मान

का स्थान प्राप्त होने नहीं देता। इसलिए हम अशांति से पीड़ित हैं। न हमारे दिल और दिमाग में एकता है और न ही उन्नतिशील देश हमारी इच्छाओं की परवाह करते हैं। फलतः हम जीवित होते हुए भी मृतप्रायः हैं। अगर हम अपने सामाजिक और धार्मिक विचार ठीक कर लें, अगर हम परमात्मा को अपना मित्र समझकर यों ही उसके नाम पर अपने आप को दुःखी न करें, अगर हम जापान की तरह अपने दलित भाइयों को तुरंत समानता के अधिकार दे दें और सामाजिक बंधनों से उन्हें मुक्त कर दें तो हमारे अन्दर गज़ब की शांति पैदा हो सकती है और इस शांति से जो अपार शक्ति फूटेगी वह सारे संसार को एक सूत्र में बाँध देगी। सारा संसार हमारी ओर दृष्टि लगाये हुए है क्योंकि सर्वप्रथम हमने ही वास्तविक शांति के रहस्य को समझा था। यदि हम शाँति के इच्छुक है तो हमें शुरू से ही अपने बच्चों को ऐसी शिक्षा देनी होगी जिससे वे बड़े होकर संकीर्णता, साम्प्रदायिकता, मिथ्या भेदभाव और अंधविश्वासों से कोसों दूर रहकर स्वाभाविक रूप से अपना विकास कर सकें और फिर दुनियाँ के कोने-कोने में शांति का प्रकाश फैला सकें।

—**—

कहीं ये उलट न जाय दुनियां सारी !!

[श्री लक्ष्मी प्रसाद मिश्र]

वे सर्दी की ठण्डी रातें; सुलग रही दिल में चिनगारी !
किससे कहें कहानी अपनी; सुनता जग में कौन हमारी !
दुनियाँ 'चमक-दमक' पर रीझी; हम पर घिरी घटायें काली !
अपनी धुन में मस्त सभी हैं; ढाल रहे प्याली पर प्याली !
खून चूसते सभी हमारा ! ये मनुष्य, ये खटमल-मच्छर !
प्राण औटते हैं गर्मी में; कपड़े लत्ते नहीं बदन पर !!
कितनी विपदाएं हम पर हैं; कितने हम आंसू पीते हैं !
अपना खून पिया खुद करते; कितना गम खाकर जीते हैं !!
अपनी जीवन-घड़ियां गिनते; देख देख खेती को जीते !
काट रहे दिन किसी तरह से; दुनियाँ की खातिर दुःख पीते !!
ये तुषार, ये ओले-पानी, चौपट करें न खेती-बारी !
डर है, हे भगवान कहीं ये उलट न जाये दुनियाँ सारी !!

शिक्षा का उद्देश्य

(लेखक —विश्व-प्रेमी राजा महेन्द्रप्रताप, जापान)

आपने कभी कमान चलाई है या बन्दूक का निशाना लगाया है ? मैं भी यद्यपि निशानची तो नहीं पर यूं दो-चार बार बंदूक चलाई है। मुझे आप ...आश्चर्य हुआ जब पामीर में बहुत दूर ...पर्वतीय हिरन को मैं एक ही गोली में ...सका। बात यह है कि यदि निशाना ...बांधा गया है तो गोली निशाने पर ...गी ही ! पर यदि आगे अँगुल का भी ...है तो गोली बाँसों दूर गिरेगी। यह ...ने की बात संसार के सब ही प्रश्नों में ...है। शिक्षा में भी किसी प्रश्न से कम नहीं। जैसे प्रायः बंदूक का निशाना ठीक करते ठीक उसी प्रकार शिक्षा का उद्देश्य निश्चित ...ना चाहिए। यदि उद्देश्य में थोड़ी भी त्रुटी ...गई तो परिणाम कुछ का कुछ होगा। इस ...का उद्देश्य 'शिक्षा का उद्देश्य' निश्चित ...ना है।

आज हमारे मां बाप अपने बाल-बच्चों को धनी और प्रभावशाली बनाने के लिए शिक्षा देते हैं। किसी के मन में सरकारी नौकरी का ही विचार होता है। ऐसे उद्देश्यों का कारण है आपस की खींचा-तानी और बहुतों की बेरोज़गारी।

आवश्यकता इस बात की है कि हम सबसे पहले अपने ही मन में आजकल की समाज की दशा पर एक आंख डालें। आज व्यापार में एक को लाभ होता है तो दूसरे को हानि। राज्यों में देखिए, एक को जीत होती है तो दूसरे को हार। प्रतिदिन कंगाल और पीड़ित होते हम लोगों को देखते हैं। परंतु फिर भी कोई उपाय नहीं करते। हम अपनी धुन में केवल अपना फ़ायदा सोचते हैं। दशा कुछ ऐसी नहीं है क्या ? मानो संसार जुआ खेल रहा है ? राजे, साहूकार और कंगाल भी बाजी लगा रहे हैं राज्यों की, लाखों करोड़ों रुपयों की, और कोड़ियों की ? प्रत्येक को केवल यही पड़ी है कि उसकी कैसे जीत हो !

अब सोचिये यह क्या ठीक है कि हम अपने बाल-बच्चों को पढ़ा-लिखाकर बस यह जुआ खिलवायें ? जुए में सदा जीत नहीं होती। हमको चाहिए कि ऐसी समाज बनाने की चेष्टा करें कि कभी भी किसी को भूखा न रहना पड़े। यह तभी हो सकता है जब सब ही सबके लाभ के लिए कार्य करें, जुआ खेलना बंद करें। यदि यह उद्देश्य आपने निश्चित कर लिया तो इसका फल आप ही आप टपक पड़ेगा।

जब उद्देश्य जुआ खेलना नहीं वरन् हमारा सबका लाभ और पक्का लाभ है तो केवल हमारा विद्याक्रम सबसे उत्तम प्रतीत होगा। हम कहते हैं कि प्रत्येक विद्यालय के साथ भूमि, बाग और कल कारखाने हों। विद्यार्थी-गण खेतों से अनाज और बागों से फल पैदा करें। कारखानों में कपड़ा, जूते इत्यादि बनावें। इस प्रकार जो सामग्री उत्पन्न होगी वह बेचने के लिए नहीं वरन् अपने ही काम-काज के लिए। हां, जो वस्तुयें यहां न बन सकेंगी वे यहां की बनी वस्तुओं के बदले में प्राप्त की जायेंगी।

फिर जब लड़के-लड़कियां बड़े हो जायेंगे तो यहीं रहेंगे, यहीं बस जायेंगे। इस प्रकार आज का विद्यालय कल का आदर्श ग्राम बन जायगा। यहाँ पर सब जाति-पाँति, दीन-धर्मों को पूर्णतः मिला दिया जायगा। कोई भेद-भाव रह ही नहीं जायगा। आज कल विद्यालयों में यह भी बड़ा दोष है कि वहां जाति-पांति और धर्मों का भेदभाव और पक्का हो जाता है।

अब सोचिये कि यदि ऐसे विद्यालय और ऐसे विद्यालयों के पश्चात आदर्श ग्राम समस्त संसार में बन जायें तो कैसे सबको सदा के लिए सुख प्राप्त न हो ? ऐसे संसार में लड़ाई क्यों हो और किस बात के लिए ? जब यह प्रथा चलेगी तो अटल शांति स्थापित होगी।

विश्व-वाणी

[सं०—श्री रामकृष्ण 'भारती', शास्त्री]

दो आँखें—संसार की दो आँखें हैं—एक सुख और दूसरी दुःख।

क्रोध—क्रोध मूर्खता का पुत्र है।

सिपाही—सिपाही वही है जो 'आज्ञा' के पीछे आँखें बन्द करके चलता है।

सन्तोष—सम्पत्तियों का अन्त विपत्ति है, परन्तु सन्तोष अमर है।

दो पहिये—जीवन रथ के दो पहिए हैं, एक पुरानी स्मृति और दूसरी नई आशा!

(अनुवादक—श्री इन्द्रचन्द शास्त्री, वेदांताचार्य) ✓

पाठशालाओं की दृष्टि से विचार करने पर अपने विकास के पोषक को सच्चा स्वातन्त्र्य नहीं कहना चाहिए. किंतु जिससे दूसरों के विकास में कोई बाधा न पड़े, वही सच्चा स्वातन्त्र्य है।

विद्यार्थी स्वतन्त्रता माँगता है। शिक्षक सोचता है कि दी जाय या ...? अगर दी जाय तो कितनी ? इस तरह ...न्त्रता एक दान की चीज़ बन जाती है। इसे ...ने की आदत भी बुरी है और इसे देने की आदत ...बुरी है। स्वातन्त्र्य दान देने की वस्तु नहीं है ...या ही भीख माँग कर लेने की। जहाँ तक ...रों को नुक़सान नहीं पहुँचता, विद्यार्थी भले ही ...न्त्र रहे, ऐसा कोई विचार भी नहीं करता। इस जगह यह सोचा जाता है कि उसे कितना स्वा-...न्त्र्य देना है। एक व्यक्ति स्वातन्त्र्य देता है और ...रा लेते हैं, इसी मिथ्या विचार को ले कर हम ...नी कार्य-प्रणाली निश्चित करते हैं। अपने को ...ड़ा समझने वाला आदमी जिस को अपने से ...टा मानता है उसे स्वतन्त्रता का दान करने जाता ... अपने को छोटा समझने वाला मनुष्य जिसे बड़ा ...समझता है उस से स्वतन्त्रता की भीख माँगने जाता ...। इसी तरह बलवान से कमज़ोर और धनवान से ...गरीब स्वतन्त्रता की याचना करता है। शिक्षक भी विद्यार्थियों को स्वातन्त्र्य दान देने का काम करने ...ते हैं। किंतु यह बात अच्छी तरह समझ लेनी चाहिए कि स्वातन्त्र्य लेने-देने का धन्धा खोटा और बेशर्मी से भरा हुआ है।

आज-कल तो स्त्रियों को कितनी स्वतन्त्रता देनी चाहिए; उनके लिए किस तरह की शिक्षा का प्रबन्ध करना चाहिए, छात्रालयों में उनके पत्र खोलने चाहिएँ या नहीं, उन्हें स्वतन्त्रता से किसी से मिलने देना चाहिए या नहीं, इत्यादि विचार होते रहते हैं। यह सारी विचारधारा गन्दी है। स्वातन्त्र्य जहां तक दान का विषय रहेगा, दाता सङ्कुचित रहेगा और लेने वाला भिखारी ही रहेगा। दान दी हुई वस्तु का उपभोग भिखारी अपनी इच्छा से नहीं किंतु दाता की इच्छानुसार ही कर सकता है। दान का यह नियम दान की तमाम बातों के लिए लागू है। स्वातन्त्र्य का दाता यह अपनी दृष्टि से देखता है कि उसकी चीज़ का इस्तेमाल किस तरह होता है? भिखारी हमेशा भूखा ही रहता है और 'और दो', 'और दो' की आवाजें लगाता ही रहता है। दाता एक के बाद दूसरा टुकड़ा डालता है और कहता रहता है—'अब बस करो'। उसे यह डर बना रहता है कि भिखारी कहीं निरङ्कुश और स्वच्छन्द न हो जाय। ऐसी विकट परिस्थिति से मुक्त होने के लिए स्वातंत्र्य को लेन-देन के दोष से मुक्त करना चाहिए। यह बात अच्छी तरह समझ लेनी चाहिए कि स्वतंत्रता किसी से प्राप्त होने की वस्तु नहीं है किंतु स्वतत्र होकर जीने का सबको अधिकार है।

हम देखते हैं कि व्यक्ति समष्टि के आधिपत्य से छुटकारा पाना चाहता है और समष्टि व्यक्ति को

अपने पंजे में रखना चाहती है। इन दोनों का झगड़ा बहुत पुराना है। आज हमारे सामने यह प्रश्न है कि इन दोनों का मेल कैसे हो।

शिक्षण का इतिहास देखने से मालूम पड़ता है कि वहाँ भी यही दोनों वाद चल रहे हैं। मोण्टीसोरी पद्धति में व्यक्ति स्वातन्त्र्य का मुख्य स्थान है, जबकि अमेरिका और रूस जैसे देशों ने शिक्षण के लिए समष्टिवाद को अपनाया है।

शिक्षण-पद्धति में या और कहीं, व्यक्तिवाद और समष्टिवाद दोनों ही ग़लत हैं। इन दोनों का सुन्दर मेल ही सच्ची शिक्षा का मतलब साध सकता है।

जहाँ व्यक्ति स्वातन्त्र्य प्रबल होता है, समूहतन्त्र निर्बल हो जाता है और जहां समूहतन्त्र प्रबल होता है व्यक्ति-स्वातन्त्र्य कमज़ोर पड़ जाता है। आज व्यक्ति स्वातन्त्र्य लाभदायक प्रतीत होता है किन्तु इसमें से स्वच्छन्दता—अराजकता (Anarchy) पैदा होने का भय बहुतों को बना रहता है।

इस बात का विचार ज़रा गहराई से करना चाहिए। व्यक्ति और समष्टि की निरङ्कुशता सापेक्ष है; इन में से एक भी स्वय निरङ्कुश नहीं है। व्यक्ति समष्टि की अपेक्षा स्वच्छन्द-निरङ्कुश प्रतीत होता है। इस सापेक्षावाद को निकाल देने से किसी का भी आचरण स्वच्छन्द नहीं मालूम पड़ेगा। समाज से जिस व्यक्ति का मेल नहीं होता वह स्वच्छन्द मालूम पड़ता है। यही बात समष्टि के लिए भी है।

इस स्वच्छन्दता को कैसे दूर किया जाय यह एक बड़ा प्रश्न है। इसका एक मात्र उपाय स्वातंत्र्य है। और स्वातन्त्र्य के बाद भी कोई स्वच्छन्द बना रहे तो इसमें अपनी ही कोई त्रुटी समझनी चाहिए। एक बालक को स्वतंत्र करने पर हम देखते हैं कि वह स्वयं ही आसपास के वातावरण से अपने विकास के तत्त्व खींच लेता है। सच्ची स्वतंत्रता के वातावरण में ही वह पनप सकता है और विकसित हो सकता है। इस स्वयं विकास से ही बालक अपने आप समाज का एक अङ्ग या योग्य सामाजिक बनने का प्रयत्न करता है। उसके इस प्रयत्न को जब रोका जाता है तभी वह असमाजिक और विकृत बन जाता है।

अगर शिक्षण स्वतन्त्र हो तो स्वतन्त्र व्यक्तियों से स्वतन्त्र समाज खड़ा हो सकता है। शिक्षण का आधार स्तम्भ व्यक्ति-स्वातन्त्र्य होना चाहिए। विशेषतया कुमारावस्था तक, जबकि बालक सामाजिक बनने का प्रयत्न करता है. व्यक्ति स्वातन्त्र्य नितान्त आवश्यक है, अनिवार्य और उपकारक है।

अगर प्रत्येक व्यक्ति की शिक्षा इसी तरह हो तो हमारा समाज आदर्श समाज बन जाय—जहां व्यक्ति समाज को न दबाये और समाज व्यक्ति को। इस तरह के सुतन्त्र का सञ्चालन जिस शिक्षा से हो सकता है उसकी योजना मानव स्वभाव के सच्चे अध्ययन के बिना नहीं हो सकती।

समाज पहले व्यक्ति को विकृत बनाता है और विकृत हुए व्यक्ति को लूट-मार मचाते हुए, खून और व्यभिचार करते हुए देखता है, फिर, ऐसे व्यक्तियों का नाश करके स्वय जीवित रहना चाहता है। बड़े-बड़े कारागारों में बन्द कर और फांसी के तख्ते पर लटकाकर समाज यह मानता है कि उसने अनिष्ट व्यक्तियों को नष्ट कर दिया, किन्तु नतीजा उल्टा ही होता है।

सच्चा उपाय कैद या फाँसी नहीं है किंतु, मानव स्वभाव का सच्चा अध्ययन है। जब तक मानव स्वभाव की सच्ची पहचान नहीं होती, तबतक अनिष्ट कम नहीं हो सकते।

भावी महासमर पर विहंगम दृष्टि

(लेखक—श्री टी० जी० 'विनीत')

महायुद्ध में जन-धन की हानि—

महायुद्ध में हुए निर्मम जन-संहार और धन की क्षति के खयाल मात्र से रोमाँच हो है, हृदय सिहर उठता है। अनुमान लगाया है कि एक करोड़ व्यक्ति तो यकीनी तौर पर युद्ध में काम आये। ३० लाख के लगभग व्यक्ति हैं जिनके मरने की बाबत निश्चित रूप से कुछ कहा जा सकता। घायल हुए और कैद हुए की संख्या १ करोड़ ६० लाख थी। यह याद इस संख्या में वे व्यक्ति शामिल नहीं हैं जो के कारण पैदा हुई बीमारियों के फैलने से बाद मरे। सरकारी हिसाब के अनुसार इन बीमारियों अकेले हिन्दुस्तान में १ करोड़ २० लाख मनुष्य कवलित हुए। इसके अलावा करोड़ों घोड़े, चूहे, गधे युद्ध-भूमि में काम आये थे।

अब धन का हिसाब भी सुन लीजिए। इस युद्ध सबसे अधिक खर्च इंग्लैंड का हुआ। १९१७ में को औसतन ४९० लाख पौंड प्रति सप्ताह करना पड़ता था। युद्ध की समाप्ति तक ब्रिटेन ११०७६० लाख पौंड खर्च करना पड़ा। जर्मन रोजाना ५० लाख पौंड खर्च करना पड़ता था। मिलाकर सब राष्ट्रों का ८० अरब पौंड खर्च हुआ। अन्दाजन १० करोड़ रुपया प्रतिदिन महायुद्ध में खर्च होता था। इतना होने पर भी ऐसा मालूम देता है कि दुनिया गत महायुद्ध की भयानकता को भूल सी गई है, और वह अब फिर युद्ध-पथ पर बड़ी तेजी से अग्रसर हो रही है। कहना न होगा कि उसने गत महायुद्ध से कोई सबक नहीं सीखा।

तब से अब तक—

'दी लिविंग एज'—The Living Age में मध्य यूरोप की राजनैतिक परिस्थिति पर प्रकाश डालते हुए लिखा है, 'चिरस्थायी शांति स्थापन करने के लिये वर्सेल्स में जब से राजनीतिज्ञों की सभा हुई थी तब से अब तक संसार में २५ युद्ध हो चुके हैं, और पिछले तीन वर्षों में प्रतिवर्ष १-१ युद्ध का प्रारम्भ हुआ है। सन् १९३५ में पूर्वी-अफ्रिका, १९३६ में स्पेन और १९३७ में चीन में युद्ध छिड़े। इनमें पैलस्टाइन में ब्रिटिश और अरबों की लड़ाई, ईपी के फ़क़ीर के नेतृत्व में वज़ीरिस्तान का विद्रोह आदि छोटे २ युद्ध शामिल नहीं हैं। सच यह है कि १९३५ से १९३७ तक के युद्धों में प्रत्येक युद्ध एक दूसरे से कहीं अधिक भीषण और व्यापक रहा है। वातावरण अब भी युद्ध की आशंका से भरा हुआ है। किन्तु अब युद्ध को अनिवार्य मानकर लोगों ने इससे उतना भय करना छोड़ दिया है।" इस प्रकार हम देखते हैं कि समस्त संसार में एक भयङ्कर महासमर की बलवती लहर दौड़ रही है। एक धध-

कती हुई चिनगारी सुलग रही है जो पता नहीं कब प्रज्वलित हो उठे और सारे संसार को भस्म कर दे। चारों ओर से लड़ाई झगड़ों की खबरें आ रही हैं। नये-नये गुट बनाये जा रहे हैं। पुरानी सन्धियों को केवल रद्दी की टोकरी में ही नहीं फेंका जा रहा बल्कि उनको जलाकर खाक किया जा रहा है। कहने का मतलब यह कि आज दुनिया में अशांति और अविश्वास का साम्राज्य है।

अशान्ति क्यों ?—

अब स्वभावतः यह प्रश्न उठता है कि इस विषमता का आखिर कारण क्या है ? यदि हम गम्भीरता से इस प्रश्न पर विचार करेंगे तो इसी परिणाम पर पहुँचेंगे कि वर्सेलस की सन्धि ही अशांति की जड़ है। इस सन्धि ने ही भावी अशांति का बीजारोपण कर दिया था। ३० मई को जर्मनी के डाक्टर गोयबल्स ने नाज़ियों के सम्मुख भाषण देते हुए साफ २ कह दिया था कि वर्सेल्स की सन्धि ही आगामी युद्ध की बुनियाद है। इस संधि के बाद लूट के माल का जो बटवारा हुआ उसमें इंग्लैंड और फ्रांस को तो खूब हिस्सा मिला, लेकिन इटली को किसी ने न पूछा। युद्ध के समय मित्र राष्ट्रों ने इटली को यकीन दिलाया था कि वे इस को एड्रियाटिक-सागर पर अपना अधिकार जमाने और अपने अफ्रीकन साम्राज्य का विस्तार करने में उसकी सहायता करेंगे। लेकिन युद्ध की समाप्ति पर मित्र राष्ट्रों ने इटली को अंगूठा दिखाकर उसकी महत्वाकांक्षाओं पर तुषार पात कर दिया। निर्बल होने के कारण इटली ने इस अपमान को सहन कर लिया लेकिन अन्दर ही अंदर वह जलता रहा। वर्सेलस की सन्धि ने जर्मनी का तो बिल्कुल ही कचूमर निकाल दिया था। उसका फौजी संगठन और लड़ाई का सामान बिलकुल नष्ट कर दिया गया था। उसके उपनिवेश उससे छीन लिए गये थे। युद्ध के हरजाने की भारी रकम के बोझ से दबाकर उसे इतना पंगु और शक्तिहीन बना दिया था जिससे कि भविष्य में वह कभी उभर ही न सके। लेकिन मुसोलिनी और हिटलर के अभ्युदय से इन दोनों राष्ट्रों ने करवट बदली। उनमें एक नयी शक्ति और नये जीवन का सचार हुआ। इन दोनों राष्ट्रों ने पुनः अपना संगठन करना शुरू किया और थोड़े ही समय में समस्त यूरोप को आश्चर्य में डाल दिया। मुसोलिनी ने सबके देखते २ अबीसीनिया को हड़प लिया, हिटलर ने सार को हथया लिया, राइनलैंड पर कब्जा कर लिया और बिना खून का एक कतरा बहाये आस्ट्रिया को हज़म कर लिया। अब उसकी आंख जैकोस्लोवेकिया पर है। उसे वह बिना डकारे ही निगल जाना चाहता है। हिटलर इस बात की प्रतिज्ञा किये हुए है कि जब तक वह उन सभी भू-भागों को जहां जर्मन लोग बसे हुए हैं, जर्मनों के आधीन न कर लेगा, तब तक दम न लेगा। मुसोलिनी भूमध्यसागर पर अपनी सत्ता कायम करने में लगा हुआ है। इस प्रकार जर्मनी और इटली को अपने साम्राज्य विस्तार के लिए नये उपनिवेश चाहियें। ब्रिटेन, फ्रांस व अमेरिका का विस्तृत साम्राज्य उनकी आंखों में कांटे की तरह खटक रहा है।

उधर स्पेन में जन संहार जारी है। इटली की यह इच्छा है कि सारे स्पेन पर फ्रांको का राज्य हो जाय लेकिन फ्राँस और रूस यह चाहते हैं कि वहाँ प्रजातंत्र सरकार की ही विजय हो। जापान चीन को हड़पना चाहता है। जापान और रूस की शत्रुता तो जगत् प्रसिद्ध है ही। हिटलर चीन से इसलिए नाराज है कि उसने रूस से मित्रता कर ली है। इटली और जर्मनी की रूस से इसलिए नहीं बनती की वहां साम्यवाद का बोल बाला है जो फासिज्म का कट्टर विरोधी है। इंग्लैंड और फ्रान्स Peace makers (शाँति प्रिय) होने का दावा करते हैं। उनकी दाल आज नहीं गलती। ये दोनों राष्ट्र किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गये हैं। घरेलू झंझटों में फंसे रहने के कारण इन्हें कोई रास्ता दिखाई नहीं देता।

...सम भी शांति स्थापित नहीं कर सका । उसका ...डा अब फूट चुका है । दुनिया को मालूम हो गया ... कि राष्ट्रसंघ तो केवल शक्तिशाली राष्ट्रों की ...र्थ सिद्धि के लिए स्थापित किया गया है । इस-...र इसकी अब कोई नहीं सुनता । सच बात तो ...ई है कि यूरोप अपनी उन्नति का हिसाब रुपये ...ने और पैसे से लगाता है । पूंजीवाद के चक्कर में ...कर वह इतना अंधा हो गया है कि साम्राज्य ...तार के सिवाय उसे और कुछ सूझता ही नहीं । ...गत महायुद्ध ने एक ऐसी जागृति पैदा कर ...ई कि पराधीन राष्ट्र भी आज़ाद होना चाहते हैं । ...दूसरे के अनुशासन और शोषण का जुआ उतार ...ने के लिए प्रयत्नशील हैं । वे पूंजीवादी राष्ट्रों की ...नीति से बेज़ार हो उठे हैं । इस समय यूरोप ...द की एक ज़बरदस्त मेगज़ान बना हुआ है और ...युद्ध के लिए ज़बरदस्त तैयारियां हो रही हैं ।

...द्ध के लिए तय्यारियां—

अन्तर्राष्ट्रीय संघ की ओर से प्रकाशित सन् ...की रिपोर्ट से इस तैयारी का पता चलता है । ...रिपोर्ट के अनुसार संसार भर का सैनिक खर्च ...न १९३२ में ४ अरब ३० करोड़ डालर था, ...१९३७ में बढ़कर ७ अरब १० करोड़ डालर हो ...। यह खर्च १९१४ के सैनिक खर्च से तीन गुना ...सात देशों ने यह खर्च १९३२ और १९३७ के बीच ...की सदी और ५७ देशों ने ३०-८ फी सदी ...किया है । ब्रिटेन का सैनिक खर्च जो १९३२ ...करोड़ ८२ लाख पौंड था १९३७ में २६ करोड़ ...लाख पौंड हो गया । जर्मनी का फौजी खर्च जो ...३१-३२ में ६१ करोड़ ७० लाख मार्क था १९३४-... ८१ करोड़ ४३ लाख मार्क हो गया । जापान ...सैनिक व्यय जो १९३२-३३ में ३७ करोड़ ३६ ...येन था १९३७-३८ में ७२ करोड़ ८० लाख ...हो गया । इसी प्रकार रूस का सैनिक व्यय १ ...४१ करोड़ २३ लाख रूबल से बढ़कर २० अरब ...करोड़ २२ लाख रूबल और अमेरिका का ६४ करोड़ १६ लाख डालर से बढ़कर ९९ करोड़ ३२ लाख डालर हो गया है । अनुमान लगाया गया है कि आज कल प्रत्येक मिनट में हथियारों पर ३०० पौंड खर्च हो रहा है । फ्रांस ने अपने इस साल के बजट में शस्त्रास्त्र की वृद्धि के लिए ३ अरब २० करोड़ फ्रैंक मंज़ूर किया है और ब्रिटेन करीब ५ अरब रुपया फौज और युद्ध सामग्री पर खर्च करेगा ।

हर हिटलर और मुसोलिनी हर नौजवान को सिपाही बना देने पर तुले हुए हैं । तानाशाह स्टालिन भी इनसे पीछे नहीं है । उसने रूस के हर गाँव में एक फौजी अफसर और एक फौजी तालीम देने वाला अध्यापक स्थायी रूप से रख दिये हैं । जापान का तो कहना ही क्या ? यूरोप के कारखानों में हवाई जहाज और लड़ाई का सामान धड़ाधड़ बन रहा है । इटली की फैक्ट्रियों में ८४ हजार मजदूर हवाई जहाज और हवाई जहाज के एँजिन बना रहे हैं । जर्मनी के एक कारखाने में एक महीने में १ हजार जहाज तैयार होते हैं । फ्रांस में १९४० तक २६०० प्रथम श्रेणी के वायुयान हो जायेंगे । इङ्गलैंड में जगह २ हवाई शिक्षा देने के लिए स्कूल तथा कालिज खोले जा रहे हैं । लड़ाई के लिए हजारों लड़कियों की एक लम्बी सेना बनाई जा रही है । हवाई सेना को अप-टू-डेट बनाने के लिए औद्योगिक सलाहकारों की एक समिति भी बनाई गई है । ऐसी तोपें बनाई गई हैं जिनसे १२५-१५० मील तक गोला फेंका जा सकता है । ऐसे बम बनाए गए हैं जो ४ घंटे से ले कर ३६ घंटे या इससे भी ज्यादा समय में अपने आप फूटते हैं । फ्रांस के बमों का वजन २७५ से ले कर ५०० मन तक है । एक ही बम मीलों तक के गाँवों को धूल में मिला देगा । जहरीली गैस व बम से प्रजा की रक्षा के लिए फ्रांस ने ३०० ऐसे क़िले बनाए हैं जो जमीन के नीचे कई मील तक फैले हुए हैं । इनमें बिजली की रोशनी, सिनेमा आदि सब सुविधाओं का प्रबंध किया गया है । कहा जाता है कि जर्मनी ने तो साइंस की सहायता से खाने की

ऐसी चीजें भी तैयार करली हैं जो वहां नहीं होतीं। इसके अलावा यूरोप और अमेरिका में जहरीली गैसों के बनाने में करोड़ों रुपया खर्च किया जा रहा है। सिर्फ एक देश में गैस के असर की जांच करने के लिए एक वर्ष में २११९ जानवर मारे गए थे। इस काम के लिए यूरोप में स्थान २ पर प्रयोगशालाएँ खुल रही हैं जिनमें इन नाशकारी गैसों का निर्माण किया जा रहा है। आक्सफोर्ड के एक वैज्ञानिक ने बड़े फ़ख्र से एक बार कहा था—"We have discovered a gas which could wipe out the population of a city as easily as a child wipes off the sums from his slate." अर्थात् हमने एक ऐसी गैस ईजाद की है जो एक शहर की आबादी को इतनी आसानी से मिटा सकती है जितनी आसानी से एक बालक अपनी सलेट पर से हिसाब के सवाल मिटा सकता है।

भावी युद्ध का रूप—

जन-संहार के इन वैज्ञानिक आविष्कारों ने राजनीतिज्ञों को चिंता में डाल दिया है। इस के भयंकर परिणाम उनकी आंखों के सामने नाच रहे हैं। उनका खयाल है कि भावी रणस्थली जल या थल न हो कर आकाश होगी। युद्ध के मुख्य साधन वायुयान तथा जहरीली गैसें होंगी। आक्रमण का विषय सैनिक न हो कर निर्दोष और सीधे-सादे नागरिक होंगे। इसे यों भी कह सकते हैं कि भावी युद्ध फौजों में नहीं बल्कि मुल्कों में होगा। प्राचीन युद्ध-प्रणाली में यह बात नहीं थी। प्राचीन काल में स्त्रियां पति भाई और पुत्रों को युद्ध का बाना पहना कर रणक्षेत्र में भेजती थीं। उस समय युद्ध का आतंक नागरिकों के शांत जीवन को क्षुब्ध नहीं करता था। परन्तु आज तो यह बात नहीं है। प्राचीन युद्ध वीरता के युद्ध हुआ करते थे। योद्धा आमने सामने खड़े होकर अपने बल की आजमाइश किया करते थे। कायरों और भीरुओं के लिए युद्ध में कोई स्थान नहीं था। किंतु आज यह बात कहां है? आज तो एक कायर व्यक्ति भी वायुयान में बैठ कर हजारों आदमियों को मार सकता है। जहरीली गैसों के द्वारा शहर के शहर बर्बाद कर सकता है। फिर बिना घोषणा किये ही आक्रमण कर देने की घातक नीति ने तो बड़ी ही भयानक परिस्थिति उत्पन्न कर दी है और दुनिया की मौजूदा हालत को बड़ा ही नाजुक बना दिया है। युद्ध की तय्यारियों से तो यही स्पष्ट होता है कि गत महायुद्ध में वायुयानों से की गई बम-वर्षा आगामी युद्ध में होने वाली बम वर्षा की तुलना में सर्वथा नगण्य सिद्ध होगी। सर सैमुएल होर ने एक बार पार्लीमेंट में कहा था—'जहाँ गत महायुद्ध में जर्मनी ने ३०० टन बम गिराये थे, वहां आज की हवाई सेनाएं उतने ही वजन के बम युद्ध के प्रथम २४ घण्टों में गिरा सकती हैं और उस को बहुत काल तक जारी रख सकती हैं।" भावी युद्ध की भीषणता का पता उस बम वर्षा से लग सकता है जो हाल ही में चीन और स्पेन के नागरिकों पर की गई है। इस बम-वर्षा से हस्पताल, युनिवर्सिटी, तेल के स्टॉक और बिजलीघर भी नहीं बच सके। सड़कों पर विद्यार्थियों और स्वयं सेवकों की लाशों के ढेर लग गए थे।

आत्म-रक्षा के उपाय—

महायुद्ध के चित्रमात्र से ही हृदय दहल जाता है और सहसा आत्मरक्षा के लिए दिमाग चक्कर काटने लगता है। वैज्ञानिकों ने नागरिकों की रक्षा के लिए बहुत से तरीके निकाले हैं। वायुयानों को तोड़ने वाली तोपें ईजाद की की गई हैं। परन्तु उनसे किसी खास इमारत अथवा किसी खास क्षेत्र की ही रक्षा की जा सकती है। जहरीली गैसों से बचने के लिए नकाब और गैस-प्रूफ घर बनाये गए हैं। जर्मनी में गैस के हमलों से बचने के लिए ६ [illegible] कमरे हैं। इटली में ५० लाख नकाब तैयार हैं।

...में तीन लाख गैस टोप बांटे जा चुके हैं। ...हमले के वक्त लोग तहखानों और मैदानी ...में छुपेंगे। एक रेलवे कम्पनी से तय हो गया ...हमले के समय ७२ घण्टे में ५० लाख व्यक्ति ...मील की दूरी तक भेजे जा सकेंगे। फ्रांस ने ...दिन के भीतर २२ लाख ५० हज़ार व्यक्तियों ...बाहर निकाल देने का इन्तिजाम कर लिया ...परन्तु सवाल तो यह है कि साधारण ...उन का उपयोग भी ठीक २ कर ...या नहीं? फिर ऐसी जहरीली गैसें ...जिनके आगे इन नकाबों की भी कुछ न चलेगी। ...ज्ञों का भी यही मत है कि यदि इन नाशकारी ...काम में लाया गया तो सम्भवतः इन गैसों ...बचने के सब प्रबन्ध व्यर्थ ही जायेंगे और ...बहुत थोड़े लोग इन से अपनी प्राणरक्षा ...सकेंगे। इस से सहज में ही अंदाजा लगाया ...सकता है कि भावी महा समर कितना खतरनाक ...भयंकर होगा।

...क्यों?—

...सवाल यह उठता है कि जब यूरोप के ...राष्ट्र युद्ध के लिए तैयार हैं तब युद्ध छिड़ता ...नहीं? पिछले महासमर के बाद अभी तक इंग्लैंड ...फ्रांस इसी ताक में रहे हैं कि वे किसी न किसी ...संसार की शांति में अधिक भाग लेते रहें ...उनके साम्राज्य को किसी प्रकार का धक्का ...पहुंचे।

...महायुद्ध के बाद ब्रिटेन को ऐसे अनेक मौकों ...सामना करना पड़ा है जिनसे एक विश्वव्यापी ...युद्ध के छिड़ने की पूर्ण सम्भावना थी। जर्मनी ...इटली के तानाशाहों की आसुरी लालसा के ...यूरोप के वायु-मण्डल में कभी का भयंकर ...आजाता। अगर अपने को शांतिप्रिय समझने ...इंगलैंड और फ्रांस ने ऐसे मौकों को टालने ...की होती। यद्यपि ऐसा करने से उनके ...tige-शान को बहुत धक्का पहुँचा है और उन्हें भारी नुक़सान भी उठाना पड़ा है, तोभी उनकी स्वार्थ सिद्धि चुप रहने में ही थी।

इंगलैंड के राजनीतिज्ञ बहुत दूरदर्शी हैं—चतुर बनिये हैं। वे आवेश में आ कर कोई ऐसा सौदा नहीं करेंगे जिससे उन्हें घाटा हो। इंगलैंड जानता है कि उसकी स्थिति पूर्णरूपेण मज़बूत नहीं है। आज तक इंगलैंड अपनी नाविक शक्ति पर नाज़ करता था, पर अब उसने समझ लिया है कि वायुयानों के बिना अपने प्रतिद्वन्दी राष्ट्रों का वह मुकाबला नहीं कर सकता। इसलिए वह अब अपनी हवाई शक्ति के बढ़ाने में संलग्न है। जब तक उसकी हवाई सेना पूरी तरह सङ्गठित न होगी तब तक इङ्गलैंड युद्ध को टालता रहेगा और फासिस्ट राष्ट्रों के साथ अपमान जनक समझौते करने में भी कुछ आना-कानी न करेगा। यही कारण है कि अबीसीनियां, स्पेन और जैकोस्लोवेकिया के मामले में इङ्गलैंड बे पैंदे के लौटे की तरह लुढ़कता रहा है। इङ्गलैंड खूब अच्छी तरह जानता है कि युद्ध से उसे कुछ न मिलेगा। हिंदुस्तान उससे रूठा हुआ है, वह अब उसकी चिकनी-चुपड़ी बातों में आ कर युद्ध में उसका साथ नहीं दे सकता। आयरलैंड उस से अपना नाता तोड़ चुका है। कैनेडा आदि उपनिवेशों ने पहले ही घोषित कर दिया है कि हम साम्राज्यवादी युद्धों में भाग न लेंगे।

ब्रिटेन के सामने एक और सबसे बड़ी कठिनाई खूराक की है। इसके यहां खाने की चीजें बहुत कम पैदा होती हैं। इसे १० से ९० फी सदी मक्खन और चर्बी, ८७ फी सदी दाल, ७४ फी सदी खांड और ५० फी सदी मांस दूसरे देशों से लेना पड़ता है। ब्रिटेन को यह चिन्ता है कि युद्ध छिड़ जाने पर वह खाने की चीजों का क्या प्रबन्ध करेगा? इस विकट समस्या ने ब्रिटेन के विद्वानों को चक्कर में डाल रखा है। यही कारण है कि ब्रिटेन इटली और जर्मनी की धींगा-धाँगी को चुपचाप सहन करता जा रहा है और उनसे समझौते भी करता जाता

है। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि इंग्लैंड कभी युद्ध में भाग लेगा ही नहीं। मि० चेम्बरलेन ने एक बार कहा था कि "ऐसे अवसर हो सकते हैं जब हम लड़ने को तय्यार हो जायें यानी जब उन चीजों की रक्षा का सवाल पैदा हो जाये जिन्हें हम अत्यन्त प्रिय मानते हैं। वे चीजें हैं हमारे आधीन प्रदेश और हमारे यातायात के मार्ग जो हमारे राष्ट्रीय स्वार्थों की बुनियाद हैं।" कामन्स सभा में सर टामस ने जो भाषण दिया है उससे भी मालूम होता है कि रंगरूटों की भर्ती बड़े ज़ोरों से होने वाली है।

अब रही फ्रांस की बात। इसमें इतनी शक्ति और साहस नहीं कि वह इंग्लैंड से अलग होकर कुछ कर सके। केवल रूस ही एक ऐसा देश है जिसकी नीति स्पष्ट है। लेकिन वह अकेला उस वक्त तक कोई झगड़ा मोल लेना नहीं चाहता जब तक उसके हितों पर प्रत्यक्ष रूप से कोई आघात न पहुँचे। जर्मनी और इटली का काम बिना युद्ध किये ही निकल रहा है। इसलिए उन्हें युद्ध छेड़ने की क्या आवश्यकता है। इन सब बातों को देखते हुए हम इसी परिणाम पर पहुँचते हैं कि भावी युद्ध छिड़ने के विषय में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति गिरगट की तरह एक ही दिन में सात रंग बदलती है। इसलिए कुछ नहीं कहा जा सकता कि कल क्या होगा। इतना तो सभी महसूस करते हैं कि युद्ध दिनोंदिन निकट आ रहा है। बारूद मौजूद है, केवल चिनगारी की ज़रूरत है। मि० भूलाभाई देसाई ने भी जो अभी यूरोप से लौट कर आये हैं, अपनी १० जून की मुलाकात में यही कहा है कि यूरोप के राष्ट्र शांति के कितने ही इच्छुक क्यों न हों, युद्ध तो होकर रहेगा, इसे टाला नहीं जा सकता।

हमारा कर्त्तव्य—

युद्ध आज हो या कल इससे भयभीत होने की ज़रूरत नहीं है। युद्ध सदा से होते रहे हैं और भविष्य में भी इसी प्रकार होते रहेंगे। जब तक मनुष्य की मनोवृत्ति नहीं बदलेगी, जब तक गरीबों और निर्बलों का शोषण जारी रहेगा, जब तक किसान और मज़दूर भूखों मरते रहेंगे, जबतक वर्तमान विषमता कायम रहेगी और समानता का बोल बाला न होगा, जबतक 'ज़िंदा रहो और ज़िंदा रहने दो' (Live & let live) के सुनहले सिद्धांत पर 'मनसा, वाचा, कर्मणा' अमल न होगा, जब तक सत्य और अहिंसा का दौरा दौर न होगा, तबतक युद्धों का अन्त करने की बात करना बालू में से तेल निकालने के समान है।

जो हो, राष्ट्र के कर्णधारों ने इस विषय में अपनी नीति साफ कर दी है। उन्होंने बार बार कांग्रेस मंच से इस बात की स्पष्ट शब्दों में घोषणा कर दी है कि भारत किसी भी साम्राज्यवादी-युद्ध में भाग नहीं लेगा, वह ब्रिटेन की खातिर निर्बल राष्ट्रों को गुलाम बनाने का घृणित कार्य नहीं करेगा। ऐसी दशा में हमारा परम कर्त्तव्य हो जाता है कि हम अपने व्यर्थ के भेद-भावों को बालाये ताक़ रख, अपनी बिखरी हुई शक्ति को संगठित कर, खतरे की घन्टी बजने पर विषम से विषम स्थिति का मुकाबला करने के लिए तय्यार रहें। यह बात हमें कभी नहीं भूलनी चाहिए कि ब्रिटेन प्रार्थनाओं और गीदड़ भबकियों से कभी प्रभावित नहीं होता। वह उसी समय झुकता है जब उसे यह पता चल जाय कि उसका मुकाबला करने वाला निर्बल नहीं बलवान है या उसका आसन उस समय डोलता है जब वह देखता है कि चारों ओर से उसके ऊपर आपत्तियों के बादल मडरा रहे हैं। ब्रिटेन की दशा आज ऐसी ही है। हमारे लिए अब सुवर्ण अवसर है। क्या हम इससे फायदा उठाकर गुलामी के तौक़ को अपनी गर्दन पर से उतार फेंकने के लिए भारी से भारी कुरबानी करने के लिए तय्यार होंगे?

—❀—

किसी से

(रचयिता—श्री श्रीराम शर्मा 'प्रेम')

समता ! समता !! क्रांति ! क्रांति !! के अरे पुजारी ! देख इधर
भूल, फूल भावुक आशा से, बन्धु ! भटक, जा रहा किधर ?
क्यों ? उड़ता है ! अन्तरिक्ष में रे जग के आकुल-प्राणी !
बातें जग की लम्बी चौड़ी-क्या हम से हैं अनजानी !
इन कंकालों ! को देख !! अरे क्या ! फिर करवे को भूलेगा ?
दुखिया-माँ को, आर्त्त-बहन को देख ! चक्र को, भूलेगा ?
इस खादी—करघे चरखे—के पीछे हैं कितनी आशा !
कितने छोटे-विश्व बसे हैं, औ—उनका संबल—आशा !!
कितनी माँ बहनों का भोजन ! कितने आर्त्त-जनों का त्राण !
इसी हेतु खादी, भारत के वीर-सपूतों का परिधान !!
सुन ले ! सुन ले !! सुस्थिर होजा, कहता एक कहानी हूँ !
अरे ! ठहर जा !! ज़रा ठहर जा !!! कहता करुण कहानी हूँ !
अरे ! बिलखना !! भूखा शिशु !!! कर ही ले क्या ! मां साधन हीन,
दिन भर पिस-कर, भी तो उसको, मिल पाती, रोटी दो तीन !!
पराधीन-भारत की भीषण बेकारी ! पर ईश्वर मौन ।
एम० ए०, बी० ए० भूखों मरते, फिर इसकी सुधि लेता कौन ?
किन्तु व्यथित-की मूक-पुकारों से, हरि-आसन डोल उठा,
द्वापर का गो-पालक-मोहन ! मोहन—बन कर बोल उठा ।
"चरखा चक्र-सुदर्शन छू कर कोई भूखा रहे नहीं !
आज़ादी से पेट पाल सकता है कोई ! बैठ कहीं !!"
यह युग का सन्देश ! "अरे गाँवों में जाकर खप जाओ",
इसके बदले निर्मम जग की पीड़ा—लांछन अपनाओ !
अरे ! सुधा की घूँट नहीं है !! है, विष का तीखा प्याला !!!
एक बार पीकर, फिर ! फिर !! पीने की उठती हो ज्वाला !!!
तो बढ़ चल ! बढ़ चल !! इस पथ पर, यहाँ नाम का ! नाम नहीं।
जग तुझ से अनजान रहेगा ! करना इसका ध्यान नहीं !!
क्या ! चिन्ता है तेरे साथी, तुझे छोड़ ! जायेंगे दूर !!
तू ! कुछ निर्धन मां बहिनों की ! बढ़ !! झोली करदे भर-पूर ।

—आश्रम-पत्रिका से

राष्ट्रीय-पोशाक

[लेखक—श्री प्रभुदयाल विद्यार्थी, मगनवाडी. वर्धा]

यदि कोई मनुष्य आज के ज़माने में गेरुआ या लाल-पीला वस्त्र पहिने हुए दिखाई पड़ता है तो लोग समझते हैं सन्यासी या साधु होगा। अवश्य इस का मन कुछ भगवान की ओर लगा होगा । उसकी सूरत ही देखकर दिलमें तरह २ की भावनाएँ पैदा होने लगती हैं। दुनियाँ में बसने वाले लोग समझने लगते हैं कि इसने कम से कम अपने घरबार से नाता छोड़ दिया होगा । इस तरह त्याग की भावनाएँ जागृत होने लगती हैं । सचमुच मनुष्य के पहिचानने के लिये तथा उसकी तरक्की के लिए तरह २ के साधन हैं। मनुष्य की तरक्की के लिए सत्संग और बौद्धिक-ज्ञान की अधिक आवश्यकता होती है । जैसी संगति और बौद्धिक ज्ञान होगा वैसा ही उसपर असर पड़ेगा । एक मुल्क का यह क़िस्सा बहुत मशहूर है कि "एक शेर के बच्चे को कई स्यार मिलकर उठा ले गए । इस बच्चे को उन्होंने अपने रहने के स्थान में रख लिया और स्यारिनी ही उसकी सारी देखभाल रखती थी । वह बच्चा अपने को बिल्कुल स्यार की ही सन्तान समझने लगा। उसको कभी ध्यान और ख़याल भी नहीं हुआ कि मैं किस भांति यहाँ पर आ गया हूँ और न वह अपनी आज़ादी तथा शक्ति को कभी अनुभव कर सका ।" यह हुआ सोहबत का असर !

यही दशा आज हम हिंदुस्तानियों की है । हम लोग मिनट भर के लिए भी यह ख्याल नहीं करते हैं कि हम कभी आज़ाद भी थे । हाँ, अब कुछ वर्षों से आज़ादी की भावना हम लोगों में पैदा हो चली है किंतु जितना होना चाहिए उतना तो अभी नहीं हुआ है। साधु या सन्यासी चाहे कितना ही पतित क्यों न हो किंतु जब वह सन्यासी या साधु का पहनावा पहन लेता है तब वह उस बाने की इज़्ज़त के लिए अपने को उसी वेष के गुण में रखने का प्रयत्न करता है।

अगर आज वास्तव में सच्चे हृदय से अनुभव किया जाय या थोड़ी देर के लिए सोचा जाय तो यही मालूम होगा कि हमारी

आज़ादी के लिये खादी का वेष भी पहनना आज बहुत ज़रूरी हो गया है। खादी हमारी आज़ादी के लिए आज हिन्दुस्तान में अधिक से अधिक कार्य कर कर रही है और साथ ही साथ खादी हमारी उन्नति का साधन है।

दूसरे, खादी शाँति और क्राँति का द्योतक है। कोई भी मनुष्य खादी की पोशाक पहन कर अनुभव कर सकता है कि इसके अन्दर कितना अपार रहस्य भरा हुआ है। खादी के इस रहस्य को समझकर समझने वाला आदमी जितनी चाहे उतनी मानसिक शाँति का अनुभव कर सकता है। वह चाहे जितना पतित क्यों न हो, किंतु जिस समय वह अपने को खादी के वेष में देखता है तो वह भूल जाता है कि वह पतित है। जब वह विचार करने लगता है तब वह अपने को एक देश सेवक के रूप में पाता है। वह सोचता है, आज यदि मैं खादी के रूप में हूं तो इससे मेरे बहुत से ग़रीब भाइयों, माताओं और अनाथों का भला हो रहा है और उन्हें कम से कम एक वक्त की रोटी मिलती ही है। वह मुझे अवश्य ही आशीर्वाद देते होंगे। यदि देखा जाय तो एक तरह से खादी पहन कर भी मनुष्य सच्चा दानी साबित होता है। खादी पहन कर हम अपने को आज देशप्रेमी भी कहते हैं। अगर हम किसी को केवल खादी का कपड़ा पहिने हुए देखते हैं तो एकाएक हमारे दिल में उसके लिये जगह हो जाती है। हम सोचने और विचारने लगते हैं कि वह भी हमारा सहयोगी भाई है। मैं दूसरे के लिए तो प्रमाण नहीं दे सकता। हाँ, अपने लिए तो मैं दावे के साथ कह सकता हूं कि जब मैं किसी को खादी के वेष में देखता हूँ तो मुझे उससे वैसी ही हमदर्दी पैदा होने लगती है, जैसे कोई अपने घर वालों या पास-पड़ोस वालों के साथ पेश आता है। हमारी खादी की पोशाक आज हमको एक जाति के रूप में संगठित करती है। अगर आज संगठन का कोई भी साधन हो सकता है तो उसमें खादी को सर्वप्रथम स्थान मिलेगा। खादी का प्रचार ही हमको आज एक धागे और सूत्र में बांध सकता है! खादी के अन्दर वह ताक़त और शक्ति है जिसके द्वारा हिंदू, मुसलमान, पारसी और ईसाई आदि जातियाँ मिल सकती हैं और अपने को एक दूसरे का भाई २ समझ सकती हैं। मैं ऐसी शक्ति और किसी वस्तु में आज नहीं देख रहा हूँ। बिना इस कुञ्जी को लिए शाँति तथा आज़ादी जल्दी नहीं मिल सकती। हमारे राष्ट्रपति बाबू सुभाषचन्द्र बोस भी कहते हैं कि "खादी हमारे राष्ट्र की राष्ट्रीय पोशाक है। खादी आज प्रत्येक हिंदुस्तानी को पहननी चाहिए। यह हमारी आज़ादी का निशान है।"

किसी देश की सरकार को अपनी रक्षा करने के लिए तोप, बन्दूक, फौज, पुलिस, हवाई जहाज़ आदि शक्तियों की ज़रूरत पड़ती है। उसका शासन उसकी शक्ति पर निर्भर है तथा किसी से लड़ाई छिड़ने पर उस को अपनी पाशविक शक्ति पर ही विश्वास करना पड़ता है। उसी प्रकार आज हमें अहिंसा की लड़ाई के लिए खादी रूपी शक्ति की परमावश्यकता है। जब तक हम अपनी शक्ति की उन्नति नहीं करते, तब तक हमारी विजय असम्भव है।

हरेक पहलू से सोचकर यही नतीजा निकलता है कि खादी की उन्नति नितान्त आवश्यक है। आज मुश्किल से सैंकड़े में १५--२० आदमी खादी और स्वदेशी पहनते हैं और ८० आदमी विदेशी वस्त्र के ऊपर निर्भर रहते हैं। तब भला कैसे स्वराज्य मिल सकता है? आज ज़रूरत है कि सारा हिंदुस्तान खादी धारी हो जाय, तब वह स्वराज्य का हिमायती बन सकता है। आज हमारी आज़ादी की पोशाक की कितनी कमी है। प्रत्येक विचारवान मनुष्य सोच-समझ सकता है कि जब हमारी तैय्यारियों की इतनी सुस्त चाल हो रही है, फिर भी लोग शीघ्र स्वराज्य चाहते हैं और स्वराज्य के स्वप्न को देखने से बाज़ नहीं आते। कैसे अचरज की बात है कि जबतक हम लोग कर्त्तव्य-पालन नहीं करेंगे, तब तक भला फल कैसे प्राप्त कर सकते हैं? यह तो अनहोनी सी बात लगती है। अगर वास्तव में अपने मुल्क हिन्दुस्तान को आज़ाद बनाने की लग्न है तो भाइयो! आओ हम लोग खादी रूपी प्रेम के धागे में बंधें और सारे भारत में खादी का बोल बाला करें। इतना करने पर ही हम स्वराज्य की प्रतीक्षा के अधिकारी बन सकते हैं, वरना और सब व्यर्थ की बातें हैं। बिना खादी के हम आज स्वराज्य की मंज़िल तै नहीं कर सकते। आओ, ज़रा एक बार तो खादी के रहस्य को समझने का प्रयत्न करें, और गांधी जी के शब्दों को तोलें तथा अपनी राष्ट्रीय पोशाक को बढ़ायें।

सबसे बड़ी रुकावट

बीमारी समय और धन का नाश करती है। यह एक अरुचिकर और भयानक अनुभव है। इससे आय बन्द और खर्च बढ़ जाता है। हमारी उच्चाकाँक्षाएँ, सफल जीवन, समाज के प्रति हमारी उपयोगिता तथा हमारे घर, कुटुम्ब, मित्र आदि जो हमारी कीमती वस्तुएँ हैं उन सब को यह भयावनी हो उठती है। यह एक शाँत, सुखी, सन्तुष्ट और उपयोगी जीवन की सब से बड़ी रुकावट है।

—फ्रैंकलिन डी० रुज़वेल्ट

गद्य-काव्य

अमर लालसा

[ले०—श्री उपेन्द्रनाथ 'अश्क' बी०ए० एल० एल० बी०]

जब पतझड़ का राज्य था, और लताओं के आभूषण हवा में छिपे हुए निर्दय डाकुओं ने लूट लिए थे, जब वृक्ष अपनी कंगाली को हसरत भरी निगाहों से ताक रहे थे और बागों में बयार को सुगन्धि के बदले पौधों की गर्म आहें मिलती थीं, मुझे रूप और प्रेम किसी की तलाश में भटकते हुए दिखाई दिये।

उनके बाल बिखरे हुए थे, चेहरे ज़र्द थे, लब शुष्क थे और उनकी आंखों की मस्ती अस्त हो चुकी थी।

मैं ने उन्हें रोक लिया और पूछा—"तुम्हें किस चीज़ की तलाश है ?"

"बसन्त की"—उन्होंने जवाब दिया और अपनी तलाश में लग गये।

❀ ❀ ❀ ❀

जब बसन्त का राज्य था और लताएँ फूलों के गहनों से लदी हुई झूले झूल रही थीं, जब वृक्ष अपनी नई पोशाक को देखकर फूले न समाते थे, जब बाग़ों में हवा जी भर कर ख़ुशबू से अपना आँचल भर रही थी, मुझे रूप और प्रेम फिर नज़र आये।

उनके केश सुन्दरता से गुंथे हुए थे, चेहरे सुर्ख़ थे, अधरों से सुधा टपकी पड़ती थी और उनकी आँखों में मस्ती के हज़ारों समुद्र उमड़े पड़ते थे।

लेकिन वह अब भी किसी की खोज में परेशान थे।

मैं ने उनको रोक लिया और पूछा—"अब तुम्हें किस वस्तु की तलाश है।"

"अनन्त बसन्त की"—उन्होंने उत्तर दिया और फिर अपनी यात्रा पर चल पड़े।

——❀::❀——

क्या यह ठीक नहीं ?

ज़बान यद्यपि तलवार नहीं; पर तलवार से ज़्यादा तेज़ है।
बात यद्यपि तीर नहीं; पर तीर से ज़्यादा ज़ख़मी करती है।
क्रोध यद्यपि शेर नहीं; पर शेर से ज़्यादा ख़ौफ़नाक है।
नशा यद्यपि साँप नहीं; पर साँप से ज़्यादा घातक है।

(सङ्कलित)

जेल के अनुभव

मूल लेखक—आचार्य काका साहेब कालेलकर
(अनुवादक—श्री रामकृष्ण 'भारती' शास्त्री, विद्यावाचस्पति)

[८]

बरसात के दिन आ पहुँचे। बाट देख देखकर थके हुए और प्रायः निराश हो गये प्राणियों को आनन्द हुआ। जमीन महकने लगी। सन्ध्या समय के बादलों के बीच सुनहरी किनारे बहुत प्यारे दीखने लगे। किसी दिन अहमदाबाद की तरफ और किसी दिन वीरमगाम की तरफ सजल घन उतरते हुए दीखने लगे। पहले दिन शाम को हमने इकट्ठे बैठकर प्रार्थना की और इस कृपा के लिए बादल जैसे आर्द्र-हृदय से परमात्मा का गुणगान किया। सूखती हुई जमीन में से छोटे-छोटे तृणांकुर उगने लगे लेकिन उन तृणांकुरों पर मेजबानी करने वाले बछड़े या भेड़ बकरियों के बच्चे यहाँ थे नहीं। भूमिदेवी का मातृ-हृदय सफल हुआ लेकिन उसे पीने वाला कोई न मिला।

बेचारा हांकेर अप्पा यहां रहता था। वह अपने करनाटक के हपी* की तरफ के खेत देखने लगा। निरपराध नाई पोचाभाई घर के पशुओं की बातें करने लगा। अर्जुन और राव जी इन भीलों की वृद्ध जोड़ी बालकों की तरह नाचने लगी। नाच के साथ साथ गायन भी होता था। लेकिन वह शिष्ट जनों के सुनने के लायक न था। रावजी ऊँचा न था बल्कि मजबूत था। वह जेल में दूसरी बार आया था। अब उसके मुँह में बहुत कम दांत थे। ऐसा बुड्ढा बरसात की ठण्डक लगते ही एकदम जवान हो गया था और कहने लगा, "कौन जाने जब मैं घर जाऊँगा तो मेरी स्त्री जीती होगी या नहीं! यदि मर गयी होगी तो मैं दोबारा शादी करूँगा। मुझे पकाकर देने वाला कोई चाहिए न ?"

बाद में जब बाहर से नये आने वाले कैदियों की संख्या बढ़ी तब उनमें से कई कैदियों को हमारे पोर्टब्लेर (काले पानी) में बन्द कर देते। उनसे हम बाहर की बरसात के समाचार हासिल करते। जब सिपाही लोग खुश मिजाज होते तब हमारे पास बैठकर 'साबरमती' में दस फुट पानी है, बीस फुट पानी है' ऐसी खबरें भी देते।

हमारा एक दोस्त नियमपूर्वक नीम पर चढ़कर दूर तक देखता लेकिन कहता कि 'खेतों की पैदायश कैसी है ? यह यहां से ठीक नहीं कहा जा सकता।' बाहर दुष्काल हो या सुकाल इन कैदियों को उससे क्या गरज ? उनको तो आठ आठ दस-दस वर्ष यहीं बिताने हैं। कई तो ठण्डी सांस लेकर कहते, "हमारा खड्डा (कबर) तो जेल में ही है।" इन लोगों को दुष्काल से क्या मतलब ? बाहिर अनाज

---

*सन् १३४५ में कन्याकुमारी से लेकर कृष्णा तक विस्तृत विजयनगर के विख्यात् हिन्दू साम्राज्य की राजधानी। आज यह केवल एक ग्राम के रूप में विद्यमान है। इसका सारा इतिहास "A forgotten Empire" में दिया हुआ है।

...हो तो भी इनको घी-दूध तो क्या छाछ की ...तक भी मिलने वाली नहीं और बाहिर सख्त ...दुष्काल पड़े तो भी उस कारण से उनकी ...औंस की रोटियां ११ औंस की नहीं हो सकतीं। ...ने पर भी उनको बरसात की जरूरत क्यों रहती ...इसका मतलब यह नहीं कि वे कैदी होकर ...बिल्कुल न रहे। लेकिन वे कहीं दुनिया ...बुरा चाहने वाले नहीं थे? 'मनुष्य जाति ...इस अकारण और अकृत्रिम प्रेम के विषय ...के अमलदारों की अपेक्षा जेल के कैदी ...हैं' इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है।

...की निम्बोलियां अब खूब पक गईं और ...टप करके नीचे गिरने लगीं। कैदियों को ...खाने की छुट्टी थी। बीमार पड़कर हस्पताल में ...और वहाँ एकाध दिन साबुदाने की राब ...की शक्ति या युक्ति जिनमें न हो, उनको सारे ...में यही एक मीठा मेवा मिलता है। इससे वे ...के इन निंबोलियों को खाते हैं। हां, यदि ...अनुकूल हो तो हस्पतालों में जाकर स्पिरिट ...फार्म की एकाध डोज भी पी सकते हैं सही।

...गिलहरियों का करुण-क्रन्दन बंद हो गया। ...चुप-चाप पेड़ पर और नीचे आंगण में ...में दौड़ने में होड़ाहोड़ी करने लगीं। अब तक ...की गिलहरियों ने हमारे साथ दोस्ती बान्धी ...वह हमारे पास आतीं और मुँह हिलाहिला कर ...का टुकड़ा मांगतीं। हमें मिलती हुई जुवार ...रोटियों के विरुद्ध कैदियों की शिकायत तो रहती ...लेकिन कौए, चीलें और गिलहरियाँ तक जुवार ...रोटी के दिन रोटी के टुकड़े लेने के लिए बहुत ...नहीं रहती थीं। कई कैदी कहते, "क्या ...जुवार है?—ऐसी मिट्टी है जो पेट में डाली जा ...।" मैंने देखा है कि बहुत बार कैदी जुवार की ...सड़ी हुई बाजरी को भी पसन्द करते हैं। ...दिन गेहूँ की रोटी होती उस दिन गिलहरियां ...हाथ में से टुकड़े ले जातीं और कोठड़ी में आकर खातीं। एक दिन तो दो गिलहरियों में 'दौड़-होड़' चल पड़ी। उनमें से एक पीछे से दौड़ती हुई आकर मेरे कन्धे पर चढ़ बैठी। हम गिलहरियों को सवेरे सवेरे गरमागरम कांजी (ज्वार के आटे की नमकीन राब) देते। जिस दिन सवेरे कांजी देर से आती उस दिन यह गिलहरियां अधीर बालकों की तरह हमें सतातीं भी।

एक दिन सुपरिन्टेन्डेण्ट ने आकर कहा, "मैंने सुना है कि तुम गिलहरियों को खिलाते हो।" मैंने 'हां' कह दी। उसने कहा, "ठीक, तभी यहाँ बहुत सी गिलहरियां आती हैं और धूप में डाले हुए कम्बल कुतर कर खा जाती हैं। रिट्रेञ्चमैंण्ट के इन दिनों में इतना नुकसान कैसे सहा जा सकता है? तुम्हें आज से गिलहरियों को खिलाना बन्द करना चाहिए नहीं तो मुझे पिंजरे लगाकर गिलहरियों को पकड़वाना और मरवाना पड़ेगा।" मैं यह समझ गया कि भाई साहेब के हाथ में हिन्दू को जेर करने का अक्सीर इलाज आ गया है। सचमुच मैंने दूसरे दिन से गिलहरियों को खिलाना बन्द कर दिया। वह बेचारी आ आकर मेरी तरफ देखतीं। मैं उनको क्यों नहीं खिलाता? इसका कारण वे कहाँ से समझें और मैं समझाऊं भी कैसे? मेरी आंखें भर आयीं। यूरोप में महायुद्ध हुआ, इंग्लैंड का लहू सूखा, हिन्दोस्तान को असंख्य खर्च करना पड़ा। इससे सब सरकारी विभागों से खर्च में कमी करने का निश्चय हुआ और उससे एक गरीब गिलहरी को रोज मिलता हुआ रोटी का टुकड़ा बन्द हो गया? कैसी है यह कारण-परम्परा?

❁ ❁ ❁

बरसात आई और हमारा बाहर सोना बन्द हो गया। हम शाम को कोठड़ियों में बन्द किये जाने लगे। इसी दौरान में मेरी कोठड़ी में मकोड़ों की फौज फूट पड़ी। अब कैसे सोया जाये? राजनीतिक कैदियों की कोठड़ियां कुछ कोने पर थीं इससे वह

बरसात से ज्यादा भीगने वाली थीं और उनमें मकोड़े भी जरूर होते थे। दिन को चबूतरे पर सोये हों तो वहाँ मकोड़े आते और रात को कोठड़ी में भी और वे कोई दस-पाँच या सौ-पचास तो थे नहीं बल्कि यह ऐसी काली फौज थी कि सारा फ़र्श ढक जाता। दूसरे ही दिन एक राजनीतिक कैदी ने अहिंसक होते हुए भी फ़िनाइल मंगाकर हरएक द्वार पर अभिषेक करना आरम्भ कर दिया। इस जर्मन* इलाज के सामने मकोड़ों की फ़ौज न ठहर सकी। रही सही कमी पूरी करने के लिए मकोड़ों का एक नया दुश्मन जाग पड़ा। मकोड़े चबूतरे पर फिरने लगे। इसलिए हमारे पूर्व परिचित कावर भी मंजुल शब्द करते और अपने पंखों के पर में छुपा हुआ श्वेतवर्ण प्रकट करते और जिस प्रकार बच्चे किशमिश खाते हैं वैसे ही मकोड़े खा जाते।

❋ ❋ ❋

पतंगों की तरह मकोड़े भी मृत्यु के विषय में बेपरवाह दीखते हैं। मैं बचपन से देखता था कि रात को जब हम दीपक जलाते, तब कितने ही मकोड़े इसके आस पास भक्ति भाव से परीक्षण करने लगते। घण्टों तक फिरते ही रहते और अन्त में मर भी जाते। जेल के मकोड़े हौज में पानी पीने या नहाने आते। चलते चलते हौज़ के किनारे तक पहुँचते कि वहाँ पैर फिसल जाता और टप करके अन्दर जा पड़ते। जब मैं नहाता होता तो जितनों पर ध्यान पहुँचता उतने निकाल कर बाहर दूर फेंकता लेकिन यह हठीले मकोड़े ज़मीन पर पैर रखते कि तुरन्त ही फिर हौज की तरफ़ दौड़ते और फिर पानी में पड़ जाते। मुझे उनकी बेवकूफी पर खूब गुस्सा आता। मैंने मन में कहा, "यह क़म्बख्त पहली बार पानी में गिरे तब तो अजाने गिरे लेकिन पानी में पड़ने के बाद जब मैंने डुबकियाँ खाते हुए इनको अधमरे होने पर बाहिर निकाला तो इनका अनुभव कहाँ गया? उन्होंने हौज में दूसरे कितने मरते हुए पतंगों को भी देखा है तो भी इन्हें अक़्ल नहीं आती। कितनों को तो मैंने ध्यानपूर्वक तीन-तीन, चार-चार बार बाहर निकाला तो भी यह जाति अनुभव से सीखने वाली ही नहीं। मैंने निश्चय किया कि कबूतरों की तरह मकोड़े भी बेवकूफ प्राणी हैं। लेकिन फिर विचार आया कि मनुष्य जाति भी कितनी बेवकूफ है? विषयों (अय्याशी) में पड़कर क्षीण हो जाती है, मर जाती है तो भी विषय नहीं छोड़ती। यह अनादिकाल से संसार रूपी चक्र में घूमती है लेकिन राम नाम नहीं लेती। मनुष्य शादी करता है, पछताता है—शादी करता है—पछताता है, तो भी शादी किये बगैर नहीं रहता और हम हिन्दोस्तान के लोग दूसरों की मदद पर विश्वास रखते हैं और उनके जुल्म के आधीन हो जाते हैं। हमने इतिहास काल में कई बार यह अनुभव हासिल किये हैं, तो भी वही बात फिर फिर करते आये हैं, तो मकोड़ों की इस आत्म-हत्या को देखकर मुझे यह क्यों मानना चाहिए कि यही एक जाति बेवकूफ है?

'इन्द्रगोप' यह नाम बहुत कम लोगों ने सुना होगा लेकिन ऐसा आदमी शायद ही कोई मिलेगा जिसने इन्द्रगोप को न देखा हो! बरसात के आरम्भ में अनार के दानों की तरह लाल और मखमल जैसे कोमल नन्हें जीव ज़मीनों में से बाहर आते हैं और फिरते ही रहते हैं। यह आठ-दस दिन तक ही दीखते हैं और साल में आठ दिन की ज़िन्दगी भोगकर लोप हो जाते हैं। इन आठ दिनों में यह प्राणी अपना बचपन, यौवन और बुढ़ापा भोग लेते हैं और अपने अण्डे श्रद्धापूर्वक भूमिमाता को सौंप कर इस दुनियां से विदा लेते हैं। उनकी सन्तान-परम्परा कैसे चलेगी? इसकी शंका उनके मन में नहीं रहती। उनकी ज़ाति का नाश होगा तो दुनियां को कितना नुकसान होगा? ऐसा डर उनके मन में नहीं रहता। नये वर्ष (वर्ष का मूल अ

*सन १९१४ में शुरू होने वाले यूरोप के महायुद्ध में जर्मनों द्वारा आयोजित क्रूर उपाय।

...वर्षाकाल है) उनके बाल-बच्चों को कौन संभा-... ? ऐसी मनोव्यथा उन्हें नहीं सताती। वह ...म्भरा प्रकृति-माता पर विश्वास रखकर ...श्चिन्तता से अपनी जीवन-यात्रा पूरी करते हैं। ...मनुष्य को ही अपने वंश और वारिस (हकदार) ...इतनी चिन्ता रहती होगी ? 'प्रजातन्तु अव्य-...च्छिन्न रहे' इतने पर ही विश्राम नहीं लेता प्रत्युत ...यों के लड़के तक खावें तो भी खतम न हो—...का संग्रह किये बिना वह शान्ति से नहीं मर ...ता।

...इन्द्रगोप की रक्षा इन्द्र करता है। क्या मनुष्य ...की रक्षा करने हारा कोई नहीं ? या ऐसा मान ले कि ...मनुष्य ने देखा होगा कि ईश्वर के सिर पर बहुत ...चिन्ता है, चलो और कुछ नहीं तो हम अपना ...उठाकर उसका उतना भार हलका करें—क्योंकि ...स्वर्वीर्य गुप्ता हिमनो: प्रसूति:" रघुवंश २।४ ...मनुष्य के ऐसे उद्गार सुनकर आदि मनु को कितनी ...चिन्ता हासिल हुई होगी।

...इसी दिन मौलाना साहेब के साथ चलती हुई ...बातों में उनके मुँह से एक वाक्य निकला—जब हम ...मनुष्य से कुछ मांगते हैं तब वह नाराज हो जाता है। ...इसी से कुछ न मांगने में ही अकलमन्दी है, गौरव ...है। इसके विपरीत ईश्वर मांगने पर ही राजी रहता ...है। इस जैसा दूसरा कोई गुनाह नहीं कि हम ईश्वर ...से कुछ न मांगे। हमारा गौरव इसी में है कि हम उस ...बादशाह के बादशाह की स्तुति करें और सब कुछ ...उसी से मांगे। मनुष्य का यही धर्म है कि वह ईश्वर ...से सब कुछ मांगे, वह जिस स्थिति में रखे, उसमें ...सन्तोष माने और उसकी बन्दगी करे।

❀ ❀

सुबह होते ही पक्षी जल्दी से उठकर किलकज्ज ...किलकिल किलकल आवाज़ करते। जब शाम को ...लौटते तब भी सोने से पहले वैसी ही श्रवण-रुचिर आवाज़ करते। द्विजों का यह सूर्योपस्थान मुझे मेरी प्रार्थना की याद दिलाता। एक वर्ष की जेल में मेरी प्रार्थनाओं में एक ही दिन चूक हुई थी। गर्मी में पक्षी बहुत जल्दी उठते हैं। जो सबसे पहले उठता है वह अपनी कलध्वनि शुरू कर देता है। तुरन्त ही दूसरे पाँच-सात पक्षी अलग अलग पेड़ पर उसका प्रतिश्रवण करते हैं। बाद में सारा संघ अपनी अमृतवाणी का प्रवाह चलाता है। पक्षियों के इस मिश्रित गायन में न स्वर का मेल था और न किसी प्रकार की तालबद्धता ही थी, तो भी इस विशृंखल स्वर-सम्मेलन में कितना अनुपम माधुर्य होता है। उषा और सन्ध्या चाहे जितने समृद्ध रंगों से सजी हुई हो तो भी ऐसे निसर्ग संगीत के बिना वह सूनी-सूनी ही लगती है।

❀ ❀ ❀

एक दिन खूब बरसात हुई। सब पानी पानी हो गया। नालियां और खड्डे इतने भर गये कि उनके निश्चित स्थान की खबर ही न मिलती। जब इस पानी पर बरसात पड़ती तब ऐसा जान पड़ता था मानो नीचे का पानी उछलकर ऊपर की बरसात का स्वागत कर रहा हो। हम बचपन में इसे 'चवन्नी दुवन्नी की बरसात' कहते थे, क्योंकि ऐसा दिखाई देता कि आकाश में चांदी की चमकती हुई दुवन्नियां और चवन्नियां जमीन पर गिरकर उछलती और चमकती हों। इस आधार पर हमें यह नाम सूझा। बरसात कुछ थमती कि जीवन के साथ उपमा देने योग्य बुलबुले तैयार होते और पानी के ऊपर बिना उद्देश्य के इधर उधर फिर कर एक के बाद एक फूट जाते लेकिन उनके लिए कोई विलाप नहीं करता। मनुष्य और बुलबुले में इतना भेद तो है ही !

मेघराज ने बहुत दिनों तक अपनी कृपा बरसाना बन्द कर दिया। पानी सूखने लगा। छोटे २ खड्डों के नीचे शैवाल जमने लगी और इस शैवाल पर मोती

जैसे पतले बुलबुले जमने लगे। झम्मटमल और मेरे बीच में विवाद शुरू हुआ। 'क्या इस शैवाल ने पानी में रहती हुई हवा को आहार के रूप में खेंचकर यह बुलबुले बनाये और इकट्ठे किये हैं या शैवाल के श्वासोच्छ्वास में से निकलने वाली हवा में से यह बने हैं? इतनी बात ठीक है कि बुलबुले इतने छोटे थे कि वह खड्डों के तल को छोड़कर, पानी को पार कर ऊपर न आ सकते थे, नीचे ही नीचे बैठ जाते। अन्त में जब खड्डे पूर्णरूप से सूख गये तब इन बुलबुलों के अन्दर का 'बुलबुलाकाश' महदाकाश के साथ एक रूप हो गया और उन दोनों के बीच के भेद की निशानी भी न रही।

❀ ❀ ❀

लिखितमपि ललाटे प्रोज्झितुं कः समर्थः* ?
माथे पर लिखे हुए को कौन मिटा सकता है?

आंगन में उगी हुई घास को खाने वाली भेड़-बकरियां जेल में न थीं तो भी अन्दर का घास सलामत न था। एक दिन कैदियों का एक टोला दान्तियां हाथ में लेकर आया और उसने एक ही घण्टे में सारा खेत नक्षत्र (बिना घास१ के) कर डाला। जमीन नंगी हो गयी इससे कैदियों के छिपाये हुए प्याज, लहसन, मूलियां और थोड़ी सी बीड़ियाँ जाहिर हो गयीं। दान्तियों पर देख रेख करने वाले सिपाहियों ने पहले तो यह सब चीजें जब्त कीं लेकिन तुरन्त ही उनको दया धर्म (?) सूझा और उन्होंने उनकी खैरात कैदियों में कर डाली। बाद में लट्ठधारी कैदियों का टोला आया। जिस तरह परशुराम ने कीर्तवीर्य के सहस्रबाहु काट डाले थे उसी तरह उन्होंने नीम के सब पेड़ों की बहुत सी शाखायें कलम कर डालीं। हमारे दान्तुनों के लिए उजाड़ हो गया और गिलहरियों के खेलकूद का क्षेत्र कम हो गया। मेरे अरीठे के पेड़ पर नीम की एक बड़ी शाखा फैली हुई थी। जिस तरह जी हजूरी से मनुष्य का विकास नहीं होता, वैसे ही नीम की छाया के नीचे मेरा अरीठे का छोटा सा पेड़ भी दब सा गया। मैंने यह अच्छा मौका देख-कर अरीठे की सेवा की और उसके लाभ के लिए नीम वाली बड़ी डाल कटवा डाली। सचमुच खुले वातावरण की स्वतन्त्रता मिलते ही अरीठा देखते ही देखते बढ़ने लगा। यह एक सार्वभौम नियम है कि स्वतन्त्रता के बिना विकास नहीं होता।

❀ ❀ ❀

मेरी कोठड़ी में बहुत ऊँचे एक सूराख था। एक चिड़िया की दृष्टि उस पर पड़ी। उसने जल्दी ही वहाँ अपना घोंसला बनाया। गिलहरियों ने मेरे उदयपुरी ऊन के आसन के टुकड़े तो कर ही डाले थे। चिड़िया ने अपनी पसन्द के टुकड़े खींच-खींच कर महल सजाया। इस भांति ६ बजे कोठड़ी में बन्द होने के बाद भी मुझे साथी मिल गया। चिड़िया हमेशा खुश रहने वाला प्राणी है। सारा दिन बात करते तो यह थकता ही नहीं और औरतों की तरह एक ही बात बार बार कहते घबराता नहीं। मैं अपनी कोठड़ी में इसके लिए रोटी के टुकड़े तो रखता ही था इसलिए उसे अन्न और आश्रय की पूरी पूरी सुविधा मिली और पक्षी होने के कारण वह कपड़ा तो मांगता ही नहीं था।

समय आने पर घोंसले में छोटे छोटे बच्चे चिव् चिव् चिव् करने लगे। चिड़िया जमीन से रोटी के टुकड़े चुन लेती, चोंच में दबा दबाकर उनको नरम करती और ऊपर जाकर बच्चों को खिलाती।

---

*पूरा श्लोक यह है:—
सहि गगन विहारी कल्मष ध्वंसकारी,
दश शत कर धारी ज्योतिषां मध्यचारी।
विधुरपि विधियोगाद्ग्रस्यते राहुणासौ,
लिखितमपि ललाटे प्रोज्झितुं कः समर्थः॥

१—दूसरी तरफ़ क्षत्रिय बिना।

...री कोठड़ी में रहने वाली गिलहरी से चकली का ...वास सहन नहीं हुआ। लेकिन क्या करे? वह ...वार के सूराख तक पहुँच न सकी थी नहीं तो ...लहरी ने चिड़िया के अण्डों को हड़प ही कर डाला ...ता। गिलहरियां अण्डे खाती हैं यह बात मुझे ...टा चक्कर नं० ४ छोड़ने के बाद मालूम हुई।

❀ ❀ ❀

जेल की अशुद्ध हवा, घी और दूध रहित खूराक और कच्ची रसोई--इन तीनों के संयोग से मैं कमजोर होने लगा। मैंने बेंत की कुर्सियां बुनना छोड़ दिया और दर्जी का काम माँग लिया। मेरा वजन खूब घट गया। जेल के डाक्टर ने क्षयरोग की इस प्रारम्भिक तैयारी को देखकर मेरा स्थान तबदील करने की आवश्यकता देखी। मुझे फिर से यूरोपियन वार्ड में भेजना निश्चित हो चुका था। इसलिए मैंने दुखी हृदय से अपने पाँच महीने के मानव तथा पक्षी मित्रों से विदा ली। (क्रमशः)
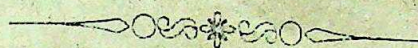
अब भी सोते रहेंगे क्या? ज़रा सोचिये तो!

१—भारत में अनपढ़ों की तादाद ९५ फी सदी है।

२—इस मुल्क के तकरीबन दस लाख आदमियों को दोनों वक्त भोजन भी नहीं ...ता।

३—अब तक हिन्दुस्तान से ४ अरब रुपये का सोना विदेशों को जा चुका है।

४--अंग्रेजी सरकार ने भिन्न-भिन्न चुंगियों व टैक्सों से हिन्दुस्तान पर ९॥ अरब ...का बोझ डाल रखा है।

५—हमारे देश में ८१ लाख रुपये के सिगार व सिगरेट बाहर से आते हैं और ...॥ लाख एकड़ ज़मीन पर तमाखू बोया जाता है।

६—विदेशी माल मंगाने में भारत का प्रतिवर्ष १ अरब २५ करोड़ २२ लाख ५० ...र रुपया विदेशों को चला जाता है।

७—हिन्दुस्तान हर साल ४० करोड़ का चावल विदेशों को भेजता है जब कि यहाँ ...वें हिस्से को सिर्फ दिन भर में एक बार भोजन मिलता है।

८—हमारे देश में प्रति घंटा औसत २९ माताओं की मृत्यु होती है।

९—इंग्लैंड अपनी आमदनी का १० से २० प्रतिशत शिक्षा पर खर्च होता है, हिन्दुस्तान ...र्फ दो प्रतिशत.

आप मानें या न मानें

१—जर्मनी ने एक ऐसी दियासिलाई की डिब्बी ईजाद की है जो बर्फ़ या पानी में रखने से फौरन जल उठती है।

२—अमेरिका के एक वैज्ञानिक ने एक ऐसी मशीन बनाई है जो किसी भी व्यक्ति के लिए अपने आप कपड़े तय्यार करती है।

३—जर्मनी के एक साइंसदाँ ने एक ऐसा रेडियो ईजाद किया है जिससे घास के बढ़ने की आवाज़ भी साफ तौर पर सुनाई दे सकेगी।

४—एक अमेरिकन रसायन-शास्त्री ने एक ख़ास क़िस्म की घास व लकड़ी के बुरादे से बनावटी रेशम बनाया है। रेशम इतना बारीक है कि उसके आध सेर गोले को फैलाया जावे तो वह 'लाल सागर' से 'प्रशांत महासागर तक पहुँच सकता है। इसका सिला हुआ पूरा सूट हथेली में आ सकता है।

५—रूस के साइंसदाँ गेहूँ का एक ऐसा पौधा पैदा करने के सम्बन्ध में परीक्षण कर रहे हैं जो स्थायी रूप से खेत में रहेगा अर्थात् इस प्रकार के गेहूँ को दो बार बोने की ज़रूरत पेश नहीं आयेगी बल्कि ख़ुदरो पौधों की तरह यह पौधा बार २ फूट निकलेगा।

६—लोज़ (पौलैंड) के एक नौजवान कारीगर ने शीशे से सोना बनाने का आविष्कार किया है। वैज्ञानिकों की कमेटी इसकी जाँच कर रही है।

७—एक वैज्ञानिक ने एक जादू की आँख बनाई है, जिसके द्वारा १०० मील की दूरी तक की चीज़ आसानी से देखी जा सकेगी।

८—अमेरिका में सरकारी तौर पर बादल बरसाने वाली संस्थाएँ चल पड़ी हैं। वे हवाई जहाज़ों में धूल भर कर बादलों से ऊँचा उड़ाती हैं। वहाँ पिचकारी की तरह धूल के कण बादलों के ऊपर बखेरे जाते हैं। वे कण बिजली से युक्त होते हैं। अतः आपस में मिलने के लिए दौड़ते हैं, और अपने साथ पानी के कण भी समेट कर इतने भारी कर देते हैं कि पानी बरसने लगता है।

९—एक ऐसी चारपाई बनाई गई है जो बिजली की मोटर से हिलाई जाती है। प्रति मिनट ८० बार चारपाई हिलती है। इस चारपाई से अनिद्रा रोग दूर हो जाता है।

१०—एक अमेरिकन डाक्टर ने एक बूढ़े की आँखें एक ऐसे युवक के लगादीं, जिसकी आँखें एक दुर्घटना में नष्ट हो गई थीं।

११—फ्रांस ने जमींदोज़ क़िलों का एक ऐसा सिलसिला बनाया है, जिसमें युद्ध होने पर १० लाख फ्रांसीसी तीन मास तक आराम से रह सकेंगे।

—*—

काया कल्प का एक सफल प्रयोग

लेखक—श्री स्वामी केशवानन्द

ई सवी सन् १२—१३ की बात है कि जब मैं फाजिलका के 'साधु आश्रम पुस्तकालय' को स्थायी रूप दे रहा था। उस समय मेरे पास एक रोडासिंह नाम का सिपाही आया करता था। वह गुरुमुखी, उर्दू और हिन्दी का अच्छा विद्वान् था। उसको ..., जड़ी-बूटी से अच्छा प्रेम था इसलिए वह ...कालय और आश्रम से सम्बन्ध रखता था। ...में अभ्यास करते २ वह एक अच्छा योग्य वैद्य ...गया था। उसी ने मुझे एक बूढ़े मुसलमान ...से मिलाया जो पहले जलालाबाद रह चुका ...। उस वृद्ध ने कहा कि जब मैं वहां रहता था तो ...१८-१९ वर्ष की लड़की के तमाम बाल सफेद ...गये और वह इसके लिए चौबीसों घण्टे चिन्ता ...व रोने धोने में लगी रहती थी, उसका शरीर ...पील पड़ गया था। उन्हीं दिनों वहाँ एक ...आ गये। उन्होंने उसे सम्भालु के बीजों का ...कराया और कुछ समय में उस युवती के नीचे ...सभी बाल काले रंग के निकल आये और सारा ...रक्त से निचुड़ने लगा, उसकी आंखों और ...से अनुपम तेज टपकने लगा। उस वृद्ध ने अपनी ...देखी यह घटना सुनाई।

सन १४—१५ के बीच हरिद्वार कुम्भ के बाद ...में बहुत से साधु-सन्त आश्रम फाजिलका ...आकर मेरे पास ठहरे, क्योंकि उसका अधिष्ठाता ...दिनों मैं ही था। वे साधु-सन्त सभी अच्छे पढ़े-लिखे और अनुभवी थे। हमारी अनेक चर्चाओं में यह भी बात सम्मुख आई और उसके निर्णय के लिए एक महात्मा के साथ मैं थाना पुलिस में गया, जो उन्हीं दिनों में डाकखाने के साथ स्टेशन की सड़क पर नया बना था। हम उस वृद्ध सिपाही के पास गये, वह नारनौल के समीप किसी गाँव का रहने वाला था। हमारे पूछने पर उसने यह योग स्पष्ट बतला दिया और एक जीवन-मुक्त नाम के महात्मा ने उसे उसी प्रकार बनाकर गुजरांवाला में जा कर प्रारम्भ किया। किन्तु वे उसे निभा नहीं सके और दो मास के स्थान में शायद दो सप्ताह ही उसे सेवन कर सके थे। अतः पथ्य से न रहने के कारण उन्हें सफलता प्राप्त नहीं हुई।

"कल्प पञ्चकम" नाम की एक पुस्तक वेंकटेश्वर प्रेस में छपी है। उसमें निर्गुण्डी कल्प भी है। सम्भालु ही का नाम संस्कृत भाषा में निर्गुण्डी है। यह पठान कोट से लगाकर ऊपर के सारे पहाड़ी प्रदेश में अधिक से अधिक संख्या में खड़ी है। उधर के सभी लोग इसे 'बणाह' के नाम से पुकारते हैं। यह सभी बगीचों और आम स्थानों में बरसात के दिनों में आसानी से लग जाती है। काटकर कलम लगाने से हरी हो जाती है। इसी के बीजों से नीचे लिखा योग बनाया जाता है:—१ भाग सम्भालु के बीज का चूर्ण, १ भाग गो घृत, १ भाग चीनी इन तीनों को मिलाकर एक मर्तबान में बन्द कर, गेहूँ व जो के ढेर में १५-२० दिन गाड़ देने से योग हो जाता है। तैयार होने पर २ तोला प्रतिदिन खायें।

नमक, मिर्च, मसाला आदि किसी भी अवस्था में न खायें। एक मात्र जौ गेहूँ की ही रोटी घी से खायें। और फिर देखें कि यह योग कितना चमत्कार दिखाता है। बात बहुत पुरानी हो गई है। परन्तु फिर भी इतनी उलट पुलट की सम्भावना नहीं है।

आज महामना मालवीय जी का काया-कल्प प्रयोग हमको प्राचीनता की ओर ले जा रहा है! अब लोग चर्क, सुश्रुत और वाग्भट्ट आदि के पुराने पन्नों को उलटने लगे हैं जिनमें सैकड़ों काया कल्प के योग हैं। वैद्यों का कर्त्तव्य है कि देश, काल, शक्ति अनुसार उन योगों का प्रयोग प्रारम्भ कर दें। श्रीगणेश तो श्री म० म० मालवीय जी द्वारा हो ही चुका है। उनका कथन है कि कायाकल्प से आँखों में ज्योति, रंग में निखार, वाणी में बल और देह में स्फूर्ति, आ गई है। मैंने यह इस युग का आँखों देखा प्रयोग इस लिए लिखा है कि वैद्यगण इस पर ध्यान दें और नये नये परीक्षण शुरू करके इस दिशा में प्रगति करें। 'दीपक' के 'स्वास्थ्य साधना' स्तम्भ में इस प्रकार की चर्चा को स्थान दिया जायेगा। आशा है वैद्यगण अपने अनुभवों को भेजते रहेंगे।

काम की बातें

१—दूध पर कभी फूंक न मारिये। ऐसा करने से प्राण विरोधी वायु, जिसे अंग्रेजी में (Carbon dioxide) कहते हैं, दूध में मिलकर उसे गंदा कर देती है।

२—सेब और आलू का छिलका कभी न उतारिये। इनके छिलके के अन्दर शक्ति वर्द्धक तत्व होते हैं।

३—चावल का सारा तत्व मांड में ही होता है। अतः चावल बनाते समय इस बात का खयाल रखना चाहिए कि पानी इतना ही डाला जावे कि फिर उसे निकालने की ज़रूरत ही न पड़े।

४—सुबह उठकर मिठाई कभी न खाइये। इससे पाचन-क्रिया में बाधा पड़ती है।

५—जिस चारपाई में खटमल हों, गंधक की धूनी देने से नहीं रहते।

६—समुद्र क्षार आटे में गूंधकर चूहों के बिलों में रखने से चूहे नहीं रहते।

७—लेम्प के पास ज़रा सा प्याज़ रख देने से पतंगे नहीं आते।

८—बिच्छू के डंक पर दारचीनी का तेल और भिड़ के काटे पर मिट्टी का तेल लगाने से दर्द दूर हो जाता है।

९—ठण्डे पानी में भिगोये तौलिया से शरीर को खूब रगड़ कर सफेद मिट्टी या नशास्ता मलने से अलाइयां दूर होती हैं।

तम्बाकू-चाय निषेधक संघ

उद्देश्य—देश में तम्बाकू-चाय का प्रचार इतना बढ़ गया है कि समाज में ये आदर-सत्कार की चीज़ें समझी जाने लगी हैं। फलस्वरूप देशवासियों का अपार धन, स्वास्थ्य तथा समय नष्ट हो रहा है। इस भयंकर हानि को रोकने के लिए यह संघ स्थापित किया गया है।

कार्यक्रम—यह संघ निम्नलिखित साधनों द्वारा उपरोक्त उद्देश्य को पूरा करने का उद्योग करेगा:—

(१) संघ कार्यालय से तम्बाकू व चाय की हानियाँ व उनके छोड़ने के उपाय बताने वाले सरल भाषा में लिखे छोटे २ पैम्फ़लेट प्रकाशित करना।

(२) इन दुर्व्यसनों को छोड़ने के प्रतिज्ञा-पत्र भरवाकर अधिक से अधिक लोगों को संघ के सदस्य बनाना।

(३) संघ के सदस्यों द्वारा स्थान २ पर प्रचार करके संघ की शाखायें स्थापित करना।

(४) मासिक पत्र 'दीपक' द्वारा संघ के उद्देश्यों का प्रचार करना। जो सज्जन इन दुर्व्यसनों को छोड़कर संघ के सदस्य बनेंगे व दूसरों को बनायेंगे उनके नाम 'दीपक' में प्रकाशित किये जावेंगे।

(५) स्थान-स्थान पर वाचनालय, पुस्तकालय, पाठशाला आदि स्थापित करके जनता में अक्षर-ज्ञान प्रचार करना।

नियम

१—प्रत्येक स्त्री-पुरुष, जो तम्बाकू, चाय का सेवन नहीं करता तथा संघ के उद्देश्यों की पूर्ति में हर प्रकार से सहयोग देगा वह संघ का सदस्य बन सकेगा।

२—तम्बाकू, चाय सेवन करने वाले व्यक्ति भी यदि इन्हें छोड़ने की प्रतिज्ञा करें तो संघ के सदस्य बन सकेंगे।

३—संघ के सब सदस्यों को यह प्रतिज्ञा-पत्र भरना होगा।

४—संघ का कार्यालय साहित्य सदन, अबोहर में रहेगा।

नोट—संघ की ओर से ग्रामीण वाचनालय व पुस्तकालय के लिए उत्तमोत्तम पत्रों व पुस्तकों की सूची भी प्रकाशित होगी। संघ की ओर से प्रकाशित यह सब सामान अर्थात् सदस्यता व प्रतिज्ञापत्र के फार्म, उत्तमोत्तम पत्र-पत्रिकाओं व पुस्तकों की सूची, तम्बाकू-चाय की हानियों सम्बन्धी पैम्फ़लेट आदि संघ के कार्यालय से डाक-व्यय सहित मूल्य भेजने पर मिल सकेगा।

अक्षर प्रचार योजना

इस बात से सभी सहमत हैं कि अबतक देश में प्राइमरी शिक्षा पर जो रुपया खर्च किया गया है तथा किया जा रहा है, वह बिल्कुल व्यर्थ ही गया है क्योंकि पाठशाला से निकलने के बाद गांव में पढ़ने लिखने के साधन व प्रवृत्ति के अभाव में बालक, पाठशाला में जो कुछ सीखा था उसे भूलकर २-३ वर्ष में फिर निरक्षर ही रह जाते हैं। इसलिए गाँव-गाँव में वाचनालय-पुस्तकालयों का जाल बिछा देने की आवश्यकता है जिनका प्रयोग करके बालक, पाठशाला छोड़ देने के बाद भी, अपनी साक्षरता बनाये रखें तथा उत्तरोत्तर ज्ञान-वृद्धि करते रहें। कम से कम व्यय में वाचनालय व पुस्तकालय नीचे लिखे अनुसार प्रत्येक गाँव में खुल सकता है:—

वाचनालय—(क) साधारण रूप में वाचनालय चलाने के लिए १०) वार्षिक व्यय होगा जिसमें ४ पत्र आ सकेंगे। एक तो अपने जिले या इलाके से निकलने वाला ३) वार्षिक में साप्ताहिक पत्र जिसके द्वारा इलाके व ज़िले की सभी आवश्यक हलचलों के अलावा देश की भी महत्वपूर्ण घटनाओं का परिचय मिले। २), २॥) वार्षिक मूल्य वाले ३ मासिक पत्र, जिनमें से—१ बालोपयोगी, १ स्वास्थ्य सम्बन्धी व १ कृषि व घरेलू धन्धों विषयक। (ख) २०) वार्षिक में अधिक अच्छे ढग से वाचनालय चल सकता है जिसमें पत्रों की संख्या दुगनी हो सकती है और वे विविध विषयक मंगाये जा सकते हैं। (ग) ४०) वार्षिक में तो एक बड़े गांव की आवश्यकतानुसार एक अच्छा वाचनालय चल सकता है जिसमें एक दैनिक तथा अनेकों साप्ताहिक व मासिक पत्र मंगाये जा सकते हैं।

पुस्तकालय—प्रारम्भ में एक सौ रुपये की निम्नलिखित ५ विषयों की चुनी हुई पुस्तकें रखी जावें—(१) बालोपयोगी (२) स्त्रियोपयोगी (३) कृषि व पशु-पालन सम्बन्धी (४) स्वास्थ्य रक्षा, व्यवहारिक व राष्ट्रीय ज्ञान सम्बन्धी (५) कथा-कहानी व जीवन-चरित्र। पुस्तकालय और वाचनालय का एक ही स्थान पर होना आवश्यक व उपयोगी है, जिसके लिए गाँव में अमूल्य मकान तथा व्यवस्था, पुस्तक लेन देन सम्बन्धी काम करने के लिए कोई सेवा भावी व्यक्ति मिल सकेगा।

तम्बाकू-चाय के छोड़ने से जो पैसे बचें वे ही लोग वाचनालय-पुस्तकालय चलाने के लिए दें। आरंभ में दोनों का खर्च न चले तो वाचनालय ही शुरू किया जावे। उसके लिए (...) गाँव का एक सम्पन्न व्यक्ति दे सकता है अथवा घर २ से चन्दा इकट्ठा किया जाये। बाद में काम चलने पर तथा लोगों की इस ओर प्रवृत्ति होने पर सभी इसके लिए सहायता देने लगेंगे।

तम्बाकू भयंकर ज़हर है

विज्ञान ने सिद्ध कर दिया है कि तम्बाकू में अनेकों विष हैं तथा इसमें खाने या पीने योग्य कोई भी पौष्टिक पदार्थ नहीं है। एक पौण्ड तम्बाकू में जितना निकोटिन विष होता है उससे ३-४ मिनट में ही २॥ हज़ार कुत्तों की मृत्यु हो जाती है और इसकी सिर्फ एक बून्द बिल्ली, खरगोश आदि जानवरों के प्राण लेने के लिए काफ़ी होती है।

तम्बाकू का दूसरा ज़हर कोलोडाइन तथा इसके धुएँ का प्रुसिक एसिड ज़हर भी अत्यन्त भयंकर होता है। डाक्टरों का मत है कि १८ और ३५ वर्ष के बीच की आयु में मनुष्यों की जो मृत्यु होती हैं उनमें आधे के लगभग तम्बाकू से होती हैं।

शारीरिक व मानसिक हानियां—तम्बाकू के खाने, पीने, सूँघने व चबाने से पाचनशक्ति, आंखों की ज्योति, सुनने की ताक़त, प्रजनन व स्मरण शक्ति, तथा बुद्धि निर्बल हो जाती है। बदहज़मी, कब्ज़, सिर दर्द, मुँह, दांत व गले की बीमारियां, अनिद्रा, नपुन्सकता, पागलपन, दमा, खाँसी व क्षय आदि फैंफड़ों की बीमारी, हृदय-रोग, छाती का दर्द, दिल की धड़कन, कलेजे की घबराहट आदि भयंकर रोग पैदा हो जाते हैं। सादा-सात्विक भोजन व फल अच्छे नहीं लगते।

आर्थिक हानियां—दुनियाँ भर में प्रतिवर्ष लगभग १२ अरब रुपये का तम्बाकू खपता है। अकेले भारत में ५० करोड़ रुपये सालाना का तम्बाकू खपता है। यहाँ पर १९ लाख बीघा ज़मीन में तम्बाकू बोया जाता है तथा कई करोड़ रुपये का तम्बाकू व सिगरेटें विदेशों से आती हैं। कारखाने, दियासलाई, विज्ञापन, हुक्का-चिलम व अग्नि आदि का व्यय इससे अलग है। ७५ फी सदी अग्नि-काण्ड तम्बाकू पीने वालों की बदौलत होता है। तम्बाकू इतना व्यय-साध्य, हानिकर व घातक होते हुए भी दुनियां इस पर लट्टू है। यह बुद्धि का दिवाला नहीं तो और क्या है ?

——co——

चाय भी घातक पेय है

चाय के अन्दर थीइन व टैनिन नामक विष क्रमशः ६ व १६ अंश प्रतिशत होता है। इसके पीने से अन्तड़ियों में विकार, मुख का रस सूख जाना, मन्दाग्नि, कब्ज़, अनिद्रा, क्षणिक उत्तेजना के बाद शिथिलता व सुस्ती, स्वभाव में चिड़चिड़ापन, प्रजनन शक्ति का क्षय, प्रदररोग, रक्त की खराबी, स्नायु शक्ति का नाश, चिकनाई की कमी, आदि रोग होते हैं।

इतनी भयंकर होते हुए भी चाय का प्रचार दिनोंदिन व्यापक होता जा रहा है। घर में अमृत-तुल्य गोरस—दूध, दही, छाछ आदि को छोड़कर लोग चाय पर बुरी तरह से लट्टू हैं।

——co——

प्रतिज्ञा पत्र

श्री मन्त्री महोदय,
तम्बाकू-चाय निषेधक संघ, साहित्य सदन, अबोहर (पंजाब)

मैं विद्वानों के कथन और अपने अनुभव से यह भली प्रकार जान चुका हूँ कि तम्बाकू, चाय अत्यन्त हानिकर वस्तुएं हैं, जो मेरे तन, मन, धन और देश के लिये नाशकारी हैं। इसलिए मैं सदा के लिए तमाखू, चाय उपयोग न करने की प्रतिज्ञा करता हूँ।

नाम ………………… जाति ……………… आयु ………… पेशा ………………

स्थान ………………… पूरा पता ……………………………… तिथि ………………

हस्ताक्षर ………………………

सहेलियों के पत्र

जोधपुर
२८-५-३८

स्नेहमयी बहिन अरुणा !

आदर और प्रेम !

इतने लंबे अर्से के बाद तुम्हारे पत्र का उत्तर दे रही हूँ। इससे शायद तुमने समझा लिया कि मैं नीरस हूँ, कठोर हूं और हूँ प्रेम शून्य। बहिन, वास्तव में बात ऐसी नहीं है। मेरे हृदय में भी प्रेम की धारा उसी प्रकार प्रवाहित होती है जिस प्रकार कि किसी भी लड़की के हृदय में हो सकती है। हां, यदि मैं किसी स्कूल की मिस्ट्रेस रही होती और तुम होती मेरी छात्रा तो अवश्य ही तुम मुझ पर निठुर होने का इल्जाम लगा सकती थीं। यह सब कुछ इस लिए लिख रही हूं कि तुम यह समझ लो कि देर से पत्र देने का कारण निष्ठुरता नहीं किन्तु परिस्थिति है।

परीक्षा में न बैठ सकने के संताप से मेरा हृदय कुछ उड़ २ सा करता रहता है इस लिए उस को राजी करने के लिए मैं चली ही गई और उड़ कर नानी जी के घर पहुंची। लगभग पन्द्रह दिन वहां रही, वापिस आने पर तुम्हारा पत्र मिला, पढ़ कर निहायत आनन्द हुआ। कला के फेल हो जाने के समाचार को पढ़ कर कष्ट हुआ किन्तु किया क्या जाय। इस प्रकार की घटनायें तो नित्त नैमित्तिक सी हो गई हैं।

तुम्हारे मनोरंजन के लिए मैं कुछ उन बातों का सारांश लिखना चाहती हूँ जो मैंने अपनी नानी के पड़ोस में रहने वाले बाबू कामताप्रसाद जी की पोती निर्मला से सुनी हैं। वह आजकल हिंदी की सातवीं श्रेणी में पढ़ती है। योंही कुछ थोड़ा सा प्रसंग अध्यापिकाओं की योग्यता और उनके उस व्यवहार के सम्बन्ध में चल गया जो वे अपनी छात्राओं के साथ करती हैं। निर्मला ने अपने स्कूल की दो अध्यापिकाओं की योग्यता के सम्बन्ध में जो कुछ कहा उसे सुनकर मारे हंसी के मैं तो लोट पोट हो गई।

उस ने कहा, हमारी एक मास्टरानीजी नार्मल पास हैं। उन्हें अपने इस ऊंचे पठन

पर अभिमान भी ऐसा है कि जब वे लड़कियों को उन की गलती पर डाँट लगाती हैं तो इस बात को कहने में भूल नहीं करतीं "जानती हो मैंने नार्मल पास किया है।" वैसे उन की योग्यता का यह हाल है कि बिना कुंजी के वह छठे दर्जे की रीडर को भी नहीं पढ़ा सकती हैं।

गत वर्ष रीडरें बदल गईं और उनकी कुंजी छपी नहीं। रीडरों को देख कर पहले तो उन्हों ने नाक-भौं चढ़ाये, फिर लड़कियों से कहा, अच्छा देखो तुम पहिले इस में से गद्य के पाठ पढ़ डालो। गद्य पाठों के खतम होने पर पद्य पाठों को पढ़ना ठीक होगा। एक लड़की ने कहा - 'नहीं अध्यापिका जी, सिलसिले से पढ़ाइये। कहीं ऐसा भी होता है कि बीच बीच में पद्य के पाठ छोड़ दिये।' उस लड़की की इस बात को सुन कर मिस्ट्रेस साहिबा को क्रोध आ गया और उसके कान को दो मरोरा देकर कहा—'क्या, माँ राँड ने यही शऊर दिया है कि गुरुआनी की बात को काट दे।' लड़की बेचारी चुप हो गई।

आखिर यही सिलसिला चला। रीडर के गद्य पाठ पढ़े जाने लगे और पद्य पाठ छोड़ दिये गये। एक, दो, और तीन इस तरह छ महीने बीत गये। एक की बजाय दो बार रीडर के गद्य पाठ खतम हो गये किन्तु किसी भी कम्बख्त पुस्तक प्रकाशक ने कुंजी नहीं छापी। अब चूंकि इम्तहान के थोड़े ही दिन रह गये थे अतः हिम्म करके अध्यापिका जी ने एक दिन पढ़ाना शुरू किया। एक पाठ में कुछ चौपाइ का संग्रह था, उन में एक चौपाई थी:—

"कनक भू धरा कार शरीरा।
समर भयंकर अति रन धीरा।"

अध्यापिका जी ने अर्थ किया:—

"भूमि पर काले शरीर (कार शरीरा) के कनक अर्थात गेहूं धरे हुए हैं। भयंक समर अथवा हवा आ रही है धीरे धीरे र (दौड़) करती हुई।" एक लड़की ने पूछा— 'गुरुआनी जी, यह वाक्य तो बना नहीं अच्छी तरह से समझाइये, अध्यापिका की आंखें लाल हो गईं और बोलीं—'क्यों लड़की! भला इस में भी समझने को कु रक्खा है। अर्थ बिल्कुल तो साफ है "पृथ्वी पर काले शरीर अथवा रंग के गेहूँ धरे और भयानक आंधी रन करती हुई पानी दौड़ी हुई किन्तु धीरे धीरे (दौड़ी हुई) आ रही है। किसान को चाहिए कि अपने गेहूँ को बचावे। डर के मारे लड़कियां चुप रहीं। हालां कि उन की समझ में य अर्थ कतई नहीं बैठा।

दूसरी अध्यापिका जी ने ट्रेनिङ्ग त शिक्षा पाई हुई है! उन को आदत लड़कि को गाली-गलोज देने में हद को पहुँच गई किन्तु योग्यता क. उनकी भी यही हालत गणित की रीडर में एक सवाल था—"

लकड़ी को बीच में से एक बार के काटने से दो टुकड़े होते हैं तो तीन बार के काटने से कितने टुकड़े होंगे ?" उत्तर माला में जवाब लिखा था "चार"। लड़कियों ने अध्यापिका जी से यही सवाल हल कराया। आपने तड़ाक से कहा, 'तुम भी कैसी मूर्ख हो। एक बार में तोड़ने से दो टुकड़े होते हैं तो तीन बार में छः होंगे, उत्तर माला में जवाब गलत छप गया है।'

बहिन अरुणा! ऐसी २ योग्यता वाली अध्यापिकाओं से भी लड़कियों का पाला पड़ता है। इतने पर भी वे पास हो जायं तो यह उन के भाग्य ही समझने चाहिएं। कला अगर फेल होती है घर और शाला की डांट फटकारों से तो विमला फेल होती है अध्यापिकाओं की भूल और योग्यता की कमी से। किन्तु दंड (फल) भुगतना पड़ता है, कला और विमला को ही। इसी लिये तो याद आता है कि "नानी जुर्म करे और धेवता दंड भरे।"

अच्छा, बस आज इतना ही।

सप्रेम—हेम

—※—※—※—

छत्तीसगढ़ का महिला-साहित्य

[लेखिका—श्रीमती हेमलताबाई]

(गतांक से आगे)

गारी गीत

'गारी गीत' केवल विनोद के लिए होता है, जिसमें खासकर समधिन ही विनोद का साधन बनाई जाती हैं। उदाहरणार्थ एक गीत देखिए:—

माघ माते कोइलिया तो बन-बन ढूँढत फिरे।
तैं तो जा रे नन्दन बन, तैं तो जा रे चन्दन बन,
सुवा संग खेल करे।
ओके पाँख हे हरियर, चोंच में हिंगुन जड़े।
माघ माते 'अंजन बहू' तो घर-घर ढूँढत फिरे।
तूँ तो जावा हो 'अंजन बहू'* समधीराय सँग
खेल करे।
ओके पागा है झकमक, छाती में चन्दन घिसे,
माघ माते अँजन बहू, घर-घर ढूँढत फिरे॥

अर्थात्—माघ मास की उन्मत्त कोयल बन बन किसी को ढूँढती फिरती है। अरी कोयल, तू नन्दन बन जा, तू चन्दन बन जा, वहीं सुवा के साथ खेल करना। उसके हरे-हरे पंख हैं और चोंच लाल है।

कोयल की ही तरह हमारी 'अंजन' बहू

भी माघ मास में उन्मत्त होकर घर घर न जानें किन्हें ढूँढ रही है। अजी 'अंजन' बहू जी आप अपने समधी साहेब के पास चली जाइये न। उनके सिर की पगड़ी झकमक झकमक कर रही है और छाती में शीतल चन्दन लगा हुआ है। कुछ क्षण उन्हीं के साथ अपने हृदय की आग को शीतल कर लीजिए। इस तरह गारी गीत का सृजन केवल विनोद के लिए हुआ है—केवल विनोद। वहाँ केवल प्रे[म] होना चाहिए न कि उत्तेजना। छत्तीसगढ़ [के] 'गारी गीत' बहुत सुन्दर होते हैं। इन्हें [मैं] 'दीपक' के पाठकों की सेवा में क्रमश[ः] उपस्थित करूँगी।

❀ 'अँजन बहू' यहाँ समधिन के लिए उपयोग किया गया है। समधिन साहिबा का जो नाम हो वही यहाँ लिया जाना चाहिए।

तमाखू की वलि वेदी पर

उस दिन कड़ाके की गरमी थी। आकाश से आग बरस रही थी। वह बेचारी सुबह से काम करती-करती चूर हो गई थी। वह भूखी थी, नहीं-नहीं पानी की एक बूँद तक भी उसके मुँह में न गई थी। पतिदेव को भोजन-पान कराये विना वह कैसे कुछ खाने-पीने का पाप कर सकती थी। वह झटपट अपना काम खत्म कर सिर पर रोटी की पुटलिया रख, नंगे पांव लम्बे लम्बे कदम उठाती खेत की ओर चल दी।

उसे देखते ही लाल आंखें निकाल पतिदेव ने दूर से ही ललकारा—कहाँ है मेरा तमाखू? सन्न हो गई वह तो इतना सुनकर। चेहरा पीला पड़ गया, काटो तो खून नहीं। तमाखू तो आज भूल गई, नाथ! काम इतना था कि मुझे कुछ शुध-बुध न रही, डरते-काँपते उसने कहा।

पतिदेव क्रोध से आग बबूला हो बरस पड़े उस बेचारी पर। उसने बहुत कुछ मिन्नत-समाजत की, लेकिन सब बेसूद। पति (देव?) पर तो पाशविकता का भूत चढ़ा हुआ था, वह पागल हो रहा था, सुनता कैसे? वह तो बार बार यही रट लगाते रहे, ला मेरा तमाखू, तू बहुत बिगड़ गई है, मैं आज तुझे जिन्दा नहीं छोड़ूंगा, तेरी भूल का मजा आज तुझे चखाऊँगा।

वह बेचारी हाथ जोड़ती ही रह गई, कुछ और कहना चाहती थी कि उस पर लट्ठ पड़ने लगे। हृदय हीन पति ने मार कर उसका कचूमर निकाल दिया। वह रोती, बिलखती रही। जंगल में कौन सुनता उसके करुण-क्रन्दन को। बेहोश हो लड़खड़ा कर जमीन पर गिर पड़ी। गिरते-गिरते भी उसके मुँह से यही निकल रहा था—पति देव।

फड़फड़ाती, सिसकती हुई को फिर भी दो-चार लात-घूंसे जमा दिये और घसीट कर कुत्ते की भांति पास की नहर में फेंक दिया। आह! इतनी निर्दयता! इतना अन्याय। इतना अत्याचार! स्त्री जाति का इतना अपमान। तमाखू भूल आने पर इतना कठोर दण्ड! निर्मम हत्या!

—"विदग्ध हृदय"

वे कौन हैं ?

*

(ले०—श्री 'बालसखा')

सन १९२९ की रात है। लाहौर में [कां]ग्रेस का काया-कल्प होने वाला था। [सब]की ज़बान पर एक ही चर्चा थी—पूर्ण-[स्व]ाधीनता की। उस समय मैंने उन्हें '...त्थान सभा' में एक कुर्सी पर बैठे हुए [दे]खा। वे विचार में मग्न थे। उनके चेहरे से [गं]भीरता टपक रही थी। मालूम होता था [कि]सी विकट उलझन में पड़े हैं। सभा में [हु]ल्लड़ मच रहा था। धुआंधार तक़रीरें की [जा] रही थीं, लेकिन क्या मजाल कि उन [पर] उनका ज़रा भी असर हो।

उस दिन की ही बात नहीं, वे बचपन से [ही] संजीदा रहते हैं। शुरू ही से रामकृष्ण [पर]महंस व स्वामी विवेकानन्द के धार्मिक विचारों [औ]र उनकी माता के उपदेशों ने उनके विचारों में एक क्रांति पैदा कर दी थी। [सां]सारिक बातों से वे कोसों दूर भागते थे। [ज]ब वे दूसरी कक्षा में पढ़ते थे तभी से उन्हें [द]रिद्रनारायण और रोगियों की सेवा करने [मे]ं बड़ा आनन्द आता था।

उन्होंने १९१३ में एंट्रेंस का इम्तिहान [पा]स किया और सारी युनिवर्सिटी में दूसरे नम्बर पर रहे। कालेज में जाकर उनके जीवन ने पलटा खाया। वे दुनियां से बेज़ार हो गये और घर बार को छोड़ गुरु की तलाश में निकल पड़े। करीब सात आठ महीनों तक जंगलों और बनों में, मन्दिरों और मठों में, योग्य गुरु की तलाश में घूमते रहे। लेकिन वहाँ पाखंड और ढोंग के सिवाय उन्हें कुछ न मिला। आखिर निराश होकर घर वापिस लौट आये और फिर कालेज में पढ़ने लगे। १९१५ में एफ० ए० का इम्तिहान प्रथम श्रेणी में पास किया। इसके बाद वे बी० ए० में पढ़ने लगे। एक दिन एक गोरे प्रोफेसर ने किसी विद्यार्थी को गाली दे दी। बस फिर क्या था, वे भड़क गये। इस अपमान का बदला लेने के लिए उन्होंने विद्यार्थियों को संगठित कर जबरदस्त आंदोलन किया। फलतः उन्हें कालेज से निकाल दिया गया। कुछ समय बाद वे फिर कालेज में दाखिल हो गये और १९१७ में बी० ए० की परीक्षा प्रथम श्रेणी में पास की।

वे चाहते थे कि एम० ए० पास करके शिक्षक बनें और देश में फैले हुए अज्ञानान्धकार को दूर करें। लेकिन माता-पिता के जोर

देने पर वे विलायत पढ़ने के लिए चले गये। इस आई. सी. एस. परीक्षा में भी वे चौथे नंबरपर पास हुए। उनके सब संबंधियों और मिलने वालों को अपार खुशी हुई। लेकिन किसी को क्या पता था कि वे गुलाम बनने के लिए नहीं बल्कि गुलामी को मिटाने के लिए ही पैदा हुए हैं।

१९२० में नागपुर कांग्रेस में असहयोग का प्रस्ताव पास हो चुका था। देश युद्ध के लिए तय्यार हो रहा था। चारों ओर स्वतंत्रता की लहर उठ रही थी। उनके हृदय में भी देश-सेवा की अग्नि प्रज्वलित हो उठी। उन्होंने सरकारी नौकरी को ठुकरा दिया और भारत मन्त्री से कह दिया कि मुझे नौकरी नहीं चाहिए क्योंकि मैं दो मालिकों की सेवा नहीं कर सकता। वे वीर योद्धा की भांति मैदान में कूद पड़े। देशबन्धु दास उस-समय बंगाल के नेता थे। वे इस होनहार युवक के त्याग और उत्साह से अत्यन्त प्रभावित हुए और उनको अपने राष्ट्रीय कालेज का प्रिन्सिपल बना दिया। वहाँ उन्होंने खूब डटकर काम किया और युवकों के अन्दर एक नये जीवन का संचार किया। कांग्रेस का बहुमत होने पर देशबन्धु ने उनको कारपोरेशन का शासन कर्ता बना दिया। अब उनको १५००) मासिक वेतन मिलने लगा। उनका बहुत सा रुपया युवकों की सहायता करने में खर्च हो जाता था। कारपोरेशन में उन्होंने इतनी लग्न से काम किया कि सब के सब दंग रह गये। यह याद रहे कि उनकी उम्र उस समय केवल २७ वर्ष की ही थी।

उनकी उम्र अब ४०-४१ साल की है। उन्होंने अब तक शादी नहीं की है। पिछले दिनों जब वे विलायत से लौटे तो शादी के विषय में सवाल किये जाने पर उन्होंने मुस्कराकर कहा था कि मुझे इस सवाल पर विचार करने की फुरसत ही नहीं है। वे आठ बार जेल जा चुके हैं, तीन बार नज़रबन्द हो चुके हैं और तीन बार लाठी प्रहार से अपना सिर फुड़वा चुके हैं। प्रथम बार जब उनको पाँच महीने की कैद की सज़ा मिली तो उन्होंने न्यायाधीश से कहा था कि "मैंने कोई मुर्गी की चोरी थोड़े ही की है जो आप मुझे इतनी कम सज़ा दे रहे हैं।" जेलों और नज़रबन्दियों ने उनके शरीर को जर्जर बना दिया है। उनमें अब वह पहली सी शक्ति नहीं रही, लेकिन उनका हृदय उसी प्रकार नौजवान है। जब तक देश गुलाम है तब तक वे चुपचाप घर में नहीं बैठ सकते।

उनमें अद्वितीय आकर्षण-शक्ति है। जो उनके सम्पर्क में आता है वह सदा के लिए उनका हो जाता है। युवक, किसान और मज़दूर तो उन्हें अपना ही समझते हैं। वे उनके लिए सब कुछ करने को तैयार हैं। यही वजह है कि सरकार उनसे बहुत डरती

उसके सी०आई०डी० साया की तरह उन
पीछा करते हैं। उनकी संगठन-शक्ति का
तो सभी मानते हैं। कलकत्ता काँगरेस
स्वयंसेवक दल के वे सेनापति चुने गये
उनकी विलक्षण व्यवस्था-शक्ति को देख
तो उनके विरोधी भी दाँतों तले उँगली
थे। और तो और कलकत्ता के गोरे
खबार 'स्टेट्समैन' ने भी उस समय उनकी
व्यवस्था की भूरि-भूरि प्रशंसा की थी।
ने ठीक ही लिखा था कि "वे हर इँच
पति दिखाई देते थे। उनके मुख पर
न: एक विजयी सूरमा के आत्म-सन्तोष
प थी। यह एक दृश्य था — नहीं एक स्वप्न
लक थी—भविष्य की एक आशा थी।"
युग-धर्म—स्वतन्त्रता-प्राप्ति ही उनका
है। आज़ादी के लिए उनके अन्दर
है—लगन है। आज़ादी की ही वे
फेरते हैं, आज़ादी की ही वे पूजा
हैं और आज़ादी के साथ ही उन्होंने
दी कर ली है। आज-कल वे घूम २ कर
देशवासियों को आज़ादी का सन्देश
रहे हैं। शायद कवि ने यह पद्य उन्हीं
लिये लिखा हो:—

देखे तो वतन पर किस तरह कुर्बान है।
ते-फिरते इसको आज़ादी ही का अरमान है।।

एक सभा में भाषण देते हुए उन्होंने
कहा था कि "स्वतन्त्रता ही मेरे जीवन
अन्त है। आज़ादी एक अमूल्य चीज़ है।
जैसे आक्सीजन (प्राणवायु) फेफड़ों के
लिये आवश्यकीय है, उसी प्रकार स्वतन्त्रता
भी मनुष्य के लिए ज़रूरी है। इसीलिए तो
स्वामी विवेकानन्द ने कहा था—'स्वतंत्रता
आत्मा का संगीत है। आज़ादी ही सच्चा
अमृत है। हमारी दुर्बलताओं की अचूक
औषधि स्वराज्य है और स्वराज्य के लिए
हमारी योग्यता की कसौटी हमारी आज़ादी
की प्रबलाकांक्षा ही है।"

वे महात्माजी के पक्के भक्त हैं। सत्य और
अहिंसा के सिद्धांत को उन्होंने अपना लिया
है। अभी कुछ दिनों की बात है उन्होंने अपने
एक बयान में कहा था—"क्रोध पर धैर्य से,
गुण्डापन पर संयम से, घृणा पर प्रेम से
विजय पाकर ही हम सत्य और अहिंसा के
सच्चे सिपाही साबित होंगे।"

प्रिय बाल-बंधुओ ! क्या आप सचमुच
उनका नाम जानने के लिये बेक़रार हैं ?
लो मैं अब आपको उनका नाम बता देता हूँ,
ज़रा ध्यान लगाकर सुनिए ! उनका नाम
है—सुभाषचन्द्र बोस, जो हमारे राष्ट्र
के कर्णधार हैं। गत् फ़रवरी में देश ने उन
को हरिपुरा काँगरेस का सभापति चुना था।
उनका जलूस ५१ बैलों के एक बहुत पुराने
रथ में निकाला गया था। अब तो आप जान
गये न कि वे कौन हैं ?

—०—

बतलाओ तो—

चींटी रानी क्या चिन्ता है ?
क्यों रहती हो तुम परेशान ?
क्यों, करने पर हो तुली हुई—
तुम एक ज़मीं औ' आसमान !

कुछ भी करने-करवाने को
तुम पर न किसी का है दबाव !
है याद न करना सबक़ तुम्हें,
ना ही हल करना है हिसाब !!

छिप-छिप न देखता है कोई—
चाहे तुम कुछ भी चलो चाल !
उन चपतों का डर तुम्हें नहीं—
जिनसे होते ये गाल लाल !!

पहुँचा जाता वह आप खाँड,
लाला है तुम पर मेहरबान !
फिर, चिन्ता क्या चींटी रानी ?
इतना क्यों रहती परेशान !!

—लल्लू

—*◡*◡*—

बाल बन्धुओं से निवेदन

प्रिय बाल बन्धुओ !

आपको यह पता है कि 'दीपक' में बच्चों के लिए 'बाल-मन्दिर' नाम का एक अलग स्तम्भ है जिसमें प्रतिमास बालकों के लिए मनोरंजक व उपयोगी लेख, कहानियां, कविताएं तथा जानकारी वाले रहती हैं। हम चाहते हैं कि ये सब लेख आदि आप ही के द्वारा लिखे जावें। यह है भी तो ठीक क्योंकि बच्चों के मन की बात बच्चे ही तो जान सकते हैं।

अतः हम आप से निवेदन करते हैं कि आप 'बाल मन्दिर' स्तम्भ के लिए अपनी रचनाएं भेजा करें। अशुद्धियों की आप चिन्ता न करें। वे यहां ठीक कर ली जाया करेंगी। हम आपको यक़ीन दिलाते हैं कि आप यदि लिखते रहे तो एक दिन अवश्य उच्चकोटि के लेखक बन जायेंगे। हमने यह नया आयोजन इसीलिए किया है। लेख में उमर, कक्षा और शहर का नाम भी लिखें।

आपका बन्धु,
'सम्पादक'

बाल-विनोद

नौकर—बाबू जी, डाक्टर साहब आप को देखने के लिए आ गये हैं।

फिलास्फर मास्टर—(पलंग पर पड़ा किसी समस्या में मग्न) कह दो, मैं बीमार हूं इस समय किसी से नहीं मिल सकता।

जज—(डाकू से) तुमने डाका दिन-दहाड़े क्यों डाला ?

डाकू—'सरकार' रात में किसी दूसरी जगह घिरा हुआ था।

एक स्कूल इंस्पैक्टर कहीं निरीक्षण कर रहे थे, एक लड़के से उन्होंने अंग्रेजी में सवाल किया—"तुम्हारी उम्र क्या है ?"

लड़का—(घबराकर) "स-अ अ-र, हाफ पास्ट ट्वेल्व"

मुलजिम—हजूर ! मैं इन्साफ चाहता हूँ।

मैजिस्ट्रेट—चुप रहो, तुम इस समय अदालत के एक कमरे हो।

मां—रामदयाल, तू आज स्कूल क्यों नहीं गया।

रामदयाल—तुम्हीं तो कहती थीं कि मेरे चले जाने पर तुम मुझे याद करती हो।

अध्यापक—रामू तुम्हारे चचा के कितने लड़के हैं ?

रामू—दो

अध्यापक—उनके क्या नाम हैं ?

रामू—नीलाम्बर और पीताम्बर

अध्यापक—अगर तुम्हारे चचा के दो और लड़के हुए तो उनके क्या नाम रखोगे ?

रामू—सितम्बर और नवम्बर

मुसाफिर—हस्पताल कितनी दूर है ?

शहरी—यहाँ से लगभग दो मील।

मुसाफिर—वहाँ जाने का आसान रास्ता कौन सा है ?

शहरी—किसी मोटर के नीचे आ जावो।

महाशय जी—(राजू से) कहिये, तशरीफ़ ले आये !

राजू—जी नहीं, अभी ढूंढ कर लाता हूँ। वह कहाँ रखी है ?

महाशय जी—आप सुबह नाश्ता करते हैं ?

राजू—मैं क्यों नाचता ? आप नाचते होंगे।

अजनबी—यहां का डाकखाना कहां है ?

शहरी—इस बात का पता तो हर बेवकूफ से बेवकूफ को होना चाहिये।

अजनबी—इसीलिए मैंने आप से पूछा है।

मालिक—तुम इतनी देर से कहां थे ?

नौकर—डाकखाना में।

मालिक—क्या तुम्हें डाकखाना में एक खत डालने के लिए दो घण्टे चाहियें।

नौकर—जनाब एक नहीं तीन खत थे।

—*—

सङ्गीत का चमत्कार

अभी तक तो सङ्गीत को महज एक बेकार चीज़ समझा जाता था। किंतु अब इससे कला-कौशल को प्रोत्साहन देने में सहायता ली जा रही है। भट्टों के मालिक ईंटें बनाने वाले मज़दूरों के पास बाजा बजाने लगते हैं। अनुभव इस बात की साक्षी देता है कि सङ्गीत से प्रभावित हो कर मज़दूरों ने पहले की निस्बत अधिक काम किया। कई साल से तमाखू के कारखानों में भी रेडियो का प्रयोग किया जा रहा है। सङ्गीत सुनकर मजदूर लड़कियां खूब दिल लगा कर काम करती हैं और उनकी सेहत अच्छी रहती है क्योंकि शुष्क वातावरण में काम की रफ़्तार सुस्त पड़ जाती है। 'मैडीकल रिसर्च कौंसिल' ने दो सौ मज़दूर लड़कियों को काम पर लगाया। पहले कई दिन उनके काम की रफ़्तार मामूली रही। लेकिन जब उन्हें काम के समय कभी २ सङ्गीत से आनन्दित किया गया तो उन्होंने पहले से बहुत अधिक काम किया। और तो और आम चपौाये और जानवर भी सङ्गीत से प्रभावित होते हैं। अगर दूध दुहते समय रेडियो का स्विच दबा दिया जाय तो गाय अपेक्षाकृत अधिक दूध देगी।

(मस्ताना जोगी)

कोरी योजनाओं से कुछ न बनेगा

जगल में निर्भय हो कर विचरने वाला किसान एक साधारण सिपाही या जमींदार के सामने नत-मस्तक हो जाता है। एक महा शक्तिशाली व्यक्ति भी रूढ़ियों के बन्धन में फँसकर बेबस हो जाता है, देवी-देवताओं का गुलाम बन जाता है। अन्याय को देखकर उस में सिर ऊँचा करने की ताक़त नहीं रहती, दुःख-निवारण के लिए उसमें सङ्गठन की शक्ति नष्ट हो जाती है, उस में यह विश्वास नहीं रहता कि वह बहुत कुछ कर सकता है। ग्रामीणों में शक्ति है, लेकिन उन्हें इस शक्ति का भान नहीं है। दासतापूर्ण वृत्ति ने उनकी इस शक्ति पर परदा डाल दिया है। वे इस बात को भूल गये हैं कि हिम्मत, आत्म विश्वास और संगठन से सब काम हो सकते हैं। ग्रामों को उन्नत करने के लिए यह ज़रूरी है कि ग्रामीणों के हृदयों में यह बात ठसाई जाय कि उन के अन्दर शक्ति है—बल है। लेकिन यह काम महज भाषण करने या लेख लिखने से नहीं हो सकेगा। जिनके हृदय में स्वतन्त्रता के लिए तड़प है उन्हें गाँवों में जाकर बैठना होगा। जब पढ़े-लिखे लोग गाँवों में जाकर ग्रामीणों में घुल-मिल जायेंगे तभी उनमें साहस, आत्म-निर्भरता और सङ्गठन का श्रीगणेश होगा। इतना होने पर यह बात सहज में ही समझ में आजायगी कि फिर क्या करना चाहिए? इस लिए मुख्य सवाल यह नहीं है कि ग्रामसुधार के लिए क्या आयोजन करना है बल्कि मुख्य सवाल तो यह है कि योजना को चलाने के लिए कौन गाँवों में जाने के लिए तैयार है? बड़ी २ योजनाएं तो घड़ी जा सकती हैं। लेकिन उन्हें कार्यरूप देने के लिए अगर पढ़े-लिखे लोग गाँवों में जाने के लिए तय्यार नहीं तो इन प्रस्तावित योजनाओं का काग़ज़ के टुकड़े के अलावा और मूल्य ही क्या हो सकता है? इस लिए

...नो बोलने या लिखने का ज़माना नहीं है बल्कि ...कर दिखाने का समय है। सौ बोलने और ...ने वालों की अपेक्षा एक काम कर दिखाने वाला ... प्रभाव डाल सकता है। लोग उसी का ...रण करते हैं कि जिसके विचार, वाणी और ... में सामञ्जस्य हो। (खेती-बाड़ी)

...पोलैंड की महिलाओं की दुर्दशा

...वार्सा पोलैंड का प्रसिद्ध नगर है। सम्भ्रान्त ...की सुन्दरियाँ वहां आकर वेश्यायें बनने पर ...होती हैं। पूरे देश में तिलक दहेज की ...दौरदौरा है। वरों के बाज़ार लगा करते ...कन्याओं के अभिभावक बाज़ार में जाकर ...से अधिक तिलक दहेज देकर शादी ठीक ...हैं। बाज़ार के रजिस्टर में वरों का नाम, पता, ...ता, रूप आदि दर्ज रहता है। अच्छी सामा- ...स्थिति के वर ऊँची-ऊँची रकमें तिलक में माँगते ...अधिकांश कन्याओं के अभिभावक उतनी रकम ...पाते। अतः वे कुमारी रह जाती हैं। अधिक ...की कुमारियाँ विधवाओं के समान अनादरित ...हैं। वे इन सबसे ऊब कर वार्सा तथा अन्य ...में भाग जाती हैं। वहाँ वेश्या का पेशा ही उनके ...जीविका का साधन होता है। (नवशक्ति)

बुद्धि की आड़ में पाप

"जब मनुष्य एक बार ज्ञानपूर्वक पाप कर ...है, तब उसे थोड़ी देर के लिए दुःख होता ...और इसे वह सच्चा प्रायश्चित्त मान लेता है; और ...में यह कुछ आशा हो जाती है कि उसका ...पाप माफ़ कर दिया गया है, तो उसी तरह ...पाप करने का उसमें और अधिक साहस हो ...है; और वह सोचता है कि जिस तरह उसका ...पाप माफ़ कर दिया गया है उसी तरह उसका ...पाप भी शायद माफ़ कर दिया जाय।"

"...बार बार इसी तरह उसका पाप के गड्ढे में ...धँसता जाता है। यहां तक कि पाप करना उसका ...बन जाता है।"

"अब वह पाप से और भी ज़्यादा प्यार करने लगता है, और यह इच्छा होती है कि अगर उसका पाप न्यायसंगत कहा जाता तो कोई भय न रहता।"

"और तब वह सोचता है कि उसे न्यायसंगत सिद्ध करना चाहिए; अंतःकरण की आवाज़ को खामोश कर देना चाहिए, ताकि वह उसे दिक़ न करे; उसके पाप को न्याययुक्त ठहराने वाले उसके पक्ष में जो कह सकें उसे वह खुशी के साथ सुनता है, और यह विश्वास कर लेता है कि उसके पाप के समर्थन में जो दलीलें दी जा रही हैं उनमें काफ़ी वज़न है।"

"और तब वह बग़ैर किसी पश्चात्ताप के पाप-कर्म करता है।" (हरिजन सेवक)

लीजिए न, सिगरेट पीजिए

विलायत में सिगरेट डाका डालने के साधनों में से एक है। रेलगाड़ी में आपको अच्छे बूट सूट में एक साहब बैठे मिलेंगे और चश्मा लगाये बड़ी शान से एक लम्बा चौड़ा अखबार पढ़ते रहेंगे। आप डिब्बे में जाकर बैठ जावेंगे तो आपकी तरफ़ देखेंगे भी नहीं कि किस खेत की मूली हैं। आप भी उनकी शान देखकर दंग हो जावेंगे।

थोड़ी देर बाद वे आपकी तरफ़ एक निगाह डालेंगे और अपना सिगरेट का डिब्बा निकाल कर आप से कहेंगे कि लीजिए, सिगरेट पीजिए। आप पीने वाले हुए तो आप ने शिष्टाचार के नाते झट सिगरेट ले ली और पीने लगे। बस फिर क्या है चन्द मिनट में आप बेहोश होकर लुढ़क गये और साहब ने चट आपके जेब तलाशे और रुपया पैसा और कीमती माल असबाब लेकर पास के स्टेशन पर उतर गये।

सिगरेट में बेहोशी की दवा मिली हुई थी। ऐसे साधन से डाका डालने में ज़रा भी गुल-गपाड़ा नहीं होता और मज़े में उल्लू सीधा हो जाता है। केवल सिगरेट पीने वाला आसामी होना चाहिए। (सुधारक)

दीपक के प्रकाश में—

मज़हब और इंसानियत—(उर्दू) लेखक व प्रकाशक—सरदार हरनामसिंह, (टुण्डी लाट) कोटला नोहदसिंह (होशियारपुर) पृष्ठ संख्या २०८ मू० ।।।)

प्रस्तुत पुस्तक के लेखक सन् १९१४ के षड्यन्त्र केस के अभियुक्त हैं जो कई वर्ष अमेरिका कनेडा आदि में रहे हैं। वहां के स्वतन्त्र वायु-मण्डल एवँ सभ्यता ने आपके विचारों में एक दम उथल-पुथल मचादी। आपने लगभग सभी धर्मों का अध्ययन किया है। आपने संसार में शांति स्थापन का मार्ग मज़हब नहीं इंसानियत बतलाया है और ऐतिहासिक उदाहरण देकर इस बात को सिद्ध किया है कि धर्म के नाम पर लोगों ने अन्धे होकर कितनी क्रूरता से बेगुनाहों का खून बहाया है। आप अपनी प्रस्तावना में लिखते हैं कि 'मज़हबों की तालीम मुख्तलिफ है, मज़हबों के असूल मुख्तलिफ हैं, मज़हबों के तरीके मुख्तलिफ हैं, मज़हबों के दोज़ख मुख्तलिफ हैं, मज़हबों के बहिश्त मुख्तलिफ हैं। मज़हबों के खुदा मुख्तलिफ हैं। इन्सान बेचारा करे तो क्या करे, कौन सी तालीम हासिल करे, कौन सी न करे, किस असूल को माने, किस को न माने, किस खुदा को माने ,और किस को न माने ......दूसरी तरफ इन्सानियत की तालीम एक है, असूल एक है, तरीका एक है, इंसानियत का खुदा एक है, दोज़ख एक है, बहिश्त एक है।''

रूढ़ियों और मत-मतान्तरों की दल दल में फंसे हुए लोग तो इस पुस्तक को पढ़कर एक दम भड़क जायेंगे। हमारे पतन का मुख्य कारण यही है कि हम लकीर के फ़क़ीर बने रहना चाहते हैं, हम अपने से विरोधी विचारों पर मनन करना तो दरकिनार उन्हें सुनना भी गवारा नहीं करते। यह मनोवृत्ति अत्यन्त दूषित है। हमें नये विचारों से डरकर भागना नहीं चाहिए बल्कि शांतिपूर्वक उनको समझने का प्रयत्न करना चाहिए। विकास और उन्नति का यही एक मात्र राजमार्ग है। इस सिद्धान्त को दृष्टि में रखकर यदि पुस्तक का अध्ययन किया जायेगा तो पढ़ने वालों को अवश्य ही बड़ा लाभ होगा—ऐसी हमारी धारणा है।

कुरीति-सुधार (गुरुमुखी)—लेखक व प्रकाशक—उपर्युक्त, पृष्ठ संख्या १९२, मू० ।।।).

पुस्तक पंजाबी कविता में लिखी गई है और मधुरता तथा सरसता से ओत-प्रोत है। इसमें भारतवर्ष में फैली हुई—श्राद्ध, बाल-विवाह तथा विधवा-विवाह जैसी उन बुराइयों का विस्तृत रूप में वर्णन किया गया है जो हमारे राष्ट्रीय-जीवन को पंगू बना और गुलामी के कठोरतम बन्धनों में जकड़ रही हैं। हमारी आधुनिक दूषित शिक्षा-प्रणाली, बालकों के प्रति जो कि राष्ट्र की जान हैं, माता-पिताओं की कर्त्तव्य-हीनता आदि बुराइयों को दूर करने के उपाय भी पुस्तक में बताये गये हैं जिनके ऊपर अमल किये बिना राष्ट्र का कल्याण नहीं हो सकता। पुस्तक निस्सन्देह बडी उपयोगी है।

हरनाम-लहर (गुरुमुखी)—लेखक व प्रकाशक—उपर्युक्त, मू० ।-), पृष्ठ संख्या ९० ।

इस पद्य पुस्तक की शैली इतनी सुन्दर तथा भाषा ऐसी सरल है कि इसके भावों को समझने में कोई कठिनाई नहीं पड़ती। लेखक ने अपने विषय को ऐसे सुन्दर ढग से प्रतिवादित किया है कि जो पाठक के हृदय को प्रभावित किए बिना नहीं रह सकता। पुस्तक में जहाँ ईश्वर-भक्ति के साथ २ कर्म का महत्व दर्शाया है, वहाँ साथ ही सामाजिक कुरीतियाँ, जाति भेद-भाव की हानियाँ भी बतलाई हैं

...पण्डित और मौलवियों के पाखण्ड और इन ...द्वारा कराए गये नित्य के साम्प्रदायिक झगड़ों का ...वर्णन करते हुए आपने बतलाया है कि जब तक ...बातों से छुटकारा न मिलेगा तब तक समाज ...देश का कल्याण होना कठिन ही नहीं असम्भव ...पुस्तक बड़ी ज्ञान-वर्द्धक और लाभकारी है। ऐसी ...कों का घर २ में प्रचार होना चाहिए।

जीवन-संघर्ष—लेखक, पण्डित महावली ...द त्रिवेदी, अनुवादक व प्रकाशक लक्ष्मीचन्द्र ...वाजपेयी, 'चन्द्र', पृष्ठ संख्या ७६ मू० ।।)

प्रस्तुत पुस्तक में लेखक ने अपनी आत्म-कहानी ...लिखी है। निराश और बेकार युवकों के लिए यह ...काम की चीज़ है। पुस्तक में बताया गया है कि ...लेखक को किस प्रकार अनेक कठिनाइयों और ...आपत्तियों का सामना करना पड़ा और किस प्रकार ...उन पर विजय प्राप्त की गई। अनुवादक ने अपने ...कथन में ठीक ही लिखा है कि "इस जीवनी ...में वर्णित घटना अपना निज का संदेश रखती है। ...उसमें वह सन्देश निहित है जो देश की लाखों ...दुखित आत्माओं को शांति प्रदान करने वाला है" ...पुस्तक की कीमत हमें कुछ अधिक लगती है।

प्रौढ़-शिक्षा की योजना—लेखक पं० ...भगवतीप्रसाद वाजपेयी, प्रकाशक—रामनारायण ...लाल बुकसेलर, इलाहाबाद, पृष्ठ संख्या ११२, मू० ।।)

यह पुस्तक श्री०मांडे एम०ए० की A Scheme of Adult Education के आधार पर ...लिखी गई है। श्री० मांडे एक उच्चकोटि के शिक्षा-...शास्त्री हैं। आपने कोलम्बिया विश्वविद्यालय से ...शिक्षा विषय में एम० ए० की डिग्री प्राप्त की है। ...अमेरिका से लौटने पर, मध्यप्रांत के जेलों में, अपढ़ ...कैदियों पर आप अपनी योजना को आज़मा चुके ...हैं। गत ८ वर्षों से आप संयुक्त प्रांत के सहकारी ...विभाग में, इस पुस्तक में दी गई योजना के अनुसार ...प्रौढ़ों की शिक्षा का प्रचार बड़ी सफलतापूर्वक कर ...रहे हैं। इस पुस्तक में दी हुई योजनायें बड़ी सरल

और सस्ती हैं। इसके द्वारा प्रौढ़ों को बड़ी जल्दी शिक्षित किया जाकर निरक्षरता को इस देश से निर्वासित किया जा सकता है। मिशन स्कूल मोगा (पंजाब) में इस पद्धति के अनुसार बालकों को पढ़ाया जाता है। इस योजना की खूबी यह है कि पढ़ने वाले को वर्णमाला न रटाकर वाक्य-पद्धति के द्वारा शिक्षा दी जाती है। इस योजना के अनुसार प्रौढ़ लोग केवल एक वर्ष में आवश्यक विषयों का इतना ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं जितना बालक पाठशालाओं में कई वर्ष में प्राप्त करते हैं। प्रौढ़-शिक्षा में दिलचस्पी लेने वालों को चाहिए कि वे इस पुस्तक से लाभ उठावें।

नवीन भारतीय शासन-विधान (दो भाग)—लेखक श्री रामनारायण 'यादवेन्दु', बी० ए० एल० एल० बी०, प्रकाशक—नवयुग साहित्य निकेतन, राजामण्डी, आगरा; पृष्ठ—२६४, मू० २)

नये कानून के अनुसार भारत में भी प्रतिनिधि-आत्मक शासन-पद्धति जारी की गई है जिस से सर्वसाधारण को शासन-कार्य में भाग लेना पड़ता है। किंतु यह विषय बड़ा गहन है। साधारण शिक्षित व्यक्ति भी इसके रहस्य को नहीं समझ सकते। श्री यादवेन्दु जी हिंदी में इस विषय के प्रसिद्ध विद्वान् हैं। आपने दर्जनों शासन-विधान सम्बन्धी पुस्तकों का अध्ययन कर यह ग्रन्थ लिखा है, जिसमें नवीन शासन-विधान के प्रांतीय-स्वराज्य तथा 'संघ-राज्य' विभाग करके विधान के सभी प्रमुख अंगों पर प्रकाश डाला है तथा उनकी विवेचना की है। इसके अध्ययन से साधारण व्यक्ति भी विधान की त्रुटियाँ आसानी से जान सकता है। प्रत्येक देश-हितैषी के लिए पुस्तक बड़ी ही उपयोगी है। पुस्तक का मूल्य अधिक है।

गाँव की बात—लेखक, श्री भगवानदास केला, प्रकाशक—भारतीय ग्रन्थमाला, वृन्दावन। पृष्ठ ४३, मू० ।)

आजकल 'ग्रामसुधार' शब्द पेटेण्ट हो गया है।

सबने 'ग्रामसुधार' का प्रोग्राम एक परिपाटी के रूप में अपना लिया है। अतः 'ग्रामसुधार' का यह एक प्रकार का दिखावा तथा काग़ज़ी कार्यवाही व ज़बानी जमा ख़र्च ही है। लेखक ने इस पुस्तक में अपने गुरु—ग्राम-शिक्षक की विविध प्रकार के ग्रामोत्थान के कार्यों का वर्णन करके ग्राम-सेवा का उस समय का एक जीवित-जागृत उदाहरण दिया है, जबकि आधुनिक ढग के 'ग्रामसुधार' को कोई जानता तक न था। इससे पता लगता है कि एक अच्छा सुयोग्य शिक्षक ग्राम का कितना हित-साधन कर सकता है। लेखक ग्राम-भक्त हैं, अतः आप तीसरे आश्रम वाणप्रस्थ में प्रवेश करने के लिए हरेक को ग्रामप्रस्थ में प्रवेश करके ग्राम-सेवा में अपना शेष जीवन व्यतीत करने की प्रेरणा करते हैं। पुस्तक ग्राम-सेवकों के लिए उपयोगी है किंतु मूल्य अधिक है।

जापान से हम क्या सीखें—लेखक—चौधरी मुख़तारसिंह जी भूतपूर्व एम० एल ए, प्रकाशक प्रेमीप्रिंटिंग प्रेस, मेरठ शहर पृष्ठ संख्या ७८, मू० ।)

प्रस्तुत पुस्तक में चौधरी सा० ने अपनी जापान यात्रा के अनुभवों का निचोड़ दे दिया है। पुस्तक के अध्ययन से पता चलता है कि चौधरी सा० ने जापान के कारखानों और वहाँ के निवासियों का बड़ी गहराई के साथ अवलोकन किया है। आप ने इस छोटी सी पुस्तक में जापान की आश्चर्यजनक उन्नति के कारणों पर बड़ा अच्छा प्रकाश डाला है। आपने बताया है कि जापान के अभ्युदय का मुख्य कारण है वहां के निवासियों की कर्त्तव्य-परायणता। कर्त्तव्य-परायणता वहाँ के बच्चे २ में कूट-कूटकर भरी होती है। लड़कियों के सम्बन्ध में आप लिखते हैं कि 'जब से काम प्रारम्भ करती हैं उसे समाप्त करने तक निगाह उठाकर भी नहीं देखतीं। ऐसा मालूम होता था कि ये लड़कियां भी मशीन का एक पुर्जा बन गई हैं।' पुस्तक प्रत्येक भारतीय युवक के पढ़ने योग्य है। यदि इस पुस्तक में बताई हुई बातों पर अमल किया जाय तो भारतीय युवकों को भी कुछ सफलता मिल सकती है। पूर्ण सफलता तो तभी मिलेगी जब भारतवर्ष भी जापान की तरह स्वतन्त्र होगा—पुस्तक की भाषा बड़ी सरल है लेकिन अ[शुद्धियों] की अशुद्धियां अवश्य खटकती हैं।

नवज्योति (विशेषांक)—इस अंक के सम्पादक श्री जयनारायण जी व्यास हैं। जिन लोगों ने दैनिक 'अखण्ड भारत' का अवलोकन किया होगा, वह व्यास जी की सम्पादन-सम्बन्धी योग्यता से भली प्रकार परिचित होंगे।

इस ५६ पेज के विशेषाँक को खूब ही उपयोगी बनाया है। रियासतों सम्बन्धी काफी सामयिक मैटर का इसमें चयन है। इस अंक का मूल्य ≡) है। वार्षिक मूल्य है ३॥), पता—'नव-ज्योति' कार्यालय, अजमेर।

अरुण का कुंभअंक—'अरुण' मुरादाबाद से प्रकाशित होने वाला सुन्दर मासिक पत्र है। प्रतिमास सरल भाषा में उपयोगी सामग्री देने में यह कई भारी भरकम पत्रों से आगे है। प्रस्तुत अंक भी अच्छा निकाला है। 'आमवृक्ष के नीचे' और श्रीमती जी की बगावत' काफी दिलचस्प भाषा में गये हैं। चित्रों ने इसको और भी सुन्दर बना दिया है।

समाज-सेवक—(सम्मेलन अंक) कलकत्ता अखिल भारतीय मारवाड़ी फैडरेशन के इस मुख पत्र का प्रस्तुत अंक ज्ञान-वर्धक और व्यवहारिक लेखों से भरपूर है। लगभग सभी लेख काम के हैं जिनमें व्यापार व अर्थ शास्त्र सम्बन्धी काफी सामग्री है। सफाई छपाई बहुत बढ़िया है। १०१ पृष्ठों के इस अंक का मू० केवल ≈) ही रखा गया है।

विश्वबन्धु (कुम्भ-अंक)—लाहौर के इस हिंदी साप्ताहिक ने कुम्भ सम्बन्धी जानकारी के अलावा वर्तमान राजनैतिक स्थिति सम्बन्धी अच्छा मैटर दिया है। पंजाब के हिंदी समाचारपत्रों में 'विश्वबन्धु' काफी आगे बढ़ा हुआ है।

—oo—

दुर्दशा !--

एक समय था जब भारत सोने की चिड़िया कहलाता था। यहां दूध और घी की नदियाँ बहा करती थीं। सबको भर पेट खाना मिलता था, कोई किसी को भूखा न सोता था. सब हृष्ट-पुष्ट व सुखी रहते थे। लेकिन आज क्या है? आज तो यहां भीषण गरीबी, भूख, बेकारी और रोगों का ताण्डव-नृत्य हो रहा है, चारों ओर हाहाकार मचा हुआ है। इस अभागे देश में दस लाख व्यक्ति ऐसे हैं जिन्हें दोनों समय खाना नहीं मिलता और ऐसे तो करोड़ों हैं जिन्हें दिन भर में मुश्किल से केवल एक बार ही अन्नदेव के दर्शन होते हैं।

बेकारी की समस्या दिन प्रतिदिन विकराल रूप धारण करती जा रही है। मैट्रिक और एफ० ए० का तो कहना ही क्या, बी० ए० और एस० ए० तक को कोई नहीं पूछता। बेचारे जूतियां चटखाते इधर उधर मारे मारे फिरते हैं! एक खाली स्थान के लिए सैकड़ों अर्जियां आ जाती हैं। सर तेजबहादुर सप्रू के कथनानुसार तो वकील और इंजीनियर भी भूखे मरते हैं। डाक्टरों का भी यही हाल हो रहा है। नतीजा यह है कि युवकों में घोर निराशा फैलती जा रही है। उदरपूर्ति के लिए वे चोरी और डाका तक डालने के लिए तय्यार हो जाते हैं अपना धर्म परिवर्तन कर लेते हैं, और न मालूम क्या २ प्रपंच रचते हैं। जब इस से काम नहीं बनता तो रेल की पटरियों पर लेटकर, जहर खाकर या नहर में डूब कर आत्महत्या कर लेते हैं। ऐसी दिल दहलाने वाली खबरें समाचार पत्रों में सदा प्रकाशित होती रहती हैं। शिक्षित बेकार किंकर्त्तव्य विमूढ़ हो गये हैं। स्कूलों और कालेजों में किताबें रटरटकर वे इतने पंगू व निकम्मे बन गये हैं कि सिवाए नौकरी के वे कोई दूसरा काम कर ही नहीं सकते। लेकिन—

'कालेज में पास-पास की आवाज है बुलन्द।
ओहदों से आ रही है सदा दूर-दूर की॥'

भूखों मरते रहेंगे. अपमान सहते रहेंगे, निठल्ले पड़े अपना जीवन बर्बाद करते रहेंगे. १०-१५ रु० की नौकरी के लिए दरदर भटकते रहेंगे, खुशामद व चापलूसी करके अपने स्वाभिमान को खोते रहेंगे; लेकिन नौकरी के मोह से निकलकर किसी स्वतन्त्र धन्धे की ओर हरगिज ध्यान न देंगे। शारीरिक श्रम, कला-कौशल आदि से वे कोसों दूर भागते हैं। ऐसा करना वे अपनी और अपने कुल की बेइज्जती-कसरे-शान समझते हैं। वे तो बिना हाथ-पांव हिलाये ही एक क्षण में धन-कुबेर बनना चाहते हैं।

इस दुर्दशा का कारण है हमारी प्राणघातक शिक्षा प्रणाली, हमारे चिरसंचित कुसंस्कार; अंध-विश्वास, मतमतान्तर और झूठी परम्परायें जिन्होंने हमारी मनोवृत्ति को दासतापूर्ण बना दिया है तथा हमारी दिव्य शक्तियों को विकसित होने से पहले ही बुरी तरह कुचल दिया है। आज हमारे अन्दर न साहस है न उत्साह, न अपने ध्येय के लिए मर मिटने का अरमान है, और न अपने पांवों पर खड़ा होने की हिम्मत। हम किसी भी काम में हाथ डालते हुए, उसका दायित्व अपने ऊपर लेते हुए डरते हैं, क्योंकि हमारे अन्दर आत्म-विश्वास ही नहीं रहा हम सदा यही कहते रहते हैं कि "हम इस काम को कैसे कर सकते हैं? हमारे अन्दर इतनी शक्ति ही कहाँ है? हम तो रूखी-सूखी खाकर ही अपनी

गुजर कर लेंगे। जब ईश्वर को भूखों मारना हो मजूर है तब हमारी दौड़-धूप क्या काम आ सकती है।"

यदि हमें ऊंचा उठना है, सम्मान पूर्वक जिंदा रहना है तो हमें अपने इन पोच विचारों को तिलांजलि देनी ही होगी। संसार में अब भी दौलत की कमी नहीं है। इंगलैंड प्रति दिन १० लाख पौंड शस्त्री-करण पर खर्च करता है। शोषित और गरीब भारत ४ अरब का सोना विदेशों को भेज चुका है। इसके अलावा हम आये दिन मेलों त्यौहारों, उत्सवों, शादी और गमी में नित्य अरबों रुपया पानी की तरह बहाते रहते हैं। काम की भी कमी नहीं है। कमी है तो बस, हिम्मत और दलेरी की, सही दृष्टिकोण की, जिंदा दिली की, दृढ़ सकल्प की और अपने मकसद को हासिल करने के लिए जी-जान से जुट जाने की। अगर ये बातें हम अपने अंदर पैदा कर लें तो हम फिर किसी के सामने न हाथ पसारेंगे और न रोटी के चंद टुकड़ों के लिए गिड़गिड़ायेंगे। फिर तो हम नैपोलिन की तरह या तो कोई रास्ता ढूंढ निकालेंगे या रास्ता न मिलने पर कोई नया रास्ता मालूम करके ही दम लेंगे।

हमें यह बात सदा याद रखनी चाहिए कि सफलता मनुष्य का जन्मसिद्ध अधिकार है। मनुष्य स्वयं अपनी तकदीर बनाता या बिगाड़ता है। वह जो कुछ चाहे बन सकता है। उसके इरादे के सामने तकदीर टिक नहीं सकती। बात सिर्फ यही है कि मनुष्य स्वयं सोचना सीखें, स्वयं अपने नियम बनायें, स्वयं अपनी समस्याएँ हल करें, स्वयं ही अपनी रुचि के अनुसार अपना रास्ता बनायें। यह तभी हो सकता है जब मनुष्य अपनी मनोवृत्ति में क्रान्तिकारी परिवर्तन करले। दूसरों की गुलामी करके, दूसरों के विचारों पर निर्भर रहकर तो मनुष्य की बुद्धि कुंठित हो जाती है। बर्नडशा ने एक जगह लिखा है कि 'अगर आपने अपने दिमाग का जरा सा भी कोना एक क्षण के लिए खाली रखा कि दूसरे लोगों के मत, विचार, और उपदेश चारों तरफ से उसमें प्रवेश कर जायेंगे और आपके मस्तिष्क की स्वाभाविक सतह में खलल पैदा करेंगे।'

धन और कुल के साथ सफलता का कोई सम्बन्ध नहीं है। दुनिया के इतिहास के पन्ने को उलट जाइये आपको पता चल जायेगा कि दुनिया के लगभग सभी बड़े आदमी शुरू में निर्धन और साधन-हीन थे। लेकिन उनके दिल में एक लगन थी—कसक थी—बड़ा बनने की न बुझने वाली प्यास थी, जिसने उनकी काया पलट दी। यदि हम भी दलदल में से निकलकर आनन्दपूर्वक जीवन बिताना चाहते हैं तो हमें भी सोते-जागते उठते बैठते, खाते पीते किसी व्यक्ति विशेष की पूजा न कर, इस मन्त्र का जाप करना होगा कि 'मनुष्य अपनी दुनिया खुद बनाता है, वह अपना त्राता खुद है।' हम दावे से कहते हैं कि फिर सफलता और सुख हमारे पांवों पर आकर गिर जायेंगे, गरीबी और भूख कभी हमारे पास आकर न फटकेगी और हमारी आज जैसी दुर्दशा न रहेगी।

चीन-जापान—

युद्ध आरंभ करते समय जापान का खयाल था कि वह चीन को केवल चार-पांच मास में ही हड़प लेगा जिससे उसकी चिरकालीन मनोकामना पूरी हो जायगी। उत्तरीय चीन में जापान को जो विजय पर विजय प्राप्त हुई, उससे यही प्रतीत होने लगा था कि जापान अपने निश्चय में अवश्य सफल होगा। लेकिन दक्षिण चीन की ओर कदम बढ़ाते ही जापान के पांव उखड़ गये। उसकी आशा दुराशा में बदल गई।

चीन की पैदल और गोरिल्ला सेना तथा जनरल चांग-काई-शेक की 'मौका पाते ही वार करो और भाग जाओ' योजना ने जापान का नाक में दम कर दिया है। इस युद्ध ने चीन की बिखरी हुई शक्तियों को सगठित कर सभी

को एक सूत्र में बांध दिया है। अब वहां के आपसी पारस्परिक झगड़े मिटते जा रहे हैं। चीन के प्रवासी नागरिक भी अपने देश की लाज रखने के लिए अपूर्व उत्साह से सहायता दे रहे हैं। अमेरिका में पढ़ने वाले चीनी युवकों ने तो अपना दोपहर का नाश्ता भी बंद कर दिया है। वे गलियों में मोची का काम करते हैं और स्त्रियां अपने कीमती जेवर बेच रही हैं। इस प्रकार जो रुपया बचता है वह सब चीन भेज दिया जाता है। औरतें और चीन के मुसलमान भी चीन को अपनी मातृ भूमि समझ कर इसकी रक्षा के लिए सब कुछ कष्ट सहने को तैयार हो गये हैं। प्रकृति ने भी चीन की कुछ सहायता की है। पीली नदी में बाढ़ आने के कारण जापानियों के हौसले पस्त हो गये हैं। उनके बहुत से सिपाही डूब गये हैं और बहुत खलबली मच गई है। ७ लाख चीनी राजधानी हैंको की रक्षा के लिए कमर कसकर तय्यार हो रहे हैं।

चीनियों की अद्भुत एकता और तत्परता ने जापान के छक्के छुड़ा दिये हैं। जापान से लगभग ५ लाख सेना बाहर भेजी जा चुकी है। धन तबाह हो रहा है। ऋण दिनों दिन बढ़ रहा है। जापान के १९३८-३९ के बजट से पता चलता है कि वहां की सरकार की आमदनी में २ करोड़ पौंड का घाटा हुआ है फिर भी वह फौज पर करोड़ ३० लाख पौंड खर्च करने वाला है। जापानी दुःखी और परेशान हैं। वे समझ गये हैं कि वे फौज के गुलाम बनते जा रहे हैं। जापान के अर्थ-मन्त्री ने अभी घोषणा की है कि जापानियों को अपने रहन सहन का स्टैंडर्ड और भी कम करना होगा ताकि सेना पर अधिक से अधिक खर्च किया जा सके। अनुमान लगाया गया है कि यदि रूस भी युद्ध में कूद पड़ा तो जापान को प्रति दिन ५ करोड़ येन खर्च करने पड़ेंगे। आर्थिक क्षति के साथ-साथ जापान का नैतिक पतन भी बहुत हुआ है। चीन के समाचारों से पता चलता है कि कोई भी दिन ऐसा नहीं बीतता कि जिस में चीनी स्त्रियों और लड़कियों पर जापानी सिपाही बलात व्यभिचार नहीं करते। एक नानकिंग स्थित जर्मन निवासी ने तो यहां तक कहा है कि जापानी सिपाहियों ने लगभग २ हज़ार चीनी स्त्रियों के साथ, जिन में बूढ़ी औरतें भी शामिल हैं, मुंह काला किया है। जापानी हवाई जहाज़ों द्वारा शान्त नागरिकों पर बम-वर्षा के समाचार तो पाठक समाचारपत्रों में रोजाना पढ़ते ही हैं।

खेद तो यह है कि शक्ति-प्रियता का ढोल पीटने वाले बलशाली राष्ट्र सब चुप हैं। वे अपनी आंखों इस नृशंस नर-संहार को देख रहे हैं, लेकिन ज़रा टस से मस नहीं होते। उन का कसूर भी क्या है, वे खूब समझते हैं कि वे खुद उसी मर्ज़ में मुबतला हैं जिसमें कि जापान। कुछ हो, चीन-जापान युद्ध ने एक बार फिर सिद्ध कर दिया है कि शक्ति-शाली राष्ट्र आज निर्बल राष्ट्रों को कोई न कोई बहाना बना कर हज़म करना चाहते हैं अतः वही राष्ट्र स्वतंत्र रह सकते हैं जो स्वतंत्रता की बलि वेदी पर अपना सर्वस्व न्योछावर करने को तैयार हैं। भारत को इन युद्धों से सबक सीख कर अपने को इतना मजबूत और सर्व-साधन-युक्त बना लेना चाहिए कि कोई इसकी ओर आंख उठा कर भी न देख सके।

बाल-विवाह—

बाल-विवाह को रोकने के लिए १९३० में जो 'शारदा एक्ट' बनाया गया था, उसमें ऐसी त्रुटियां रह गई थीं जिनके कारण यह बहुत उपयोगी सिद्ध न हुआ। इन खामियों को दूर करने के लिए श्री बी० दास ने 'शारदा कानून संशोधन बिल' असेम्बली में पेश किया जो स्वीकृत होकर इस अप्रैल मास से क़ानून बन चुका है।

इस नये संशोधन के अनुसार ब्रिटिश भारत का

कोई भी निवासी कहीं बाहर देशी राज्य में जा कर भी विवाह कर लेगा तो उस पर यह क़ानून लागू होगा । पहले बाल-विवाह होने की शिकायत करने वाले को १००) की जमानत दाखिल करनी पड़ती थी, लेकिन अब जमानत वगैरा देने की जरूरत नहीं होगी । अब तो बिना अन्य किसी व्यक्ति के शिकायत करने के भी मैजिस्ट्रेट समाचार पाने पर क़ानून-विरुद्ध शादी को रोक सकेगा । दण्डविधान भी सख्त कर दिया गया है । पहले केवल जिलाधीश ही इस प्रकार का मुकद्दमा सुन सकता था किंतु अब प्रथम श्रेणी के किसी भी मजिस्ट्रेट की अदालत में मुक़द्दमा चलाया जा सकेगा ।

लेकिन सवाल तो यह है कि क्या हमारे रूढ़िग्रस्त भाइयों पर इस क़ानून का कुछ असर पड़ेगा ? हम रस्मोरिवाज और परम्पराओं के इतने गुलाम हो गये हैं कि इनका विरोध हम सहन ही नहीं कर सकते । जब लोगों के कानों में यह भिनक पड़ी कि नया कानून पास होने वाला है तब उन्होंने झट लाखों दुधमुँहे बच्चों की शादियां कर डालीं । अकेले इलाहाबाद में नया कानून लागू होने से पहले सिर्फ एक दिन में २०० विवाह सम्पन्न किये गये । यह है हमारी वेवकूफी और पागलपन का हाल ।

हमारा तो इस विषय में निश्चित मत है कि जब तक लोगों में सच्ची शिक्षा का प्रचार न होगा तब तक ये कुरीतियां हमें घुन की तरह खाती रहेंगी । यदि क़ानून से ही काम लेना है तो फिर ऐसा क़ानून बनना चाहिए जो ऐसे विवाहों का नाजाइज क़रार दे क्योंकि साधारण दंड से हमारे देश के दक़ियानूसी कभी टस से मस न होंगे ।

हौवा !

जब से मदरास के माध्यमिक स्कूलों की छठी, सातवीं, और आठवीं कक्षा में हिन्दी को अनिवार्य कर दिया है तब से मदरास में एक बवंडर उठ खड़ा हुआ है । कुछ गुमराह नवयुवकों ने इस नयी योजना के विरुद्ध मूर्खता पूर्ण आन्दोलन शुरू कर दिया है । वे भूखहडताल और सत्याग्रह भी कर रहे हैं ! इस सिलसिले में बहुत सी गिरफ़्तारियां भी हो चुकी हैं । आँदोलनकारियों का कहना है कि हिन्दी को अनिवार्य कर देने से हमारी संस्कृति और प्रान्तीय भाषाओं की हत्या हो जावेगी । प्रधान मन्त्री श्री राजगोपालाचारी ने एक विज्ञप्ति प्रकाशित करके यह बात साफ़ कर दी है कि हिन्दी को अनिवार्य कर देने का यह मतलब हरगिज नहीं है कि प्रांतीय भाषाओं के महत्त्व को कम किया जावे । स्कूल के सभी विषय प्रांतीय भाषाओं के माध्यम द्वारा पढ़ाये जायेंगे । हिन्दी का पढ़ना यद्यपि सब के लिए लाजमी होगा, तथापि इसमें फेल होने वाले को अगली कक्षा में चढ़ा दिया जायेगा । प्रारम्भिक शालाओं में तो हिन्दी को कोई स्थान ही नहीं दिया गया है । फिर समझ में नहीं आता कि ये व्यर्थ के प्रदर्शन करने वाले किस बिना पर कह रहे हैं कि प्रांतीय भाषाओं का गला घोंटा जा रहा है ।

हिन्दी भारत की राष्ट्रभाषा है । इसका ज्ञान तो प्रत्येक भारतीय को होना ही चाहिए जिससे कि वह देश भर में जहां भी जाये वहां अपना काम निकाल सके । हिन्दी तो सब प्रांतों को मिलाने का एक सुगम और सरल साधन है । जो हिन्दी को हौवा समझते हैं वे शायद सदा ही अलग-थलग रहकर गुलामी की जंजीरों को तोड़ना नहीं बल्कि और भी मजबूत करना चाहते हैं । मदरास में वर्षों से अंग्रेजी पढ़ाई जा रही है, सभी विषय अब तक इसके माध्यम द्वारा पढ़ाये जाते रहे हैं । क्या उस वक्त मदरास की संस्कृति और भाषाओं को कोई क्षति नहीं पहुँची थी ? उस समय ये आंदोलनकारी कहां सो रहे थे ? सदियों से दासता की वेड़ियों में जकड़े रहने के कारण हमारी मनोवृत्ति इतनी दूषित हो गई है कि हम हर किसी के ही वहकाने पर भड़क जाते हैं और अपनी वेवकूफी का प्रदर्शन करने लगते हैं । दो-चार

संसार चक्र

इलाका

—एलनाबाद (हिसार) में 'मित्रमण्डल पुस्तकालय' कई वर्ष पहले स्थापित हुआ था किंतु कुछ समय बाद ही उसका कार्य शिथिल हो गया । खुशी की बात है कि फरवरी १९३७ से वहाँ के उत्साही युवकों ने उसमें फिर से जान डालदी है। अब उस में ४१० पुस्तकें हैं तथा कई सामयिक पत्र-पत्रिकाएँ आती हैं। पुस्तकालय से प्रतिमास २०० तथा वाचनालय से ३०० के लगभग व्यक्ति लाभ उठाते हैं । चलता पुस्तकालय स्थापित करके ग्रामीणों को भी लाभान्वित करने का प्रबन्ध किया जा रहा है।

—२६ जून को अबोहर में पंजाब के सुप्रसिद्ध पहलवान गूंगे की आर० डबल्यू० हिडसन (जर्मन) के साथ कुश्ती हुई जिसमें गूंगे की जीत हुई। आसपास के हजारों व्यक्ति कुश्ती देखने आये। ३ मिनट के तमाशे के लिए हजारों रुपयों का स्वाहा हो गया।

—इस वर्ष इस इलाके तथा बीकानेर राज्य में वर्षाऋतु आरम्भ होते ही वर्षा होनी आरम्भ हो गई है। जून के अन्त तक दो बार बड़ी अच्छी वर्षा हो चुकी है।

प्रान्त

—आर्य गर्ल्स स्कूल पेशावर छावनी की प्रबन्धक कमेटी ने आज्ञा निकाली है कि स्कूल की सब छात्रायें व अध्यापिकायें खद्दर पहन कर आयें।

—झँग-लायलपुर के उपचुनाव में कांग्रेसी उम्मीदवार ला० देवराज सेठी पञ्जाब असेम्बली के लिए निर्विरोध चुने गए।

...स्वार्थी आदमी मिलकर इधर उधर की बातें बनाकर हमसे जो चाहें करा सकते हैं क्योंकि हम ने अपनी बुद्धि को ताला लगा रक्खा है।

जिंदाबाद—

डेरा इस्माइल खां में सीमा प्रान्त के प्रधान मंत्री मा० डाक्टर खान का १० जून का भाषण सुन कर सहसा हमारे मुह से निकल पड़ा—'डाक्टर खान जिंदाबाद!' कुछ सवालों का जवाब देते हुए आपने कहा कि अब ऐसा प्रबन्ध कर दिया गया है कि आइंदा हिंदुओं के अपहरण की घटनाएं इस प्रान्त में नहीं होंगी। सरकार ने यह घोषणा कर दी है कि एक हिंदु के अपहरण किए जाने पर कबीले वालों को गिरफ्तार किया जावेगा। यदि स्थानीय आदमियों ने कबीले वालों की सहायता की तो उन के परिवारों को भी सज़ा दी जायेगी। आपने इस बात को भी स्वीकार किया कि लाहौर से इस्लाम का प्रचार करने वाली संस्था की ओर से प्रकाशित पुस्तकों को पाठ्यक्रम में रख कर गलती की गई है। आपने आश्वासन दिलाया कि आगामी अप्रेल से इन्हें कोर्स में से निकाल दिया जायेगा। विद्वेष पैदा करने वाले ऐसे साहित्य को इसी वर्ष से पाठ्यक्रम से निकालदिया जाता तो और भी अच्छा था। नौकरियों के सम्बन्ध में आपने कहा कि नियुक्ति करते समय जाति-पांति का नहीं बल्कि योग्यता का ही खयाल रखा जायेगा। उदाहरणार्थ आपने बतलाया कि हम ने बन्नू म्युनिसिपैलिटी के लिए मि० ए० एस० धावन को प्रबन्धक (Administrator) नियुक्त किया है जिन के रिश्तेदारों ने कांग्रेस मंत्री मंडल का विरोध किया था। काश! डाक्टर खान साहेब मास्टर अब्दुल्ला शाह के मामले का भी निपटारा कर देते ताकि सीमा प्रान्त के हिंदुओं में जो असंतोष फैला हुआ है वह दूर हो जाता।

—०० —

—गवर्नर पञ्जाब ने शहीदगञ्ज आंदोलन के सब कैदी बिना शर्त रिहा कर दिए।

—पञ्जाब सरकार ने अपने कर्मचारियों को हिदायत की है कि वे बेगार की कुप्रथा को जड़-मूल से मिटाने के लिए कोई कसर उठा न रखें।

—पञ्जाब सरकार ने शिल्प-कला को प्रोत्साहन देने के लिए इस साल ४ लाख रुपया मँजूर किया है।

—सिंधु नदी में बाढ़ आने से १८ लाख का नुकसान हुआ।

—पञ्जाब यूनिवर्सिटी के चांसलर ने सीनेट के उस निर्णय को रद्द कर दिया है जिसमें यह तय हुआ था कि पञ्जाब यूनिवर्सिटी के लिए वैतनिक वाइस-चांसलर रखना न आवश्यक है न वाँछनीय।

—पञ्जाब सरकार ने एक सूचना द्वारा लोगों को चेतावनी दी है कि वे हरिजनों को सार्वजनिक कुओं व तालाबों पर पानी भरने से न रोकें।

—पञ्जाब काँगरेस की दोनों पार्टियों में कई सालों के बाद, समझौता हो गया है। काँगरेस कार्य-सञ्चालन के लिए ७ आदमियों की एक कमेटी बनाई गई है।

देश

—मदरास प्रांत भर में एक वृक्ष-रोपण दिवस मनाया जाने वाला है। उस दिन सब लोग एक-एक पेड़ लगायेंगे।

—बम्बई के उन स्कूलों को, जिनमें अछूतों को भरती नहीं किया जाता, कोई सरकारी सहायता न दी जायेगी।

—अकेले गोरखपुर डिवीज़न में ७१४ पञ्चायतें कायम हो चुकी हैं।

—मदरास सरकार ने कालेज में पढ़ने वाले हरिजन छात्रों से फीस न लेने का निश्चय किया है।

—मदरास सरकार विवाहों पर टैक्स लगाने के सवाल पर विचार कर रही है।

—१२मार्च से १३ अप्रैल तक ५ लाख ४३हजार ७२९ आदमी रेलवे द्वारा हरिद्वार पहुँचे तथा इन दिनों में सिर्फ ई० आई० आर ने ३७१ स्पेशल ट्रेनें चलाईं। कुम्भ के बाद १३ से १८ अप्रैल तक २१० स्पेशलट्रेनें चलाई गईं।

—बम्बई सरकार उन होटलों को लाइसेंस नहीं देगी जो अछूतों को अपने होटलों में दाखिल न होने देंगे।

—महाराजा पटियाला ने हवाई अड्डे को बन्द करने, ३ हवाई जहाजों, ३२ कारों व ७ लारियों को बेचने का फैसला किया है। शिकार के लिये सुरक्षित जंगलों को भी उड़ा दिया जावेगा।

—केन्द्रीय असेम्बली में डा० देशमुख ने हिन्दु स्त्रियों को तलाक का हक दिया जाने के बिल का नोटिस दिया है।

विदेश

—खबर है कि जर्मनी के डाक्टर पाल ने एक खाद का आविष्कार किया है जिससे पौधे मनमानी फसल देंगे।

—इस वर्ष अमेरिका में अनाज की ४५ करोड़ बोरियां और रुई की १ करोड़ ३० लाख गाँठें जरूरत से ज्यादा हुई हैं।

—आस्ट्रिया में यहूदी डाक्टरों को प्रैक्टिस करने से रोक दिया गया है।

—बाढ़ के कारण चीन की पीली नदी में १४ फीट पानी चढ़ गया, ३ लाख घर नष्ट हो गये। ४॥ लाख चीनी लापता हैं, १२ हजार जापानी सेना डूब गई। हजारों गांव उजड़ गये। पशु-धन और सम्पत्ति का तो कुछ कहना ही नहीं।

—ब्रिटिश सरकार ने युद्ध सामग्री जुटाने के लिए ८ करोड़ पौण्ड का नया कर्जा लिया है। यह शस्त्रीकरण पर प्रतिदिन १८ लाख पौंड खर्च करती है।

—१ फरवरी १९३३ से ३ मार्च १९३८ के अन्दर १ लाख यहूदी जर्मनी छोड़कर दूसरे देशों को चले गये।

REGD. L. NO. 370

माननीय श्री दुर्गाशंकर मेहता

अर्थ मन्त्री (मध्य प्रान्त)

पंचमढ़ी से अपने ता० २३-६-३८ के पत्र में लिखते हैं:—

"आपके पत्र में पाठकों के लिये सभी प्रकार की सामग्री मेरे देखने में आई है। जो लेख प्रकाशित हुए हैं वे सामाजिक सुधार और देशोन्नति के विचारों से परिपूर्ण हैं। सम्पादकीय नोट भी बड़ी विद्वतापूर्ण लिखे गये हैं। पत्र का सम्पादन और लेखों का चयन बड़ी उत्तमता से किया गया है। मैं आशा करता हूं कि आपके 'दीपक' के प्रकाश से राष्ट्रोन्नति के मार्ग-निदर्शन में सहायता मिलेगी। मैं उसे सफलता चाहता हूँ।

श्री भीमसेन सच्चर

एम० एल० ए० (पंजाब)

की सम्मति

"I am getting the 'Deepak' since October, 1937. I became its subscriber without the efforts of a canvasser. I had merely to look at a copy of the 'Deepak' to become one of its subscribers. Both in respect of its get up and material the 'Deepak' ranks amongst first class Hindi Journals. Its educative value for its readers cannot be minimised. I am glad to know the 'Deepak' has rendered conspicuous service wherever it has gone.

I wish the 'Deepak' a very long life of useful service.".

मध्यप्रान्त, बिहार, बम्बई, उड़ीसा, कोटा व राजगढ़ राज्य शिक्षा विभाग द्वारा स्कूलों व पुस्तकालयों के लिए स्वीकृत

दीपक

श्रावण प्र० १९९६] साहित्य सदन, अबोहर [अगस्त १९३९

वार्षिक मूल्य २॥)
एक अंक का ।)

श्रीअरविन्द घोष

आपका जीवनचरित्र इसी अंक में पढ़िये !

सम्पादक
तेगराम

यू० पी० के ग्राम सुधार विभाग द्वारा

ग्रामीण पुस्तकालयों के लिये स्वीकृत❀

सर्व साधारण के लिये उपयोगी, सरल पुस्तकें

❀विश्वधाय—इस में गौओं के पालन-पोषण सम्बन्धी ३२ आवश्यक विषयों का विशद वर्णन किया गया है। पुस्तक प्रत्येक गोपालक तथा ग्रामीण भाई के लिए अत्यन्त काम की है। लगभग ८० पृष्ठों की इस सचित्र पुस्तक का मूल्य केवल ।) है। डाक खर्च अलग।

❀ग्राम-सुधार नाटक—ग्रामीणों पर होने वाले घोर अत्याचार, उन में फैल अनेकों कुरीतियों व अंध-विश्वासों का नग्न चित्र तथा ग्रामोद्धार के सरल उपायों का यदि आप दिग्दर्शन करना चाहते हैं तो राष्ट्रीय भावों से ओत प्रोत इस नाटक को पढ़िये। सवा सौ पृष्ठों की पुस्तक का मूल्य ।।=) है। डाक खर्च अलग।

❀बाल गोपाल—बालकों के रोजमर्रा काम में आने वाली बातों को इस छोटी सी पुस्तक में सुन्दर और सरल गीतों में वर्णित किया गया है। भाषा चटकीली और इतनी सरल है कि पुस्तक में एक भी संयुक्त अक्षर नहीं आया है। पृष्ठ सख्या ४२, मू० =)॥, डाक खर्च अलग।

❀ईसप-नीति-निकुंज (प्रथम भाग)—इस पुस्तक में महात्मा ईसप की ६१ शिक्षाप्रद, दिलचस्प कहानियों का पद्यानुवाद है। कविता बड़ी सरल है। एक बार शुरु करके खतम करने को ही जी चाहता है। मू० ।।) डाक खर्च अलग।

बालोपदेश (प्रथम भाग)—इस पुस्तक की सर्व प्रियता इसी बात से सिद्ध हो जाती है कि गाँधी आश्रम हटुण्डी जैसी राष्ट्रीय संस्था ने अपनी सभी ग्रामीण पाठशालाओं के लिये इस की इकट्ठी ही सैंकड़ों प्रतियां ली हैं। पृष्ठ ३०, मू० -) मात्र, डाक खर्च अलग।

मिलने का पता:—साहित्य सदन, अबोहर (पंजाब)

नोट:—'दीपक' के ग्राहकों को ये सब पुस्तकें पौने मूल्य में मिलेंगी।

{ दीपक—वर्ष ४, संख्या १०, अगस्त १९३९ ई० }

विषय — लेखक — पृ० सं०

'दीपक' के नियम

१—'दीपक' हर अंग्रेज़ी महीने के पहले सप्ताह में प्रकाशित होता है।

२—'दीपक' का वार्षिक मूल्य डाक व्यय व विशेषांक सहित केवल २।।) है। एक प्रति ४ आने, विदेश से ४)।

३—'दीपक' में प्रकाशनार्थ लिखे जाने वाले लेख अधूरे न हों, पृष्ठ के एक ओर ही संशोधन के लिये इधर उधर जगह छोड़ कर सफाई से लिखे हों, विस्तार में चार पृष्ठ से अधिक न हों। भाषा उनकी सरल व शैली रोचक हो जिससे साधारण योग्यता वाले व्यक्ति भी जिनके हितार्थ 'दीपक' प्रकाशित हुआ है, उन्हें पढ़ व समझ सकें।

४—'दीपक' का मुख्य उद्देश **ग्राम-सुधार, समाज-उत्थान, शिक्षा व राष्ट्र-भाषा-प्रचार** द्वारा जनता-जनार्दनमें जीवन-जागृति पैदा करना है। अतः धार्मिक द्वेषी, साम्प्रदायिक विद्वेष पूर्ण उपरोक्त उद्देश्य के विपरीत कोई लेख न छप सकेगा।

५—लेख घटाने-बढ़ाने, संशोधन करने तथा प्रकाशित करने या न करने का अधिकार संपादक को होगा।

६—'दीपक' के ग्राहकों को पत्र-व्यवहार करते समय अपना पूरा पता और ग्राहक नम्बर साफ अक्षरों में लिखना चाहिये, अन्यथा जवाब देर से मिलेगा। १ मास से कम समयके लिये पता बदलवाने के लिये डाकखानेसे प्रबंध करें।

७—अस्वीकृत लेख डाक खर्च भेजने पर ही लौटाये जा सकेंगे अन्यथा नहीं।

८—जिन सज्जनों को किसी मास का 'दीपक' न मिले उन्हें पहले अपने डाकघर से पूछ ताछ करके बाद में हमारे पास लिखना चाहिये।

९—लेख, कविता, समालोचना के लिये पुस्तकें और बदले के पत्र, सम्पादक, 'दीपक' साहित्य सदन, अबोहर के पते से और मूल्य तथा प्रबन्ध विषयक पत्र मैनेजर 'दीपक' के पते से भेजने चाहिएं।

स्तंभ-सूची

कृपालु लेखक-लेखिकाओं से नम्र निवेदन है कि वे 'दीपक' के लिये कुछ लिखने से पहिले एक बार हमारे स्तंभों की सूची देख लें। इन स्तंभों के अतिरिक्त भाव-पूर्ण किन्तु सात्विक कविता और कहानियों के लिये भी 'दीपक' के कुछ पृष्ठ 'रिज़र्व' हैं। सरल भाषा में लिखे गये व्यवहारिक लेख 'दीपक' के श्रद्धापात्र होंगे।

—सम्पादक

...ved for use in Schools in U.P., C.P., Bihar, Bombay, Orissa, Kotah and Rajgarh States

सत्यम् :: शिवम् :: सुन्दरम्

सम्पादक—तेगराम

...ण प्र. १९९६ | वर्ष ४, संख्या १० पूर्ण संख्या ४६ | अगस्त १९३९

प्रभाती—

[साहित्य-भूषण, आचार्य, पं० विश्वप्रकाश दीक्षित 'बटुक' विद्यावाचस्पति]

तन्द्रा तज, जग ! नर रे !

बीत चुकी रात ।
हो रहा प्रभात ।
है पवित्र वात ।
नव जीवन मतिनस भर रे !
तन्द्रा तज, जग ! नर रे ॥१॥

...ा रहे सुधांशु ।
...गट हो खरांशु ।
...षामिष विपांशु ।
...दा रहे तुझ पर रे !
तन्द्रा तज, जग ! नर रे ॥२॥

काम, क्रोध, मोह—
की प्रति पग खोह ।
होता अवरोह ।
सम्भल-सम्भल पग धर रे !
तन्द्रा तज, जग ! नर रे ॥३॥

कर्म-भू प्रशस्त—
लख; सुकार्य व्यस्त—
हो, बन्धन ध्वस्त ।
स्वतन्त्र हो विचर रे !
तन्द्रा तज, जग ! नर रे ॥४॥

ज्ञान-चर्चा

'दीपक' के प्रकाश में !

(ले०—श्री कृष्णजसराय बी० ए०)

इस पृथ्वी पर जब हम चारों ओर निगाह पसार कर देखते हैं तो करोड़ों आदमी ही आदमी दिखाई देते हैं। यदि कुछ समय तक निगाह जमाये रखकर उनके कामों विचारों को ध्यान से देखें तो अजब तमाशा नज़र आता है। कोई काम की धुन में पागल है, भोग-विलास से ही उसे फ़ुरसत नहीं। कोई क्रोध की अग्नि में भस्म हुआ जा रहा है। उसके काम में किसी ने जहाँ ज़रा भी बाधा डाली कि वह आपे से बाहर हुआ, आँखों में ख़ून उतर आया और चेहरा सुर्ख़, डरावना हो गया। कोई लोभ-लालच के वशीभूत है। उसे रात-दिन पैसा बटोरने की ही धुन है। रुपया मिला, धर गुल्लक में; नोट मिला इधर-उधर रख। न आप काम में लावे, न किसी को लाने दे। लाखों रुपये बटोर लेने पर भी जी को चैन नहीं। रात दिन यही फ़िक्र लगी रहती है कि कहीं कौड़ी ख़र्च न हो जावे, स्त्री-पुत्र भी चाहे भूखे-नँगे रहें परन्तु कौड़ी ख़र्च न होवे! वह इसी में मस्त है। कोई बाल-बच्चों, घरबार, नाते-रिश्तेदारों के मोह में फँसा है। ज़रा बच्चा बीमार हुआ कि जान पर बन गई, परेशानी की कोई हद न रही। यदि कोई बालक मर जावे फिर तो पूछो हो नहीं मानो पहाड़ टूट पड़ा, सारा जीवन दुखमय बन गया, खाना-पीना, सोना सब हराम। कोई अभिमानी है तो अपने बराबर किसी को समझता ही नहीं। वह कहता है कि ईश्वर के यहां डेढ़ अक़्ल का भण्डार है, जिसमें से एक तो मुझे मिली है, बाकी आधी में सारा संसार है। उन्हें अपनी मानहानि का बेहद ख़्याल रहता है। किसी सभा में गए और 'आइए, पधारिए', कह कर सबसे ऊपर मँच पर न बैठाया गया तो नाराज़ हो गए, बिगड़ पड़े और मन में बड़े दुखित हो गये। मैं' सबसे ऊपर बैठूँ सभा में। यह 'मैं' ही तो हिटलर व मोसोलिनी को परेशान कर रही है कि मैं किसी प्रकार हो जाऊँ सब का सिरताज। इस 'मैं' पर वे सारी दुनिया को क़ुर्बान कर देने को तैयार हैं।

इस प्रकार की दूषित वृत्तियों वाले व्यक्तियों के अलावा अच्छी वृत्ति व सदगुणों वाले मनुष्य भी इस सँसार में हैं। कोई कोई समझ से, बुद्धि से काम लेने वाला व्यक्ति भी दिखाई देता है। वह सब काम समझ कर करता है और करने से पहले सोच लेता है कि ऐसा न हो कि मेरे इस काम से किसी को दुख पहुंचे। वह स्वयँ दुख सहन कर लेता है किंतु दूसरे को दुख नहीं पहुंचाना चाहता है। कोई प्रेम की होली खेल रहा है, और सबको अपने ही रँग में रँगना चाहता है। वहाँ तेरे मेरे का सवाल ही नहीं। कोई सत्य पर तुला हुआ है। जान भले ही जाए पर वह सत्य को नहीं छोड़ सकता है दीवार में चुनवा दिया जावे पर सत्य पर अटल रहेगा। राजा होकर भँगी के हाथ बिक जावें, परन्तु सत्य से एक क़दम पीछे नहीं हटना। कोई अहिंसा का दृढ़ व्रत धारण कर, हिंसा के बल पर स्थापित बड़ी से बड़ी राज-सत्ता को जड़ से उखाड़ फैंकने पर तुला है। उसके ऊपर चाहे कैसे भी भयँकर प्रहार हों, चाहे कितनी भी कठोर यातनायें उसे सहनी पड़ें किंतु क्या मजाल कि वह अपने मुख से किसी के भी प्रति एक भी कटु बचन निकाले, मन में प्रहारकर्त्ता के प्रति किसी भी प्रकार की दुर्भावना लावे। कोई एकता का झँडा ले घूम रहा है सब भाई हैं, सब बहनें हैं—नहीं २, सब जीव-मात्र एक हैं। पशु-पक्षी नहीं २,

पौधे वृक्ष भी हमारे भाई हैं। किसी को न सताओ, किसी से भेद भाव न रखो। जीव-मात्र की सेवा करना, मानो ईश्वर की सेवा करना है। कोई, इन सबसे भी परे कहो या ऊपर के विचार वाले कहो, हिमालय की गहरी व सुनसान कन्दराओं में योगासन जमाये, मालूम नहीं कहाँ अलख जगा रहे हैं।

मनुष्यों की यह विचित्र लीला देखकर मन में प्रश्न उठता है कि फिर यह भेद-भाव कैसा और क्यों? विचार चलता रहा ध्यान लगा रहा। अँधेरी कोठरी में कुछ उजियारा नज़र आने लगा, 'दीपक' टिमटिमाने लगा। कुछ समय बाद रोशनी ठहर गई। अब कुछ और ही दृश्य दिखाई देने लगा। एक-एक के दो-दो मनुष्य दीख पड़े—एक सीधा, एक उलटा। 'दीपक' की रोशनी ज़रा और तेज़ हुई तो इन दो के ऊपर एक और तीसरा मनुष्य दिखाई पड़ा। ग़ौर से देखने पर उलटा मनुष्य लाल व काले पीले रँग का दीख पड़ा। सीधा मनुष्य नीले व गुलाबी मिश्रित रँग का, और ऊपर वाला तीसरा मनुष्य श्वेत वर्ण का दीखा। कुछ समझ में नहीं आया कि क्या माजरा है। सोचते-सोचते आँखें बन्द हो गईं और कुछ निद्रा सी छा गई। इसी स्वप्नावस्था में कानों में कुछ आवाज़ सुनाई देने लगी मानो कोई कुछ कह रहा है। उस ओर ध्यान लगाया तो साफ़ सुनाई देने लगा। कोई बहुत मीठी और प्रेम भरी आवाज में कह रहा है—"देखा यह सँसार चक्र! यह दुनिया कर्मभूमि है, एक विशाल विद्यापीठ है। यहाँ मनुष्य मालिक का नाम पढ़ने को आते हैं। कोरे पढ़ने को ही नहीं, बल्कि स्वयँ मालिक ही बन जाने को आते हैं। यह जीवात्माओं का महान् प्रवाह है। इसका न आदि है, न अन्त। ऐसा क्यों है? क्या इसका कोई उत्तर नहीं? है, बस यही उत्तर हो सकता है। जो इस फ़िक्र में रहते हैं कि सब एक जैसे हो जावें, उनका यह ख्याल ग़लत है: एक विद्यापीठ में पढ़ने वाले पहली कक्षा के और अँतिम कक्षा के बालक कैसे एक से हो सकते हैं? दोनों की बातों में, विचारों में, दिन-रात का अन्तर रहेगा, अवश्य रहेगा।"

मैंने डरते डरते प्रश्न किया—'भगवन्! मैं यह तो समझ गया। किंतु अभी जो मनुष्यों का रूप दिख लाया, जिसमें एक-एक में तीन-तीन दिखाई दिए, इसका क्या मतलब?" उत्तर मिला—"देखो, यह जो एक शरीर धारी मनुष्य दिखाई देता है उसकी वास्तव में तीन दशाएँ हैं। पहली दशा में वह पशु-सँज्ञा में रहता है। पशु से ही वह मनुष्य-योनी में आया है। इस कारण प्रारम्भिक जीवन में काफी समय तक उसके विचार पशुत्व के बने रहते हैं। यह पाठशाला के वे बालक हैं जो पहली कक्षा में भरती हुए हैं। यह अभी मनुष्य कहलाने के अधिकारी नहीं हैं। इनमें अभी काम, क्रोध लोभ, मोह, अहँकार का भी भली प्रकार सञ्चालन नहीं हुआ है। यह अपने अशुद्ध मन के द्वारा हज़ारों जन्मों तक इन्हीं पांचों कार्य-केन्द्रों के अधिकार में रह, इस सँसार में काम करते रहते हैं। कभी काम में फँस गए, कभी क्रोध में, कभी लोभ में, कभी मोह में और कभी अहँकार में। इस प्रकार जिधर या जिस केन्द्र पर इनका कामी-मन या अशुद्ध-मन जाकर ठहर गया, वही करने लगे, मानो यह इनका सबक या पाठ है। इसको पढ़ते २ यह समझेंगे कि इनमें सिवाय दुख के कोई सुख व आनन्द नहीं। तब उनकी निगाह ऊँचे की ओर फिरेगी और अशुद्ध मन शान्त हो अन्तकरण द्वारा अपने शुद्ध मन से जा मिलेगा, जो साक्षी के तौर पर वृक्ष की ऊपर की डाली पर बैठा था। अब आगे से यह शुद्ध मन इस मनुष्य का काम अपने हाथ में ले लेता है, और कभी सत्य पर, कभी प्रेम पर कभी अहिंसा पर, कभी एकता पर तुलता रहता है, परन्तु सब जगह बुद्धि व समझ के सहारे। वह इसी प्रकार जीवन के सब कार्य करता है। यह विद्यापीठ के वे विद्यार्थी हैं जो मानो पाठशाला से निकल कर अब महाविद्यालय में पढ़ रहे हैं। यह मनुष्य कहलाने का अधिकार रखते हैं।

परन्तु महाविद्यालय का समय भी पूरा होकर रहता है और एक दिन वह आता है जब मनुष्य को इससे भी बाहर जाना पड़ता है। तब यह पृथ्वी लोक, नहीं-नहीं यह त्रिलोक उसके रहने की जगह नहीं रहती। फिर वह अपनी तीसरी दशा में प्रवेश करता है जो, इन दोनों

मंगल के तारे से फ़ौज उतरी !

[ले० - विश्वप्रेमी राजा महेन्द्रप्रताप, टोकियो, जापान]
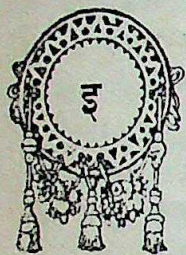
इस समाचार ने धूम मचादी। जिधर देखो, हल्ला है। पत्रों के विशेषाङ्क पत्तों की तरह उड़ रहे हैं। यह क्या हुआ? अब क्या होगा? प्रत्येक के मुख से कुछ ऐसे ही प्रश्न निकलते हैं, जब निकलते हैं, क्योंकि बहुतसों को तो मानो बोलने की शक्ति ही नहीं रही........।

समाचार है कि मङ्गल के तारे से इङ्गलैंड के बीचोंबीच कुछ सिपाही एक सरदार के साथ पहुँचे हैं। उनके पास ऐसे यन्त्र हैं अथवा कोई शक्ति-विशेष है कि उन के चारों ओर रेलें चलनी बन्द हो गईं। मोटरें चलाये नहीं चलतीं। तार काम नहीं करते। रेडियो बोलते नहीं और हवाई जहाज़ भी नहीं उड़ सकता........।

जैसे-तैसे प्रधान-मन्त्री चैम्बरलेन एक पुरानी घोड़ा-गाड़ी में उन तक पहुँचे। शस्त्र तो नहीं, चाकू भी नहीं, उनका छाता, हां, उनके हाथ में था। बड़े आदर के साथ, कुछ झुककर प्रणाम करते हुए बोले:—'साहब! मैं सुन चुका हूं आप सर्वज्ञाता हैं। आप हमारी भाषा भी खूब जानते हैं। क्यों नहीं? आप मङ्गल के राजा हैं!"........वह लोग एक-दूसरे की ओर देख कुछ मुसकराये और उनका सरदार "बोलो-बोलो" अङ्ग्रेज़ी में कहता सुनाई पड़ा........। श्री चैम्बरलेन ने फिर कहा—"साहब! मुझे विश्वास है कि आप लोग दुरबीन से दुनिया की हलचल देखकर ही पधारे हैं। मुझे बड़ी आशा है कि आप मेरी सहायता करेंगे। मैं ही एकमात्र व्यक्ति हूं जो इस लड़ती दुनिया में अमन स्थापित करना चाहता हूं। साहब! इन

प्रकार के मनुष्यों के ऊपर, दिव्य श्वेत रँग की दिखाई दी थी। इस दशा में वह मनुष्य नहीं कहलाता। तब वह महान् पुरुष, देव या जीवन मुक्त कहलाता है।"

इतना सुन मैं गद्गद हो गया और लड़खड़ाती आवाज़ में बोला - 'भगवन् अब मैं समझा। यह दुनिया अधिकतर प्रथम श्रेणी के विद्यार्थियों से भरी पड़ी है। इसलिए इसमें दुख अधिक और सुख कम हैं। परन्तु दुख ही हमारी उन्नति का मार्गदर्शक है। इसी के सहारे या कारण से हम आगे बढ़ते हैं और काम, क्रोध, लोभ, मोह व अहँकार की ज्वाला से सभी भट्टी में से निकल, शुद्ध सोना बन, पशुत्व को लात मार मनुष्य बन जाते हैं। इतना ही नहीं, तब हम मनुष्य में अपने को पहिचान, बुद्धि के सहारे इस सँसार के सब दुखों को भी सोने की हथकड़ी-बेड़ी समझ, इनको भी तोड़ अपने असली रूप में मिल जाते हैं। इस प्रकार मनुष्य इस सँसार-चक्र से निकलता है। आगे की भगवन् आप जानो। आपको बारम्बार नमस्कार है।" इतने में आँखें खुल गईं और वही चारपाई और वही हम।

हिटलर, मुसोलिनी और जापानियों ने मेरा नाक में दम कर रखा है। मैं चाहता हूँ शांति और वह चाहते हैं संग्राम!........"

उनके होंठ नहीं हिले पर यह ध्वनि सुनाई पड़ी। "बात क्या है?" '.........बात कुछ भी नहीं साहब! हमारी अङ्गरेज़ जाति ने बड़ी मुशकिल से सहस्र वर्ष में इस दुनिया में सबसे बड़ा साम्राज्य स्थापित किया है और मेरा विचार है—नहीं मैं क्या करूँ, मेरे साथियों का विचार है कि अब हमारा ही हक है कि समस्त सँसार में शांति स्थापित करें। हम जो, हिंदुस्थान में राजाओं को सेवक बना सके, अच्छे २ मुल्ला-महन्तों को अपने दुमागे पैदा कर सके, और वकील-बैरिस्टर भी ऐसे उत्पन्न कर सके कि वह अपनी सारी मानसिक-शक्ति हमारी ही जड़ें पक्की करने में लगाते हैं, तो आप ही बतलाइये साहब! यह हम न करेंगे तो और कौन करेगा? हम जानते हैं कि कैसे, कब, किसी को बढ़ाएँ, किसी को घटाएँ, किन्हीं को मुर्ग़ों की भांति लड़ाएँ। अतः हम जो भारत जैसे इस देश में, जहां सैंकड़ों भाषाएँ बोली जाती हैं, बीसियों धर्म हैं, राज्य कर सकते हैं, तो दुनिया में भी अवश्य कर सकेंगे। पर यह जर्मनी, इटली और जापान के दीवाने नहीं मानते—नहीं समझते कि हम उनके हित के लिए उनपर शासन करना चाहते हैं.......।"

बड़ा धमाका हुआ। चैम्बरलेन साहब की आंखें खुलीं। अरे, यह तो स्वप्न था! किसी ने कमरे में आकर अशुभ समाचार दिया कि लन्दन पर हवाई हमला हो रहा है।.........लड़ाइयां हुईं और अनेक हुईं। बहुत से लोग, करोड़ों नरनारी हताहत हुए। हारे सो तो हारे ही, पर जीते भी हारे। महाभारत का और क्या अन्त हो सकता है? उस पांच सहस्र वर्ष पिछले महाभारत में सर्वनाश के पश्चात पांडव हिमालय की बर्फ में मरगये और श्रीकृष्ण अकेले शिकार बन गये शिकारी के तीर का! पर दुनिया फिर भी चलती है। लोग फिर भी जीवित रहते ही हैं। प्रश्न यह है कि लड़ाई के पश्चात् क्या? युद्ध हो, महा-युद्ध हो, पर उस का भी अन्त है। फिर क्या? इसी लिये यह आवश्यक है कि बराबर लगातार प्रचार होता रहे कि जब तक समस्त संसार में एक मात्र राज्य स्थापित नहीं होगा, जब तक वह राज्य पूर्ण न्याय-युक्त नहीं होगा, जब तक प्रत्येक स्थान को घरेलू स्वतंत्रता प्राप्त नहीं होगी, जब तक सब मिल जुलकर मनुष्य कुटम्ब नहीं बनायेंगे कदापि शांति स्थापित नहीं हो सकती........।

यह एक कहानी निकली जो अगस्त १९३९ के 'दीपक' में छपी थी।

हे दीपक, नैष्ठिक ब्रह्मचारी हो !

(ले०—श्री रामावतार विद्याभास्कर, रतनगढ़, बिजनौर)

जिस प्रकार विचारहीन सँसार किसी मनुष्य की ईश्वरदर्शन कर चुकने की बात का विश्वास नहीं करता, क्योंकि उसने यह सिद्धाँत बना रखा है कि ईश्वर को कभी किसी ने नहीं देखा; इसी प्रकार निर्विचार सँसार ने यह भी एक सिद्धांत बना रखा है कि बिना विवाह किये कोई स्त्री-पुरुष इस सँसार में सुखी जीवन नहीं बिता सकता।

परन्तु विचार से इस सिद्धांत की असत्यता प्रमाणित होती है। विचार करते ही एक अलौकिक सिद्धांत मनुष्य के हाथ आता है कि सँसार के सब मनुष्य एक ही आदि पुरुष की सन्तान हैं। सब के एक ही आदि पुरुष की सन्तान होने के नाते प्रत्येक स्त्री-पुरुष का परस्पर भाई बहन का पवित्र सम्बन्ध है। विवाह-बन्धन इसी पवित्र सम्बन्ध की धृष्ट अवहेलना है। एक दूसरे शरीर पर लज्जानाशक अनुचित अधिकार जमाना ही विवाह की मनो-वृत्ति है। विवाहित जीवन मनुष्यत्व की अविकसित या सुप्त अवस्था है और पशुभाव के मनुष्य जीवन पर अधिकार जमाने की अचूक सूचना है। जिस मनुष्य को मनुष्यत्व की पूर्ण विकसित अवस्था प्राप्त होजाती है वह नैष्ठिक ब्रह्मचर्य पाले बिना, जगत भर के स्त्री-पुरुषों को पवित्र भाई-बहन माने बिना. या अपने वैवाहिक जीवन का अन्त किये बिना, नहीं रह सकता।

जो लोग नैष्ठिक ब्रह्मचर्य द्वारा सर्वभूतों की आत्म-रूपता तथा विश्वप्रेम आदि भावों की कल्पना नहीं कर सकते, वे इस जीवन को कठोर और अव्याव-हारिक कहकर इसका उपहास कर सकते हैं। परन्तु सचाई तो यह है कि वे भी अपने मन में इस नैष्ठिक ब्रह्मचर्य को ही मनुष्य जीवन का लक्ष्य मानते हैं। वे केवल अपने भोगासक्त जीवन के मोह को न छोड़ सकने के कारण इस पवित्रता का विरोध करते हैं। इस सिद्धांत की सत्यता का इससे बढ़िया और क्या प्रमाण होगा कि सँसार भर के विवाहित लोग विवाह-बन्धन-रहित नैष्ठिक ब्रह्मचर्य पालन वाले लोक-सेवक सन्तों की प्रतिष्ठा करते हैं और उन्हें श्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं। वे केवल मुंह ही मुंह से नैष्ठिक ब्रह्मचर्य का विरोध करते हैं किंतु अपने व्यवहारिक जीवन में तो इस जीवन को ही मनुष्य जीवन की उच्चतम अवस्था स्वीकार करते हैं।

बहुधा कहा जाता है कि नैष्ठिक ब्रह्मचर्य से संसार समाप्त हो जायगा। मानो यह लोग सँसार चलाने की ठेकेदारी लेकर जगत में आये हों और, उसी को निभाने के लिये सृष्टि पर बड़ी दया करके विवाह के बोझे को अपने ऊपर ले रहे हों। अपने ऊंचे से ऊंचा, पवित्र से पवित्र, मनुष्य बनाकर आत्मानन्द भोगना ही मनुष्य जीवन का चरम लक्ष्य है। ससार को जीवित रखना मनुष्य का काम नहीं है। यह काम स्रष्टा का है। हमारा काम तो स्रष्टा को और उसकी नियमावलि को पहचानकर उसीमें अभेद भाव से मिल जाने का है। यदि हमारी पवित्रता सुरक्षित रहे तो भले ही यह सारा सँसार कल को नष्ट होता आज ही नष्ट हो जाय, उससे हमारी कोई हानि नहीं है। हमारा पतन हीं- हमारी हानि है। सँसार-चक्र कामना रुक जाना हमारी हानि नहीं है। ये सब ऐसे काल्पनिक भय हैं जो कि सत्य से दूर रहने के बहानों के लिए विषयासक्त मनों ने घड़ डाले हैं।

विवाह के विरुद्ध प्रचार करना इस लेख का उद्देश्य नहीं है। जो निर्बल मन वाले भोगासक्त मनुष्य अपने भीतर बहने वाली सत्य सरस्वती को बाहर निकाल कर उससे अपने गुणमय जीवन-सस्यों का सिंचन नहीं कर सकते, जो अन्दर की ज्ञान-गँगा से अपने जीवन के मैदानों को आप्लावित करने का साहस नहीं कर सकते, वे लोग भोगासक्त जीवन को कदापि नहीं छोड़ेंगे। उनसे नैष्ठिक जीवन का महत्व समझने और उसे बिताने की आशा नहीं की जा सकती। उनके प्रति उपदेश झड़ना इस लेख का अभिप्राय नहीं है। परन्तु जब वे ही लोग नैष्ठिक ब्रह्मचर्य, भोगहीन कर्तव्यपरायण जीवन, या अपने रूप-यौवन का क्रय-विक्रय से बचनेवाले जीवन की पवित्रता के आदर्श को सँसार भर से बहिष्कृत करना चाहते हैं, तब समाज-कल्याण की दृष्टि से नैष्ठिक ब्रह्मचर्य के नर को नारायण कर डालने वाले आदर्श की रक्षा करना कर्त्तव्य हो जाता है। कोमल-बुद्धि बालकों के मन में कहीं इस प्रकार की दुष्ट छाप न बैठ जाय कि विवाह मनुष्य जीवन के लिए अनिवार्य रूप से आवश्यक है और कहीं वे इस सिद्धांत को सुनकर अपने जीवनपथ से भ्रष्ट न हो जायँ, इसके लिए नैष्ठिक ब्रह्मचर्य का वास्तविक रूप पाठकों के सामने रखना आवश्यक है।

सद्गुण ही समाज की सच्ची सम्पत्ति है। मनुष्य के उच्चतम गुणों का नाम ही नैष्ठिक ब्रह्मचर्य है। मनुष्य के शरीर में भोगों के लिए जो आकर्षण है उसे मनुष्य दो कामों में लासकता है; एक तो भोगों का तुच्छ सुख भोगने में और दूसरे भोगों की उत्सुकता की पूरी रोकथाम करके, अपने को शांत, अनुत्तप्त, निर्विकार, अप्रभावित अनासक्त तथा सुशीतल रख अमर सुख का उपभोग करने में। मनुष्य शरीर के विकारों से मनुष्य विकाराधीन भी हो सकता है, परन्तु उसे पूरा सच्चा आनन्द तो तब ही आता है जब वह विकारों को अपने नियन्त्रण में रखता है और अपने निर्विकार सन्त रूप का दर्शन करता है।

यद्यपि मनुष्य विषयासक्त होने के अवसरों पर विषयासक्त हो जाने के लिए स्वतन्त्र है, परन्तु उसका मनुष्य जन्म तो तबही सफल होता है जब वह अपने उदात्ततम गुणों द्वारा गुणहीनता के प्रत्येक अवसरों से लड़कर अपने जीवन-क्षेत्र का कठोर विजेता बनकर दिखाता है। जब तक मनुष्य देह के आकर्षण-विकर्षण आदि की दासता छोड़ने का साहस नहीं दिखाता, तब तक वह किन्हीं गुणों से मनुष्य न कहलाकर, मनुष्य माता के पेट से जन्म लेने के कारण से ही मनुष्य कहलाता रहता है। दो पैर का प्राणी होने से मनुष्य कहलाने में मनुष्य का कोई गौरव नहीं किंतु सद्गुणों की खान अर्थात् दैवी-सम्पत्ति की ईश्वरीय प्रदर्शनी बनाने में ही मानव जीवन का महत्व है। अपना जीवन समाज के सम्पूर्ण सद्गुणों का सँगम-क्षेत्र बन जाय, यही 'नैष्ठिक-ब्रह्मचर्य' का रूप है। जीवन अपना न रहकर जीवन, जीवन को बनाने वाले का हो जाय, उसी की इच्छा-अनुसार बीतने लगे, यही 'नैष्ठिक ब्रह्मचर्य' का रूप है।

जो लोग अपने सद्गुणों से जी लगाने की विद्या नहीं जानते, जो अपने पवित्र विचारों में रमना नहीं जानते, जो अकेले ही जी लगाने की दिव्यकला से अपरिचित हैं—उन्होंने ही विवाह-सम्बन्ध की अनिवार्यता का सिद्धांत बनाया है। कहीं न कहीं बन्धे बिना सन्तोष से न बैठना ही बन्धन का रूप है। जब मनुष्य में अपने आपको किसी न किसी के आधीन बनालेने की मनोदशा आ जाती है, तब ही इस ढङ्ग के सम्बन्ध जोड़ने की भावना उत्पन्न होती है। माना कि सँसार का बहुमत इसी ओर जा रहा है। परन्तु सब का सब सँसार ऐसा ही हो जाय; ऐसी इच्छा करना अज्ञानी मनुष्य की अनाधिकार चेष्टा है। मनुष्य में दूसरों के अधिकार को स्वीकार करने का साहस और उदारता होनी चाहिए। कमसे कम उसे अविवाहित अनासक्त जीवनों को सँसार भर से बहिष्कृत करने

का दुस्साहस तो नहीं दिखाना चाहिए।

अज्ञानी रहने तक मनुष्य अपने को चाहे जितना पतित तथा निर्बल मानता रहे, परन्तु जिसदिन मनुष्य को अपने स्वरूप की गुप्त महत्ता का भेद मालूम होगा उसदिन उसके मन में से जी न लगने वाला अन्धेरा लुप्त हो चुका होगा।

मनुष्य मनुष्य नहीं है; वह तो साक्षात नारायण है। इस नरदेह में नारायण ही नर बनकर आ बैठा है और फिर नारायण-भाव का अन्वेषण करने में लग गया है। वह नारायण बनने का आनन्द भोगने के लिए नर-तन धारण करता है। कभी नर और कभी नारायण बनना—यही दिव्य-क्रीड़ा इस सँसार में सदा से खेली जा रही है।

मनुष्य के मन में उसके अज्ञानी माता-पिताओं ने, उसके ईश्वर से भिन्न क्षुद्र सत्ता होने के भाव जमा डाले हैं। मनुष्य जाति अपने बालकों को बहका कर उनका नाश कर रही है कि तुम ईश्वर नहीं हो, तुम मनुष्य हो। यदि मनुष्य के बालक को उसके ईश्वर होने का सुसमाचार सुना दिया जाय तो सम्पूर्ण दुर्गुण एक ही दिन में मनुष्य जाति को छोड़ कर भाग जाएँ। परन्तु भोगासक्त मनुष्य जाति ईश्वर बनने के सङ्कट में पड़ने से घबराती है। क्यों कि तब उसे भोगी जीवन त्यागना पड़ेगा। भोगी जीवन को त्यागना ही ईश्वर बनना है। भोगासक्त बनी हुई मनुष्य जाति ऐसी किसी बात को मानना नहीं चाहती जिसमें उसे भोग त्यागने पड़ें। चाहे वह इस सुमार्ग पर चले या न चले, मूलमें तो वह ईश्वर ही है। मनुष्य के स्वरूप में इतने अनन्त गुणगण हैं कि वह उनके सहारे से लाखों वर्ष तक, एकाकी कर दिये जाने पर भी, परमशान्त सुखी जीवन बिता सकता है। अपने स्वरूप-माहात्म्य को समझ जाने वाले मनुष्य को विवाहित जीवन के लिए कोई लालच नहीं हो सकता। उसे तो मनुष्य की विषयासक्ति को देखकर तरस आता है। उसका अपना कर्त्तव्य ही—उसका माता-पिता, पति-पत्नी आदि सब कुछ हो जा।। है।

जिस प्रकार छोटा बालक गुड्डे-गुड्डियों के या मूर्ख समाज कूओं, तालाबों, मन्दिरों तथा तुलसी के वृक्षों तक के विवाहोत्सव मनाता है, इसी प्रकार आज कल समाचार पत्रों के भी विवाह चल पड़े हैं। परन्तु समाचार पत्रों में इस प्रकार की चर्चाओं को पवित्रमति बालक-बालिकाओं सहित सर्व-साधारण के विचारार्थ उपस्थित करना पवित्रतारूपी ईश्वर की अवहेलना करना है। इस प्रकार की चर्चा उठाने से स्वतन्त्र, स्वाधीन, निर्विकार, पवित्र, ब्रह्मचर्य-जीवन के प्रति घृणा प्रकट होती है। 'दीपक' के किसी गतांक में 'दीपक' के नैष्ठिक ब्रह्मचर्य को लुप्त करने वाला प्रहसन पढ़कर, साथ ही 'दीपक' के महान् उद्देश्य तथा उसके कोमलमति बालक-बालिका—पाठकों की श्रद्धा और सन्मान करने योग्य पूज्य पवित्रता का ध्यान आते ही, इस प्रहसन का अनौचित्य तथा अक्षम्यता प्रकट होती है। ऐसे प्रहसनों को पढ़कर बाल-जीवन के परम-माहात्म्य तथा उसकी पवित्रता के प्रति अपना उत्तरदायित्व मानने वाले अभिभावकों का माथा ठनक जाता है। यह प्रहसन जिस भावना का प्रचार करना चाहता है, उन भावों को सिखाने के लिए सृष्टि में अनन्त पाठशालायें खुली हुई हैं। ये भाव बिना सिखाये आते हैं। इनसे बचना ही शिक्षा का विषय है। प्रहसनों का यह बड़ा अभद्ररूप है। अन्दर की निरानन्दता के दुख से बचने की यह एक असफल चेष्टा है।

आदर्शहीन पत्र इस प्रकार की छेड़छाड़ से अपने कलेवर को गन्दा करते हैं तो करें, परन्तु यदि समाज की सेवा का व्रत लेने वाले 'दीपक' जैसे पत्र भी अपने को इसी विषयासक्ति की बेबसी में फँस जाने देंगे तो बताइये मनुष्य जाति को अमर शाँति दे सकने वाली पवित्रता या दैवी सम्पत्ति को 'समाचार जगत्' में कहाँ आश्रय मिलेगा? एक

(शेष पृष्ठ ११ पर)

मताग्रह का ज़हर

(ले०—श्री एडमेएड होम्स)

(अनु० - श्री पं॰ बंसीधर बी०ए०एल०टी०)

[३]

ताग्रह ने मनुष्य के उगते हुए व्यक्तित्व के विकास को रोकने के लिए एक तीसरा जेलखाना भी निर्मित किया है—हैवान-व्यक्तित्व (Animal self) का। जो मनुष्य इस जेलखाने में बन्द हो जाता है वह विकास का ख्याल ही छोड़ देता है। दुनियाँ में उपस्थित आदर्शों की सीमा में प्रवृत्ति और वाह्य प्रगति के लिए काफी अवकाश है। कई बार मनुष्य के सँकुचित अहं में भीषण स्वेच्छाचारिता का आभास होता है। इसका कारण यह है कि विकसित होने वाली शक्ति जब मताग्रह के दबाव से कुचल दी जाती है तब वह स्वेच्छाचारिता—जोर, ज़बरदस्ती के रूप में प्रकट होती है। लेकिन जब विकृत अहं मनुष्य के उगते हुए जीवन पर अपना एकाधिकार जमा लेता है, तब उसके अन्दर कोई महत्त्वाकांक्षा नहीं रहती और वह प्रसन्न हो कर या निराश हो कर काम-वासना की दलदल में धँस जाता है। हमारे सामने ऐसी बहुत सी मिसालें आती हैं कि जिनमें मनुष्य दुनिया से अलग कई तरह दयालु और निस्वार्थी होते हुए भी, किसी विघातक आदत के मजबूत फँदे में फँसने के बाद, अपने आपको उसमें से निकालने को समर्थ नहीं होता। अन्त में हम इस नतीजे पर पहुंचते हैं कि हमारी स्वाभाविक नेकी और शक्ति की जितनी क्षति और हानि मताग्रह से होती है, उतनी और किसी चीज़ से नहीं होती। कारण, मताग्रह झूठी व्यवस्था के नाम पर आत्म-अनुशासन का स्थान ढ़ील के अनुशासन को दे देता है।

ऊपर हमने जिन बुराइयों पर विचार किया है, वे सब मनुष्य के उच्च-जीवन में अनधिकार हस्तक्षेप करने वाले मताग्रह के कारण पैदा होती हैं। वर्तमान समय में मताग्रह प्रौढ़ व्यक्ति के उच्च जीवन पर अपना सीधा दबाव किसी गम्भीर हद तक नहीं डाल सकता। लेकिन बाल्यावस्था के सम्बन्ध में यह नहीं कहा जा सकता है।

मैं कह चुका कि हूँ वर्तमान युग की प्रचण्ड अशाँति-बेचैनी मताग्रह के दबाव के खिलाफ बढ़ती हुई प्रतिक्रिया की परिचायक है। यों तो यह प्रतिक्रिया बहुत दिनों से चल रही है लेकिन हाल ही में मनुष्य को इस बात का अस्पष्ट सा ज्ञान हुआ है कि उसका घोर शत्रु उसका मताग्रह ही है। धीरे-धीरे एक या अन्य दिशा में मनुष्य अब आत्म-विकास को रोकने वाले मताग्रह के चँगुल में से अपने आपको निकालता जा रहा है (आज का बढ़ता हुआ जनतन्त्र-आंदोलन वास्तव में निर्धन तथा आश्रित लोगों का, जो मताग्रह के बहुत जल्दी शिकार हो जाते हैं, एक प्रयत्न है ताकि वे भी सूर्य के प्रकाश में शुद्ध वायु में घूम फिर सकें, या स्वतंत्र जीवन बिताते हुए अपना विकास कर सकें।

जिस मताग्रह के बहुत कुछ दबाव को आज भी मनुष्य सहन कर रहा है, वह दबाव मनुष्य ने स्वेच्छा से और शुभ आशयसे अपने लिए स्वीकृत किया है। इसलिए इस तथा अन्य कारणों से भी यह उसके उच्च जीवन में किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं करता। जब मैं जहाज में सवार

होता हूँ तब मैं स्वेच्छा से कप्तान की मताग्रही सूचनाओं पर अमल करता हूँ। जब मैं रेल में बैठता हूँ तब मैं रेलवे-कम्पनी और गार्ड की मताग्रही हिदायतों को खुशी से मानता हूं। जब मैं किसी दुकान में या फर्म में नौकरी करता हूँ तो अपनी इच्छा से अपने मालिक और उसके सहायकों की मताग्रही हिदायतों को स्वीकार करता हूँ। इस प्रकार के निर्दोष और आवश्यक मताग्रह को मैं हँसते-हँसते सहन कर लेता हूँ। मैं राज्य के कानून और शासन विषयक दबाव को भी बरदाश्त कर लेता हूं, अगर्चे सब हालतों में सहर्ष ऐसा नहीं करता। राज्य के कुछ कानूनों और उनके कुछ व्यवहारों को मैं शायद स्वेच्छाचारपूर्ण और अन्यायपूर्ण समझता हूँ। लेकिन फिर भी उनके सामने मैं इसलिए सिर झुका देता हूँ कि ऐसा करना एक तो सार्वजनिक व्यवस्था के लिए हितकर है और दूसरे इसलिये कि मैं बतौर एक नागरिक के उनको बदलवाने के लिए कोई कार्यवाही कर सकता हूं।

धार्मिक क्षेत्र में मुझे नास्तिक समझ कर ज़िंदा जला देने वाला सरकारी दबाव अब बन्द हो गया है। अपने स्वीकृत धर्म या पन्थ के दबाव को छोड़कर धार्मिक लोकमत का दबाव अब भी जारी है। लेकिन यह दबाव भी प्रतिवर्ष कम होता जा रहा है तथा मैं चाहूँ तो किसी भी हालत में इसकी अवहेलना कर सकता हूँ। नैतिक दबाव भी बड़ा जबरदस्त है और कुछ मिलाकर मुझे ऐसा लगता है कि इस दबाव को मान लेना ही अच्छा है। मैं इस दबाव को शीघ्रता से इसलिए स्वीकार कर लेता हूँ क्यों कि नैतिक मत को बदला जा सकता है। गत ३० वर्षों में इस दिशा में बहुत से परिवर्तन हो गए हैं। इसके उपराँत मैं अपने ढँग से नैतिक मत में परिवर्तन करने का प्रयत्न कर रहा हूँ। लेकिन जड़ता में फँसी हुई समाज का जिसमें कि मैं रहता हूँ, दबाव सबसे गम्भीर है यह एक ऐसा दबाव है जो मेरे आदर्शों, उद्देश्यों और माप दँडों पर नियँत्रण रखता है। किंतु यह दबाव सचमुच घातक और अशुभ होने पर भी अनिवार्य रूप से मुझे गम्भीर हानि नहीं पहुँचा सकता क्योंकि एक तो मैं किसी हद तक इसके असर को टाल सकता हूं, दूसरे मैं इसके विषैले असर से बचने के लिए किसी प्रकार की प्रार्थना की ज़रूरत नहीं समझता क्योंकि मैं बहिर्मुख, जड़वादी और अहँवादी हूं। अगर मुझसे यह सवाल किया जाए कि मैं अपने बचाव के लिए प्रार्थना करना क्यों नहीं चाहता, तो इसका जवाब यही है कि बाल्यावस्था में जो शिक्षा मुझे दी गई उसने मेरे आध्यात्मिक विकास को रोक दिया।

अब हम समस्त समस्या के मूल पर आते हैं। मानव-जीवन का दुखान्त शिक्षा के साँधकार दुखान्त में ही समाया हुआ है। बात यह है कि मनुष्य बाह्य-उन्नति की धुन में, सच्ची उन्नति को ही नामुमकिन बना देता है। अपने युग का दूसरे युगों के साथ मुकाबला करना कठिन ही नहीं शायद असम्भव भी है। हम जिस युग में रहते हैं उस युग को अपनी मानवता और उन्नति का इतना गौरव है कि वह किसी गत युग से अपना मुकाबला किया जाना गवारा न करेगा। लेकिन अगर हम १८ वीं सदी के मध्ययुग के उस वर्ष के चित्र पर नजर डालें जबकि पैरिस के फैशनेबिल नर नारी एक असफल खूनी को मृत्यु के घाट उतारते हुए देखने के लिये इकट्ठे हुए थे। इस घटना को छोड़कर फिर मिस्र, हिंदुस्तान और चीन की सभ्यता पर दृष्टिपात करें तो हम शायद इस नतीजे पर पहुँचेंगे कि उस समय से अब तक भौतिक उन्नति के सिवाय और किसी प्रकार की उन्नति हुई ही नहीं। नैतिक, आध्यात्मिक तथा व्यापक अर्थ में) बौद्धिक रूपसे अठारहवीं सदी का मनुष्य अपने से हज़ारों वर्ष पहले के मनुष्य के साथ ही खड़ा है। किसी-किसी दिशा में यदि इसने उन्नति की है, तो दूसरी दिशाओं में अवनति करके उसने अपने समतोलन को बराबर रखा है। "सभी युगों में मनुष्य एक सा ही होता है" तथा "मनुष्य स्वभाव नहीं बदल सकता" आदि कहावतें लम्बे और व्यापक अनुभव का नतीजा है। इन कहावतों की तह में मानवता के प्रति जो घृणा का भाव छिपा हुआ है वह पूर्णतया झूठा है। लेकिन फिर भी यह मानना ही होगा कि ये कहावतें बाह्य दृष्टि से ठीक हैं। मानवजाति की आध्यात्मिक प्रगति

...तिक प्रगति की निस्बत कम हुई है तथा आध्यात्मिक ...ति और भौतिक प्रगति में पहले की निस्बत आज ...अंतर दिखाई देता है। इसका कारण यह है कि हर ...ने वाले युग में बहिर्मुखवादी और अहँवादी मनुष्यों का ...नया वर्ग दुनिया में पैदा होता रहता है। इस वर्ग ...पैदा करने की जिम्मेवारी मताग्रहियों पर है क्योंकि ...लकों की शिक्षा-दीक्षा इन्हीं के हाथों में है। ये मताग्रही बालकों की कोमल आत्मा पर अपने दूषित सँस्कारों और खामियों की छाप लगा देते हैं। इस प्रकार, ये घातक सँस्कार एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुँच जाते हैं। बाल्यावस्था तथा युवावस्था में ही मताग्रह अपना सबसे अधिक दबाव तथा विनाशक प्रभाव डालता है। बालक और युवा पर व्यवस्थित रूप से पड़े हुए इसी मताग्रही दबाव को हम शिक्षा कहते हैं।

दीपक ! नैष्ठिक ब्रह्मचारी हो !

(पृष्ठ ८ का शेषांश)

...ताशील अभिभावक इस प्रकार के प्रहसनों को ...यंत कोपभरी दृष्टि से देखता है और पत्र की नीति ...कठोरतापूर्वक पवित्रता की रक्षा कराना चाहता है।

सँसार का बहुमत विषयासक्ति में फँसा रहता है। उसे उसके जीवन के दोष दिखाना अरण्यरोदन है। परन्तु हे दीपक ! बालकों का चिंताशील अभिभावक आपसे एक प्रार्थना करना चाहता है कि आपके जीवन का एक आदर्श है। आप नैष्ठिक ब्रह्मचारी हों। देश में सद्गुणों की सेवा के लिए आपका अवतार हुआ है। आपको किसी को अपने रूपयौवन बेचने का अधिकार नहीं है। आपका जीवन, आपने जिस जनता-नारायण की सेवा का ...त लिया है, उसी के चरणों में चढ़ाया हुआ उपहार है। आपका जीवन अब आपका नहीं रह गया है। ...तो आपके पाठक—सुकुमार बालक-बालिकाओं का हो चुका है। अब तो वह उनका योग्य सलाहकार बनने जा रहा है। अब तो वह पूजोपहार से वापिस मिले हुए 'शिवनिर्माल्य' के रूप में आपके पास है। हे दीपक ! आप अपने जीवन को देशसेवा के काम में अर्पण कर चुके हो। अब इसे किसी काम-पात्र के चाटने की चटनी बनाने का आपका अधिकार नहीं है। अतः हे दीपक ! आप ऐसी प्रार्थनाओं को सदा अनसुनी करके ठुकरा दिया करो। आपका उद्देश्य महान् है देश के मन में से अँधेरा हटाना है। इसलिए हे दीपक ! सीधे होकर जलो और कामादि पतँगों को अपने में आ आकर जल मरने दो ! आपके अक्षर-अक्षर से मानवीय उदात्ततम गुणों की सेवा होनी चाहिए। और यदि केवल महान् लक्ष्य वाले लेख छापने से आपकी ग्राहक-सँख्या घटती हो तो आप छापना बन्द कर दो और मौनी होकर अपने आश्रम में नैष्ठिक ब्रह्मचर्य की सेवा करते रहो। आप लोक जैसे बनकर लोक की सेवा करना चाहोगे तो सेवा नहीं हो सकेगी। आप, आप जैसे रहकर ही लोक की सेवा करते रहोगे तो सेवा हो सकेगी।

दक्षिणभारत हिन्दी-प्रचार-सभा, मद्रास

[ले०—श्री स्वामी केशवानन्द.]

भारतवर्ष मुख्यतया दो विभागों में बंटा है—उत्तर भारत और दक्षिण भारत। उत्तर भारत में अनेक प्रांत और प्रांतीय-शासन एवं रियासतें हैं। परन्तु दक्षिणभारत एक प्रांतीय-शासन से प्रशासित प्रदेश है। उत्तर भारत की, थोड़े-थोड़े भेदों को छोड़, लगभग एक ही भाषा है जो वहां पूर्व में आसाम से लेकर पश्चिम में सीमा प्रांत तक समझी जा सकती है। इस प्रकार, उत्तर भारत के भिन्न-भिन्न प्रांतों के निवासी, आसानी से एक दूसरे के भावों को समझ सकते हैं।

परन्तु दक्षिण भारत एक ऐसा प्रांत है जिसमें एक प्रांतीय-शासन होते हुए भी, वह चार ऐसे उप-प्रांतों में विभाजित है जिसकी अलग २ चार भाषाएं व लिपियां हैं। उत्तर भारतीय के लिये तो इन भाषाओं को समझना दूर रहा, स्वयं दक्षिण भारतीय भी एक दूसरे की भाषा आसानी से नहीं समझ सकता है। दक्षिण भारत की ये चार भाषाएँ तथा उनके बोलने वालों की संख्या इस प्रकार है:—१. तेलुगू (२६३७३५१४), २. तामिल (२०४११६५२) ३. कन्नड़ (११२०३६८०) और ४. मलयालम (९१३७६१५)। इन चारों उप-प्रांतों के साथ मैसूर, ट्रावनकोर और कोचीन आदि उन्नतिशील एवं समृद्धिशाली रियासतें भी मिली हैं जिनके निवासी इन चारों भाषाओं में से किसी न किसी को बोलते हैं।

इस प्रकार, उत्तर भारत तथा दक्षिण भारत में बड़ा भारी भेद है—भाषा व लिपि का, जोकि एक को दूसरे से बहुत अलग बनाये हुए है। सुदूर समुद्र पारके अपरिचित भाषा बोलने वालों के देश में चले जाने पर जिस प्रकार किसी व्यक्ति के सामने वहां की भाषा बोलने-समझने सम्बन्धी जैसी विकट समस्या उपस्थित होती है, ठीक वैसी ही समस्या समुद्र के इधर, अपने ही देश के एक प्रान्त—दक्षिण में उत्तर भारत के एक व्यक्ति के सामने उपस्थित हो जाती है। इसका एक मात्र कारण है अपनी एक देशी राष्ट्रभाषा का न होना। जो देश भौगोलिक, ऐतिहासिक तथा साँस्कृतिक दृष्टि से एक है—अविभाज्य है, जिसमें एक राष्ट्र कहलाने के उपयुक्त सभी कुछ साधन मौजूद हैं, किन्तु अन्तर्प्रान्तीय-

दक्षिण भारत हिन्दी-प्रचार-सभा के भवनों का विहङ्गम दृश्य ।
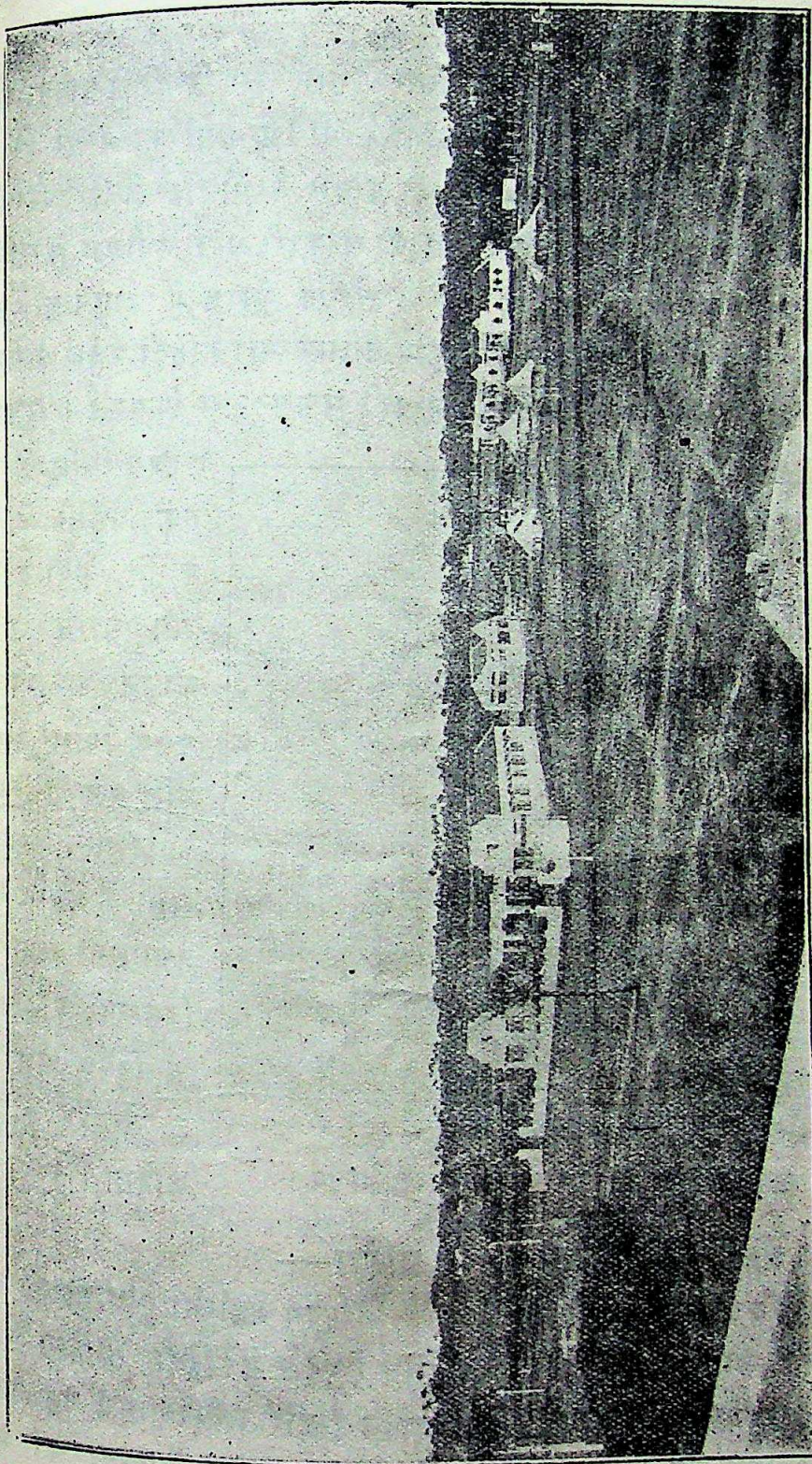
Bird's eye-view of the Sabha's buildings.

व्यवहार के लिये एक सांझी भाषा का अभाव—जो इसे खण्ड-खण्ड किये हुए है—बहुत बुरी तरह से चुभ रहा है। पूज्य महात्मा गांधी इस भेद को न सह सके और उन्होंने समूचे राष्ट्र को हिन्दी के द्वारा राष्ट्र भाषा के सूत्र में बन्धने का उग्र उद्योग प्रारम्भ किया। उन दिनों राष्ट्रीय महासभा—कांग्रेस की

सभा का प्रधान कर्यालय और श्री रंगस्वामी स्मारक मंडप।

सरकारी भाषा भी अँग्रेजी ही थी जिसे देश में हज़ार पीछे कुछ ही व्यक्ति जानते थे और जिसके द्वारा देश की समस्याओं पर गिनती के भारतीय ही परस्पर विचार-विनिमय किया करते थे। किन्तु महात्मा गांधी तथा देश के अन्य राष्ट्रभाषा-हितैषी नेताओं व विद्वानों के निरन्तर के प्रयत्नों से आज दक्षिण भारत तथा आसाम जैसे हिन्दी से पूर्णतः अपरिचित प्रांतों में भी राष्ट्रभाषा का प्रचार हो गया है तथा कांग्रेस ने भी हिन्दी-हिन्दुस्तानी को ही अपनी सरकारी भाषा स्वीकार कर लिया है।

दक्षिण भारत में राष्ट्रभाषा प्रचार का कार्य दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, मद्रास ने बड़ी सफलता से किया है। सभा अपनी उद्देश्य-सिद्धि के लिये कहां तक पहुँची है, उस की प्रगति कैसी हुई है, उसके अँग पसारने को क्या-क्या साधन उपलब्ध हैं तथा उसके पास जन, धन व बुद्धि-बल कितना है? आदि बातों का परिचय सभा के प्रधान मंत्री द्वारा प्रकाशित सभा के कार्य-विवरण के निम्नलिखित आवश्यक अँश तथा चित्रों से भली भांति मिल जावेगा।

प्रारंभ—

"पूज्य महात्मा गांधीजी की अध्यक्षता में सन १९१८ में हिंदी साहित्य सम्मेलन ने अपने इन्दौर अधिवेशन में यह निश्चय किया कि दक्षिण भारत में हिन्दी का प्रचार शुरू कर दिया जाय। उसी वर्ष महात्माजी ने अपने पुत्र देवदासजी को हिन्दी प्रचार कार्य

करने के लिये मद्रास भेजा। १९१८ से १९२७ तक मद्रास का हिंदी प्रचार कार्य सम्मेलन के तत्वावधान में चला।

पहला दशाब्द—

इस कार्य के प्रथम दशाब्दी में काफ़ी परिश्रम करना पड़ा। पूज्य महात्माजी के

श्री कृष्ण पराडाले हिंदी प्रचारक विद्यालय भवन।

व्यक्तित्व तथा उत्तर और दक्षिण के उत्साही व परिश्रमी युवकों के प्रयत्न ने हिन्दी प्रचार की नींव पक्की कर दी। हिन्दी प्रचारकों को आदर तथा अस्तित्व मिला। १९२७ में दक्षिण भारतीयों ने सारा कार्य अपने हाथ में लिया और उसे व्यापक तथा स्वावलंबी बनाने का निश्चय कर लिया। फलतः इसी वर्ष दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा की स्थापना हुई।

दूसरा दशाब्द—

सभा के प्रत्येक विभाग का कार्य सुसंगठित तथा सुव्यवस्थित बनाया गया। इस दशाब्दी में देश का राष्ट्रीय वातावरण भी सभा के कार्य के लिये अनुकूल होने से सभा की उन्नति दिन दुगुनी रात चौगुनी हुई। सन १९३३-३४ में सभा के परीक्षार्थियों की संख्या ४० हज़ार तक पहुँची, केन्द्रों की संख्या ३०० से अधिक हुई और वार्षिक

व्यय ५० हज़ार से अधिक बढ़ गया। १९३८ के अन्त में ये आँकड़े दुगुने से ज्यादह हो गये — परीक्षार्थी-संख्या ८४,००० हो गयी, केन्द्र संख्या ६०० और वार्षिक व्यय १,४०,००० रु० हो गया।

भवन-निर्माण—

अपने बढ़ते हुए कार्य को सुसंगठित व सुव्यवस्थित करने के लिये सभा के लिये निजी मकान बनाने का प्रयत्न १९३५ में शुरू हुआ। भवन-निर्माण कार्यक्रम को सफल बनाने के लिये हिंदी प्रचारकों व हिंदी विद्यार्थियों ने खूब परिश्रम किया। पूज्य बापूजी व श्री जमनालालजी से भी विशेष मदद मिली। फलतः आज पांच एकड़ जमीन पर
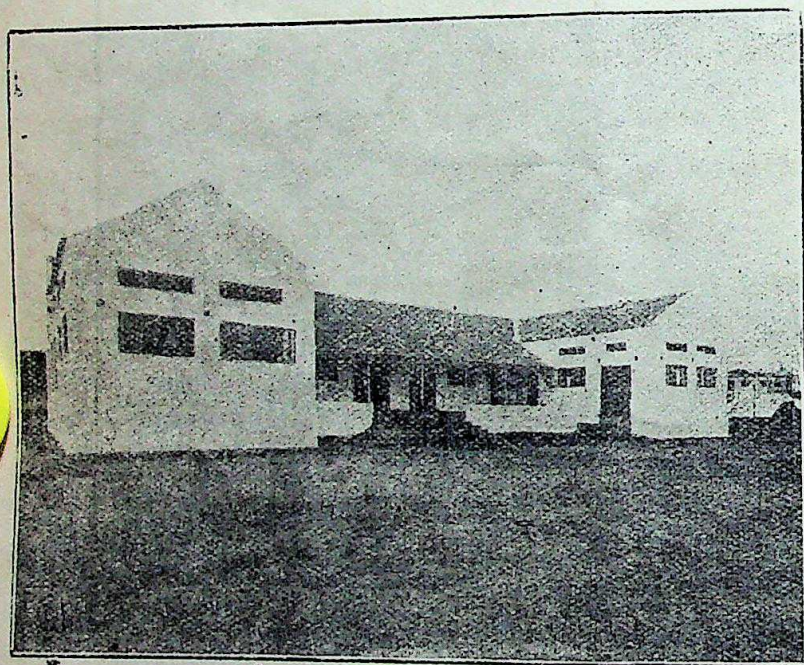
हिन्दी प्रचार प्रेस

मद्रास का सुन्दर व नया मोहल्ला त्यागरायनगर में, सभा का दफ़तर, प्रेस, छात्रवास और कार्यकर्ताओं के निवास बनकर तैयार हो गये हैं। इसमें अबतक ६५ हज़ार रुपये खर्च हुए हैं।

कार्यालय की सजीवता—

सभा का यह अहाता जितना दर्शनीय है उतना ही सजीव है। इस अहाते में करीब १०० लोग समूचे दक्षिण भारत में होनेवाले हिंदी प्रचार को संगठित करने, व्यापक बनाने, तथा उसके लिये आवश्यक सामग्री पैदा करने में लगे रहते हैं। प्रचार-विभाग अपने चार प्रांतीय कार्यालयों के द्वारा प्रचार का संगठन करता है। परीक्षा-विभाग हर साल ६०० केन्द्रों में करीब २० हज़ार परीक्षार्थियों की, परीक्षा लेता है। साहित्य विभाग नयी नयी हिंदी पुस्तकें तैयार करता है। सभा का हिंदी प्रचार प्रेस इन किताबों की हिंदी और दक्षिण की सभी भाषाओं में हर साल डेढ़ लाख से अधिक प्रतियां छापता है और पुस्तक विभाग दक्षिण भारत के कोने कोने तक इन किताबों को पहुँचाता है। दक्षिण

और उत्तर के सांस्कृतिक समन्वय का कार्य 'दक्षिण भारत' नामक त्रैमासिक पत्र के ज़रिये होता है और 'हिंदी प्रचार समाचार' नामक मासिक पत्र हिंदी आँदोलन का प्रतिबिंब तथा स्फूर्तिवाहक बनकर सभी केन्द्रों में जाता है। विद्यालय विभाग हर साल ५० प्रचारक तैयार कर प्रांतों में कार्य करने के लिये भेजता है। सभा का हिन्दी पुस्तकालय, जिसमें ३००० जिल्दें हैं व वाचनालय.जिसमें करीब करीब सभी हिंदी पत्रिकायें आती हैं, बड़े ही लोकप्रिय हैं।

प्रांतीय शाखायें—

बेजवाड़ा, त्रिचिनापल्ली, एरनाकुलम व धारवाड़ में क्रमशः आंध्र, तमिल, केरल व कर्नाटक प्रांतीय शाखा कार्यालय हैं। इनके कुल करीब ६०० सदस्य हैं और वार्षिक व्यय करीब ४०,००० है। प्रांतीय कार्यालयों के अंतर्गत १०० से ज्यादह प्रचारक कार्य करते हैं। स्त्री-पुरुष, जाति-धर्म, बड़े-छोटे के किसी भेदभाव के बिना सभी लोग बड़े उत्साह से हिंदी सीख रहे हैं। स्त्रियों की संख्या काफ़ी संतोषजनक है, हर साल हज़ारों स्त्रियां हिंदी परीक्षायें पास करती हैं।

सभा का यह दावा है कि उसने अबतक सात लाख से अधिक लोगों को हिन्दी सिखायी है। सभा का प्रचार व व्यापक कार्य तेज़ी से हो रहा है। अबतक जितना कार्य हुआ है उसके लिये करीब नौ लाख रुपये लगे हैं, जिनमें केवल बीस फ़ी सदी उत्तर-भारत से मिला है। बाकी रुपया दक्षिण भारत से ही प्राप्त हुआ है। उसका कार्य करीब करीब स्वावलम्बी हो रहा है।"

अन्य किसी भी संस्था द्वारा इतने थोड़े समय में इस प्रकार सुव्यवस्थित रूप से हिंदी प्रचार कार्य नहीं हुआ है। अतः इस सभाने राष्ट्रभाषा-प्रचार आंदोलन में जो अपूर्व सफलता प्राप्त की है, वह सर्वथा सराहनीय तथा अन्य प्रांत वालों के लिये अनुकरणीय है।*

*श्री स्वामी केशवानन्द जी ने गत मई मास में लँका की यात्रा की थी। आपने वहाँ पर जो कुछ देखा व अनुभव किया तथा मार्ग में पड़ने वाले पोंडिचेरी, मद्रास, वर्धा आदि प्रसिद्ध स्थानों, का वर्णन आप 'दीपक' में दे रहे हैं। इस यात्रा-विवरण का यह पहला लेख है। 'दीपक' के अगले अंकों में क्रमशः लँका-यात्रा-विवरण सचित्र प्रकाशित होगा।

—सम्पादक

पोण्डिचेरी के परमहंस

(लेखक—श्री आचार्य अभयदेव सन्यासी अरविन्दाश्रम, पोण्डिचेरी)

(५)

जीवन-चरित्र की रूपरेखा

अन्त में मैं परमहँस श्रीअरविंद का प्रामाणिक जीवन-चरित्र, जन्म-काल से लेकर पोंडिचेरी के इस योगाश्रम स्थापना तक का जीवन-चरित्र 'दीपक' पाठकों की सेवा में प्रस्तुत करता हूँ, जिससे कि इस जानने योग्य महापुरुष के विषय में हम कुछ अधिक परिचित हो सकें।

श्रीअरविंद ने १५ अगस्त सन १८७२ में कलकत्ता में जन्म लेकर इस भारतभूमि को अलंकृत किया था। १८७९ में सात वर्ष की आयु में उनके दो बड़े भाई विद्याभ्यास के लिए इन्हें अपने साथ इँगलैंड ले गए। इँगलैंड वे १४ साल तक रहे। वहां पहले मैंचेस्टर में उनका भरणपोषण एक अँग्रेज परिवार में हुआ। इसके बाद १८८५ में लन्दन आकर सैण्टपाल स्कूल में प्रवेश किया। १८९० में एक उच्चश्रेणी की छात्रवृत्ति पाकर यहाँ से कैम्ब्रिज के किंग्स कोलेज में चले गए, वहां उन्होंने दो वर्ष तक अध्ययन किया। १८९० में वे इण्डियन सिविल सर्विस की खुली प्रतियोगिता में भाग लेकर उत्तीर्ण हुये, परन्तु योग्यता-निरीक्षण-काल में जब दो वर्ष बाद अश्वारोहण-परीक्षा का अवसर आया तो वे इस परीक्षा में उपस्थित होने से चूक गए, परिणामतः उन्हें सर्विस के क्षेत्र से बाहर आना पड़ा। इस समय बड़ौदा की सरकार के यहां एक नौकरी प्राप्त करली। १८९३ की फरवरी में इँगलैंड से वे भारत वापिस आये।

१८९३ से १९०६ तक १३ वर्ष अरविंद ने बड़ौदा में व्यतीत किये। पहिले वे रियासत के कर-विभाग में और महाराजा के मन्त्री-मण्डल में काम करते रहे। पीछे से बड़ौदा कोलेज में आंग्ल-भाषा के उपाध्याय नियुक्त हुए और अन्त में इसी कोलेज के उपाचार्य भी बने। इन वर्षों में उन्होंने भारतीय-सँस्कृति का गहरा अध्ययन किया। साहित्यिक उन्नति का भी उन्हें यहां अच्छा अवसर मिला। पोंडिचेरी से जो कवितायें प्रकाशित हुईं थी उनमें से अधिकतर यहीं लिखी गईं थीं। इन तेरह वर्षों में उन्होंने अपने आपको भविष्य जीवन के लिए तय्यार कर लिया था। इगलैंड में उन्होंने अपने पिता के निर्देशानुसार विशुद्ध पाश्चात्य शिक्षा की ही दीक्षा ली थी, इस शिक्षा के साथ भारत अथवा पूर्व की सँस्कृति का कोई सँस्पर्श न था*। बड़ौदा में उन्होंने इस क्षति को पूरा किया, सँस्कृत तथा बहुत सी आधुनिक भाषाओं का ज्ञान प्राप्त कर लिया।

---

*यह भी ध्यान में रखना चाहिये कि इँगलैण्ड में रहकर श्रीअरविंद ने यूरोप की प्राचीन, मध्ययुग और वर्तमान-काल की सँस्कृति से पूरी जानकारी प्राप्त करली थी। ग्रीक और लेटिन भाषाओं के वे सुयोग्य विद्वान् बन गए थे। मैंनचेस्टर में उन्होंने बचपन से ही फ्रेंच भाषा सीखी थी। डैन्टे और गेटे की मूल पुस्तकों का अध्ययन करने के लिए उन्होंने इटैलियन और जर्मन भाषा का भी पर्याप्त ज्ञान प्राप्त किया था।

भारतीय सँस्कृति और सभ्यता तथा इसके प्राचीन और वर्तमान स्वरूप का गम्भीर विवेचन किया। बड़ौदा में उनकी ऐसी स्थिति थी कि वे सार्वजनिक कार्यों में भाग नहीं ले सकते थे। इसलिये उन्होंने वहां के अँतिम वर्ष में लगभग सारे समय के लिये अवकाश ले लिया और चुपचाप राजनैतिक-क्षेत्र में कार्य करते रहे। १९०५ में बंगविच्छेद-आँदोलन से उन्हें बड़ौदा नरेश की नौकरी छोड़ने का अच्छा अवसर मिला, और उन्होंने राजनैतिक आँदोलन में भाग लेना आरम्भ किया। १९०६ में वे बड़ौदा छोड़कर कलकत्ता चले आये और यहां आकर नये स्थापित हुये बँगाल-राष्ट्रीय महाविद्यालय के आचार्य नियुक्त हुये।

१९०२ से १९१० तक ८ वर्ष श्रीअरविंद ने राजनैतिक-क्षेत्र में कार्य किया। पहिले चार वर्ष तक तो वे स्वदेशी आंदोलन आरम्भ करने की तय्यारी के लिये अन्य सहयोगियों के साथ काम करते रहे। उस समय तक उनकी विशेष प्रसिद्धि न हुई। दूसरी ओर बँगविच्छेद-आंदोलन से राष्ट्रीय काँग्रेस में एक नूतन धारा का प्रवेश हुआ, लोगों के सामने केवल प्रस्ताव पास करके सुधार करना ही उद्देश्य न रह गया, वे इससे अपना बहुत अधिक उत्तरदायित्व समझने लगे।

इस नवीन प्रगति से प्रेरित होकर श्रीअरविंद ने बंगाल आकर कांग्रेस के नए दल में प्रवेश किया। इस दल ने अभी कांग्रेस में जन्म ही लिया था। यद्यपि यह विचारों की दृष्टि से बहुत आगे बढ़ा हुआ था, तोभी इसके सदस्यों की संख्या बहुत कम थी, इसका प्रभाव अभी कुछ न था। सरकार के साथ असहयोग की अस्पष्ट योजना ही इस दल का अपना विशेष मत था। विषय-समिति की आड़ में रहकर उदार दल के नेताओं के साथ व्यर्थ विरोध करने के सिवाए इस नवीन दल ने अभी और कोई काम नहीं किया था। अरविंद ने बंगाल में इस नवीन दल के नेताओं को एक अखिल भारतीय दल के रूप में निश्चित और उत्तम कार्यक्रम लेकर खुले तौर पर आगे बढ़ने के लिये प्रेरित किया। महाराष्ट्र के लोकप्रिय नेता बाल गंगाधर तिलक को इस दल का अगुआ बनाया गया और यह सँकल्प किया गया कि उदार दल कांग्रेस की पर्याप्त सेवा कर चुका है, अब उसके बदले हमें काँग्रेस को अपने अधिकार में कर लेना चाहिये। उदार दल और राष्ट्रीय दल की ऐतिहासिक लड़ाई यहां से शुरू हुई और इसने भारतीय राजनीति पट को दो वर्ष में बिलकुल बदल दिया।

इस नवजात राष्ट्रीय दल (नैशनेलिस्ट पार्टी) ने स्वराज्य को अपना उद्देश्य बनाया। इससे पहले उदार दल की मांग केवल औपनिवेशिक स्वशासन की थी, यह स्वशासन भी धीरे-धीरे सुधार होकर एक दो शताब्दियों के बाद मिल सकता था।

नवीन दल ने अपने कार्यक्रम को क्रियात्मक रूप देने के लिए ऐसे उपायों का अवलम्बन किया जो कि बहुत अँशों में सिनफेन (Sinu Fein) नीति से मिलते जुलते थे। इस नीति का कुछ वर्ष बाद विकास हुआ और इसने आयरलैंड में सफलता सूचक परिणाम पैदा किये। इस नई नीति का मूल सूत्र स्वावलम्बन था। इसका एक उद्देश्य तो जाति में शक्ति और बल का प्रभावोत्पादक सञ्चार करना था, और दूसरा सरकार के साथ पूर्ण असहयोग, ब्रिटिश और विदेशी माल का बहिष्कार और उसके स्थान पर स्वदेशी उद्योग धन्धों को प्रोत्साहन देना, ब्रिटिश अदालतों का बहिष्कार करके उनके बदले स्वतन्त्र देशी अदालतों को स्थापित करना, सरकारी विश्वविद्यालयों और शिक्षणालयों का बहिष्कार कर के राष्ट्रीय विश्वविद्यालयों और शिक्षणालयों को जन्म देना तथा युवक समाज का निर्माण करना जो पुलिस और आत्मरक्षा का कार्य कर सके और आवश्यकता पड़ने पर शांतिमय उपायों से भी प्रतिद्वन्द्वियों का मुकाबला कर सके। अरविंद की यह महत्त्वाकाँक्षा थी कि कांग्रेस पर अधिकार करके

उसे सुव्यवस्थित राष्ट्रीय कार्य का एक केन्द्र बनाया जाय। यह तब तक स्वतँत्रता का युद्ध जारी रक्खे जब तक यह अपना उद्देश्य—पूर्ण-स्वराज्य प्राप्त करने में सफल न हो।

उन्होंने अपने दल को "बन्दे मातरम्" नामक दैनिक पत्र प्रकाशित करने की प्रेरणा की, तथा कुछ समय तक स्वयँ भी उसका सम्पादन करते रहे। यह पत्र शीघ्र ही सम्पूर्ण भारत में प्रचलित हो गया। इसकी नीति का सँचालन अन्त तक, जब कि श्रीअरविंद कारावास में थे, वे ही करते रहे। १९:७ से १९०८ तक के सँक्षिप्त परन्तु महत्वपूर्ण अरसे में इस पत्र ने भारतवासियों के राजनैतिक विचारों में भारी परिवर्तन उत्पन्न कर दिया और उस समय के परिवर्तन की छाप अब भी दृष्टिगोचर होती है। परन्तु इस सँग्राम में यद्यपि उत्साह तथा जोश पर्याप्त था और यह आगामी भविष्य के लिये बहुत उपयोगी था तोभी यह बहुत देर तक न रह सका, क्योंकि देश अभी तक ऐसे कार्यक्रम को पूर्णतया क्रियात्मक-रूप देने के लिये अपरिपक्व था।

१९०७ में श्रीअरविंद पर विद्रोह मचाने का अभियोग चलाया गया. किंतु यह प्रमाणित नहीं हुआ। राजनीति के क्षेत्र में अभी तक वे केवल व्यवस्थापक और लेखक ही थे किंतु उपर्युक्त घटना के कारण और अन्य नेताओं के कारागार में चले जाने के कारण अथवा अलग हो जाने के कारण, उन्हें बँगाल के कांग्रेस दल का नेता बनना पड़ा और तभी वे पहिली बार एक वक्ता के रूप में व्याख्यान-वेदी पर आये। १९०७ में होने वाली सूरत की राष्ट्रीय-परिषद् में उन्होंने सभापतिपद ग्रहण किया। यहां समान बल वाले दोनों दलों का टाकरा हो गया और इससे कांग्रेस की जड़ हिल गई। १९०८ में उन्हें अलीपूर षड्यन्त्र केस में गिरफ़ार कर लिया गया। यह समझा गया कि अपने भाई बारीन्द्र द्वारा सँचालित क्रांतिकारी दल में श्री अरविंद भी हैं। परँतु उनके विरुद्ध कोई भी दोष सिद्ध न हो सका और वे इस मामले में भी निरपराधी समझ कर छोड़ दिये गये।

अलीपुर जेल के हवालात में एक साल रह चुकने के बाद १९०९ के मई मास में वे बाहिर आये। उन्होंने देखा कि उनके दल का सँघटन टूट चुका है, नेता लोग जेल में जाने के कारण अथवा निर्वासन के कारण इधर-उधर चले गए हैं और दल में किसी प्रकार का उत्साह और कार्यशक्ति नहीं रही है। आंदोलन में फिर से जान फूंकने के लिए एक वर्ष तक उन्होंने अकेले ही रह कर बहुत उद्योग किया। सफलता प्राप्त करने के लिए उन्होंने दो साप्ताहिक पत्र "कर्मयोगिन्" और "धर्म" अँग्रेजी और बँगला में निकाले। परँतु अँततोगत्वा उनकी यही धारणा हुई कि भारतवर्ष अभी तक उनकी नीति को क्रियात्मकरूप देने के लिए पूर्णतया कटिबद्ध नहीं है। उन्होंने सोचा कि पहले कुछ अधिकार प्राप्त करके स्वराज्य-आंदोलन के लिए आवश्यक तय्यारी कर लेनी चाहिए अथवा जिस तरह से महात्मा गांधीजी ने दक्षिणी आफ्रिका में शांतिमय उपायों का अवलम्बन किया हो उसी तरह यहां भी करना चाहिए। परन्तु बाद में उन्होंने यह बात अच्छी तरह समझली कि इन आंदोलनों के करने का समय अभी नहीं आया है और इसलिए मुझे इस दशा में किसी भी प्रकार का नेतृत्व करने की आवश्यकता नहीं है। इसके अतिरिक्त अलीपूर जेल के हवालात के बारह मास उन्होंने योगाभ्यास में व्यतीत किए थे, उनका आध्यात्मिक जीवन उन्हें एकांत सेवन के लिये प्रेरित कर रहा था, अतः उन्होंने राजनैतिक क्षेत्र से, कम से कम कुछ समय के लिए, पृथक् होने का निश्चय कर लिया।

१९१० की फरवरी में वे चन्द्रनगर के एक निर्जन स्थान में चले गये और अप्रैल के प्रारम्भ में उन्होंने पोंडिचेरी के फरांसीसी राज्यांतर्गत प्रदेश की ओर प्रस्थान किया। इस अवसर पर तीसरी बार फिर उनके हस्ताक्षर में "कर्मयोगिन्" पत्र में लेख छपने

के कारण उनके विरुद्ध मामला पेश हुआ। मुद्रक पर भी दोषारोपण किया गया, परँतु कलकत्ता के हाई-कोर्ट में अपील करने पर यह दोषारोपण झूठा साबित हुआ। श्रीअरविंद बँगाल छोड़कर इस इरादे से गए थे कि लौटकर वे देश की परिस्थिति अधिक अच्छी पाकर राजनैतिक क्षेत्र में फिर से प्रवेश करेंगे, परन्तु शीघ्र ही उनका आध्यात्मिक उद्देश्य जोर पकड़ने लगा और उन्होंने सोचा कि अब सब काम छोड़कर मुझे इसी में अपनी समस्त शक्तियों को केन्द्रित कर देना चाहिए। परिणामतः उन्होंने राज-नीति से अपना सम्बन्ध विच्छेद कर लिया, राष्ट्रीय महासभा के सभापतिपद को ग्रहण करने के लिए कई बार उन्हें इंकार करना पड़ा। १९१० से लेकर अब तक पॉंडिचेरी में वे अपने आध्यात्मिक उद्देश्य और साधना को ही अधिक से अधिक समय देने का प्रयत्न कर रहे हैं।

१९१४ में चार वर्ष एकांतस्थान में योगाभ्यास करने के बाद उन्होंने एक दर्शन सम्बन्धी "आर्य" पत्र का अँग्रेजी में प्रकाशन शुरू किया। उनकी लिखी हुई बहुत सी महत्त्वपूर्ण पुस्तकें "Isha Upanishad" "The Essays on the Gita" "The life Divine," "The Synthesis of Yoga" आदि और कई पुस्तकें, जो अभी तक नहीं छप सकी हैं, वे सब इस 'आर्य' के अंकों में प्रकाशित हुई थीं। उन्हें योग का अभ्यास करते हुये जो आंतरिक ज्ञान प्राप्त हुआ था, वही बहुत कुछ इन पुस्तकों में था। अन्य पुस्तकों में भारतीय सभ्यता तथा सँस्कृति का स्वरूप और महत्त्व, वेद का वास्तविक अभिप्राय, मनुष्य समाज की उन्नति, कविता का स्वरूप और विकास, मनुष्य जाति के एकीकरण की सम्भावना इत्यादि विषयों का प्रति-पादन था। उन्होंने इगलैंड में और बड़ौदा में रहकर तथा राजनैतिक कार्य और योगाभ्यास करते हुये जो कवितायें बनाईं थीं वे 'आर्य' में छपवानी आरम्भ कीं। ६॥ वर्ष तक लगातार प्रकाशित होने के बाद यह पत्र १९२१ में बंद हो गया।

श्रीअरविंद पॉंडिचेरी के निर्जन प्रदेश में पहले अपने चार-पांच शिष्यों के साथ रहते थे, पीछे से उनका आध्यात्मिक मार्ग अनुसरण करने वालों की संख्या बहुत बढ़ गई थी यहां तक कि साधकों का एक संघ निर्माण करने की आवश्यकता हुई. जो ऐसे व्यक्तियों के निर्वाह और पथप्रदर्शन का कार्य कर सके, जिन्होंने अपना सर्वस्व एक उच्चतर जीवन की प्राप्ति के लिए छोड़ दिया है। श्रीअरविंद-आश्रम की स्थापना इसी प्रकार से हुई। यह आश्रम बनाया नहीं गया. परंतु गुरुवर से शिक्षा पाने के अभिलाषियों के बढ़ने से स्वयं ही वर्तमान विकसित रूप में परिवर्तित हो गया।

श्री अरविंद ने योगाभ्यास १९०५ में शुरू किया था। पहले उन्हें साधारण आध्यात्मिक अनुभव हुआ जो कि आजकल भी भारतवर्ष के साधुसंतों को परमात्मा का साक्षात्कार करते हुये होता है। परंतु उन्होंने इससे भी एक कदम आगे रखा और एक अत्याधिक अनुभूतिपूर्ण खोज की। इस अनुभूति में अध्यात्म और जड़ का भेद लुप्त हो जाता है। योग के बहुत से मार्ग ऐसे ही हैं जो साधक को इस सँसार से परे ले जाकर उसका परमात्मा के साथ सम्बन्ध स्थापित करते हैं और अंत में इन मार्गों का अवलम्बन करने वाले ऐहिक जीवन का सर्वथा त्याग कर देते हैं। परँतु श्री अरविंद के योगानुसार साधक परमात्मा को पाकर उसके प्रकाश, शक्ति और आनँद को अपने सँसार के क्रियात्मक जीवन में अवतरित करता है। इस योग की दृष्टि से प्राकृतिक जगत् में मनुष्य की वतमान अवस्था, अज्ञान और अंधकार से व्याप्त है परतु इस अज्ञान और अंधकार के आवरण के पीछे एक दिव्य ज्ञान-मय प्रकाश उपस्थित है। भौतिक उत्पन्न संसार कोई व्यर्थ चीज अथवा भ्रम नहीं है, जिसकी निर्वाण अथवा मुक्तिप्राप्त करके उपेक्षा कर देनी चाहिए। परंतु इसके विपरीत इसी भौतिक विश्व में रहकर

आध्यात्मिक विकास द्वारा अज्ञान और अन्धकार को दूर करके एक दिव्य चेतना का प्रादुर्भाव हो सकता है। सांसारिक विकास की शृंखला में सब से ऊंची चीज़ आत्मा है, परंतु इससे भी आगे एक परम-आत्मा, परम सत्, परम चित् और परम आनंद है जो स्वभाव से अपने आप में ज्ञानमय और प्रकाशमय है। मानवीय आत्मा अज्ञानापवृत है और इसी लिए सत्य की खोज करता फिरता है, परन्तु परम-आत्मा स्वतः ज्ञानमय है और अपनी शक्तियों और रूपों को सर्वत्र अभिव्यक्त कर रहा है। इस परम-आत्मा का अपने जीवन में अवतरण करने से ही मनुष्य ऊंची से ऊंची पूर्णता प्राप्त कर सकता है। इस महान् दिव्य चेतना की ओर आत्मा और हृदय के कपाटों के खुलने से प्रकाश और आनन्द की प्राप्ति हो सकती है, सच्चा आत्म-ज्ञान मिल सकता है, विश्व की दिव्य चेतना के साथ ऐकात्म्य अथवा अद्वैत की अनुभूति हो सकती है, इस परम-आत्मीय ज्योति के संचार से शरीर और आत्मा अनुप्राणित होकर निःश्रेयस्-लाभ कर सकते हैं। इस सम्भावना को क्रियात्मक रूप में परिणत करना ही श्रीअरविंद के योग का उद्देश्य है।

(समाप्त)

राष्ट्र-निर्माण

[ले० —श्री भगवानदास केला, वृन्दावन]

आओ ! भारतीय भारत का,
राष्ट्र-भवन निर्माण करें।
दुखिया जननि जन्मभूमि का,
मिल-जुल कर सब त्राण करें॥

—कर्ण

प्रिय बान्धवो ! आलस्य अपना वेग खोना चाहिए।
कर्तव्य-पथ में शीघ्र अब आरूढ़ होना चाहिए॥
जी जान से बल-वृद्धि का उद्योग करना चाहिए।
राष्ट्र-निर्माणार्थ अब कटिबद्ध होना चाहिए॥

—हनुमत्प्रसाद जोशी

हमें अपने देश की विविध राष्ट्रीय समस्याओं पर विचार करना है। इसके लिए पहले यह जान लेना आवश्यक है कि राष्ट्र किसे कहते हैं, और उसका निर्माण किस प्रकार होता है।

मनुष्यों का संगठन; परिवार और वंश— राष्ट्र बननेसे पूर्व मनुष्यों को कई मन्जिलें तय करनी होती हैं; उनके विषय में कुछ ज्ञान प्राप्त करने से राष्ट्र-सम्बन्धी विविध बातों को समझने में सुविधा होगी। यह सर्वविदित है कि मनुष्य अपने स्वभाव से ही समाज प्रिय है। अकेले रहने की दशा में मनुष्य को अपना स्थान बड़ा सुनसान मालूम होता है। किससे बातें करें, कैसे अपना जी बहलाएँ? ये प्रश्न उसके सामने आते हैं। अकेले उसका मन नहीं लगता। पुनः अकेले रहने की दशा में उसे जंगली जानवरों का भी भय रहता है। इसके अतिरिक्त उसकी विविध आवश्यकताएं हैं, उनकी पूर्ति के लिए भी उसे समाज में रहना होता है। प्राचीन काल में मनुष्य बहुत सरल और सादा था, उसकी जरूरतें कम थी, तथापि उसे भूख-प्यास तथा सर्दी-गर्मी आदि तो लगती ही थी। उसे भोजन और पानी की आवश्यकता होती थी। पानी जहाँ तहाँ नदियों या झरनों में मिल भी जाय, भोजन तो हर जगह मिलना कठिन था। शिकार के लिए मनुष्यों को एक दूसरे के साथ मिलकर, मण्डली या टोली बनाकर

करना पड़ा। पश्चात् पशु-पालन और कृषि के लिए तो आदमियों को इकट्ठे तथा स्थायी रूप से एक जगह रहने की और भी अधिक आवश्यकता हुई।

क्रमशः ज्यों ज्यों सभ्यता की वृद्धि होती गई, मनुष्यों की आवश्यकताएँ बढ़ती गयीं। अब तो उनके अकेले-अकेले रहने की बात ही क्या, प्रायः किसी गाँव में भी मनुष्य की सब जरूरतें पूरी नहीं होतीं. उसे अन्य गावों से नहीं, दूर-दूर के नगरों या कस्बों से सम्बन्ध रखना पड़ता है। कोई मनुष्य केवल अपने ही श्रम से अपना निर्वाह नहीं कर सकता। उसे दूसरों से सहायता लेनी, और उन्हें सहायता देनी ही पड़ेगी। इस प्रकार, मनुष्यों का पारस्परिक सम्बन्ध अनिवार्य है।

आरम्भ में मनुष्य का अपने परिवार से प्रेम होता है। जन्म लेने के समय से ही प्रत्येक व्यक्ति का अपनी माता से, और कुछ समय पश्चात् पिता से सम्बन्ध हो जाता है। अच्छी तरह चलने-फिरने योग्य होने में उसे कई वर्ष लग जाते हैं। अपने जीवन-निर्वाह की योग्यता तो मनुष्य में अपनी आयु के एक-डेढ दर्जन वर्ष व्यतीत करने पर आती है। इतने समय तक वह अपने माता पिता के आश्रित रहता है। बड़ा होने पर स्त्री-पुरुष का विवाह-सम्बन्ध होता है। इनकी संतान होती है। इस प्रकार नये नये परिवार बनते रहते हैं।

बहुधा एक परिवार दूसरे परिवार की वस्तुओं का उपयोग करना चाहता है; इस लिए या तो उससे मित्रता करता है या उस पर आक्रमण करता है। मित्रता के लिए मेल जोल होता है। दूसरे पर आक्रमण करने के लिए अथवा दूसरों के आक्रमण से बचने के वास्ते भिन्न भिन्न परिवारों या वंशों का संगठन होता है, और एक समूह में रहने वाले मनुष्यों की संख्या बढ़ती जाती है। पास-पास रहते हुए इन समूहों के आदमियों में एक दूसरे की सहायता करने के भाव की वृद्धि होती जाती है। बहुधा इन समूहों में ऐसे आदमी भी सम्मिलित हो जाते हैं, जो अन्य वंश या समूहों के हों। ये भी इन से मिल-जुल कर रहने लग जाते हैं और अन्ततः इन के ही हो जाते हैं। ज्यों-ज्यों इन समूहों के मनुष्यों की संख्या तथा आवश्यकताएं बढ़ती हैं. वे नये नये गांवों या नगरों को बसाते जाते हैं और उनमें विभक्त होते जाते हैं। इस प्रकार, एक समूह के आदमी के मित्र या सम्बन्धी भिन्न-भिन्न स्थानों में रहने लगते हैं और इस लिए भिन्न-भिन्न ग्रामों या नगरों के निवासियों का पारस्परिक सम्बन्ध होता जाता है।

जाति—एक समूह के आदमियों का परस्पर में बहुत मेल-जोल होता है। जब ये आदमी पीढ़ियों तथा सदियों तक इकट्ठे एक ही स्थान में रहते हैं और परस्पर में उनका खान-पान, तथा विवाह-सम्बन्ध होता रहता है तो उनका रहन-सहन एक विशेष प्रकार का हो जाता है। उनके दुख सुख, उनके स्वार्थ, उनके रीति-रिवाज, त्यौहार, उत्सव, और मेले आदि एक ही हो जाते हैं। इस प्रकार, जैसा कि श्री० भारत-भक्तजी ने 'राष्ट्र-निर्माण' में लिखा है, जिस समय एक समूह के मनुष्य मिल-जुल कर एक स्थान पर रहने लगते हैं उन सबके रहन-सहन तथा उनके जीवन में एक ऐसी विशेषता आजाती है, जो दूसरे मनुष्य-समूहों में नहीं मिलती, तो वे अपनी एक विशेष सभ्यता खड़ी कर लेते हैं, पीढ़ियों तथा सदियों तक जातीय साहित्य और जातीय रीति-रिवाज द्वारा उस सभ्यता को बनाये रखते हैं, तथा उसकी उन्नति करते रहते हैं। समान हित तथा एक आदर्श की श्रृंखला में सब बंध जाते हैं। उस समय उस मनुष्य समूह को एक जाति' कहने लगते हैं। इसी प्रकार मनुष्य-मण्डली विविध जातियों में बंट जाती है। एक जाति के लोगों को आपस में बाँधने वाली, तथा अन्य जातियों से उन की भिन्नता दिखलाने वाली अनेक शक्तियों में तीन शक्तियां मुख्य हैं—एक देशीयता, धार्मिक एकता, और भाषा की एकता।

इस सम्बन्ध में जर्मन विद्वान वलंशली ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'थियरी-आफ दि-स्टेट' में इस आशय का भाव प्रकट किया है कि किसी जाति का मूल तत्व उस जाति की सभ्यता तथा उसका आन्तरिक संगठन है, और उसकी दूसरी जाति से पृथकता प्रायः उस की सभ्यता की उन्नति से ही होती है। अर्थात् दो जातियों की

सभ्यताओं की उन्नति में जितना अधिक अन्तर होता है, उतना ही वे अधिक पृथक् पृथक् मानी जाती हैं ।

विदित हो कि 'जाति' शब्द व्यापक और गौरव युक्त अर्थ रखने वाला है, समय के परिवर्तन ने इसका अनर्थ कर डाला है; इससे बहुत संकुचित अर्थ लिया जाने लगा है । उदाहरणवत्, भारतवर्ष में आज कल ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य और शूद्र आदि उपजातियों को ही नहीं इन की अनेक छोटी छोटी शाखाओं के लिए भी 'जाति' शब्द का प्रयोग किया जाता है, यथा गौड़ ब्राह्मण, सारस्वत ब्राह्मण, माहेश्वरी वैश्य, अग्रवाल वैश्य, बढ़ई, लुहार आदि जाति । वास्तव में इन सब के संगठित स्वरूप को जाति कहना चाहिए; ये आर्य या हिन्दू जाति के अँग हैं ।

राष्ट्र——स्मरण रहे कि किसी मनुष्य-समूह को केवल एक जाति होने से ही राष्ट्र नहीं कह सकते । जाति और राष्ट्र में बड़ा अन्तर है । किसी जाति में बहुधा एक ही कुल या गोत्र के आदमी रहते हैं । चिरकाल के सहवास से जब इन लोगों में एक देश और एक राज्य का भाव प्रबल हो जाता है तब ये राष्ट्र कहलाने योग्य हो जाते हैं । इस प्रकार राष्ट्र में शासन या राज्य का समावेश अनिवार्य है, जाति में यह बात नहीं होती । राष्ट्र केवल ऐसी ही जाति को कहते हैं, जो भूमि के किसी निश्चित भाग पर, एक शासन में रहते हुए एकता-पूर्वक अपने समस्त अंग प्रत्यंगों की शारीरिक, मानसिक, आर्थिक और राजनैतिक आदि विविध प्रकार की उन्नति में दत्त-चित्त हो ।

भूमि राष्ट्र का स्थावर भाग है । यह राष्ट्रीय शरीर के लिए अस्थिपिंजर का काम देती है । इस शरीर को सजीव बनाने वाली शक्ति जनता है, जनता ही राष्ट्र का प्राण है । इससे राष्ट्र में जनता का महत्व स्पष्ट है । राष्ट्र-निर्माण की दृष्टि से जनता के सम्बन्ध में दो बातें विशेष ध्यान देने योग्य होती हैं संख्या और सामर्थ्य । बहुत छोटे छोटे जन-समूहों से राष्ट्र नहीं बनता; और असमर्थ, अयोग्य या असंगठित मनुष्यों से भी काम नहीं चलता, चाहे उनकी संख्या कितनी ही विशाल क्यों न हो । भारतवर्ष के सम्बन्ध में इस विषय का विचार आगे किया जायगा ।

मिल आदि विविध लेखकों और राजनीतिज्ञों ने राष्ट्र की व्याख्या में विस्तार-पूर्वक लिखा है । उस का संक्षेप में आशय यह है कि मानव समाज के किसी अँग को राष्ट्र उस दशा में कहा जाता है. जब उस के व्यक्ति परस्पर में ऐसी सहानुभूति से मिले हुए हों, जो उनमें और अन्य आदमियों में न हो. वे परस्पर में इतना सहयोग का भाव रखते हों, जितना वे दूसरों से न रखते हों; वे एक ही शासन में रहने के इच्छुक हों, और, उनकी यह चाह हो कि वह शासन उनका हो, अथवा केवल उनमें से ही कुछ लोगों का हो दूसरों का नहीं । राष्ट्रीयता की यह भावना अनेक कारणों से उत्पन्न हो सकती है । कभी कभी इसका कारण यह होता है कि आदमी एक ही जाति या नस्ल के होते हैं । भाषा और धर्म की एकता से इसमें बहुत सहायता मिलती है । भौगोलिक एकता भी इस का एक मुख्य कारण होता है । परन्तु सब से प्रबल कारण राजनैतिक परम्परा की समानता होती है । राष्ट्रीय इतिहास, समान समष्टिगत गौरव और अपमान, सुख और दुख की स्मृतियां. और समान भविष्य की आशाएं राष्ट्र निर्माण की महत्व पूर्ण सामग्री होती है ।

राष्ट्र कहने से राज्य के उन आदमियों का बोध होता है जिनका यह दृढ़ निश्चय हो कि हम समान भविष्य में सम्यक् रूप से भागीदार होंगे । हम अपने सामुहिक कार्यों पर स्वयं नियंत्रण करेंगे, कोई दूसरी शक्ति उसमें हस्तक्षेप नहीं कर पायेगी । इन लोगों में परस्पर ऐसी आत्मीयता का भाव होता है कि एक का कष्ट सब का कष्ट समझा जाता है. उसके दुख को निवारण करने के लिए सब जी-जान से प्रयत्न करते हैं । किसी भी भय या प्रलोभन द्वारा, एक व्यक्ति दूसरे को हानि पहुंचाने के लिए तैयार नहीं किया जा सकता ।

राष्ट्र के मनुष्यों में बड़ी एकता होती है, उनमें सब से बड़ी एकता भावों या हृदयों की एकता होती है, जिस से जहाँ एक अँग को कुछ कष्ट हो कि सब अँग उससे सहानुभूति रखते हुए उसके कष्ट को निवारण करने का प्रयत्न करने लगें । राष्ट्र के मनुष्य भली भांति यह समझते हैं कि

...एक ही मातृ भूमि की संतान हैं—परस्पर भाई ...हैं। सारों के सुख दुःख में हमारा भी लाभ हानि है। ...इन्द्र वेदालंकारजी ने 'राष्ट्रीयता के मूल मंत्र' में ...है: "जब एक जाति एक ही राज्य के नीचे रहते-...एक हो जाती है, जब उसके अवयव मिलकर एक ...को बनाने लगते हैं, तब वह राष्ट्र के रूप में परिणत ...जाती है। पैर में लगे हुए कांटे की कपकपी जब सिर तक ...ने लगे, तभी कोई जाति राष्ट्र नाम की अधिकारिणी ...है, इससे पूर्व नहीं। परिवार, वंश, जाति, और, ...में राज्य के आने के चिर काल पीछे, राष्ट्र—यह ...जिक उन्नति का क्रम है।"

साधारणतया हम किसी ऐसी जाति को राष्ट्र नहीं ...जो राजनैतिक अधिकारों से वंचित और दूसरों से ...त हो। वास्तव में, जिस जाति में राष्ट्रीयता के भाव ...तरह विद्यमान हों, उसे कोई पराधीन नहीं कर ...ता, यदि संयोग से वह कभी दूसरों के चँगुल में आ ...गई तो वह जी-जान से पराधीनता के पाश को तोड़ ...ने का प्रयत्न करती है, और प्रायः जल्दी ही या कुछ ...में इस कार्य में सफल हो जाती है। निदान, कोई ...चिर काल तक पराधीन नहीं रह सकता।

राष्ट्र-निर्माण और भारतवर्ष—प्राचीन ...में राष्ट्र प्रायः छोटे-छोटे होते थे। बहुत से राष्ट्र तो ...एक नगर तक ही परिमित थे। और, एक राष्ट्र दूसरे ...या अधिक नगर-राष्ट्रों को जीतने पर साम्राज्य कहा ...सकता था, यद्यपि उसका विस्तार बहुत अल्प ही होता ...। उस समय छोटे-छोटे जन-समूह अपने आचार-...विचार रहन-सहन आदि में एक दूसरे से बहुत-कुछ ...एकता का अनुभव करते थे। मनुष्यों को बड़े-बड़े राष्ट्रों ...की कल्पना और निर्माण करने के लिए पर्याप्त समय लगा ...है, और, विविध अनुभव करने पड़े हैं। उदाहरणार्थ भारतवर्ष जैसे देश को एक ही शक्ति की आधीनता में ...लाने के प्रयत्न को तत्कालीन दृष्टि से साम्राज्य-निर्माण का कार्य माना जाता है। यद्यपि इस समय कुछ मत-भेद है, अधिकांश सज्जन अब इस भू-खण्ड को एक राष्ट्र मानते हैं, अथवा इसके एक राष्ट्र होने की आवश्यकता तथा सम्भावना समझते हैं।

भारतवर्ष की वर्तमान आर्थिक तथा राजनैतिक दुर्दशा एक खुला रहस्य है। अनेक बन्धु दिन-रात घोर परिश्रम करने पर भी भर-पेट अन्न और शरीर ढकने योग्य वस्त्र नहीं पाते। उन्हें अपनी मानसिक उन्नति करने का अवसर ही प्राप्त नहीं। इसी प्रकार विदेशों में भी हमें समुचित सम्मान प्राप्त नहीं। दक्षिण अफ़रीका, केनेडा, मारीशश आदि में हमारे प्रवासी भाई साधारण नागरिक अधिकारों से वँचित हैं, और बहुत कष्ट एवँ अपमान का जीवन व्यतीत करते हैं। ये बातें अब सह्य नहीं हैं, इनका इलाज करना है। और, यह कार्य हम भारतीय राष्ट्र का निर्माण करके ही कर सकेंगे।

भारतवर्ष के, राष्ट्र बनाने की आवश्यकता सँसार-हित की दृष्टि से भी है। किसी सँस्था की उन्नति होने के लिए यह आवश्यक है कि उसका प्रत्येक सदस्य उन्नत हो और सबकी परस्पर में सहानुभूति और सहयोग हो। इसी प्रकार सँसार-रूपी विशाल सँस्था की समुचित उन्नति तभी होगी, जब उसका प्रत्येक भू-खण्ड-रूपी सदस्य स्वयँ उन्नत और स्वाधीन होते हुए एक दूसरे की सहायता करेगा; गोरी और काली जाति का भेद, योरपिन और एशियाई जाति का भेद-भाव न होगा। जो जातियां निर्बल और पराधीन हैं, वे सन्सार की सुख शान्ति के लिये भयावह हैं। अतः प्रत्येक जाति को राष्ट्र बनाना और सन्सार के हित-साधन में योग देना चाहिए। फिर वसुधैव कुटुम्बकम् की उदार नीति रखने वाले भारतवर्ष का तो राष्ट्र बनाना और भी अधिक आवश्यक है।*

*शीघ्र प्रकाशित होने वाली 'हमारी राष्ट्रीय समस्यायें' पुस्तक के आधार पर।

हे नवयुवक ! जाग

(र०—रामकुमार "स्नातक", हिंदी प्रभाकर)

(१)

हे नवयुग के अवतार जाग ।
हे जगती के उपहार जाग ॥
उठ, प्रभात की वायु तुझे जागृति-सन्देश सुनाती है ।
क्रान्ति-सूर्य उग गया तुझे अब निद्रा कैसे भाती है ?
धर्म-युद्ध का शँख बज चुका गूँज उठे त्रिभुवन के कोण ।
सैनिक बाज़ी मार रहे हैं अब भी यह सोता है कौन ?
उठ वीरों की हुँकार जाग ।
हे नवयुग के अवतार जाग ॥

(२)

मृत्यु शान्ति की दूती बन कर तुझे बुलाने आई है ।
मर मर कर जीना कैसे—यह तुझे सिखाने आई है ॥
हे साहसधर ! कब से माता बाट जोहती तेरी है ।
देख रही है, कौन बेड़ियां आज काटता मेरी है ॥
हे माँ के सोते प्यार जाग ।
हे नवयुग के अवतार जाग ॥

(३)

बलिदानों के पानी से हैं राष्ट्र-वृक्ष सींचे जाते ।
हाँ ! माली के सिर पर नित लाखों खञ्जर खींचे जाते ॥
अपनी बलि दे कर जब माली सुन्दर खाद बनाता है ॥
तभी वृक्ष आज़ादी का प्यारे ! सुन्दर फल लाता है ॥
हे जगती के शृङ्गार जाग ।
हे नवयुग के अवतार जाग ॥

(४)

युवक-शक्ति की तूने प्यारे नहीं अभी तक की पहिचान ॥
प्रलय-मध्य से युवक-शक्ति ही करती नव्य-सृष्टि निर्माण ।
विश्व खड़ा है युवक शक्ति का ही ले कर अब तक आधार ।
सच्चा युवक अगर सच पूछो है ईश्वर का ही अवतार ॥
हे तीन भुवन के सार जाग ।
हे नवयुग के अवतार जाग ॥

मेरा ग्रीष्मकाल का सहारा--चर्खा

(ले०—श्री प्रभुदयाल विद्यार्थी, राष्ट्रभाषा अध्यापन-मन्दिर, वर्धा)

गर्मी आ गई और चली गई।

मध्यप्रांत में एक मार्च से लेकर १५ जून तक भीषण गर्मी पड़ती है।। खास कर वर्धा ऐसे स्थान पर तापमान १२० डिग्री तक पहुँच जाता है। और सालों की बनिस्बत इस साल यहां पर और भी अधिक गर्मी पड़ी। भीषण गर्मी के कारण यहां पर पेड़ों में हरे भरे पत्ते मुश्किल से दिखाई पड़ते थे। अमरूद और सँतरे के पेड़ इस तरह से सूख जाते हैं मानों किसी ने उन पेड़ों में आग लगादी है। घास-फूँस के हरे तिनके तक गर्मी के मौसम में दिखाई नहीं पड़ते हैं। मालूम होता है कि सारी भूमि मरुस्थल हो गई है। जिधर भी दृष्टि डालिए उधर ही सूखे-सूखे पत्ते और लकड़ियां दिखाई पड़ती हैं। बारह बजे दिन में इतनी भयँकर गर्मी पड़नी शुरू हो जाती है कि उसका तेज सहन कर सकना कठिन हो जाता है। ऊपर से एक और आफ़त-कि हवा भी इतनी गर्म कि बाहर निकलने से शरीर मानो जलने लगता है। अतः सुबह नौ बजे से शाम के ६ बजे तक बाहर निकल कर काम कर सकना बहुत मुश्किल हो जाता है। यही हाल हिंदुस्तान के कई भागों का है।

इस भयँकर गर्मी से बचने के लिए पूँजीपति, सेठ-साहूकार, बड़े-बड़े वकील, बैरिस्टर आदि ख़स की टट्टियों और बिजली के पंखों के नीचे आराम की जिन्दगी व्यतीत करते हैं। बहुतेरे धनिक तो पहाड़ियों पर चले जाते हैं और वहां की ठँडी जगहों पर सैर-सपाटे करते हैं। उनका धन्धा गर्मियों के दिनों में मनोरञ्जन करना तथा शिकार खेलना ही होता है। उन्हें दुनिया की तकलीफों से कोई सरोकार नहीं। न अपने अमूल्य समय का वे ख्याल रखते हैं। हाँ, अलबत्ते हमारे गरीब भाई उस कड़ाके की धूप में भी प्रातःकाल से शाम तक मैदानों में मेहनत का काम करते हैं। उनका सारा शरीर धूप की गर्मी से जल उठता है और पसीनों से तरबतर हो जाता है, फिर भी उफ़ तक नहीं करते। करें भी कैसे! पेट की ज्वाला को शांत जो करना है। सख्त गर्मी से घबराकर यदि काम छोड़कर वे घर में बैठ जावें तो वे और उनके बच्चे भूखे न मर जावें। क्या यह भी दुनिया का कोई न्याय है? क्या वे मनुष्य नहीं हैं? फिर क्यों इतनी विषमता?

गर्मी के मौसम में तमाम स्कूल, कालेज, विश्वविद्यालय आदि में छुट्टियां हो जाती हैं।

वहां के छात्र अपने घरों को गर्मी बिताने चले जाते हैं। घरों में पहुँचकर वे लोग नाना प्रकार के मनोरंजक खेलों में लग जाते हैं। और गर्मी की छुट्टियों को वे खेल और मनोरञ्जन का समय मान बैठे हैं। उनके सामने तास खेलना, गन्दे-गन्दे उपन्यास पढ़ना तथा गप्पे लड़ाना और इधर उधर की कुछ सैर कर लेना भर मकसद होता है। बहुतेरे छात्र दिन भर पड़े सोते रहने का प्रोग्राम बना लेते हैं। काश! वह भारतकी दरिद्रता पर भी विचार करें और इन गर्मी के दिनों में थोड़ा समय निकाल कर गांवों का चिन्तन करें और थोड़ा शारीरिक-श्रम भी कर लिया करें। उनके लिए गांवों की आर्थिक दशा जाँच करने का यह अनुकूल समय होता है। इससे उनके ज्ञान में काफ़ी वृद्धि हो सकती है। भारत के विद्यार्थी ऐसा काम नहीं करते हैं जिससे मुल्क का या अपना लाभ हो।

इस वर्ष मैंने गर्मी कैसे बिताई और उस से कैसे बचा—इसका किस्सा बहुत मनोरञ्जक और लाभप्रद है। जब गर्मी पड़नी शुरु हुई तो मैंने सोचा कि क्या करूँ? गर्मी से कैसे बचूँ? उस वक्त मन काफी परेशान और अपने आस पास की बातों से काफ़ी दुःखी भी था। अतः शीघ्र ही किसी निर्णय पर पहुँचना मेरे लिए कठिन हो रहा था। इस प्रकार गर्मी तेजी से बढ़ने लगी और मेरा मन भी उतना ही अधीर होने लगा। एक दिन सुबह ज्यों ही बिस्तरे से उठा तो मन में यह विचार चक्कर काटने लगा कि चर्खा और गर्मी का सम्मिश्रण करके गर्मी व्यतीत कर दूँ। चर्खा चलाने से गर्मी मालूम नहीं होगी। मेरा यह विचार पक्का हो गया और पहली अप्रैल से भोजन करने के बाद कुछ आराम कर मैं १२ बजे से ४ बजे तक रोज़ सूत कातने लगा। एक महीने के बाद, जब कि मन में काफी शांति हो गई तो कातने के समय में कुछ परिवर्तन किया यानी चार घन्टे के बजाए तीन घन्टा कातने लगा। सूत कातने का सिलसिला १५ जून तक रहा। जब मैं चर्खा कातकर उठता था, तब मन में विशेष प्रसन्नता होती थी। चर्खा चलाते हुए मन में बहुत सुन्दर और अच्छे-अच्छे विचार पैदा होते थे। मैं अपने विचारों में इस तरह मग्न हो उठता था कि दुनिया की सारी बातों और आस पास के उस वातावरण को, जो पहले मेरी बेचैनी का कारण बनता था, भूल जाता था।

मुझे इन अढ़ाई महीनों में यह मालूम नहीं हुआ कि यहां कितनी गर्मी पड़ रही है। प्रत्युत मुझे ज्ञात हुआ कि चर्खे में वह शक्ति है जिससे हम अपनी बहुत सी उलझनों को शीघ्र सुलझा सकते हैं। इन अढ़ाई महीनों में मैंने चर्खे द्वारा दो सेर सूत बहुत आसानी से कात लिया। प्रत्येक घन्टे में ३६० तार

निकालता था। उसका नम्बर २० से २५ के बीच रहा। इस भांति मैंने सूत कात कर अपनी गर्मी व्यतीत कर दी। बाकी समय गाँधीवाद, समाजवाद, के अध्ययन में बीता।

गर्मी के दिनों में प्रचण्ड धूप से बचने के लिए, मकानों के अन्दर छिपे बेकार समय बिताने वालों खास कर विद्यार्थियों को अवश्य ही चर्खा चलाना चाहिए। इससे वह अपने अमूल्य समय का मूल्य आंकना शीघ्र समझ जायँगे और उनकी गर्मी की छुट्टी बहुत आसानी से मनोरञ्जन-पूर्वक समाप्त हो जायगी। इस प्रकार, एक तो उन्हें अपना समय काटने में सुविधा होगी; दूसरे उन्हें अपने पवित्र हाथ के कते सूत का कपड़ा पहनने को मिलेगा जिसे पहनकर उनका मन प्रफुल्लित हो उठेगा। अब मैं चर्खे का कुछ महत्त्व भी बता देना चाहता हूं।

चर्खा हिंदुस्तान का सर्व प्रथम गृह-उद्योग है। मशीनों के आने के बाद भी आज देश के बहुत से हिस्सों में चर्खा चल रहा है। व्यापार और बिक्री के लिए नहीं, बल्कि एक परम्परा से अपने रोज के व्यवहार के लिए। इसलिए गर्मी के दिनों में जो लोग बेकार बैठे रहते हैं उन्हें चाहिए कि वे अपने समय का सदुपयोग करने के लिए चर्खे का सहारा ले लिया करें। वैसे तो चर्खा रोज़ कातना ही चाहिए। चर्खे से हस्तकला की उन्नति होती है। चर्खे का एक और यह महत्त्व भी है कि यह आज हमारे राष्ट्रीय-जीवन की स्वतँत्रता का चिन्ह बन गया है। चर्खा चलाने से भौतिक उन्नति होती है, नैतिक और आध्यात्मिक बातों की उपयोगिता ज़्यादा बढ़ जाती है। चर्खा तमाम गृह-उद्योगों का प्रतिनिधि है। आज जब कि तमाम घरेलू उद्योग मर रहे हैं, तब इसी चर्खे द्वारा उन उद्योगों का पुनः उद्धार होने लगा है। चर्खा चलाने से आत्म-सम्मान आत्म-विश्वास व शांति प्राप्त होती है। यह उच्च-सँस्कृति को पैदा करने वाला है। यह सँयमशील बनाने वाला तथा कठिनाइयों पर विजय दिलाने वाला साथी है। इसकी गुनगुन की मधुरताभरी आवाज़ में सँगीत-शास्त्री जैसी वाणी है। चर्खा चलाने से हिंदुस्तान की बिखरी हुई जातियों को मिलाने का एक साधन प्राप्त होता है। चर्खा ऊँच-नीच का भेद-भाव मिटा देता है। चर्खा चलाने से जीवन में सुव्यवस्थित कार्य करने का एक अनोखा आत्म-बल मिलता है, और अपनी सँस्कृति की रक्षा होती है। इसको चलाने से सभी सम्प्रदायों के मानने वालों में बन्धुत्व पैदा होता है। चर्खा चलाते हुए किसी के प्रति द्वेष का भाव पैदा नहीं होता है। इसका प्रत्यक्ष अनुभव मुझे इन गर्मियों की छुट्टियों में मिला है। अतः सब भाई-बहनों को एक बार चर्खा चलाकर अनुभव कर लेना अत्यधिक आवश्यक है।

—०—

स्वास्थ्य-साधना

हैज़ा : कारण और इलाज

(ले०—डा० व्रजभूषण मिश्र, एम० ए०, गृह-चिकित्सक, प्राकृतिक स्वास्थ्य-गृह, प्रयाग)

आज कल हैजे का प्रकोप चारों ओर सुन पड़ रहा है, शहर में तो मानलिया कि रुपयों की बदौलत इस रोग से बचने की कोशिश की जा सकती है; परँतु हमारे ग्रामीण भाई इसके लिए क्या करें ? उनके पास धन तो है नहीं कि शहर से दवा का इन्तजाम कर सकें, इस कारण उनकी जिंदगी खतरे में रहती है। एक बात जरूर है कि गाँव में जल्दी कोई रोग नहीं होता परन्तु यदि हो जाता है तो जल्दी शाँत भी नहीं होता। ग्रामीण भाइयों को शहर वालों की तरह सुविधायें भी नहीं हैं। शिक्षा का अभाव होने के कारण वे अपना इलाज भी करने में असमर्थ होते हैं, फिर हैज़ा ऐसी भयँकर बीमारी का इलाज तो एक समस्या ही है।

कहा जाता है कि हैजा कीड़ों से पैदा होता है। ये कीड़े भोजन,पानी,सांस आदि अनेक प्रकार से शरीर में प्रवेश करते हैं और यदि जीते रह गए तो अपना नाशकारी प्रभाव प्रारम्भ कर देते हैं। थोड़े ही समय में ये अपने को बहुत तादाद में बढ़ा लेते हैं। परन्तु वास्तव में इतने गहरे विचार की आवश्यकता ही क्या है ? कीड़े हैं, वे जल्दी बढ़ते हैं या देर में स्वास्थ्य के लिए ये सब बातें निरर्थक ही हैं। सिर्फ कीड़ों की मौजूदगी से ही बीमारी नहीं होती। हैजे का असल कारण खून की खराबी है। खून में अपने कीड़े होते हैं। अतः रोग के और शरीर के कीड़ों में द्वन्द्वयुद्ध चलता है। यदि शरीर के कीड़े कमजोर हुये तो रोग हो जाता है। और यदि ऐसा न हुआ तो कितने भी कीड़े हों, किसी भी तरह का नुकसान नहीं हो सकता। यही कारण है कि हैजे के बीमारों की सेवा करते हुये लोग बीमार नहीं पड़ते, और कभी बीमार को देखने से ही रोग लग जाता है। इसलिए रोग से बचने के लिए अपने शरीर के कीड़ों को मजबूत रखना लाज़मी है।

हैजे का एक और कारण भी है—आवश्यक वस्तुओं का व्यवहार न करना। सड़ा-गला और गन्धयुक्त भोजन करने से हैजे के कीटाणु शरीर के भीतर अपना परिवार बढ़ाने में लग जाते हैं। हरी सब्ज़ी का व्यवहार तथा कुछ थोड़े ऋतु-फल खाते रहने से कोई बीमारी नहीं होती है। भोजन में यह देखना चाहिये कि जो कुछ खाया जाय वह पच जाय और विजातीय द्रव्य-माद्दा फाज़िल-उचित तरीक़े से बाहर हो जावे। खून में खारापन लाने के लिए भोजन का चुनाव आवश्यक होता है। इस क्षार से शरीर में प्रविष्ट हुए कीड़े भी तुरन्त मर जाते हैं और शरीर भला चंगा बना रहता है। हमारे रहन-सहन का ढंग भी स्वास्थ्य पर असर डालता है। साफ़, खुली और हवादार जगह में रहने से रोगों के बढ़ने की कम सम्भावना रहती है। सूर्य की किरण जीवन-दाता कही गई हैं। घर की भली भाँति सफाई, पोताई, धुलाई करते रहने से कोई भी रोग नहीं हो पाता।

यदि बीमारी के कीड़े शरीर में आ ही गए तो ठीक ही हुआ; क्योंकि यदि शरीर में कुछ खराबी न होती तो कीड़े भूखे मर जाते और यदि खराबी है तो उसका हटाना स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है क्योंकि

यदि मन में सँशय हुआ तो फिर विनाश सम्भव हैं। कहा भी है, "सँश्यात्मा विनश्यती।"

हैजे से बचने के लिए प्रतिदिन एक या दो नींबू का रस और कभी-कभी पुदीने या प्याज के रस का व्यवहार बहुत ही हितकर है। इससे रक्त के साधारण विकार दूर हो जावेंगे। हल्के और आसानी से पचने वाले भोजन करने से हैजे की सम्भावना मिट जाती है।

अब हैजे की बीमारी में क्या इलाज करना चाहिए यह बतला देना जरूरी है। सबसे पहली बात तो यह है कि भोजन बँद कर दिया जावे और जब तक रोग शान्त हो जाय, उपवास रखा जावे। उपवास के समय में रोगी जब-जब और जितना-जितना पानी मांगे उसे, नींबू का रस मिला कर देना चाहिए। कभी-कभी पुदीने का रस दे देना ठीक है। बर्फ का प्रयोग कभी भी न करना चाहिये। ठँडा पानी भले ही दिया जा सकता है। यदि ठँडा पानी न मिले तो कुंए के ताज़ा पानी का व्यवहार सर्वोत्तम है। शहरी लोगों के लिये बर्फ में पानी की बोतल रखकर पानी ठंडा कर लेना चाहिये। हैजा हो जाने पर पेडू पर मिट्टी की गिली पट्टी, आध २ घन्टे के लिए एक या दो घन्टों के अन्तर पर रोगी की दशा देखकर देना चाहिये। क़ै या टट्टी की हाजत होते ही मिट्टी हटा देनी चाहिए और फारिग़ होने पर फिर से नई मिट्टी का व्यवहार करना ठीक होगा। फिर रोगी को पेडू-स्नान कराना चाहिए। इसके लिए रोगी को एक टब में बिठा देना चाहिए। टब में खूब ठँडा पानी रखना उचित है, पैरों को बाहर निकाल गर्म रखना चाहिए। यदि टब में स्नान कराते समय पाखाने की हाजत हुई तो तुरन्त टब से निकाल लेना चाहिए। इस तरह से डेढ़ या दो घन्टे के बाद या जब २ क़ै या दस्त हो, तो मिट्टी की पट्टी और दस मिनट के लिए पेडू नहान तबतक जारी रखना चाहिये, जब तक बुखार न आजाए। बुखार आते ही रोगी को आराम से लिटा देना चाहिए। फिर दो-एक दिन में आराम हो जावेगा। खाने का परहेज़ बहुत ही लाज़मी है।

इस तरह के इलाज से हैजे का कैसा भी रोगी हो, जरूर ठीक हो जावेगा। पेशाब का न आना या और अन्य ख़राबियाँ, तुरन्त रफ़ा हो जायँगी। यदि यह कहा जाय कि गांव में टब पाना मुश्किल है, तो कुम्हार से एक बडी सी नाँद बनवा लेनी चाहिए, और उसको थोड़ा ऊपर, जिस तरह से बैलों के नाँद गाड़ते हैं, गाड़ देना चाहिये। पैरों के सहारे के लिये खटिया खड़ी कर लेनी चाहिए या और कोई उपाय कर लेना चाहिए। इस तरह से इसका इलाज बग़ैर पैसे के हो जायगा।

बच्चों का पालन-पोषण और सफ़ाई

[लेखिका—मिसेज़ अलजे रनधावा]

दूसरे देशों के जो लोग हिन्दुस्तान में पहली बार घूमने की ग़रज़ से आते हैं उनका ख़याल यहां की जिन-जिन चीज़ों की तरफ़ जाता है उन में से बच्चों की असभ्य आदतें भी हैं। बच्चों को पालना और उन्हें उचित ढंग से शिक्षा देना कोई कठिन काम नहीं है, बल्कि आख़िर में अच्छी शिक्षा का नतीजा अच्छा ही होता है। इस तरह की शिक्षा बच्चों और उनकी माता-पिता दोनों के लिए एक सा उपयोगी हैं। आम तौर पर यह देखा गया है कि ग़रीबों के यहां बच्चों की अधिकता रहती है और अफ़सोस है कि ये ग़रीब बच्चे अच्छी शिक्षा न पाने की वजह से अपने और अपने माता-पिता के जीवन को सुखमय नहीं बना सकते बल्कि दुनिया ही में आंखों के सामने नरक का दृश्य पेश करते हैं।

शिक्षा की आवश्यकता

बच्चों की पैदाइश ही के दिन से उनकी शिक्षा की भारी ज़िम्मेवारी मां पर आ जाती है, क्योंकि अगर मां शुरू से ही बच्चों की ठीक निगरानी नहीं कर सकती और अच्छी शिक्षा नहीं दे सकती तो बाद में उनका दुरुस्त करना बहुत कठिन हो जाता है। सबसे पहली बात जो बच्चों के लिए ज़रूरी है वह शिक्षा है। बच्चों को निश्चित समय पर दूध देना चाहिए, न कि उस समय जबकि बच्चे ज़िद करने लगें। एक तन्दुरुस्त बच्चा अपनी मां को तकलीफ़ नहीं देता, बल्कि वह रोता भी है तो किसी ख़ास वजह से। यानी या तो बच्चा पेशाब से भीग गया है या भूखा है। इसके खिलाफ़ हिन्दुस्तानी बच्चे दिन-रात रोते रहते हैं।

बच्चों को गोद में रखना बुरा है

बच्चों को खूब आराम मिलना चाहिए। हर वक्त उनको गोदी में रखना पहले तो तन्दुरुस्ती के लिए हानिकारक है। दूसरे उनकी

आदत भी ख़राब हो जाती है और वे बग़ैर गोद के एक मिनट भी नहीं रह सकते और रोया करते हैं। ऐसे ही बच्चे नौकर रखने की हैसियत न रखने वाले अपने माता-पिता के जीवन को जंजाल बना देते हैं। लेकिन जो माता-पिता नौकर रख सकते हैं उनको भी अपने बच्चों की तन्दुरुस्ती का ख़याल रखना चाहिए। बच्चों की हड्डियां बहुत नरम होती हैं और हर वक़्त गोद में रखने से वे टेढ़ी होकर बच्चों के शरीर को सुडौल नहीं रहने देतीं, बल्कि बढ़ने में भी ख़लल डालती हैं। आम तौर से जिस वक़्त नौकर बच्चे को गोद में लेता है उस वक़्त बच्चे का मुंह कांधे पर पड़ा रहता है और वह बच्चे की टाँगें पकड़े हुए उसे सम्हाले रखता है। साधारणत: बच्चों को खिलाने के लिए छोटे-छोटे लड़के नौकर रख लिये जाते हैं। मगर ये लड़के छोटे होने की वजह से बच्चों को ठीक तरह से गोद में लेना भी नहीं जानते जिससे बाज़ वक़्त बच्चों को बहुत तकलीफ़ होती है। सुबह के वक़्त बच्चों को नहलाकर, धूप खिलाकर उनको बिस्तर या पालने में लेटा देना चाहिए। बच्चों का हाथ पकड़ कर ऊपर उछालना या दायें-बायें घुमाना या उनका हाथ पकड़ कर ऊपर उठाना, जैसा आम तौर से हिन्दुस्तान के लोग बच्चों के साथ करते हैं, अच्छा नहीं है। बल्कि इससे बच्चों का हाज़मा ख़राब हो जाता है और जो कुछ वे खाते-पीते हैं वह हज़म नहीं होता। एक साफ़-सुथरा बच्चा, जो पेशाब से भीगा नहीं है या भूखा नहीं है, किसी को ज़रा भी तकलीफ़ न देगा, बल्कि अपने बिस्तर पर आनन्द में पड़ा हुआ अपने इर्दगिर्द की चीज़ों को देखने में मशग़ूल रहेगा या कभी अपनी छोटी-छोटी उँगलियों से खेलेगा। चूँकि बच्चे हर वक़्त हाथ-पैर हिलाया ही करते हैं इसलिए बिस्तर पर अकेले पड़े रहने से ही उनकी काफ़ी कसरत हो जाती है। हिन्दुस्तानी बच्चों की उम्र जिस वक़्त ढाई साल या तीन साल की हो जाती है उस वक़्त भी वे मां की गोद के मुहताज रहते हैं और हर वक़्त मां या किसी दूसरे रिश्तेदार की गोद में चढ़े रहते हैं और जब मां या दूसरे गोद लेनेवालों को काम होता है और वे बच्चे को गोद से उतारना चाहते हैं तब मुश्किल हो जाता है और बच्चा चीख़-चीख़ कर रोने लगता है और उस वक़्त तक चुप नहीं होता जब तक कि दोबारा उसको गोद में न लिया जाय। इतनी ही उम्र में हिन्दुस्तानी बच्चों में ख़ुदग़र्ज़ी की आदत पड़ जाती है और वे किसी दूसरे के आराम या किसी का ख़याल नहीं करते। इसलिए आवश्यक है कि जब बच्चे क़रीब ढाई या तीन साल के हो जायँ उस वक़्त उनको अकेले में खेलने दिया जाय। यहां तक की जहां घर दो-चार बड़े आदमी बात-चीत करते हों वहां से बच्चों को हटाकर उनकी बात सुनने से बचाया जाय। जैसे-जैसे बच्चा डोलने-फिरने लायक़ हो जाय

उसको आज़ादी से खेलने दिया जाय। बच्चों की कसरत का उतना ही ध्यान रखना चाहिए जितना कि उनके खाने-पीने का ध्यान रक्खा जाता है।

अच्छी आदतें और सफ़ाई

जिस वक्त बच्चा ४ या ५ साल का हो जाय उसी वक्त उसको अच्छे ढंग से खाना खाने का तरीक़ा सिखाना चाहिए कि खाना खाते वक्त चुपचाप बैठा रहे, और जो चीज़ उसके सामने खाने के लिए मौजूद हो उसे सभ्यता-पूर्वक अलग-अलग खाये न कि उन सबों को मिलाकर गन्दगी पैदा करे। खाते वक्त मुँह को बन्द करके खाये। खाना इधर-उधर गिराकर उसे ख़राब न करे। भोजन को देखकर उसको खूब चबा चबाकर खाना चाहिए। खाते वक्त पानी न पीना चाहिए। अगर खाना चबाकर खाया गया है तो पानी के द्वारा पेट में उतारने की ज़रूरत नहीं होगी। पहनने के कपड़े साफ़ और सादे होने चाहिएँ। ज़्यादा क़ीमती और चमकीला लेबास बच्चों को नहीं देना चाहिए, जिससे वे भविष्य में अपने से ग़रीब व कम हैसियत के आदमियों की तकलीफ़ और आराम को महसूस कर सकें। बच्चों को यह भी सिखाना चाहिए कि वे किसी भी आदमी से, चाहे वह किसी दर्जे या हैसियत का हो यहां तक कि अपना नौकर ही क्यों न हो, उससे भी शराफ़त और सभ्यता से बोला करें। बच्चों को अगर किसी चीज़ की ज़रूरत हो तो वे बिना पूछे खुद न उठा लें, बल्कि अपने बड़ों से पूछ कर उठावें। यदि कुछ आदमी पहले से बात-चीत कर रहे हों तो बच्चों को चाहिए कि ख़ामोशी से बात खतम होने का इन्तज़ार करें और बातचीत के बीच में तकलीफ़ न दें। मतलब यह कि बच्चों को शुरू से ऐसे सांचे में ढालना चाहिए कि वे दूसरों के लिए आदर्श बन सकें और यह समझने लगें कि हम एक शरीफ़ आदमी हैं और हमारे लिए सभ्यता से रहना निहायत ज़रूरी है।

रात में सोना

रात में बच्चों को दूध हर वक्त न दिया जाय। रात मां और बच्चे दोनों के आराम के लिए है। चूँकि मां को दिन-रात घर के काम-काज से फ़ुरसत नहीं मिलती और वह दिन भर काम करते करते थक कर चूर हो जाती है, इसलिए इसके बाद ज़रूरत है कि वह रात को काफ़ी आराम करे ताकि थका हुआ शरीर दूसरे दिन काम करने के क़ाबिल हो सके। रात में जिस वक्त बच्चे रोते हैं उस वक्त अगर उनको लगातार तीन रोज़ तक दूध न दिया जाय तो उनकी यह आदत छूट जायगी। लेकिन ऐसा करने में मां को कड़ाई से काम लेना पड़ेगा। चुनाचे मां को पहले ही से बतला दिया जाय कि इस तरकीब से काम

…लाकर वह आगे किन-किन मुसीबतों से …टकारा पायगी। तब निसन्देह वह तीन दिन …क अपने ऊपर जब्र कर लेगी। बच्चा चाहे …तना ही भूख से रोये या चिल्लाये, उसकी …रफ़ ध्यान न देना चाहिए। कुछ घंटों के बाद …चा खुद ही रोते-रोते थक कर सो जायगा। …च्चों को उनके उम्र के लिहाज़ से रात का …ख़िरी खाना रात को दस या ग्यारह के …रमियान में मौसम के लिहाज़ से देना चाहिए …और उसके बाद सुबह अगले रोज़ खाना पांच …े या छः बजे के बीच में देना चाहिये।

बच्चों को सिनेमा और थियेटर में ले जाना बुरा है

यह बात समझ में नहीं आती कि मां-…प जहां भी जाते हैं बच्चों को अपने साथ …यों ले जाते हैं? ज़्यादा भीड़-भाड़ की जगह …ा थियेटर में बच्चों को साथ ले जाने का …ार सबसे ज़्यादा हानिकारक है। बच्चे …ो लगातार तीन घण्टे तक ऐसी भीड़ में …हना जहां की हवा को सिगरेट और बीड़ी …े धुएँ ने गन्दा कर रक्खा है, कभी अच्छा नहीं हो सकता। इसका उनके नाज़ुक दिमाग़ पर असर पड़ता है और तन्दुरुस्ती और सदाचार के लिए भी हानिकारक होता है। चूँकि बच्चों का स्वास्थ्य मां के सिनेमा के मनोरंजन से ज़्यादा ख़याल रखने की बात है, इसलिए मां को यह ख़याल रखना चाहिए कि बच्चा, जो उसके पेट से पैदा हुआ है और उसकी गोद में पला है, उसके कुल का अमूल्य धन साबित हो। इस वक्त हिन्दुस्तान में होनहार और तन्दुरुस्त नौजवानों की ज़रूरत है। इसलिए प्रत्येक हिन्दुस्तानी मां का यह फ़र्ज़ है और उसको यह महसूस करना चाहिए तथा इस बात की ख्वाहिश रखनी चाहिए कि वह देश में ऐसे सपूत बच्चे पाल कर पेश कर सके कि जो देश की आज़ादी की उन्नति कर सकें, यह मुल्क के लिए गर्व की चीज़ है। जब तक हर एक मां अपनी इस ज़िम्मेदारी को खुद महसूस नहीं करेगी तब तक वास्तविक आनन्द और आज़ादी की सुखमय ज़िन्दगी नहीं मिल सकती।

('हल' से)

झोली वाले बाबा

लेखक
(श्री रामनारायण 'मृदुल')

बात आज कल की नहीं, हज़ारों बरस पुरानी है। उस समय बग़दाद में एक फ़क़ीर थे बहुत पहुँचे हुये। भगवान के बड़े भारी भक्त—खुदा के लाड़ले। उनकी पीठ पर एक झोला हर समय लटका रहता था; इसी लिए सब लोग उन्हें 'झोली वाले बाबा' कहा करते थे। उन में सब गुण थे; पर चन्द्रमा के काले धब्बे की तरह एक अवगुण भी भगवान ने रख दिया था। वे लोभी भी परले सिरे के थे। किसी ने चार लड्डू दिये। दो खाकर दो झट झोले में रख लिए। किसी ने कोई कपड़ा नज़र किया, झट झोले में ठूँस लिया। कहीं कोई चीज़ पड़ी मिली, डाल झोले में। इस तरह उनका झोला रूखी-सूखी रोटियों, सड़े-घुसे लड्डुओं, मिठाइयों, चिथड़ों, पैसे-कौड़ी आदि न जाने कितनी चीज़ों का एक अच्छा ख़ासा अजायबघर बन गया था।

दिन गुज़र रहे थे—एक के बाद दूसरी, इस तरह न जाने कितनी होली-दिवालियां निकल गईं। जो बच्चे थे, वे जवान हो गए, जो जवान थे, उनकी कमर झुक गई, न जाने कितनों ने कबर को अपना घर बना लिया; पर 'झोली वाले बाबा' की अवस्था में ज़रा भी परिवर्तन लोगों ने नहीं देखा बूढ़े कहते थे—"हमने तो, जब से होश सँभाला है, तब से बाबा को इसी हालत में देख रहे हैं। वही गंगा-जमुनी दाढ़ी, माथे पर वही काला-सिज़दों के कारण पड़ा हुआ निशान, वही झोली और वही टेढ़ी-मेढ़ी लकड़ी।

मरने के नाम से ही बाबा को चिढ़ थी। कहते हैं खुदाए पाक ने कई बार उनके लिए मौत भेजी, मगर वे होल हुज्जत ही करते रहे खुदा उनसे ज़बरदस्ती भी कैसे करता? बाबा उनके भक्त जो ठहरे—"भक्त के बश में हैं भगवान।" लेकिन हमेशा के लिए मौत के फौलादी पँजे से छुड़ा देना—उन्हें अमर बना देना भी तो कानून-कुदरत के ख़िलाफ़ था। इस कारण खुदा और उनके फरिश्ते हैरान थे कि किस प्रकार उन्हें मरने के लिए तैयार किया जाय उन्हें हमेशा के लिए कबर के दफ़्तर में दाखिल कर दिया जाय। आख़िर फ़रिश्तों को एक तरकीब सूझी। एक लम्बी-पूरी क़ब्र खोदकर उसमें दो सुंदर

मोती रख दिए और भेष बदल, मुंह लटका खड़े हो गए। कुछ देर बाद झोली वाले बाबा ऊपर से निकले तो वे लोग बोले—"बाबा, इस गड्ढे में ये दो मोती कितने अच्छे हैं! काश हम इन्हें निकाल सकते?"

बाबा के मुँह में पानी भर आया। वे झट गड्ढे में उतर पड़े और झुक कर मोतियों को उठा, देखने लगे। बाबा मन ही मन मग्न हो रहे थे कि फ़रिश्तों ने ऊपर से कब्र पर शिला सरका दी और झोली वाले बाबा अपनी झोली समेत उसी में बन्द हो गए। अब बाबा को फ़रिश्तों की करतूत मालूम हो गई। वे हाथ मलते हुए सदा के लिए चुप हो गए।

सच है—"लालच बुरी बला होती है।"

—०:०—

बरसाती घास

"अंशुमाली"

ताल-तलैया, बाग़-बग़ीचे।
रोज़-रोज़ वर्षा ने सींचे॥
कितनी चली मेघ की घानी?
कितनी वर्षा? कितना पानी?
मुग्ध हुई भू पी-पी पानी।
सभी तरफ़ से है हरियानी॥
दिख पड़ती कितनी लासानी?
कितनी प्रिय? कितनी मस्तानी?
निकली बहुत घास बरसाती।
सब्ज परी लख उसे लजाती॥
है कितनी गुल गुली मनोहर।
कितनी प्यारी, कितनी सुंदर॥
भू का रम्य कलेवर भाई!
हरा-भरा दे रहा दिखाई॥
इसमें कितनी आभा आई?
कितनी छवि? कितनी सुघराई?

कौवा और भेड़

[रचयिता— अध्यापक श्री रामेश्वर 'करुण']

सीधी सादी भेड़ एक थी, और कुटिल था कौवा एक,
बैठा था जो ऊपर उसके देता था सन्ताप अनेक।
इच्छा के विपरीत भेड़ ने आगे पीछे चलचल कर,
कौवे को कुछ देर घुमाया अपने मनमें जलभल कर।

२

किन्तु फिर भी हटा न पीठ से क्रूर-कुकर्मी काला काग,
कहा भेड़ ने तब झल्लाकर—"है यह कैसा तेरा स्वाँग ?
कहीं किसी कुत्ते से करता यदि ऐसा ही दुर्व्यवहार,
अभी-अभी अपने दाँतों से दे देता तुझको उपहार।"

३

कौवा बोला—"नहीं बुआजी ! ऐसा मैं न अनारी हूँ,
किसको छोड़ूँ, किसे रिझाऊँ, नीति समझता सारी हूँ।
बलवानों को देख सदा मैं चाटुकार बन जाता हूं,
उनसे लल्लो पत्तो करता दूध-मलाई खाता हूँ।

४

बलहीनों से किन्तु न डरता, उनको सदा सताता हूं,
तुम-सा सीधा-सादा पाकर ऊपर भी चढ़ जाता हूँ।
है मेरा सिद्धान्त यही जो तुमको अभी सुनाया है,
इस पर ही नित चलकर कैसा जीवन सुखी बनाया है।

५

यदि चाहो कुछ कष्ट न पाना तो तुम भी बलवान बनो,
सब श्रद्धा-सम्मान करेंगे सबके श्रद्धावान बनो।
"टेढ़ों से सब शंका करते" है मित्रो ! यह बात सही,
"सीधों का मुँह कुत्ते चाटें," समझो मनमें सत्य यही।

(अप्रकाशित 'ईसप-नीति-निकुञ्ज' से)

दरिद्रनारायण की सेवक—खादी

मेरी श्रद्धा तो मुझे यहाँ तक ले जाती है कि मैं खादी-प्रचार को दरिद्रनारायण की और उसके द्वारा देश की अच्छी से अच्छी सेवा समझता हूं। कोई-कोई कहते हैं कि यह व्यवसाय मूर्खतापूर्ण है, और उत्तर क्रिया के साथ इसका भी अंत हो जाने वाला है। जो व्यवसाय हिंदू मुसलमान कातने-वालों के खीसे में लगभग पाँच करोड़ रुपया पहुंचाता हो, वह व्यवसाय यदि मूर्खतापूर्ण समझा जाय, तो फिर यह विचारणीय है कि बुद्धिमत्तापूर्ण किसे कहा जाये? चाहे जो हो मेरी आशा तो, यह है कि इस साहस पूर्ण कार्य को पूर्ण प्रोत्साहन मिलेगा। ...खादी की कल्पना में करोड़ों मनुष्यों के कामकी कल्पना निहित है, अर्थात् करोड़ों का सहयोग होना चाहिए। हिंदुस्तान में करोड़ों मनुष्यरूपी संचे पड़े हुए हैं। वे बड़े-बड़े जड़यंत्रों के मोहताज नहीं। करोड़ों का सहयोग हो, तो बड़े मजे से लोग अपने वस्त्र बना लेंगे, और करोड़ों रुपया विदेश जाने से बच जायगा, तथा करोड़ों में अपने आप बट जायगा।

—गाँधी जी

स्वतन्त्रता देवी का सन्देश

हममें से जो कोई सुनना चाहे सुन सकता है कि स्वतंत्रता की देवी पुकार-पुकार स्पष्ट शब्दों में कह रही है कि—"मेरे उपासको! मेरी प्रिय सन्तानो! तुमने अभी तक मेरी पूजा की विधि नहीं जानी। तुमने अभी तक मुझे प्रसन्न करने का ढंग नहीं सीखा। मैं स्वतन्त्रता या आज़ादी से भरे हुए हृदय में ही वास कर सकती हूँ—सँकीर्णता, असहिष्णुता, हिंसकता से भरे हुए हृदय में नहीं। ऐ मेरी सन्तानो! जब तुम दूसरों को परतँत्र बनाना चाहते हो, दूसरों के विचारों, भावों और आदर्शों से घृणा करते हो, केवल खुद ही सुख से दिन काटना चाहते हो, और दूसरों को इस शस्य श्यामल, धन-रत्न-आनन्द-शोभा सौन्दर्य सँकुल पृथ्वी पर ही नरक की चाशनी चखाना चाहते हो, तब मुझे क्योंकर पा सकते हो? क्या तुम नहीं जानते कि मैं घृणा, असहिष्णुता और सँकीर्णता की दुर्गन्ध में क्षणभर भी नहीं टिक सकती? इस विराट् विश्व, अनन्त प्रकृति में सभी की आवश्यकता है—सभी के रहने के लिए स्थान है। सभी के निर्वाह के लिए सामग्री है। फिर झगड़े से क्या लाभ? दूसरों को परतन्त्र रखकर तुम कदापि स्वतन्त्र नहीं रह सकते। तुम्हारी निज की स्वतन्त्रता के लिए सबको स्वतन्त्रता की आवश्यकता है। मेरे उपदेश को स्मरण रक्खो, तभी तुम मुझको प्राप्त कर सकोगे अन्यथा नहीं।"

'नीति-विज्ञान'

यदि........तो!

यदि तुम कुछ करना चाहते हो तो इंसाफ़ करो।

यदि तुम दिखाना चाहते हो तो सबको खिला हुआ चेहरा दिखाओ।

यदि दुनिया से कुछ दूर करना चाहते हो तो निरक्षरता और जहालत दूर करो।

यदि कोई याद कायम करनी चाहते हो तो सुन्दर गाँवों की रचना करो।

यदि तुम कुछ देना चाहते हो तो सबको शुभ कामनाएँ दो।

यदि तुम कुछ प्राप्त करना चाहते हो तो किसी के काम आवे ऐसी खुशी प्राप्त करो।

[नवीं दुनियाँ –गुरुमुखी]

आलस्य और भय को छोड़ो !

काफी सो चुके, बहुत आराम कर चुके। आओ, अब कुछ करके दिखायें। हम क्यों डरें ? दुनिया प्रगति कर रही है। कई ऐसे हैं जो हमारे लिए कहते हैं कि हम व्यर्थ ही लोगों के दिलों में भय पैदा कर रहे हैं। वे हमें थपकियां देकर सुलाना चाहते हैं कि हमारे सामने कोई कठिनाई नहीं है। लेकिन दुनियां का नक्शा बड़ी तेजी से बदल रहा है। हिंदुस्तान के रक्षक और ब्रिटिश साम्राज्य के शासक अबीसीनिया की रक्षा न कर सके, प्रजातन्त्र स्पेन, जिस ने उनकी शरण ली, बिलकुल समाप्त हो गई। जेको-स्लोवेकिया ने भी उनपर विश्वास किया लेकिन नेस्त-नाबूद हो गया। मार्शल चांग काईशेक, ब्रिटिश सहायता के बावजूद भी दिन प्रतिदिन क्षय हो रहा है। अंगरेजों की जरमनी और इटली को घेरने की नीति ने अलबानिया की स्वतन्त्रता का खात्मा कर दिया। हिंदुस्तान इन विश्वास-रहित रक्षकों की संरक्षता में धार्मिक विश्वास नहीं रख सकता। समय आ गया है जबकि भारतवर्ष को या तो अपनी रक्षा आप करनी होगी, या एक की गुलामी से निकल कर दूसरे की गुलामी में जाना पड़ेगा।

—राजा महेन्द्रप्रताप

इँग्लैंड का सोने का खजाना

इँग्लैंड आज कल अपना सोना एक तालाब में रखता है। यह तालाब ३२ फुट गहरा है। इस समय राष्ट्र का सारा सोना इस तालाब के पानी की हिफाजत में ढका रखा है। यह तालाब इस ढंगसे बांधा गया है कि उसका समस्त कँट्रोल एक दरवाजे से होता है और वह दरवाजा बिजली के दबाव में है। जरा बटन दबाओ कि इस कुन्ड के चारों दरवाजों में पानी भर जायगा और इसके सिकञ्जे में आने वाला कोई भी प्राणी जीता नहीं रह सकेगा। इसमें आग लग जायें या लूट मार करने वाले जबरदस्ती अंदर घुस जावें तोभी इस "बालमुठ" को जरा भी आंच नहीं आ सकती।

आज मानलो कि ब्रिटिश सेना हार गई, उसकी जलसेना और वायु सेना का नाश हो गया। और समस्त ब्रिटेन दूसरे शक्तिशाली राष्ट्र के अधीन हो गया, तोभी बिजली के एक छोटे से बटन के कारण ही बैंकआफ इँग्लैंड की इस तिजोरी को कोई छू तक नहीं सकता। इसमें एक बार पानी भर जाये फिर तो अक्लमँद इँजीनीयर इकट्ठे हों और हजारों मजदूरों के साथ सारा साल लगे रहें तब कहीं यह सोना मिल सकता है। इस तिजोरी के लिए अलग इलैक्ट्रिक पावर हाउस है और पानी का प्रबन्ध भी अलग है। इस तिजौरी के ताले इस प्रकार बनाये गए हैं कि जिनका ख्याल तक अक्लमंद और भयँकर से भयँकर चोर-डाकुओं को भी आज तक नहीं आया होगा। जो ताले इस तिजोरी में लगाने के काम में आते हैं वे अक्षरों द्वारा जड़े जाते हैं जिन्हें इन अक्षरों की जानकारी हो वही इन्हें खोल सकता है, बाकी आज के तिजोरी बनाने वाले इन तालों को नहीं खोल सकते। इसमें जो लोहा लगाया गया है उसमें छेद नहीं किया जा सकता। और जो दरवाजे हैं उनमें कोई ऐसी जगह नहीं छोड़ी गई जहां को तुम अंदर कुछ डाल सको। इन तालों में दो कुञ्जियां लगाई जा सकती हैं और दोनों साथ ही लगाई जायें तब वह खुल सकते हैं। यदि कोई दूसरी झूठी कुंजी लगाये तो एक दम भयंकर आवाज होती है।

अन्ततः सोचो कि इन तालों के खोलने का ढंग यदि कोई अच्छी तरह भी जानले तो ये ताले कई घन्टों के बाद खुल सकते हैं और ऐसी व्यवस्था की गई है कि ये ताले सबेरे १० बजे खुल सकते हैं। इस प्रकार बैंक आफ इग्लैंड का बीस करोड़ पौंड का सोना यत्न पूर्वक रखा गया है। [युवक-गुजराती]

सम्पादकीय नोट

गुरुकुलों में जमादारी-प्रथा—

संसार की प्रत्येक वस्तु के प्रति स्वभावतः दूर से ही आकर्षण होता है; पर वास्तव में उस में असलियत, सत्यता, प्रमाणिकता कितनी है, इसका सही पता पास में जाने पर ही लगता है। इसी प्रकार प्राचीन तपोवनों का आदर्श सामने रख कर वर्तमान काल में प्रचलित गुरुकुलों पर दृष्टि डाली जाय, उनके अन्तर में पैठ कर मानस का पता लगाया जाय, उनकी मूल भित्ति की परीक्षा की जाय तो आत्मा एक दम कांप उठती है, हृदय रो देता है और वहाँ की जमादार शाही को देख कर आंखों से बरबस अविरल अश्रुधारा बह निकलती है।

हम सभी गुरुकुलों के लिए यह नहीं कहते कि वे सब एक ही सांचे में ढले हुए और बालकों को पंगु बनाने वाले हैं। हमें जिन २ गुरुकुलों के निरीक्षण करने का मौका मिला उनके सम्बन्ध में हमारी यह धारणा है कि वहां के छात्रों में प्रेम है, उत्साह है, सादगी है, सेवाभाव है, और काम करने की सच्ची लगन भी है, पर वहां के सञ्चालकों, अध्यापकों और कार्यकर्ताओं में कुछ ऐसा दोष है, कमी है और मानसशास्त्र के ज्ञान का अभाव है कि वे वहां के बालकों को समझ नहीं पाते, उनमें छिपी हुई शक्तियों का विकास नहीं कर सकते, और उनकी गलतियों को उचित रूप से समझाकर उनका प्रतिकार नहीं कर सकते। यह सब क्यों? केवल वहां की एक जमादारी-प्रथा के कारण।

जब हम इन वर्तमान तपोवनों की मूल रचना पर विचार करते हैं तो सबसे पहले वहां की जमादारी-प्रथा पर ही ध्यान जाता है। वहां का जीवन बन्दी-जीवन से कम नहीं। जेलों में तो कैदी कभी कभी स्वतन्त्रता की सांस ले भी सकते हैं, खुले आकाश और विशाल पृथ्वी को देख कर प्रकृति की अपार प्रभुता का अनुभव कर सकते हैं; पर इन गुरुकुलों की आठों पहर की जमादारी तो जेलों से भी बाजी मार लेती है। जिस समय बेचारे बालक प्रातः निश्चित होकर उठते हैं उसी समय उनके पीछे एक "जमादार" खड़ा हो जाता है जो शौच के समय भी छात्रों की एक कतार बनवाकर उनके पीछे पीछे पुलिस के सिपाही के समान चलता है, और उन्हें लाइनबद्ध नहीं चलने पर, कदम नहीं मिलाने पर, रास्ते में बातचीत करने पर टोंकता है, धमकाता है और पीटता है। छात्र की जरा सी गलती हुई तो उसका तिल का ताड़ बना दिया जाता है, उस गलती के लिए सभी छात्रों के सम्मुख उसे अपमानित किया जाता व बेंत तक लगाये जाते हैं। वहां के विद्यार्थी अपने किसी गुरुजन के सामने अपने दुखड़ों का रोना नहीं रो सकते, दुखों को कह कर अपने मन के भार को हलका नहीं कर सकते, हृदय में जो द्वन्द्व चलता है, जो कलुषता होती है और दोष होता है उसे किसी के सामने प्रकट किये बिना ही उन्हें दबाना, मारना और आत्मा पर बलात् एक जबरदस्त बोझ डालना पड़ता है।

प्रथम तो ऐसी संस्थाओं में ऐसा कोई व्यक्ति दृष्टि-गोचर नहीं होता जो कि क्षत्रिय-वृत्ति रख कर, निडर होकर स्पष्ट रूप से इन गलतियों को दूर कर सकें, पर यदि कोई बच्चों का उद्धारक सच्चा शिक्षक मिल जाय तो उसे भी ये पचा नहीं सकते। उसे भी अंत में हार मानकर स्तीफा देना पड़ता है और उस सच्चे अध्यापक के थोड़े समय के कार्य काल में बच्चों को स्वतन्त्रता के वातावरण

में, स्वतन्त्रता की साँस लेने का जो समय प्राप्त हुआ था उससे उन्हें वञ्चित होना पड़ता है ।

किसी किसी संस्था के बोर्डिङ्ग हाउस तो जेल का पूरा स्मरण दिलाते हैं । उनकी इमारतें बड़ी डरावनी और बिलकुल अवैज्ञानिक ढंग की बनी होती हैं । रात को सोते समय निरीक्षण करने के लिए बीच में एक अध्यापक सो जाता है जो पूरी पूरी जमादारी-शाही करता है । हम यह नहीं कहते कि बच्चों पर कुछ नियंत्रण न रखा जाय । पर नियंत्रण का यह अर्थ नहीं कि उनकी आत्मा भी कुचल दी जाय, उन्हें दब्बू बनाया जाय, उन्हें विचारने का मौका न दिया जाय और आगामी जीवन के लिए उन्हें किसी काम का ही न रहने दिया जाय । गुरुकुलों में जब तक यह "जमादारी-शाही" रहेगी तब तक उनका किसी भी हालत में विकास नहीं हो सकता ।

हमारे कहने का यह अभिप्राय नहीं कि गुरुकुलों में अनुकरणीय कोई चीज नहीं, ग्रहणीय कोई वस्तु नहीं । वहां पर ऐसी बहुत सी अच्छी बातें है जो अच्छे २ स्कूल और कालेजों में भी नहीं पाई जाती; किन्तु यह सब होते हुए भी वहाँ पर विकास के लिए जिस वस्तु की आवश्यकता है उसका सर्वथा अभाव है । वह है नियंत्रित स्वतन्त्रता व निर्भयता । इसी अभाव के कारण वहाँ के स्नातक जीवन के लिए निकम्मे ठहरते हैं, अव्यवहारिक होते हैं । फल स्वरूप बाद में वहाँ के सञ्चालक उन्हें देख कर दूसरों के सामने इस प्रकार रोना रोते हैं कि "हमारे यहाँ से अभी तक एक भी योग्य बालक तैयार होकर नहीं निकला, अभी तक एक में भी ऐसी शक्ति पैदा नहीं हुई जो कि दूसरों को कुछ दे सके एक भी ऐसा नहीं जो अपने स्वतन्त्र विचार रखता हो आदि" ।

इसलिए समय आ गया है कि गुरुकुल के सञ्चालक अपने ताजे दिमाग से यह सोचें कि क्या गुरुकुलों के लिए यह "जमादारी प्रथा' उचित है, क्या इससे उनका विकास हो सकता है ? यदि नहीं तो वे इस जमादारी प्रथा से पराङ् मुख हो कर नियन्त्रित स्वतन्त्रता का आश्रय लें और नवीन शिक्षा के सिद्धान्तों को समझें । उन्हें जरूर सफलता मिलेगी ।

थोथे सुधार !—

निज़ाम सरकार ने अपने राज्य में सुधारों की जो घोषणा की है, वह एक दम निराशाजनक और असन्तोषपूर्ण है । रिपोर्ट को आद्योपांत पढ़जाने के बाद यही नतीजा निकलता है कि निज़ाम सरकार ने अपनी प्रजा को कोई भी वास्तविक अधिकार नहीं दिया है । शासन-सञ्चालन में भागीदार बनने का सवाल तो अलग रहा, प्रजा को प्रारम्भिक नागरिक अधिकार तक नहीं दिये गये हैं । यह ठीक है कि सम्मिलित निर्वाचन पद्धिति को जारीकर सही कदम उठाया गया है; लेकिन स्टेट असेम्बली में नामज़दगी की प्रथा को कायम रखकर सम्मिलित निर्वाचन को महज़ ढोंग बना दिया है । और तो और गोरे अखबार 'सिविल एंड मिलिटरी गज़ट' तक ने भी यहां तक लिखा है कि 'स्टेट असेम्बली में केवल भाषण ही हुआ करेंगे, इससे अधिक और कुछ नहीं ।' इसके अलावा सँरक्षणों की इतनी भरमार है कि जिनके रहते इन सुधारों को सुधार कहना ही भारी भूल है । यह तो हुई राजनैतिक सुधारों की बात । धार्मिक स्वतन्त्रता के सम्बन्ध में, जिसके लिए लग भग १० हज़ार आर्यवीर जेलों के सींखचों में बन्द अनेकों यातनाएं सह रहे हैं, कुछ भी सँतोष जनक स्पष्टीकरण नहीं किया गया है । धार्मिक झगड़ों के सम्बन्ध में सरकार को परामर्श देने के लिए हिंदु और मुसलमान, सरकारी और गैर सरकारी सदस्यों की एक कमेटी बनाने का आयोजन तो किया गया है, लेकिन कमेटी के आधे गैर सरकारी सदस्यों के नामज़द करने का अधिकार अपने पास रख कर सरकार ने इस कमेटी को नाकारा और पँगू बना दिया है । नामज़द सदस्यों से यह आशा रखना कि वे सरकारी नीति का विरोध करने का साहस करेंगे, आकाश कुसुम के समान है । ऐसी दशा में इन थोथे सुधारों से न काँग्रेस को ही सँतोष होगा, न आर्य सत्याग्रह ही बँद होगा और न दुखित एवँ पीड़ित जनता को ही कुछ राहत मिलेगी । जनता को चाहिए कि वह सिर धड़ की बाज़ी लगाकर भी अपने आंदोलन को उस समय तक जारी रक्खे जब तक कि उसे अपने जन्म सिद्ध अधिकार प्राप्त न हो जाएँ ।

सुभाष-बाबू किधर !

श्री० सुभाषबाबू ने देश की परतन्त्रता से पीड़ित होकर देश के लिए जो बलिदान किया, देश के नवयुवकों के सामने जिस अनुकरणीय जीवन को रखा, देश की जो सेवाएँ की, उनसे कोई भी सहृदय व्यक्ति इन्कार नहीं कर सकता। लेकिन इस वर्ष राष्ट्रपतित्व के द्वितीय निर्वाचन के बाद उनका जो रूप प्रकट हुआ वह जरा खटकने योग्य है। देश में एकता बनी रहने के लिए उन्होंने राष्ट्रपति जैसे उच्चपद का त्याग किया, उसके हम कायल हैं। किंतु सभी बातों में विश्वास रखने पर भी आपने ९ जुलाई को अखिल भारतीय कां० कमेटी के प्रस्तावों के विरुद्ध अग्रगामी दल के सभापति की हैसियत से जो देशव्यापी प्रदर्शन कराया, कांग्रेस की उसका एक सदस्य होते हुए भी परवाह न करके मि० जिन्ना से बातें की हैं, तथा बम्बई सरकार के मद्य-निषेध कार्य को अव्यवहारिक और अन्य-शर्तियों के विरुद्ध बतलाकर देश को जो हानि पहुंचाई है वह असम्य है। उससे उनकी वर्तमान मनोवृत्ति का पता लगता है। सुभाष बाबू एक ओर तो साम्यवाद का दम भरते हैं, और दूसरी ओर बम्बई सरकार के कुछ पूंजीपतियों पर टैक्स लगाने को अनुचित बतलाते हैं। सुभाष-बाबू के प्रति देश के युवक हृदय व उग्र विचार वालों की जो श्रद्धा थी, उसे उनकी इन कृतियों से काफ़ी धक्का लगा है। वे जनता की नज़रों में काफी नीचे खिसक गए हैं—क्या ही अच्छा हो कि सुभाष-बाबू अपने पिछले क्षोभ, खिन्न व झुंझलाहट पर काबू पा, जिद को छोड़ ठंडे दिल से विचार करें, अपनी इन भूलों को अनुभव कर उन्हें स्वीकार करें और अपने उच्च व्यक्तित्व को इस रूप में जनता के सामने रखें कि जिससे समस्त भारतीय जनता उनके प्रति पूर्ववत श्रद्धा करने लगे।

आचार्य गिजुभाई—

प्रसिद्ध शिक्षा-शास्त्री आचार्य गिजुभाई का लम्बी बीमारी के बाद २३ जून को बम्बई में देहावसान हो गया। आपके स्वर्गवास से शिक्षण जगत् की जो भारी क्षति हुई है, उसका पूरा होना आज तो असम्भव ही प्रतीत होता है। आप केवल शिक्षा शास्त्री ही नहीं बल्कि अद्वितीय बाल-मानस शास्त्री भी थे। नवीन शिक्षा-पद्धति का आपको बेहद शौक था। बड़ौदा सेन्ट्रल लायब्रेरी में शिक्षा विषयक शायद ही कोई ऐसी पुस्तक बची होगी जो आपने न पढ़ी हो। सर्वप्रथम आपने अपने बच्चों का शिक्षण अपने हाथ में लिया, और जब अपनी सफलता का पूर्ण विश्वास हो गया तो आपने १९२० में भावनगर में दक्षिणामूर्ति विद्याभवन की ओर से बालमन्दिर की स्थापना की जिसमें २॥ साल से लेकर ७ साल के बच्चे नवीन पद्धति से शिक्षा पाते थे। नवीन शिक्षण-पद्धति का प्रचार करने और बालकों को शिक्षक और माता-पिताओं के अत्याचारों से बचाने के लिए आपने १९२३ में बाल-अध्यापन-मन्दिर भी जारी कर दिया जिसने सैंकड़ों बाल शिक्षक और शिक्षिकाएँ तैयार कीं। इतना ही नहीं आपने एक शिक्षण पत्रिका भी जारी की जो १४ साल तक शिक्षा जगत् की सेवा करती रही। ऐसी उपयोगी और स्फूर्तिदायक अन्य कोई शिक्षण-पत्रिका हमारे देखने में नहीं आई। इसके अलावा आपने लगभग २५ मनो-विज्ञान और १०० से अधिक बाल साहित्य सम्बँधी पुस्तकें भी लिखीं। आपकी पुस्तकों को शिक्षक और बालक बड़े चाव से पढ़ते हैं और एक बार शुरू करने पर खत्म करके ही छोड़ते हैं। आपकी शैली में बनावट का नामो-निशान न था। आप जो कुछ लिखते थे मनो-विज्ञान की दृष्टि और अपने अनुभव से लिखते थे। बालकों से आपको अगाध प्रेम था। आपका एक २ क्षण बालहित के लिए ही व्यतीत होता था। आपकी सादगी और सरलता का तो कहना ही क्या। आपको देखकर कोई भी यह नहीं कह सकता था कि आप भारत के अनमोल रत्न हैं। मृत्यु शैया पर पड़े २ भी आप अपने विद्यार्थियों को कुछ न कुछ पढ़ाते ही रहे और काल के साथ युद्ध करते रहे। आपकी सूझ गज़ब की थी। बाल शिक्षा के मर्म को जितना आप ने समझा था, शायद ही किसी शिक्षा विशारद ने समझा हो। गिजुभाई का सच्चा स्मारक यही हो सकता है कि शिक्षक और माता-पिता उनके अमर साहित्य को पढ़कर सच्चे शिक्षक और सच्चे माता पिता बनें।

दीपक के प्रकाश में—

शेष-मिलन (उपन्यास)—लेखक और प्रकाशक—श्रीमन्त लाला लक्ष्मीनारायण, लक्ष्मी-बिल्डिंग्ज़, धरमपेठ, नागपुर (सी०पी०)। पृष्ठ-सँख्या ६० ; मू ।।)

'शेष मिलन' समाज और साहित्य के सामने एक ऐसी उलझी हुई समस्या को लेकर उपस्थित हुआ है, जिसपर गम्भीर विचार करने की बड़ी ही जरूरत है। समाज की छाती पर हर रोज ही ऐसी घटनाएं होतीं, प्रेम के ऊपर बलिदान होते और प्रेमियों का जीवन कांटों के रास्तों पर से गुजरता है; लेकिन समाज का फ़ौलादी दिल न जाने क्यों कर नहीं पिघलता।

शिक्षा और सँस्कृति के स्वतन्त्र वातावरण ही में ऐसा प्रेम पलता और बड़ा होता है! 'ललित' और 'इन्दिरा' का प्रेम भी इसी वातावरण में उगा था; लेकिन समाज के नियम भला उसे क्यों कर देख पाते। जिन परिस्थितियों में से इन प्रेमियों को गुजरना पड़ा, वह अपनी विशेषताओं का अलग ही नमूना हैं। 'चम्पा' का चित्रण स्त्री-मानस की उच्च भावनाओं का सामयिक विकास है। कथानक की दृष्टि से उपन्यास सफल रहा।

छपाई में कई भूलें हो गई हैं जो नागपुरी प्रेस के लिऐ शर्म की बात है। भाषा भी नागपुर की चलत् हिन्दी है। लेखक का यह प्रथम प्रयास अवश्य ही सफल कहला सकता है। यदि उनका प्रयत्न चलता रहा तो निश्चय ही उनकी क़लम का भविष्य उज्वल है। पुस्तक का प्रचार हो।

स्त्री-दर्शन—लेखिका—कुमारी सत्यवती, प्रकाशक—ज्ञानोदय-प्रकाशन-मण्डल, छपरा (बिहार), मूल्य अजिल्द ।।=), पृष्ठ संख्या १४८

स्त्री शिक्षा पर आजतक जो पुस्तकें लिखी गई हैं, वे प्रायः पुरुषों द्वारा ही लिखी गई हैं। इस पुस्तक की यही विशेषता है कि यह स्त्री द्वारा लिखी गई है। इस पुस्तक में पर्दा प्रथा, विधवा विवाह, तथा स्त्रियों की स्वतन्त्रता आदि पर बहुत से खोज-पूर्ण निबन्ध हैं, जिनके पढ़ने से स्त्रियों को बहुत लाभ होगा। पुस्तक हर प्रकार से सुन्दर व सुरुचि-पूर्ण है।

सिद्ध-प्रयोग (दूसरा भाग)—लेखक तथा प्रकाशक पं० विश्वेश्वर दयालु जी वैद्यराज, सम्पादक 'अनुभूत योगमाला' बरालोकपुर, इटावा यू०पी०। यह पुस्तक कई सालों की कठिन कोशिशों के बाद सँग्रह करके लिखी गई है। इसमें बड़े-बड़े वैद्यराजों के परीक्षित सफल प्रयोग बड़ी उत्तमता से लिखे गये हैं। लेखक ने सँस्कृत के श्लोकों की भाषा टीका करके स्पष्ट लिख दिए हैं। यह पुस्तक पृष्ठों में थोड़ी परन्तु गुणों में अमूल्य है। पृष्ठ सँख्या ६४ मू० ।।) अधिक है।

पंजाबी शेर—लाहौर से गुरमुखी का यह साप्ताहिक पत्र पंजाब के शेर 'किसानों' के हितों के रक्षक के रूप में प्रकट हुआ है। इसके विचार राष्ट्रीय हैं तथा यह कांग्रेस के अग्रगामी दल का समर्थक है। सहयोगी देश की मौजूदा राजनैतिक स्थिति, रियासतों तथा किसानों की समस्याओं पर मननशील विचार प्रकट करता है। श्री चैंचलसिंह के सम्पादकत्व में चहबच्चासाहब (मुग़लपुरा) लाहौर से प्रकाशित। वार्षिक मू० ४) एक अंक का -)

आर्य महिला (परलोकांक)—वार्षिक मूल्य ५) इस अंक का २) सम्पादक—श्री पं० रमेशदत्त पाण्डेय बी० ए० जगतगंज, बनारस कैंट। पत्रिका ने अपने २२ वें वर्ष में प्रवेश करते हुए तीन महीनों का सम्मिलित २८० पृष्ठों का यह 'परलोकांक'

निकाला है। अंक में लगभग १० तिरंगे चित्र तथा छपाई बढ़िया है। इसमें परलोक सम्बन्धी बड़े-बड़े विद्वानों तथा महात्माओं द्वारा लिखित लेखों का समावेश है। गम्भीर तथा आध्यात्मिक लेखों के अतिरिक्त कहानियां तथा सुन्दर कवितायें भी हैं। 'बालविहार' स्तम्भ में बालकों के लिए सुबोध तथा मनोरञ्जन सामग्री दी गई है। इस अंक का संकलन तथा सम्पादन करने में काफ़ी प्रयत्न किया गया है। परलोक सम्बन्धी रुचि रखने वालों के लिये उपयोगी संग्रह है।

वैद्य (दन्त रोगांक)—मुरादाबाद से निकलने वाले चिकित्सा विषयक इस पत्र के १७६ पृष्ठों के इस विशेषांक में दांतों की रचना, उनका उद्गम, दांतों के विभिन्न रोग, उनकी रक्षा, सफ़ाई, स्वास्थ्य रक्षा में दांतों का महत्त्व, दन्त रोगों के कारण व उनके अनेकों अनुभूत नुसखे, बच्चों के दाँत निकलने सम्बन्धी आवश्यक बातें, आदि विषयों का सुयोग्य लेखकों द्वारा प्रतिपादन किया गया है। दांतों के बढ़ते हुए रोगों के लिए ऐसे साहित्य की आवश्यकता है। वार्षिक मू० २), इस अंक का १)

वाणी-मन्दिर, छपरा की ३ पुस्तकें:—

१. पद-चिन्ह—श्री रामवृक्ष बेनीपुरी ने पांच प्रकार के-नये देश खोजने वाले साहसी, साहित्यिक, देशभक्त, वैज्ञानिक और मानव-हितैषी-युरोप के नर-रत्नों के पराक्रम और अध्यवसाय पूर्ण महान् कार्यों का फड़कती भाषा में रोचक वर्णन करते हुए भारत के नौनिहालों से उनके पद-चिन्हों पर चलने की जोरदार अपील की है। अतः प्रत्येक युवक को यह पुस्तक पढ़नी चाहिए। पृष्ठ ६८ तथा ।=) मूल्यमें प्रकाशक से प्राप्त।

२. रुदन—बिहार के होनहार नवयुवक कवि श्री श्यामधारी प्रसाद की विविध विषयों की स्फुट कविताओं का यह संग्रह है जिसमें ५७ कविताएं हैं। कवि के मानस-पटल पर विभिन्न पदार्थों व भावों का जो प्रभाव पड़ा है, उसीका वास्तविक चित्र कवि ने इन कविताओं द्वारा किया है। आप की रचनाओं में वेदना है, टीस है और राष्ट्रीयता के उगते हुए भाव हैं। ७० पृष्ठों की पुस्तक का मूल्य ।।)

३. आज का सवाल—लेखक श्री चन्द्रनाराय शर्मा। भारतवर्ष की शारीरिक, बौद्धिक, आर्थिक, राजनैतिक आदि सभी प्रकार से हीन अवस्था है। इसकी सर्वतोमुखी उन्नति करने के लिए हमारे सामने अनेकों कठिन समस्याएं हैं जो बिना शिक्षा प्रचार के सुलझ नहीं सकतीं। शिक्षा-पद्धति व पुस्तकें इस प्रकार की हों कि बच्चों को सब प्रकार का ज्ञान हो जावे। लेखक ने ऐसी ही सर्व विषयोपयोगी पुस्तक लिखने का यह प्रयत्न किया है। इसमें प्रारम्भिक अर्थशास्त्र, स्वास्थ्यरक्षा व सफ़ाई, पशुपालन, खेती बाड़ी, नागरिकता की शिक्षा, संगठन, राष्ट्रीयता व भारतीय शासन सम्बन्धी बातों की जानकारी कराई है। पुस्तक बड़े काम की है। पृष्ठ संख्या १०० व मूल्य ।।≈) है।

संसार-चक्र

पञ्जाब

—पञ्जाब सरकार के लाहौर म्युनिस्पल कारपोरेशन में हरिजनों को अलग प्रतिनिधित्व देने का प्रस्ताव पास करने पर हिन्दुओं की ओर से उसका घोर विरोध किया जा रहा है।

—पञ्जाब प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी ने सभी मातहत कमेटियों को कड़ी चेतावनी दी है कि अगर कोई मातहत कमेटी भारतीय कांग्रेस कमेटी के निश्चयों का विरोध करेगी तो उसके साथ अनुशासन भग की कड़ी काररवाई की जावेगी।

—पञ्जाब सरकार ने ८ जिलों में अन्न बहुत सस्ता हो जाने के कारण पिछली रवी की माल गुजारी की किश्त में साढ़े पाँच लाख रुपये की खास छूट दी है।

देश की खबरें

—मद्रास में हिंदी विरोधी आँदोलन एक बार समाप्त हो गया था तथा सब कैदी छोड़ दिए गये थे किंतु स्वयं सेवकों की पिकेटिंग गिरफ़ारी और सजा देने का सिलसिला फिर जारी हो गया है।

—बम्बई में आयुर्वेदिक कोलिज की और अस्पताल की इमारतें बनाने के लिए बम्बई सरकार को सेठ आनन्दी लाल पोद्दार ने साढ़े तीन लाख रुपया दान में दिया है।

—सिंध सरकार के निश्चय के अनुसार पुलिस ने ओ३म् निवास की इमारत पर कब्जा कर लिया।

—सिंध सरकार ने किसानों के लगान में १॥ लाख रुपये की छूट की घोषणा की है।

—सिंध सरकार अपने प्रांत के सभी स्थानीय बोर्डों में सँयुक्त निर्वाचन प्रणाली जारी करना चाहती है।

—कांग्रेस का मद्य-निषेध आन्दोलन करने के लिये सिन्ध कांग्रेस सरकार पर दबाव डाल रही है तथा बम्बई सरकार ने १ अगस्त से बम्बई में शराबबन्दी शुरू करने का निश्चय किया है।

—युक्त प्रान्त की सरकार ने निरक्षरता-निवारण आन्दोलन में पढ़ना लिखना सीखे हुए हर एक देहाती को एक पुस्तक देने का निश्चय किया है।

—युक्त प्रान्तीय सरकार ने १३४६ फसली की रवी वाली मालगुजारी की किस्त के लिये १३ जुलाई तक २६०९४१०) बिलकुल छूट, ३९८२३७) मुलतवी की है कुल १३८८ मील सड़कें पक्की बना देने की योजना बनायी है। इसमें १ करोड़ ५८ लाख रुपया खर्च होगा।

—पटने के एक प्रौढ साक्षरता केन्द्र में बिहार सरकार के २० हजार से अधिक चोकीदार शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं और जनता को साक्षर बनाने के लिये २ लाख रुपया मंजूर हुआ है।

—यू० पी० सरकार ने सब म्यु० कमेटियों को आज्ञा दी है कि हाथ-कते व बुने रेशमी, ऊनी व सूती खद्दर पर जो अ० भा० चर्खा संघ से प्रमाणित हो, कोई चुंगी न ली जाये।

—शिमला की एक पहाड़ी राज्य धम्मी में प्रजातंत्रात्मक शासन की मांग का प्रदर्शन करती हुई जनता पर राज्याधिकारियों की ओर से गोली चला दी गई जिससे कई के मरने व दर्जनों के घायल होने की खबर है।

—महात्मा गांधी लगभग दो सप्ताह सीमाप्रान्त में रहकर २६ जुलाई को वर्धा के लिए रवाना होगए।

—पँ० जवाहरलाल नेहरू, कांग्रेस की ओर से नियुक्त भारतीय राजदूत के रूप में, लँका गए। वहाँ उनका शाही स्वागत हुआ, दर्जनों बड़ी-बड़ी सभाओं में भाषण हुए तथा लँका द्वारा भारतीयों को वहां से निकाले जाने सम्बँधी समस्या पर अधिकारियों से भेंटें हुई। १० दिन लंका में ठहर कर आप वापिस चले आये।

—प्रांतीय कांग्रेस कमेटी के सदस्यों के पारस्परिक मतभेद मिटाने व एक दिल हो कार्य करने का बचन देने पर सीमा प्रांत गाँधी ने पुनः कार्य क्षेत्र में आना तथा प्राँतीय कांग्रेस में गहरी दिलचस्पी लेना स्वीकार कर लिया है।

—अमरनाथ छतरी के विख्यात महन्त जगद्गुरु श्री शँकराचार्य जी का १९ जुलाई को श्रीनगर में देहान्त हो गया।

—हैदराबाद की सुधार योजनाओं को चारों ओर से असन्तोषजनक बताकर नामञ्जूर किया जा रहा है। आर्य सत्याग्रह समिति ने भी इन सुधारों को उनकी माँगें पूरा करने के लिए बिलकुल नाकाफी व थोथा बताते हुए, सत्याग्रह जारी रखने का फैसला किया है। मुसलमान इन सुधारों को मुसलमानों के लिए घातक बताकर इनके विरोध में प्रदर्शन व हड़तालें कर रहे हैं।

विदेश

—अमेरिका की सरकार ने जापान के साथ अपना वह व्यापारिक समझौता जो कि जनवरी १९४० में समाप्त होता था, अभी समाप्त कर जापान से सम्बन्ध-विच्छेद कर लिया तथा जापान को माल व जंगी सामान न भेजा जावेगा। जापान में अमेरिका के इस फैसले से भारी बेचैनी फैल गई है।

—जापान में अँग्रेजों को एशिया से निकालने का घोर आन्दोलन हो रहा है।

—o—

तुलसी-जयन्ती-उत्सव

श्रावण सुदी सप्तमी तदनुसार २१ अगस्त १९३९ को गत वर्षों की भाँति साहित्य सदन, अबोहर में 'तुलसी जयन्ती' उत्सव मनाया जावेगा। हिन्दी के सुप्रसिद्ध विद्वान् तथा अ० भा० हिन्दी प्रचार समिति के अध्यक्ष

श्री आचार्य काका साहेब कालेलकर

इस अवसर पर पधारेंगे।

साहित्य सदन, अबोहर के चलता पुस्तकालय विभाग के लिए बनाए गए। **'चलता पुस्तकालय मन्दिर' का उद्घाटन** समारोह भी इसी समय होगा।

इसके अलावा साहित्य सदन, अबोहर से हिन्दी में प्रकाशित होने वाले **'सिख इतिहास'** के लिए नियुक्त कमेटी की बैठक, **ग्राम सुधार पँचायत** की कार्य समिति की बैठक तथा **जाट विद्यालय सँगरिया की** मैनेजिंग कमेटी की बैठक भी होगी।

साहित्य सदन, अबोहर तथा उसके उपरोक्त कार्यों के प्रति सहानुभूति रखने वाले सभी हिन्दी प्रेमियों से, तथा उन सभी व्यक्तियों से जो उपरोक्त कमेटियों के मेम्बर हैं, निवेदन है कि वे इस अवसर पर पधार कर सभी कार्यों को सफल बनावें।

केशवानन्द

साहित्य सदन, अबोहर (पँजाब)
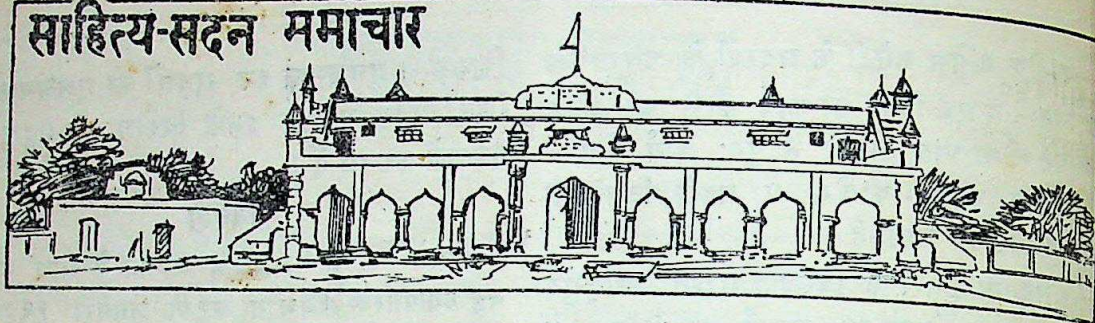
[कार्य-विवरण मास जून-जुलाई १९३९ ई०]

मास जून में २९४ पुस्तकें जनता द्वारा पढ़ी गईं तथा पूर्ववत् हिंदी, अङ्गरेजी, गुरुमुखी और गुजराती आदि की १२५ पत्र-पत्रिकाएँ आती रहीं।

संग्रहालय

श्री स्वामी केशवानन्द जी अपनी लङ्का-यात्रा से लौटते हुए, लङ्का व मद्रास की बनी बहुत सी चीजें लाए, जिनका ब्यौरा निम्न प्रकार है:—

लंका-दर्शन-चित्रपट—इसमें लङ्का सम्बन्धी दर्जनों विभिन्न प्राचीन व दर्शनीय इमारतों, बाग-बगीचों, फलों की दुकानों, प्राकृतिक दृश्यों, समुद्र में रहने वाले जीव-जन्तुओं, तथा वहां के रहने वाले स्त्री-पुरुषों के चित्रों को एक चौखटा में जड़कर प्रदर्शिनी हाल में लगाया गया है।

सिक्के—एक रुपये का नोट, ५० सैंट, २५ सैंट, १० सैंट, ५ सैंट, १ सैंट, ५ पुखराज आदि रत्न।

लङ्का की काली लकड़ी के बने हुए काठ के दो गैंडे तथा पुल को पार करते हुए पाँच हाथियों की एक कतार, सेह की सूलों की बनी सन्दूकची, नारियल खोल के बने प्याले, नैपकिनरिंगस और टी-बाक्स और लकड़ी की बनी समुद्री किश्ती, घास के बने भिन्न २ रंगों तथा साइज़ों के थैले।

मद्रास की वस्तुएँ—पीतल के तारों के बने पिंजरे, टोकरी, बाल्टी आदि। शीशे के टुकड़ों की बनी मोटर।

चलता-पुस्तकालय-मन्दिर

इसके लिए २७×१४॥ फीट आकार का एक कमरा, जिसमें ऊपर पुस्तकालय के लिए गैलरी रहेगी, बनना आरम्भ हो गया है और २०-२१ अगस्त को यहां पर होने वाले 'तुलसी जयन्ती' उत्सव तक बन कर तैयार हो जावेगा। इस अवसर पर इसका उद्घाटन-समारोह होगा।

क्या आप जानते हैं ?

—सोवियट रूस का तानाशाह स्टेलिन हज़ार रूबल माहवारी यानी ६ पौंएड शिलिंग वेतन लेता है।

—हिटलर किसी भी असफलता के बाद रोता है। वह गाने का बेहद शौकीन भाषणों में आवेश भर कर रो पड़ना लर की खास खूबी है।

—स्विटज़रलैंड में ६ महीने के परिश्रम और सौ रुपये की लागत से एक घड़ी बनी है दुनिया की सबसे छोटी घड़ी कही जा ती है। उसकी लम्बाई आध इँच व ाई एक बटा पांच इँच है।

—भारत को 'लीग आफ़नेशन्स' का मेम्बर के कारण ८ लाख रुपया सालाना देनी पड़ती है।

—चीन में एक इतना लम्बा आदमी है ज़मीन पर खड़ा हुआ आसानी से फ़ीट ऊँचाई पर लिख सकता है।

—एक इँच वर्षा होने से एक एकड़ ज़मीन सौ टन पानी गिरता है।

—पेरिस के ३ फीट से भी कम ऊँचाई आदमी के १० स्त्रियाँ व २७ बच्चे हैं।

—न्यूयार्क का रेलवे स्टेशन बनाने में करोड़ रुपया खर्च हुआ तथा असँख्य मज़दूर १० वर्ष तक काम करते रहे।

—सन् १९३८ में ब्रिटिश भारत में हैज़े १२३२४३ व्यक्ति रोगी हुए जिनमें से ८०१० की मृत्यु हो गई।

—दुनिया में सबसे अधिक भूकम्प दक्षिणी अमेरिका के चिली प्रदेश में-साल भर में १ हज़ार अर्थात् जापान से भी १० गुना-आते हैं।

—समस्त सँसार में प्रति घन्टा ५४४० मनुष्य पैदा होते हैं और ४६३० मरते हैं, १४ हज़ार तार दिये जाते हैं, ४४ लाख १६ हज़ार पत्र डाक में डाले जाते हैं जिन पर लगे टिकटों का मूल्य १० लाख पौंड होता है।

—आवाज़ एक घँटे में ७९० मील जाती है किंतु प्रकाश एक सेकिंड में १८६३२५-मील जाता है।

—आदमी के बाल एक वर्ष में १६ इँच बढ़ते हैं।

—आस्ट्रेलिया में लूलों-लँगड़ों आदि अपाहिजों को बिना टिकट रेल में बैठाया जाता है।

—१८०० ईसवी में सँसार में ७० करोड़ आदमी थे किंतु अब २ अरब के लगभग हैं।

—समस्त संसार में जितनी चांदी उत्पन्न होती है, उसका ८० प्रतिशत अकेले अमेरिका में ही होती है!

—मास्को शहर का घण्टा संसार में सबसे बड़ा है। इसकी ऊँचाई २१ फीट, वज़न ४३२००० पौंएड व व्यास २१ फीट है। यह घण्टा सन १७३३ में बना था।

—०:०—

Regd. No. L. 3700

अनमोल बोल

हमें सबसे पहले आत्म-सम्मान की रक्षा करनी चाहिए। हम कायर और दब्बू हो गये हैं। अपमान और हानि चुपके से सह लेते हैं। ऐसे प्राणियों को तो स्वर्ग में भी सुख नहीं प्राप्त हो सकता। —प्रेमचन्द

* * *

हमारे विचार ही हमारे मित्र व शत्रु हैं। अच्छे विचार एक ईमानदार मित्र से भी बहुत कीमती हैं। बुरे विचारों वाला मनुष्य कभी भी सुखी जीवन नहीं गुजार सकता।

* * *

जो मनुष्य अपनी भूलों और दुर्बलताओं का प्रकाश में आना सहन नहीं कर सकता, वह सत्य के पथ का पथिक बनने के सर्वथा अयोग्य है। — जे० एलेन

* * *

सबसे उत्तम विजय प्रेम की है जो सदैव के लिए विजितों का हृदय बाँध देती है।

—सम्राट अशोक महान

* * *

क्रोध की मार रुकती है, पर लोभ की मार का अन्त नहीं। —टैगोर

* * *

प्रेम मनुष्य-जीवन का पोषण करने वाला अमृत है, तथापि दूध की तरह उसकी भी यह तासीर है कि उचित सार-सँभाल के अभाव में वह तुरन्त बिगड़ जाता है। —तारा बहन

* * *

नेक जिंदगी बसर करना सबसे अच्छी फिलासफी है, नेक जमीर होना सबसे अच्छा असूल है, ईमानदारी सबसे अच्छा अमल है, सादा जिंदगी सबसे अच्छी दवाई है।

—रोमन फिलासफर सेनेका

मुद्रक एवं प्रकाशक श्री कुलभूषण द्वारा, 'दीपक प्रेस' साहित्य सदन, अबोहर से प्रकाशित।

युक्तप्रांत, मध्यप्रांत, बिहार, बम्बई, उड़ीसा, कोटा व सुजगढ़ राज्य शिक्षाविभाग द्वारा, स्कूलों व पुस्तकालयों के लिए स्वीकृत

गांधी-जयन्ती-अंक

दीपक

भाद्रपद १९९६] साहित्य सदन, अबोहर [अक्तूबर १९३९

सम्पादक--तेगराम

वार्षिक मूल्य २॥)
एक अंक का ।)

यू॰ पी॰ के ग्राम सुधार विभाग द्वारा

ग्रामीण पुस्तकालयों के लिये स्वीकृत❀

सर्व साधारण के लिये उपयोगी, सरल पुस्तकें

❀विश्वधाय—इस में गौत्रों के पालन-पोषण सम्बन्धी ३२ आवश्यक विषयों का विशद वर्णन किया गया है। पुस्तक प्रत्येक गोपालक तथा ग्रामीण भाई के लिए अत्यन्त काम की है। लगभग ८० पृष्ठों की इस सचित्र पुस्तक का मूल्य केवल ।) है। डाक खर्च अलग।

❀ग्राम-सुधार नाटक—ग्रामीणों पर होने वाले घोर अत्याचार, उन में फैल अनेकों कुरीतियों व अंध-विश्वासों का नग्न चित्र तथा ग्रामोद्धार के सरल उपायों कायदि आप दिग्दर्शन करना चाहते हैं तो राष्ट्रीय भावों से ओत प्रोत इस नाटक को पढ़िये। सवा सौ पृष्ठों की पुस्तक का मूल्य ॥=) है। डाक खर्च अलग।

❀बाल गोपाल—बालकों के रोजमर्रा काम में आने वाली बातों को इस छोटी सी पुस्तक में सुन्दर और सरल गीतों में वर्णित किया गया है। भाषा चटकीली और इतनी सरल है कि पुस्तक में एक भी संयुक्त अक्षर नहीं आया है। पृष्ठ सख्या ४२, मू॰ =)॥, डाक खर्च अलग।

❀ईसप-नीति-निकुंज (प्रथम भाग)—इस पुस्तक में महाष ईसप की ६१ शिक्षाप्रद, दिल चस्प कहानियों का पद्यानुवाद है। कविता बड़ी सरल है। एक बार शुरु करके खतम करने को ही जी चाहता है। मू॰ ।।) डाक खर्च अलग।

बालोपदेश (प्रथम भाग)—इस पुस्तक की सर्व प्रियता इसी बात से सिद्ध हो जाती है कि गाँधी आश्रम हटुण्डी जैसी राष्ट्रीय संस्था ने अपनी सभी ग्रामीण पाठशालाओं के लिये इस की इकट्ठी ही सैंकड़ों प्रतियां ली हैं। पृष्ठ ३०, मू॰ -) मात्र, डाक खर्च अलग।

मिलने का पताः—साहित्य सदन, अबोहर (पंजाब)

नोटः—'दीपक' के ग्राहकों को ये सब पुस्तकें पोने मूल्य में मिलेंगी।

दीपक—वर्ष ४, संख्या १२, अक्तूबर १९३९ ई०

'दीपक' के नियम

१—'दीपक' हर अंग्रेज़ी महीने के पहले सप्ताह में प्रकाशित होता है।

२—'दीपक' का वार्षिक मूल्य डाक व्यय व विशेषांक सहित केवल २।) है। एक प्रति ४ आने, विदेश से ४)।

३—'दीपक' में प्रकाशनार्थ लिखे जाने वाले लेख अधूरे न हों, पृष्ठ के एक ओर ही संशोधन के लिये इधर उधर जगह छोड़ कर सफाई से लिखे हों, विस्तार में चार पृष्ठ से अधिक न हों। भाषा उनकी सरल व शैली रोचक हो जिससे साधारण योग्यता वाले व्यक्ति भी जिनके हितार्थ 'दीपक' प्रकाशित हुआ है, उन्हें पढ़ व समझ सकें।

४—'दीपक' का मुख्य उद्देश **ग्राम-सुधार, समाज-उत्थान, शिक्षा व राष्ट्र-भाषा-प्रचार** द्वारा जनता-जनार्दनमें जीवन-जागृति पैदा करना है। अतः धार्मिक ईर्ष्या, साम्प्रदायिक विद्वेष पूर्ण उपरोक्त उद्देश्य के विपरीत कोई लेख न छप सकेगा।

५—लेख घटाने-बढाने, संशोधन करने तथा प्रकाशित करने या न करने का अधिकार संपादक को होगा।

६—'दीपक' के ग्राहकों को पत्र-व्यवहार करते समय अपना पूरा पता और ग्राहक नम्बर साफ अक्षरों में लिखना चाहिये, अन्यथा जवाब देर से मिलेगा। १ मास से कम समयके लिये पता बदलवाने के लिये डाकखानेसे प्रबंध करें।

७—अस्वीकृत लेख डाक खर्च भेजने पर ही लौटाये जा सकेंगे अन्यथा नहीं।

८—जिन सज्जनों को किसी मास का 'दीपक' न मिले उन्हें पहले अपने डाकघर से पूछ ताछ करके बाद में हमारे पास लिखना चाहिये।

८—लेख, कविता, समालोचना के लिये पुस्तकें और बदले के पत्र, सम्पादक, 'दीपक' साहित्य सदन, अबोहर के पते से और मूल्य तथा प्रबन्ध विषयक पत्र मैनेजर, 'दीपक' के पते से भेजने चाहिएं।

स्तंभ—सूची

कृपालु लेखक-लेखिकाओं से नम्र निवेदन है कि वे 'दीपक' के लिये कुछ लिखने से पहिले एक बार हमारे स्तंभों की सूची देख लें। इन स्तंभों के अतिरिक्त भाव-पूर्ण किन्तु सात्विक कविता और कहानियों के लिये भी 'दीपक' के कुछ पृष्ठ 'रिज़र्व' हैं। सरल भाषा में लिखे गये व्यवहारिक लेख 'दीपक' के श्रद्धापात्र होंगे।

—सम्पादक

गोपालन विद्या का महत्त्व जानने के लिए यह पुस्तक अवश्य देखनी चाहिए।

३० चित्रों सहित] [पृष्ठ लगभग ३५०

गोपालन

तृतीय बार छपी है, इसमें पाँच खंड हैं। दूध, मलाई, मक्खन, घी इत्यादि २ की बनावट में रासायनिक पदार्थों का मेल; उनकी जाँच पर्ताल की नई २ रीतियाँ, गौ-भैंसों की बावत जानने योग्य अनोखी बातें, दूध के पशुओं को अधिक दुधारू बनाने की सहज रीति, भले बुरे पशुओं की जाँच किस प्रकार की जाती है। अच्छे दूध के पशु कहाँ मिलते हैं, गौ चारण भूमि को किस प्रकार उपयोगी बनाया जा सकता है?

पशुओं की रोगावस्था में चिकित्सा और सुगम तथा सुलभ औषधियों का प्रयोग कौन कौनसी औषधियाँ गोशाला में रखनी चाहियें?

दूध और उसका व्यापार, डेरी फारम किस प्रकार सफलता पूर्वक चल सकती है? धार्मिक गोशालाओं से यथोचित लाभ उठाने की विधि सरकारी डेरियां कहाँ २ पर हैं। इस प्रकार की और बहुत सी अत्यन्त उपयोगी और अनूठी बातें इस पुस्तक में एक ५० वर्ष के अनुभवी लेखक द्वारा विस्तार पूर्वक लिखी गई है। सजिल्द पुस्तक का मूल्य केवल १।।) रुपया, डाक व्यय अलग।

पुस्तक मिलने का पता

भगवानदास वर्मा, भगवानदास स्ट्रीट, लाहौर छावनी।

इश्तहार आम

हर खास व आम को इतला दी जाती है कि मुसम्मी नरायण वल्द शेराराम, जात कुम्हार बागड़ी जालप, साकन व मौरूसी शहतीरवाला तहसील फ़ाज़िल्का अव्वल दर्जे का ऐय्याश, फ़िजूल खर्च, शराबखोर, और क़मारबाज़ है। वह अपनी अराजी मौरूसी वाका शहतीर वाला तहसील फ़ाज़िल्का को जो कि ज़द्दी है, फिजूलखर्ची में बरबाद करना चाहता है। कोई शख्स उसकी जायदाद मनकूला व गैरमनकूला को खरीद न करे। अगर कोई शख्स उसकी जायदाद खरीद करेगा तो वह अपने नफा व नुकसान का खुद जिम्मेवार होगा।

शिवपत पिसर नरायणराम कुम्हार जालप, बागड़ी

ता० ५ अगस्त १९३६ साकिन शहतीरवाला (तहसील फाज़िल्का)

Approved for use in Schools in U.P., C. .. ar. Bombay, Orissa, Kotah and Rajgarh States
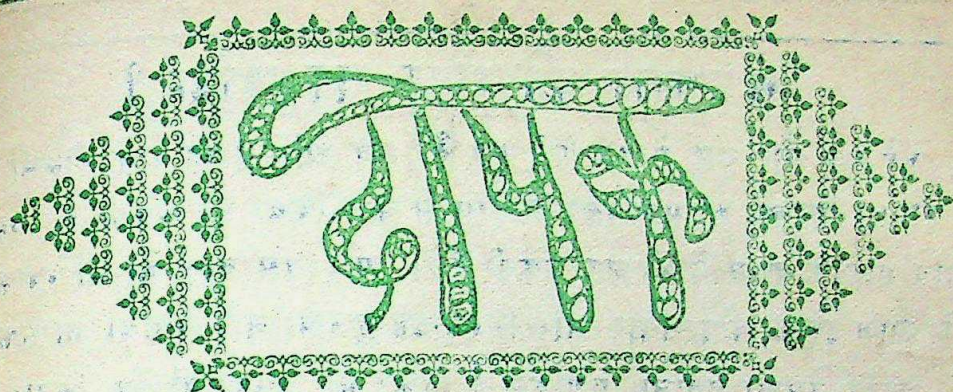
भाद्रपद १९९६ | वर्ष ४, संख्या १२ पूर्ण संख्या ४८ | अक्तूबर १९३९

जो काम करे सो खाए

शरीर से काम लेने में आलस्य बढ़ने या बिना बुद्धिमानी के कोल्हू के बैल की तरह जुते रहने की आदत से आहिस्ते २ कुल दौलत दूसरे के हाथों में चली जाती है। इसलिये बच्चे, बीमार और बूढ़े को छोड़ कर गांव में या देश में कोई ऐसा आदमी नहीं होना चाहिये जो श्याम से पहले बुद्धिमानी से भरसक मेहनत न करता हो। जो आदमी बिना कुछ मेहनत किये खाता है वह चोरी करता है।

हद से ज्यादा दौलत बटोरने का मर्ज महामारी के बराबर है, बहुत ज्यादा जमीन दबाना मानो दूसरों का पेट कुचलना है, बहुत बड़े औजार बनाना और भाप बिजली से चलाना मानो लाखों और करोड़ों की रोजी हड़पना है। और हद से ज्यादा शरीर से काम लेना यह अपने जीवन का नाश है। ऐसा करने से किसी का भला नहीं हो सकता। जो लोग इस बाढ़ में बहते हैं वे देश के सत्यानाश के कारण बनते हैं।

—गाँधीजी

सभ्यता की रक्षा या नाश ?

जब एक घोर युद्ध से हम घिरे हुए हैं, तब अहिंसा की बातें बोलना प्रलाप सा मालूम होगा। हिटलर का मुकाबला अहिंसा से कैसे किया जा सकता है, यह आशङ्का कट्टर गांधीभक्त के हृदय में भी उठ सकती है। और इस बात को भी स्वीकार करना होगा कि आज इसका कोई तैयार और निस्सन्देह नुसखा नहीं बताया जा सकता।

यद्यपि नुसखा बताना मुशकिल है, फिर भी परिणामों का विचार किया जा सकता है। यह प्रचण्ड हिंसाश्रित सभ्यता किस ओर जा रही है ? जो आग दूसरों को भस्म करने उठी है क्या वह खुद अपने को भी भस्म करने को तैयार नहीं हुई है ? क्या इस युद्ध में जिसकी हार होगी. उसी की हार होगी और जीतने वाले की नहीं ?

पेटभर अन्न, शरीरभर कपड़ा और एक छोटासा निवास-स्थान सबको मिले, इतने से जिन्हें सन्तोष नहीं, वे सभ्यता निर्माण करने वाले होते हैं। उसे निर्माण करने के लिए, वे पहले तो हज़ारों के अन्न, वस्त्र और निवास प्राप्ति के साधनों को भी कम कर डालते हैं, और उसके बल पर अपनी सभ्यता बढ़ाते हैं और उसका आदर बढ़ाते हैं। तब वह सभ्यता दूसरों के लिए ईर्षा का कारण बनती है,और उसे आक्रमण का भयपैदा होता है। फिर उसकी रक्षा के साधन पैदा करने पड़ते हैं। इसके लिए लाखों के अन्न,वस्त्र और घरों को और भी कम करना पड़ता है। हरेक देशमें ऐसी सभ्यताएँ अलग २ निर्माण होती हैं, फिर हरेक देश को अपनी सभ्यता बढ़ाने और उसकी रक्षा करने में कुछ मुश्किलें मालूम होती हैं। तब वह क्या करे ? अपनी सभ्यता को घटाना और 'असभ्य' बन जाना तो दिल में आही नहीं सकता। तब दूसरों की हिंसा करने की बुद्धि ही हो सकती है।

आखिर में यह सभ्यता टिकने वाली तो नहीं है। प्रलयाग्नि की तरह वह सबको जलाकर खुद भी खाक होगी। तब इस सभ्यता के मोह को—सुख-सुविधा के साधनों की अधिकता को ही कम करना होगा। हरेक परिवार के अपने पेट भर अन्न, शरीर भर कपड़ा और छोटासा निवास-स्थान प्राप्त करने के बाद ही जितनी ज्ञान-विज्ञान, साहित्य-कला,शृंगार आदि की पुष्टि की जासके उतनी ही सभ्यता अहिंसा से निभ सकेगी। उससे पहले सभ्यता का निर्माण और वृद्धि बगैर हिंसा किए, नामुमकिन है। आधुनिक सभ्यता के नाश के बाद हम इस शर्त को स्वीकार करें या आज ?

वर्धा
७-९-३९

—किशोरीलाल घ०मशरूवाला

गाँधीजी की आस्तिकता

ले० दादा धर्माधिकारी, वर्धा

उस दिन 'तुलसी जयन्ती' के लिए काका साहब के साथ अबोहर गया था। वहां 'ट्रिब्यून' के उपसम्पादक राणा जंगबहादुरसिंह ने तुलसीदास जी पर एक बड़ा ही सुन्दर व्याख्यान दिया। तुलसीदास जी की तारीफ़ करते हुए आपने कहा कि मुझ जैसे नास्तिक का माथा भी उनके चरणों में झुक जाता है। राणा साहब का भाषण सुनकर मुझे एक छोटी सी कहानी याद आयी। 'दीपक' के पाठकों के लिए यहाँ देता हूँ:—

एक गुरु था। उसके थे दो चेले। एक का नाम था कर्मठराम और दूसरे का नीतिराज। दोनों अपने गुरु के एकनिष्ठ—एक भक्त थे। उसकी आज्ञा का पालन करने में वे कभी नहीं चूकते थे। लेकिन कर्मठराम रोज हवन, भजन-पूजन, स्नान, संध्यादि नित्य-नैमित्तिक कर्मों को बड़ी सावधानी से और नियमित रूप से करता था। "चन्द्र टरै सूरज टरै" लेकिन कर्मठराम का दैनिक कार्यक्रम अटल था। नीतिराज कुछ विचित्र सा था। स्नान-संध्या शील तो वह भी था। परन्तु दैनिक कर्मकांड की अपेक्षा वह लोगों की सेवा को अधिक महत्त्व देता था। गुरु जी उससे प्रीति तो रखते थे, लेकिन प्रसन्न नहीं थे। वे समझते थे कि उनके बाद उनकी गद्दी तो कर्मठराम ही चलायेगा।

एक दिन गुरु जी के आश्रम में एक सवाई गुरु आये। उन्होंने चेलों के बारे में भी पूछा। गुरुजी ने जवाब दिया—"कर्मठराम मेरा उत्तराधिकारी होगा। भजन, पूजन, संध्या, अर्चा में यह बड़ा नियमित और कुशल है। नीतिराज है तो बड़ा बुद्धिमान् लेकिन कुछ नास्तिक सा है। पूजापाठ में उसकी पूरी श्रद्धा नहीं।" यह सुनकर सवाई गुरु को कुछ कुतूहल हुआ। उन्होंने इन दोनों शिष्यों की परीक्षा लेने का निश्चय किया।

दोनों को सवाई गुरु ने एक-एक आम दिया और उनसे कहा कि इसे ऐसी जगह जाकर खाओ जहां तुम्हें कोई न देख पावे। कोई चार घंटे बाद कर्मठराम लौटा। उसने अपना हाल सुनाया। घने जंगल में एक अँधेरी गुफा में जाकर वह अपना आम खाकर आया था। उसे किसी ने नहीं देखा। थोड़ी देर बाद मुँह लटकाये हुये अपना आम ज्यों का त्यों हाथ में लिये नीतिराज भी लौटा। उसे देखते ही गुरुजी बोले—"देखिए, यह

ऐसा ही उद्दंड है। आज्ञापालन तो इसने सीखा ही नहीं।"

तब सवाई गुरु ने कहा, "ज़रा उसकी बात तो सुन लें। देखें तो उसने क्या समझ कर आम नहीं खाया।"

पूछने पर नीतिराज बोला, "महाराज, मुझे खेद और शर्म है कि मैं आपकी आज्ञा का पालन न कर सका। परन्तु मैं भी क्या करता? मैं एक निर्जन और घने जंगल में एक बिलकुल अँधेरी गुफ़ा में गया। लेकिन कोई जगह ऐसी न देखी जहां परमात्मा मुझे न देखता हो। मुझे कोई स्थान ईश्वर से खाली न मिला। इसलिए आपकी आज्ञा के अनुसार आम खाना मेरे लिये मुमकिन न था। एक बात और। मैंने यह भी सोचा कि आखिर मैं तो स्वयँ अपना साक्षी हूं ही। जब मैं कोई काम अपने सामने कर सकता हूं तो उसे दूसरों के सामने भी करने में क्या हर्ज़ है? जो काम दूसरों के सामने करने में मुझे हिचक होती हो, उसे अपने सामने करके मैं अपनी आत्मा का अपमान क्यों करूँ? ईश्वर और आत्मा की मर्यादा तोड़ना मैंने मुनासिब नहीं समझा, इसलिये मुझसे आज्ञा-भँग का गुनाह हुआ। मैं उसकी सज़ा भुगतने के लिये तैयार हूं।"

उसके उत्तर से सवाई गुरु जी बहुत ही प्रसन्न हुये और बोले, 'मैं तो नीतिराज को ही सच्चा आस्तिक कहूँगा। ईश्वर के अस्तित्व का जिसे निरन्तर ख्याल रहता है वही तो आस्तिक है। और जिसे अपनी आत्म-मर्यादा का विचार हो वह कोई कम आस्तिक नहीं।"

आस्तिकता और नास्तिकता का भेद सूक्ष्म है। इसी लिये गाँधी जी ने कहा है कि जो आत्मवादी हैं वे आस्तिक ही हैं।

आशा है कि आस्तिक और नास्तिक का यह छोटा सा किस्सा 'दीपक' के पाठकों के विचारों को गति देगा।

आज भी सनातन धर्म और हिंदू धर्म की दुहाई देने वाले कई लोग गांधीजी को नास्तिक, ईसाई, भ्रष्ट आदि कहते हैं। वे कहते हैं "यह जातपांत नहीं मानता, छूत-अछूत नहीं मानता, रोटी बन्दी और बेटी बन्दी नहीं मानता। सारा धर्म चौपट करने पर तुला हुआ है। साक्षात् काले पुरुष हैं ये गांधी"।

इसका कारण स्पष्ट है। गाँधी एक तत्त्वज्ञ सँत है। वह कोई धर्म-शास्त्री नहीं है। वह धर्मग्रन्थों के अक्षरों का दास नहीं है। वह तो धार्मिकता के तत्त्व का, धर्मग्रन्थों के अर्थ का कायल है। तत्त्वज्ञ सन्त और धर्मध्वजी शास्त्रियों का यह भेद सनातन है। धर्मशास्त्री और पंडित लकीर के फ़कीर होते हैं। उनकी बुद्धि धर्मग्रंथों के अक्षरों में कैद होती है। धर्म के तत्त्व की उन्हें परवाह नहीं होती। इसीलिये वे स्थितिवादी होते हैं, सुधारों

के शत्रु होते हैं, प्रगति के मार्ग में रोड़े डालते हैं। वे समझते हैं कि हम अपने प्रगति विरोध से धर्म और समाज की रक्षा कर रहे हैं।

लेकिन उनका यह ख्याल बिलकुल गलत है। संसार में धर्म की स्थापना करने वाले जितने धार्मिक नेता आये, वे सब परिवर्तनवादी थे, बल्कि यों कहिये कि क्रांतिकारी थे। क्योंकि जब लोग लीक पीटना ही अपना परम धर्म समझते हैं, धर्म के बाहरी आडम्बर को ही उसका तत्त्व मानने लगते हैं, तभी धर्म की ग्लानि होती है। मनुष्यता की और मनुष्योचित गुणों की कीमत घट जाती है। जो शाश्वत मूल्य—असली सिद्धांत हैं वे बेकार माने जाते हैं। जन्म, धन, हुकूमत और शरीरबल जैसी अस्थाई चीजों की इज्जत होने लगती है। पण्डित, मौलवी और पादरी उन्हीं की महिमा बढ़ाने में अपनी आत्मा का उद्धार समझते हैं।

जब ऐसा होता है तब धर्म-तत्त्व को जाननेवाले धर्म सुधारक सन्त का उदय होता है। वह ईश्वर-परायणता, सचाई, सभी प्राणियों के प्रति प्रेम, शुद्धता, सादगी आदि वास्तविक धर्मतत्त्वों की इज़्ज़त बढ़ाने की कोशिश करता है। दर असल आस्तिक वही है, परन्तु धर्मशास्त्री उसे नास्तिक कहते हैं।

धर्म के बाहरी आडम्बरों की अपेक्षा जब चित्त को शुद्ध करने वाले नियमों की प्रतिष्ठा बढ़ती है तभी धर्म की प्रगति होती है। उस हालत में दो धर्मों में संघर्ष तो हो ही नहीं सकता। संघर्ष तो तब होता है जब धर्म की अपेक्षा मनुष्य अपने शरीर की कीमत ज्यादा मानने लगता है। जब मैं "मेरा धर्म" कहता हूं तो मुझे "मेरा" की अपेक्षा "धर्म" को अधिक महत्त्व देना चाहिए। तब तो धीरे २ 'मेरा' की भावना कम होते २ मिट ही जायेगी और 'धर्म' की भावना बढ़ेगी। लेकिन जब मैं 'धर्म' की अपेक्षा 'मेरा' पर अधिक ज़ोर देता हूँ तो "मैं-मैं, तू-तू" का बाज़ार गर्म हो जाता है और "धर्म" दूर रह जाता है।

सन्त की आस्तिकता और शास्त्री की आस्तिकता में यह अन्तर है। गांधी सच्चा आस्तिक है क्योंकि वह धर्म के तत्त्व को अपने जीवन में दाखिल करने की लगातार चेष्टा करता है, वह ग्रन्थवादी नहीं तत्त्व-परायण है!
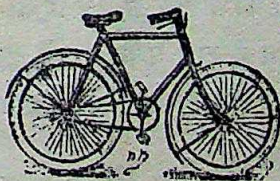
चरखा द्वादशी—

श्री मगनभाई देसाई,
गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद

भारतीयों के लिए गांधीजी की ७१ वीं वर्षगांठ का एक पवित्र दिन है। गांधीजी ने तो हमें इस दिन को 'गाँधी जयन्ती' के नाम से पुकारने के बदले अपनी सबसे प्यारी चीज़—चरखे के साथ इसका सम्बन्ध जोड़ने के लिए कहा है। वे इस दिन चरखे की ही आराधना करने के लिए कहते हैं। उनकी ऐसी श्रद्धा है कि उनके मरने के बाद भी चरखा कायम रहेगा। उनका यह दृढ़ विश्वास है कि उनके काम में बरकत देने वाली यदि कोई शक्ति है तो वह खद्दर-शक्ति ही है।

तोभी 'वीर पूजा' मानव-हृदय की एक सनातन वृत्ति है। इसलिए आज के दिन गाँधी जी की याद उन के चरखे से पहिले ही आती है। जन्म से ही गाँधी जी क्रान्तिकारी मालूम होते हैं। वे १९१५ में अफ्रीका से हिन्दुस्तान में आये। तब से ही कितने नये नये रंग इस क्रान्तिदर्शी व्यक्ति ने अपने देश को दिखाये हैं। जिस समय क्रान्ति की गन्ध भी नहीं आती थी अथवा आती भी थी तो आज जैसी तेज़ी न थी, उस समय इस व्यक्ति ने क्रान्ति का बिगुल बजा दिया था। देश-विदेश के अनेकों व्यक्ति सदा इनसे क्रान्ति की ही आशा रखते हैं। इनकी बोलचाल में, इनके लेख में, इनके काम में उन्हें नई-नई ध्वनि सुनाई पड़ती हैं जो कि बाद में सर्वत्र फैल जाती हैं। दूसरे शब्दों में, गांधी जी के आचार-विचार में अकस्मात् उठने वाली नई तरंगों को देख कर लोग भौचक्के से रह जाते हैं। परन्तु कुछ समय के बाद वही तरंगें लोगों के जीवन का अंग बनजाती हैं।

यदि हम सिर्फ गुजरात के ही जीवन की ओर नज़र डालें तो आज उनके प्रत्येक अंग में गाँधी जी की आत्मा ओतप्रोत दिखाई देती है। खान-पान, पोशाक, रहन-सहन, स्वच्छता, शिक्षण, स्त्री-पुरुष सम्बन्ध, धार्मिक जागृति, समाज रचना, साहित्य आदि लोकजीवन के जिस किसी भी अंग पर नज़र दौड़ाई जाय, सर्वत्र गांधीजी की सूक्ष्म तथा जीवनव्यापी क्रांति ही दृष्टिगोचर होगी। अतः उन्होंने गुजरात में सामाजिक, धार्मिक और साहित्यिक अवस्थाओं के मूल्य में सहज में ही बहुत कुछ परिवर्त्तन कर डाला है। और देश के समस्त जीवन में भी क्रांति की जो रूह उन्होंने फूँकी वह कितने ही अंशों में लोगों के हृदयों में घर कर गई है।

गांधी जी ने देश की स्वराज्य-यात्रा की गति बहुत तेज़ और उसका मार्ग दृढ़ और व्यवस्थित बनाया है। किसी ज़माने में स्वराज्य-यात्रा की आराधना स्वतन्त्र रीति से की जाती थी, अर्थात् सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, शिक्षा सम्बन्धी, आदि प्रश्नों की चर्चा राष्ट्रीय प्रश्नों के साथ नहीं की जाती थी। उस समय के देश-नेताओं की दृष्टि में इन प्रश्नों का एक दूसरे से अटूट सम्बन्ध नहीं समझा जाता था। इन प्रश्नों का यह अटूट सम्बन्ध सिद्ध करने का श्रेय गाँधी जी को ही है। सामाजिक एवँ राजनैतिक प्रश्नों को एक दूसरे के साथ मिलाकर उन्होंने व्यक्ति और राष्ट्र—दोनों को ऊँचा उठाया है। यही कारण है कि देश के कोने-कोने में आज़ादी, नवजीवन की लहर दौड़ गई है और चारों तरफ जोशो-ख़रोश नज़र आता है। अतः इसमें जरा भी शक नहीं कि ऐसा व्यक्ति ही भारत माता को परतँत्रता की बेड़ियों से छुड़ाएगा।

ऐसे प्रतिभाशाली व्यक्ति के जन्मदिन के शुभ प्रसँग पर ये सब बातें याद आती हैं और हृदय-वीणा से एक ही झँकार निकलती है—"प्रभो ! यह दीर्घायु हों। यह चिरकाल तक जीवें।" कवि भारतमाता के दिल की आवाज़ को इस प्रकार प्रकट करता है:—

"तू योगी कोई निराला है, अपनी आन का मतवाला है।
कल्पों तक तेरी काया रहे, भारत पर तेरी छाया रहे।"

(अनु० श्री हंसराज जैन, एम०ए०)

बापू के जीवन की कुछ घटनाएँ

श्री० प्रभुदयाल विद्यार्थी, हिंदी-प्रचार-समिति, वर्धा

बापू को ही लोग महात्मा गाँधी कहते हैं। उन्हीं के जीवन से सम्बन्ध रखने वाली कुछ घटनायें मैं नीचे की पँक्तियों में दे रहा हूँ।

गाँधी जब अङ्गरेजी की दूसरी-तीसरी क्लास में पढ़ते थे, तब एक दिन स्कूल में लड़कों की पढ़ाई की जाँच करने के लिए स्कूल का हाकिम आया। उसने सब लड़कों को अङ्गरेजी के पाँच शब्द लिखने को दिए। कक्षा का अध्यापक घूमघूम कर लड़कों की लिखाई देख रहा था—क्या लिख रहे हैं। अध्यापक का हृदय भी काँप रहा था कि अगर कोई गलती हुई तो उसका दोष मेरे सिर पर आएगा और हाकिम कहेगा कि मास्टर अच्छा नहीं पढ़ाता।

मोहनदास (Kettle) 'केटल' शब्द गलत लिख रहे थे। इतने में मास्टर की दृष्टि उन पर पड़ी। लेकिन बेचारा मास्टर क्या कर सकता था? घूमते २ मोहनदास के पास पहुँचा और अपने बूट की नोक से ठोकर दे कर इशारा किया और पास के एक लड़के की सलेट खींची। परन्तु मोहनदास ने चोरी करके अपनी गलती ठीक करना पसन्द नहीं किया। उन्होंने यह नहीं समझा कि मास्टर चोरी कराके ठीक क्यों लिखाना चाहता है?

दूसरे दिन मास्टर ने कहा—मोहनदास सचमुच ही मूर्ख लड़का है। मैंने कितनी ही चेतावनी दी पर वह समझ नहीं सका।

गाँधीजी ने मास्टर से कुछ न कहा। परन्तु मन में कहा कि उनकी बात मानने लायक न थी, क्योंकि इससे असत्य का ज्ञान पैदा होता।

❀ ❀ ❀

गाँधीजी कैसे रहते हैं यह जानने की सबको इच्छा होगी?

नियमित रूप से रोज़ प्रातःकाल चार बजे जागते हैं। दातुन आदि करके पीछे ईश्वर प्रार्थना करते हैं। प्रार्थना के पीछे कसरत के वास्ते थोड़े समय के लिए घूमने जाते हैं। घूम चुकने पर जब वापिस आते हैं तब यदि आश्रम में कोई बीमार पड़ा है तो उसको देखते हैं।

फिर कोई मिलने के लिए आया हो, उसके साथ बातें करते हैं और डाक से आए हुए पत्रों का उत्तर देते और हरिजन के लिए लेख लिखते हैं।

भोजन के समय परोसने का काम तो इन्हीं का है। रोज नियमित रूप से कमसे कम एक घण्टा चर्खा चलाते हैं और कमसे कम १६० तार कातने का नियम है। शाम को सूरज डूबने के पहले भोजन करते हैं। भोजन करने के बाद घूमने के लिए जाते हैं।

❀ ❀ ❀

जब गाँधीजी दक्षिण अफ्रीका में रहते थे तब उन्हें वहाँ के गोरे लोग 'कुली-बैरिस्टर" कहकर पुकारते थे। उसका थोड़ासा हाल सुनिए:—

गाँधीजी विलायत जाकर बैरिस्टर हो कर आए, बाद में कुछ कमाने के लिए दक्षिण अफ्रीका गए,

जहाँ वे एक व्यापारी के यहाँ एक नौकर की हैसियत से रहते थे।

हमें क्या मालूम था कि अनजान प्रदेश में कोई अलग भी काम आ सकता है। अफ्रीका की भूमि पर जिसदिन पैर रखा, उसदिन से ही उनके दिलमें और घबराहट होने लगी। हिन्दुस्तानी लोग वहाँ बहुत तकलीफ उठा रहे थे—छोटे-बड़े सब एक समान ही अपमान के शिकार बने हुए थे।

कई हिंदुस्तानी मजदूर अथवा कुली की हैसियत से उस देशमें गए थे। गोरे लोग उनसे घृणा करते थे। व्यापरियों को कुली-व्यापारी, वकीलों को कुली-वकील कहते थे और गांधीजी को वे लोग कुली-बैरिस्टर कहते थे।

इस तरह से गोरे लोग उनके साथ मिलना-जुलना अपने लिए अपमान समझते थे। घोड़ागाड़ी में, ट्राम में, रेलगाड़ी में भी उनको साथ में नहीं बैठने देते थे। उपहारगृह में भी जाने की मनाही थी। रास्ते की सड़क पर कुली आते जाते तो भी घृणा होती। तब फिर किसी आम जलसे में मेहमानों की हैसियत से उन्हें कैसे बुलाया जाता?

लिखे-पढ़े और धनवान हिंदुओं को भी इस अपमान को सहन करना पड़ता था। यहाँ विदेश में मान-अपमान का ख़याल न करना, पैसे कमाना और स्वदेश में इज्जत प्राप्त करना—इसी सीधे सादे मार्ग पर वे चलते थे।

लेकिन गाँधीजी को यह सब बुरा मालूम हुआ। जाने के बाद तुरन्त ही उनका बारबार अपमान होने लगा। लेकिन गाँधीजी तो दूसरे हिंदुस्तानियों की तरह यह सहन नहीं करते थे और मानपूर्वक सीना सामने रखते थे। उनके ऊपर गालियों, धक्का-मुक्का और लातों की बौछार होने लगी। गाँधीजी गाली के सामने गाली न देते थे, धक्का के सामने न धक्का न लात के सामने लात मारते थे। लेकिन डरकर अपमान को सहन नहीं करते थे।

बैरिस्टर साहब जब वकालत करने के लिए आए तब उन्हें पहली बार डर्बन शहर का हाईकोर्ट दिखाने के लिए ले जाया गया।

गाँधीजी साफ-सुथरी अङ्गरेजी पोशाक पहनते थे लेकिन सिर पर खास तौर पर हिंदुस्तानी पगड़ी पहनना शुरू किया। इसी पगड़ी को पहनकर कचहरी में गए और वकीलों के साथ बैठे।

न्यायाधीश इस नये वकील को ताकने लगा। उसके मनमें यह खयाल पैदा होता था कि यह कुली सिरपर से पगड़ी न उतार कर अदालत का अपमान कर रहा है। थोड़ी देर तक देखने के बाद उन्होंने गांधीजी को पगड़ी उतारने के लिए कहा।

गांधीजी इस अपमान को सहन करने को तैयार न थे। पगड़ी उतारने की निस्बत मस्तक को उतरवा देना उन्होंने ज्यादा पसन्द किया। गाँधीजी ने पगड़ी न उतारी और कोर्ट का दिवानखाना छोड़ कर चले गए।

❀ ● ❀

गाँधीजी डर्बन से रेल पर बैठ कर प्रिटेरिया जाने के लिए निकले, पहले क्लास का टिकट खरीद कर। घर से निकलने के पहले उनको सूचना मिली थी—"गांधी भाई! यह हिंदुस्तान नहीं है, यहां तो हम लोगों को पहली क्लास में नहीं बैठने देंगे।" लेकिन गाँधीजी ने उसे नहीं माना। उनका यह खयाल था कि बैरिस्टरी की इज्जत रखने के लिए पहली क्लास में बैठना ही चाहिए।

कुछ मुसाफरी निर्विघ्न हुई। रात को नौ बजे रेलगाड़ी मोरिसबर्ग नामक स्टेशन पर खड़ी हुई। वहां एक प्रवासी गोरा गांधीजी के डब्बे में बैठने के लिए आया। लेकिन "अरे, यह कौन—यह तो पहली क्लास के डिब्बे में कुली चढ़ बैठा?"

आगे मुँह से कुछ बोला नहीं, परन्तु तुरन्त बाहर जाकर दो स्टेशन के अफ़सरों को लेकर आया।

अमलदार लोग देखने लगे, लेकिन किसी को बोलने की हिम्मत नहीं हुई। आखिर एक अफसर गांधीजी के पास जाकर बोला—"भाई यहां आ जाइए, आप को आखिर के डब्बे में जाना है।"

गांधीजी ने कहा—"मेरे पास पहली क्लास का टिकट है।"

"उसकी चिंता मत करो, मैं अब कह रहा हूं आपको आखिर के डब्बे में जाना ही पड़ेगा।"

"मैं आपको कह रहा हूं कि मुझे इस डब्बे में डर्बन से बैठाया गया है और मैंने उसमें जाने का निश्चय किया है।"

जवाब सुनकर अमलदार चौंक पड़ा। "अरे, एक गोरे अमलदार के सामने यह कुली क्या बक रहा है?"

अमलदार रोषमें बोला—"यह नहीं चल सकता, आपको उतरना ही पड़ेगा, नहीं तो आपको सिपाही उतार देंगे।"

गांधीजी ने दृढ़ता से कहा—"भले ही सिपाही मुझे उतार दें—मैं नहीं उतरूंगा।"

अमलदार को बहुत गुस्सा आ गया। वह सिपाही को बुलाकर लाया। सिपाही डिब्बे पर चढ़ आया और उनका हाथ पकड़ कर नीचे घसीट कर उतार दिया। उनका माल-असबाब वगै। भी उठा कर फेंक दिया।

गांधीजी दूसरे डब्बे में नहीं गए और न उन्होंने माल-असबाब को ही हाथ लगाया। अपमान से खून गर्म हो रहा था। खुद लेटफार्म पर खड़े हुए थे और गाड़ी चली गई।

बाद में सारी रात लेटफार्म पर ही काटी। जाड़ा गजब हा रहा था। ओवरकोट असबाब में था, लेकिन फेंके हुए सामान के सामने देखने को जरा भी इच्छा नहीं हुई। शायद लेने जायँ और फिर कहीं अपमान हो जाय तो? इसलिए जाड़े में सिकुड़ना ही पसन्द किया। जाड़े में कांपते हुए कई विचार मन में आगए।

"रेल में बैठकर आगे जाना और फिर अपमान को निमन्त्रण देना—इससे तो यही अच्छा है कि पीछे लौट जाऊँ।"

"नहीं नहीं—लिया हुआ काम अधूरा कभी नहीं छोड़ना चाहिए। इस तरह के इस देश में कमाने के लिए रहने से तो यही बेहतर है कि हिन्दुस्तान वापिस चला जाऊँ।"

"नहीं, नहीं—यह कमजोर और बुजदिल आदमियों का काम है।"

"तो फिर गोरे सिपाही और अफसर के खिलाफ अदालत में मुकदमा चलवाकर इन्हें ठीक कराऊँ।"

"इससे क्या होगा? इससे सब हिन्दुस्तानियों के मस्तक पर कुलीपन का जो बोझा है वह थोड़े ही दूर होगा?"

इस तरह से मनमें तरङ्ग उठती रहीं—मनको दबाया और उस वक्त अपमान सहन कर लिया।

प्रिटेरिया जाते हुए अभी आगे दूसरा सङ्कट आने वाला था। जार्लटाउन से जोहांसबर्ग तक कोई ट्रेन न थी। घोड़ागाड़ी की सवारी थी। बाकायदा टिकट खरीदा—टिकट लेकर घोड़ागाड़ी में बैठने के लिए चले गए। पर वहां तो गोरे घोड़ागाड़ी वाले ने बाधा डाली।

"आपको नहीं बैठने दिया जायगा—आपकी टिकट कल की है।"

गांधीजी को अनजान समझ कर यह बहाना निकाला था। असल में तो उसकी इच्छा यह थी कि कालेकुली को अपने सिकरम में गोरे प्रवासियों के साथ न बैठाएँ तो ठीक होगा।

लेकिन यह बहाना कहांतक चल सकता था? आखिर में गोरों के साथ नहीं लेकिन बाहर हांकने वाले के साथ गांधीजी के लिए जगह करदी गई।

गांधीजी यह सुनकर आश्चर्य करने लगे —"इस जगह पर मैं बैठूँ—भीतर क्यों नहीं बैठ सकता ?" लेकिन फिर भी इस अपमान को सहन कर लिया और बाहर जहाँ जगह दी गई वहीं बैठ गए।

थोड़ी देर के बाद सिकरम में बैठे हुए गोरे अफसर को बाहर, जहाँ गाँधीजी बैठे थे, वहां बैठने की इच्छा हुई। उनको वहां बैठकर तमाखू पीना था। थोड़ी हवा भी खानी थी। इसलिए एक मैला-कुचैला थैला रखकर पैर रखने की जगह पर बिछा दिया और गांधीजी से कहा —"अरे शामी! तुम यहाँ पर बैठो, मुझे गाड़ीवान के पास बैठना है।"

इस अपमान ने गाँधीजी के हृदय में आग लगादी। वह गोरा पहाड़सा मजबूत था और वे खुद दुबले-पतले थे। लेकिन फिर भी डरकर अपमान क्यों सहन करलें ?

"आपने मुझे यहां बैठाया। मैंने इस अपमान को तो सहन कर लिया। अब आपको बाहर बैठने की इच्छा हुई है और बीड़ी पीनी है, इसलिए आप मुझे अब अपने पैर रखने की जगह पर बैठने को कहते हैं। मैं भीतर सिकरम में बैठने के लिए तैयार हूं। लेकिन आपके पैर के नजदीक बैठना नहीं चाहता हूँ।"

इतना कहते ही वह गोरा सिपाही उनपर तमाचा जमाने लगा और कलाई पकड़ कर उनको नीचे घसीटा। लेकिन सिकरम में पास ही पीतल का छड़ था उसे गांधीजी ने पकड़कर मनमें निश्चय कर लिया कि भले ही हाथ की कलाई टूट जाय, पर छड़ छोड़कर गाड़ी से अलग नहीं हूँगा।

गोरा गालियां भी देता था और साथ ही साथ उन्हें घसीट भी रहा था। गांधीजी ने जोर से छड़ पकड़ रखी और जगह न छोड़ी, बड़ी मुसीबत का सामना करना पड़ा। अन्त में दूसरे प्रवासी गोरे ने बीच में पड़कर सिकरम वाले को डांटा और गांधी जी को इस सङ्कट से मुक्त कराया।

❀ ❀ ❀

गाँधीजी को हरिजन कितने प्यारे हैं—जरा आजसे २०—२२ साल पहले की बात तो सुनिए:—

एक गांव में सभा थी। गांधीजी सभा में भाषण देने वाले थे। गांधीजी का भाषण सुनने की किसे इच्छा न होगी? गांव में से बनिए भी गए, ब्राह्मण भी गए, पटेल भी गए, ठाकुर और जमींदार भी गए; दर्जी, सुथार, तेली, मोची सभी गए।

हरिजन निवास के हरिजन बोले—"अरे, चलो सभा में जाएँगे। हमारे बापूजी आनेवाले हैं। उनकी सभा में जाए बिना कैसे चलेगा?" वे सब सभा में चले गए—श्रोताजन उनको पहचान गए।

"अरे, यह तो अछूत हैं! यहां मत बैठिए। जाइए, वापिस जाइए, सभा में आपका क्या काम है?"

"बापजी हमें बैठने दो न, गाँधीजी हमारे भी हैं।"

फिर लोगों को समझा-बुझाकर एक कोने में अलग जगह करादी। "बैठिए, यहां पर, लेकिन देखिए किसी को छूना मत।"

"नहीं बापजी! हम नहीं छूएँगे।"

इस तरह सभा भर गयी। वक्त हो गया। महात्माजी भी आए। वन्देमातरम्, भारतमाता की जय तथा महात्मा गांधी की जय से आसमान गूंज उठा। कोने में बैठे हरिजनों ने भी उस जयनाद में अपनी आवाज मिलायी। हरिजन लोग बापूजी को ऊँची गर्दन उठा-उठा देखने लगे।

गांधी जी आये, मँच पर बैठे, एक क्षण में चारों ओर नजर दौड़ाई। गांधी जी की नजर तीक्ष्ण है। आखिर जहां हरिजन बैठे थे, वहां नजर पड़ी। एक गांव वाले को बुलाकर पूछा—"वे क्यों दूर बैठे हैं?"

"महात्मा जी वे तो अछूत हैं ना"

"उनको साथ में बैठायेंगे तो ?"

गांव वाले ने आंखें चढ़ाईं।

"उनको सभा में न लायेंगे तो मैं वहां जाकर [भाष]ण करूँगा।"

यह कहकर गाँधी जी ने मँच छोड़ दिया, और [अप]ने प्यारे हरिजनों के पास चले गये। गाँव के [बुद्धि]मतवान लोग भी उनके साथ चले गए। अछूत [आन]न्द के मारे फूले न समाते थे। वे आशीर्वाद [देने] लगे—"खूब जिओ हमारे बापू जी, दीर्घ आयु [हो] हमारे बापू जी!"

❋ ❋ ❋

गाँधीजी ने साबरमती के तट पर जब आश्रम [की] स्थापना की तब उन्होंने जाहिर किया था कि [कोई] लायक हरिजन हो तो उसे आश्रम में भर्ती [कि]या जायगा।

लोगों की यह धारणा थी कि वे तो ऐसा ही [कहते] हैं, लेकिन आश्रम में आने के लिए किसी को [फु]र्सत है। उन्होंने यह कहकर लापरवाही बताई [औ]र गाँधी जी के आश्रम को मदद देने लगे। [आश्र]म का खर्च किस तरह से चलेगा, इसकी चिन्ता [गाँध]ी जी को न करने दी। इस प्रकार थोड़े [सम]य के लिए काम काज चला। इसी बीच में एक [गरी]ब हरिजन कुटुम्ब वहां आगया। पति, पत्नी और [एक] बच्ची थी। वे ठक्करबापा की सिफारिश [लेक]र आये थे। गाँधीजी ने सोचा ईश्वर ने उनको [भेज]कर हमारी परीक्षा ली है। उन्होंने हरिजन भाई [से पू]छा—"आश्रम का कानून मालूम है ना?"

"जी हाँ"

"आप पालन कर सकेंगे?"

"हां जी"

"ठीक, आप आनन्द से यहां रहिए और आश्रम को अपना घर समझिए।"

इस तरह हरिजन कुटुम्ब आश्रम वासी बन गया। सब के साथ रहने लगा। साथ-साथ काम करता था और साथ ही साथ भोजन करता था।

आश्रम में सब एक सरीखे विचार के न थे। कोई ऊँच नीच, छोटे विचार के थे। लेकिन गाँधी जी ने साफ २ कह दिया कि मुझे यह हरिजन पहिले चाहिए। जिन से इस धर्म का पालन न हो सके वे आनन्द से इस आश्रम को छोड़ कर चले जायँ फिर भले ही वे हमारे स्त्री-पुत्र ही हों।

सारे गाँव में यह चर्चा फैल गई कि गाँधी जी ने आश्रम में एक हरिजन रक्खा है।

'अरे, उसने जैसा कहा था वैसा ही किया। ऐसे नीच कार्य में कैसे मदद की जाए?" यह कह कर सनातन धर्म पन्थी सेठों ने आश्रम को मदद देना बन्द कर दिया।

मगनलाल गाँधी आश्रम की व्यवस्था करते थे। उनका चेहरा यह सब देख सुन कर सूख गया। उन्होंने कहा—"बापूजी, अब रुपये नहीं हैं—अब आगे के महीने में क्या किया जायगा?"

गाँधी जी ने हिम्मत बँधाई और कहा—"ईश्वर पर श्रद्धा रखो, खर्च जब समाप्त हो जायगा तो हम हरिजन वास में जाकर रहेंगे और वहां मजदूरी करके गुजर-बसर करेंगे, लेकिन सच्चाई को कभी नहीं छोड़ेंगे।"

❋ ❋ ❋

हिंदुस्तान भर में घूमते घामते एक बार गाँधी जी उत्कल (उड़ीसा) प्रांत में गये थे।

उत्कल की गरीबी की क्या बात करनी? दुनिया भर में गरीब देश अपना हिन्दुस्तान और हिंदुस्तान में सबसे गरीब उत्कल। मालूम होता है कि वहां आदमी नहीं बसते बल्कि हाड़-माँस का शरीर

बसता है। अकाल उनका साथ नहीं छोड़ता। वहाँ के लोगों को दोनों वक्त खाने को नहीं मिलता तब भला पहनने को कपड़ा कहां से होगा ?

उत्कल की गरीबी की बात गांधीजी ने सुनी तो थी परन्तु अपनी आँखों उसे अब देखा। गांधीजी ने इस प्रांत के गांवों को देखा। वहां टूटी-फूटी झोंपड़ी थीं; जहाँ मनुष्य भूख से व्याकुल और निस्तेज पड़े थे। औरतों के ऊपर फटा-पुराना चिथड़ा था। वह ऐसा कपड़ा नहीं था जिससे सम्पूर्ण शरीर को ढक सकें। किसी प्रकार से कमर ढकली थी, परन्तु छाती पर कुछ नहीं था।

गांधीजी ने जब यह दृश्य देखा तब उन्हें बहुत दुःख हुआ "अरे, राम, हमारे देश में इतनी गरीबी ? इसको दूर करने के लिए क्या मैं कुछ नहीं कर सकता ?" गांधी जी को ऐसा लगा कि आज ही दरिद्रनारायण का सच्चा दर्शन मिला है।

उत्कल प्रांत के लिए सब प्रांतों से अधिक प्रेम गाँधी जी के हृदय में है। उसके लिए गांधी जी बहुत सोचा करते हैं।

❀ ❀ ❀

आज बापू जी ७१ वें वर्ष में पदार्पण कर रहे हैं। ७० वर्षों के बीच में असँख्य घटनायें घटी हैं जिन को सारा जगत् जानता है। बापू की उन घटनाओं से मनुष्य जीवन बहुत तरक्की कर सकता है। बापू दीर्घ-आयु होकर और भी असँख्य घटनायें मनुष्य जीवन के सामने पेश करके मानव-समाज की उन्नति में सहायक व पथ-प्रदर्शक बनें —यही हमारी प्रार्थना है।*

*'गांधीजी' नामक गुजराती पुस्तक से अनुदित।

स्वराज्य से भी कीमती !

महात्मा गांधी के जन्म दिन के वक्त इससे ज्यादा और क्या लिख सकता हूँ कि मैंने कितनी हस्तियों की शौहरत सुनी, लेकिन जब उनके नजदीक आया तो कुछ न कुछ कमजोरियां मालूम दीं और मेरी राय उनकी बाबत ऐसी अच्छी नहीं रही जैसी कि पहले थी। हर एक इन्सान में कुछ न कुछ कमजोरी है, और नजदीक आने से वह मालूम हो जाती है। महात्मा गांधी की ऐसी हस्ती है कि उनके नजदीक आने से उनकी पूरी खूबियां रोशन हो जाती हैं और वकअत—इज्जत बहुत ज्यादा बढ़ जाती है। हिंदुस्तान में इस वक्त महात्मा गाँधी की हस्ती स्वराज्य से भी ज्यादा कीमती है। अगर हमको स्वराज्य भी ऐसे तरीके से मिल जावे जो महात्मा जी के उसूलों के खिलाफ हो तो वह स्वराज्य लेने के काबिल नहीं होगा। उसके लेने के बाद भी हिन्दुस्तान ऐसी मुसीबत में होगा जैसी मुसीबत में योरोप के दूसरे देश हैं। मुझे तो इस में जरा भी शक नहीं कि कुछ अर्से में योरोप के लोगों को भी यह मालूम हो जायगा कि असली खुशी के लिये महात्मा जी के उसूलों पर कारबन्द रहना चाहिए। इसलिये सिर्फ हिन्दुस्तान की भलाई के लिये नहीं, बल्कि दुनियां की भलाई के लिये हमारी यह प्रार्थना होनी चाहिए कि महात्मा जी की जिंदगी दराज़ (दीर्घायु) हो, ताकि तमाम दुनियां उनकी हस्ती से फायदा उठा सके।

श्यामलाल एम०एल०ए० (सेण्ट्रल)

शिक्षा का रोग

ले०—श्री ऐडमेण्ड होम्स

[२]

बढ़ते हुए लचीले स्वभाव वाले बालक को मताग्रही दबाव के कारण हर प्रकार से हानि उठानी पड़ती है। मताग्रही दबाव चारों ओर से इस कदर व्यवस्थित रूप से डाला जाता है कि बालक के जीवन का कोई भी भाग इससे अछूता [न]हीं रह सकता। ऐसी हालत में कोई भी बालक गैर [मा]मूली ताक़त के बिना इस दबाव का मुकाबला नहीं [क]र सकता।

पाश्चात्य शिक्षा की मुख्य बातों को जितना मैं [जा]नता हूं उतना पाठक भी जानते होंगे। लेकिन [अप]नी वर्तमान दृष्टि से देखते हुए मुझे ऐसा लगता [है] कि हमारी शिक्षा का आधार है बाल-स्वभाव में [पू]र्ण अविश्वास। यही वजह है कि हमारी शिक्षा का [का]म बालक की उस स्वतन्त्रता में, जो उसके स्वस्थ [वि]कास के लिए अनिवार्य है, बाधा डालने के [सि]वाय और कुछ नहीं रह गया है। बालक की [छि]पी हुई शक्तियों को विकसित होने का मौका देने [के] बदले शिक्षक उसके हर काम में विघ्न डालता [र]हता है। जैसे सभी जीवित प्राणियों में सम्पूर्णता [छि]पी रहती है, उसी प्रकार बालक में भी जन्म से ही [म]नुष्यत्व मौजूद रहता है जो प्रत्येक मनुष्य का [आ]दर्श है। लेकिन बालक को इस आदर्श तक [प]हुँचने में मदद करने के बजाय शिक्षक—जिसे मेरी [दृ]ष्टि में सबसे ज्यादा विनम्र होना चाहिए—खुद ही आदर्श रूप बनकर उसके सामने खड़ा हो जाता है। वह बालक से कहता है कि "मैं ही तुम्हारा आदर्श हूं। तुम्हें भी मेरे जैसा बनना चाहिए या मैं तुम्हें अपने जैसा बना लूँगा। जो कुछ मैं करता हूँ वही तुम्हें भी करना सीखना चाहिए। जैसा मैं मानता हूं वैसा ही तुम्हें भी मानना चाहिए। जिस चीज़ की मैं तारीफ करता हूँ, उसकी तुम्हें भी तारीफ करनी चाहिए। जो मेरा ध्येय है वही तुम्हारा भी होना चाहिए। जैसा मैं हूं वैसा ही तुम्हें भी बनना चाहिए।"

इस प्रकार आदर्श के बदले शिक्षक अपना ही नमूना बालक के सामने रखता है। ऐसा करने से शिक्षक का रास्ता साफ हो जाता है। सूचना तथा आज्ञा देने वाला शिक्षक यही चाहता है कि बालक उसकी इज्जत करे और बिना चूं-चरा के उसके हुक्मों को मानता रहे।

प्राणी मात्र के बच्चों की तरह मनुष्य के बच्चों को भी कुदरत ने तरह-तरह के काम करने की ताकत दी है। किंतु शिक्षक बच्चे के सामने ऐसा प्रोग्राम रखता है कि जिससे वह एक ही जगह बिना हिले जुले बैठा रहे और कोई सक्रिय काम न कर सके। बालक की स्वाभाविक शक्तियों के बहते हुए प्रवाह को रोकना अनुशासन और व्यवस्था का प्रारम्भ और अन्त समझा जाता है। इस प्रवाह के रुक जाने पर ही शिक्षक सूचना देने तथा पढ़ाने का काम कर सकता है। लेकिन स्वस्थ बालक निष्क्रियता और जड़ता से

नफ़रत करता है। इस लिए उसे चुपचाप बिठाने के लिए शिक्षक कभी लालच और कभी भय से काम लेता है। शिक्षक एक हाथ में इनाम और दूसरे में डंडा लेकर बालक के सामने आता है और फिर उससे पूछता है कि तुम इन दोनों में से किसको चाहते हो। इस प्रकार उसकी शिक्षा-पद्धति में इनाम और सजा का बोल बाला रहता है। इनाम देकर बालक की तुच्छ इच्छाओं को जगाया जाता है और सजा देकर उसके अन्दर भय पैदा किया जाता है। और यह सब कुछ व्यवस्थित रूप से होता है। इसका नतीजा यह होता है कि काम करने, अपनी शक्तियों और अँगों का उपयोग करने, अपने स्वभाव को जानने तथा कुदरती कानूनों के मुताबिक चलने से जो आनन्द मिलता है, उस आनन्द की वजह से बालक कुछ नहीं करता। वह जो काम करता है वह मिठाई के लालच और शिक्षक के डंडे से बचने के लिए ही करता है। शुरु से आखिर तक यह मान लिया जाता है कि बालक शिक्षा को नापसँद करेगा और इसके खिलाफ विद्रोह करेगा। इस धारणा से यह नतीजा निकाल लिया जाता है कि बालक के विकास के लिए कुदरत ने जो रास्ता निश्चित किया है वह बिलकुल गलत है और ठीक रास्ते का पता केवल शिक्षक को ही है। अतः शिक्षा का ध्येय कुदरत की भूलों को सुधारना और बालक को उन गुप्त शक्तियों के प्रवाह से दूर रखना है जो उसी में से प्रस्फुटित होकर उसके जीवन द्वारा प्रकट होना चाहती हैं।

जब तथाकथित व्यवस्था कायम हो जाती है, तभी पारिभाषिक (Technical) मानों में शिक्षा शुरू होती है। इस शिक्षाका स्वरूप भी सुन लीजिए। यह शिक्षा बाल स्वभाव का, जो स्वभाविक वृत्तियों और रुचियों का समूह है, अवलोकन नहीं करती। यह शिक्षा बाल स्वभाव के उतार चढ़ाव का क्रम निश्चित नहीं करती और न इस क्रम के अनुसार बालक को चलने में सहायता देती है। इतना ही नहीं, यह शिक्षा बालक की विस्तृत होने वाली स्वाभाविक वृत्ति को प्रोत्साहन नहीं देती और न छुटकारा चाहने वाली प्रवृत्ति को दृढ़ होने का अवकाश देती है। इस शिक्षा के अनुसार शिक्षक बालक के लिए अमुक विषय निश्चित कर, एक लम्बा चौड़ा टाइम टेबिल बना, बाल स्वभाव में पूर्ण अविश्वास से पैदा हुई पद्धति द्वारा उन विषयों को पढ़ाने लगता है।

इस प्रकार बालक के विकास के नाटक में बालक नहीं बल्कि शिक्षक ही मुख्य ऐक्टर का पार्ट अदा करता है। बालक को विस्तार के साथ बता दिया जाता है कि उसे क्या करना है और कैसे करना है। उसे यह भी बता दिया जाता है कि उसे क्या देखना है, क्या महसूस करना है, क्या मानना है क्या नतीजा निकालना है और क्या सोचना है। इसप्रकार, स्वतन्त्र रूप से सोचने और करने के लिए बालक के पास कुछ भी नहीं रहता। बालक के लिए जो काम शिक्षक कर सकता है ऐसा कोई भी काम बालक को खुद नहीं करना होता है। हर एक बात में यह मान लिया जाता है कि बालक बे-समझ है, असहाय है और बिलकुल नाकाबिल है। बालक को अपने परिश्रम से ही ज्ञान हासिल करने में मदद देने के बजाय उसको गली-सड़ी सूचनाओं से लाद दिया जाता है। तर्क करने और खुद सोचने में मदद करने के बजाय बालक को नियमों, सूत्रों और ऊपर के ज्ञान से सुसज्जित कर दिया जाता है। और यह आशा की जाती है कि अब उसके लिए तर्क करने और सोचने की जरूरत न रहेगी।

बालक को दी जाने वाली हिदायतें इतनी पूर्ण और स्पष्ट होती हैं कि वह यन्त्रवत उनको अमल में लाता है। इसका नतीजा यह होता है कि बालक की उच्च शक्तियां, कि जिनको इस्तैमाल करने से उसका व्यक्तित्व बनता है, काम में नहीं आतीं। केवल तर्क शक्ति ही नहीं बल्कि कल्पना, सहानुभूति, सौंदर्य-शक्ति, वैज्ञानिक जिज्ञासा, रचनात्मक वृत्ति आदि

सब शक्तियां और वृत्तियां भूखों मर जाती हैं। इन सब शक्तियों को शिक्षक द्वारा निश्चित बहुत ही तँग दायरे से आगे बढ़ने न दिया जाकर इनको स्फूर्ति और स्वतन्त्रता से वञ्चित कर दिया जाता है। इस प्रकार ये शक्तियां एक जीती जागती आत्मा का अँग न रह कर एक मशीन के पुर्जों के समान बन गई हैं।

बालक के प्रति शिक्षक के पुराने जमाने से चले आने वाले अविश्वास तथा मताग्रही दबाव के कारण तो बालक पर जुल्म होना ही है, लेकिन इसके अलावा बालक पर जुल्म होने का एक और भी कारण है और वह यह है कि अनुशासन का स्थान डिल ने, स्वतन्त्र प्रवृत्ति का स्थान रूढ़ी (Routine) ने और जीवन का स्थान मशीन ने ले लिया है। यह सब कुछ करने के लिए दुनियां ने शिक्षक को मजबूर कर दिया है। खेद के साथ कहना पड़ता है कि दुनिया जैसे बालक पर विश्वास नहीं करती, वैसे ही शिक्षक पर भी नहीं करती। इसी लिए शिक्षक के परिश्रम और बालक की तरक्की को मालूम करने के लिए वह परिणामों और सबूतों की माँग करती रहती है। इन सबूतों को लेकर वह अपने भूठे आदर्शों और भूठे मापों से शिक्षक और बालक की सफलता या असफलता का अँदाजा लगाती है। यहीं से परीक्षा-पद्धति का जन्म होता हैं।

परीक्षा-पद्धति एक लम्बे अर्से से पाश्चात्य शिक्षा के लिए बहुत खतरनाक साबित हो रही है। यह शिक्षक और बालक को असलियत के बजाय दिखावे पर अधिक ध्यान देने के लिए मजबूर कर शिक्षक और बालक को मक्कारी, ठगी और छल-कपट के जाल में फँसा देती है।

परीक्षा के कारण शिक्षा को इसकी सब श्रेणियों में समिति करना पड़ता है। ज्यों २ श्रेणी ऊँची होती जाती है त्यों २ शिक्षा सीमित होती जाती है। ऊँची श्रेणी के साथ काम भी ऊँचा होता जाता है और परीक्षा भी सख्त होती जाती है। ऐसी हालत में शिक्षक को, जिसकी सफलता या असफलता को दुनिया परीक्षा-परिणाम से आंकती है, यह मांग करने का हक है कि उसके काम की जाँच के लिए कार्यक्रम निश्चित और सीमित होना चाहिए।

बढ़ते हुए बालक की वास्तविक उन्नति, शक्ति और स्वाभाविक वृत्ति के विकास का कोई भी इतना ठीक-ठीक और स्पष्ट अँदाजा नहीं लगा सकता जैसा कि दुनिया चाहती है। इस लिए अब शिक्षक और बालक के मन में स्वभाविक वृत्तियों और शक्तियों के बजाय खुश्क विषयों को प्रथम स्थान मिलता है जिसकी वजह से शिक्षा में छिछलापन आ जाता है। सच्ची शिक्षा का स्थान ऊपरी शिक्षा ले लेती है, ट्रेनिंग का स्थान रटाई ले लेती है तथा आंतरिक विकास का स्थान बाहरी टीप टाप ले लेती है। मतलब यह है कि सब कुछ बालक की मानसिक सतह पर रख दिया जाता है क्योंकि अगर उसको अँदर तक ले जाया जाय तो शिक्षक का उस पर नियँत्रण न रह सकेगा। यही वजह है कि बालक के लिए खुद काम कर देने का शिक्षक का स्वभाव ही हो गया है। वह उस काम को जो बालक को करना चाहिये खुद कर देता है। शिक्षक को यह भय लगा रहता है कि अगर उसने बालक को स्वयँ काम करने की इजाजत दे दी तो न मालूम परीक्षा के समय क्या विचित्र और आशा के विरुद्ध फल निकले।

शिक्षक को अपने सब बालकों को अलग २ नहीं बल्कि एक समूह में एक ही किस्म की परीक्षा पास करने के लिए परीक्षा भवन में भेजना पड़ता है, जो सब के लिए अनिवार्य है। इस परीक्षा के परीक्षक ऐसे सज्जन होते हैं जो खुद बालकों में से एक को भी नहीं जानते। ऐसी दशा में अन्तिम नतीजा यह निकलता है कि शिक्षक के लिए बालक के व्यक्तित्व की उपेक्षा करना लाजमी हो जाता है।

जिन बुराइयों का ऊपर जिक्र किया गया है, वे सब बुराइयाँ दुनिया ने शिक्षक के मत्थे मँढ़ी हैं।

इन सब बुराइयों से बढ़कर एक और गम्भीर बुराई का भी शिक्षक को शिकार होना पड़ा है । वह बुराई है इनाम और सज़ा की, जिसके लिए उसने अपने आपको कभी धोके में नहीं रखा है । इनाम और सजा का उपयोग करते हुए वह गुप्त रूप से मानता है कि ऐसा करके वह बाल-स्वभाव के खिलाफ काम कर रहा है।

लेकिन इनाम और सज़ा से ही सदा काम नहीं चलता क्योंकि बालक की तथाकथित उन्नति में एक खास हद के बाद इनाम और सजा अनिवार्य रूप से फेल हो जाते हैं।

जो शिक्षक अपने विद्यार्थियों को अधिक काम करने के लिए उत्तेजित करना चाहता हो उसे तो बालक की किसी और वृत्ति को उकसाना होगा । विद्यार्थियों में आपस में मुकाबला कराना होगा । उनको कठोर परिश्रम करने के लिए कहना होगा ताकि वे एक दूसरे से आगे बढ़ जाएँ । इसके लिए शिक्षक को बालकों में प्रतिद्वन्द्वता वृत्ति को जगाना होगा । मैं मानता हूँ कि मुकाबले की वृत्ति एक प्राकृतिक वृत्ति है, और जो शिक्षक बालक की इस वृत्ति को जगाता है वह शिक्षक बुद्धिमान समझा जाता है । इसका कारण यह है कि जीवन-नाटक में प्रवेश करने पर बालक को भिन्न २ दिशाओं में प्रतिद्वन्दता से काम लेना पड़ेगा । लेकिन बालकों में इस वृत्ति का जगाना शिक्षक की बुद्धिमानी नहीं है क्योंकि प्रतिद्वद्वन्ता-वृत्ति बालक के निकृष्ट-स्वभाव—Lower nature—में होती है । ऐसी हालत में बालक की उच्चवृत्ति को प्रोत्साहित किया जा कर विकास का मौका दिया जाय, तो निकृष्ट-वृत्ति हमदरदी और भ्रातृभाव की वृत्ति के विकास से दब जाएगी । अगर जड़ से न गई तो कमसे कम इसका जहर तो कम हो ही जाएगा । ऐसा होते हुए मैंने कई बार देखा है ।

बालक के अन्दर यह भावना पैदा करना कि उस की कक्षा में पढ़ने वाले साथी उसके बन्धु नहीं विरोधी हैं; उसके साथ भारी अन्याय करना है । ऐसा करना निस्वार्थ सहानुभूति की विशुद्ध धारा को उसके निवास-स्थान पर ही रोककर, घमण्ड, खुदगर्जी, ईर्षा-द्वेष और लड़ाई-झगड़े के गन्दे चश्मे को खोल देना है । ऐसा करके शिक्षक बालक को उसकी सलाह लिये बिना, उसकी मर्जी के खिलाफ उसको अहंवादी—घमण्डी बना देता है।

जब ऐसा बालक दुनिया में प्रवेश करेगा तो उसकी क्या कीमत होगी और वह क्या करेगा ? या यों कहिए कि दकियानूसी तालीम पाया हुआ मनुष्य किस किस्म का होगा ? जो व्यक्ति सत्ताग्रही शिक्षा के सामने माथा टेक देता है, उसपर तीन तरह का असर पड़े बिना रह ही नहीं सकता । यह शिक्षा बालक को बहिर्मुख—externalist—बना देती है क्योंकि शुरू से ही यह उसे बाहरी और ऊपर से दिखाई देने वाली चीजों पर ही ध्यान देने के लिए मजबूर करती है—असलियत के बदले दिखावे की ओर ले जाती है । यह शिक्षा उसे उन लोगों की राय के मुताबिक ही अपनी कीमत आँकना सिखाती है जो वस्तुओं को बाहर से देखकर ही उनकी कीमत आंकते हैं । यह शिक्षा उसे एक बिलकुल नाकाफी परीक्षा को अन्तिम परीक्षा मानने के लिए मजबूर करती है । फलतः ऐसा व्यक्ति झूठे स्टेण्डर्ड और झूठे आदर्शों से जकड़ी हुई दुनिया में गुजर बसर करता हुआ स्वस्थ और व्यापक जीवन से कोसों दूर रहता है । दूसरे शब्दों में यह शिक्षा उसको दुनियावी जेल की चहार दीवारी से आगे बढ़ने नहीं देती और उसको अहंवादी बना देती है । (क्रमशः)

— अनु० बंसीधर

"स्वगत"

[श्री हरिभाऊ जी उपाध्याय]

गांधीजी अहिंसा के प्रयोग में अपने आपको अकेला अनुभव करने लगे हैं। यदि उनकी अहिंसा का विकास रुक गया होता तो वे ऐसा अनुभव नहीं करते।

वर्तमान कार्यसमिति में गाँधीजी के अनुयायी ही अधिक हैं। फिर भी युद्ध सम्बन्धी गांधीजी का प्रस्ताव उसने स्वीकार नहीं किया। क्या इन्हें गांधीजी का अन्ध-अनुयायी कहना चाहिए?

मेरी राय में वे गाँधीजी के सच्चे अनुयायी हैं। जितनी और जैसी उनकी शक्ति या श्रद्धा थी, वैसा ही और उतना ही आचरण करने की उन्होंने तैयारी दिखलाई।

गाँधीजी की सबसे बड़ी शिक्षा यही है कि अपने तईं सच्चे रहो।

* * *

मैं अकेला रह जाऊँ तो भी मेरे आचरण और मेरी सेवा का मालिक तो मैं ही हूं। मेरी कीमत उसी के अनुसार होगी, न कि मेरे पीछे लगी भीड़ के कारण।

* * *

यदि मेरी शुद्ध सेवा के बदौलत भीड़ मेरे साथ है तो वह मेरा और अपना बल बढ़ायेगी—यदि प्रलोभनों और दूसरे बाहरी थोथे कारणों से वह जमा हुई है तो दोनों के लिये एक आफत और फ़ज़ीहत साबित होगी।

* * *

जिसे अकेले भी अपने निर्दिष्ट पथ पर चलने की हिम्मत है वही सच्चा बहादुर है। अकेला अन्त तक निर्दिष्ट पथ पर वही जा सकता है जिसका पथ सत्पथ है और जिसे सत्पथ ही प्रिय है।

* * *

जिसका संकल्प खुद अपने पर ही असर नहीं करता वह दूसरों पर कैसे और कितना असर करेगा।

* * *

क्रोध में चाहे जितनी ही वीरता दिखाई दे, वह है भय और कायरता का ही वीर रूप।

* * *

चालाकी क्या है? बुद्धि का इन्द्रजाल। एक दिन बुद्धि का अँदाज गलत साबित होता है और चालाकी का दिवाला निकल जाता है।

गाँधीजी और स्वराज्य

ले० – श्री व्रजमोहन मिहिर
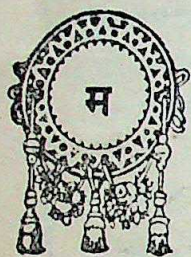
महात्मा गाँधी का जीवन तथा उनके जीवन की बातें लोगों के सामने इतनी स्पष्ट हैं कि उनके सम्बन्ध में अधिक लिखना मुझे तो इस लेख में अनावश्यक प्रतीत हो रहा है। हिंदुस्तान में क्या बल्कि सँसार में ऐसा कोई स्थान नहीं है कि जहांके लोग गांधीजी के नाम से परिचित न हों। संसार के बड़े २ सभी लेखकों ने गांधीजी के सम्बन्ध में कुछ न कुछ लिखा ही है। मेरा तो अनुमान है कि आज संसार का कोई ऐसा साहित्य न होगा जिसमें गांधीजी की एक-दो बातों का उल्लेख न किया गया हो। मुझे गांधीजी की दो-एक बातें बहुत पसन्द आई हैं उन्हीं का इस लेख में कुछ ज़िकर करूंगा।

गांधीजी के जीवन के कार्यक्रम पर विचार करने से यह बात भली प्रकार मालूम हो जाती है कि जो बात उन्हें, चाहे वह उनके निजी जीवन से सम्बन्ध रखती हो या समुदाय से, जब कभी अनुचित मालूम हुई तो उन्होंने उसपर अच्छी तरह से मनन किया और फिर उसी के अनुसार अमल किया। हर बात में वह उसकी गहराई तक इतना अधिक पहुँच जाते हैं कि बात को एक बार निश्चित कर लेने के पश्चात फिर उसके सन्बन्ध में उनके मनमें कोई सन्देह नहीं रह जाता। अपनी निश्चित की हुई बात पर अमल करने के लिए वे कोई कसर उठा नहीं रखते। कष्टों से वे तनिक नहीं डरते। गांधीजी यह भी कहा करते हैं कि सजगता तो कार्य के समय ही होती है। कार्य के समय जिसने अपनी बात को नहीं समझा वह फिर उसे कभी नहीं समझ सकता। जो मनुष्य काम करते समय जागृत रहते हैं उन्हीं का जीवन सफल होता है। जागृत रहने से मेरा मतलब है कार्य का समुचित ज्ञान हो जाना। इस ज्ञान के साथ विवेक के रहने पर मनुष्य अपनी कठिनाइयों को समझने में व्यर्थ चीज़ों को छोड़ने तथा जीवन को सब प्रकार से सफल बनाने में समर्थ होता है।

सन् १९३० के आंदोलन में जिन-जिन बातों को गांधीजी ने भारतवर्ष की स्वतन्त्रता के लिए जनता के सामने रखा था उनमें विदेशी चीजों का बहिष्कार मुख्य था। अपनी हरएक आवश्यकता के लिए दूसरों पर निर्भर

…ा इससे बड़ी और कौनसी परतन्त्रता—…मी हो सकती है ? जिस जाति या राष्ट्र …पने पाँव पर खड़ा होना नहीं सीखा है, …भला स्वराज्य क्या लेगा ? वही देश …ाद हुये हैं जहां के लोग स्वावलम्बी थे, …नी आन के लिये मर मिटने वाले थे । …देश में छोटे से लेकर बड़े तक में स्वतन्त्रता …करने की लगन नहीं होती वह देश कभी …ज़ाद नहीं हो सकता । आज़ादी लेने का …नब है प्राणों को हथेली पर रखना, जान …होम देना । लेकिन यहां हमसे तो अपने …छोटे आराम तक नहीं छोड़े जाते । जब …हमारे अन्दर अपने आराम की चाह है …तक देश की स्वतन्त्रता कोसों दूर है । …थोड़े से मनुष्यों को छोड़ कर अभी तो …ों के कानों में स्वतन्त्रता की आवाज़ तक …ीं पहुँची है ।

…मुझे तो यहां के बड़े बड़े लीडरों से भी …हुत असन्तोष है । उनमें आज भी बहुत कुछ …स्वभाव, रागद्वेष और दूसरों के प्रति घृणा …भाव है । उनका भेस तो खादी का ज़रूर …ता है, लेकिन वह जीवन में बहुत सी …देशी चीज़ों का प्रयोग करते हैं । अपनी …खों देखी बातों को मैं लिख रहा हूं, सन …९३० में जिस समय गान्धी जी ने विदेशी …राब के बहिष्कार के लिये कहा था मैं जानता …कितने उच्च कोटि के नेता विदेशी शराब …ा इस्तेमाल करते थे और आज तक भी कर रहे हैं । किसी किसी के लिये तो यह कहा गया था कि इसके बिना उनका जीवन खतरे में पड़ जायगा । अतः उनके लिये उसका व्यवहार उचित समझा गया । मेरी दृष्टि में तो अभी यहां के लीडरों में भी देश की आज़ादी के लिये सच्ची लगन नहीं है ।

स्वतन्त्रता प्राप्त करने के मार्ग में दूसरी बहुत बड़ी बाधक बात यह है कि यहाँ की जनता बहुत अनपढ़ है । बड़े बड़े लीडरों को देख कर उनके प्रभुत्व में आकर चाहे वह आज़ादी की लड़ाई में शामिल हो जाय, लेकिन अपनी ओर से बात को गम्भीरता पूर्वक सोचने की, मोर्चा लेने की उसमें शक्ति नहीं है । देश की स्वतन्त्रता तो उसी समय सम्भव हो सकती है जब कि यहाँ का प्रत्येक व्यक्ति खुद आज़ादी की कीमत को समझ सके । क्या शहरी और क्या देहाती, सब की दशा अभी तो बहुत दयनीय है । पं० जवाहर लाल जब किसी शहर या ग्राम की सभा में बोलने के लिये जाते हैं तो उन्हें देख कर लोग चकित हो जाते हैं । वे यही कहने लगते हैं "भाई यह तो वह व्यक्ति हैं जिन्हें मखमल पर पैर रखने में भी कष्ट होता था । लेकिन वे आज हम लोगों के बीच में हैं" । एक दफा एक प्रतिष्ठित महिला किसी ग्राम में गईं । ग्राम निवासियों ने उनका बहुत अच्छा स्वागत किया । भोजन में उनके लिए कुछ अच्छा गुड़ रखा । गुड़ को देखकर वे बहुत

प्रसन्न हुईं और बड़े स्वाद से उसे खाया। देहातियों पर उनके व्यवहार का बहुत अच्छा असर पड़ा। सबों ने उनकी बहुत प्रशँसा की। मन ही मन वे भी बहुत खुश हुईं और यह सोचा कि उन्होंने कोई आश्चर्य-जनक बात कर डाली है।

इन सब बातों को देख सुन कर मुझे चित्त में खेद होता है, और मैं यही सोचता हूँ कि यहां की जनता कितनी भोली-भाली और अज्ञान है कि जरासी बात में बहक जाती है। यह वही जनता है जिसे दोनों समय भर पेट भोजन और तन ढकने को कपड़ा तक नहीं मिलता। किंतु इसे अपने दुःख का इतना ख्याल नहीं है जितना कि दूसरों की इस प्रकार की छोटी-छोटी बातों का। मैं कहता हूं कि जब तक यहां के रहने वाले अपने को इतना गिरा हुआ समझेंगे तब तक स्वराज्य की प्राप्ति स्वप्न है। हम लोगों में इतनी बुद्धि तो आ ही जानी चाहिए कि हम भी उनकी तरह अपने को एक ऐसा प्राणी समझें जिसे जीवन को समझने और श्रेष्ठ बनाने के लिए उनके हीं जैसी सुविधाओं की आवश्यकता है। दूसरे के थोड़े से त्याग का भी हमारे ऊपर बहुत बड़ा असर पड़ता है। इसका एक कारण यह भी है कि हमारे अँदर अपने माफिक कुछ आरामों को त्याग करने की कोई भी शक्ति नहीं है।

यहाँ के मनुष्यों को देख कर तो ऐसा मालूम होता है कि वे इतने ज्यादा गिर चुके हैं कि उनके अन्दर अपने कष्टों को समझने की शक्ति ही नहीं रह गई है, उनके अँदर इतना भी साहस नहीं रह गया है कि वे अपनी ओर से कोई आँदोलन कर सकें और देश को अपने दुःख की गाथा से गुंजार कर दें। जब तक जनता में यह जाग्रति नहीं आती, हर एक मौहल्ले और गांव में कार्यकर्त्ता नहीं उत्पन्न हो जाते, लोगों के अँदर से लीडरी की चाह नहीं मिट जाती और न मिट जाता है भेद-भाव, तब तक स्वतन्त्रता प्राप्त करना स्वप्न मात्र है।

गाँधी जी का स्वराज्य-प्राप्ति के लिए आंदोलन विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार पर ही निर्भर है। जिस देश में ज़रूरत की सब चीज़ें नहीं मिलतीं वह देश सदा दूसरों का गुलाम ही रहता है। अगर हम बहुत सी चीज़ों को अभी अपने यहाँ तैयार नहीं कर सकते तो हमें उनका इस्तेमाल ही छोड़ देना चाहिए। विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार में गांधी जी ने विदेशी वस्त्र के बहिष्कार को मुख्य स्थान दिया है। स्वराज्य के मसले पर जब कोई बात होती है तो वे यही कहते हैं कि जब तक देश में खादी का अच्छी तरह प्रचार नहीं होगा, तब तक स्वराज्य का मिलना बहुत कठिन है। वह तो इस पर यहाँ तक जोर देते हैं कि केवल खादी ही भारत

आज़ाद कर सकती है—खादी स्वराज्य की कुञ्जी है ।

आज कल की सभ्यता ने सँसार में बहुत बड़ा कुहराम मचा रखा है । जब तक इस सभ्यता नष्ट नहीं हो जाती, तब तक लोगों का जीवन सदा अशान्त रहेगा । इस समय यह जो युद्ध आरम्भ हुआ है, वह इस विनाशकारी सभ्यता का ही परिणाम है । इस युग ने इतनी अधिक मशीनों का आविष्कार कर दिया है कि जिससे सारे संसार में बेकारी फैल गई है । मशीन के विनाश में ही सँसार का कल्याण है । मशीन ने मनुष्यों को गरीब और अमीर इन दो हिस्सों में बांट दिया है । सँसार के हर हिस्से में कुछ थोड़े से पूञ्जीपति हो गए हैं जो मनचाहा वेतन देकर अपने अभ्युदय के लिये गरीबों से काम ले रहे हैं । इन्हीं के कारण संसार में इतनी अधिक गरीबी और दुःख है ।

मशीन के कारण इस बढ़ते हुए कष्ट और लोगों की गरीबी को देखकर गांधी जी के हृदय की तन्त्रियाँ बज उठती हैं । केवल लगभग ६० करोड़ का कपड़ा पहले विदेश से भारतवर्ष में आया करता था । सम्भव है आज कल इसमें कुछ कमी हो गई हो । इतना रुपया केवल एक चीज—वस्त्र के लिए भारत ऐसे पराधीन देश को अपने यहाँ से बाहर भेज देना एक बहुत ही बड़ी बात है । यदि यही रुपया देश का देश में रह जाय तो यह लोगों की गरीबी दूर करने में बहुत कुछ सहायता कर सकता है । इसी लिए गाँधी जी खादी के इस्तैमाल पर बहुत ज़ोर देते हैं । वे तो बार-बार यही कहते हैं कि अगर भारतवर्ष स्वतँत्र होना चाहता है तो उसे खादी को अपनाना चाहिए । केवल खादी ही स्वराज्य दिला सकती है ।

युग का महर्षि

ले०— राम 'हिंदुस्तानी'

ऋषियों के सम्बन्ध में यह मान्यता है कि उनकी दृष्टि में ऋत—सत्य-ग्रहण की शक्ति होती है। वे अनृत-असत्य को ऋत से पृथक् कर सकते हैं। किन्तु साधारण व्यक्ति, जो ऋषि नहीं हैं ऐसा नहीं कर सकते। योगी को साधना के मार्ग में एक पथ-दर्शिनी बुद्धि मिलती है जिसे ऋत-प्रज्ञा या सत्य-प्रज्ञा कहते हैं। यह बुद्धि समाधिस्थ साधक की होती है। योग में इस सम्बन्ध में कहा गया है—'ऋतम्भरा तत्र प्रज्ञा।' अर्थात् समाधि में बुद्धि सत्यग्राही होती है। जिस साधक को यह बुद्धि प्राप्त हो गई वही ऋषि होता है।

वैदिक साहित्य में एक जगह यह भी कहा गया है कि ऋषि मँत्र-द्रष्टा होता है। इसका आशय भी यही है कि मँत्रदर्शन का कठिन कार्य करने की सामर्थ्य युक्त सूक्ष्म-बुद्धि का व्यक्ति ऋषि होता है। इन ऋषियों में जो ऋषि अधिक सूक्ष्म बुद्धि का होता है उसे महर्षि कह सकते हैं।

म० गांधी को युग का महर्षि कहना धार्मिक दृष्टि से चाहे सही न हो; किंतु राजनैतिक और नैतिक दृष्टि से वह बिलकुल सही है। म० गांधी की दृष्टि की सूक्ष्मता के कायल देश की राजनीति के प्रायः सभी खिलाड़ी हैं। देश की राजनीति में नैतिकता को दाखिल करना यह उन्हीं का काम है। उन्हीं के प्रयत्न से आज सत्य और अहिंसा देश की राजनीति की रीढ़ हो रहे हैं। दुनिया के बाहरी देशों में भी वे दुनिया के सबसे बड़े राजनीतिज्ञ नहीं तो एक बहुत बड़े राजनैतिक जादूगर जरूर माने जाते हैं। उन देशों में उनके राजनैतिक जादू की चर्चा बहुत ज्यादा है। वे अब तक अपने सत्याग्रही प्रयोगों से दुनिया को कई बार विस्मित कर चुके हैं। इसके अलावा दुनिया में वे एक बहुत ऊँची कोटि के नीतिवादी माने जाते हैं।

इन पंक्तियों में म० गांधी के सम्बन्ध की उक्त उक्ति को स्पष्ट करना है। सम्भव है पाठकों को इस से म० गाँधी को समझने में मदद मिल सके। मैं स्वयं धर्मवादी नहीं हूं, बुद्धिवादी हूं। अतः उनका धार्मिक दृष्टिकोण मुझे स्वीकार नहीं। इस स्थिति में मैं उनके इस पहलू की चर्चा छोड़े देता हूँ। इस सम्बन्ध में मेरी धारणा यह है कि म० गांधी की बुद्धि ने सँस्कारवश धर्मवाद को अपनाया है, किंतु इससे उनके ऋषित्व में अँतर नहीं आता। ऋषि अपनी ऋतम्भरा बुद्धि से सत्य, असत्य का विभाजन करता है। इसमें उससे भूल हो सकती है। लेकिन ऐसी भूलें साधारण मनुष्यों की अपेक्षा उन से बहुत कम मात्रा में होती हैं और उनके कारण वे असत्य के दोषी नहीं होते क्योंकि असत्य का ग्रहण वे अनजाने करते हैं।

इस सम्बन्ध में कुछ उदाहरण ध्यान देने योग्य हैं। योग-दर्शन साधना का अनुभव है जो उसके सूत्रकार महर्षि पतञ्जलि को हुआ था दूसरे ऋषियों को हुआ और जिसे पतञ्जलि ने सूत्रबद्ध किया। कुछ भी हो, उसमें साधना—अनुभव बहुत ऊँचा है। इसके एक सूत्र में सन्तोष के अखण्ड पालन का, जो योग के पांच नियमों में से एक नियम है, फल 'सर्वरत्नोपस्थानम' बताया है। इसका आशय यदि

वतान कर अर्थ न किया जाय तो यह है कि साधक सन्तोष नियम के अखण्ड पालन से सब रत्न हो जाते हैं। एक समय में दुनिया में कई योगी सकते हैं, जिन्होंने योग का अखँड पालन कर या है। इस स्थिति में यह साफ है कि यह सूत्र सत्य हो जायगा। उस अवस्था में रत्न उनमें बँट एँगे और सब एक को प्राप्त न हो सकेंगे। हमें नना चाहिये कि ऋषि की प्रज्ञा ने यह असत्य ण कर लिया।

लोग स्वामी दयानन्द सरस्वती को योगी मानते उन्हें ऋत-प्रज्ञा मिली थी ऐसी आम मान्यता किंतु फिर भी लोग उनकी बुद्धि के कई र्णयों को नहीं मानते। उनकी कसौटी पर हवन, वा सूत्र, सँध्या-प्रार्थना, विविध सँस्कार विधियां दि उनकी कई स्थापनाएँ असत्य हैं। (यहां सत्य का प्रयोग व्यापक अर्थ में किया गया है) फिर स्वामी दयानन्द ऋषि हैं। उन्हें महर्षि कहने में कोई हिचक नहीं होती।

म० गाँधी इसी दृष्टि से ऋषि हैं। बहु-सँख्यक ग उनकी बुद्धि के राजनैतिक और नैतिक निर्णयों मानते हैं। उन्होंने अपनी ऋत-प्रज्ञा से देश का हित किया है। यह मानना चाहिये कि उनको ऋत-प्रज्ञा एकाँत में की गई साधना से नहीं, लौकिक-व्यवहार में किये गये अहिंसा और सत्य के व्यवहार से मिली है।

राजनीति में म० गान्धी

दुनिया के सभी देशों में राजनीति में कूटनीति शामिल है। बिना कूटनीति के राजनीति पँगु है, ऐसी आम धारणा है। हिन्दुस्तान में पहली बार म० गांधी ने यह आवाज़ उठाई कि राजनीति की साधना बिना कूटनीति का आश्रय लिये भी हो सकती है। सत्य और अहिंसा का पालन करते हुए भी मनुष्य राजनीतिज्ञ बन सकता है। उन्होंने अपने क्रियात्मक जीवन से इसे सत्य सिद्ध कर दिया।

इसका फल यह हुआ है कि दुनिया के अन्य देशों की राजनीति की धाराओं के विपरीत होने पर भी इस देश की राजनीति में अहिंसा और सत्य दाखिल हो गये। म० गांधी ने देश को कहा—"अँग्रेजों से हमारी दुश्मनी नहीं है, दुश्मनी उस शासन से है जिसने हमारा पतन किया है। हमारी आजादी का हनन करने वाली सरकार कूटनीति और हिंसा का आश्रय लेती है यह ठीक है; लेकिन हम उसका प्रतिकार सत्य और अहिंसा के साधनों से करेंगे।" उन्होंने यह भी कहा कि ये साधन अमोघ हैं। यदि ठीक तरह से इमानदारी से प्रयुक्त किये जाएँगे तो कभी निष्फल न जायंगे।

देश ने म० गांधी की सत्य-वाणी को सुना और अपनाया। निस्सन्देह उससे देश को आश्चर्यजनक लाभ हुआ है। देश में आज जो निर्भीकता, स्वाधीनता-प्रेम और मानवी सदगुणों का कुछ उभार दिखाई देता है वह उनकी सत्य-वाणी पर अमल करने से हुआ है। इसके विपरीत यदि देश में सन्तोषजनक प्रगति नहीं हुई तो इसका कारण यह है कि जनता के एक बहुत बड़े भाग तक म० गांधी की यह वाणी नहीं पहुँची। जिन लोगों ने यह कहा कि हम म० गाँधी के अनुयायी हैं, उन्होंने भी आचरण में बड़ी-बड़ी कमजोरियां दिखाई। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि देश की जनता के जागृत भाग ने भी सत्य और अहिंसा का पर्याप्त मात्रा में पालन नहीं किया। इस बात को म० गांधी ने स्वयँ कई बार बड़े दुःख के साथ कहा है। अन्य विचारशील लोग ऐसा ही अनुभव करते हैं। यह कहना अन्युक्तिपूर्ण नहीं कि हमने दूषित पात्रों में पीयूष (अमृत) को दुहा और यदि उसे पीकर यथेष्ट लाभ नहीं हुआ तो दोष दिया पीयूष को— म० गांधी की नीति को "सत्य और अहिंसा ढोंग है। भला उनसे कभी किसी ने स्वराज्य लिया है।" यह कहना आज कितने ही कांग्रेसी प्रगतिशीलता का लक्षण समझते हैं; जिन लोगों में राजनीति के अ भ्य

हुई तक अभी नहीं सीखे वे भी म० गांधी की नीति को असफल कहने में नहीं चूकते। यह अत्यन्त खेदजनक स्थिति है।

म० गांधी ने कहा—'यदि जनता ऐसा करे तो इतने दिनमें स्वराज्य मिल जायगा।' लेकिन हम बड़े आरामतलब लोग हैं। हम श्रम की शर्त को स्वीकार करना नहीं चाहते; किन्तु उसका फल खा लेना पसन्द करते हैं। हमने उनके कथन का 'जनता ऐसा करे तो' यह हिस्सा छोड़ दिया, उसके अनुसार आचरण नहीं किया और फिर भी शिकायत करने लगे कि म० गांधी के कहने के मुताबिक इतनी अवधिके भीतर स्वराज्य नहीं मिला। इसमें म० गांधी का दोष कहां तक है—इसका अन्दाज किया जा सकता है।

म० गांधी ने हिंदू-मुस्लिम एकता का कार्यक्रम रखा। देश ने उस पर अमल सिर-फुटौअल के साथ किया। आज भी जगह-जगह हिन्दू और मुसलमान एक दूसरे के खून के प्यासे हो जाते हैं। खादी के रूप में म० गांधी को मँत्र का दर्शन हुआ; किंतु हमने उसपर पर्याप्त मात्रामें अमल नहीं किया। उन्होंने हमें अपनी अस्थियों से ब्रिटिश शासन रूपी वृत्तासुर को जिसने हम पर परदा डाल रखा है, मारने का उपदेश किया; लेकिन हमारे मन में अपनी अस्थियों का शस्त्र चलाने के बजाय अपने हाथों से अँग्रेजों का खून करने का भाव अब भी आ जाता है। हम झूठ का खुला प्रयोग करते हैं और कहते यह हैं कि हम सत्याग्रही हैं। हमारे युग के इस भारतीय महर्षि को कितने मँत्रों का प्रत्यक्ष-दर्शन हुआ है; लेकिन हमने उनपर आचरण ही नहीं किया।

यदि भारतीय जनता म० गांधी के बताए मार्ग पर चलकर स्वतँत्र होना चाहती है तो वह उनकी नीति पर सच्चे हृदय से चले। कांग्रेसजन खास तौर से अपने जीवन को निर्मल बनाएँ, उसे सत्य और अहिंसा से शुद्ध करें। यदि वे ऐसा करेंगे तो उनके विरुद्ध नौकरशाही के मोर्चे में जो ईंटें लगी हैं, जिनमें मस्तिष्क नहीं है, पर हृदय जरूर थोड़ा बहुत निकलेगा, वे भी प्रभावित होंगी। कांग्रेस जन का जीवन, यदि वह सच्चा गांधीवादी है तो, शुद्ध और सात्विक होना चाहिए, कष्ट सहिष्णु होना चाहिए; सताए जाने पर भी प्रेममय होना चाहिए और 'देश को उन्नत पथ पर ले जाना है' यह आदर्श उसके सामने पथदर्शिनी ज्योति की भाँति सदा ज्वलन्त रहना चाहिए। म० गांधी ऐसे ही सत्याग्रही चाहते हैं। आज भी उनके अन्तर की पुकार यह है कि क्या कोई ऐसे सैनिक हैं?' 'हाँ' की आवाजें धुँधली और बहुत कम उठती हैं। नाँ की आवाजों का शोर सुनाई ही दे रहा है। इस स्थिति से म० गाँधी को बड़ा असन्तोष है। वे कहते हैं "मैं अब देश के मस्तिष्क का प्रतिनिधित्व नहीं करता। अहिंसामय सत्याग्रह के सिवाय और उपाय मैं कोई जानता नहीं; किन्तु देश का मस्तिष्क अब बदल गया है।" भला एक महर्षि को इससे ज्यादा दुःख और क्या हो सकता है? अच्छा हो देश के कांग्रेस जनों में फिर इतनी सद्बुद्धि आए और वे म० गांधी के आदर्शों के अनुकूल अपना जीवन बनाएँ।

देश में स्थिति से फ़ायदा उठाकर पदों पर कब्जा करने के इच्छुक और धन कमाने के लालायित व्यक्तियों की कमी नहीं है। अधिकाँश सरकारी कर्मचारी रिश्वतखोर हैं। असत्य, बेईमानी, लूट और अनैतिकता का बाजार गर्म है। गाँधीवादी सैनिकों का कर्त्तव्य था कि वे मैले को इस देश की भूमि से साफ़ करने के यज्ञ में अपनी आहुतियाँ दे देते, लेकिन इस वृत्ति में अब कमी आ गई है, खास तौर से मन्त्रित्व ग्रहण करने के बाद से। जो सेवक सफ़ाई का पुनीत कार्य बड़ी विनय के साथ करते थे, उनमें से कितने ही गर्व के साथ स्वार्थ की कीचड़ से सुख अनुभव कर रहे हैं। यह दुःखद स्थिति है।

म० गाँधी ने अपनी ऋतम्भरा-प्रज्ञा की टार्च

देश को लक्ष्य दिखा दिया है। वह लक्ष्य क्या है ... को स्वतन्त्र, भला और सुखी बनाना. उन्होंने यह कह दिया है कि यह पुनीत कार्य नैतिक साधनों ही पूरा हो सकता है अन्यथा नहीं। अब इस बात आवश्यकता रह गई है कि जनता इन नैतिक ... नों पर अमल करके इस लक्ष्य को प्राप्त करे।

म० गाँधी से सैद्धाँतिक मतभेद कई जगह हो ... ता है। पर इसका यह अर्थ नहीं होना चाहिए कोई उनकी बताई हुई उपयोगी बातों से भी मुँह ... ले। यदि आप साम्यवादी हैं तौभी इस पुनीत ... में आपका हिस्सा हो सकता है। आप कोई भी ... हों, यदि आप चाहते हैं कि गुमराह न हों बिना पक्षपात के सत्य जहां से भी मिले वहां उसका ग्रहण करें, और उस पर अमल करें। इस ... से देखने पर गाँधीवाद में आचरण करने योग्य ... कुछ मिल जायगा।

म० गाँधी का हृदय मुझे महात्मा ईसा का हृदय लगा। मैंने उसे हँसी में भी गरीबों के लिए रोते देखा है। मेरी धारणा है कि इस देश के इतिहास में म० गाँधी एक महर्षि के रूपमें अमर रहेंगे। अगली पीढ़ियाँ उनकी कृतज्ञ रहेंगी। उन्होंने देश को बहुत उठाया है। और यदि उनकी शिक्षाओं पर आचरण किया जाय तो देश का उद्धार आसानी से हो जाए। वस्तुत: म० गाँधी का जीवन अनुकरणीय है। वह सतत सेवा और साधना का जीवन है। सेवा मानव की और साधना नैतिकता की। क्या कोई कह सकता है कि मनुष्य के जीवन का इससे उच्च और कोई उपयोग हो सकता है ?

म० गाँधी को महर्षि कहना इसीलिए उपयुक्त जँचता है। आइए ! हम इस महर्षि की अहिंसामयी सत्यवाणी को निरन्तर सुनें ताकि हमें निरन्तर सत्प्रेरणा मिलती रहे, हम निरन्तर सत्यपथ पर आगे पग धरते रहें और देश के उत्थान में अपना हिस्सा बढ़ाएँ।

गाँधी गाँधी है !

ले०—आचार्य अभयदेव सन्यासी, गुरुकुल कांगड़ी

यह फैशन चाहे बहुत दिनों न चले, पर ... से लोगों में ऐसा करने का आजकल एक ... नसा हो गया है "हम तो हिटलर को मानते ... तक भारतवर्ष में कोई हिटलर नहीं पैदा ... तब तक इस देश का उद्धार नहीं हो ... कता।" हमारे एक मित्र तो यहाँ तक कहते कि वह हिटलर वीर सावरकरजी के रूप हमारे देश में पैदा भी हो चुके हैं यद्यपि ... ने अभी तक उन्हें पहचाना नहीं है।

जर्मनी के हर हिटलर वस्तुतः एक अद्भुत ... क्ति हैं। जब महा युद्ध ने पूरी तरह नीचा दिखाए गए जर्मनी को केवल दस पन्द्रह वर्ष में ही फिर एक महाशक्ति बना देना उनका ही काम था। यूरोप में पिछले दिनों उन्होंने जो जर्मनी के लिये एक के बाद दूसरी सफलता प्राप्त करके दिखाई है उसे देख कर लोगों के मुंह से वाह निकलना स्वाभाविक ही था। पर ऐसा हिटलर जर्मनी में ही पैदा हो सकता था वह भी उस जर्मनी में जिसको वारसई की सन्धि द्वारा अन्य राष्ट्रों ने मिल कर दबा दिया था। मतलब यह कि पश्चिमी देशों की स्वार्थमयी राजनैतिक चालों की जो प्रतिक्रिया

जर्मनी पर हुई उसकी ही स्वाभाविक उपज जर्मनी का हिटलर है। इसके सिवाय हिटलर और कुछ नहीं।

तो भारतवर्ष हिटलर के पैदा होने की जगह नहीं, भारत में गाँधी ही उत्पन्न हो सकता है। ऐसा गाँधी जो यूरोप जायगा तो अपनी खद्दर की लगोंटी में ही, और जिसे जरा सा शासनाधिकार बरतने का अवसर मिलेगा तो वह बड़ा भारी आर्थिक घाटा सह कर भी सबसे पहले शराब को देश निकाला देगा, और जिसे अपने भारत देश की स्वाधीनता भी इस लिए चाहिए चूँकि वह उसके असली ध्येय—परमेश्वर के पाने के रास्ते में पड़ती है। यदि ऐसे गाँधी को पाकर भी भारत अपनी स्वाधीनता न पा सका और जगत में उसका जो कर्त्तव्य-भाग है उसे पूरा न कर सका तो अधिक से अधिक यही कल्पना की जा सकती है कि इस दुर्बल भारत को शायद इससे भी बड़े किसी गांधी की जरूरत है। पर जरूरत गाँधी की ही है, गांधी की या सवाई गांधी की, न कि हिटलर या सुपर-हिटलर की।

यह ठीक है कि इस देश में आज यदि किसी एक आदमी की सबसे अधिक चलती है तो वह गांधी है। इसलिए कइयों को उसे भारत का हिटलर कहने का भी प्रलोभन हो आता है। पर कहाँ हिटलर जो इस नई सदी के नवीनतम आविष्कारों से सुसज्जित सैन्य का स्वामी, जिसे चाहे उसे फांसी पर चढ़ा देने की शक्ति रखने वाला जर्मनी का डिक्टेटर—और कहां गांधी जो किसी की तरफ उँगली तक न उठाने वाला और अपना एक मत (वोट) तक देने की शक्ति न रखने वाला भारत का सूत्रधार! बस, गांधी गांधी ही है, उसे किसी अन्य से उपमा देना व्यर्थ है।

जैसे वीर सावरकर (क्योंकि सावरकर जी का भी देश में एक उचित स्थान है, कट्टर मुसलमानों की जो प्रतिक्रिया वैसे ही हिंदू सम्प्रदाय पर स्वभावतः होती है उसके वे मूर्त्त प्रतिनिधि हैं) उस हिंदू सम्प्रदाय के हैं जैसे हिटलर जर्मनी का है वैसे गांधी भारत का है यह कहना भी कठिन है। गांधी बेशक भारत में पैदा हुआ है पर वह सारे जगत के लिए पैदा हुआ दीखता है। सारे जगतके लिए उसके पास एक सन्देश है। यह ठीक है कि वह अपने उस सन्देश को भारत के द्वारा ही जगत को देना चाहता है। एक स्वाभाविक महापुरुष की तरह वह अपना सन्देश जगत को अपने देश के द्वारा ही दे सकता है, इस लिए बेशक यह कहा जा सकता है कि गांधी भारत का है। पर क्या सचमुच भारत इस अवस्था में है कि वह यह अभिमान कर सके कि 'गांधी भारत का है'?

भारत का वह एक अनूठा आदमी है जो आज जबकि इस पृथ्वीतल पर राष्ट्र कहलाने वाले सब के सब राष्ट्र असँख्यों

पया खर्च करके एक से एक बढ़िया घातक अस्त्रों को अधिक से अधिक तैयार करने की पैशाची होड़ में दौड़ रहे हैं तब तक वह 'अहिंसा-अहिंसा' कहने की हिम्मत कर रहा है और जो इस मशीन के ज़माने में अपना चर्खा लेकर खड़ा हुआ है, वह भारत को तो अपना यह सन्देश सुनाता-सुनाता अब बूढ़ा हो गया है। आज वह अपने ७१ वें वर्ष में प्रवेश कर रहा है। पर दुख है कि अभीतक भारत स्वाधीन भी नहीं हुआ है और भारत के पैंतीस करोड़ गुलामों में उस की (गांधी की) भी गणना है। अबतो यह अवस्था सही नहीं जाती। जी चाहता है कि उसका अहिंसा और खादी का सन्देश अब तो भारत की झौंपड़ी-झौंपड़ी में इतनी अच्छी तरह पहुँच जाय कि भारतवर्ष इन थोड़े दिनों में, उसके जीते जी ही, स्वाधीन हो कर दुनिया को यह दिखला दे कि "हां, सचमुच भारतवर्ष भारतवर्ष ही है और उसका गांधी गांधी ही है!"

महिमामयी गांधी !

रचयिता—श्री रामकुमार "स्नातक" हिन्दी प्रभाकर

(१)

आत्मीयता के युग के हे दिनमणि ! प्यारे !
उत्सुकतायुत तुम्हें देखते नेत्र हमारे ॥
क्या आकर्षण जाने तेरे कृश तन में है ?
दर्शन की उत्कण्ठा प्रतिजन के मन में है ॥

(२)

दुख सहकर भी, दुख को वारण करने वाले ।
क्रान्तिमयी हो किंतु शान्ति के धरने वाले ॥
प्रेम, अहिंसा द्वारा अरिमद हरने वाले ।
तुम्हीं दया के स्रोत दीन हित झरने वाले ॥

(३)

प्रेम-दूत हो असहयोग फिर करते कैसे ?
खुद सहते हो कष्ट, शत्रु फिर मरते कैसे ?
लघु-सेवक बन उन्नति-पथ पर चढ़ते कैसे ?
गृह-त्यागी, सबके दिल में घर करते कैसे ?

(४)

नैतिक, धार्मिक, सामाजिक जो क्रांति हुई है।
प्रतिबिम्बित गांधी की उस में मूर्ति हुई है॥
है सेगांव* बना भारत का आज सहारा।
गांधीमय यह भारतवर्ष बना है सारा॥

(५)

एक मुस्कराहट में तेरी कितना बल है।
जिसे देख कर भारत का खिल जाता दिल है॥
आशीर्वाद तुम्हारा विष को दूध बनादे।
खूँखारों को भी सच्चा अवधूत बनादे॥

(६)

सर्वनाश जो आज अनात्मवाद कर रहा।
विश्व-शान्ति का हाय! निरन्तर पात कर रहा॥
अन्धकार से भरा हुआ पृथ्वी का आंगन।
देख तुम्हारा मुख शशि सा होता प्रमुदित मन॥

(७)

हिटलरशाही भले चमकले चार दिनों को।
सत्यबोध होगा पर आखिर विश्व-जनों को॥
आत्मवाद का चमकेगा फिर तेज सितारा।
गांधीवादी भारत होगा नेता प्यारा॥

(८)

बार बार वन्दन होवे, हे! शान्ति-पुजारी।
बार बार वन्दन हो, हे! नवयुग-अवतारी॥
बार बार वन्दन हो, हे! भारत-बन-माली।
स्वतन्त्रता की प्रसरादो सुन्दर हरियाली॥

* वर्धा के पास एक छोटासा गाँव जहाँ आजकल गांधीजी रहते हैं।

चित्र-परिवर्तन

ले०—प्रिंसिपिल श्री अमरनाथ गुप्त, एम० ए०, एल० टी०

—१. रमेशमोहन — एक उत्साही नवयुवक ।
२. लीला — रमेश की बहन व स्वयंसेविका ।

[एक साधारण कमरा, एक ओर मेज और दो
ी, दीवार पर सब नेताओं के चित्र, जिनमें
त्मा गांधी के चित्र को प्रमुख स्थान प्राप्त है ।
ा गाँधीजी के चित्र को उतारता है । मेज पर
ाषबाबू का एक चित्र रखा है, चित्र उसी आकार
है, जिस आकार का महात्मा गाँधी का चित्र है ।
श फ्रेम से महात्मा जी का चित्र निकाल रहा
। इस फ्रेम में वह अब सुभाषबोस का चित्र
ाना चाहता है ।]

(लीला का प्रवेश)

ला — तो यह करोहीगे भइया ! लड़ने के लिए सिपाही बनोहीगे ?

मेश — अवश्य ! अब तो निश्चय कर ही लिया है ।

लीला — अम्मा तो शांति की मूर्ति हैं, वे तो रो-रोकर मर जाएँगी ।

मेश — अगर यह चिंता रहे तो कोई सैनिक बने कैसे ?

लीला — अगर कोई सैनिक न हो तो जीवन कैसा सुखमय हो !

मेश — सुखमय ? शत्रु के सैनिक यहां आ जाएं तो मालूम पड़े ।

लीला — वहीं कोई सैनिक क्यों बने ? क्या उनके देश में मातायें नहीं हैं ?

रमेश — अरी पगली ! तुझे मालूम तो है ही नहीं, माताओं की परवाह ही कौन करता है ?

लीला — तो क्या फौजी अफ़सरों ही की परवाह होती है ?

रमेश — होती कहाँ है, वे तो ज़बरदस्ती परवाह कराते हैं ।

लीला — वह कैसे ?

रमेश — जूते के ज़ोर से ।

लीला — जूते से मनुष्य डर सकता है मगर परवाह नहीं कर सकता । परवाह वहीं होती है, जहां प्रेम होता है ।

रमेश — जहां प्रेम होता है वहां लापरवाही होती है । बिना डर के प्रेम भी नहीं हो सकता । तुलसीदासजी ने भी कहा है —'बिन भय होत न प्रीत' ।

लीला — जहां भय होता है वहां घृणा होती है, प्रेम नहीं हो सकता । जैसा कि किसी कवि ने कहा है:—

"भय उपजावे घृणा, प्रेम अस्तित्व मिटावे" ।

रमेश—सुभाष के एक इशारे पर लाखों आदमी सर कटाने को तैयार हैं।

लीला—गांधी के एक इशारे पर लाखों आदमी कड़े से कड़ा कष्ट सहने को तैयार हैं। फिर सर कटाना तो मनुष्यत्व का चिह्न नहीं है।

रमेश—जी ! चुपचाप जूते खाना मनुष्यत्व का चिह्न है ! दीदी, तुम्हें अक्ल कब आएगी ?

लीला—चुपचाप कष्ट सहना और उफ न करना बड़ी वीरता का काम है ! समझे !! भइया, तुम्हें अक्ल कब आएगी ?

रमेश—लड़ना मनुष्य के लिए प्राकृतिक है। अगर बन्दूक न मिली तो लाठी से लड़ेगा। नहीं तो छोटा-मोटा पेड़ ही उखाड़ लेगा, और भी कुछ नहीं तो थप्पड़-घूँसे तो हैं ही।

लीला—मनुष्य जब लड़ता है तो मनुष्य नहीं रहता। वह पशु बन जाता है।

रमेश—तो हमारे पुरखा पशु थे ?

लीला—यह तो डारविन ने सिद्ध ही कर दिया है। जबसे लड़ना-झगड़ना छोड़ा है तभी से मनुष्यत्व आया है।

रमेश—लड़ने ही से कुछ मिल सकता है।

लीला—त्याग से बेड़ा पार हो सकता है।

रमेश—(जोश से) हम लेंगे !

लीला—यों कहो हम छीनेंगे।

रमेश—(उत्तेजित हो कर) अच्छा यों ही सही, जो हमारा है उसे हम क्यों न छीनें ?

लीला—तुम्हारा है क्या ?

रमेश—स्वतन्त्रता !

लीला—हिंदुओं की या मुसलमानों की ?

रमेश—सबकी !

लीला—जिन्हा से भी पूछ लिया है ?

रमेश—उसकी सुनता कौन है ?

लीला—लाखों मुसलमान।

रमेश—वे नासमझ हैं।

लीला—वे तुम्हें नासमझ कहते हैं।

रमेश—यही तो उनकी भूल है।

लीला—ऐ समझदारी के ठेकेदार, मुझे तो तुम्हारी ही भूल लगती है।

रमेश—तुम भी जिन्हा का साथ दोगी क्या ?

लीला—(उत्तेजित हो कर) मैं तो सबको त्याग के लिए तैयार करूँगी।

रमेश—मुसलमानों को भी ?

लीला—हां, मुसलमानों को भी और हिंदुओं को भी।

रमेश—हिंदू तो तैयार ही हैं।

लीला—काहे के लिए ?

रमेश—त्याग के लिए।

लीला—तभी तो अपने ही भाइयों को अछूत समझते हैं और मुसलमानों के हाथ का छुआ तक नहीं खाते।

रमेश—यह तो साधारण रिवाज की बात है।

लीला—अङ्ग्रेज़ भी डेढ़सौ वर्ष से राज्य कर रहे हैं ! यह भी रिवाज की बात है ।

रमेश—वे हमारे अधिकारों का दमन कर रहे हैं ।

लीला—तुम दूसरों के अधिकारों का दमन कर रहे हो ।

रमेश—मैं ? कदापि नहीं ! मैं तो सबके लिए स्वतन्त्रता चाहता हूँ ।

लीला—मनुष्य स्वयँ पराधीन है । जिस क्षण वह शुद्ध हृदय से स्वतन्त्रता चाहे उसी समय वह उसे प्राप्त कर सकता है ।

रमेश—मैं हृदय से स्वतन्त्रता चाहता हूं, फिर वह मुझे मिलती क्यों नहीं ?

लीला—क्या तुम्हारा हृदय शुद्ध है ? ज़रा अपने मन को टटोलो तो ।

रमेश—हृदय में इच्छा है ।

लीला—प्रेम भी है ?

रमेश—किस के लिए ?

लीला—अछूत के लिए ! स्त्री जाति के लिए, मुसलमान के लिए, अङ्ग्रेज़ के लिए, सँसार के प्राणी मात्र के लिए ?

रमेश—अङ्ग्रेज़ के लिए भी ।

लीला—(उत्तेजित होकर) हाँ अङ्ग्रेज़ के लिए भी, प्रेम पर ही सँसार के सुनहरी-भविष्य की नींव रखी जायगी ।

रमेश—हम ही प्रेम करेंगे या कुछ दूसरे भी ?

लीला—अगर घृणा का प्रतिकार घृणा से ही किया गया तो इस घृणा की शृँखला का अन्त कहां होगा ?

रमेश—हमारा सब कुछ छिन गया है फिर प्रेम कैसे करें ?

लीला—अगर पृथ्वी से घृणा का अस्तित्व मिटाकर नए सुखमय सँसार का सृजन करना है तो घृणा का प्रतिकार प्रेम से ही होगा, मानव को उस पथ का पथिक बनना ही होगा, जिसका ईसा ने प्रदर्शन किया है और जिसे प्रकाशित करने के लिए गांधी जी आज भी दीपक की तरह अपने को साधना की ज्वाला में तिल-तिल कर जला रहे हैं ।

रमेश—बहन तुम सचमुच देवी हो, तुमने मेरी आंखें खोल दीं !

(लीला का प्रस्थान)

[रमेश फ्रेम में पुनः महात्मा जी का ही चित्र लगाकर उसे यथास्थान टाँग देता है ।]

म० गाँधी की देन

श्री विचित्रनारायण शर्मा, गांधी-सेवाश्रम, मेरठ

राष्ट्र शीघ्र ही अपने अधिनायक म० गाँधी की ७८ वीं वर्षगाँठ मनाने जा रहा है। इस अवसर पर करोड़ों हृदय भगवान् से यह प्रार्थना करेंगे कि वे उनके पूज्य 'बापू' को चिरञ्जीवी बनाएँ, उन्हें कुशल और मँगल से रक्खें।

अपने अधिनायक के लिये यह कृतज्ञता राष्ट्र अनुभव करे इसमें आश्चर्य करने की कोई बात नहीं। गांधी जी ने पेट पर रेंगने वाले भारत को अपने पैरों पर सीधा खड़ा किया और सँसार के सामने आज उसका मस्तक ऊँचा किया। उन्होंने कौम को वह बल दिया—वह साहस दिया और वह तरीका दिया जिसके सहारे वह सँसार की सबसे बड़ी ताकत के सामने निहत्था होने पर भी छाती तानकर खड़ा हो सके और अत्याचारों का मुकाबला सफलता पूर्वक कर सके।

गांधी में राष्ट्र ने अपनी खोई हुई आत्मा को फिर से पाया और आज बीस साल से गाँधी राष्ट्रीय भावनाओं-उमंगों और आशाओं का प्रतीक बन गया है। विदेशों में गांधी की गौरव महिमा को सुन कर प्रत्येक भारतवासी की छाती गर्व से फूल उठती है। वर्तमान जगत का सबसे बड़ा महापुरुष एक भारतवासी है इससे हम अपने को धन्य समझते हैं।

पर इस मधुर सँगीत में आज एक खटकने वाला सुर भी सुनाई देता है। उस रोज फ्रन्टियर—सीमा-प्रांत से लौटते समय लाहौर स्टेशन पर फारवर्डब्लाक और मुस्लिम लीग के कुछ नौजवानों ने उन्हें काले झंडे दिखाकर विरोधी घोषों से अपने गुस्से और नफरत का इजहार कर उनका तिरस्कार किया और हाल ही में जब वे शिमला जाते समय दिल्ली उतरे और फिर शिमला गये उस रोज भी फारवर्डब्लाक और मुस्लिम-लीगी भाइयों ने फिर काली झण्डियाँ दिखलाई और 'गांधी मुर्दाबाद' के नारे लगाए।

देश के हृदयसम्राट का यह तिरस्कार भारत जैसे कृतघ्न देश में ही सम्भव है। मैं इतना सख्त शब्द न लिखता, पर मेरे हृदय पर एक घटना ने जो चोट पहुँचाई उसे जब पाठक सुनेंगे तो वे मुझे इस कटु शब्द का प्रयोग करने के लिए क्षमा करेंगे।

कुछ दिन हुए मैं दिल्ली से सरदार पटेल और भूलाभाई देसाई को मेरठ आने का निमन्त्रण देकर ११ बजे रात को लौटा था। उस समय अपने को रिवोल्यूशनरी—क्रांतिकारी कहने वाले एक भाई मुझ से मिलने आए। वर्तमान दुःखद स्थिति पर काफी देर बातचीत होने के बाद उन्होंने एक प्रश्न किया कि, "भाई जी, अगर गाँधी को कोई शूट कर दें—गोली मार दें तो उनके दल के कहलाने वालों का क्या होगा? उनके नाम से जो तिजारत करते हैं, उनका क्या होगा?"

इस प्रश्न का मैंने काफी विस्तार से उत्तर दिया। सँक्षेप में वह इस तरह था। गांधी की हत्या को देश कभी क्षमा न करेगा और जो लोग समझते हैं कि गाँधी को हटाकर उनका मार्ग साफ हो जायगा, उन की आशाएँ पूर्ण न होंगी। मर कर गांधी और भी बलवान हो जायेगा, और उनके नाम से जो तिजारत करते हैं उनकी तिजारत और चल जायगी। यह कोई न समझेगा कि अँग्रेजी हुकूमत ने ऐसा कराया होगा। यह भी कोई न मानेगा कि मुस्लिम-लीग का

यह काम है। और इसका परिणाम ठीक उलटा होगा उससे जो हत्यारे चाहते हैं।

पर इन भाई को तो छोड़ दीजिये। प्रश्न तो यह है कि भारत में आज भी ऐसे व्यक्ति हैं जो गांधीजी को अपने मार्ग का कण्टक समझते हैं और उन्हें अपने तरीके से अपने मार्ग में से हटा देने के प्रश्न पर गम्भीरता से विचार कर सकते हैं और यह सब देश और जाति के कल्याण की सम्भावना से।

हमें अंग्रेजी की एक कहावत याद आ जाती है "God save me from my friends"—ईश्वर हमें हमारे ऐसे मित्रों से बचाये? क्या यही लोग भारत को आजाद करेंगे? क्या इन नादान दोस्तों से दाना दुश्मन अच्छे नहीं हैं गांधी जी की [illegible] साल की सेवाओं का क्या यही पुरस्कार इस देश के नौजवानों के हाथ से मिलना चाहिये था? क्या गांधी जी ने कभी देश के साथ बेवफाई की है? क्या गांधी जी ने कभी कोई कमजोरी दिखलाई है?

कल सुनने को मिला कि गांधी जी ने १० लाख रुपए स्वराज्य कोष में से निकाल कर अपने बेटे को दे दिये थे।। इस आशय के गान देहातों में प्रचलित किए जा रहे हैं। और यह इस अभागे देश का दुर्भाग्य है कि ऐसी फिजूल अफवाहों पर लोग यकीन भी कर लेते हैं।

यह साफ है कि जहां ऐसी गलत फहमी फैलाने में कुछ व्यक्तियों का स्वार्थ है वहां ऐसे प्रोपेगेण्डा की सफलता जनता की जड़ता पर ही पनप सकती है। इसलिए आवश्यकता इस बात की है कि सही वाकयात जनता के सामने आएँ। और मैं इन पंक्तियों द्वारा पत्रकारों, लेखकों से प्रार्थना करूँगा कि वे गांधीजी की जो देन इस राष्ट्र को है उसपर हर पहलू से प्रकाश डालें तथा गांधी-नीति, गांधीजी के तरीकों को विस्तार पूर्वक जनता के सामने रक्खें।

विस्तार भय से मैं सिर्फ दिग्दर्शन मात्र कराता हूँ उन क्रान्तिकारी परिवर्तनों, प्रवृतियों और शक्तियों का जिनको सम्भव और व्यापक बनाकर गांधी जी ने राष्ट्र को नवजीवन दिया है, और वास्तविक आजादी का अनुभव कराया है।

(१) थोड़े से पदों और ओहदों को मांगने वाली कांग्रेस को अगर स्वराज्य का पाठ स्वर्गीय दादा भाई और लोकमान्य ने पढ़ाया था तो स्वराज्य के दावे पर १९१६ में लाखों आदमियों के हस्ताक्षर कराकर स्वराज्य को घर-घर की चीज महात्मा गांधी ने ही बनाया था।

(२) गांधीयुग से पहले कांग्रेस का तरीका विधान के अन्दर रहकर प्रस्तावों, तकरीरों और आवेदन पत्रों द्वारा अपनी मांग को पेश करना था। गांधी ने इन सबको बदल दिया। सत्य और अहिंसा सत्याग्रह और सिविल नाफरमानी द्वारा लाठियों और गोलियों, जेल और जुर्मानों का मुकाबला करना सिखलाकर गांधी ने वह आशा और शक्ति देश को दी जिसके सहारे स्वराज्य प्राप्ति अब एक निकट भविष्य की सम्भावना हो गई है।

(३) कांग्रेस के मँच से अंग्रेजी भाषा को हटा, हिन्दुस्तानी जबानों को उसका स्थान दे, पढ़े लिखे आदमियों के अलावा जन साधारण तक कांग्रेस का सन्देश गांधी जी ने ही पहुँचाया है।

(४) गांधीयुग से पहिले हमारी स्वदेशी की हलचल निषेधात्मक थी। आम जनता को उससे कोई लाभ न होता था। बहुधा उससे विदेशी व्यापार को और भी उत्तेजना मिलती थी। गांधीजी ने व्यवहारिकता लाकर चरखे और ग्राम उद्योगों द्वारा स्वदेशी की भावना को व्यापक और वास्तविक बनाया।

(५) हिन्दू मुस्लिम एकता की आवश्यकता को सबसे अधिक गांधी जी ने समझा और खिलाफत के मसले पर मुसलमानों की सहायता करके उसे सम्भव बना दिया था। और आज अगर यह एकता दूर की वस्तु मालूम होती है; और इसी से स्वराज्य प्राप्ति दूसरी चीज होती जा रही है तो इस का कारण गांधी जी के मार्ग को न अपनाना ही है।

(६) अस्पृश्यता निवारण और हरिजन कार्य को

(शेष पृष्ठ ३९ पर)

गाँधीजी का अमर-सन्देश

श्री गिरिराजजी बी० ए०, गुजरात विद्यापीठ

लेनिन, हिटलर, मुसोलिनी और गांधी, ये सब एक ही किस्म के अद्भुत व्यक्ति हैं। इनमें लोक सँग्रह अर्थात् लोगों को अपनी ओर आकर्षित करने की शक्ति बहुत ज्यादा है। ऐसे प्रतिभाशाली व्यक्ति हमेशा ऐसी क्रांति किया करते हैं कि जिसकी चिनगारियाँ दूर-दूर तक फैल जाती हैं। लैनिन ने जारशाही का खात्मा कर साम्यवाद-समानता के असूलों पर सोविट रूस की स्थापना की। गत महायुद्ध के बाद जिस जर्मनी को बिलकुल नेस्तनाबूद कर दिया था, उसी जर्मनी को हिटलर ने एक महान शक्तिशाली राष्ट्र बना दिया। वर्सेल्स की सँधि के कारण जो प्रदेश जर्मनी के कब्जे से निकल गये थे उनमें से कइयों को वापिस ले लिया है। और अब पहली सितम्बर को युद्ध छेड़ डैंजिग और पोलिश कोरीडर को भी अपने कब्जे में कर लिया है। इसी प्रकार मुसोलिनी ने इटली की काया पलट कर उसे प्रथम श्रेणी के राष्ट्रों की कतार में ला खड़ा किया है। गाँधी ने दक्षिणी अफ्रीका में हिन्दुस्तानियों के अधिकारों की रक्षा के लिए सत्याग्रह कर एक नये ढँग की युद्ध पद्धति को जन्म दिया। हिंदुस्तान में आकर गाँधी जी ने यहां की राजनीति में एक नई ही जान डालदी। हिटलर और मुसोलिनी का दावा है कि वे दुनिया में शांति स्थापित करना चाहते हैं। लेकिन इसके लिए जो तरीका उन्होंने स्थापित किया है वह इतना खतरनाक है कि उसके ख्याल मात्र से रोमाञ्च हो आता है, हृदय काँपने लगता है।

इसके विपरीत गाँधी जी ने बताया कि अगर हम अपने खोए हुए अधिकारों को प्राप्त कर सही मानों में स्वतंत्र होना चाहते हैं, तो हमें ऐसी चीजों से असहयोग करना चाहिये जो आजादी के रास्ते में रोड़ा अटकाती हैं। ऐसा करने में जो कष्ट उठाने पड़ें उन्हें खुशी-खुशी सहन करें। अपने विरोधी से किसी तरह की घृणा न करें, उसे नीच न समझें, फिर बल प्रयोग का तो सवाल ही क्या। सँसार में अत्याचार इसी लिए होता है कि हम उसे सहन करते हैं। अगर हमारे अन्दर अत्याचार के खिलाफ खड़ा होने की ताकत आ जाए तो सँसार से अत्याचार का नामोनिशान ही मिट जाए। इस प्रकार यह नया तरीका बताकर गाँधी जी ने सारे देश में बड़ी भारी क्राँति पैदा कर दी। दुनिया इस नई चीज को देख कर एक दम दँग रह गई। हिंदुस्तान में आजादी की जद्दोजहद ने एक नया पलटा खाया। गाँधीजी के रँग मञ्च पर आने से पहिले लच्छेदार भाषण देना और अपनी माँगों के लिए प्रस्ताव पास कर सरकार के पास भेजना ही नेताओं ने अपना काम समझ रखा था। और यह काम भी इने-गिने अंग्रेजी पढ़े लिखे आदमियों का ही था। लेकिन अब जमाना पलट गया है। अब तो देश के नेता शहर-शहर और गांव गांव में घूमकर जनता में जागृति पैदा कर रहे हैं। राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक प्रश्नों पर प्रकाश डालते हैं। वे जनता को बताते हैं कि सच्ची स्वतन्त्रता उस वक्त तक हासिल नहीं हो सकती जब तक कि हम अपने अन्दर अत्याचारों का मुकाबला करने की शक्ति पैदा न करलें और यह तभी हो

कता है जब हम अत्याचारों को समझें और दूसरों पर अत्याचार करना छोड़ दें। इसका तलब यह है कि जैसा हम अपने लिए चाहें वैसा दूसरों के लिए भी चाहें और अपना जीवन शुद्ध और पवित्र बनावें।

इस तरह गाँधी जी ने राजनीति में पवित्रता को दाखिल किया। आज जो आदमी जितना ज्यादा पवित्र है जनता पर उतना ही ज्यादा उसका असर पड़ता है। सार्वजनिक और व्यक्तिगत जीवन में जो भेद-भाव था वह अब मिटता जा रहा है।

यूरोप गत महायुद्ध के बाद से शाँति का राग अलापता रहा और दूसरी तरफ लड़ाई के नये-नये साधन जुटाता रहा। इसका परिणाम आज हमारी आँखों के सामने है। लेकिन गांधी जी ने बताया कि साधन और साध्य को अलग-अलग नहीं किया जा सकता। साधन के अनुसार ही नतीजा निकलता है। गाँधी जी तो सदा यही कहते रहते हैं कि सच्ची स्वतन्त्रता, सच्ची शांति और सच्ची सभ्यता सँसार में तभी वक्त कायम हो सकती है जब कि हम लड़ाई-भिड़ाई के साधनों को बालाए-ताक रखकर आपस में मेल-जोल पैदा करें और अपनी समस्याओं को एक दूसरे की स्थिति को समझ कर आपस में मिल कर सुलझाना सीखें। कारण, जो व्यक्ति तलवार का सहारा लेता है वह तलवार से ही नष्ट हो जाता है।

यूरोप ने शाँति का जो रास्ता अपनाया है वह कभी कारगर नहीं हो सकता। गाँधी जी के सत्य और अहिंसा के रास्ते पर चलने से ही स्थायी शांति स्थापित हो सकती है। सत्याग्रह, राजनीति में पवित्रता, तथा साधन और साध्य का एक होना— ये तीन चीजें गांधी जी ने दुनिया के सामने रक्खी हैं। सँसार की सभी जातियां अगर इनके रहस्य को समझ कर इन पर अमल करने लगें तो सब मुश्किलें और मुशकिलें बात की बात में काफूर हो जाएँ। ऊपर बताई हुई तीनों चीजों की जड़ में एक ही मुख्य चीज है और वह है जीवन की पवित्रता। जातियां व्यक्तियों से मिलकर बनी हैं। अगर व्यक्ति पवित्र होजाएँ तो बस सँसार का बेड़ा पार हो जाए। पवित्रता किसी भी बड़े से बड़े आदमी की नकल करने से नहीं आती। पवित्रता आती है अपवित्रता के दर्शन करने से तथा सदा सजग और सतर्क रहने से। बस महात्मा जी का सँसार के लिए यही अमर सँदेश है—जीवन की पवित्रता।

गत् महायुद्ध की बलि वेदी पर--

८० अरब पौण्ड धन खर्च हुआ, १ करोड़ आदमी युद्ध क्षेत्र में मरे, २ करोड़ घायल हुए, युद्ध के कारण बाद में हुए इनफ्लुएँजा से १ करोड़ मरे, युद्ध के बाद १९१९ से १९२७ तक उत्पत्ति में ४२ अरब ५० करोड़ पौण्ड हानि हुई। इस युद्ध में ७ करोड़ सैनिकों ने भाग लिया।

राजनैतिक कार्यक्रम का अँग बनाकर ७ करोड हरिजनों को हिन्दुओं में मिलाकर रखने की दूरदर्शिता गांधी जी की ही सूझ थी। अपनी जान की बाजी लगाकर कम्यूनलअवार्ड —साम्प्रदायिक निर्णय का मुकाबला गांधी जी ने न किया होता और अगर ७ करोड़ हरिजन हिन्दुओं से अलग हो गये होते तो आज भारत में राष्ट्रीय आन्दोलन खत्म सा हो चुका होता और आठ सूबों में कांग्रेस की वजारत मुमकिन न होती।

(७) इसके अलावा धर्म में से कट्टरपना निकाल इसे मानव धर्म का व्यापक रूप दे तथा राजनीति और धर्म के बीच के विरोध को मिटा गांधी जी ने समाज की सबसे बड़ी सेवा की है। केवल राजनीति और धर्म की एकता ही नहीं बल्कि जीवन से धर्म का घनिष्ठ सम्बन्ध बताकर जीवन की व्यापक एकता को दर्शाते हुये सर्वधर्मों में व्यापक वास्तविक एकता का दर्शन गांधी जी ने असली तौर से कराया है। और इस प्रकार सिद्ध कर दिया है कि हमारा अर्थ शास्त्र, समाज शास्त्र व दूसरे शास्त्र जीवन के मौलिक सिद्धान्तों के विरुद्ध कभी नहीं जा सकते।

गांधी जी का तरीका प्रायः सभी तरीकों से श्रेष्ठ है। इसी तरीके पर चलकर गुलाम भारत आज़ाद हो सकता और दुनिया का पथप्रदर्शन कर सकता है। अतः देश का वास्तविक हित चाहने वालों का परम कर्त्तव्य है कि वे गाँधी जी के तरीकों का समर्थन और प्रचार करें तथा उन्हें खत्म करने को जो हल और वाद उत्पन्न हो रहे हैं उनका डटकर मुकाबला करें।

पिछली लड़ाई में भारत से दी गई मदद

पिछले महायुद्ध में हिंदुस्तान के किस सूबे से कितने आदमी लड़ाई पर गए, इसकी सूची नीचे दी जाती है। इसके अलावा ब्रिटिश सरकार को २ अरब ८ करोड़ रुपये की सहायता भी दी गई थी।

प्रान्त	लड़ाई पर गए	भरती हुए	जोड़	कुल जनसंख्या
आसाम	९०००	१४२००	२३२००	७६००००००
बङ्गाल	७२००	५१९००	५९०००	४६७०००००
बिहार उड़ीसा	८६००	३३०००	४१६००	३४००००००
बम्बई	४१३००	३०२००	७१५००	१९३०००००
मध्यप्रांत	५४००	९६००	१५०००	१३९०००००
मद्रास	५१२००	४११००	९२३००	४२३०००००
उ०प०सीमाप्राँत	३२२००	१३०००	४५२००	२३०००००
पञ्जाब	३४९७००	९७३००	४४७०००	२०७०००००
युक्तप्रान्त	१६३६००	११७६००	२८१२००	४५४०००००
बर्मा	१४१००	४६००	१८७००	१३२०००००
अजमेर मारवाड़	७३००	१६००	८९००	५०००००
बलूचिस्तान	१८००	३००	२१००	४०००००
गुरखा (नेपाल)	५४७००	४१००	५८८००	३५०००००
देशी राज्य	८८९००	२१९००	११०८००	७००००००००
कुल	८२६८००	४४०४००	१२६७२००	३१९८०००००

बापू का राजनैतिक दृष्टिकोण

ले०—श्री दयाशङ्कर मिश्र, अजमेर

संसार के इतिहास में महात्मा गांधी पहिले महापुरुष हैं जिन्होंने राजनैतिक-क्षेत्र राजनीति और धर्म के एकीकरण का एक ीन आदर्श उपस्थित किया है। उन्होंने वन में कूटनीति का कभी सहारा नहीं या। वे कहते हैं कि धर्म से अलग हो कर जनीति मुर्दे के समान है जिसे जला देना ठीक है। उनका तो यहांतक दावा है कि दि संसार के सारे राष्ट्र राजनीति और धर्म एक साथ लेकर चलें तो समय-समय पर ने वाले इन विश्वव्यापी विनाशकारी युद्धों सदा के लिए अन्त हो जाए। उनका विश्वास है कि राजनीति में शुद्ध सत्य कर्त्तव्य-नीति को कभी न झुकाना हिए।

महात्माजी के जीवन में कई बार ऐसे सर आए हैं जब उन्होंने अपने इस दर्श की रक्षा के लिए राजनैतिक सफल-ओं को, बिना लोकमत की चिंता किए हुए ड़ दिया। इसका ताजा उदाहरण है—जकोट' और 'चौरीचौरा' की घटना। रीचौरा की घटना के बाद जब उनके धियों ने कड़ी आलोचना की थी तब बापू ने लिखा था कि "मैं यह भलीभांति जानता हूं कि राजनैतिक दृष्टिकोण से आँदोलन स्थगित करना मूर्खता और अदूर-दर्शिता होगी परन्तु सत्य और कर्त्तव्य की दृष्टि से मैं इसे सर्वथा उचित मानता हूं।"

यह सच है कि उन्होंने अपनी इस नवीन नीति और नये आदर्श द्वारा भारतीय जनता के हृदय में अपने प्रति श्रद्धा और विश्वास ही पैदा नहीं कर लिया है वरन सारे विश्व में उनके इस नवीन प्रयोग की सफलता के लिए भगवान से प्रार्थनाएँ की जा रही हैं। लेकिन इस सफलता के बावजूद देश में एक ऐसा समूह पैदा हो गया है जो उनका विरोध करने पर तुला हुआ है।

देश का यह दुर्भाग्य ही है कि उनके इस आदर्श की भावना को जनता के अतिरिक्त अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति-प्राप्त डा० रवीन्द्रनाथ टेगोर, मि० बर्नाडशा आदि तक ने बापू को नवीन सभ्यता और संस्कृति का दूत मानते हुए उनके इस राजनैतिक प्रयोग की सफलता में शङ्का प्रकट की है। लोकमान्य तिलक भी कहा करते थे कि राजनीतिक-क्षेत्र साधु-सन्तों के लिए नहीं है। इस प्रकार

महात्माजी के इस नवीन आदर्श को जब उनके विरोधी विचित्र और अव्यवहारिक बताया करते हैं तब उनका एक ही जवाब होता है कि बिजली का इञ्जिन और भाप का आविष्कार करने वालों का भी तब तक मज़ाक और खिल्ली उड़ाई गई थी जबतक दुनिया ने उसकी प्रत्यक्ष शक्ति का अनुभव नहीं कर लिया। उन्होंने कई बार कहा है कि "मैं अपनी नई नीति का जो आदर्श जनता के सामने रख रहा हूं वह यद्यपि निकट भविष्य में पूर्ण न हो सकेगा फिर भी इससे आदर्श की महत्ता में तो किसी प्रकार भी शङ्का नहीं की जा सकती।"

महात्माजी की राजनीति में रहने वाली भावना उनके इन शब्दों से बिलकुल साफ और स्पष्ट हो जाती है कि "मेरे लिये देशप्रेम का अर्थ मानवजाति के प्रति प्रेम है। मैं भारत के हित के लिए इङ्गलैंड को हानि पहुँचाना स्वीकार नहीं कर सकता। हां, साम्राज्यवाद को मैं नीति-विरुद्ध मानता हूं।" अपने विचारों के मुताबिक ही डैंज़िग के मामले पर जब ब्रिटेन ने युद्ध की घोषणा की तब महात्माजी ने अपनी वायसराय की मुलाकात में कहा था कि "ब्रिटेन के इन दुर्दिनों में आज़ादी का सौदा करना मैं पाप समझता हूं।" यह है महात्मा जी का राजनैतिक दृष्टिकोण और उसकी उच्चता जिसमें सङ्कुचित राष्ट्रीयता के लिए कोई स्थान नहीं है।

संसार के बड़े राष्ट्रों की सैनिक शक्ति

	मशीनगन	तोपखाना	टैंक	हवाई जहाज	फ़ौज
रूस	५३०००	१२६००	१००००	९०००	१२८०००००
पोलैण्ड	११३००	१७८०	७००	१६००	३९०२०००
फ्रांस	३४५००	३३९०	४५००	५०००	५८६०००००
ब्रिटेन	१४२००	२९००	६००	५०००	२५२९२००
इटली	१९०००	२७००	११००	४०००	२४०००००
अमेरिका	३५०००	३८००	४००	३७००	२९२९०००
जापान	८०००	७९२	२७०	२६००	२९२९०००

सम्बोधन-संगीत

२०—पं० सूरजचन्द डाँगी, प्रचारक प्रेमधर्म, बड़ी सादड़ी (मेवाड़)

हे प्रेम-पुजारी सत्य वीर।
हे वैभव शाली दिव्य सन्त,
कुटिया वाले राजा महन्त
सात्विक दम्भी शिव नीतिमँत।
निर्मल है तेरा यश अनँत॥
हे नव-जवान बूढ़े शरीर।
हे प्रेम-पुजारी सत्य वीर॥१॥

तन मन में भर साहस प्रचण्ड,
कन-कन में भर कमनीय काँति।
चितवन में भर सुखमय उमँग;
जीवन में भर सौन्दर्य शाँति।
लवणोदधि में भर मधुर नीर।
हे प्रेम पुजारी सत्य वीर॥२॥

भयप्रद कतिपय अँधे विचार,
जो गतानुगतिमय मूढ़ भ्रांति।
क्षण में समूल हो जायँ क्षार;
फैलाना ऐसी प्रबल क्रांति।
पर रहना अति गम्भीर वीर।
हे प्रेम-पुजारी सत्य वीर॥३॥

तुमको समझूँगा राम कृष्ण,
ब्रह्मा शँकर धर्मावतार।
ईसामसीह अच्युत बुद्ध;
पैग़म्बर पुरुषोत्तम उदार॥
तुमको मानूँगा महावीर।
हे प्रेम-पुजारी सत्य वीर॥४॥

तुम तेजपुञ्ज तुम दिव्य ज्योति,
तुम प्रिय स्वदेश के रत्न लाल।
तुम स्वाभिमान की विमल मूर्ति,
तुम विश्व-प्रेम के गृह विशाल॥
तुम कुकर्मियों के लिए तीर,
हे प्रेमपुजारी सत्य वीर॥५॥

कह 'लघुवय वर का है सुभाग"
बच्चों पर करते अनाचार।
हा! बाल वृद्ध अनमेल ब्याह,
अबलाओं पर भीषण प्रहार॥
बिगलित करना वैधव्य पीर।
हे प्रेम पुजारी सत्य वीर॥६॥

इन पढ़े लिखों की सब विभूति,
जल बल करके हो रही छार।
बेकार फिरें क्या करें हाय;
इनमें न कला कौशल प्रचार।
इनको बतलाना सु-तदबीर।
हे प्रेम-पुजारी सत्य वीर ॥७॥

है घर घर में डाकिनी फूट,
तू-तू मैं मैं हा! लूटमार।
आपस-आपस का भेद-भाव,
हा कैसे सँकीर्ण विचार।
विहरा नव-युग की खर समीर।
हे प्रेम-पुजारी सत्य वीर ॥८॥

हे बड़े-बड़े ये धनी सेठ,
जिनकी सम्पति का नहीं पार।
ओसर मोसर गंगोज भोज,
ही में व्यय करते हैं असार।
क्यों हैं लकीर के ये फकीर।
हे प्रेम--पुजारी सत्यवीर ॥९॥

ले पकड़ एक कर में कृपाण,
उसकी कर लेना तीक्ष्ण धार।
फिर काट कुकर्मों का विषाण,
हिम्मत मत जाना बन्धु हार।
है अचल धर्म की यही सीर।
हे प्रेमपुजारी सत्य वीर ॥१०॥

जीवन है समरस्थल महान,
होकर सतर्क करना विहार।
है विजय-लाभ अति कठिन काम,
पग-पग पर रहना होशियार।
यह सूर्य्यचन्द बिनती अखीर।
हे प्रेमपुजारी सत्य वीर ॥११॥

महात्मा जी का महत्व

श्री गोपीकृष्ण जी विजयवर्गीय, अध्यक्ष— ग्वालियर राज्य सार्वजनिक सभा

महात्माओं द्वारा चमत्कार होने की बातें आजकल के लोग कम मानने लगे हैं। किन्तु महात्मा गांधी ने तो सचमुच भारतवर्ष में चमत्कार कर दिखाया है। स्वाभिमान और गौरव-भावना से शून्य दीनहीन, दरिद्र भारत को उन्होंने स्वाभिमान और गौरव से युक्त बना दिया है, एक साम्राज्यवाद से मोर्चा लेकर उसे स्वराज्य का इच्छुक बना दिया है। क्या यह कम चमत्कार है? महात्मा गांधी ने मुर्दे को जिन्दा बना दिया है। आज भारत अपनी स्वाधीनता के स्वप्न देख रहा है, फिर अपने महान गौरव की प्राप्ति के समीप पहुँच रहा है। यह महात्मा गाँधी के प्रयत्नों का ही फल है।

महात्मा गाँधी जी दक्षिण अफ्रिका में सत्याग्रह के सफल प्रयोग करके सन् १९१५ में भारत में आये। यहां आते ही आपने साबरमती में सत्याग्रहाश्रम स्थापित किया

और शुद्ध, सरल, परिश्रम, त्याग व सेवा से पूर्ण जीवन व्यतीत करने का पदार्थ पाठ भारत को दिया और कुछ सच्चे राष्ट्र सेवक तैयार किये। भारत में आते ही आपने खेड़ा, चम्पारन आदि स्थानों में सत्याग्रह का प्रयोग किया और भारतीय जनता को उसकी सफलता का विश्वास कराया। सन् १९१९ में आपने रौलट एक्ट के विरुद्ध सत्याग्रह जारी कराया जिसके परिणामस्वरूप भारत भर में हड़ताल, उपवास, सभायें हुईं और पञ्जाब में जलियान वालाबाग-हत्या-काण्ड की घटना हुई। १९२१ के असहयोग आन्दोलन से निःशस्त्र हिन्दुस्तानियों में भी नवजीवन पैदा होगया। इस आन्दोलन से जो कि अहिंसात्मक सत्याग्रह पर निर्भर था, बृटिश सरकार कांप गई। उसका आसन हिल गया। बृटिश सरकार ने एक बार तो समझा कि भारत उसके हाथों से निकला जा रहा है। सन् १९३० और १९३२ के आन्दोलनों ने भी ब्रिटिश साम्राज्य को हिला दिया। महात्मा जी ने निर्बल, निःशस्त्र भारतीय जनता को अहिंसा द्वारा स्वाधीनता प्राप्त करने का मार्ग बता दिया। भारत में इसका अँतिम प्रयोग होना अभी बाकी है।

सत्याग्रह महात्मा गांधी जी का संसार के लिये एक नवसन्देश है। आपने बतलाया है कि व्यक्तियों २, वर्गों २ और राष्ट्रों २ के बीच बलप्रयोग या युद्ध की आवश्यक्ता बिलकुल नहीं है। अहिंसात्मक सत्याग्रह से भी न्याय प्राप्त किया जा सकता है; बल्कि आप कहते हैं कि सँसार में हिंसा से हिंसा बंद न होगी, वह अहिंसा से ही बंद हो सकेगी। इस नये शस्त्र के लिये आपने भारत को प्रयोगशाला बनाया है। वास्तव में आपका सँदेश सँसार भर के लिये है।

भारत देश के लिये महात्मा जी के उपकार अनन्त हैं। आपने जीवन की शुद्धि पर जोर दिया, निर्भीकता व नैतिकता की वृद्धि की, समाज सुधार की प्रेरणा की, हरिजनों का उद्धार किया; हिन्दू-मुसलिम आदि सम्प्रदायों में मेल पैदा करने का यत्न किया; खादी, ग्रामोद्योग और ग्रामसेवा की तरफ ध्यान दिलाया। राष्ट्रीयता को भी जाग्रत किया और स्वराज्य की इच्छा उत्पन्न की। महात्मा जी ने स्वराज्य की लड़ाई लड़ कर हिन्दुस्तानियों को योद्धा भी बना दिया। अब तो उनके मार्ग पर चलते हुए थोड़ा प्रयत्न करने की और आवश्यक्ता है, फिर सफलता हमारे हाथ में है। महात्मा जी ने अनेक भारत-व्यापी सँस्थाएँ खड़ी करके अपूर्व संगठन शक्ति का भी परिचय दिया है।

भारत पर उनके अनेक उपहार होते हुए भी महात्मा गाँधी तो सँसार भर के एक जगद्गुरु या पैगम्बर माने जायँगे, यह मेरा विश्वास है। जब उन्होंने वर्तमान महायुद्ध

के अवसर पर भारत की स्वतन्त्रता के लिये भी अहिंसा को न छोड़ने की बात कही तब तो वह राष्ट्रीयता से परे, विश्व के हितचिन्तक के रूप में परम उदात्त स्वरूप में हमारे सामने आते हैं।

आओ! ऐसे जगद्वन्द्य महापुरुष को हम प्रणाम करें।

—•—

महात्मा गाँधी

ले०—श्री कृष्णजसराय बी० ए०, देहली

प्रिय सम्पादक जी, आप गांधी अंक निकाल रहे हैं। भला आप को यह क्या सूझी। सूर्य को दीपक दिखाना चाहते हैं या यों कहो कि सूर्य को 'दीपक' के द्वारा दिखाना चाहते हैं। नहीं, नहीं, मैं भूला। आपका शायद यह मतलब है कि सूर्य के प्रकाश में 'दीपक' सब किसी को दिख पड़े और सज्जन इसे अपनावें। ठीक भी तो है, छोटे बड़ों की ही छत्र छाया में बढ़ा करते हैं। आपने अच्छा सोचा है। किन्तु आप मुझ से कह रहे हैं कि गांधी जी पर कुछ लिख कर भेजो। यह तो छोटा मुँह बड़ी बात हो जावे गी। जिनको सँसार भर जानता व मानता है मैं उनको क्या जनाऊँगा व मनाऊँगा। फिरभी आपकी आज्ञा का पालन करना अपना कर्तव्य समझ कुछ लिखना ही होगा।

यह सँसार एक विशाल नाटकघर है। इसमें सब ही आत्माएें अपना २ खेल खेलने व दिखाने आती हैं। हम सब ही इस दुनियां में अपनी २ शक्ति के अनुसार अपना २ खेल खेल रहे हैं।

महात्मा जी एक अलौकिक अद्भुत खेल दिखाने को आये हैं। व भारत को स्वतन्त्र कराने आये हैं। आप कहेंगे यह क्या कहा। एक वैश्य कुल का डेढ़ हड्डी पसली का दुर्बल बूढ़ा और एक चक्र वर्ती सम्राट का मुकाबला! यह क्या? जिस राज्य का हिटलर हजारों हवाई जहाज व सौ २ मील तक गोला फेंकने वाली तोपों को रखते हुए भी बाल बांका नहीं कर सकता, बल्कि डरता है कि कहीं अपना ही सवनाश न कर ले, उस चक्रवर्ती राज के—बाज़के पञ्जे से भारत जैसी सोने की चिड़िया को छुड़ा लेना क्या एक बूढ़े, निर्बल, निहत्थे व लकड़ी के सहारे धीरे २ चलने वाले व्यक्ति के बस का काम हो सकता है? हरगिज़ नहीं। असम्भव!! किन्तु नहीं, इस

बूढ़े का जन्म असम्भव को सम्भव बनाने के लिए ही हुआ है। क्या हमारे देखते-देखते कितने ही चमत्कार नहीं हो गये ? क्या कोई जानता था कि बिना हथियार उठाये सत्य और अहिंसा से दुनिया की सबसे बड़ी साम्राज्यशाही के साथ लोहा लिया जा सकता है ? लेकिन महात्मा जी ने यह सब कुछ हमारे देखते-देखते सम्भव कर दिया। महात्मा जी की प्रेम-भरी मुस्कराहट सौ-सौ मील बम फेंकने वाली तोपों से भी कहीं बढ़ कर शक्तिशाली है। उनका सत्य-व्रत, उनकी अहिंसा, उनका अनुपम त्याग, उनकी ग़ज़ब की तपस्या, उनका अद्भुत प्रेम आदि अलौकिक गुण हवाई जहाज़ों, पनडुबियों, मशीनगनों, टैंकों, ज़हरीली गैसों आदि युद्ध के सभी आधुनिक साधनों से कहीं बढ़ चढ़ कर हैं। गांधी जी प्रेम व अहिंसा की मूर्ति हैं। जिसका हृदय सच्चे प्रेम से भरा है तथा जिसको स्वप्न में भी किसी को सताने का ख्याल तक नहीं आता उसको दुनिया की कोई शक्ति हरा नहीं सकती। अतः वह दिन दूर नहीं जब भारत स्वतन्त्र होगा, परतन्त्रता का नाश होगा, सत्य और अहिंसा का बोल बाला होगा।

क्या आप इस सँसाररूपी विशाल रँग मञ्च पर दो बड़े भारी नाटक होते नहीं देखते ? एक ओर भयङ्कर महाभारत हो रहा है। युरोप के लगभग सभी राष्ट्र दल-बल सहित मैदान में आ डटे हैं, बेगुनाह नर-नारियों का खून बहाया जा रहा है। सारे सँसार में कोलाहल मच रहा है। किन्तु दूसरी ओर सेगांव की टूटी झोंपड़ी में पड़ा हुआ एक दुर्बल व्यक्ति प्रेम, सत्य और अहिंसा के तीर व गोले अपने हृदय से छोड़ रहा है। जिन पर वह प्रहार कर रहा है वे भी उसके प्रेम में रँगे जा रहे हैं। कोई उसका दुश्मन नहीं। भारत को स्वतन्त्र कराने में किसी भी प्राणी के खून की एक बूँद गिरे—यह उस को किसी भी हालत में मँज़ूर नहीं है। दुश्मन दोस्त बनकर रहें, यही उसका आदर्श है। वह केवल भारत को ही नहीं सारे सँसार को स्वतन्त्र देखना चाहता है। यही खेल गांधी जी खेल रहे हैं। इसीके लिए वे सँसार मेंआये हैं। आओ ! हम सब मिलकर गांधीजी की जय बुलायें और आज से ही आसुरी शक्तियों का आसरा छोड़ दैविक-शक्तियों से अपने हृदयों को भरलें। प्रेम में जीवन है, मेल में शक्ति है, सत्य में निर्भयता है, अहिंसा में अटूट बल है। महात्माजी के जीवन से हमें यही शिक्षा मिलती है। आओ, हम सब उनकी जयन्ती के शुभ अवसर पर इस सुनहरी पाठ को अपने हृदयों में जगह दें,खुद खुश रहें और दूसरों को खुश रखें।

—०—

मैगिनोट व सिगफ्रीड लाइन

मौजूदा यूरोपीय युद्ध के छिड़ने के बाद 'मैगिनोट लाइन' और 'सिगफ्रीड लाइन' की चर्चा रोजाना सुनी जाती है, अखबारों में भी इन लाइनों का बराबर जिकर आता है। इस प्रकार, मौजूदा लड़ाई में इन लाइनों को बड़ा भारी महत्व दिया जा रहा है। आम लोग इन लाइनों के विषय में जानकारी प्राप्त करने के लिए बड़े ही उत्सुक हैं। इसी लिए संक्षेप में नीचे इनका थोड़ा सा हाल दिया जाता है।

फ्रांस और जर्मनी की दुशमनी बहुत पुरानी है। इन दोनों देशों के बीच कई बार घमासान युद्ध हो चुके हैं। दोनों देशों की सीमाएँ भी आपस में मिलती हैं। इसलिए पिछली लड़ाई के बाद जर्मनी के हमलों से बचने के लिए फ्रांसीसी राजनीतिज्ञों ने अपनी सीमा पर दुर्भेद्य किलों की एक कतार बनाई जो 'मैगिनोट लाइन' के नाम से प्रसिद्ध है।

मैगिनोट लाइन—यह लाइन लगजेम्बर्ग से स्वीटज़रलैंड तक की फ्रांस व जर्मनी की सीमा की पूरी लम्बाई में जमीन के अन्दर बनाई गई है। इसे १५ हजार मजदूरों ने लगातार ११ वर्ष श्रम करके बनाया है। इन किलों को अटूट बनाने के लिए सीमेंट, कंक्रीट और फौलाद की मोटी २ चादरें काममें लाई गई हैं। इनके लिए १२०००००० घन मीटर (एक मीटर=४० इञ्च) जमीन खोद कर हटाई गई, १५०००००० घन मीटर कंक्रीट की ढलाई की गई, ५० हजार टन फौलाद की चादरें लगाई गईं। गेलरियों की बड़ी लम्बी शृंखला तैयार की गई है। गेलरियों की छत १२० टन के खम्भों पर खड़ी की गई है। इन्हें किसी भी तरह के बम हिला नहीं सकते। जहरीली गैस भी इनके भीतर नहीं घुस सकती। चारों ओर बिजली का जाल फैला हुआ है। वहाँ का टेम्प्रेचर व हवा का दबाव भी बिजली द्वारा ठीक रखा जाता है जिस से उनके अन्दर सैनिक मौज से रह सकें। खेल-कूद, गरम पानी के नल, बिजली के चूल्हे आदि सभी सुविधाओं का प्रबन्ध है। खाने-पीने की इतनी सामग्री का प्रबन्ध है कि महीनों बाहरी सहायता के बिना काम चल सकता है। इन किलों के अलग २ भाग हैं जिन का टेलीफोन से एक-दूसरे से सम्बन्ध है। टेलीफोन की भी ५ मीटर मोटी डबल लाइन कंक्रीट की तह में होकर गई है ताकि एक फेल होने पर दूसरी काम दे सके। ५० मीटर की दूरी पर टेलीफोन एक्सचेंज बना है जोकि पूर्णतः दुर्भेद्य बना है। इस किलेबन्दी में जगह २ तोपें रखी हैं जिनका मुँह जर्मनी की ओर होता है। वे ऊपर से दिखती नहीं। ये किले असली सरहद से १॥ मील भीतर बने हैं। इस १॥ मील चौड़ी पट्टी का नाम 'अग्नि-क्षेत्र' है। फायरिंग होने पर ३ सेकिंड में इसके अन्दर आग की लपटें ही लपटें धांय-धाँय करती दिखाई देने लगेंगी। तोप व शस्त्रागारों से २०० मीटर की दूरी पर निवास स्थान बनाए गए हैं जहाँ अच्छे २ अस्पताल हैं। किलों को छिपाए रखने के लिए खटकों पर बने मकानों वाले गांव बसाए गए हैं जोकि खतरे की घण्टी बजते ही एक घण्टे में खाली हो कर वह जमीन सूनी की जा सकती है। इस किलेबन्दी के ऊपर से शत्रु के टैंकों का गुजरना असम्भव सा है क्योंकि एक बटन दबाते ही हजारों लोहे के लट्ठे बाहर निकल आते हैं जिस से टैंक को आगे बढ़ने को रास्ता नहीं रहता। इस लाइन पर ७ खरब फ्रैंक (फ्रैंक=१० आने के लगभग) खर्च हुए हैं।

सिगफ्रीड लाइन—फ्राँसीसियों की यह ज़बरदस्त किलाबन्दी देखकर जर्मनों ने भी फ्रेंच सीमापर 'सिगफ्रीड लाइन' नाम से किलाबन्दी की है। इसमें किलों की ३ कतारें हैं और मैगिनोट लाइन से यह लम्बाई में डेढ़ गुनी है। यह किले मोसेल के पास पहाड़ियों में बने हैं जिनमें बड़ी फौजें रहने, भारी गोला-बारूद रखने का प्रबन्ध है। किलेबन्दी में जगह २ तोपें व मशीनगनें लगाई गई हैं और अगली कतार में हवाई जहाज़ गिराने वाली तोपें लगाई गई हैं। हिटलर का दावा है कि इस लाइन को कोई तोड़ नहीं सकता। आजकल सीगफ्रिड-लाइन पर घमासान युद्ध हो रहा है। देखें, इनमें से कौनसी लाइन अधिक मज़बूत साबित होती है।

सत्य और अहिंसा का तरीका

दुनियाँ में पूरी आज़ादी किसी को भी नहीं है। जङ्गलों में भी जो इन्सान या जानवर रहते हैं, उन्हें भी दूसरों के साथ रहना पड़ता है। और जहां भी दूसरों के साथ रहना होगा, वहां पूरी आज़ादी नहीं हो सकती। कुछ न कुछ दूसरों पर निर्भर रहना ही पड़ता है। इसी भावना से समाज या सोसायटी का जन्म हुआ है और इसीसे मुख़तलिफ़ किस्म की हकूमत के तरीक़े निकले हैं। जब नियम या क़ानून बनाये जाते हैं तब कुछ आज़ादी दी जाती है और कुछ पाबन्दी लगाई जाती है। इसी का नाम हक़ूक़ होता है। इसलिये इस सब व्यवस्था से यह पता लगता है कि इन्सान या किसी भी जानवर का जीवन-ध्येय, अगर खुदगर्ज़ी की दृष्टि से भी देखा जावे तो यही हो सकता है, कि ज़िन्दगी आराम से बीते। ऐसा करने में भी दूसरों के आराम का ख्याल करना पड़ता है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि व्यक्ति को कुर्बानी करनी पड़ती है या दूसरों की सेवा करनी पड़ती है। कुरबानी या सेवा तभी हो सकती है जब मनुष्य में मोहब्बत और प्रेम का जज़्बा हो। दुश्मनी या बदले का ख्याल रखते हुए कोई कुरबानी या सेवा नहीं हो सकती। सबसे बड़ी सेवा वही होती है जो निष्काम हो यानी जिसमें किसी किस्म के फल की इच्छा न हो। बदला लेकर सेवा करना तो नौकरी-चाकरी है। इसलिये गाँधी जी ने जो रास्ता राजनीति या दूसरे कामों में हमें दिखलाया है वह मौहब्बत व प्रेम भरी सेवा का तरीक़ा है। जितने भी काम हैं वे सब इसी पर निर्भर हैं। जहाँ निष्काम सेवा के तरीक़े से काम किया जावेगा वहां सचाई भी होगी। इसी को सत्य और अहिंसा का तरीका कहते हैं। जब भी हमने इस तरीक़े पर काम किया है, कामयाबी हुई है। जब यह ख्याल छोड़ सत्याग्रह की आड़ लेकर कोई काम किया जाता है तब नाकामयाबी होती है। जो भी सत्य और अहिंसा के तरीक़े पर चलना चाहता है उसे गांधी जी की राय को ही बड़ा मानना चाहिये। जो अपने तरीके पर सत्याग्रह करता है, वह उसका सत्याग्रह है न कि गांधी का।

गोपीचन्द भार्गव, एम० एल० ए०, लाहौर
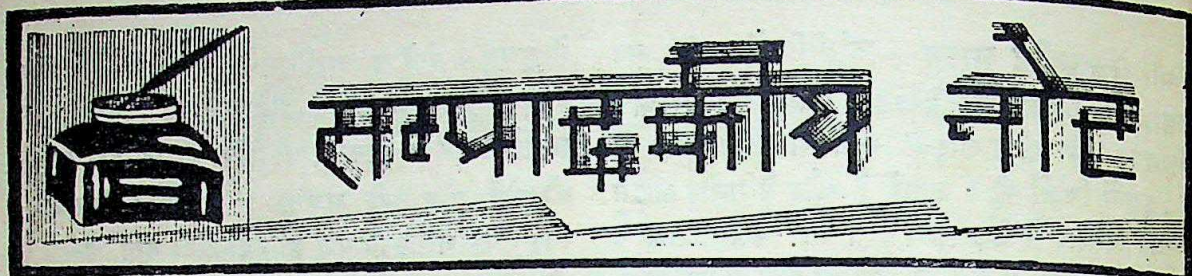
दुनिया का सबसे बड़ा आदमी—

दुनिया में अब तक अनेक महा-पुरुष हो गुज़रे हैं जिनका नाम आज तक लोगों की ज़बान पर है। वे उनके नाम पर अपना सब कुछ—अपनी प्यारी जान तक—हंसते-हंसते न्यौछावर कर सकते हैं। वर्तमान दुनिया भी ऐसे महापुरुषों से खाली नहीं है। आज भी बहुत से महापुरुष इस दुनिया में मौजूद हैं। महात्मा गांधी इन्हीं महापुरुषों में से एक हैं। लेकिन आप अपने ढंग के निराले ही हैं। दुनिया के इतिहास के पन्ने उलट जाइए, सारे संसार का चक्कर लगा आइए, सब पुरानी और नई पुस्तकें पढ़ डालिये, लेकिन गाँधी जैसा दूसरा व्यक्ति कहीं भी आपको न मिलेगा। गाँधी इसलिए महान् नहीं हैं कि वह एक प्रकांड पण्डित हैं, निपुण राजनीतिज्ञ है, दक्ष अर्थशास्त्री है, अद्भुत अन्वेषक है, महान् सन्यासी है, अद्वितीय लेखक या वक्ता है, बल्कि वह इसलिए महापुरुष है कि वह जो कुछ कहता है वही करता है। वह लिखकर या भाषण देकर हाथ पर हाथ धर कर नहीं बैठ जाता बल्कि जिस बात का बीड़ा उठाता है उसे पूरा कर के ही दम लेता है। किसी की निंदा या स्तुति से वह नहीं डरता, बल्कि अपने सिद्धांतों में वह इतना अटल विश्वास रखता है कि उनकी रक्षा के लिए खुशी २ फांसी के तख्ते पर झूल सकता है। गांधी के आत्मविश्वास का क्या कहना? जिस चीज़ को वह ठीक समझता है उसे छोड़ने के लिए हरगिज़ तैयार नहीं होता चाहे सारी दुनिया ही उसके खिलाफ क्यों न जहाद बोल दे। जब गांधी ने असहयोग का नाम लिया तो सबने उसका मज़ाक उड़ाया, जब नमक कानून तोड़ने की उसने घोषणा की तो लोगों ने उसे पागल बतलाया, जब उसने सत्य और अहिंसा से स्वराज्य लेने की चर्चा की तो लोग उसके मुंह की ओर झांकने लगे, जब उसने पदग्रहण के लिए अंग्रेज़ी सरकार से आश्वासन (Assurance) की शर्त लगाई तो लोग उसकी इस बात पर हंसने लगे। लेकिन उसने किसी की न सुनी और अपने निश्चित मार्ग पर चट्टान की तरह डटा रहा। लोगों ने देखा कि गाँधी ने जो कुछ कहा था, वह बिलकुल ठीक ही था। देश गुलाम भले ही रहे, लेकिन गाँधी अपनी सत्य और अहिंसा को छोड़ हिंसा का आसरा लेकर उसे आज़ाद कराना गवारा नहीं कर सकता। वह हिमालय की चोटी पर जाकर, बर्फ़ में गलकर अपने प्राण दे सकता है लेकिन सचाई का पल्ला नहीं छोड़ सकता। वह निधड़क होकर यही कहता है कि "सच्चे रहो। चाहे दुनिया उलट जाए और हरिश्चन्द्र की तरह हमें बिक जाना पड़े, फिर भी सचाई मत छोड़ो। छोटे बच्चे से खेलने में भी झूठ न बोलो और लाखों करोड़ों रुपये के मुनाफे के लिए भी झूठ न बोलो! इतना ही नहीं दुश्मन के साथ भी बुराई से पेश न आओ या पराई जान बचाने के लिए भी झूठ का आसरा मत लो क्योंकि अपने को गिराए बिना आदमी झूठ का प्रयोग कर नहीं सकता और अपने को गिराया तो फिर रहेगा क्या।" जो लोग यह कहते हैं कि गांधी अपनी ही बात को सदा मनवाना चाहता है वे गाँधी को समझे ही नहीं हैं, उन्होंने गांधी के असली रूप को देखा ही नहीं है। इधर-उधर की उड़ती हुई बातें सुनकर उन्होंने यकतरफा राय बनाली हैं। गाँधी तो डँके की चोट कहता है कि "अक्ल को गिरवी मत रखो। दिमाग़ को जो बात सही न लगे

और दिल को भी जो बात मँजूर न हो, उसे मजबूरी के मारे कभी मत करो। शास्त्र, गुरु, सन्त और बुजुर्गों की बातें ग़ौर से सुनो। उनकी आज्ञाओं का अदब करो। लेकिन करो वही जो अपने दिल और दिमाग़ को हितकारी जँचे, लेकिन इस बात का भरोसा रखो कि किसी नापाक लालच में घसीटे तो नहीं जा रहे हो।'

गांधी केवल हिंदुस्तान की नहीं बल्कि सारे सँसार की भलाई चाहता है। वह विश्वप्रेमी है। वह स्वार्थी अँग्रेजों को भी आंच पहुंचाना नहीं चाहता। वह खूँख़ार और निर्दयी हिटलर से भी नफरत नहीं करता। सँसार में अन्याय और अत्याचार को देखकर उसका दिल दहल जाता है; वह परेशान हो जाता है, उसकी आँखों से आँसू निकल पड़ते हैं, उसे ऐसा लगता है कि कोई उसके सीने में खञ्जर भौंक रहा है। यूरोप में भयङ्कर महाभारत की सम्भावना को अनुभव कर उसने २३ जुलाई को जो पत्र हिटलर को लिखा था उसका एक एक शब्द उसके दर्द को ज़ाहिर करता है। उसने लिखा था कि 'आप ही विश्व में एक ऐसे व्यक्ति हैं जो युद्ध को रोक सकते हैं। युद्ध होने पर यह सम्भव है कि मानवता कमज़ोर होकर वहशी बन जाए। क्या आप एक वस्तु के लिए जिसे आप कितना ही बहुमूल्य क्यों न समझते हों, यह कीमत देंगे ही? क्या आप मेरी अपील को न सुनेंगे?" युद्ध छिड़ जाने के बाद वायसराय से बात-चीत करने के बाद उसने जो बयान दिया उसका भी एक २ शब्द हृदय की गहराई से निकला है। उस बयान में लिखा था, "इस अवसर पर मैं भारत के स्वराज्य की बात सोच रहा हूं। लेकिन जब इँगलैंड और फ्राँस की हार हो गई या जब उन्हें बर्बाद जर्मनी के ऊपर फतह मिल गई तो उसकी क्या कीमत होगी।" सच्चा विश्व-प्रेम इसे कहते हैं। क्या इससे यह स्पष्ट नहीं होता कि गांधी किसी देश विशेष का नहीं बल्कि सब का है। गांधी एक विचार बन गया है, प्रेम का प्रतीक बन गया है। वह शेर और बकरी को एक घाट पानी पीते देखने का स्वप्न देखता है। उसके कोष में शत्रु और मित्र का भेद-भाव नहीं है। वह तो पापी, पतित, अन्यायी क्रूर और हत्यारे को भी अपने गले से लगाने के लिए तैयार रहता है। वह मानता है कि काले से काले आदमी के भी दिल की गहराई में भलाई छिपी हुई हैं। वह कहता है कि सँसार में कोई भी ऐसा व्यक्ति नहीं कि जिससे प्रेम न किया जा सके, यही कारण है कि गांधी महज़ भारत में ही नहीं बल्कि सारी दुनिया में इज़्ज़त की दृष्टि से देखा जाता है। इतना यश अपने जीवन काल में शायद ही किसी व्यक्ति को मिला हो। गांधी के गुणों का वर्णन कहां तक किया जाय। उसकी हर एक बात निराली है। वह सत्य और अहिंसा का बेजोड़ पुजारी है। वह शान्ति का अवतार है, गरीबों और दलितों का सहारा है दुखियों और पीड़ितों की लकड़ी है, सदियों से गुलामी की जँज़ीरों में पड़े हुए भारत का सर्वस्व है और न मालूम क्या-क्या है। तभी तो वह दुनिया का सबसे बड़ा आदमी कहलाता है। लेकिन यह सब कुछ होते हुए भी केवल उसके नाम की रट लगाने से, उसके पाँव छूने से, उसके गुणों का बखान करने से, उसकी जय बुलाने से, हरबात में उसकी हाँ में हाँ मिलाने से, भारत आज़ाद नहीं होगा। भारत तो तभी असली मानों में आजाद होगा और समस्त सँसार को आजादी का पाठ पढ़ाएगा जब प्रत्येक भारतवासी किसी का अन्ध-भक्त न बनकर गाँधी की तरह सच्चा और पवित्र बन जायगा।

समस्त देश आज सेगांव के इस बूढ़े सन्त की ७१ वीं सालग्रह बड़ी धूमधाम से मना रहा है। हम भी इस तपस्वी के चरणों में अपनी श्रद्धांजली चढ़ाते हुए यह भावना करते हैं कि वह अपने पवित्र मिशन में कामयाब हो और भारत सदा के लिए आज़ाद हो, सब भाई-भाई की तरह मिलकर आनन्द से रहें। कोई किसी पर अत्याचार और अन्याय न करे, कोई किसी पर जबरन अपने विचार लादकर उसे गुलाम न बनाए अपनी-अपनी रुचि के अनुसार सबको विकास का पूरा-पूरा अवसर मिले। इस राज मार्ग को अपनाने से संतप्त दुनिया को राहत मिल सकती है और विनाशकारी युद्धों का खात्मा हो सकता है।

—•—

युरोप का महाभारत

—हिटलर ने डैंजिग को बिना शर्त जर्मनी में मिलाने, पोलिश गलियारे के सम्बन्ध में १ वर्ष बाद जनमत सँग्रह करने तथा पोलिश गलियारे के बीच को होकर जर्मनी को रास्ता दिये जाने की शर्तें पोलैंड के पास भेजीं और साथ ही अपनी सेनाएँ पोलैंड की सरहद पर भेजनी शुरू कर दीं।

—३१ अगस्त तक ब्रिटेन जर्मनी व पोलैंड में समझौते के लिए बात-चीत होती रही और एक सितम्बर को सबेरे ६ बजे अचानक हिटलर ने, बिना अल्टीमेटम दिये, पोलैंड पर हमला कर दिया डैंजिग के नाजी नेता हरफारेस्टर ने डैंजिग को जर्मनी में मिलाने के कानून को असली रूप दे दिया।

—ब्रिटेन ने जर्मनी को अल्टीमेटम दिया कि पोलैण्ड पर किया गया हमला फौरन बन्द कर दो। लेकिन ४ सितम्बर के ११ बजे दोपहर तक जर्मनी की तरफ से कोई उत्तर न मिलने पर ब्रिटेन ने ११ बजे युद्ध का ऐलान कर दिया और फ्रांस ने उसका साथ देने की घोषणा की।

—न्यूजीलैंड, आस्ट्रेलिया और कनाडा, तुर्की, शाम, अरब, और यहूदियों ने युद्ध में ब्रिटेन की सहायता करने का वचन दिया है।

—३ सितम्बर को सबसे पहले जर्मनी के द्वारा इँग्लैण्ड के 'एथिनिया' को बिना चेतावनी दिये डुबोने से जर्मन-ब्रिटेन युद्ध आरम्भ हुआ बाद में जर्मन पनडुब्बियों ने ब्रिटेन के कई जहाज डुबो दिये हैं।

—आयर्लैण्ड, स्पेन, पुर्तगाल, ईरान, युगोस्लाविया, रूमानिया, बेलजियम, बल्गेरिया, इटली, अमरीका ने इस युद्ध में तटस्थ रहने का ऐलान किया है। रूस ने तो पोलैण्ड पर आक्रमण करके पोलैण्ड के साथ की गई अपनी सँधि की धज्जियां उड़ा दी हैं।

—फ्राँस ने ४ सितम्बर से सैनिक कार्रवाई शुरू की और अब फ्रांस जर्मनी की मैगिनोट लाइन व सिगफ्रीड लाइन पर घमासान युद्ध हो रहा है।

—जर्मन फौजों द्वारा पोलिश सेना की हार व वहां की सरकार का पतन होता देखकर १७ सितम्बर को सबेरे ६ बजे रूस की सेना ने पोलैण्ड पर हमला कर दिया और पहले ही दिन ३४ मील चल कर पोलैण्ड के बड़े हिस्से पर कब्जा कर लिया।

—पोलैण्ड के अरक्षित नगरों गांवों, सिविल-स्थानों, अस्पतालों आदि पर भी जर्मनी ने बर्बर हवाई हमले व गैस का प्रयोग करके युद्ध कानून को तोड़ दिया है।

—जर्मन व रूस फौजों ने लगभग सारे पोलैण्ड पर कब्जा कर लिया है। पोलैण्ड सरकार वारसा से उठकर पैरिस चली गई है। जर्मनों का कहना है कि उन्होंने कई लाख पोलों को गिरफ़्तार कर लिया, उनके ८ सौ हवाई जहाज नष्ट कर दिये व पकड़ लिये लेकिन पोलों की सेना के साथ रहने वाले फ्रांसीसी प्रतिनिधियों का कहना है कि लड़ाई में अधिक हानि जर्मनी की हुई।

—पोलिश राष्ट्रपति मोसिकी को नजरबन्द कर दिया गया है।

—वारसा पर जबरदस्त गोलाबारी के बावजूद भी पोलों ने आत्म-समर्पण नहीं किया है।

—पोलैण्ड के जीत लेने पर जर्मनी की ओर से लड़ाई बन्द करने की अफ़वाहें आने पर भी ब्रिटेन व फ्रांस ने एलान किया है कि जब तक नाजीवाद का नाश नहीं हो जाता तब तक लड़ाई बन्द नहीं होगी।

—०—

कांग्रेस के युद्ध-सम्बन्धी बयान का मुख्यांश

यूरोप में युद्ध ...का ऐलान हो जाने से जो नाजुक ...त पैदा हो गई है ...स पर कार्य समिति ने ध्यान विचार किया है। ... युद्ध छिड़ जाने के बाद ब्रिटिश सरकार ने घोषणा ... करदी है कि भारत भी ... में भाग ले रहा है। इसके ... अलावा ब्रिटिश सर-... ने आर्डिनेंस जारी कर दिये है, ... भारत शासन ...धान कानून सँशोधन बिल पास कर ... दिया है और ... कार्रवाइयां की हैं जिनका भारतीयों ... पर बहुत ...भाव पड़ा है और जिनके कारण प्रान्तीय ... सरकारों ... अधिकार और उनकी कार्रवाई सीमित हो ... गई हैं। ...ब बातें भारतियों की राय लेकर नहीं की ... ब्रिटिश सरकार ने जानबूझ कर भारतीयों ...षित इच्छाओं के विरुद्ध कार्य किया है। कार्य-...मिति की निगाह में ये कार्रवाइयां बहुत ज्यादा ...भीर हैं।

कांग्रेस फासिज्म और नाजिज्म के सिद्धान्तों को ... और हिंसा को बढ़ा देने वाले समझती हुई उनके ... कई बार असँतोष प्रकट कर चुकी है। इसलिए ... समिति बिना किसी हिचकिचाहट के पोलैंड पर ... गये जर्मनी के हमले की निन्दा करती है और ... के साथ हमदर्दी जाहिर करती है जो इस हमले ... मुकाबला कर रहे हैं।

कांग्रेस ने इस बात की भी घोषणा की थी कि ...हां तक युद्ध और शांति का सम्बन्ध है उसका ...सला भारत की जनता ही कर सकती है। कोई ...हरी ताकत इस सम्बन्ध में अपना फैसला भारत ... नहीं लाद सकती और न भारतीय जनता इस ...त की ही इजाजत दे सकती है कि साम्राज्यवादी ...देश्यों को पूरा करने के लिए भारतीय साधनों का ...प्रयोग किया जाय। ऊपर से लादे गये फैसले या ...ना भारतीय जनता की मर्जी के इन साधनों को ...स्तेमाल करने की कोशिश का विरोध जरूर किया ...जायगा।

घोषित उद्देश्यों का उल्लंघन

कांग्रेस कार्य समिति को यह पता है कि ब्रिटेन और फ्रांस की सरकारों ने यह घोषणा की है कि प्रजातन्त्र और आजादी के लिए तथा आक्रमण का अन्त करने के लिए वे लड़ रही हैं। पर पिछले इति-हास में ऐसी तमाम मिसालें मौजूद हैं जिनसे यह प्रकट होता है कि सन १९१४-१८ की लड़ाई में जो कुछ कहा गया था, जिन आदेशों और उद्देश्यों की घोषणा की गई थी लगातार उनके विरुद्ध कार्य किया ... गई थी कि युद्ध का ...तन्त्र और आत्मनिश्चय के सिद्धाँत की ...पना तथा छोटे २ राष्ट्रों की आजादी की रक्षा ... है, पर जिन सरकारों ने दृढ़ता के साथ इन ... करने ... की घोषणा की थी उन्हीं ने इस तरह की ...देश्यों ... की जिनसे आटोमन साम्राज्य कायम ... सन्धि ... साम्राज्यवादी उद्देश्यों को साकार ... गुप्त ... करने ... के लिए ... इतिहास ... गया। इ... रूप दिया ... र हो ... फिर यह ... किए गए ... दृढ़ता के साथ ... आ... ठुकरा दिए जाते हैं। ... उसका वि... को क़ायम रखने और ... राज्य में लड़ता है, तब उसे अपने ... और हिं... खात्मा जरूर करना चाहिए ... चाहिए। प्रजातन्त्र शासन स्थापित करना ... विधान-... ना को, बाहरी दस्तन्दाजी के बगैर ... हक मिल... द्वारा अपना विधान निर्माण करने ... ना चाहिए चाहिए। और उन्हें यह अधिकार भी मिल... सकें। कि वे अपनी नीति खुद निर्धारित कर ... से स्वतन्त्र और प्रजातन्त्रात्मक भारतवर्ष बड़ी खुशी ... आक्रमण के खिलाफ पारस्परिक रक्षा और आर्थिक-सहयोग के लिए अन्य स्वतन्त्र देशों का साथ देगा।

युक्तप्रांत, मध्यप्रांत, बिहार, बम्बई, उड़ीसा, कोटा व राजगढ़ राज्य शिक्षाविभाग द्वारा स्कूलों व पुस्तकालयों के लिए स्वीकृत।

ॐ

मार्गशीर्ष १९९६] साहित्य सदन, अबोहर [दिसम्बर १९३९

सम्पादक-- तेगराम

श्रीयुत सुभाषचन्द्र बोस

वार्षिक मूल्य २॥)
एक अंक का।)

यू० पी० के ग्राम सुधार विभाग द्वारा

ग्रामीण पुस्तकालयों के लिये स्वीकृत❀

सर्व साधारण के लिये उपयोगी, सरल पुस्तकें

❀**विश्वधाय**—इस में गौओं के पालन-पोषण सम्बन्धी ३२ आवश्यक विषयों का विशद वर्णन किया गया है। पुस्तक प्रत्येक गोपालक तथा ग्रामीण भाई के लिए अत्यन्त काम की है। लगभग ८० पृष्ठों की इस सचित्र पुस्तक का मूल्य केवल ।) है। डाक खर्च अलग।

❀**ग्राम-सुधार नाटक**—ग्रामीणों पर होने वाले घोर अत्याचार, उन में फैल अनेकों कुरीतियों व अंध-विश्वासों का नग्न चित्र तथा ग्रामोद्धार के सरल उपायों कायदि आप दिग्दर्शन करना चाहते हैं तो राष्ट्रीय भावों से ओत प्रोत इस नाटक को पढ़िये। सवा सौ पृष्ठों की पुस्तक का मूल्य ॥=) है। डाक खर्च अलग।

❀**बाल गोपाल**—बालकों के रोजमर्रा काम में आने वाली बातों को इस छोटी सी पुस्तक में सुन्दर और सरल गीतों में वर्णित किया गया है। भाषा चटकीली और इतनी सरल है कि पुस्तक में एक भी संयुक्त अक्षर नहीं आया है। पृष्ठ संख्या ४२ मू० =॥, डाक खर्च अलग।

❀**ईसप-नीति-निकुंज(प्रथम भाग)**—इस पुस्तक में महाषि ईसप की ६१ शिक्षाप्रद, दिल चस्प कहानियों का पद्यानुवाद है। कविता बड़ी सरल है। एक बार शुरू करके खतम करने को ही जी चाहता है। मू० ।।) डाक खर्च अलग।

बालोपदेश (प्रथम भाग)—इस पुस्तक की सर्व प्रियता इसी बात से सिद्ध हो जाती है कि गाँधी आश्रम हटुण्डी जैसी राष्ट्रीय संस्था ने अपनी सभी ग्रामीण पाठशालाओं के लिये इस की इकट्ठी ही सैंकड़ों प्रतियां ली हैं। पृष्ठ ३०, मू०–) मात्र, डाक खर्च अलग।

मिलने का पता:—साहित्य सदन, अबोहर (पंजाब)

नोट:—'दीपक' के ग्राहकों को ये सब पुस्तकें पोने मूल्य में मिलेंगी।

दीपक—वर्ष ५, संख्या २, दिसम्बर १९३९ ई०

जाट जाति व सज्जनों से अपील

इस साल मारवाड़ में भयङ्कर दुर्भिक्ष पड़ रहा है, केवल जाट ही नहीं बल्कि उनकी सभा व पाठशालाऐं तथा बोर्डिङ्ग हाउसों की भी अवस्था डांवाडोल हो गई है। मारवाड़ की जाट जनता यहाँ से अपने घरबार छोड़कर उदरपूर्तिके हेतु बाहर चली गई है; और रही सही भी अब जा रही है। ऐसी अवस्था में मारवाडी जाट सँस्थाओं को खड़ी रखना कठिन ही नहीं बल्कि असम्भवसा जान पड़ता है। दस बारह वर्षों तक तो ये सँस्थायें मारवाडी जाटों के कन्धों पर खड़ी रहीं; परन्तु अब सहारे की बड़ी भारी ज़रूरत है; यदि जल्दी सहारा न दिया गया तो खिला खिलाया गुल मुरझा जायगा। जातिका उद्धार ऐसी सँस्थाओं के कायम रखने में ही है क्योंकि हम अपूर्ण हैं ये हमें पूर्ण बनायेंगी। इन सँस्थाओं में से बहुत से लावारिस (अनाथ) विद्यार्थी भी विद्याध्ययन कर रहे है, तथा ऐसे वारिस भी मौजूद हैं, जिनके माता-पिता उनको यहां पढ़ते हुए छोड़ कर बाहिर चले गये हैं। वे बच्चे भी इन्हीं सँस्थाओं के भरोसे पर -हैं। अतः सर्वहितैषी सज्जनों से अपील की जाती है कि इन संस्थाओं को दान देकर हरी भरी रखने का पूरा प्रयत्न करें। आप लोगों की सेवा में भजन मण्डली तथा उत्साही जाति सेवक भेजे जा रहे हैं, हमें पूर्ण आशा है कि आप भरसक सहायता देकर हमारे उत्साहको बढ़ाने की कृपा करेंगे।

मंत्री, मारवाड़ जाट-कृषक-सुधारक सभा, (जोधपुर)

'दीपक' के नियम

१—'दीपक' हर अंग्रेज़ी महीने के पहले सप्ताह में प्रकाशित होता है।

२—'दीपक' का वार्षिक मूल्य डाक व्यय व विशेषांक सहित केवल २॥) है। एक प्रति ४ आने, विदेश से ४)।

३—'दीपक' में प्रकाशनार्थ लिखे जाने वाले लेख अधूरे न हों, पृष्ठ के एक ओर ही संशोधन के लिये इधर उधर जगह छोड़ कर सफ़ाई से लिखे हों, विस्तार में चार पृष्ठ से अधिक न हों। भाषा उनकी सरल व शैली रोचक हो जिससे साधारण योग्यता वाले व्यक्ति भी जिनके हितार्थ 'दीपक' प्रकाशित हुआ है, उन्हें पढ़ व समझ सकें।

४—'दीपक' का मुख्य उद्देश **ग्राम-सुधार, समाज-उत्थान, शिक्षा व राष्ट्र-भाषा-प्रचार** द्वारा जनता-जनार्दनमें जीवन-जागृति पैदा करना है। अतः धार्मिक ईर्ष्या, साम्प्रदायिक विद्वेष पूर्ण उपरोक्त उद्देश्य के विपरीत कोई लेख न छप सकेगा।

५—लेख घटाने-बढ़ाने, संशोधन करने तथा प्रकाशित करने या न करने का अधिकार संपादक को होगा।

६—'दीपक' के ग्राहकों को पत्र-व्यवहार करते समय अपना पूरा पता और ग्राहक नम्बर साफ अक्षरों में लिखना चाहिये, अन्यथा जवाब देर से मिलेगा। ३ मास से कम समयके लिये पता बदलवाने के लिये डाकखानेसे प्रबंध करें।

७—अस्वीकृत लेख डाक खर्च भेजने पर ही लौटाये जा सकेंगे अन्यथा नहीं।

८—जिन सज्जनों को किसी मास का 'दीपक' न मिले उन्हें पहले अपने डाकघर से पूछ ताछ करके बाद में हमारे पास लिखना चाहिये।

८—लेख, कविता, समालोचना के लिये पुस्तकें और बदले के पत्र, सम्पादक, 'दीपक' साहित्य सदन, अबोहर के पते से और मूल्य तथा प्रबन्ध विषयक पत्र मैनेजर, 'दीपक' के पते से भेजने चाहियें।

स्तंभ–सूची

१ जीवनन-चर्चा
२ पुस्तकालय
३ नवीन-शिक्षा
४ राष्ट्र-भाषा
५ हमारे गाँव
६ देहाती-साहित्य
७ खेती-बाड़ी
८ उद्योग-धंधे
९ पशु-पालन
१० स्वास्थ्य-साधना
११ हमारा आहार
१२ महिला-मंडल
१३ बाल-मंदिर
१४ प्रकृति और विज्ञान
१५ सामयिक चर्चा
१६ फुलवाड़ी
१७ सम्पादकीय नोट
१८ संसार-चक्र

कृपालु लेखक-लेखिकाओं से नम्र निवेदन है कि वे 'दीपक' के लिये कुछ लिखने से पहिले एक बार हमारे स्तंभों की सूची देख लें। इन स्तंभों के अतिरिक्त भाव-पूर्ण किन्तु सात्विक कविता और कहानियों के लिये भी 'दीपक' के कुछ पृष्ठ 'रिज़र्व' हैं। सरल भाषा में लिखे गये व्यवहारिक लेख 'दीपक' के श्रद्धापात्र होंगे।

—सम्पादक

Approved for use in Schools in U.P., C.P., Bihar, Bombay, Orissa, Kotah and Rajgarh States.
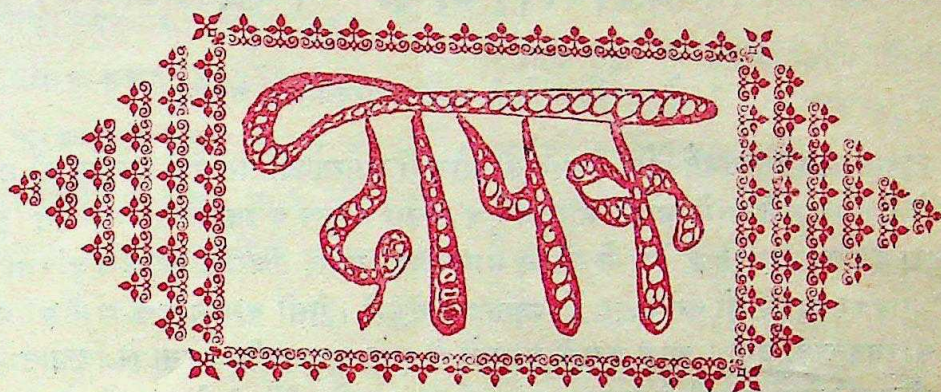
सत्यम् :: शिवम् :: सुन्दरम्

सम्पादक—तेगराम

मार्गशीर्ष १९९६ | वर्ष ५, संख्या २ | पूर्ण संख्या ५० | दिसम्बर १९३९

निर्बलों का हथियार नहीं !

अहिंसा और त्याग को निर्बल मानना भूल है। मैं अपने व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर कह सकता हूँ कि अहिंसा और त्याग के लिये मनुष्य में पाशविक बल की अपेक्षा कहीं अधिक साहस, शक्ति और सहिष्णुता की आवश्यकता है। इसलिये अहिंसा और त्याग-बल का प्रभाव भी पशुबल की अपेक्षा कहीं अधिक है। मनुष्य में सामर्थ्य होते हुए भी बदला न लेकर क्षमा करदेने के लिये हृदय की विशालता की आवश्यकता है। क्षमा करना सबल के लिये ही सम्भव है, निर्बल क्या क्षमा करेगा ?

— गांधी जी

सामाजिक ग़दर

ले०—विश्व-प्रेमी राजा महेन्द्रप्रताप, जापान

राजा साहब भारतवर्ष और सँसार की मौजूदा समस्याओं पर एक बिल्कुल ही नये दृष्टि-कोण से विचार करते हैं। प्रस्तुत लेख में आपने भारतवर्ष व सँसार में सुख व स्वतन्त्रता स्थापित होने का एक नया उपाय सुझाया है। आप चाहते हैं देश में फ़ौरन सामाजिक ग़दर, जिससे लड़के-लड़कियां सब सामाजिक बन्धनों को तोड़कर अपने को हर प्रकार ने स्वतन्त्रत समझें। ऐसी बन्धन-मुक्त समाज प्रत्येक व्यक्ति को हर प्रकार की स्वतन्त्रता देगी। आज कल के बन्धनों से मुक्त जब व्यक्ति दृढ़ता से विश्वास कर लेंगे कि हम स्वतँत्र हैं, मौजूदा लड़ाई झगड़ों के मुख्य कारण धार्मिक व जाति-पांति के भेद भावों को न मानेंगे, आपस में सब धर्मों को समदृष्टि से देखेंगे. तब सँसार में सच्ची स्वतन्त्रता स्थापित होगी। दिनों-घण्टों में मिलेंगे देश को सामाजिक ही नहीं राजनैतिक स्वतन्त्रता दिलाने वाली यह योजना विचारणीय है। —सं०

कहा तो यह जाता है कि जैसा बीज बोओगे वैसा फल खाओगे। और यह प्रत्यक्ष भी है। परन्तु बेचारा बीज भी क्या करे यदि उसे बुरी भूमि मिले। अच्छा, बीज भी अच्छा, भूमि भी अच्छी, पर यदि पानी न मिले तोभी तो फल नहीं खा सकते। सब कुछ मिलने पर, फल भी लगने पर, हो सकता है कि टिड्डीदल, अथवा ओले, एक दम ही सब किये धरे को नष्ट करदें! ऐसा है हमारा जगत्, ऐसा है हमारा जीवन, परन्तु हम बहुधा दूर की सोचे बिना, इधर उधर का विचार किये बिना, केवल एक बात को पकड़ लेते हैं और लगते हैं उसकी रट लगाने !!

हमारे जीवन में हमारा उद्योग, हमारे पड़ौसियों का कार्यक्रम और "दैवी" घटनायें मिलकर फल उत्पन्न करती हैं। और इन्हीं फलों का फिर वह बीज होता है जो आगे फल लाता है। इसी प्रकार उस फल उत्पन्न करने में हमारा, पड़ौसियों का और 'दैवी" घटनाओं का असर होता है।

भारतवर्ष में आज अच्छे से अच्छे विचार होने में क्या सन्देह है। जो अच्छे से अच्छे विचार कहीं भी सँसार में हैं वह बीज रूप में हमारे आर्यान में भी हैं। परन्तु सामाजिक बीमारियों के कारण और राजनैतिक कुदशा के कारण वह बीज नहीं पनपते। और कभी बढ़ते भी हैं तो कुप्रथा और दुरावस्था से उत्पन्न हुए कीड़े सारी खेती को चौपट कर जाते हैं !!!

मेरा कहना है कि देश को शीघ्र, एक दम, सामाजिक ग़दर की आवश्यकता है। मैंने राजनैतिक ग़दर जान बूझकर नहीं कहा। यदि सामाजिक ग़दर किया जा सके तो फिर राजनैतिक दशा आप ही सुधर जायगी। स्वामी दयानन्द जी ने सामाजिक क्रांति करनी चाही, की भी, पर वह क्रांति फिर सुधारवाद में बदल गई। इससे पहले, हमारे गुरू नानक जी का भी सामाजिक ग़दर सुधारक बन गया। भारतवर्ष में यदि कभी सामाजिक ग़दर सफल हुआ हो तो वह केवल बुद्ध भगवान् का था। पर उस ग़दर को प्राचीनवादियों ने उखाड़ फैंका। "हम बड़े"—"हमारे दादे बड़े" पक्ष वाले सदा ग़दर को रोकते हैं और यदि फिर भी ग़दर हो जाय तो उसके असर को मिटाते हैं।

लड़के लड़कियाँ एक दम अब ही सामाजिक ग़दर कर सकती हैं। उनको यह शिक्षा दीजिए कि सामाजिक बँधनों को तोड़ दो! जो जहाँ चाहे शादी-ब्याह करे और जब जी न मिले तो नाता तोड़ दे! वह सामाजिक बन्धनों से मुक्त समाज ही हमको हरेक प्रकार की स्वतन्त्रता दे सकती है। यह वर्षों में नहीं, दिनों घण्टों में हो सकता है। क्या आपने यह नहीं सुना कि ज्ञान एक क्षण में प्राप्त हो जाता है? हम को केवल यह मान लेने की आवश्यकता है कि हम स्वतन्त्र हैं और फिर देखिये कि क्या चमत्कार होता है! पर शर्त यह है कि केवल कहना नहीं विश्वास होना चाहिए।

उस मुसलमान ने, जिसने यह ईमान पैदा किया कि मेरा सिर सिवाय ख़ुदा के और किसी को नहीं झुकेगा, दुनिया में एक नई रोशनी पैदा करदी। यूँ तो आज भी बहुत से मुसलमान कहलाने वाले उसी बात को दुहराते हैं, पर किसी भी अफ़सर के सामने दोहरे होकर सलाम करते हैं। जो मनुष्य पूर्णतः यह विश्वास करले कि वह स्वतन्त्र है वह जाति-पाँति के भेद-भाव न करेगा। यह सब ही धर्मों को अपना समझेगा, क्योंकि वह आज कल के बन्धनों से मुक्त है। फिर क्यों न ऐसे मनुष्य आपस में मिल जाएंगे? अवश्य मिल जायेंगे, क्योंकि झगड़े का कोई कारण ही न रह जायगा। और जब मिल जायेंगे तो स्वतन्त्र होंगे, स्वतन्त्र रहेंगे, सुख भोगेंगे; सामाजिक और राजनैतिक भी! और जो भारतवर्ष के लिये सत्य है वही समस्त सँसार के लिए। इसी प्रकार ही तमाम दुनिया में स्वतँत्रता स्थापित हो सकती है। इसी को मैं 'सँसार-सँघ' कहता हूँ। एक-एक व्यक्ति आज ही अब ही बन्धनों को तोड़ दो। समाज को और सँसार को स्वतँत्र बनाओ!!

जीवन और आदर्श

ले०---श्री 'रहबर' बी० ए०

आदर्श-हीन जीवन बे डोर के पतङ्ग के समान है जो कि हमेशा हवा के रहम पर जीता, उसके थपेड़े सहते इधर उधर मारा-मारा फिरता तथा कभी भी ऊँचा उठ नहीं सकता है। लेखक ने इस छोटी सी कहानी द्वारा यह उच्च भाव सुन्दरता से व्यक्त किया है। —सं०

र्दी गुजर चुकी थी। बसन्त का दिन था। सूरज काफी चढ़ आया था। उसकी किरणें तेज थीं, मगर उनमें जलन न थी। भीनी-भीनी हवा मैदान की हरी-हरी घास से छेड़-छाड़ कर रही थी। बहुत से लड़के कनकव्वे लड़ा रहे थे। नीले, पीले, हरे और लाल रङ्ग के पतङ्गों की डोरें प्रसन्न-मुख चुस्त-चालाक लड़कों के हाथों में झटके खा रही थीं। पतङ्ग हवा में ऊपर उठते हुए ऐसे मालूम होते थे मानो रँग-बिरँगे कबूतर लौटनियां लगा रहे हैं। लड़के उन्हें देख-देख कर खुश होते थे। कभी २ जब दो पतङ्ग एक दूसरे से भिड़ जाते थे तो "वह फन्दा लगा" और "वह काटा" का शोर बरपा होता था। जैसे ही कोई पतङ्ग कट जाता था, तमाशबीन डोर लूटने भागते थे। बड़े-बड़े बांस और काँटेदार झाड़ियां हाथों में उठाये वे ऐसे टूटते जैसे चील मुर्दार पर झपटती हैं।

कनकव्वा-बाजों में एक लड़का था रमेश। वह बड़ा चँचल और फुर्तीला था। उसका नीले रङ्ग का पतङ्ग उड़ता हुआ नीले आकाश से मिला चाहता था। कितना ऊँचा चढ़ा था वह पतङ्ग!

रमेश ने इस पतङ्ग के साथ कितनी ही बाजियां जीती थीं। जिसके साथ फन्दा डाला उसको ही काट कर फेंक दिया। उसे इस हुनर के सब ऍच-पेच आते थे। फिर उससे कोई किस तरह लोहा लेता? वह विजय-तरङ्ग में मदमाता अपना ही पतँग ऊँचा चढ़ाने में लगा था। डोरको झटक-झटक कर धीरे-धीरे छोड़ रहा था और टकटकी लगाकर ऊपर की तरफ देखता जाता था। पतङ्ग क्षण-क्षण ऊपर उठ रहा था। उसकी ऊँचाई को देखकर रमेश का दिल बल्लियों उछल रहा था।

यकायक एक पतङ्ग उसकी तरफ बढ़ा। यह मुक़ाबले का चेलैंज था। रमेश का नशा टूटा और उसने नजर घुमाकर देखा तो फ़हीम पतङ्ग बढ़ाये चला आ रहा था। फ़हीम भी इस फ़न का माहिर था। रमेश से लग्गा लेना सिर्फ़ उसीका काम था। दोनों कनकव्वा बाजी के मँजे हुए खिलाड़ी थे। दोनों को अपने दांव-पेच पर नाज था। दोनों में मुकाबला होने लगा। चिड़ियों पर टूटने वाले बाज आपस में भिड़ गये।

तमाशबीनों की निगाहें इधर जम गईं। छोटे-छोटे पतङ्गबाज अपनी-अपनी डोरें समेट और पतङ्ग उठा उनकी नोंक-झोंक देखने लगे। आध घण्टे तक फन्दे लगते और निकलते रहे, एक दूसरे

जीतने की कोशिश कर रहा था।

आखिर फ़हीम ने फन्दा डाला और एक ऐसा झटका लगाया कि रमेश के पतङ्ग को काट कर फेंक दिया। तालियां बजीं और "लूटो लूटो" का शोर हुआ।

रमेश भी अपनी डोर एक लड़के को सँभाल लूटने वालों में जा मिला। वह नहीं चाहता था कि उसका पतङ्ग किसी दूसरे के हाथ में जा पड़े।

हवा का एक तेज़ झोंका आया और पतङ्ग को उड़ाकर दूर लेगया। रमेश की टाँगों में शक्ति थी और थी दौड़ने में फुर्ती। उसने पतङ्ग को जा लिया। मगर!……… मगर वह पतङ्ग अब उड़ने के काबिल न था। एक झाड़ी में फँस कर फट चुका था

रमेश पतंग को हाथ में उठाये बड़ी हसरत से देख रहा था। उसकी आँखों में शोक भरा था। पतङ्ग ने उसे जी थोड़ा करते देख कर कहा:—

"रमेश मेरे लिये यह शोक व्यर्थ है। मैं तो कागज़ के एक टुकड़े और बांस की तीलियों के सिवाय कुछ नहीं। मेरी ऊँचाई का साधन एक डोर था, जिसके कट जाने मात्र से हवा ने मुझे जहां-तहां उड़ाया और झाड़ियों में फँसा कर मेरा सत्यानाश कर दिया। अगर वह डोर न कटती तो हवा मुझे यूँ उड़ाये न फिरती, दुनियां मुझपर आवाजें न कसती। वह डोर ही मेरी तरक्की थी, वह डोर ही मेरा जीवन था……सोचो! इस बात पर ग़ौर करो!! तुम्हें तमाम उम्र पतङ्ग नहीं उड़ाने हैं। तुम्हें भी इस दुनियाँ में ऊपर उठना है जिसके लिये तुम्हें भी एक डोर—मज़बूत डोर की आवश्यकता है। अगर तुम दुनियां में भटकना नहीं चाहते, अगर तुम दूसरों की आवाज़ों का शिकार बनना नहीं चाहते, और अगर तुम गड्ढों में गिर कर, कटीली झाड़ियों में फँसकर, दुःखी होना नहीं चाहते; तो अपने लिये मज़बूत डोर तलाश करो अर्थात् अपने जीवन को किसी उच्च आदर्श के पीछे लगाओ और उससे इतनी दृढ़ता से चिमट जाओ कि रंज और गम, दुख और सुख तुम्हें उस आदर्श से अलेहदा न कर सकें। तभी तुम सफल हो सकते हो, इस जीवन को सार्थक बना सकते हो। बिना आदर्श के शारीरिक और मानसिक सब शक्तियां व्यर्थ हैं। वह जीवन को इसी तरह सफल नहीं बना सकतीं जिस तरह बिना डोर के हवा, कागज़ और बांस आदि कोई भी चीज़ पतङ्ग को ऊँचा नहीं उठा सकतीं। बिना आदर्श का जीवन बे-डोर का पतङ्ग है, जो हर वक्त हवा के रहम पर है। वह उसे मैदान में उड़ाये अथवा काँटेदार झाड़ियों में उलझाये।

आदर्श क्षितिज की भाँति दूर और सुन्दर है। हम उसे पकड़ नहीं सकते। परन्तु उसको पकड़ने के लिये दौड़ते रहना ही सच्चा जीवन है।

साहित्य कैसा हो?

साहित्य ऐसा होना चाहिये जिसके आकलन से बहुदर्शिता बढ़, बुद्धि की तीव्रता प्राप्त हो, हृदय में एक प्रकार की सञ्जीवनी-शक्ति की धारा बहने लगे, मनोवेग परिष्कृत हो जाए और आत्मगौरव की उद्भावना होकर वह पराकाष्ठा को पहुँच जाए। मनोरञ्जन मात्र के लिये प्रस्तुत किए गए साहित्य से भी चरित्रगठन को हानि न पहुँचनी चहिए। रसवती, ओजस्विनी, परिमार्जित और तुली हुई भाषा में लिखे गये ग्रन्थ ही अच्छे साहित्य के भूषण समझे जाते हैं। — आचार्य द्विवेदी जी

जीवन का विघ्न नासमझी है ?

ले०—श्री ब्रजमोहन मिहिर

आज चारों ओर मनुष्य दुःखों व मुसीबतों से पिस रहे हैं जबकि स्वभावतः मनुष्य-जीवन सुखमय बीतना चाहिये। फिर ऐसा क्यों ? लोग असावधानी, नासमझी और विचार-शून्यता के कारण अनाधिकार कार्य करके स्वयँ अपने दुःखों का कारण बनते हैं। उदाहरणतः शादी बहुत से कष्टों का कारण है परबस चलते कोई इससे नहीं बचता। इस सम्बन्ध में प्रकट किये विचार विवाह तथा सँतान के इच्छुक युवक युवतियों के लिए मनन योग्य हैं। —सं०

सँसार में अनेक प्रकार की कठिनाइयाँ हैं, पग पग पर मुसीबत है. सब तरफ दुःख ही दुःख दिखलाई पड़ता है। इतनी मुसीबतों के होते हुए भी लोग जिंदा रहते हैं, उन्हें अपनी जिन्दगी से मोह जो होता है। भय से मोह की उत्पत्ति होती है इसी लिये लोग शरीर को कायम रखने की इच्छा रखते हैं। इच्छा तृष्णा, सुख की लालसा-अभिलाषा से भय की उत्पत्ति होती है। इन सब घिराव और बन्धनों के होने ही से, बजाय इसके कि हम इससे छुट्टी लें, हम इसे सदा बनाये रखने की इच्छा रखते हैं। हमें तो इसमें मनुष्य-जाति की बेहयायी ही दिखलाई पड़ती है।

हमारे ख्याल से मनुष्य-जीवन सुखमय है। काम में अलहड़पन दिखलाने और उसपर निगाह न रखने ही से हम लोगों को मुसीबत घेरती है। अगर हम अपने विचार और कार्य में सजग रहें तो यह मुसीबत हमारे पास तक नहीं फटक सकती। इस बढ़ते हुए दुःख के कारण स्वयं हम तथा आसपास के और भी अनेक लोग हैं। पैदा होने के साथ ही हमारी स्वतन्त्रता नष्ट होने लगती है। हम ऐसे वातावरण में रक्खे जाते हैं, कि हमें अपनी तरफ से कुछ सोचने का मौका ही नहीं मिलता। होश सँभालते ही हमारे ऊपर आदेश और आज्ञा की दफा लगादी जाती है। जैसे ही बालक कुछ बड़ा हुआ कि माता पिता कहना शुरू कर देते हैं "भाई ! अब तुम बड़े होगये हो, तुम्हें पढ़ना लिखना चाहिये, अच्छी अच्छी बातें सीखनी चाहियें, बेअकली की बातें नहीं करनी चाहियें। इन सब आदेशों से बच्चा दो बातें ख्याल करने लगता है। पहली बात यह कि अब वह बड़ा हो गया है। इससे उसकी बाल्य-चपलता नष्ट हो जाती है। दूसरी हानि यह होती है कि जब वह आरम्भ ही से दूसरों की आज्ञा और आदेशानुसार कार्य करने लगता है तो उसकी अपनी ओर से सोचने की ताकत नष्ट हो जाती है। इसीलिये इस ढंग से पाले-गये बालक वही बातें करते हैं जो दूसरे उन से करने के लिये कहते हैं। इस प्रकार बालक में तीसरी बुरी आदत यह पड़ जाती है कि वह अपनी मामूली-मामूली बातों के लिये दूसरों पर निर्भर करने लगता है। इसके बाद कुछ और बड़ा होजाने पर बालक स्कूल भेजा जाता है। वहाँ भी उसका चरित्र अच्छा होने के बजाय और अधिक कुण्ठित हो जाता है, क्योंकि मास्टर का व्यवहार विद्यार्थियों के प्रति बड़े और छोटे का होता है। वे बालकों को डिसीप्लिन-अनुशासन के शिकञ्जे में खूब कसते हैं जिससे बालक के मन में भय का आतङ्क छा जाता है। बेचारे शिक्षक यह समझते ही नहीं कि विद्यार्थियों के साथ बराबरी और प्रेम का भी व्यवहार किया जा सकता है। इन तरीकों द्वारा बालक के पैदा होने के समय से लेकर शिक्षा की समाप्ति तक उसका जीवन एक गलत ढङ्ग से आरम्भ होकर अस्वाभाविक बन जाता है। बालक के जीवन आरम्भ करते-करते

उसका ढंग इतना बिगड़ जाता है कि वह निर्मल चित्त और स्वतन्त्र बुद्धि द्वारा कोई कार्य न सोच सकता है और न कर सकता है। अतः उसका सारा जीवन दुःख और क्लेश से घिर जाता है।

दूसरे लोग अपने को बालकों के इतने हितचिन्तक समझने लगते हैं कि वे सदा यही खयाल करते हैं कि वे जो कुछ बालकों के लिये सोच सकते या कर सकते हैं उसे बालक स्वयँ नहीं सोच सकता। इस जोश में आकर वे सब प्रकार से अपने को बालकों की बेहतरी के ठेकेदार समझने लग जाते हैं। इसी ठेकेदारी में वे बालकों को पढाते हैं, और बाद में चाहे वे बालक किसी काबिल हों या न हों, चाहे वे अपनी जुम्मेदारी को समझते हों या न समझते हों, वे बालकों की शादी करने के खयाल को भी दरगुजर नहीं करते, बल्कि अपना बस चलते वे उनकी शादी करके ही छोड़ते हैं। इन सब बातों के लिखने से हमारा यह मतलब नहीं है कि मां-बाप उनकी कोई देख रेख न करें और वे आवारा हो जांय। आप उनकी सब बातों का जरूर ख्याल करें। आपकी देख-रेख ऐसी होनी चाहिये कि जिससे उनके अन्दर स्वतः विचार करने की ताकत उत्पन्न हो, वे जीवन के रचनात्मक कार्य को कर सकें। आपकी देख रेख उनके लिये ऐसी मदद होनी चाहिये कि जिसके द्वारा वे अपने पैरों पर खड़े हो सकें, जीवन की प्रगति को समझ सकें। उनके प्रति यदि आप अपना यह दृष्टिकोण रखते हैं तो आपको यह ख्याल करने की जरूरत नहीं पड़ेगी कि हमारा लड़का आई० सी० एस० होता है, या वकील बनता है, शादी करना पसन्द करता है या नहीं करता। माता पिता का तो बच्चों के प्रति सिर्फ यही कर्तव्य है कि वे अपने बालकों की बुद्धि इस कदर जाग्रत करदें कि जिससे वे अपनी बातों को स्वतः भली प्रकार समझ सकें। ऐसा करने से आप माता-पिता की हैसियत से मुसीबत में न पड़ेंगे और आपके लड़कों में अपनी बातों के समझने की शक्ति के होने से वे भी वही काम करेंगे जो उनके लिये अत्यावश्यक होगी और अपनी जिंदगी को दुःखमय न बनावेंगे।

मुसीबत तो उस समय आती है जब हम ऐसा काम कर बैठते हैं जिसके कि हम पात्र नहीं हैं। अनाधिकार कार्य करने से कार्य की प्रतिक्रिया होती है। इस प्रतिक्रिया से हमारे अन्दर स्मृति जाग्रत होती है जोकि हमें 'मैं पन' का भान कराती है। सदा 'मैं'-'मैं' के स्मरण से जीवन दुःखमय हो जाता है। इसलिये मनुष्य को अपने प्रत्येक कार्य में सावधानी बरतनी चाहिये।

अनाधिकार कार्य के उदाहरण में शादी का ही मामला ले लीजिये। जीवन के अधिकाँश कष्ट शादी ही से आरम्भ होते हैं। हिन्दुस्तान में चाहे कोई अमीर हो या गरीब, चाहे वह शादी करने के काबिल है या नाकाबिल, बिरले ही मनुष्य बचते हैं जो शादी करने से बाज आते हों। शादी करना तो अयोग्य भी चाहते हैं, लेकिन किसी जोरदार कारण से वे अपनी इस मनोकामना को सफल न बना सकें तो लाचारी है। यह लोगों की निगाह में इतना बड़ा प्रलोभन है, इतना बड़ा सुख है कि जिसे वे टाल नहीं सकते। ऐसा लोग क्यों चाहते हैं इसकी कुल बातों को हम इस लेख में नहीं देते हैं। इसके लिये एक दूसरा ही स्वतन्त्र लेख रहेगा। इस सम्बन्ध में केवल यह एक बात बतला देनी जरूरी मालूम होती है कि अधिकतर लोग विचार-शून्य हैं। अन्दर से इतने गरीब हैं कि उनके लिये यह प्रलोभन इतना जबरदस्त है कि जिसका मुकाबला वे कर नहीं सकते।

शादी के द्वारा इन्द्रीय सुख की-प्रवृत्ति हमें अनेक प्रकार के कष्टों में डाल देती है। हिन्दुस्तान में अधिकतर ऐसे ही लोग हैं जो गार्हस्थ्य-जीवन के भार को उठाने में बिलकुल असमर्थ हैं। प्राचीन जातीय प्रथा के अनुसार, माता पिता की इच्छा और स्वयं मनुष्य की उस ओर प्रवृत्ति होने के कारण लोगों की शादी हो जाया करती हैं। इस शादी को हम क्या कहें। अगर इसका नाम बरबादी रक्खा जाय तो ज्यादा

मौजूँ है। शादी तो सिर्फ कहने के लिये ही शादी है। शादी करने वाले यह समझते ही नहीं कि एक इन्सान के साथ क्या इन्सानी बर्ताव हो सकता है। सुख-भोग की लालसा या हविस को ही लोग प्रेम कहते हैं। प्रेम तो एक बिलकुल ही दूसरी वस्तु है। उसमें स्थूल शरीर का लगाव नहीं होता, और न उसमें कोई प्रतिक्रिया ही होती है। प्रेम तो खैर बहुत ऊँची चीज है, साधारण जीवन के लिये जो बातें आवश्यक हैं वे भी तो इन विवाहितों में नहीं पाई जातीं। बहुत कम दम्पति ऐसे हैं जिनका जीवन आदान प्रदान के नाते भी सुख से बीतता हो। उसमें मनोमालिन्य के लिये सब प्रकार का भय है। बहुत सी बातोंमें वे एक दूसरे से सहमत नहीं होते जिससे उन के जीवन में सदा अशान्ति और कलह बनी रहती है। ऐसी हालत में आप समझ सकते हैं कि जीवन सुखी है या दुःखी। खतरे की यह पहली घण्टी है, लेकिन इस पर ध्यान कौन देता है? जिस समय लालसा की प्रकृति अपनी आरोहरण दशा में होती है तो विचार की सद्गति मन्द पड़ जाती है। सोडा वाटर की तरह कुछ समय तक यह जोश कायम रहता है, लेकिन जीवन के थपेड़ों के सामने वह जोश भी बुदं-बुदा कर ठण्डा पड़ जाता है।

शादी कर लेने के बाद से जीवन की समस्यायें दिनों-दिन जटिल होती जाती हैं। इसके अनेक रूप हैं, जिन्हें प्रति व्यक्ति अपने लिये स्वयँ समझे। धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक तथा वैयक्तिक-सभी समस्यायें फैले हुए सूर्य के मुख की तरह दम्पति के सामने आती हैं; जिनके मूल में अज्ञान है। इन में से हर एक उसे डसने के लिये तैयार रहती हैं। उदाहरण के लिये हम इस में से अर्थ सङ्कट को लेते हैं। रुपये-पैसे की दृष्टि से बहुत कम मनुष्य ऐसे हैं जो विवाह की जिम्मेदारी को बर्दाश्त करने के काबिल थे। यदि उनमें बुद्धि की सजगता होती तो वे जिस काम को करने के लिये तैयार हो रहे हैं उसपर जरूर विचार करते, उसके रहस्य को समझते और समझ बूझ कर ही उसमें हाथ डालते।

इस भांति शादी के रूप में दुःखमय जीवन का प्रथम अध्याय आरम्भ होता है। इसका दूसरा अध्याय इससे भी कहीं बिकट है जो मनुष्य को कहीं का नहीं रहने देता। गार्हस्थ्य जीवन में परिवार की वृद्धि होने के साथ साथ, जीवन में दुःख और कष्टों की भी वृद्धि होती रहती है। जीवन के कार्य्यों में हमारा कोई नियन्त्रण नहीं होत, विचार का गाम्भीर्य नहीं रहता। इन दोनों के न होने से दुःख का भी कोई अन्त नहीं रहता। अगर कोई अनहोनी रुकावट नहीं है तो एक मनुष्य अपने जीवन में एक-एक दर्जन बल्कि इससे भी अधिक सन्तान उत्पन्न कर लेता है। यह भी देखा जाता है कि गरीबों के यहां सन्तान अधिक होती है। जिस घर में दो प्राणियों की जरूरत भी ठीक से पूरी नहीं होती वहां इतने अधिक प्राणियों के हो जाने से क्या मुसीबत हो सकती है; इसका विचार करने ही से शरीर कांप उठता है। ऐसे घर में उत्पन्न हुये बालक कीड़ों की तरह इधर उधर रेंगा करते हैं। उनकी उचित देख भाल का वहां कोई प्रबन्ध नहीं रहता। वे अपनी ही जिन्दगी जीते हैं और अपनी ही जिंदगी मरते हैं। इस रोमाञ्चकारी दृश्य को देख कर भी लोगों की आंख नहीं खुलती। उनकी पुरानी आदतें बार बार उन्हें अपनी ओर खींच लेती हैं। ऐसे माता पिता से उत्पन्न हुई सन्तान कैसी कुछ हो सकती है, इसका अन्दाजा भली प्रकार किया जा सकता है।

लोगों का यह विषय-भोग सुख तो ऐसा है कि जैसे कोई मनुष्य १००) रुपये उधार लेकर उसके ब्याज में १०००) रुपये की रकम तो दे चुकता है लेकिन १००) रुपये मूल का देने में असमर्थ रहता है। ऐसे लोगों की यह दशा हो जाती है कि उन्हें दोनों समय भर पेट भोजन नहीं मिलता, उनके बदन के कपड़े तक छिन जाते हैं। एक ओर उनकी यह हालत है दूसरी ओर उनके बच्चों की हालत उनसे भी बदतर रहती है। अतः प्रत्येक मनुष्य को अपने कर्म और क्षणिक सुखों की ओर पूरी निगाह रखनी चाहिये।

विचारवान युवक और युवतियों के सामने आधुनिक काल में शादी का प्रश्न एक बहुत ही आवश्यक प्रश्न है। उन्हें बहुत ही गम्भीरता पूर्वक इस मामले पर विचार करना चाहिये। अगर उन्हें यह ठीक समझ में आता है कि शादी कर लेने से उनका जीवन अधिक दुःखमय हो जायगा तो वे इस मामले में कभी हाथ न डालें। लेकिन जीवन की अनर्गलता के सम्बन्ध में भी उन्हें पूर्ण सचेत रहना चाहिये। शादी न करने का अभिप्राय जीवन में अनाचार कभी नहीं हो सकता। जिन लोगों ने ना समझी से, अज्ञानवश अपनी तथा दूसरे सम्बन्धियों की प्रेरणा से शादी कर ली है उन्हें चाहिये कि वे अपने जीवन के सम्बन्ध में इतने सचेत हो जांय कि वे इसमें और अधिक दुःख की वृद्धि न करें। उन्हे अपने इन्द्रीय सुखों के रहस्य की विषमता को समझकर उससे छुट्टी लेलेनी चाहिये। ऐसा करने से आगे आने वाले दुःखों का अन्त हो जायगा। दुःख का अन्त अवश्य है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।

उनका इस प्रकार का विचार और वैसाही जीवन बनना उनके लिये कल्याणकारी है तथा सारे सँसार के लिये भी। यदि किसी एक मनुष्य का कार्य सदा पूर्ण होता है तो वह सँसार की पूर्णता में बहुत सहायक होता है।

जनसँख्या की अधिक वृद्धि आजकल की बढ़ती हुई बेकारी का मुख्य कारण है। इस पहेलू से भी लोगों को अपनी आदतों के सम्बन्ध में विचार करना चाहिये। यदि मनुष्य व्यक्तिगत रूपसे अपने दुःखों में वृद्धि नहीं करता है तो इससे वह सँसार के दुःखों को भी कम करता है। अतः मनुष्यों को अपने विचार और कार्य के सम्बन्ध में सदा चैतन्य रहना चाहिये।

भूल !

ले०—श्री विश्वप्रकाश दीक्षित 'बटुक'

छा रही है चारों ओर दुसह दुखों की वह्नि,
भाग्य प्रतिकूल कृश देहों पै न है दुकूल।
दीखते न दो भी दाने भूख हरने को हाय!
बिंध रहे रोम रोम तीखे दासता के शूल।
पतझड़ ही में रही जीवन हरीतिमा है,
हरता निठुर माली नित्य मंजु आशा-फूल।
'बटुक' बताओ नाथ! छोड़ा क्यों हमारा साथ?
हमसे हुई है या कि तुम से हुई है भूल॥

इंगलैण्ड की राज्य-व्यवस्था

पार्लियामेण्ट के विकास का इतिहास

ले० —श्री गिरिराजजी बी० ए०, गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद

[१]

[इङ्गलैण्ड की पार्लियामैण्टरी राज्य-प्रणाली जनतन्त्रात्मक शासन-प्रणाली की जननी मानी जाती है। लगभग सभी प्रजातन्त्रात्मक देशों ने मामूली फेरफार के साथ इसी के मूल सिद्धान्तों के आधार पर अपने शासन-विधान बनाए हैं। आज, जबकि भारतवर्ष तेज़ी से प्रजातन्त्र-शासन की ओर बढ़ रहा है, हमारे लिए इङ्गलैण्ड की राज्य-व्यवस्था का ज्ञान उसके विकास के इतिहास सहित, विशेष उपयोगी सिद्ध होगा।

स०]

गत वर्ष से हमने विद्यापीठ की दसवीं श्रेणी के पाठ्यक्रम में भारत के इतिहास के अलावा "इँगलैंड की मौजूदा राज्य-व्यवस्था और उसके विकास का इतिहास" विषय भी दाखिल कर दिया है। हमें दूसरे देश की राज्य-व्यवस्था के इतिहास के जानने की क्या ज़रूरत? और अगर किसी दूसरे देश का इतिहास जानने की ज़रूरत भी महसूस हो, तो इँगलैंड का ही इतिहास बच्चों को क्यों सिखाया जावे? यह प्रश्न ज़रूर पूछा जा सकता है और कहा जा सकता है कि इँगलैंड की राज्य-व्यवस्था के इतिहास को सिखाने की पसन्दगी करना क्या Slave mentality गुलाम मनोवृत्ति का चिन्ह नहीं है? ऐसा ही प्रश्न मुझ से क्लास में भी पूछा गया था और इस ख्याल से कि शायद पाठकों के मनमें भी इस तरह का प्रश्न उठे, मैं संक्षेप में इसका उत्तर दे देना चाहता हूँ।

विद्यार्थियों को पढ़ने के लिये सिर्फ इँगलैंड की ही राज्य-व्यवस्था के विकास के इतिहास की पसन्दगी गुलाम मनोवृत्ति का निशान नहीं है। इसको इस ख्याल से नहीं चुना गया है कि हिन्दुस्तान अँगरेजों के आधीन है इसलिये इँगलैंड का इतिहास ही हमको जानना चाहिये। अगर यह ख्याल होता तो ज़रूर ही यह गुलाम मनोवृत्ति का सूचक था।

न्तु इसी राज्य-व्यवस्था को चुनने के कई क महत्वपूर्ण कारण हैं। पहिले तो सँसार में हां-जहाँ प्रजातन्त्र राज्य स्थापित हैं उन सब शों के लोगों ने अपनी राज्य-व्यवस्था को ाने में इँगलैंड की ही राज्य-व्यवस्था से मदद । है। इसीलिये इँगलैंड की पार्लियामेण्ट सब ार्लियामेण्टों की माँ—British Parliament mother of Parliaments कहलाती ै। हर एक देश ने अपनी अपनी परिस्थिति अनुसार आवश्यक फेर फार करके ब्रिटिश ाजतन्त्र के ही मूल सिद्धाँत पर अपना ाजतन्त्र बनाया है। दूसरे, १६८८ के बाद ब जर्मनी, फ्रांस, रूस, इटली, इत्यादि देशों राजतन्त्र को प्रजातन्त्र में पलटने के लिये ई बार बड़ी भारी क्रांतियां और गृह-युद्ध Civil wars) हुये जिनमें हजारों आदमियों ा खून बहा, इँगलैंड में हर एक फेर फार ांति से होता चला गया और वहां की नता दूसरे देशों के लड़ाई-झगड़े के अनुभव े फायदा उठाकर प्रजातन्त्र की तरफ आहिस्ता-आहिस्ता, मगर साबित-कदमी के ाथ क़दम उठाती चली गयी; यहांतक कि ९२८ में वहाँ सब स्त्री-पुरुषों को (Adult Franchise) प्रौढ़-मताधिकार मिल गया और बादशाह के होते हुए भी बिलकुल जातँत्र राज्य कायम हो गया। यह सब कैसे हुआ—इसके सम्बन्ध में आगे चल कर बताया जायगा। तीसरे,जो लड़ाईयां अँगरेज़ों ने अपने अधिकार प्राप्त करने के लिये समय-समय पर वहाँ के बादशाहों के साथ लड़ीं, यद्यपि वे अहिंसा के उसूल से नहीं लड़ी गई थीं; फिर भी हम उनसे कुछ न कुछ उपयोगी सबक़ सीख सकते हैं जो कि देश की समस्याओं के हल करने तथा हमें स्वतँत्रता दिलाने के लिए लाभदायक सिद्ध हो सकते हैं।

समझदार आदमी को जहां कहीं भी अच्छाई दिखाई देती है, वह बिना किसी क़िसम का ऊँच-नीच या शत्रु-मित्र का ख़्याल किए, उसे ग्रहण कर लेता है। अस्तु, इँगलैंड की राज्य-व्यवस्था और उसके विकास के इतिहास में जो अच्छाई है उससे, सिर्फ इस ख़्याल से कि अँगरेज़ों ने हमारे देश को गुलामी में रखा है, फायदा न उठाना ही गुलामी का चिन्ह है। दूसरे किसी की राज्य-व्यवस्था जानने की क्या ज़रूरत है—इसका जवाब में ऊपर दे चुका हूँ।

मुझे इस विषय के पढ़ाने का काम सौंपा गया तो मैंने विद्यार्थियों के लिये पुस्तकें ढूँढ़नी शुरू कीं। मगर गुजराती, हिंदी और उर्दू—इन तीनों भाषाओं में से किसी में भी ऐसी पुस्तक नहीं मिली जिसमें मौजूदा राज्य-व्यवस्था और उसका इतिहास इस सिलसिले से दिया गया हो कि जिसे इँगलैंड के इतिहास

से जानकारी न हो वह, उसके द्वारा आसानी से समझ सके। मौजूदा राज्य-व्यवस्था पर दो-तीन पुस्कें ज़रूर मिलीं, मगर उनमें पिछला इतिहास इतने सँक्षेप में दिया गया है कि साधारण आदमी को उसमे लगभग नहीं के बराबर ही फायदा हो सकता है। इस ख्याल
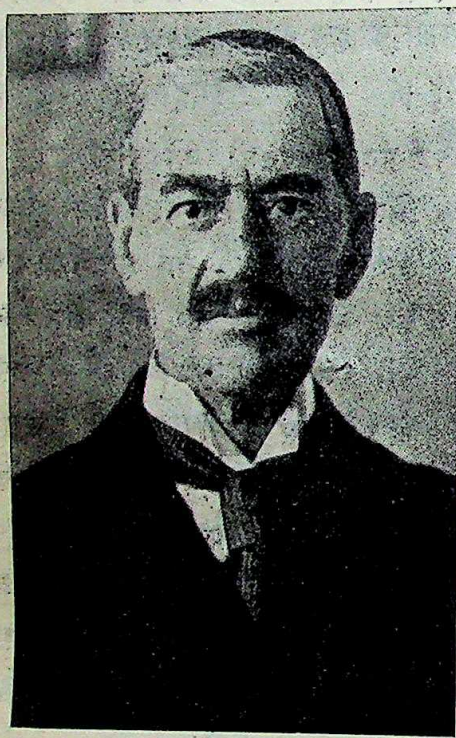
मि० चेम्बरलेन
ब्रिटिश पार्लियामेण्ट के मौजूदा प्रधान-मन्त्री

से कि इँगलैंड के इतिहास से अपरिचित व्यक्ति को भी यह विषय समझ में आ जाय, मैंने यह लेखमाला शुरू की है। अगर पाठक किसी भी अंश में देश की राजनीतिक मुश्किलों के हल करने में इससे मदद ले सके तो मैं अपनी मेहनत सफल समझूँगा।

'दीपक' के सम्पादक महाशय ने जो इतनी लम्बी लेखमाला आज कल काग़ज़ की मँहगाई के समय में भी प्रकाशित करना स्वीकार कर लिया है, इसके लिये मैं उनका कृतज्ञ हूं। इससे जनता में जाग्रति पैदा करने का उनका उद्देश्य पूरा होगा। चूँकि मेरा उद्देश्य सर्वसाधारण को इस विषय की जानकारी कराने का है इसलिए मैं बहुत तफसील में नहीं जाऊँगा और सिद्धांतों की बहुत बारीकी से चर्चा भी नहीं करूँगा।

भूतकाल के इतिहास की बजाय मैं पहले इँगलैंड की मौजूदा राज्य-व्यवस्था का ही वर्णन करूँगा ताकि पाठक इसके विकास के इतिहास को अच्छी तरह से समझ सकें।

इँगलैंड की राज्य-व्यवस्था दूसरे देशों से भिन्न है। अगर किसी अँगरेज़ से यह पूछा जाय कि आपकी राज्य-व्यवस्था (consti-tution) कैसी है तो वह मुशकिल में पड़ जायगा और सोचने लगेगा कि क्या जवाब दूँ। वह राज्य-व्यवस्था सम्बन्धी सभी कायदे कानून बता सकता है। मगर इतना कहने से ही उसका जवाब पूरा नहीं हो सकता। वह जानता है कि इसके अलावा बहुतसी ऐसी बातें हैं कि जिनपर प्रति दिन अमल होता है, मगर उनका जिक्र कहीं भी लिखे हुए कायदे-कानून में नहीं है। इसको मैं आठवें एडवर्ड (Edward) की शादी के उदाहरण को लेकर ज़्यादा स्पष्ट करूँगा। जब उसने एक मामूली

खानदान की स्त्री श्रीमती सिम्पसन के साथ शादी करना निश्चित कर लिया तो यह चर्चा होने लगी कि क्या बादशाह एक साधारण कुटुम्ब में शादी कर सकता है ? अँगरेज़ों ने हमेशा अपने बादशाह की शादी या तो शाही कुटुम्ब में या बड़े-बड़े अमीर-उमराओं (Lords & Nobles) के खानदान में होते देखी थी। उनमें से बहुत से लोग यह नहीं बरदाश्त कर सकते थे कि बादशाह एक मामूली औरत के साथ शादी करे। जब एडवर्ड ने ऐसी हवा फैली देखी तो उसने प्रधान मन्त्री से कहा कि आप अच्छी तरह से जांच पड़ताल करके मुझे बताएँ कि मैं ऐसा कर सकता हूं या नहीं। अतः बहुत छानबीन की गई और क़ानूनदानों की राय ली गई, मगर प्रधान मन्त्री न तो यह बता सका कि कोई ऐसा क़ायदा है कि जिसकी रुह से बादशाह को शाही या अमीर-उमराओं के कुटुम्ब में ही शादी करनी चाहिए, और न यही कह सका कि बादशाह के लिए यह ज़रूरी है कि वह अपनी शादी के बारे में मन्त्रीमँडल या किसी और की मँज़ूरी ले। लेकिन फिर भी उसने कहा कि जो पुरानी प्रथा चली आई है वह इतनी परिपक्व हो गई है कि, यद्यपि क़ायदे क़ानूनों में कहीं भी इसका उल्लेख नहीं है, वह क़ानून का ही स्वरूप धारण कर गई है और आपको मैं प्रधान मन्त्री की हैसियत से यही सलाह दूँगा कि आप ऐसा न करें। ताहम मैं आपको रोक नहीं सकता। आप जैसे चाहें करें, हां इतना बतादूँ कि अगर आपने पुराने रिवाज को तोड़ा तो उसका देश के लिए भयानक परिणाम होगा और सम्भव है कि गृह-युद्ध भी शुरू हो जाय। पाठकों को मालूम है कि एडवर्ड अष्टम ने प्रधान मन्त्री की राय को मानलिया और बादशाह रहते हुए उसने श्रीमती सिम्पसन से शादी नहीं की। इसतरह से वहाँ बहुत से मामलों में प्रथा, रूढ़ी और रिवाजों के अनुसार राजतन्त्र चलता है, यद्यपि वे लिखाई में कहीं नहीं आये हुये हैं। इसलिये इँगलैंड की राज्य-व्यवस्था को (un-written constitution) बिना लिखा हुआ विधान कहा जाता है। इसका अर्थ कोई यह न निकाले कि वहाँ निश्चित वैधानिक नियम ही नहीं। क़ायदे-कानून हैं, मगर चूंकि विधान का आहिस्ता-आहिस्ता विकास हुआ है इसलिए बहुत सी पुरानी प्रथायें, जिनको अँगरेज जाति ने अपने हित के लिए उपयोगी समझा, कायम ही रखा है।

बादशाह का दर्जा व अधिकार—

राजतंत्र की शिखर पर बादशाह है और बादशाहत मौरूसी है यानी बाप के बाद बेटा गद्दी पर आता है। अंगरेजी कानून की रूह से सबसे बड़ा लड़का ही बाप की जायदाद का वारिस होता है इसलिए मौजूदा सन्तान में से सब से बड़ा लड़का या लड़की

गद्दी की मालिक होती है जिसको (prince या princess of wales) कहा जाता है। हमारे देसी राजाओं या नवाबों की तरह से बादशाह सारे ख़ज़ाने का मालिक नहीं होता। उसको एक मुकर्रर रक़म शाही खजाने से मिलती है। जार्ज पञ्चम को ४७०००० पौं० सालाना मिलते थे। इसके अलावा बादशाह के नाम (duchy of Lancasta) की भी जागीर होती है और बादशाह के हर एक बच्चे का अलग जेबखर्च मुकर्रर होता है, मगर चूंकि गद्दी के वारिस के नाम (Cornwall) की जागीर होती है और उससे उसको ६६००० पौ० आमदनी हो जाती है इसलिये इसके सिवाय उसको शाही खज़ाने से बतौर जेबखर्च और कुछ नहीं मिलता है। जायदाद और आमदनी पर जो कर दूसरे लोगों को देने होते हैं उनसे बादशाह बरी होता है। बादशाह पर किसी तरह का मुक़दमा नहीं चलाया जा सकता, उसको गिरफ़ार नहीं कर सकते और क़र्ज़ वग़ैरा की अदायगी के लिए उसके माल पर कब्ज़ा नहीं किया जा सकता। उसको शादी प्रोटस्टेएट (Protestant) धर्म में ही करनी होती है। कोई भी रोमन-कैथोलिक (Roman Catholic) गद्दी पर नहीं बैठ सकता। समाज में बादशाह का रुतबा बहुत बड़ा है और हर एक उसको बड़े आदर और मान की दृष्टि से देखता है।

इंगलैंड के राजतंत्र के सम्बन्ध में लिखी गई सबसे पहिली पुस्तक में लेखक ने बादशाह के अधिकारों को बतलाते हुए महारानी विक्टोरिया के सम्बन्ध में लिखा है कि वह फ़ौज को हटा सकती है, समुद्री सेना को तोड़ सकती है, राज्य का कोई भाग देकर सुलह कर सकती है, किसी देश पर चढ़ाई करनी चाहे तो कर सकती है, प्रजा के हर किसी आदमी को पीयर (Peer) बना सकती है और सब गुनहगारों को माफ़ी दे सकती है इत्यादि इत्यादि। उसके बाद ग्लेडस्टन (Gladstone) ने बादशाह के अधिकार इस तरह से बताये हैं: — लगान और सब क़िस्म की करें बादशाह वसूल करता है और वह उसका मालिक है, मँत्रियों को नियुक्त करना और उनको बरख़ास्त करना उसका काम है, लड़ाई शुरू करना, संधि करना और दूसरे देशों के साथ अहदनामे करना उसके अख़्तियार की बात है, मुजरिमों को माफ़ी देना और पार्लियामेएट को बुलाना और बरख़ास्त करना उसी के हुक्म से होता है। इसका अर्थ यह हुआ कि जो काम होता है वह बादशाह ही करता है। इसके साथ-यह भी कहावत मशहूर है कि बादशाह कोई ग़लती नहीं कर सकता (The King can do-no wrong) । भला यह कैसे हो सकता है कि जो इन्सान इतना कुछ करे उससे कभी

भूल ही न हो। इन्सान तो गलतियों का पुतला है। और जब बादशाह ही सब काम करता है तो शासन प्रजातन्त्र कैसे हो सकता है?

यह ठीक है कि सब क़ायदे-कानून बादशाह ही बनाता है और दूसरे सब काम भी बादशाह ही करता है; मगर चूंकि जो कुछ भी बादशाह करता है वह अपने सलाहकारों की राय के अनुसार ही करता है इसलिये बादशाह कोई भूल नहीं कर सकता क्योंकि सब कामों की जवाबदारी उनके सलाहकारों—मँत्रीमँडल पर ही है। यह सलाहकार प्रजा के प्रतिनिधि होते हैं इसलिये इँगलैंड का राज्य प्रजातँत्रात्मक है। वहां जो क़ायदे-क़ानून बनते हैं उनकी मँज़ूरी इस तरह से दी जाती है—"by the King's Most Excellant Majesty, by and with the advice and consent of the Lords Spiritual and Temporal, and Commons, in this present Parliament assembled."

बादशाह के सलाहकार के रूप में (Houses of Parliament) पार्लियामेंट की दो सभायें हैं। पहिली (House of Lords) उमराओं की सभा और दूसरी (House of Commons) आम की सभा कहलाती है। उमराओं की सभा के मेम्बरों को बादशाह नियुक्त करता है और कामन्स सभा में प्रजा द्वारा चुने गये प्रतिनिधि आते हैं। इन दो सभाओं के इलावा एक और सभा है जो प्रिवी कौंसिल (Privy Council) के नाम से प्रसिद्ध है। वह भी बादशाह को सलाह देने वाली सभा है। देश के सारे कारोबार की जवाबदारी कामन्स सभा के प्रतिनिधियों के ऊपर रहती है जो कि (Cabinet) यानी मँत्री-मण्डल के नाम से मशहूर है। बादशाह इस मँत्री-मण्डल की राय के अनुसार ही सब कार्य करता है और उसकी स्वीकृत हो जाने पर ही आख़िर में अपने दस्तख़त करता है। इस तरह से आम सभा के प्रतिनिधियों के रास्ते में कभी भी बादशाह की तरफ़ से कोई रुकावट नहीं पड़ती।

यह कहा जा सकता है कि जब सारा कार्य मन्त्री-मँडल ही करता है तब बादशाह की ज़रूरत ही क्या है। इसका जवाब यह है कि बादशाहत पुराने ज़माने से चली आई है और अँगरेज़ी प्रजा को उसको कायम रखना आर्थिक रूप से कुछ भारी भी नहीं है और जो कुछ रुपया उस पर खर्च किया जाता है उससे कहीं ज़्यादा बादशाह से काम भी ले लिया जाता है। १९२१ से पहिले तो सब उपनिवेश इँगलैंड की पार्लियामेंट के ही आधीन थे। मगर १९२१ में स्टेच्यूट आफ़ वैस्ट मिनिस्टर (Statute of westminister) के पास हो जाने के बाद सब उपनिवेश स्वतँत्र होगए। पार्लियामेंट को उन

पर कुछ अधिकार नहीं रहा। अब बादशाह का ही सम्बन्ध उनके साथ रहा है। इस तरह से बादशाह ब्रिटिश साम्राज्य के एक देश का दूसरे देश के साथ सम्बन्ध क़ायम रखने वाला ऐक्य का चिन्ह है। इसके अलावा अँगरेज़ी प्रजा बादशाह को सामाजिक और नैतिक मामलों में अपना अगुवा समझती है और बादशाह और शाही कुटुम्ब सामाजिक कार्यों में खूब भाग लेते हैं। The right to be consulted, the right to encourage, and the right to warn यानी सलाह देना, प्रोत्साहित करना और चेतावनी देना, यह उसके तीन बड़े अधिकार हैं। अगर बादशाह होशियार है और उसकी जानकारी खूब है तो वह मँत्रीमँडल को बड़ी अच्छी सलाह दे सकता है क्योंकि वह किसी भी पार्टी के पक्ष में नहीं रहता है इसलिए वह उपस्थित समस्याओं पर भली प्रकार से विचार कर सकता है। हां, वह मँत्रीमँडल को खानगी तौर पर सलाह देता है। अगर किसी महत्व-पूर्ण समस्या के सम्बन्ध में बादशाह मँत्री-मँडल से यह कहे कि अगर तुम हठ करोगे तो मैं तो जैसा आप लोग चाहेंगे उसे ज़रूर स्वीकार कर लूँगा, मगर आप को चेतावनी ज़रूर देता हूँ कि जो काम आप कर रहे हैं वह तेज़ी में किया जा रहा है, उसका परिणाम देश के लिए अच्छा नहीं होगा; तब मँत्री-मँडल ज़रूर बादशाह की सलाह पर विचार करेगा।

इस प्रकार, इस लेख में इँगलैण्ड के बादशाह का राजतँत्र में स्थान व अधिकारों आदि का वर्णन किया गया है। अगले लेख में लार्ड सभा (House of Lords) और कामन्स सभा (House of Commons) का आपस में सम्बन्ध, किस तरह से शासन सम्बन्धी सारा कारोबार होता है, Privy-Council का क्या कार्य है, आदि बातों पर प्रकाश डाला जावेगा।

एक पुरानी याद—कहानी

वह परीक्षा की रात थी!

लें०—श्री रमेश बर्मा

व का भोला हृदय; साधारण स्थिति का सादा जीवन; मायके और ससुराल के बीच के फासले तक सँसार का भौगोलिक-ज्ञान; बोली, व्यवहार और कार्यों में ग्रामीण वातावरण की स्वाभाविकता पर शिक्षित पति के सँसर्ग के कारण सुधारों की छाप पड़ी हुई, गांव के एक कौने में, जिसके एक तरफ खंडहर और बाकी तरफ कुछ फासले से पड़ोसियों के मटियल घर हैं, वह अपने एक बच्चे के साथ रहती है। मकान बड़ा और पुराना है; जिसकी बेलों में चिमगोदड़ों ने घर बना लिये हैं। इसके एक सिरे पर नया कच्चा कमरा बना है। माँ, बेटा अधिक समय इसी में रहते हैं।

वह एक बच्चे की माँ है; दूसरे की बनने जा रही है। घर में इस वक्त और कोई आदमी नहीं है। साल भर पहले सास का देहान्त हो चुका। पति पहले से ही घर पर बहुत कम रहते थे; सास की सरपरस्ती का साया उठ जाने पर भी, महेश ने बहू को उसी के साहस, स्वावलम्बन और बच्चे के लाड़प्यार पर छोड़ दिया था। महीनों बाद उनका दो एक दिन के लिये गांव को चक्कर लगता। इधर महीनों से वह घर पर आये ही नहीं। वह कहाँ थे, इसका पता उनकी पत्नि को भी नहीं था। सुन रक्खा था-वह कहीं खाते, कहीं सोते, कहीं घूमते और कहीं काम करते हैं। रात को किसी ऐसे गांव में जहां पहरुओं का भय नहीं अथवा शहर की किसी तङ्ग गली के छोटे मकान की कोठरी में उनका शयन होता है। वह फरारी की हालत में ये दिन काट रहे हैं।

वे दिन तूफान के थे! राष्ट्र की सोई हुई आत्मा जगी थी। जन समूह करवट बदल रहा था। नित्य विभोर की प्रभाती में कूंच करते हुये सैनिक और आज़ादी के मतवालों के गायन सुने जाते थे। जब शाम को गाँव का बच्चा नानी की कहानी न सुनकर 'झँडा ऊँचा रहे हमाला' गा-गा कर सोता था, उस दिन और रात के जन-रव में एक अजीब मस्ती, नया समां, नया जोश और जीवन था, भविष्य की आशाओं के लिये उत्साह का अनन्त सागर उमड़ा पड़ता था।

एक दिन साबित्री को किसी ने एक दस्ती चिट्ठी लाकर दी, जिसमें लिखा हुआ था—

देवी जी,

इधर महीनों से मैं घर से गैर-हाजिर हूँ। आपको बड़ी चिन्ता और कष्ट होगा, पर मैं मजबूर हूँ। दफा १२४ का वारन्ट मेरे नाम कट चुका है। मैं चाहता हूं कि अभी महीने पन्द्रह दिन और डटकर काम करलूं, तब अपनी गिरफ़्तारी कराऊँ। इस बीच में मौका मिला तो खड़े-खड़े घर हो जाऊँगा, पर अधिक आशा मत करना। जो कुछ घर में और तुम्हारे पास है, उसमें सादगी, सँजीदगी और साहस पूर्वक अपना काम चलाना। तुम्हारे लिये ज्यादा लिखना व्यर्थ है। प्रताप को प्यार!

तुम्हारा—महेश

चिट्ठी के शब्दों से साबित्री के दिल पर गहरी

चोट पहुँची। पर वह रोई नहीं, न औरों के दीखने के लिये उसने अपने चेहरे पर उदासी के भाव आने दिये। पीछे और आगे के जीवन की सभी कल्पित घटनायें उसके दिमाग़ में चक्कर लगाने लगीं। उसकी शिक्षा का दायरा छोटा था और मस्तिष्क के बिकास की सीमा सँकुचित थी। तिस पर ठेठ देहात का वातावरण, जहाँ सँसार की प्रगति और देश की हलचलों का इतना धुँधला प्रकाश पहुँचता है कि उसमें ठीक रास्ता ढूँढ़ना तो मुशकिल है, इधर उधर भटकने, ठोकर खाने और डरजाने की गुञ्जाइश अधिक है। इस वातावरण में रहकर सावित्री अपने पति से जो कुछ सीख चुकी थी, उसी के सहारे उसे इस परिस्थिति का मुकाबला करना था।

कुछ दिन बाद खबर मिली—महेश गिरफ़ार हो गये। दफ़ा १२४-ए में दो साल की सज़ा और दो सौ रुपया जुर्माना तथा क्रिमिनल ला अमेन्डमेन्ट एक्ट में छः महीने की सज़ा और पचास रुपया जुर्माना। प्रसूता सावित्री उन दिनों तक चारपाई से नहीं उठ पाई थी। लड़के को बुलाकर उसको प्यार किया, फिर गोद की ओर देखा और कुछ कहते-कहते वह बेहोश होगई।

परीक्षा की यह पहली रात थी।

जेल का जीवन; कितना शुष्क, कितना असभ्य। धातु और पत्थर काल की सभ्यता में भी लोग मनुष्य को मनुष्य समझते थे, पर इस बीसवीं सदी की सभ्यता में जेल का जेलर-क्लर्क और वार्डर कैदियों को पशु से भी गया बीता, जाहिल नारकीय कीड़ा, न जाने कैसा समझते हैं। एक कैदी दूसरे कैदी को तू-तड़ाक और गाली गलौज के साथ सम्बोधन करेगा, नहीं तो फिर जेल किस बातकी! जेलर कहता है—'महाशयजी! आप देश के काम में इस जगह आये हैं, इसलिये हमें यहां 'आप' और 'महाशय' शब्दों का प्रयोग करना लिखना पड़ा, वरना यह भोग्य-भूमि है, मनुष्य यहाँ अपने कार्यों का फल भोगने आता है। यह लाल टोपी, जाँघिया और तसला-कटोरा उस जमाने की यादगार है जब मानव देह-धारी ने सभ्यता का पाठ भी नहीं पढा था। हथकड़ी बेड़ी, डण्डा, (Cross Bar) और सेल (Cell) की सजा– यह तो जेल कानून की बातें हैं, इनके इलावा हमें टिकटी* और फाँसी के रस्से से भी काम पड़ता है। डण्डा परेड† तिड़ी बोलना‡ यह सब हमारी अपनी कानून हैं, जिनका यहाँ के अनुशासन के लिये उपयोग करना हमारे लिये लाज़िमी होता है; फिर सरकारी लोगों की भाषा में तथाकथित राजनैतिक कैदी (Socalled Political Prisoners) का दर्जा बड़ा नहीं माना है। समान वेश भूषा, कच्ची जली रोटी और डब्बू भर दाल का पानी तथा कटिया की भाजी, एक परेड में बैठकर सभी कैदी साम्यवाद का पाठ पढ़ते हैं।

जेल की पहली रात साबित और दूसरे फटे कम्बल के साथ बैठे-बैठे बिताई। दूसरे दिन चक्की की मशक्कत मिली और उसी दिन राजबन्दियों की भूख हड़ताल; महेश को पता लग गया, जेल जीवन कैसा कृष्ण मन्दिर है। पर वह आया था, पूरे ढ़ाई साल की सीमा करके। इसलिये प्रत्येक परिस्थिति का मुकाबिला करने के योग्य उसे अपने को बनाना था।

कभी लड़ाई-झगड़े, कभी सुलह, कभी बेड़ियों की झन्कार और कभी कालकोठरी का बास, इसी तरह दिन बीतते गये।

एक दिन बाहर से एक दोस्त की चिट्ठी मिली, और कितनी ही बातों के अतिरिक्त अन्त में एक वाक्य इस तरह था—

---

* जिस पर लिटाकर बेंत की सजा दी जाती है।

† कैदी को नीचे गिराकर उसके तलवों में डण्डे लगाये जाते हैं।

‡ कैदी के ऊपर कम्बल डालकर कई क़ैदियों से उसकी कुटाई कराई जाती है।

'अभी तुम्हें अकेले प्रताप पर ही सन्तोष करना पड़ेगा।'

दोपहरी में खाना खा चुकने के बाद बारक के अन्दर राजनैतिक-गोष्ठी बैठी थी। पहले गाने गाये गये, फिर लैक्चरबाजी हुई और बाद में तिकड़म (गैर कानूनी ढँग) से आया हुआ हिंदी का अखबार पढ़ा गया।

जेल जीवन का यह सबसे बड़ा आनन्द था। इसी समय महेश के हाथ में वह पत्र पड़ा, जिसमें उसके घर की बाबत एक वाक्य में पूरा परिचय दिया गया था।

महेश पत्र पढ़कर चुटियल पक्षी की तरह अलग अपने बिस्तर पर जा पड़ा। पुत्र का मोह! लेकिन वह कितना? जिसके जन्म की खुशी मनाने का मौका नहीं मिला, जिसका मुँह भी नहीं देख पाया, उसके विछोह की वेदना कितनी? इससे कहीं अधिक वेदना थी, उस समय की याद की, जब वह सूना घर सांइ-साँइ करता होगा और वहां अकेली पत्नी पुत्र के रोने के ख्याल से मृत-पुत्र के लिये निकलते हुये आंसुओं को पीकर बैठ रही होगी। घर के तिवारे, चौबारे, मिट्टी की दिवारें, काठ के खम्भों पर किन्हीं कलाकारों द्वारा खोदी गई हाथी; घोड़ा, रथ और ऊँट की तस्वीरें—महेश की नजरों के सामने फिरने लगीं। मूँज के फट्टे पर पड़े हुये शरीर की सम्पूर्ण स्मृतियां कठोर ताले जँगलों को तोड़, ऊँची ऊँची दिवारों को लाँघ कर घर जा पहुँची। पत्नि और पुत्र से भेंट, पत्नि का पति से विनम्रता पूर्वक उलाहना; महेश का शरमिंदा होना, फिर सावित्री के गर्म-गर्म आंसुओं की वेदना का अपने वक्षस्थल के वस्त्र और रुमाल से सुखाना, ये सारी कल्पनाएँ मस्तिष्क में दौड़ गईं। कर्तव्य निष्ठा कितना दृढ पतवार है, ऐसे झंझावतों से जीवन नैया को पार लेजाने में!

महेश ने सारी बातें भुला दीं—एक इस वाक्य के साथ—यह मेरी परीक्षा है।

❀ ❀ ❀

शाम को अपने अपने काम से फुर्सत पाकर बुढ़िया माओं की गोष्ठी बैठी। सावित्री के घर की देहरी पर। पड़ोस की सभी बुढ़ियायें इस में शामिल थीं और इस तरह प्रायः रोज वे किसी न किसी दरवाजे पर इकट्ठी होकर अपनी अपनी राम कहानी कहती थीं। आज क्लब की बैठक में पहले अपनी र दिनचर्या सुनाई गई, फिर गाँव की आज की मुख्य-मुख्य घटनाओं पर बहस और आलोचना हुई। बाद में अपनी-अपनी बहुओं के सम्बन्ध में लम्बी चर्चा छिडी। इस चर्चा में सभीको समान दिलचस्पी होती थी। जो बुढ़िया जिस दिन अपनी बहू की आलोचना करने में जितनी अधिक सफल होती, उस दिन उसके लिये क्लब की सदस्या होने का उतना ही गौरव बढ़ जाता। आज नथिया ने अपनी मँझली बहू के करतब गिनाने में वह कमाल दिखाया कि बुधिया,जो रोज इस काम में आगे बढ़ी रहती थी, चुप होगई। उसने अपनी झेंप मिटाने के लिये चर्चा का रुख बदल दिया।

'सावित्री कितनी अच्छी बहू निकली बहन! घर आदमी न होने पर भी पड़ौस में ऐसे रहती है, मानो वह यहां पर रहती ही नहीं।'

बुधिया की बात की सबने ताईद की। अब बात-चीत का स्वर और धीमा पड़ गया। एक बोली—'महेश कैसा निठुर है, अकेली बहू और बच्चों को छोड़ कर चला गया।'

इसीने कहा—'कल भगरी के काका कहते थे कि सब सुराजी आदमी अब मिर्च के मुलक को भेजे जायँगे। लढ़ो ने भुनिया के हाथ को दबा दिया। उसका इशारा था कि यह बात यहां न कही जाय क्योंकि सावित्री अपने बीमार बच्चे के पास थोड़ी

दूर पर ही बैठी थी। ऐसी बात सुनने से वह घबड़ा जायगी। परन्तु मुलिया में इतनी समझ कहाँ थी, वह मुनिया से भी आगे बढ़ गई, बोली— भगतसिंह की फांसी की बात तो सुनी थी। कल बनजी करने वाला गोपी बनिया कहता था कि सरकार गांधी के आदमियों को फाँसी पर लटका देगी।

नथिया ने हाथ से मुनिया का मुँह दबा दिया, पर तीर तो कमान से छुट ही चुका था। सावित्री के कान में वे सभी शब्द पड़ रहे थे, पर बच्चे की बीमारी की परेशानी में उसे इस बात चीत में भाग लेने के लिये होश ही कहां था। एक २, दो २ आदमी घर के अन्दर आते जाते रहे। इनमें पड़ौसी और घर-कुटुम्ब के लोग भी थे, जिन्होंने महेश का जुर्माना वसूल किये जाने के डर से अब तक इस घर में कदम नहीं रक्खा था। दवाई दी जा रही थी और छिछा कोली अपनी दवाई के अद्भुत असर को जतलाने के लिये काफी रात तक वहां बैठा रहा। बाद में एक-एक कर सब लोग अपने-अपने घर चले गये। बुढ़िया-क्रम भी कुछ रात गुजरने पर बरखास्त होगया। अब घर में रह गये—सावित्री, उसका प्रताप और प्रताप की पीठ का गोद का बालक।

वह परीक्षा की रात थी।

कमरे की एक ताक में सरसों के तेल का दीपक जल रहा था। उसकी रोशनी कमरे की परिधि तक अपना क्षीण प्रभाव दिखला रही थी। बड़ा बच्चा खाट पर सो रहा था और छोटे को गोद में लेकर सावित्री चटाई पर बैठी थी। बच्चे का शरीर ताप की गर्मी से जल रहा था। मां कभी उसके माथे पर कपड़ा भिगोकर रखती, कभी रूई भिगोकर शीतल जल कणों से उसके होठ ठण्डे करती। पर ताप का वेग बढ रहा था। आधी रात के वक्त बच्चे के मुख की चेष्टा बिगड़ गई। बेकली की जगह वह अब निष्चेष्ट सा हो चला। सावित्री उजाले में बच्चे का मुँह देखकर घबड़ा गई। उसे कुछ भी नहीं सूझा, कमरे का दरवाज़ा खोला कि किसी पड़ोसी को आवाज़ दे। बाहर अन्धेरी रात और आसमान के खिलखिलाते तारे। इधर उधर श्वानों के रोने का शब्द, सन सन करती हुई डरावनी हवा। सब लोग नींद में बेहोश थे। साहस के साथ बच्चे को कन्धे से चिपकाये हुये सावित्री पड़ोस की एक स्त्री के घर गई। किवाड़ें खटखटाई, आवाज दी और जब उत्तर न मिला तो उलटे पैर बड़े बच्चे के पास लौट आई।

रास्ते में गोद के बच्चे का प्राण-पखेरू उड़ गया।

मां के हृदय का बाँध फूट पड़ा। उसकी चीख से सोता हुआ बालक जग गया और माँ को रोते देख कर वह भी रोने लगा। इस वक्त सावित्री को साहस, धैर्य और सान्त्वना की सीख देना शक्ति से बाहर की बात थी। पर वह थी कोई अज्ञात शक्ति ? उसने मृत-पुत्र का शव चटाई पर रख दिया और बड़े बच्चे को सुलाने के लिये उसकी खाट पर लेट गई।

वह उसकी परीक्षा की रात थी!

गद्य-गीत

जुगनू

सुश्री 'किरण', कोयटा

सूर्य अस्त हो चुका था।

उसकी लाल-लाल आभा मिट चुकी थी।

अन्धेरा चारों ओर छा रहा था।

अमावस्या की अन्धेरी रात्रि में हँसते तारे बहुत शोभनीय थे।

मैं अपनी खाट पर लेटी हुई, आकाश की ओर टक-टकी लगाकर तारों की क्रीड़ा को निहार रही थी।

सखी !

अकस्मात् मेरी दृष्टि एक चमकते हुए जुगनू पर पड़ी।

यह जुगनू कितना सुन्दर प्रतीत हो रहा था, मानो पूर्णमासी का चन्द्रमा हो।

परन्तु ·· ·· ·· उसे देखते ही मेरी आखें ············।

मैंने कहा—जुगनू आओ ! आओ !! तुम्हारा स्वागत ···· ··तुम-हम मिल कर अश्रु ···· ··।

जुगनू—मुझ नीच की जीवन कथा सुनने वाला कौन है रानी ?

मैं ! मैं !! जुगनू डरो नहीं मैं ! हम दोनों सृष्टि-नियन्ता की रचना के दो रूप हैं न ?

जुगनू—मैं अन्धेरे में प्रकाश करता हूं, जब कि तुम अन्धेरे में कुछ नहीं देख सकतीं, उस समय अपनी थोड़ी सी रोशनी से तुम्हें देखने योग्य बना देता हूँ, इसी से अपना जीवन सार्थक समझता हूँ। बच्चे मुझे कौतुक-वश पकड़ लेते हैं, मेरे साथ खेलते हैं। मैं उन्हें कोई कष्ट नहीं देता। परन्तु—इतना होते हुए भी ऐसा निरादर······ ··।

मैं—यह सेवावृत्ति होते हुए भी तुम्हारा इतना अपमान ! धिक्कार है हम जैसे मनुष्यों को जो किसी का उपकार करना जानते ही नहीं ! सँसार में किसी के काम आते ही नहीं ?

तिनका भी काम आता है।

मनुष्य को यदि तिनके से भी नीचे स्थान दिया जाये तो न्याय्य है !!

ओह ! मनुष्य कितना स्वार्थी है ? किसी के उपकारों को नहीं मानता !

आह !

आ ! आ ! जुगनू मिलकर मन को शान्त करलें। यह आने-जाने का चक्र तो लगा ही रहेगा। और इस जीवन में न तो कोई उपकार करना है, और न किसी के उपकारों को मानना या—समझना है।

इसलिये इस जीवन············।

आ ! आ ! जुगनू थोड़ी बातें करके मनका बोझ हलका करलें, और थोड़े ·········।

प्रान्त-भाषा और राष्ट्र-भाषा

ले०—आचार्य काका कालेलकर

[देश के नेताओं व सर्वसाधारण द्वारा राष्ट्रभाषा स्वीकार कर लिए जाने के बाद भी, कुछ प्रान्तों में कई लोग हिंदी का, प्रांतीय भाषाओं के लिए उसे घातक समझकर, जबरदस्त विरोध कर रहे हैं। जिस अङ्गरेजी ने हमारे स्कूलों, दफ़्तरों, अदालतों ही नहीं घरों तक में घुसकर प्रांतीय भाषाओं के लिए कोई स्थान नहीं छोड़ा था. हिंदी उसी अङ्गरेजी भाषा के साम्राज्य को बटाकर प्रांतीय भाषाओं को पुनः उपरोक्त सभी स्थानों पर बिठाना चाहती है तथा केवल आन्तरप्रान्तीय-व्यवहार के लिए खुद अङ्गरेजी का स्थान ग्रहण करना चाहती है। इस रूप में राष्ट्रभाषा को प्रांतीय भाषाओं के लिए घातक कहें या पोषक ? सँ०]

मैं कर्णाटक का निवासी हूँ, किंतु मेरी जन्म-भाषा प्यारी मराठी है। दुनिया में मैं कहीं भी जाऊँ, मराठी के दो-चार शब्द जब कान में पड़ जाते हैं तो हृदय ऐसा प्रफुल्लित हो जाता है कि मानों मरने वाले को सञ्जीवनी औषधि मिल गई। ऐसा होते हुए भी मैंने अपने जीवन के सबसे अच्छे दिन यदि कहीं व्यतीत किए हैं तो वे गुजरात में ही व्यतीत किये हैं, अगर मैंने हृदय खोल कर किसी भाषा में लिखा है तो वह गुजराती में ही। आज मुझसे पूछा जाय कि तुम्हारे हृदय की भाषा कौनसी है तो मुझे कहना पड़ेगा कि मेरे लिए गुजराती, मराठी से तनिक भी कम प्यारी नहीं है। मराठी, गुजराती और कन्नड़—इन तीन भाषाओं का ही अधिकार मुझ पर हो सकता है;

हिंदी अभी तक मुझे ठीक-ठीक आती ही नहीं। बचपन में हिंदी के उच्चारण मैंने कभी सुने भी नहीं थे। मेरे बचपन में लोग हिंदी को मुसलमानों की भाषा समझते थे। हिंदी सँस्कृत से आई है, ऐसा जब बचपन में मुझसे कहा गया तब मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ था। 'सरस्वती' आदि मासिक पत्र जब मैं पढ़ने लगा तब मुझे मालूम हुआ कि हिंदी क्या चीज़ है। 'भारत-भारती' काव्य जब मैंने पढ़ लिया तब हिंदी का मुझे सच्चा दर्शन हुआ। आज अगर मैं मद्रास, अहमदाबाद, कटक, गोहाटी कलकत्ता, पूना, धारवाड़ आदि स्थानों के लोगों को हिंदी सीखने के लिए अनुनय करता हूं तो वह हिंदी के प्रति किसी पक्षपात के कारण नहीं। मेरी मराठी भाषा और किसी भाषा के सामने गौण हो जाय—यह मैं हरगिज़ पसन्द नहीं करूँगा। मेरा यह दृढ़ अभिप्राय है कि हर एक प्राँत में वहाँ की प्रांतीय भाषा ही सर्वश्रेष्ठ हो। बँगाल के लिये प्राथमिक शिक्षा से लेकर सर्वोच्च शिक्षा तक सारी पढ़ाई बंगाली में ही होनी चाहिए। बँगाल सरकार का राज व्यवहार बँगाली में ही चलना चाहिए। बँगाल की अदालतों में न्यायाधीश, वकील और गवाह—सब के सब बङ्गाली में ही बोलें और लिखें, यह जरूरी है। ऐसा भी मैं चाहता हूँ कि बङ्गाल का वृत्तविवेचन (journalism) अँग्रेजी या हिंदी में न चलकर बङ्गाली में ही चलना चाहिए। (बङ्गाली भाषा और देवनागरी लिपि में चलें तो और भी अच्छा)

दुनिया में एक भी ऐसी भाषा नहीं है जो बङ्गाल की जनता के हृदय तक पहुंचने के लिए बङ्गाली का स्थान ले सके। बङ्गाल में सर्वोच्च और व्यापक स्थान बङ्गाली को ही होना चाहिए। बङ्गाली का यह जो स्वाभाविक अधिकार है उसे छीन लेने की कोशिश अगर और कोई भाषा करेगी तो मैं उसका विरोध करूँगा।

बङ्गाल में जो काम बङ्गाली भाषा को करना चाहिये वह काम आज अँग्रेज़ी करती है। यह देखकर मुझे दुःख होता है। आज के हिंदुस्तान में अंग्रेज़ी के लिए जो स्थान हो सकता है वह तो अँग्रेज़ी ने ले ही लिया है, किंतु जो स्थान बङ्गला को मिलना चाहिये उस स्थान पर भी आज अँग्रेज़ी विराजमान है। अँगरेज़ी को हटाकर वह स्थान अगर हमने हिंदी को दे दिया तो बङ्गला भाषा का उतना राज्य कम हो जायगा। इसलिए अँगरेज़ी को हटाकर वहां पर हम बङ्गला को ही रखने की कोशिश करेंगे। अँगरेज़ी की गुलामी गई और हिंदी की गुलामी आई तो जैसे बङ्गाली लोग नाराज़ होंगे वैसा मैं भी नाराज़ हो जाऊँगा। जो बात बङ्गाल में बङ्गला भाषा के लिए कही गई है वही अन्य प्रांतों में गुजराती मराठी, पञ्जाबी, तेलगु, तामिल आदि प्रांतीय भाषाओं के लिए है।

एक बात हमें ध्यान में रखनी चाहिए कि बङ्गाल, गुजरात, महाराष्ट्र, पञ्जाब, या हिंदुस्तान का कोई भी अन्य प्रांत एक स्वतन्त्र राष्ट्र हो नहीं सकता है। हाथ, पाँव, या सिर शरीर के अवयव हैं, गात्र हैं; जिस क्षण वे शरीर से अलग होंगे वे नष्ट-प्राण हो जायेंगे। हमारे प्रांतों की भी वही हालत है। किसी भी प्रांत के स्वतन्त्र इतिहास का कोई अर्थ ही नहीं होता है जब तक कि वह सारे भारतवर्ष के इतिहास के साथ अनुबद्ध (correlated) नहीं किया जाता है। हमारे सब प्रांत एक दूसरे के साथ मिल जुलकर अपना राष्ट्रीयजीवन जब तक ओतप्रोत नहीं करते हैं, तब तक उनमें राष्ट्रीय चैतन्य प्रगट नहीं हो सकता है। इस आँतर-प्रांतीय आदान-प्रदान के लिए किसी न किसी स्वदेशी भाषा की ज़रूरत है। प्राचीन काल में उच्चवर्णों के लिए संस्कृत भाषा ने यह काम किया। अशोक काल में शायद बौद्ध-धर्म के कारण पाली भाषा ने यह स्थान ले लिया। तुलसीदास, कबीर, सूरदास आदि कवियों के दिनों से राष्ट्र-भाषा का स्थान हिंदी को मिला है। आंतर प्रांतीय व्यवहार के लिए और अखिल भारतीय कार्यों के लिए जहाँ किसी स्वदेशी भाषा का व्यवहार होना चाहिए वहाँ पर आजकल अँग्रेज़ी आकर बैठी है और उसने सब स्वदेशी भाषाओं को अपमानित किया है। अँग्रेज़ी साहित्य के अध्ययन के कारण प्राँतीय भाषाओं को कुछ पोषण मिला है। इसमें शक नहीं है, किंतु राष्ट्रीय, सामाजिक और कौटुम्बिक व्यवहार में भी अँग्रेज़ी घुस जाने से हमारी प्राँतीय भाषायें और हमारी राष्ट्र-भाषा— सब की सब अपमानित, निस्तेज और निष्प्राण हुई हैं। पुष्टकाय गुलाम होने की अपेक्षा क्षीणकाय रहना पड़े तो भी स्वतन्त्र होना हर समय हज़ार गुना अच्छा है; लेकिन हम तो स्वतन्त्र बनने से तेजस्वी भी बनेंगे और परिपुष्ट भी बनेंगे।

हिन्दी का झगड़ा किसी भी प्राँतीय भाषा से नहीं है। हिंदी का झगड़ा अँग्रेज़ी भाषा के साम्राज्य के साथ है। अँग्रेज़ी भाषा हमारे यहाँ सेविका बनकर रहे तो हमें एतराज़ नहीं है। अंगरेज़ी एक उपयोगी भाषा है, समर्थ भाषा है। स्वतन्त्रता चाहने वाली जाति की यह भाषा है। किंतु वह हमारे समस्त व्यवहार पर, दैनिक जीवन पर कब्ज़ा कर बैठे, यह हम हरगिज़ पसन्द नहीं करेंगे। हमारी राष्ट्र-भाषा हिंदी हमारी अन्यान्य प्रांतीय भाषाओं की मदद से अंगरेज़ी के साम्राज्य को हटाना चाहती है। हमें अंग्रेज़ी को हटाकर, जहां-जहां अंग्रेज़ी बैठी थी, वहां-वहां हिंदी को नहीं बैठाना है। अंग्रेज़ी को हटाकर हम प्राँतीय भाषा को, जितना अधिक से अधिक स्थान दिया जा सकता है, देंगे और प्रांतों-प्रांतों के बीच जो सहयोग और आदान प्रदान चलना चाहिए, उसके लिए ही हिंदी से काम लेंगे। हिंदी का विरोध अगर अँग्रेज़ करें तो हम समझ सकते हैं क्योंकि उनकी भाषा का साम्राज्य नष्ट हो रहा है। बङ्गाली, गुजराती, तामिल, कन्नड़, मराठी आदि भाषाओं के अभिमानियों को हिंदी से बिलकुल खतरा नहीं है।

किंतु हमारे देश के हर एक प्रांत में एक ऐसा वर्ग है, जिसको हिंदी के प्रचार से सचमुच दुःख होता है। वह वर्ग है अँग्रेजी-परायण लोगों का जो लोग अँग्रेजी पढ़-पढ़ कर अँग्रेजी में ही विचार करते हैं और अँग्रेजी में ही अपनी बातों को व्यक्त कर सकते हैं, जो लोग केवल अँग्रेजी साहित्य का ही भोजन अपने दिल और दिमाग़ को देते हैं, जो लोग अँग्रेज़ी के पूरे आदि बन गये हैं और कोई नई भाषा सीखने की हिम्मत या उत्साह नहीं रखते हैं। जिन लोगों को अँग्रेज़ी के व्यवहार के कारण आमदनी होती है ऐसे लोग भी कभी-कभी अँग्रेज़ी के पक्षपाती बनकर हिन्दी का विरोध करते हैं।

और वे भी लोग हिंदी का विरोध करते हैं जो ईमानदारी से मानते हैं कि अँगरेज़ी का साम्राज्य ऐसा जम गया है कि उसका विरोध करना पत्थर की दीवाल पर सिर पटकना है। किसी भी प्रकार की क्रांति करने की शक्ति हिन्दुस्तान के इन लोगों में है ही नहीं। अतः उनकी मान्यता है कि अँग्रेजी का साम्राज्य जो ऐसा जम गया है, उसी की शरण जाना हमारे लिए लाभप्रद है।

ऐसे लोगों को हम इतना ही कहेंगे कि हम आप लोगों में से नहीं हैं। हमारी श्रद्धा अलग है। आप अँग्रेजी के परम भक्त बन कर हिन्दी का बेशक विरोध करें; किंतु कृपया सत्य की खातिर ऐसी चिल्लाहट न करें कि हिंदी के कारण प्रान्तीय भाषायें खतरे में हैं। आप अँग्रेजी के खैर ख्वाह हैं, यह हम जानते हैं। कृपया! बङ्गाली, मराठी और तामिल आदि भाषाओं के हितचिंतकों का मुखवरा पहनकर देश को धोखा न दीजिए।

आहार-विचार

ले०—श्री ब्रजभूषण मिश्र, एम०ए०, सञ्चालक 'विजयलक्ष्मी स्वास्थ्य गृह', काशी

हमारे यहां यद्यपि यह कहावत बहुत दिनों से प्रचलित है कि 'जैसा खावे अन्न वैसा उपजे मन', पर इस ओर ध्यान, जितना उचित है, नहीं दिया जाता। भोजन के अनुसार मानसिक प्रवृत्ति होती है। बात सच है, पर यह केवल यहीं तक सीमित नहीं है। हमारे आहार पर ही हमारा स्वास्थ्य निर्भर है। हम स्वयं अपने को बनाने वाले और मारने वाले दोनों हैं। अन्तर केवल इतना ही है कि इस आत्महत्या को बहुत कम लोग जानते हैं और जो इसके महत्व को जानते हैं वे स्वादेन्द्रिय के वशीभूत होने के कारण कुछ कर नहीं पाते। पर इससे उसका महत्व कम नहीं होता।

हम अपने भोजन को पांच विभागों में बांट सकते हैं; श्वेतसार (Starch), चीनी (Sugar), वसा (Fat), पुत्तनक (Protein), और प्राकृतिक लवण (Mineral Salts) व खाद्योज (Vitamins)। मैंने प्राकृतिक लवण और खाद्योज को एक ही स्थान से प्राप्त होने के कारण एक में ही मिला लिया है। प्रभाव भिन्न होता है। इन विभाजनों को नक्शे के रूप में दिया गया है जिससे देखते ही भोजन-विषयक आवश्यक बातें प्रगट हो जावें।

सं०	विभाजन	तत्व	कार्य	प्राप्ति स्थान
१	श्वेतसार	(क) कार्बोजन Carbon (ख) ओषजन Oxygen (ग) उदजन Hydrogen	शक्ति और गर्मी देना।	अन्नः—गेहूँ के भीतरी सफेद टुकड़े, एक दल अन्न, जैसे जौ, चावल, मकाई आदि शाकः—आलू, शकरकन्द, ज़िमीकन्द, सुथनी, चुकन्दर, अरुई आदि। फलः—केला, बेर, अमरूद, शरीफा आदि।
२	शर्करा	"	"	फलः—खरबूजा, तरबूज, केला, अँगूर, आम शहतूत, खजूर, अञ्जीर, किशमिश, मुनक्का, गरी आदि। दूध, गुड़, शहद, चीनी आदि।
३	वसा	"	"	मलाई, मक्खन, घी, विविध तैल। मेवाः—पिश्ता, बादाम, काजू, अखरोट, गरी, मूँगफली।
४	पुत्तनक	(च) कार्बोजन Carbon (छ) ओषजन Oxygen (ज) उदजन Hydrogen (झ) नत्रजन Nitrogen (ञ) प्रस्फुरक Phosphorus	शक्ति व गर्मी देना, तन्तु का निर्माण, उनके पुनर्निर्माण में सहायता देना।	अन्नः—अन्न का ऊपरी हिस्सा, दाल। शाकः—फलीवाली तरकारी यथा सेम। मेवाः—पिश्ता, बादाम, काजू आदि। दूध।
५	प्राकृतिक लवण व खाद्योज	१–सोडियम २–लोहा ३–चूना ४–पोटेशियम ५–मेगनेशियम ६–खिलिकन ७–क्लोरीन ८–फ्लोरीन ए० बी० सी० डी० ई०	अनावश्यक को बाहर करना, रक्त, हड्डी आदि का निर्माण करना, उनका पुनर्निर्माण करना, रक्त को कृमिघ्न बनाना, रक्त शोधन करना, विरेचन करना, शक्ति का सञ्चय करना।	अन्नः—अन्न का ऊपरी हिस्सा। शाकः—काहू का पत्ता, सरसों का पत्ता, मूली, का पत्ता, अरुई का पत्ता, चौराई, पालक, पुदीना, धनिया, मेथी, सरसों, चना का पत्ता, करमकल्ला, फूल गोभी, गाँठ गोभी, टमाटर, ककड़ी, खीरा; मूली, अदरख, प्याज, लहसुन, बैंगन, आमड़ा, कटहल, करेला, कच्चा केला, कुन्दरू, तरोई, परवल, लौकी। फलः—सेव, नाशपाती, सन्तरा, नीबू, मुसम्बी, चकोतरा, अँगूर, जामुन, शरीफा, सिंघाड़ा, अनार, अनन्नास, आम, अमरूद, मकोय आदि। दूध, मखनिया दूध आदि।

ऊपर दिये हुये नक्शे को देखकर भोजन की आवश्यकता, उपयोगिता आदि के बारे में पता चलता है ! किन-किन चीज़ों से हमारा भोजन पूर्ण होना चाहिये, यह भी नक्शा देखते ही ज्ञात हो जाता है।

अब एक बात और देखने को रह गयी कि हमारे भोजन में कौन चीज कितनी रहनी चाहिये। साधारण तौर से प्रतिदिन की खूराक में आधा हिस्सा नीचे दी हुई चीज़ों का होना चाहिये:—सेब, नाशपाती, खुबानी, मकोय, शहतूत, अनार, अँगूर, आम, अमरूद, शरीफा, तरबूज़, खरबूज़ा, खीरा, ककड़ी, पपीता, आड़ू, चकोतरा, मीठा नींबू, टमाटर, आदि।

पूरे भोजन के चौथाई हिस्से में तरकारी और मसाला होना चाहिये। पूरे भोजन का आठवां हिस्सा अन्न का होना उचित है। बचे हुए आठवें भाग में घी, मक्खन, बादाम, तेल आदि का होना चाहिये।

कुछ पदार्थ सदा के लिये वर्जित हैं। उनके बजाय उनके सामने दी हुई चीज़ें खानी चाहियें।

वर्जित	लेने योग्य
माँस, मछली	फल, मेवे
तम्बाकू	ताज़ी हवा
चाय, कहवा	तुलसी व गर्मपानी
चाकलेट	खजूर
बिस्कुट	चोकर की रोटी
चीनी	शहद या गुड़
दवा	प्रकृति-पर्य्यटन

इस प्रकार भोजन का हिसाब रखने से मानसिक कार्य करने वाले सुखी और स्वस्थ रह सकते हैं। जिन्हें शारीरिक कार्य अधिक करना है उन्हें पहले आधे हिस्से में भी अन्न ही ज़्यादातर लेना चाहिये। हर ऋतु में हमारे यहाँ कोई न कोई फल बहुतायत से होने के कारण सस्ता मिलता ही है अतः सब कोई व्यवहार में ला सकते हैं।

किस भोजन के साथ कौन चीज़ मिलाई जा सकती है, यह भी जानना कम महत्वपूर्ण नहीं है। मुख्य बातों पर यहाँ ध्यान दिला दिया जाता है: श्वेतसार और पुत्तनक एक साथ मिलाना पाश्चात्य विज्ञान से सम्मत नहीं। कारण, दोनों के पचने का स्थान विभिन्न है। दूध के साथ मीठे फल न खा कर खट्टे फल खाने से दूध का परिपाक पूरीतौर से और शीघ्रता से होता है। तरकारी और फल या तो श्वेतसार के साथ खाना चाहिये या पुत्तनक के। विपरीत भोजन करने से शक्ति का अपव्यय होगा और हानि भी अवश्य होगी, चाहे वह आज प्रत्यक्ष हो वा दस साल बाद। पाप तो भोगने से ही कटता है।

इस लेख को पढ़ने वाले भिन्न व्यवसाय तथा विभिन्न धन वाले व्यक्ति होंगे। जिनको शारीरिक श्रम अधिक करना पड़ता है उन्हें अन्न और पुत्तनक के साथ वसा की मात्रा अधिक कर देनी चाहिये। तरकारी और सस्ते फल भी खा सकें तो अच्छा है। श्रमजीवियों

के लिए अच्छा तो यह है कि आटे ही में पत्तीदार साग काट कर मिला लें। साथ ही अजवायन, प्याज़, ज़ीरा आदि मिलाकर तेल और नमक या गुड़ के साथ खावें। इसके विपरीत मानसिक कार्य करने वाले को ऊपर दिया भोजन ही करना उचित है। इसके माने यह नहीं हैं कि पूड़ी, कचौड़ी आदि भारी चीज़ें कभी खाई ही न जावें। यह तो कभी २ खाने की चीज़ें हैं। उनकी मात्रा अपनी पाचन-क्रिया और उनकी शक्ति पर निर्भर है।

आहार की बाबत मैंने बीस नियम बना रक्खे हैं जिनको ध्यान में रखने से स्वास्थ्य-लाभ में सहायता मिलती है और शक्ति का अपार सञ्चय होता है। वे ये हैं:--

(१) भोजन ही रोग और स्वास्थ्य का कारण है।

(२) *स्वाभाविक भोजन में ही पोषण है।

(३) †निष्प्राण भोजन का त्याग विहित है।

(४) कुछ पदार्थ प्राकृतिक दशा में ही अधिक पोषक हैं।

(५) भोजन भूख के अनुकूल ही होना चाहिये।

(६) अति-भोजन घातक है।

(७) दिन में दो बार भोजन साधारणतः उत्तम है।

(८) △निराहार रहना भी आवश्यक है।

(९) बहु-पदार्थ का सँयोग रोग पैदा करता है।

(१०) भोजन में मसाला का ज्ञान स्तुत्य है।

(११) +आहार में कृत्रिमता का निषेध है।

(१२) ‡भोजन की अपेक्षा जल की महत्ता अधिक है।

(१३) मांसाहार से हानि का ज्ञान आवश्यक है।

---

* स्वाभाविक भोजन से उन तत्त्वों से मतलब है जो बिना कृत्रिमता लाये हुए खाने को हैं जैसे फल, मेवे आदि।

† निष्प्राण भोजन वे पदार्थ हैं जो तले या भूँजे जाते हैं यथा पूड़ी, भूँजा चना।

△ प्रातराशे त्वजीर्णेऽपि, सायंमाशो न दुष्यति।
सायंमाशे ह्यजीर्णे च, प्रातर्भुक्तम् विषोपमम्॥

प्रातः खाया हुआ यदि न पचा हो और रात में फिर खा लिया जावे तो अधिक हानिप्रद नहीं है। पर यदि ब्यालू से अजीर्ण हुआ हो और दूसरे दिन फिर भोजन किया जावे तो वह विष सा हानिकर होता है।

+ कृत्रिमता से मेरा तात्पर्य अँचार, मुरब्बा आदि से है। असामयिक भोजन अवश्य स्वादिष्ट बना देता है, पर पाचन में गड़बड़ी डालने से भी नहीं चूकता।

‡ जल ही जीवन है।

(१४) भोजन में सफ़ाई ज़रूरी है।

(१५) भोजनालय की अधिक महत्ता है।

(१६) †भोजन के पूर्व भी ध्यान देना चाहिये।

(१७) भोजन में चबाना हितकर है।

(१८) ×भोजन विधि-पूर्वक करना स्तुत्य है।

(१९) *भोजन में आनन्द आवश्यक है।

(२०) ‡भोजनोत्तर के कृत्यों का ज्ञान स्वास्थ्यकर है।

ऊपर दिये हुए बीस नियमों पर एक अलग पुस्तक लिखी जा रही है जो 'दीपक' कार्यालय, साहित्य-सदन, अबोहर से मिल सकेगी। हर एक नियम पर एक स्वतन्त्र लेख लिखा जा सकता है। स्थान तथा समय के अभाव से केवल उनका निर्देशमात्र कर दिया गया है और कुछका स्पष्टीकरण फुट-नोटों द्वारा किया गया है।

इस लेख में दूध का केवल ज़िक्र मात्र है। दूध पूरी तौर से सब तत्त्वयुक्त हमारा आहार है। विशेषतः बढ़ने वालों के लिए यह बहुत उपयोगी है। अन्य लोगों के लिये इसमें उतना अधिक गुण नहीं रह जाता। हम लोगों

---

† भोजन करने के पहले हाथ, पैर, नाक, मुँह, और आँख की सफ़ाई कर लेनी चाहिये। इसके अतिरिक्त अन्न को देखते ही प्रणाम करना चाहिये और प्रतिदिन इसी प्रकार मिलता रहे ऐसी प्रार्थना करनी चाहिये। यथाः -

अन्नं दृष्ट्वा प्रणम्यादौ, प्राञ्जलिं कारयेत् ततः।
अस्माकं नित्यमस्त्वेतदिति भक्त्याथ वन्दयेत्॥

× भोजन एकमुखी वृत्ति से करना चाहिये। पहिले मीठा, बीच में खट्टा व नमकीन, अन्त में कड़ू, तीता और कसैला खाया जा सकता है। सबसे पहले अनारादि फल खाना चाहिये। यथाः —

अश्नीयात् तन्मनाभूत्वा, पूर्वन्तु मधुरं रसम्।
मध्येऽम्ललवणौ, पश्चात् कटुतिक्तकषायकान्।
फलान्यादौ समश्नीयात् दाड़िमादीनि बुद्धिमान्॥

* डाह, डर, गुस्सा, लोभ, रोग, दीनता, द्वेष आदि नीच मनोविकारों के साथ किया हुआ भोजन पूरी तौर से नहीं पचता। यथा:—

ईर्षाभयक्रोधपरिक्षतेन, लुब्धेन रुग्दैन्यनिपीड़ितेन।
विद्वेषयुक्तेन च भुज्यमानमन्नं न सम्यक् परिपाक-मेति॥

‡ भोजन करने के बाद गीले हाथ से दोनों आंख छूना चाहिए। इतना ही नहीं, यदि हथेलियों को घिसकर आंख पर रखी जावें तो ज्योति की वृद्धि होती है। यथा: —

आचम्य जलयुक्ताभ्यां पाणिभ्यां चक्षुषी स्पृशेत्।
भुक्त्वा पाणितले घृष्ट्वा चक्षुष्पोर्द दीपते।
अचिरेणैव तद्वारि तिमिराणि व्यपोहति॥

भोजन के बाद १०० डग धीरे २ चलने से सुख मिलता है। भोजनोत्तर जो बैठना है उसे तोंद निकल आती है, लेटता है वह बली होता है, जो टहलता है वह आयु पाता है और जो दौड़ता है वह मौत को दौड़ाता है।

भुक्त्वा शतपदीं गच्छेच्छनैस्तेन तु जायते।
अन्नसँघातशैथिल्य ग्रीवाजानुकरी सुखं॥
भुक्त्वोपविशतस्तुन्द शयानस्य तु पुष्टता।
आयुश्चंक्रममाणस्य मृत्युर्धावतिधावतः॥

को शुद्ध सात्विक गाय का दूध भी तो नहीं मिल पाता। भैंस का दूध भारी और आलस्य-वर्धक होता है। दोनों के बच्चों को देखिये कितना अन्तर होता है। विभिन्न दूधों में निम्न पोषक तत्त्व निम्नपरिमाण में प्राप्य हैं:—

दूध	पुत्तनक	वसा	शर्करा	क्षार	पानी
स्त्री	२.५०	५.१८	६.५२	.००	८५ ८०
गौ	३.५०	४.००	३.५०	'७५	८७.२५
भैंस	६.११	७.४५	४.१७	.८७	८१.४२
बकरी	४.३०	४.७८	४.४६	,७५	८५.७१.

मानसिक कार्य करने वालों को गाय का दूध उत्तम है। जिनके फेफड़े कमज़ोर हों उन्हें बकरी का दूध हितकर है। जो शारीरिक-श्रम अधिक करते हैं उन्हें भैंस का दूध ही विशेष लाभकर हो सकता है।

आशा है मेरे इन विचारों से जो अनुभव पर अवलम्बित हैं, और लोग भी लाभ उठावेंगे।

—०:०—

ब्रिटिश सरकार, भारत और युद्ध

(श्री पुरुषोत्तमदास जी टण्डन)

युरोपीय युद्ध छिड़ने के बाद ३ अक्टूबर १९३९ ई० को असेम्बली के खुलते समय यू० पी० असेम्बली के अध्यक्ष माननीय श्री पुरुषोत्तमदास टण्डन ने यूरोप की लड़ाई के कारण भारतीय विधान में जो परिवर्तन हुआ है, उसपर एक भाषण दिया था। उसका महत्वपूर्ण अंश इस प्रकार है:—

पिछली बार जब इस सभा की बैठक हुई थी तब से सँसार में बड़ी-बड़ी घटनाएँ हो गई हैं और उनका उस विधान पर प्रभाव पड़ा है जिसके अनुसार हम कार्य करते हैं। अँग्रेजों का देश ब्रिटेन योरप के एक दूसरे देश के साथ लड़ाई लड़ रहा है और चूँकि हमारा देश स्वतँत्र नहीं है और हमें अपने भाग्य के निबटारा करने का अभी अधिकार नहीं है, इसलिए यह माना जाता है कि हमारी भी उस देश के साथ लड़ाई है। इस मामले में न तो इस सभा की राय ली गई है और न केन्द्रीय धारा सभा के जन-प्रतिनिधियों की। फिर भी हम अपने आप को लड़ाई की हालतों में पाते है। जहां तक इस सभा का सम्बन्ध है, लड़ाई का एक गहरा नतीजा यह हुआ है कि ब्रिटिश पार्लिमेंट ने गवर्नमेंट आफ इँडिया ऐक्ट में ऐसे बदलाव किये हैं, जिनके द्वारा इस प्रांत पर शासन करने के आपके कुल अधिकार छीन लिए गये हैं और केन्द्रीय-गवर्नमेन्ट के हाथ में दे दिये गए हैं। इस नये क़ानून के अनुसार केन्द्रीय सरकार को उन विषयों पर कानून बनाने का अधिकार दे दिया गया है जो कि बिलकुल आपके अधिकार के भीतर थे, और प्रांत के साथ सम्बन्ध रखने वाले तमाम विषयों में प्रबन्ध करने का भी उनको पूरा अधिकार दे दिया गया है। केन्द्रीय सरकार प्रबन्ध सम्बन्धी इन अधिकारों का इस्तेमाल दो तरह से कर सकेगी — एक तो सीधे ऐसे अफ़सरों के द्वारा जो उनके मातहत काम करते हैं और दूसरे सूबों की गवर्नमेंटों को हिदायतें देकर। यह ऐसी बात है जिस पर आपको खूब सोचना है।

❋ ❋ ❋

युद्ध एक गहरी घटना है। हिंदुस्तान में और ब्रिटेन में ऊँचे अधिकारों ने भारतवासियों के

सहयोग के लिए अपीलें निकाली हैं। हिंदुस्तानियों ने तो ऐसा कोई एलान नहीं किया कि सँसार में उनकी किसी के साथ लड़ाई है। भारतीय सरकार, जो जनता के सामने जिम्मेदार नहीं, इस लड़ाई में इसलिए खींची गई है कि ब्रिटिश सरकार के साथ उसका विशेष सम्बन्ध है। किंतु हिंदुस्तानियों से जो अपीलें की गई हैं, उनका अधिकार मनुष्य मात्र का
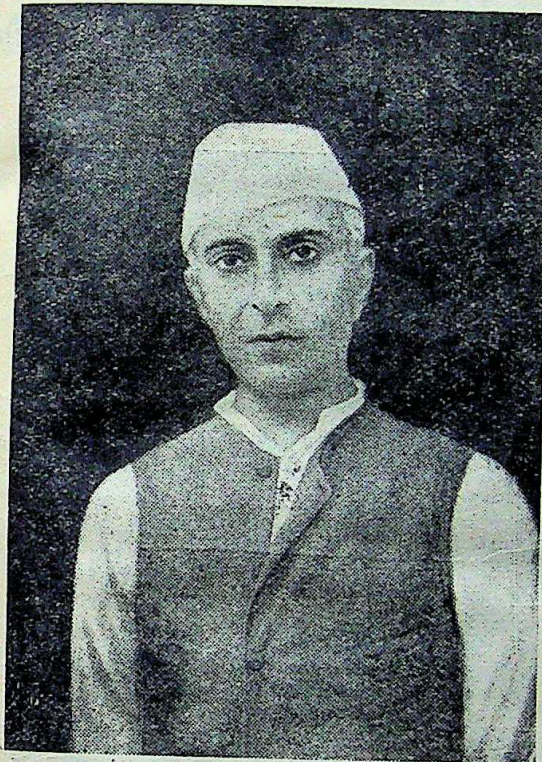
प० जवाहरलाल नेहरू
युद्ध के अवसर पर उत्पन्न विकट स्थिति में काँगरेस नीति का सञ्चालन करने के लिए वर्किङ्ग कमेटी की ओर से नियुक्त 'युद्ध-समिति के चेयरमैन।

अधिकार और प्रजातंत्र सिद्धांत रखा गया है। और यही ठीक भी था। साथ ही ब्रिटिश सरकार की ओर से अधिकारियों द्वारा यह कहा गया है कि उन वैधानिक मसलों को जिनका सम्बन्ध हिन्दुस्तान और हिंदुस्तानियों की मांग से है, लड़ाई के समय नहीं उठाना चाहिए। कुछ ब्रिटिश राजनीतिज्ञों ने ता सदाचार के सिद्धांत की सरन लेकर हिन्दुस्तानियों को समझाया है कि वे इस समय ब्रिटिश अधिकारियों का ध्यान दूसरी ओर न ले जाएँ। बल्कि उनका ध्यान लड़ाई को जीतने की ओर लगाएँ। पुरानी परम्परा से यह बात चली आती है कि हिन्दुस्तानी ऐसी अपीलों के सामने जो उनके मान, उदारता और इन्सानियत से की जायें, बहुत मुलायम होते हैं। इस तरह की अपीलें हमारे दिल पर सदा असर करती हैं, हालांकि राजनीतिक आधीनता के कारण हमारे अपने कष्ट ही भारी हैं और हालांकि ऐसी अपीलें कोई नई चीज नहीं हैं और पिछली सन १९१४ की लड़ाई के समय भी बार २ दोहराई गई थीं, किन्तु ब्रिटिश सरकार के लिए यह बहुत सोचने की बात है कि क्या युद्ध के नाम पर भी ऐसे बड़े सवालों को पीछे हटा देना उचित होगा जिनका सम्बन्ध इस बड़े देश की आजादी और भलाई से है, जबकि यह युद्ध ही पोलैंड जैसे छोटे से देश की आज़ादी की रक्षा के लिए हो रहा है। पोलैंड के साथ स्वभाव से हमारी सहानुभूति है किंतु वह सहानुभूति अधिक ठोस होती और हमारे भीतर उस सहानुभूति को काम में लाने की अधिक शक्ति होती। यदि हम स्वयं उस अवस्था में होते जिस अवस्था की पोलैंड में रक्षा करने के लिए हमारी सहायता की जरूरत है।

इस सभा ने २ अक्तूबर १९३७ को अर्थात् अपने काम शुरू करने के थोड़े ही दिन बाद एक निश्चय (रिजाल्यूशन) द्वारा अपनी यह राय जाहिर की थी कि गवर्नमेंट आफ़इंडिया ऐक्ट असंतोषजनक है और केवल इस मतलब से बनाया गया है कि हिन्दुस्तानियों को बहुत बरसों तक पराधीन रखा जाय और सभा ने यह माँग पेश की थी कि इस ऐक्ट की जगह पर आज़ाद हिन्दुस्तान के लिए हिंदुस्तानियों के प्रतिनिधियों द्वारा एक नया विधान बनाया जाय। ब्रिटिश सरकार ने सन् १९१४ ई० की लड़ाई के समय कहा था कि वह प्रजातन्त्र सिद्धाँतों की रक्षा के लिए उस लड़ाई में शरीक हुई

थी और आज की लड़ाई के बारे में भी वह यही बात कहती है। यदि उन्हीं सिद्धाँतों को मानकर ब्रिटिश गवर्नमेंट इस सभा की माँग को, जो अधिकाँश दूसरी प्रांतीय सभाओं से भी की गई थी, मान लेती तो निःसन्देह हमारा देश आज दोनों कामों के लिए अधिक मजबूत होता अर्थात् अपनी रक्षा के लिए और ब्रिटेन तथा उन दूसरे देशों की रक्षा के लिए जो सही नैतिक सिद्धाँतों के लिए लड़ते हों। मैं सभा की ओर से यह कहने का साहस करता हूँ कि ब्रिटिश गवर्नमेंट ने हमारी मांग की तरफ जो बिलकुल लापरवाही की है, उससे उसकी लड़ने की शक्ति निश्चित ही कम हो गयी है।

लड़ाई की घटना भी हिन्दुस्तान के राजनीतिक रुतबे के सवाल को खिसकाने के लिए काफ़ी वजह नहीं है। यह सवाल तुरंत हल करने का है। मेरा तो कहना है कि लड़ाई ने इस सवाल को और भी ज़रूरी बना दिया है। राजनीतिक-पण्डितों को यह मानना होगा कि इस ज़माने की लडाइयों को जीतने के लिये यह बहुत ज़रूरी है कि जनता उनकी मदद करे। हिन्दुस्तानियों के दिलों को इस समय खींचने के लिए इससे अच्छी और कोई बात नहीं हो सकती कि उनको अधिकार दे दिया जाय कि स्वतन्त्रता और प्रजातन्त्र-सिद्धाँतों के पक्ष की लड़ाई वे स्वयँ अपनी तरफ से और अपने शासन में उत्साह और त्याग के साथ चलावें और यह अनुभव करें कि जिस लड़ाई में वे मदद कर रहे हैं वह उन चीजों की रक्षा करती है जिनकी वे क़दर करते और जो उन्हें प्यारी हैं।

इन विषयों पर आप लोगों ने स्वयं ध्यान देकर विचार किया होगा। मैंने इन्हें इस सभा के माननीय मेम्बरों के सामने इस लिए रखा है कि वे सोचें कि इस नाज़ुक समय में उन्हें क्या हिस्सा लेना है।

कांगरेस 'युद्ध-समिति' के सदस्य
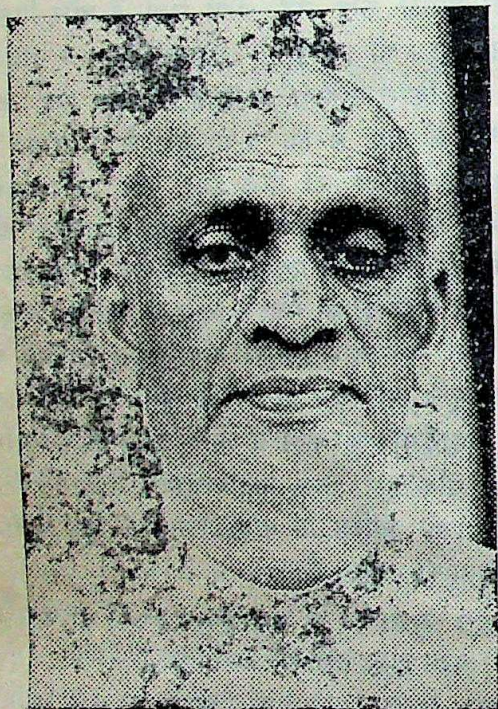
सरदार वल्लभभाई पटेल

मौलाना अबुलकलाम आज़ाद
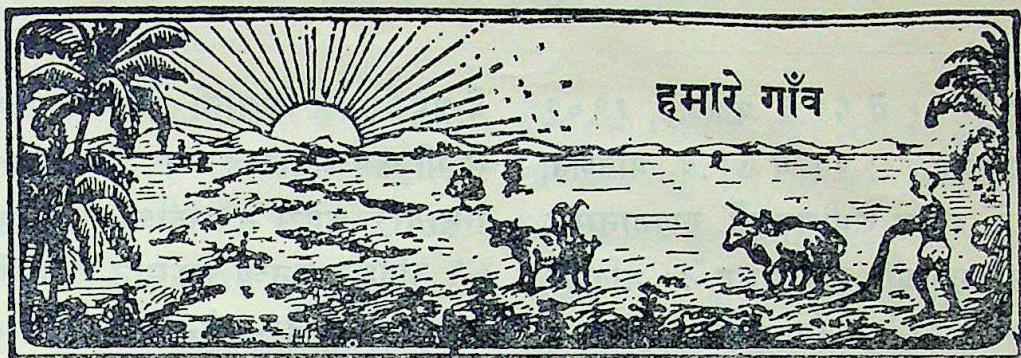
किसानों की आर्थिक समस्याएँ

ले०—श्री साहित्यरत्न पं० भँवरलाल भट्ट 'मधुप'

आज हमारे किसान दुखी हैं। हम उन्हें सुखी करना चाहते हैं। आज वे भूखे हैं। हम उनकी इस समस्या को हल किया चाहते हैं। ठीक है। पर यह काम इतना आसान नहीं, जितना कि समझा जाता है। हमारे सारे स्वदेशी का तत्त्व, और हमारे समस्त आंदोलनों एवम् स्वराज्य का मक़सद इसमें अन्तर्निहित है। इतना ही नहीं, गाँधीजी तो "अपने क़ुसूर का प्रायश्चित" और "मानव जीवन का चरम लक्ष्य" इसी में मानते हैं। वे देहातों की सेवा न केवल लोक-हित के लिए, प्रत्युत आत्मशुद्धि के उद्देश्य से भी करना लाज़िमी समझते हैं। मगर पहले तो इस बात का पता लगाना है कि आज इन देहातों की कठिनाइयों का मूल कारण क्या है और उसे कैसे दूर किया जाय जिससे कि वे लोग जो दूसरों को अन्न-वस्त्र देकर स्वयम् भूखे और नँगे रहते हैं, कम से कम मनुष्य की तरह तो अपनी ज़िन्दगी बसर कर सकें।

आज हमारे देश के किसानों की जीविका कृषि पर ही अवलम्बित है। लेकिन खेती से मिलने वाली उपज उसका पेट भरने में बिलकुल नाकाफ़ी हो गई है। इसके कारणों की पूरी-पूरी जांच करने के लिए तो यही एक स्वतन्त्र विषय बन जाता है, किंतु मोटे तौर पर हमें यह साफ दिखाई देता है कि भूमि पर उसकी शक्ति से अधिक बोझ हो जाने के कारण ही वह आज किसानों का पेट भरने में असमर्थ हो गई है। इसके प्रमाण के लिए निम्नलिखित अङ्क पर्याप्त होंगे—

जहां सन् १८८१ में देश की कुल आबादी के ५८ प्रतिशत मनुष्य जमीन को अपनी जीविका का आधार बनाए हुए थे,

वहीं सन् १८९१ में ६१.६ प्रतिशत, १९०१ ६६.५ प्रतिशत, १९२१ में ७१.६ प्रतिशत, १९२९ में रायल कमीशन की गणनानुसार ७३.९ प्रतिशत और इस समय ८० प्रतिशत के लगभग आबादी खेती पर ही अपना बोझ डाले हुए है। घरेलु उद्योग-धन्धों के उजड़ जाने से लाखों की तादाद में उद्योग-जीवी समाज भी आज कृषि-जीवी बन गया है। इस बोझ के बावजूद जमीन की उपज उत्तरोत्तर घटती जा रही है, जिसका प्रधान कारण पशुपालन का अभाव और खाद की कमी है। नतीजा यह हुआ कि भूमि की उत्पादक-शक्ति पहले की अपेक्षा बहुत घट गई है। १८८० में फेमिन कमेटी ने कहा था कि "जितने लोग जमीन पर से गुज़ारा पा सकते हैं, उससे नहीं अधिक (दुगुने) लोग जमीन जोतते हैं।" और यही किसानों की गरीबी का पहला और प्रधान कारण बन गया है।

जमीन पर बोझ बढ़ाने के साथ ही वह असँख्य छोटे-छोटे टुकड़ों में इतनी अधिक विभाजित हो गई है कि आज ७६ प्रतिशत से अधिक लोगों के पास दस एकड़ से भी कम जमीन है। उसमें भी २२.५ प्रतिशत के पास तो एक एकड़ से भी कम जमीन है। बम्बई प्रांत में २ से ३ एकड़ जमीन वाले लोगों की सँख्या सबसे ज़्यादह है। मद्रास में बहुसँख्यक किसानों के पास एक एकड़ से भी कम जमीन है। यू० पी० की बैंकिंग इन्क्वायरी कमेटी ने नतीजा निकाला है कि ५६ प्रतिशत मनुष्य नुकसान में खेती करते हैं।" डार्लिन, हेराल्डमेन आदि की भिन्न-भिन्न स्थानों की जांचों से भी यही परिणाम हासिल होते हैं। इसका फल यह हो गया है कि छोटे-छोटे किसानों के पास अपनी जमीन में रोक सकने योग्य कोई पूञ्जी नहीं रह गई है। खाद डालने, फसल में परिवर्तन करने आदि की सुविधाएँ नष्ट हो गई हैं और पशुपालन के लिए छूटी हुई चरोहर की जमीनें भी जुताई में शामिल कर देने की वजह से सारी जमीनें भूखों मरती हैं और अपने रक्षकों तथा उनके पशुओं को भी भूखों मारती हैं। इसके अलावा मेड़ों में जमीन के बँट जाने के कारण निगरानी ठीक नहीं हो सकती है, और समय तथा मजदूरी जो फजूल नष्ट होती है, वह अलग। इन्हीं जमीन के टुकड़ों ने कोर्टों में हद बन्दी के मुकद्दमें बढ़ाकर किसान के पीछे एक नई बीमारी और लगादी है।

सम्पूर्ण ब्रिटिश भारत में कुल खेती योग्य ज़मीन लगभग साढ़े बाईस करोड़ एकड़ है, और यदि इतनी ही, छोटेबड़े मिलाकर आबादी मानली जाय, तो प्रति मनुष्य जमीन की औसत एक ही एकड़ बैठती है। इस अवस्था में आमदनी बढ़ाये बिना किसान का कष्ट

दूर करने की कोरी बातें कुछ भी अर्थ नहीं रखतीं। आज ज़रूरत इस बात की है कि किसान की आमदनी में वृद्धि की जाय और उसे स्थायी रूप दिया जाय।

देहातों का अनुभव रखने वाले लोग भली भांति जानते हैं कि आज वहां सबसे अधिक गरीब किसान ही हैं। उनकी प्रति मनुष्य आमदनी की औसत ५० रुपया वार्षिक भी नहीं बैठती। कहा जाता है कि किसानों में फजूल खर्ची बहुत हो गई है और उनकी गरीबी का मुख्य कारण यह है, मगर सच तो यह है कि जमीनों की इस विभाजित अवस्था से लाभ उठाकर बढ़ाए गए लगान की वैधानिकता साबित करने के लिए ही ये बातें कही जाती हैं। आज न किसानों के पीछे फजूल खर्चियां हैं,न उल्लेखनीय सामाजिक अपव्यय ही हैं। वस्तुतः उनकी गिरी हुई वर्तमान आर्थिक अवस्था का कारण उनका अपव्यय नहीं, किंतु उनकी आमदनी की कमी और लगान आदि के अनिवार्य और असह्य खर्च हैं।

किसान की आमदनी से आज उसके परिवार का पेट नहीं भरता। उस पर खेती के खर्च का बोझ अलग है। वह अपने बैलों का पेट भरने में असमर्थ है। उसके कर्ज की जाँच और कारणों का अन्वेषण करने पर यह ज़ाहिर हो जाता है कि किसान के कर्जदार होने का सबसे बड़ा कारण लगान की अधिकता ही है। बढ़ी हुई दरों के समय निश्चित किए हुए लगान आज की उतरी हुई बाज़ार दर में भी उसी मान से लिए जाते हैं। यह लगान का बोझ किसानों पर इतना अधिक हो गया है कि खेती से उत्पन्न आधे से ऊपर अनाज सिर्फ लगान की अदायगी में चला जाता है। पञ्जाब बोर्ड आफ एकानामिक इन्क्वारी में जो कर्ज बताया गया है, उसका वर्गीकरण करने से पता लगता है कि किसानों पर उत्पादक कर्ज जहाँ २७.० प्रतिशत है, वहीं लाचारी से लिया गया कर्ज ६०.६ प्रतिशत है। "इस लाचारी कर्ज में" सब से अधिक लगान के लिए किए गए कर्ज का ही है। इसके सिवाय प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष करों ने हमारे दरिद्र किसान की हालत को और भी बिगाड़ दिया है।

लगान की आमदनी के लिए किसान, पिछला कर्ज न चुका सकने की अवस्था में भी, नया कर्ज करता है और यह कर्ज साल-दरसाल इस तरह बढ़ता जा रहा है कि उसकी अदायगी उसके लिये असम्भव हो गई है। वह आज कर्ज में पैदा होता है और कर्ज की ही विरासत छोड़ कर मरता है। सन् १९२६ की जाँच के नक्शे से किसानों के कर्ज की असाधारण अवस्था का अनुमान सहज ही किया जा सकता है।

प्रान्त	कर्ज
बम्बई	८१ करोड
मद्रास	१५० ,,
बँगाल	१०० ,,
यू० पी०	१२४ ,,
सी० पी० तथा बरार	३६ ,,
आसाम	२२ ,,
सेण्टल इण्डिया	१८ ,,
कुर्ग	३५ से ५५ लाख

इस ऊपर लिखे नक्शे की अवस्था से किसान की हालत आज और भी ज्यादह खराब है।

इन सब बातों का परिणाम यह हुआ है कि किसान आज भूखों मरते हैं, वे उद्योगजीवी भी जो अपनी दस्तकारियों को छोड़कर खेती के द्वारा पेट भरने लगे थे, अपनी जीविका उपार्जन करने में असमर्थ होगए हैं। श्रमजीवी लोग, जो कृषि पर अपना जीवन अवलम्बित करते हैं, साल के ५ मास बिलकुल बेकार रहते हैं और जिन दिनों खेती में काम मिल भी जाता है, उन दिनों भी आधे पेट रहकर जिन्दगी बसर करते हैं। यह है हमारे देहातों की दीनता का सर्वव्यापी नग्न स्वरूप! जिस किसान के आधार पर देश का भार निर्भर करता है, जिसे देश की रीढ़ माना जाता है, उसकी इस अवस्था का मतलब है, देश की दरिद्रता, देश की अकिंचनता और उसका सर्वनाश। अगर आज हम चाहते हैं कि हमारे किसान सुखी हों, तो हमें उनकी आमदनी को बढ़ाने के साथ ही उनके खच को भी घटाना होगा। जो लोग अपने उद्योगों को छोड़कर खेती के आश्रय में रहते और भूखों मरते हैं, उन्हें खेती से हटाकर उद्योग धन्धों में लगाना होगा। हाथ के उद्योगों का प्रचार करके इन उजड़े हुए देहातों को फिर बसाना होगा। कृषि का बोझ कम करना होगा। शहरों और देहातों के बीच जो आर्थिक-विषमता की गहरी खाई हो गई है, उसे हमें बंद करना होगा। देहातों का पैसा आज शहरों में और शहरों की सम्पत्ति विदेशों में चली जा रही है, उसके प्रवाह की दिशा को हमें बदलना होगा। किसानों को भी केवल कृषि पर निर्भर न रख कर खाली समय में उन उद्योगों में लगाना होगा जिनसे वे न केवल स्वावलम्बी ही बन जायँ, बल्कि शहरों की आवश्यक वस्तुओं का निर्माण करके वहां के पैसे को भी अपनी ओर खींचने का प्रयत्न कर सकें।

ग्रामोद्योग में रोटी और कपड़े की अनिवार्य आवश्यकताओं की ओर सबसे पहले ध्यान देना चाहिए। कम से कम खर्च में पौष्टिक भोजन की व्यवस्था के लिए आवश्यक साधनों का निर्माण करना जरूरी है। आटे की चक्की, धान की चक्की, ढेंकी बनाना, अनछड़ा चांवल तैयार करना, हाथ की घानी का तेल निकालना, आदि ऐसे उद्योग हैं, कि जिन से न सिर्फ आर्थिक अवस्था का ही प्रश्न हल होता है, बल्कि इनके द्वारा हमारे जीवन की बहुत बड़ी और प्राथमिक समस्या भी

सुलझती है, हमें पौष्टिक व शुद्ध भोजन-सामग्री मिलती है।

ग्रामोद्योग को प्रारम्भ करने में इस बात का ध्यान रखना आवश्यक है कि, वे उद्योग कच्चे माल की प्राप्ति के आधार पर ही चलाए जायँ। जहां जो कच्चा माल अधिक परिमाण में प्राप्त होता हो, वहां उसीसे पक्का माल बनाने का उद्योग जारी किया जाय। इसमें उन साधनों की ओर भी ध्यान देना चाहिए जिन से प्राप्त कच्चे माल का उपयोग किया जा सकता हो।

किसान का पूरा काम बिना पशुपालन के सँभव नहीं है। इसलिये देहातों में घर-घर अच्छे पशुओं की व्यवस्था करनी चाहिए। ग्राम सेवकों को चाहिए कि वे देहातों में पशुओं की नस्ल सुधारने, दूध की उचित व्यवस्था और वृद्धि करें तथा खाद बनाने के ठीक तरीकों का ज्ञान करावें और इस प्रकार मनुष्य, पशु और खेती की ज़मीन-तीनों के उचित पोषण की व्यवस्था करें। यदि इन व्यवस्थाओं को अँशतः भी अमली रूप दिया जा सका, तो इसमें कोई शक नहीं कि किसानों की समस्याएं कई अँशों में निस्सन्देह हल हो जायँगी।

भारत और कल-कारखाने

हिंदुस्तान धन्धों में कितना पिछड़ा हुआ है यह नीचे लिखे आंकड़ों से स्पष्ट हो जाता है। १९३० में भारत में कुल ८१४८ कम्पनियां काम करती थीं। बड़े कल-कारखानों की सङ्गठित पूञ्जी ७ अरब रुपये थी, जिसमें हिंदुस्तानियों की पूँजी २ अरब से अधिक न थी। इसके मुकाबिले में इङ्गलैंड में, जिसकी आबादी भारतीय जनसँख्या की १३ फीसदी है, १९२८ में १,०७,५०० कल-कारखाने थे और इन पर लगी पूँजी ७० अरब ६७ करोड़ रुपये—अर्थात् हिंदुस्तानी पूँजी से २३ गुना थी। सँयुक्तराष्ट्र अमेरिका की आबादी हिंदुस्तानी आबादी की करीब ३५ फीसदी है, लेकिन वहां व्यावसायिक कम्पनियों की सँख्या १,७४,१३६ है, और इनमें लगी पूँजी २ खरब २० अरब रुपये है, अर्थात् हिंदुस्तानी पूँजी से ७५ गुना।

बङ्गाली लोरियां

ले०—श्रीमती रमा ब्रह्म

(१)

चाँदू मामा चांदू मामा टिप दिये जावो
खोकार कपाले तुमि टिप दिये जावो,
माछ धरले मुड़ो दिव, धान भानले कुंड़ों दिवो
गाय वियाने दूध दिवो, भालो सँदेश एने दिवो।

अर्थात्—ऐ चन्दा मामा ! तुम आओ और हमारे लाल (लड़के) के मस्तक पर टीका लगा जाओ। हम मछली पकड़ने पर तुम्हें उसका सिर देंगे और धान कूटकर कोंढ़ा देंगे, गाय ब्याने पर दूध देंगे तथा आप को अच्छे २ सन्देश सुनाएँगे।

(२)

घुम पाड़ानी मासी पिसी, घुम दिये जावो
खोकार चोखेते तुमी घुम दिए जावो,
वाटा भरे पान दिव, गाल भरे खेवो
खोकार चोखेते तुमी घुम दिये जावो।

अर्थात्—ऐ नींद देने वाली मौसी, फ़ुफ़ू, मेरे लाल को तुम नींद देकर जावो। हम तुम्हें थाली भरकर पान देंगे जिसे तुम गाल भर-भर कर खाना। पर हाँ, मेरे लाल की आँखों में तुम नींद देकर जावो।

(३)

खुकु जावे शशूर वाड़ी सँगे जावे के ?
वाड़ी ते आछे कुनो वेड़ाल कोमर वेंधेचे
आम कांठालेर बागान देव, छायाय-छायाय जेते,
सरु धानेर चिंड़े दिव शाशूरी भुलाते;
उड़कि धानेर मुड़की दिव पथे जल खेते,
सोलो जन वेहारा दिव पालकी बहाते
शान बाँधानो घाट दिव, जल पथे जेते
बांधा रोशनाई करे दिव आलोय आलोय जेते।

अर्थात् हमारी मुन्नी (लड़की) ससुराल जा रही है, उसके साथ में कौन जायगा। (हां) घर में एक घर घुमरी बिल्ली तैयार खड़ी है। हम आम और कटहल का पेड़ उसे छाया छाया में जाने के लिए देंगे, हम पतले धान के चिंउड़ा सास को मनाने के लिए देंगे। उड़की धान (एक प्रकार का धान) की लाई रास्ते में जलपान करने को देंगे, सोलाह कहार पालकी ढोने के लिए देंगे, शान से बँधाए हुए घाट पानी को रास्ते के पार करने के लिए देंगे और उजाले २ में जाने के लिए हम रास्ते को रोशनी से आलोकित कर देंगे।

—०८—

अच्छा काम

लेखिका—कु० कमला ब्रह्म

एक बुद्धिमान बूढ़ा आदमी बाज़ार से २ जोड़ी घोड़े और एक जोड़ी तलवार मोल लाया और अपने तीनों लड़कों से कहने लगा कि तुम लोगों में से जो एक महीने के [अं]दर सबसे अच्छा काम करेगा उसीको मैं [ये] सब इनाम दूँगा।

यह सुनकर तीनों लड़के काम की खोज [में] निकल पड़े। पहला सोचता था कि मैं [सब]से अच्छा काम करूँगा और सब इनाम [मैं] ही लूँगा। दूसरा और तीसरा लड़का भी [यह]ी सोचता था।

एक महीने के बाद जब वे तीनों अपना-[अ]पना काम करके लौट आये, तब बूढ़ा उन्हें [बा]री-बारी से पूछने लगा कि तुम लोगों ने [कौ]न-कौन सा काम किया है।

बड़े लड़के ने कहा —"मैं जब एक धर्मशाला [में] रहता था, तो एक भद्रपुरुष ने मुझे अच्छे [अच्छे] मोतियों से भरे हुए थैले रखने के लिये [दि]ये। उनमें कितने मोती थे, यह उनको मालूम भी न था। यदि मैं चाहता तो सहज ही में कुछ मोती उड़ा सकता था, पर मैंने वैसा नहीं किया"।

यह सुनकर बूढ़े ने कहा—"यह तो तुमने अपना कर्त्तव्य ही किया है। सोचो तो सही, यदि तुम उन में से कुछ मोती उड़ा लेते तो क्या बन जाते ?

लड़के ने सोचा —"बात तो सच है"। इसलिये धीरे-धीरे वह वहां से चला गया।

मँझले लड़के ने कहा—"एक दिन एक छोटासा बच्चा पानी में डूब रहा था। मैं उसको बचाने के लिए जीवन की आशा छोड़कर पानी में कूद पड़ा और कुछ मिनट के बाद उसको बाहर ले आया।"

ध्यान से उसकी बात को सुनकर बूढ़े ने कहा, "अरे, यह तो तुमने अपना परम कर्त्तव्य ही किया है। यदि तुम उस बच्चे को वैसे ही पानी में डूबता छोड़ देते और यदि वह मर जाता तो तुमको कैसा लगता ? क्या तुम इस प्रकार निश्चिंत रह सकते थे ?"

तब बेचारा सोचने लगा कि बात बिलकुल ठीक है और बिना कुछ कहे सुने ही चुपचाप बैठ गया।

छोटे लड़के ने कहा—"पिताजी! मैं एक दिन घूमने के लिए एक पहाड़ पर पहुँचा और घूमते २ मैंने देखा कि पहाड़ की ऊँची चोटी के ऊपर एक बीमार आदमी सो रहा है। ध्यान से देखने से मालूम हुआ कि वह मेरा पुराना शत्रु ही है, मैंने इसी को मारने के लिए कितनी ही बार कोशिश की थी पर वह मरा नहीं था। मैंने सोचा—अरे, यह तो मारने का बड़ा ही अच्छा मौका है क्योंकि मेरे जरासा ढकेल देने से ही यह एकदम नीचे गिर पड़ेगा और सदा के लिये सो जावेगा। पर मैंने ऐसा नहीं किया। बेचारा मेरे ही डर से पहाड़ में छिपा रहता था। मैंने सोचा कि शत्रु हो अथवा मित्र, असहाय अवस्था में किसी को भी हानि पहुँचाना नहीं चाहिए। इसीलिए मैंने उसको जगाया। वह मुझे देखते ही डरसे पीला पड़ने लगा। पर जब उसने देखा कि मैं उसको कुछ हानि नहीं पहुँचा रहा हूँ बल्कि उसको सही-सलामत घर ही पहुँचाने की कोशिश में लगा हूं, तब वह बड़ा खुश हुआ और अपने किए हुये पुराने अपराध के लिए क्षमा मांगने लगा।"

छोटे लड़के की यह बातें सुनकर बूढ़ा बड़ा खुश हुआ और दोनों हाथों से उसे छाती से लगा लिया। फिर कहा—"प्यारे पुत्र! तुमने ही सबसे अच्छा काम किया है इसलिए ये सब चीजें मैं तुमको ही देता हूं।

सूरज की रोशनी के नलके

पानी के नलके तो तुमने देखे होंगे, पर योरोप में कई वर्षों से सूरज की रोशनी के नलके भी प्रचलित हैं। स्थान की कमी के कारण मकानों की अनेकों मंजिलें होती हैं और नीचे की मँजिलों में कभी सूरज की रोशनी नहीं आती। फ्रांसीसी इञ्जनियर पीयर आरयाईज़ पैरिस के एक अन्धेरे से घर में रहता था। एक दिन वह हवाई जहाज़ में उड़ रहा था। घरों की छतों के ऊपर सूरज की रोशनी की प्रखरता देखकर उसने सोचा कि इतनी सुनहरी रोशनी व्यर्थ झिम-झिमा रही है, पर छतों के नीचे अनेकों मँजिलें सारा साल घुप-अँधेरे में रहती हैं। उसकी निरन्तर विचार-शीलता और तजुरबों ने आज सूरज की रोशनी को नलकों में बन्द कर दिया है। ये नलके तहखानों, कानों और ज़मीदोज़ रेलवे

स्टेशनों में सूरज की रोशनी पहुँचाते हैं। टैपको थोड़ा या ज्यादा खोलने से जितनी रोशनी चाहो, की जा सकती है।

इस मशीन का नाम "आर्थल-हीली-उस्टैट" है। एक बड़ा शीशा मकान की छत पर मोटर द्वारा सूरज के सामने उसके साथ २ फिरता है। एक और बड़ा शीशा इसके ऊपर (साकन)—रखा जाता है। इस शीशे का मुँह नीचे की तरफ किसी (बिहड़े)—या चिमनी जैसे सूराख के ऊपर होता है। यह शीशा शिरोमणि किरण (Main Beam) कहलाता है। इसमें २२ हजार बत्ती की ताकत होती है। इस शिरोमणि किरण में से छोटी किरणें निकाल कर कमरों में भेजी जाती हैं जो कि आवश्यकतानुसार रैग्यूलेट (कम-ज्यादा) की जा सकती हैं। फ्रांस, बेलजियम, हालैंड और उत्तरी अफ्रीका में यह मशीनें आम बरती जाती हैं। बिजली की रोशनी से यह रोशनी ८० फी सदी सस्ती होती है। गरम देशों में इसका यह सुख भी है कि कमरे बन्द रक्खे जाते हैं, खिड़कियाँ-दरवाजों से रोशनी अन्दर नहीं आने दी जाती परन्तु सूरज की रोशनी नलकों द्वारा अन्दर पहुँचाई जाती है। यह अक्सी रोशनी गरम नहीं होती इसलिये कमरे ठण्डे होते हैं।

(प्रीतलड़ी)

अच्छा स्वभाव बनाओ !

ले०—श्री रामावतार विद्याभास्कर, रतनगढ़, बिजनौर

प्रत्येक समय का कोई न कोई निश्चित कर्त्तव्य होना चाहिये।

कर्त्तव्य को ठीक समय पर पूरा करना चाहिये।

अपना कर्त्तव्य अपने ही हाथों पूरा करना चाहिये।

घर की चीज़ें नियत स्थान पर सफ़ाई से रखनी चाहियें।

बिना काम किसी चीज़ का स्थान न बदलना चाहिये।

काम के लिये उठाई गई चीज़ को काम पूरा होने पर उसी के स्थान पर रखना चाहिये।

दूसरों की चीज़ें देखने या छेड़ने की इच्छा न होनी चाहिये।

दूसरों के आचरण की चिन्ता या उसमें भूल निकालने की कोशिश न होनी चाहिये।

अपने शरीर को शुद्ध रखना चाहिये।

शुद्ध कपड़े पहनने चाहियें।

केवल आवश्यक और भली प्रकार सोचा

हुआ, शांतिपूर्ण वाक्य ही बोलना चाहिये।

सफ़ाई-धर्म का पालन अपने हाथों करना चाहिये।

अपने शरीर से मैले किये गये कपड़े अपने ही हाथों से धोने चाहियें।

शुद्ध खद्दर के वस्त्र पहनने चाहियें।

पहनने के वस्त्र में कर्त्तव्यहीनता का दोष नहीं लगा होना चाहिये।

शुद्ध स्थान में रहना तथा बैठना चाहिये।

साफ़ रास्ते में चलना चाहिये।

मल-मूत्र-त्याग, थूकना, नाक साफ करना आदि काम इस ढंग से होवें कि जिससे गंदगी न फैले।

प्रत्येक क्षण अपने को पूर्ण पवित्र और अनन्त शक्तिवान समझना चाहिये।

कर्त्तव्यपालन तक के लिये भी ऋण न लेना चाहिये।

जो कर्त्तव्य ऋण लिये बिना पूरा न हो वह कर्त्तव्य नहीं है।

दूसरे की बात शुरू से आखिर तक सुननी चाहिये

बोलने वाले की बात पूरी होनी चाहिये। उसे बीच में नहीं रोकनी चाहिये।

जहां अनुचित या अनावश्यक बातें बनाई जाती हों, उन में सम्मिलित नहीं होना चाहिये।

ज़ोर से हँसने व बोलने का स्वभाव न होना चाहिये।

किसी की निन्दा या व्यर्थ चर्चा नहीं करनी चाहिये।

जिससे कुछ कहना हो उसके पास जाकर कहना चाहिये।

काम में अति शीघ्रता नहीं की जानी चाहिये। उचित से थोड़े समय में करने की इच्छा ही शीघ्रता है।

ज़रा हँस लीजिए!

छोटी बच्ची टेलीफोन पर अपने बाप से बात कर रही थी। बात करते २ वह रोने लगी।
माँ ने पूछा—क्या हुआ बेटी?
उसने रोकर कहा—अब पिताजी इसमें से निकलेंगे। कैसे? ऊँ....ऊँ....ऊँ

* * *

पिता अपने पांच वर्ष के पुत्र को लेकर—"मुन्ने बेटा! तुम हमें अपनी बरात में ले चलोगे?"
पुत्र—"नहीं।" पिता—"क्यों?"
पुत्र—"तुम भी तो हमें नहीं ले गए थे।"

दीपक के प्रकाश में—

रँग की पुस्तक—ले० प्रोफेसर लक्ष्मीचँदजी एम० ए०, प्रकाशक—विज्ञान हुनर आफिस, बनारस सिटी, मू० १) पृष्ठ सँ० १५६।

प्रस्तुत पुस्तक के लेखक महोदय ने देश-विदेशों में भ्रमण कर रसायन और विज्ञान-शास्त्र का भली भांति अध्ययन किया है, और अनेकानेक उद्योग-धन्धे भी सीखे हैं। अतएव आपकी पुस्तकें अपने विषय के लिए व्यवहारतः उपयोगी हैं। इस पुस्तक में रेशे, रुई, ऊन, रेशम आदि के भेद व जातियों व उन पर भिन्न २ रँगों का भिन्न २ प्रभाव आदि बातों का विश्लेषण वैज्ञानिक ढङ्ग से किया गया है। आज के युग में रँग का ज्ञान एक बडा ही महत्वपूर्ण विषय है जिसके लिए इस पुस्तक में यथेष्ट सामग्री मिलती है। व्यवसाय प्रेमी, विज्ञान-जिज्ञासु लोग इस पुस्तक से खूब लाभ उठा सकेंगे।

मीरा की प्रेम साधना—लेखक भुवनेश्वर प्रसाद मिश्र 'माधव' एम०ए०, प्रकाशक—बाणी मन्दिर, छपरा मू० १।।) पृष्ठ सँ० १५२। पतिप्रेम के रस में मिले हुए भक्तिरस से मीरा ने अपनी सँगीत—धारा में जो दिव्य माधुर्य नद बहाया है वह अन्यत्र शायद ही मिले। पँ० भुवनेश्वरप्रसाद मिश्र 'माधव' ने इस पुस्तक में मीरा के उसी अलौकिक प्रेम व दिव्य माधुर्य को प्रकट करने का प्रयत्न किया है। सूर, तुलसी, कबीर आदि भक्तों के साथ मीरा की भक्ति-सुधा की तुलना करते हुए आप उसके भक्तिरस के अन्तस्तल तक पहुँचे हैं तथा उसके मिठास को परख कर उसको एक अनोखी सुन्दर शैली से वर्णन किया है। आरम्भ में मीरा की काव्य-रचना का ऐतिहासिक व आध्यात्मिक मनोहर विवेचन भी किया गया है पुस्तक उपयोगी, सुन्दर और साफ है।

विप्लव नववर्षांक—हिन्दी के मासिक पत्रों में 'विप्लव' का एक ऊँचा स्थान है। देश में राजनैतिक इन्कलाब पैदा करने के इच्छुक उग्रपन्थियों व समाजवादियों को यह पत्र मानसिक खुराक देता है। इसमें विविध वादों की तर्कपूर्ण, सुन्दर विवेचना रहती है। लगभग सभी लेख विद्वतापूर्ण व मननशील होते हैं। देश की मौजूदा राजनैतिक स्थिति पर जोरदार टिप्पणियां रहती हैं। सोवियट रूस सम्बन्धी विविध विषयक लेख, भारतीय क्रान्तिकारियों के गत वर्षों के साहस पूर्ण कार्यों व जीवनियों का दिलचस्प वर्णन रहता है। इसकी 'चक्कर क्लब' व 'चाय की चुस्कियों' में जोरदार चुटकियां ली जाती हैं। प्रस्तुत अङ्क में १४० पृष्ठ तथा १३ चित्र, जिन में से लगभग सभी षडयँत्र केसों में सजा पाये या उन से सम्बन्ध रखने वाले कामरेडों के लेख सहित हैं। 'आजाद की मां' शीर्षक लेख बहुत अच्छा है। आचार्य नरेन्द्रदेव, स्वामी सहजानन्द, बी० के० दत्त आदि के लेख भी जोरदार हैं। देश व सँसार की राजनैतिक विचार-धारा का विश्लेषणात्मक ज्ञान कराने के लिए इस अंक में काफ़ी सामग्री मिलती है। बार्षिक मू० ४।।), एक अङ्क का ।।–), विप्लव कार्यालय लखनऊ से प्रकाशित।

नागरिक कहानियां—लेखक श्री प्रो० सत्येन्द्र एम०ए०, प्रकाशक—भारतीय ग्रन्थ माला, वृन्दाबन, पृष्ठ १६०. मू० ।।=)

किसी गम्भीर व महत्वपूर्ण विषय को सर्व-साधारण के हृदय में पैठाने का सबसे सरल व प्रभावशाली उपाय है उसे कहानी के रूप में बड़े मनोरञ्जक ढङ्ग से रखना। हमारे प्राचीन ऋषि-मुनियों व विद्वानों ने कहानी कला के इस जबर-दस्त प्रभाव व उपयोगिता को समझकर धर्म व

नीति के गम्भीर तत्वों व सिद्धाँतों को कथाओं के रूप में सर्वसाधारण के सामने रखा है। आज जबकि भारत प्रजातँत्र-शासन की ओर तेजी से बढ़ रहा है, देशवासियों को नागरिक-धर्म व नागरिकता के कर्त्तव्यों का ज्ञान होना परमावश्यक है क्योंकि सच्चे नागरिक बने बिना हम अपने देश में प्रजातँत्र राज स्थापित नहीं कर सकते और यदि हो भी गया तो हम उससे लाभ न उठा सकेंगे। अस्तु, नागरिक-शिक्षा जैसे शुष्क विषय का सर्वसाधारण को ज्ञान कराने के लिए प्रकाशक महोदय ने 'कहानी कला को अपनाया तथा इस कला के सुयोग्य लेखक श्री सत्येन्द्र जी को यह भार सौंपा। विद्वान् लेखक ने नागरिक-शिक्षा के उद्देश्य को सामने रखकर प्रस्तुत पुस्तक के रूप में जो कहानियां हिंदी सँसार को भेंट की हैं, निस्सन्देह वह एक अनूठी चीज है। उपयोगिता की दृष्टि से कहानियाँ बहुत सुन्दर तथा समानुकूल हैं। लेखक तथा प्रकाशक धन्यवाद के पात्र हैं कि जिन्होंने एक अत्यावश्यक विषय को सर्वसाधारण के सामने रखकर अन्य साहित्यिकों का ध्यान इस ओर खींचा है।

देश-दर्शन (पुस्तकाकार सचित्र मासिक) पेलेस्टाइन—सम्पादक—पं० रामनारायण मिश्र बी० ए०, प्रकाशक भूगोल कार्य्यालय, इलाहाबाद। वार्षिक मूल्य ४). एक अँक का ।≈) भूगोल विद्या के प्रसिद्ध विद्वान श्री पं० रामनारायण जी मिश्र ने 'देश-दर्शन' के नाम से पुस्तकाकार सचित्र मासिक पत्र निकालना आरम्भ किया है जिस में प्रतिमास भिन्न-भिन्न देशों का विस्तार पूर्वक विवरण दिया जाता है। इसके पढ़ने से उक्त देश के प्राकृतिक ऐतिहासिक, सामाजिक, राजनैतिक, व आर्थिक हालात का पूरा-पूरा पता चल जाता है। भूगोल-विज्ञान में, जो दिन पर दिन उन्नति हो रही है, उस दृष्टि से किसी देश की इतनी अपटूडेट व उपयोगी जानकारी इतने सस्ते मूल्य में 'देश-दर्शन' के सिवाय अन्यत्र नहीं प्राप्त हो सकती है। यह विवरण किताबें पढ़कर नहीं बल्कि निज यात्रा अनुभव के आधार पर लिखा जाता है, जिसके पढ़ने से सचमुच आँखों के सामने उस देश का नकशा खिंच जाता है। धार्मिक और राजनैतिक दृष्टि से विशेष महत्व प्राप्त पेलेस्टाइन प्रदेश के सम्बन्ध में इस अँक में खोजपूर्ण व उपयोगी सामग्री सरल व रोचक भाषा में दी गई है। दर्जनों महत्वपूर्ण चित्र देकर इसे और भी लाभ प्रद व आकर्षक बना दिया है।

—सत्येन्द्रनाथ विद्यार्थी

मधु के उपयोग—लेखक—केदारनाथ पाठक, रासायनिक, प्रकाशक—उमैदीलाल वैश्य, श्री श्री श्यामसुन्दर—रसायनशाला गायघाट, बनारस सिटी मू० ॥) पृ० सँ ११०

पुस्तक विशेष अध्ययन के बाद लिखी गई प्रतीत होती है। जिसमें लेखक ने बताया है कि प्रायः सभी रोग एक मात्र मधु से ही अच्छे हो सकते हैं। मधु के भेद, गुण विविध रोगों पर प्रयोगादि का वर्णन चरक, सुश्रुतादि आर्षग्रन्थों के प्रमाणों सहित दिया है। इसके अध्ययन से थोड़ा पढ़ा आदमी भी मधु-चिकित्सा विषयक काफी ज्ञान प्राप्त कर सकता है पुस्तक प्रत्येक घर में रखने योग्य है।

—शँकरप्रसाद शास्त्री

आकृति (शरीर पर के चिन्ह और उन का सँकेत—सम्पादक तथा प्रकाशक—विश्वनाथ त्रिवेदी, सामुद्रिक शास्त्री, सामुद्रिक-विद्या-मन्दिर, कुन्दनपुरा स्ट्रीट, मुज़फ़रनगर, पृष्ठ सँख्या २७, मू॰ ≡)। पुस्तक छोटी होने पर भी हस्तरेखा विज्ञान की सभी आवश्यक बातों से परिपूर्ण है। लिखने की शैली इतनी सरल और स्पष्ट है कि साधारण हिंदी पढ़ा-लिखा आदमी भी लाभ उठा सकता है। इसमें हस्तरेखा-विज्ञान के साथ २ मुखाकृति-विज्ञान की भी बहुत सी ज्ञातव्य बातें हैं। पुस्तक के आदि में हस्तरेखा चित्र भी हैं।

—रामलग्न त्रिपाठी
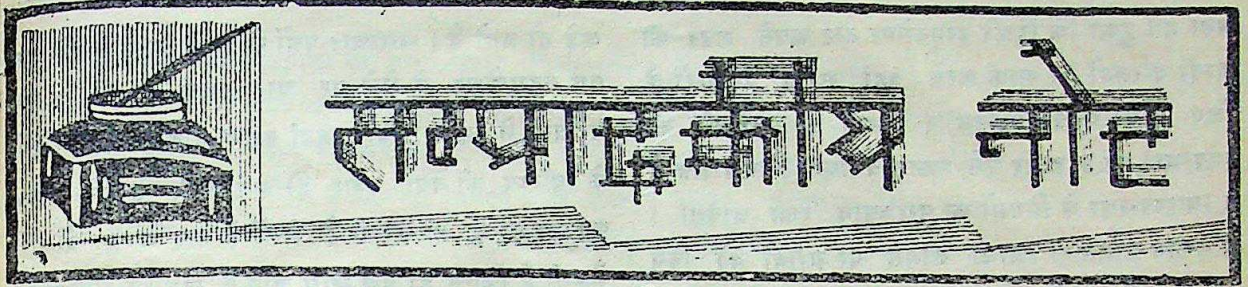
दहेज विरोधी आन्दोलन—

दहेज प्रथा से होने वाली भयङ्कर हानियों व दुष्परिणामों को देखते हुए अ० भा० आर्यकुमार परिषद् ने इस कुप्रथा के विरुद्ध आँदोलन तथा प्रचार करने के लिए १६ से २६ नवम्बर तक का सप्ताह मनाया तथा घर-घर दहेज के विरुद्ध सन्देश पहुंचाने व लोगों से दहेज न लेने के प्रतिज्ञा-पत्र भरवाने का प्रयत्न किया है। दहेज रूपी दैत्य से समाज की रक्षा के लिए किए गए इस शुभ-प्रयत्न की जितनी प्रशँसा की जावे थोड़ी है। विवाह-सम्बन्धी कुरीतियों ने हमारी समाज को बिल्कुल खोखला व जर्जरित कर दिया है। उसमें भी दहेज-प्रथा ने तो हमारा सामाजिक जीवन ही शक्तिहीन व निस्तेज बना दिया है। इस कुप्रथा ने आज ऐसा भयङ्कर रूप धारण किया है कि मँगनी से पहले ही दहेज की शर्तें पक्की होने लगती हैं, जिससे उन शर्तों को पूरी करने के लिए लड़की वाले ज़मीन-जायदाद व घरों तक को बेचते व कर्ज लेते हैं। जो ऐसा नहीं कर सकते हैं उनकी कन्याएं कुँवारी रहती हैं तथा कई लड़कियां माता-पिता को दहेज देने में असमर्थ पाकर आत्म हत्याएँ करती हैं। इस प्रकार इस कुप्रथा ने समाज की रीढ़ की हड्डी तोड़ दी है। जो व्यक्ति चाहता है कि समाज फूले-फले हमारे बच्चे व युवक-युवतियाँ सुयोग्य, शिक्षित व सुखी गृहस्थी बनें। उन्हें इस घुन से समाज को बचाना चाहिए। जब तक समाज का असँख्य रुपया दहेज के रूप में नष्ट होता रहेगा तब तक वह धनाभाव की तङ्गी भोगता रहेगा तथा अपने व अपने बच्चों की शारीरिक, मानसिक व बौद्धिक उन्नति के के लिए कोई भी प्रयत्न न कर सकेगी। इस आँदोलन को सफल बनाने की सबसे ज़्यादा ज़िम्मेदारी युवक-युवतियों पर है, क्योंकि अधिकतर वे ही इसके शिकार होते हैं, उन्हींका जीवन दहेजप्रथा की बलिवेदी पर चढ़ाया जाता है और है भी यह उनका ही कर्त्तव्य कि सामाजिक कुरीतियों को दूर करें। भविष्य में समाज की बागडोर उन्हीं के तो हाथ में रहेगी।

शहरों में ग़रीबों के लिये मकानों की योजना

ग्रामों में उद्योग-धन्धों के नष्ट होने तथा खेतो में गुज़ारा न होने से गत वर्षों में देहाती रोज़गार के लिए बड़ी सँख्या में शहरों में चले गये हैं। अतः शहरों की आबादी बहुत बढ़ जाने से वहां मकानों की समस्या बड़ी कठिन हो गई है. काफी रुपया किराये का देने पर भी स्वास्थ्यकर खुला मकान नहीं मिलता है। शहरों की अधिकांश जनता, जो कि ग़रीब है, बहुत तङ्ग, गन्दे, अँधेरे स्वास्थ्यनाशक मकानों में रहती है। पेट के लिये उन्हें नाली के कीड़ों की तरह यह नरक-तुल्य जीवन बिताना पड़ता है, क्योंकि देहातों की खुली हवा में रहकर पेट नहीं पलता है। शाही बङ्गलों, पार्कों व बाग़-बग़ीचों, लम्बी-चौड़ी सड़कों, बिजली व नलके आदि आधुनिक सभ्यता व ऐशो-आराम के सभी साधनों से सुसज्जित चमचमाते शहरों के इन नरक-कुण्डों की ओर नगर अधिकारियों का ध्यान नहीं गया है। जिन ग़रीबों मज़दूरों की मेहनत के बल पर धनी वर्ग आधुनिक शहरों में स्वर्गीय आनन्द भोग रहे हैं तथा शहर की म्युनिसिपल कमेटियों का कोष भरता है, क्योंकि शहरों में अधिकांश सँख्या ऐसे ग़रीबों की ही है, उनके लिए ज़िन्दगी कायम रखने लायक स्थान का प्रबन्ध भी न हो तो यह विद्या, बुद्धि, व ज्ञान के केन्द्र नगरों के निवासियों की मानवता के प्रति घोर कृतघ्नता होगी। हमें यह समाचार सुनकर

बड़ा हर्ष हुआ कि दिल्ली इम्प्रूवमेण्ट ट्रस्ट अपने शहर की गन्दी बस्तियों को साफ़ करके वहां ग़रीब परिवारों के लिए हायर-परचेज़-सिस्टम (किराये से खरीदने की व्यवस्था) पर ५ हजार ऐसे मकान बनाएगा जिनमें सफ़ाई व स्वास्थ्य-रक्षा के नियमों का पूरा ध्यान रखा जावेगा। ये मकान लागत से आधी कीमत पर ग़रीबों को दिए जावेंगे, और इनमें लगा बाकी आधा रुपया सरकार दिल्ली प्रांत में सिनेमा आदि पर मनोरञ्जन-टैक्स लगाकर उसकी आमदनी से पूरा करेगी। ये मकान १, २ व ३ कमरों वाले इस ढङ्ग के बनेंगे कि परिवार की बढ़ती आवश्यकता को पूरा कर सकें। मकान में रहने वाला हर महीने एक निश्चित रकम अदा करेगा जिसमें खरीदने की किस्त, किराया व पानी आदि के दाम शामिल होंगे। यह रकम कम से कम ३।।) महावार होगी तथा २० वर्ष में वह आदमी मकान का मालिक बन जावेगा। इस काम के लिए ट्रस्ट २२।। लाख रुपये केन्द्रीय सरकार से कर्ज लेगा। हम चाहते हैं कि यह योजना जल्दी से जल्दी अमल में लाई जावे जिससे गरीब शहरी जनता मनुष्य के समान जीवन बीताने लगे। दूसरे शहरों में भी इस प्रकार की योजनाएँ शुरू होनी चाहियें। जब तक हमारे शहरों की अधिकाँश बस्तियां इतनी गन्दी बनी रहेंगे तब तक हमारे शहर बीमारियों के अड्डे बने रहेंगे।

गढ़मुक्तेश्वर का मेला—

भारतवासियों की अब भी मेलों में बड़ी अटूट श्रद्धा है। जब कोई मेला आता है तो वे खूब दिल खोलकर पैसा खर्च करते हैं। अगर पास में पैसा नहीं है तो उधार ले, अपनी किसी चीज को बेच या गिरवी रखकर मेले में जाने का प्रबन्ध करते हैं। औरतों और छोटे २ बालकों को भी अपने साथ घसीट लिया जाता है। उनकी उपयोगिता व महत्व को समझे बिना ही लोग मेलों में जाकर अपना धन, शक्ति, समय और स्वास्थ्य बर्बाद करते हैं। मेलों की भीड़ का ख्याल आते ही रोंगटे खड़े हो जाते हैं। समाचार-पत्रों से ज्ञात हुआ है कि इस वर्ष गढ़मुक्तेश्वर के मेले पर चार लाख से भी अधिक यात्रियों ने स्नान किया। जहां इतनी भीड़ हो वहाँ लोगों के स्वास्थ्य की क्या दशा हो सकती है, उसकी महज़ कल्पना ही की जा सकती है। मेलों के बाद भयङ्कर बीमारी फैलती है कितने ही बच्चे खोये जाते हैं, खूब चोरी होती हैं, गुण्डापन ऐसे ही मौकों पर फैलता है। समय आ गया है कि मेलों की परिपाटी में समयानुकूल सुधार किया जावे जिससे यही मेले, जो आज दुराचार और मिथ्याचार के अड्डे बने हुए हैं, राष्ट्रोत्थान के केन्द्र बन जावें और जनता-जनार्दन में अभूतपूर्व जागृति पैदा करें। यह तभी हो सकता है जब ऐसे स्वयँ-सेवक तैयार किए जावें जो गली-गली और मुहल्ले-मुहल्ले में जाकर प्रेमपूर्वक लोगों को शिक्षित करें और उन्हें समझावें कि जो रुपया मेलों में पानी की तरह बहा दिया जाता है, वही रुपया उनके सार्वजनिक-हित के कामों—बच्चों की शिक्षा, स्वास्थ्य-रक्षा आदि में लगे तो उनका तथा देश का उद्धार ही न हो जाय।

जीवन-दान के लिये शुभ प्रयत्न—

पिछले ४-५ साल से पूरी वर्षा न होने के कारण हिसार जिला और उसके समीप के बीकानेर, जयपुर, जोधपुर आदि राज्यों में फसल नहीं हुई। ३-४ वर्ष तो लोगों ने ज्यों-त्यों करके दिन काटे लेकिन पिछले वर्ष भयङ्कर अकाल पड़ने से उनके पैर उखड़ गए। अन्न-जल व चारे की कमी से इस इलाके के मनुष्य व पशु भूखों मरने लगे। बहुत बड़ी सँख्या में यहाँ के लोग अपने पशुओं को लेकर दूसरे इलाकों में चले गये। किंतु सारे इलाके के आदमी व पशु बाहर जा नहीं सकते थे। वे भूख प्यास के मारे वहीं तड़प-तड़प कर मरने लगे। पशुओं की तो बहुत बड़ी सँख्या नष्ट हो गई। ऐसे विकट समय में हिसार की ज़िला कांग्रेस कमेटी ने 'काँग्रेस कहत

कमेटी' कायम करके सहायता का काम जारी किया और हजारों पशुओं व मनुष्यों को मौत के मुँह से निकाला। उस कहत कमेटी ने पिछले वर्ष अकाल पीड़ितों की सेवा का जो प्रशंनीय काम किया है उसका, सेक्रेटरी द्वारा भेजी रिपोर्ट में दिये नीचे लिखे आंकड़ों से अनुमान लगाया जा सकता है: —

कांग्रेस कहत कमेटी को ५८६७४ रुपए ६ आने नकद १३५५ मन ३२ सेर ४ छटांक अनाज, ३३१ मन १२ सेर गुवार, २२२३५ नए तथा ३२३२४ पुराने कपड़े और ८०० मन चारा मिला। २८८० मन १२ सेर ८ छटाँक अनाज तकसीम किया। २३१२ जच्चाओं को सहायता दी ५६८८७ नये तथा पुराने कपड़े लिहाफ, धोतियां, चद्दरें, घागरे, कुरते, कमरियाँ आदि दिये गये। २४ गांव में कुएँ चलाने तथा पीने के पानी का प्रबन्ध हुआ। ८० साढ़ों को चारा दाना मिला, २२६ गाँव में १२०४७ बीघे ज़मीन को हल बैल तथा २२८ गांव में बीज की सहायता दी गई। चर्खा सङ्घ पञ्जाब को सूत कताई-बुनाई के सहायक का काम जारी करने के लिए ५ हज़ार रुपये दिये जिनके ज़रिये चार हज़ार कातने वाली बहिनों को तथा तीनसौ धुनियों जुलाहों को २७०५८ रुपये मज़दूरी मिली। बाहर से चारा लाने, तकावी चारा दिलाने तथा अन्य कहत सम्बन्धी कार्यों में सहूलियत पहुंचाने की कोशिश की अनुमान पाँच हज़ार दरख्वास्त मुफ़्त लिखी गई।

इसके अलावा कहत कमेटी के सहयोग से जीव-दया मण्डल बम्बई आदि कई सँस्थाओं ने १० हज़ार गौओं की रक्षा की व लोगों को हल, बीज पानी आदि की सहायता की। इस प्रकार कांग्रेस कहत कमेटी तथा उसके सहयोग से नकद कपड़ा, अन्न आदि के रूप में अनुमान ३॥ लाख रुपए इस सेवा कार्य पर खर्च हुए। हिसार ज़िला काँग्रेस कमेटी का यह सेवा कार्य यद्यपि हिसार ज़िले तक ही सीमित रहा क्योंकि अपने सीमित साधनों के कारण वह ज़िले के ही सब पीड़ितों को पूरी सहायता न पहुंचा सकी; फिर भी उसके इस कार्य की हम हृदय से प्रशँसा करते हैं। कांग्रेस के जन-सेवा के महान् उद्देश्य को पूरा करने का सुन्दर उदाहरण पेश करके उसने अन्य सार्वजनिक सँस्थाओं के सामने एक आदर्श उपस्थित किया है।

कहतकमेटी आदि सँस्थाएँ प्रबल प्रयत्न करके, जहाँ कहीं से और जिस रूप में भी सहायता मिल सकी, प्राप्त करके पीड़ितों की सेवा इस आशा पर करती रही कि अगले वर्ष तो वर्षा हो ही जावेगी। इस वर्ष के लिए ही कठिनाई है, प्राण टिकने लायक ही चारा, अन्न देकर जितने पशुओं व मनुष्यों की जान बचाई जा सके, बचाई जावे। किंतु अकाल पीड़ितों व उनकी सहायता करने वाली सँस्थाओं पर विपत्ति का पहाड़ तो उस समय आ पड़ा जबकि इस वर्ष भी वर्षा न होने से पिछले वर्ष से भी ज़बरदस्त अकाल पड़ गया है। अकाल पीड़ितों की हालत इस साल इतनी खराब हो चुकी है कि कहत सहायक कमेटियों के बस का काम नहीं रहा है। वे अपनी अत्यधिक शक्ति गत् वर्ष पीड़ितों की सेवा में लगा चुके हैं। जबकि इस वर्ष सङ्कट अत्यधिक है किंतु सहायता कार्य व दानादि सहायता गत् वर्ष जैसे उत्साह से प्राप्त नहीं हो रही है। बिना यह इन्तजार किए कि हमारे पास अकाल पीड़ितों की सहायतार्थ कोई मांगने आवेगा तब कुछ दे देंगे, लोग अपना परम-कर्त्तव्य समझकर स्वयँ ही उनकी विपत्ति में सहायता करें। अपने अनिवार्य खर्चों के अलावा अन्य सभी खर्चों में कमी करके रुपया, अन्न, कपड़ा, चारा, या काम देना आदि जिस भी रूप में पहुंचा सकें उन्हें सहायता पहुंचावें। यदि लाखों आदमियों के हृदय में पीड़ितों को सहायता भेजने की भावना उत्पन्न होगी तो वे सब चाहे पैसा-पैसा ही भेजेंगे तौभी वह बहुत बड़ी सहायता बन जावेगी। यह तभी होगा जब लाखों आदमी इन अकाल पीड़ितों को सहायता देना हृदय से अनुभव करेंगे।

संसार-चक्र

—पञ्जाब में दमनचक्र जोरों से चल रहा है। बहुत से काँगरेसी कार्यकर्त्ता डिफेन्स आफ इण्डिया ऐक्ट के आधीन गिरफ़ार कर लिए गए हैं जिनमें ११ तो एम० एल० ए० ही बताए जाते हैं। मजलिसे-अहरार के प्रधान आदि बहुतसे कार्यकर्त्ता भी गिरफ़ार हो चुके हैं।

—काँगरेस मन्त्री मण्डलों के स्तीफा देने के बाद यू० पी०, बिहार आदि में भी दमन व गिरफ़ारियाँ शुरू हो गई हैं। श्री विश्वम्भरदयाल त्रिपाठी, भूतपूर्व काकोरी कैदी श्री रामदुलारे व कामरेड मन्मथनाथ गुप्त आदि यू०पी० में गिरफ़ार कर लिए गए तथा बिहार में भी कई गिरफ़ारियां हुई हैं।

—ता० १९-११-३९ को इलाहाबाद में महात्माजी के करकमलों से 'कमला नेहरू स्मारक हस्पताल' की आधार शिला रखी गई।

—बङ्गाल असेम्बली में पूछे गये एक प्रश्न के उत्तर में होम मिनिस्टर ने बताया कि इस सूबे में २॥ हजार से अधिक किताबें जब्त हैं।

—२५ नवम्बर को हुए इलाहाबाद यूनिवर्सिटी के कन्वोकेशन के अवसर पर यूनिवर्सिटी के चांसलर युक्त प्रांत के गवर्नर सर हेरी हेग सीनेट हाल पर काँगरेसी झण्डा फहराने के कारण नहीं आए। लेकिन वे २७ नवम्बर को लखनऊ के रफाये आम टेनिस क्लब के टूर्नामेण्ट में इनाम बांटने गए जिस पर मुसलिम लीग का झण्डा फहरा रहा था।

—खबर है कि सिंध के थार परकर जिले में अकाल के कारण २ लाख ५६ हजार पशुओं की जानें गई और एक लाख से अधिक आदमी आश्रय-हीन हो गए।

—खबर है कि मद्रास कांगरेस मन्त्रीमण्डल ने सैकेण्डरी स्कूलों की पहली तीन श्रेणियों में हिन्दी की अनिवार्य शिक्षा की जो नीति धारण की थी मौजूदा सरकार उसमें घोर परिवर्तन करने वाली है।

—सन् ३५ के भारतीय शासन विधान की धारा ६५ और ७२ के अनुसार काँगरेसी मन्त्री मण्डलों के पदत्याग के बाद भी धारासभाओं के सदस्यों तथा उसके स्पीकरों को वेतन और भत्ते मिलते रहेंगे।

—बम्बई के एक कलाकार मि० सेम्पसन एलिजा ने १७-१०-३९ की वायसराय की सम्पूर्ण घोषणा को एक कार्ड पर १७१० पंक्तियों में लिखने की कला प्रदर्शित की है और साथ ही वायसराय का एक छोटासा फोटो भी दिया है।

—पोलैंड के पतन के बाद यद्यपि मित्रराराष्ट्रों व जर्ममी में प्रत्यक्षरूप से जोरदार लड़ाई शुरू नहीं हुई किंतु अन्दर ही अन्दर कूटनीति की गहरी चालें चली जा रही हैं तथा एक पक्ष दूसरे की प्रजा को अपने प्रभाव में लाने तथा दूसरे देशों की सहानुभूति प्राप्त करने के लिए जबरदस्त प्रचार कर रहा है। समुद्री युद्ध दिन पर दिन भयङ्कर होता जा रहा है। जर्मनी टारपीडों व माईनों ने समुद्र में आतङ्क फैला दिया है। २५ नवम्बर तक इङ्गलैंड के २५० जहाज डूब चुके तथा उनके १५२६ आदमी मारे गए। इगलैंड की हवाई सेना के ३७० आदमी मारे गए या गुम हो गए। इङ्गलैंड ने जर्मनी की समुद्री कार्यवाही के मुकाबिले के लिए समुद्र में उसका माल पकड़ने का निश्चय किया है।

—ब्रिटेन के अर्थमन्त्री सर साइमन ने बतलाया है कि मौजूदा लड़ाई को चलाने के लिए ब्रिटिश सरकार को रोजाना ६० लाख पौं० (लगभग ९ करोड़ रुपये) व्यय करना पड़ रहा है जो गत महायुद्ध से कई गुना अधिक है।

साहित्य-सदन समाचार
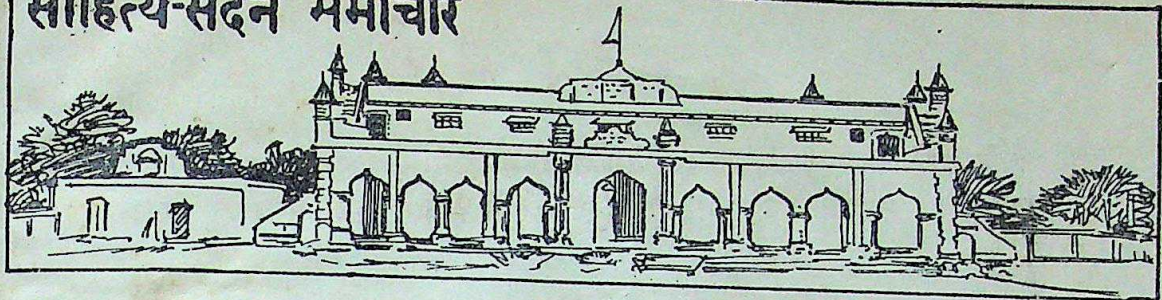
इस मास साहित्य सदन के पुस्तकालय में नीचे लिखी पुस्तकों की वृद्धि हुई:—

श्री मुनिराज विद्याविजय जी महाराज रणछोड़ लाइन, जैनधर्म मन्दिर, करांची द्वारा अमूल्य भेंट की गई हिन्दी, गुजराती पुस्तकें—

नाम पुस्तक	मूल्य
१—मारी सिंध यात्रा (गुजराती)	२॥)
२—श्री हिमांशुविजयजीनालेखो (हिंदी)	१॥)
३—श्री विद्याविजयजी ना व्याख्यानो (गुजराती) भाग १-२-३	॥)
४—वक्ता बनो (हिन्दी)	।=)
५—मेरी मेवाड़ यात्रा (हिन्दी)	≡)
६—जैन धर्म (हिंदी)	।)
७—जैनसप्तपदार्थी (हिंदी)	।–)
८—वीरबन्दन (हिंदी)	=)
९—सँस्कृत-प्राचीन-सत्वन-सन्दोह (सँस्कृत)	≡)
१०—श्री धर्मवियोगमाला (सँस्कृत)	=)
११—श्री द्वादशव्रत कथासँग्रह (सँस्कृत)	॥)
१२—तेजस्वी मन्त्र (हिंदी)	
१२—श्री राजनगर साधु सम्मेलन (गुजराती)	१॥)
१४—अशोकनी शिलालेखो ऊपर दृष्टिपात	।)
१५—सप्तभंगी प्रदीप (गुजराती)	।=)
१६—महाकवि शोभनमुनि अने तेमनीकृति (गुजराती)	≡)
१७—ब्राह्मणवाड़ा तीर्थनु सचित्रवर्णन,(गुजराती)	।)
१८—श्री विजयधर्मसूरि (गुजराती)	
१९—जैनतत्वज्ञान (गुजराती)	।)
२०—महाक्षत्रप राजा इन्द्रदामा (गुजराती)	२)
२१—श्री विजयधर्मसूरिने अर्घ्य (गुजराती)	
२२—विजयधर्म सूरिनाँ वचन कुसुमो (गुजराती)	
२३—श्री वीरविहार मीमाँसा (गुजराती)	
२४—श्री जयन्त प्रबन्ध (गुजराती)	≡)
२५—मथुरानीं सिंहध्वज (गुजराती)	१)
26-Yijaye Dharma Shri	1-0-0
27-Reminiscences of Yijaya Dharma Suri	1-0-0
28-The Karam Philosopby	0-12-0
29-The Yoga Philosopby	0-14-0

श्रीमत् परमहँस परिव्राजकाचार्य हिंदू धर्म रक्षक उदासीनवर्य पं० श्री १०८ स्वामी श्री हरनामदास जी महाराज गद्दीधर (महन्त) सद्गुरु बनखण्डी आश्रम श्री साधुबेला तीर्थ (सिन्ध) द्वारा 'प्राचीन मुनियों का पुरुषार्थ' पुस्तक अमूल्य प्राप्त।

श्री १०८ महन्त श्री बालकृष्ण जी महाराज, श्री कबीरधर्म पुस्तकालय रणछोड़ लाइन करांची, द्वारा अमूल्य प्राप्त।

१—कबीर साहब का बीजक (हिंदी)	२॥)
२—साखी ग्रन्थ (हिंदी)	२)
३—सत्यकबीर शब्दामृत अथवा गुजराती शब्दावली	१।)

श्री जमियतराम वजेशंकर आचार्य, श्री प्रभुतत्व प्रचारक मण्डल, रामास्वामी गाड़ीखाता पीताम्बर स्ट्रीट करांची द्वारा प्रदत्त पुस्तकें—

१—परमात्म दर्शन (गुजराती) भाग दो	१।=)
२—योगामृत (गुजराती) भाग ४ थो	।।)

Presented by The Secretary Darbar Sahib Committee Amritsar.

१—ਗੁਰੁ-ਵਾਣੀ-ਵਯਾਕਰਣ 8)

सँस्था इन सब महानुभावों की परम कृतज्ञ है कि जिन्होंने पुस्तक दान करके उसके पुस्तक-भण्डार को बढ़ाने का प्रशंसनीय कार्य किया है।

REGD. NO. L. 3700

दान का मार्ग

यदि तुम्हें किसी ब्राह्मण को दान देने की इच्छा है तो पुस्तकालय एक ब्राह्मण ही है क्यों कि उसकी पुस्तकें हमेशा सच्चे ब्राह्मण के धर्मरूप में अज्ञान रूपी अन्धकार दूर करके शिक्षा देती हैं।

* * *

यदि तुम्हें किसी विद्या-मन्दिर में दान देने की इच्छा है तो पुस्तकालय भी एक विद्या-मन्दिर ही है, क्योंकि विद्या एवं सरस्वती का वहां पर दिन रात वास रहता है।

* * *

यदि तुम किसी पङ्गु पर दया करके दान देना चाहते हो तो साथ २ पुस्तकालय को भी स्मरण रखो, क्योंकि वह मनुष्य मात्र के अज्ञानरूपी पङ्गुपन को मिटाता है। और मनुष्यों का ज्ञान पङ्गु होना भी क्या कम दया का पात्र है?

* * *

यदि तुम्हें किसी आँख के दवा खाने में दान देने की इच्छा है तो साथ २ पुस्तकालय को भी न भूलिये, क्योंकि मनुष्यों की नजर-शुद्धि करके ज्ञान-चक्षु देने में उसका हिस्सा कुछ कम नहीं है।

* * *

अगर तुम्हें अपनी नामवरी के लिये कुछ दान करना हो तो पुस्तकालय बनाओ अथवा उसकी सहायता करो जिससे कि वह तुम्हारी कीर्ति का सदा स्मारक बने।

* * *

यदि तुम्हें किसी शुभ अवसर पर भेंट करनी हो तो उस प्रसङ्ग के अनुरूप पुस्तकों ही की भेंट करो जिससे उसमें रही क्षति दूसरे रूप में दूर हो जावे। और पुस्तकों की भेंट तो ज्ञान की ही भेंट है न!

* * *

यदि दूसरों की शारीरिक निर्बलता दूर करने की इच्छा से तुम व्यायामशाला में दान करना चाहते हो तो साथ ही साथ उनकी मानसिक दुर्बलता दूर करने के लिये उस विषय की पुस्तकों का दान देना भी न चूको; इससे तुम्हारे दान की अपूर्णता भी दूर होगी।

* * *

यदि तुम्हारे दान करने का उद्देश्य लोकसेवा में निहित है तो पुस्तकालय उस प्रवृति को तीव्र गति देगा, क्योंकि पुस्तकों द्वारा जनता का अज्ञानांधकार दूर हो जायेगा और लोग सच्चे मार्ग की खोज कर लेंगे।

* * *

दान के क्षेत्र में घर बैठे गङ्गा जैसा यदि कोई सर्वोत्तम महत्व है, तो वह एक मात्र पुस्तकालय ही है।

(पुस्तकालय)

मुद्रक एवं प्रकाशक —श्री कल्याण दास, 'जीवन सेवा' ... अबोहर से प्रकाशित।